शत्रुमित्र सुखदुखमे समरस,ना हि लिप्त कोई धन मे ।
द्वादशतप, दशधर्म पालते,मगन रत्नत्रय मन में ।।
इन सद्गुरु को नमन बिहारी बार बार चरनन में ।
इनको वदन भव-भय नाशी,भाष्यो कर्म दहन में ।।
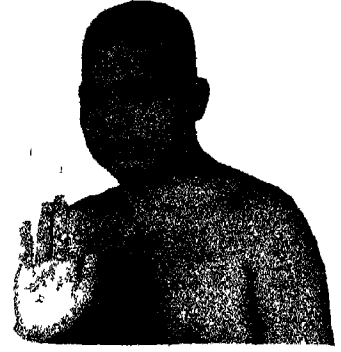
१०८ आचार्य प पू विरागसागरजी

जिनके मुखारविन्द यह पुरुषार्थ देशना प्रवाहित हुयी

मुनिश्री विशुध्दसागर

मुनिश्री १०८ विशुद्धसागरजी महाराज

संक्षिप्त परिचय

पूर्व नाम	श्री राजेन्द्रकुमार जैन
पिताश्री	श्री रामनारायणजी जैन सम्प्रति - मुनिश्री विश्वजीतसागरजी महाराज
माताश्री	श्रीमती रत्तीबाईजी जैन
जन्मतिथी	१८ दिसम्बर १९७१
जन्मस्थान	रूरग्राम, (जिला भिण्ड), मध्यप्रदेश
लौकिक शिक्षा	मैट्रीक
क्षुल्लक दीक्षा	११ अक्तूबर १९८६, भिण्ड, (म प्र)
ऐलक दीक्षा	१९ जून १९९१, पन्ना (म प्र)
मुनि दीक्षा	२१ नवम्बर १९९१, कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, श्रेयासगिरी
दीक्षा गुरु	प पू आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज
कृतियाँ	शुद्धात्म तरगिणी, निजानुभाव तरगिणी, पचशील सिद्धान्त, आत्मबोध, इष्टोपदेश भाष्य, तत्वदेशना प्रवचन, बोधि सचय, प्रेक्षादेशना (वारसाणुपेक्खा - प्रवचन) अध्यात्म देशना (योगसार - प्रवचन) पुरुषार्थ देशना (पुरुषार्थ सिद्धयुपाय - प्रवचन)

कुछ पुस्तको के अग्रेजी एव मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥

मूल ग्रथकर्ता

आचार्य भगवन् अमृतचंद्र स्वामी

विरचित

पुरुषार्थसिद्धियुपाय

पर

मुनिश्री विशुध्दसागरजी

के श्रृखलाबद्ध चातुर्मासिक प्रवचनो का सग्रह

कारिकाऐ, अन्वयार्थ एव

बोधगम्य सरल हिन्दी भाषा मे विवेचन

प्रकाशक

सुभाष कपूरचदजी जैन

विद्यासागर विचार मंच

मुधोळकर पेठ, अमरावती (महाराष्ट्र)

॥ पुरुषार्थ देशना ॥

मुनि श्री विशुध्दसागरजी

प्रथम संस्करण
फरवरी २००६
१००० प्रतियाँ

सम्पादन एवं संग्राहक
मुनि श्री विश्ववीरसागरजी
पडित विद्यानदजी विदिशा

मुद्रण/सयोजन/पुर्नसम्पादन/मुखपृष्ठ कल्पना
सुभाष कपूरचद जैन
विद्यासागर विचार मच, अमरावती (महाराष्ट्र)

कम्प्यूटर ग्राफिक
विवेकानन्द कम्प्युटर
ब्लॉक कॉलनी, विदिशा

सदीप सुभाष फुकटे
सौ विजया सदीप फुकटे
स्कूल न २ के पास, बुधवारा अमरावती

मुद्रक
अमर ऑफसेट, एम आय डी सी , अमरावती

मूल्य - ३००/-

समर्पण

वर्ष (ई.स) २००५ का पावन वर्षायोग

हम अमरावती वासियो के लिये

महान पुण्ययोग,

जब एक दिगम्बर मुनिसघ ने,

इस नगरी मे अपना पावन प्रवेश किया,

और महाराष्ट्र प्रात की इस इद्रपुरी अमरावती नगरी मे

अपना प्रथम ऐतिहासिक वर्षायोग धारण किया।

समस्त समाज को अपनी अमृतमयी धर्म देशना से

अभिषिक्त कर एक नयी दिशा दी।

ऐसे परम दिगम्बर सत मुनि श्री विशुद्धसागरजी

के चरण कमलो मे एव उनके इस चार्तुमास की

पावन स्मृति मे एक विनम्र प्रयास,

सादर समर्पण !

समस्त दिगम्बर जैन समाज

अमरावती (महाराष्ट्र)

सम्पादकीय

दिगम्बर आम्नाय मे श्रावकाचार ग्रथों की श्रृखला मे आचार्यवर समतभद्रस्वामी द्वारा रचित रत्न करड श्रावकाचार एव आचार्य अमृतचद्रस्वामी द्वारा रचित पुरुषार्थसिद्धियुपाय इन दोनो ही ग्रन्थो को अपनी अपनी महत्ता प्राप्त है। जैन धर्म अहिसा मूलक धर्म है, एव अहिसा उसके समस्त आचार विचार की कसौटी है। पुरुषार्थ सिद्धियुपाय (अपरनाम·- जिन प्रवचन रहस्य कोष) मे अहिसा मूलक आचार विचार का प्रमुखता से अनूठा, विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन है। हमे जीवित प्राणियो की हिसा से तो बचना ही चाहिये, परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि हमारी क्रियाओ से जीवो की उत्पत्ति भी न हो। इसी हेतु से इस बात का भी ज्ञान होना जरूरी है कि, जीवो की उत्पत्ति कैसे होती है ? ताकि उन्हे जन्म के पश्चात, मारना न पडे। प्रमादवश, असावधानी से हमारी अज्ञानता के कारण हम स्वय जीवो की उत्पत्ति का कारण भी बनते है एव जाने-अनजाने उन्हे मार भी देते है। अस्तु हमारी दिनचर्या इतनी विवेकपूर्ण हो, ताकि कम से कम हिसा हो। इसी को अहिसक जीवन शैली कहा जायेगा। जो स्वय की रक्षा करता है, वही इस विश्व की रक्षा करने मे समर्थ है , क्योकि निजात्मा की रक्षा करनेवाला कभी किसी की हिसा नहीं करता।
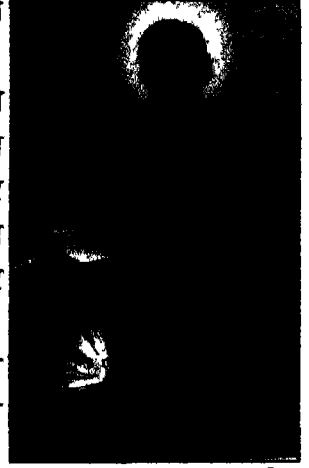
वीर - निर्वाण सवत् २५३० के विदिशा चातुर्मास मे अध्यात्म - विद्या के धनी, अहिसक जीवन यापक मुनि श्री विशुध्दसागरजी महाराज द्वारा पुरुषार्थ सिद्धियुपाय ग्रथराज की, धर्म-पिपासु श्रावको के समक्ष वाचना के माध्यम से पठन-पाठन तथा गाथाओ पर टीकात्मक प्रवचन किये गये। उन प्रवचनो को सकलित कर ''**पुरुषार्थ देशना**'' के माध्यम से सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का यह प्रयास है।

पाठकों को एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि स्वय का निरिक्षण करके ही जीवन मे रुपान्तरण होता है। इसी का नाम वास्तविक स्वाध्याय है। जीवन्त स्वाध्याय है। वैसे तो जीवन मे देखने की शक्ति ही दुर्लभ है, उससे सबक लेना दुर्लभतर है। अस्तु, अपने जीवन निर्माण के अनुरूप जितने भी विचार पसद आये, उपादेय लगे, पाठक उन्हे ही समादर के भाव से अपनाएँ और अपनी जीवन यात्रा को सही दिशा दे। इसी अपेक्षा से मुनिश्री के प्रवचनों का यह सग्रह पाठको को उपलब्ध कराया गया है।

आत्मवत्-सर्व-भूतेषु की भावना से जिये और जीने दे तथा वादविवाद का अखाडा छोडकर समन्वय की उच्च भूमिका, नैतिक अहिसा पर चले - यही इस पुरुषार्थ देशना का सार, सक्षेप, उद्देश्य है हिसात्मक प्रवृत्तियो के परित्याग द्वारा व्यक्ति का सुधार होने साथ समाज एव राष्ट्र का भी कल्याण होता है। अहिसादि रूप आचरण द्वारा एक जैन व्यक्ति राष्ट्र एव समाज दोनो के लिये उपयोगी बनता है चरणानुयोग शास्त्र का सुव्यवस्थित तथा मार्मिक निरूपण अहिसा की साधना के लिये प्राण-स्वरूप है। अहिसा ही मानव-धर्म है, यह बात मनुष्य जाति को समझाते रहना ही जैन साधु का जीवन धर्म है, जिसे मुनि विशुध्दसागरजी महाराज बखूबी निभाते आ रहे है। वे अहिसा को चारित्र रूप देकर, उसी का उपदेश देकर, मानव जाति का ही नहीं वरन प्राणिमात्र का महान उपकार कर रहे है। महान व्यक्तियो का तप, अपने कल्याण के साथ लोक कल्याण करनेवाला होता है। अहिसा के सम्बन्ध में मुनिश्री का विश्लेषण एव विवेचन काफी गहरा है, और व्यापक भी है। इसका अनुभव पाठक स्वय ही इस प्रवचन सकलन का अवलोकन/पठन कर,कर सकेगे।

कहावत है - सोने में सुहागा यह लोकाक्ति इस पुस्तक पर सटीक है। अत. भविकजन इसका स्वाध्याय कर अवश्य ही विवेकी बनेंगे।

हमारे आचार्य भगवन्तों ने हम सभी के उपर बहुत ही उपकार किया है, जो कि उन्होंने अपने अमूल्य समय को निकालकर जिनेन्द्र की वाणी हम सभी को प्रदान की है। जिनवाणी के माध्यम से साक्षात वाणी का रसपान होता है, भेदाभेद, पञ्चाचार, पारायण सत शिरोमणी गुरुवर आचार्य भगवन् १०८ श्री विराग-सागरजी महाराज के द्वय चरण - कमलों में कोटिशः नमोस्तु। आपके पावन आशीर्वाद से ही मैं यह संकलन /सपादन का कार्य करने में समर्थ हुआ हूँ। अंत में इस पुरुषार्थ देशना के सकलन / सपादन में कर्तव्य निष्ठ, देव-शास्त्र-गुरु के भक्त श्री विद्यानदजी, विदिशा, श्री जिनेन्द्रकुमारजी, अभियन्ता भोपाल, श्री सुनील मोदी, विदिशा, श्री नरेन्द्र ड्रेसेस विदिशा, का सहयोग सराहनीय है। उनके लिये आशीर्वाद है। वे इसी तरह जिनवाणी के प्रचार प्रसार मे सहयोग करते रहें।

अत में एक विशेष चर्चा का उल्लेख किये बिना मेरा यह कार्य अधूरा ही रहेगा। इस ग्रथ के मुद्रण का कार्य किसी कारण वश विदिशा में सम्पन्न नहीं हो सका। मुनिश्री ने अपना अगला चातुर्मास पहली बार महाराष्ट्र प्रात की धरती पर करने का निश्चय किया और यह सौभाग्य प्राप्त हुआ अमरावती नगरी को। यह एक सुखद सयोग ही था कि अमरावतीवासियो की नजर इस ग्रथ की पाडुलिपी पर गयी और उन्होंने इसके प्रकाशन का भार स्वयस्फूर्त अपने उपर लिया। मुद्रण के व्यवसाय मे भारत के राष्ट्रपती द्वारा सम्मान प्राप्त, मुनिभक्त श्री सुभाष कपूरचद जैन ने यह भार अपने उपर लिया। विदिशा से इस ग्रथ की कम्प्यूटर सी डी उन्हे प्रेषीत की गयी। कुछ तकनीकी कारणों से उन्हे इस ग्रथ का पुर्नसपादन तो करना ही पडा, साथ ही फ्रूफ रिडींग के वक्त भी अनेक त्रुटियो को भी दुरूस्त करना पडा। वस्तुत विदिशा मे इस ग्रथ को कुछ बडे आकार मे प्रकाशन करने की योजना थी, किन्तु श्री सुभाषजी ने सर्वप्रथम इसके आकार मे परिवर्तन किया एव उसके अनुसार इसकी साज सज्जा मे भी परिवर्तन करना पडा इसके मुखपृष्ठ को उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति का सफलतम उपयोग करते हुये, कलाकार के माध्यम से जो मूर्तरूप दिया वह सराहनीय है। सपूर्ण पाडुलिपी का आपने शुरु से अत तक स्वाध्याय करते हुये, मुनिश्री से चर्चा करते हुये उसे पुर्नसपादन किया। यह एक कष्टसाध्य कार्य था किन्तु एक निर्दोष प्रकाशन हेतु, इसमे समय लगना भी स्वाभाविक था। कम्प्यूटर के सॉफ्टवेअर की कुछ तकनीकी खामियों की वजह से इस पुस्तक की प्रूफ रीडींग अनेक बार करनी पडी। यह कार्य उन्होने अपनी सस्था विद्यासागर विचार मच के तत्वावधान मे सपन्न किया है अस्तु उनके लिये हमारा विशेष आशीर्वाद है। प्राचीन एव अर्वाचीन जैन साहित्य के विकास में योगदान के लिये वे इसी प्रकार सहयोग देते रहे।

अब यह ग्रथ आपके समक्ष प्रस्तुत है। आत्मार्थीजन आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ को जागृत कर परमसिद्धी को प्राप्त करे, इस मगल भावना के साथ यह कृति पुरुषार्थ देशना सुधी पाठकों के लिये समर्पित है।

इति अलम् शुभम् भूयात्

मुनि विश्ववीर सागर

मुकुट सप्तमी

वर्षायोग, गोटेगाव (म प्र)

श्रीमती चंद्राणीबाई केवलचंदजी जैन

स्व. श्री केवलचंदजी जैन के स्मृति प्रित्यर्थ
श्रीमती चंद्राणीबाई केवलचंदजी जैन
एव उनके सुपुत्र
सर्वश्री शरदकुमार (रायपुर),
सतोषकुमार, प्रमोद कुमार, (अमरावती)
विनोदकुमार (अमलाई),
सुबोधकुमार (अमरावती), राजेशकुमार (ओझर)

सहयोग राशि रू ११,१११/-

शाह बाबूलाल डायाभाई

एव

गोदावरीबाई बाबूलाल शाह
के स्मृति प्रित्यर्थ
हस्ते श्री दिनेशभाई शाह

सहयोग राशि रू ११ ०००/-

साक्षी प्रॉडक्टस्

जवाहर रोड, अमरावती.

सचालक
श्री सुदीप सुभाष जैन

सहयोग राशि रू ११ ०००/-

श्रीमान पदमचंदजी जैन
डी-१९, नेहरू नगर, भोपाल
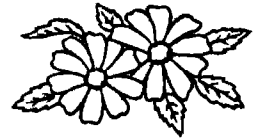
सहयोग राशि रू ११,०००/-

इस ग्रथ प्रकाशन के प्रथम सहयोगी

श्रीमती मोतीरानी महेन्द्रकुमारजी जैन इनके सोलहकारण व्रत के ३२ उपवास
निष्ठापूर्वक सम्पन्न होने के उपलक्ष्य मे इस प्रसग के स्मरणार्थ

प.पू. मुनिश्री विशुध्दसागरजी के चरणों में कोटिशः नमोस्तु

विनयावत्

पूज्य माँ चदनश्री जैन

पुत्रवधु	पुत्र
सौ श्रीमति मोतीरानी जैन	श्री महेन्द्रकुमार जैन
सौ श्रीमति शोभा जैन	श्री सनतकुमार जैन
सौ श्रीमति सविता जैन	श्री अशोककुमार जैन
सौ श्रीमति अर्चना जैन	श्री अनिलकुमार जैन
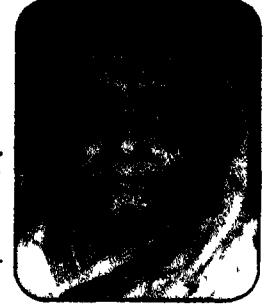
सहयोग राशी रू ४१,०००/-

प्रस्तावना

आचार्य भगवन्त कुन्दकुद के पश्चात् लगभग एक हजार वर्षो तक जैन अध्यात्म की धारा, अत्यत मन्द गति से प्रवाहित हो रही थी। यो इस काल मे समन्तभद्र, सिध्दसेन, पूज्यपाद, रविषेण, अकलकदेव, वीरसेन, जिनसेन, अमितगति जैसे अत्यत प्रभावशाली आचार्य भी हुये है, जिन्होने अपने अपने समय मे अनेक रचनाओ का सृजन करते हुये धर्म - प्रभावना भी की है। किन्तु इसके पश्चात भी काल दोष से क्रिया - काडो के मध्य अध्यात्म तत्व जन-जीवन से दूर होता गया। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ तो थे, पर उनके रहस्य को जाननेवाले नहीं थे। इस उद्देश्य की पूर्ति वीरशासन की पद्रहवी शताब्दि मे (ईसा की दसवीं शताब्दि) आचार्य अमृतचद्रसूरि जैसे समर्थ ज्ञानी, तत्वविद् आत्मानुभवी व्यक्तित्व के पदार्पण से हुई, जिन्होने आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय जैसे ग्रन्थो की टीका की। वस्तुस्थिती यह थी, कि यदि आचार्य अमृतचद्रसूरि ने उपरोक्त टीका ग्रन्थ नहीं लिखे होते तो जन- जीवन से अध्यात्म तत्व का लोप हो गया होता, और आचार्य कुन्दकुन्द रहस्य के घेरे मे ही रह जाते। इसी असाधारण योगदान के लिये उन्हे **कलिकाल गणधर** के रूप मे माना जाता है। अनेक मनीषियो ने तो यहा तक उपमा दे डाली है कि, ''ऐसा लगता है मानो कुन्दकुन्द ने ही अमृतचद्र के रूप मे पुर्नजन्म धारण किया हो।'' वस्तुत अध्यात्म का बीज बोया कुन्दकुन्द ने और उसे अकुरित किया, पुष्पित, और फलित किया आचार्य अमृतचद्र ने।

आचार्य अमृतचद्र का समय ईसा की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है। यह वह समय है जब सस्कृत भाषा का विकास अपनी चरम सीमा पर था। अध्यात्मरस से ओतप्रोत अमृतचद्र की रचनाए सस्कृत भाषा की बेजोड रचनाए है। यह एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसे किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं था। पुरुषार्थसिध्दियुपाय इस ग्रथ की रचना के अन्त मे वे कहते हैं कि ''तरह तरह के वर्णो के पद बन गये, पदो से वाक्य बन गये, और वाक्यो से यह पवित्र ग्रथ बन गया। मैने तो कुछ भी नहीं किया। वास्तव मे अमृतचद्रसूरि भगवान महावीर एव आचार्य कुन्द कुन्द के समर्पित अनुगामी थे। केवल इतना ही नहीं, प्राय सभी अध्यात्म ग्रथो के विशद एव गूढ रहस्यो का उद्घाटन करते हुये उन्होने कभी भी उनके कर्तृत्व का भार अपने ऊपर नहीं लिया। इसी कारण अमृतचद्रसूरि का जीवन परिचय, गुरु, निवासस्थल एव समय आदि का उल्लेख नहीं मिलता। प आशाधरजी ने अनगार धर्मामृत की टीका मे आपको ठक्कुर शब्द से सबोधित किया है। इससे शायद आप ठाकुर वश से सबधित रहे हो। इनकी कृतियो, परिस्थितिजन्य प्रमाणो एव विद्वानो के मतानुसार उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी अथवा सवत् ९६२ निश्चित होता है। जर्मन विद्वान डॉ विटरनिट्ज् ने पीटरसन रिपोर्ट के अनुसार पुरुषार्थसिध्दियुपाय इस कृति को विक्रम सवत् ९६१ (ई स ९०४) की रचना मानी है।

पुरुषार्थसिद्धियुपाय, यह सर्वाधिक पढी जानेवाली आचार्य अमृतचद्र की मौलिक रचना है। आजतक के सम्पूर्ण श्रावकाचार ग्रन्थो मे इसका स्थान सर्वोपरि है। विषय शैली एव प्रतिपादन तो अनूठा है ही,

भाषा एव काव्य सौष्ठव भी साहित्य की कसौटी पर अत्यत खरा उतरता है। अन्य किसी श्रावकाचार ग्रथ मे निश्चय व्यवहार, निमित्त- उपादान, हिसा - अहिसा का ऐसा गूढ विवेचन और अध्यात्म का ऐसा पुट देखने में नहीं आता। इसका अन्यनाम है **जिनप्रवचनरहस्य कोष**। सस्कृत भाषा के आर्या छद मे इसकी रचना हुई है। ग्रथ पाच भागो में विभक्त है। पद्य सख्या २२६ है। प्रत्येक भाग अधिकार कहाया है। जिनमें १) सम्यक्त्व विवेचन २) सम्यक्ज्ञान व्याख्या ३) सम्यक्चारित्र व्याख्या ४) सल्लेखना धर्म व्याख्या ५) सकल चारित्र व्याख्या। इन ५ अधिकारो के नाम से यह ग्रथ प्रतिपादित है।

वस्तुत सर्व सामान्य सासारिक प्राणि मनुष्य की जीवन धारा को मोड्ने की शक्ति यदि किसी मे है तो वह केवल जैन सतो मे ही है। अपनी अविरत तपस्या और समाजनिष्ठा से जिन महानुभाव सतो ने इस प्रकार के परिवर्तन को घडा है, उनमे एक हैं प पू १०८ आचार्य श्री विरागसागरजी, जिनका स्मरण किये बिना यह परिचर्चा अधूरी ही रहेगी। प पू विरागसागरजी के दर्शनो का सौभाग्य ललितपुर मे मुझे प्राप्त हुआ था। सात्विकता एव वात्सल्यता के चलते फिरते तीर्थ है आ श्री विरासागरजी, ऐसा कहने मे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी सघ मे दिनाक २१नवम्बर १९९१ को एक नूतन योगी पुरुष का जन्म हुआ। गुरु विरागसागर का मन आनद से भर उठा होगा, क्योकि गुरु के प्रति सर्वस्व अर्पण करनेवाला विनीत, चारित्र्यसपन्न, ऐसे शिष्य की उन्हे प्राप्ती जो हुई। स्वय के उध्दार के साथ प्राणिमात्र के प्रति समता भाव रखनेवाले, उनके परमकल्याण की आकाक्षा रखनेवाले शिष्य की उन्हे प्राप्ती हुयी।

इसी शिष्य को नाम मिला प पू १०८ मुनि श्री विशुध्दसागर। अपने पाडित्य के प्रदर्शन से दूर, जनसेवा के दिखावे एव रग-बिरगी नाटको से अतिदूर, ऐसा है यह व्यक्तित्व मुनि श्री विशुध्दसागरजी का। यो तो आज के इस आधुनिक युग मे हर विशिष्ट व्यक्ति मे यह चाह अवश्य देखी जाती है कि वह अपने को दूसरों से कुछ अलग दिखाये। किन्तु इस मानसिक अध पतन से भी सर्वथा दूर है यह व्यक्तित्व विशुध्दसागरजी का।

इन सबके अलावा प पू मुनिश्री का ज्ञान कोई किताबी ज्ञान नहीं है। आत्मानुभव एव मुनिजीवन के अभ्यास के फलस्वरूप स्फुरित ज्ञान है यह। इस ज्ञान मे उन फूलो की सुगध है जो अपना सौरभ प्रसारित करते है। इसमे कोई आग्रह नहीं, दुराग्रह नहीं, शब्दो मे है चेतना और ममता का स्पर्श और अतरात्मा से गूजता है अनाहत नाद जो प्राणिमात्र के जीवन मे अमृत का प्रवाह छोड देता है। इन शब्दो के स्पदन मे वह शक्ति है जो एक नीरस हृदय मे भी नृत्यागण के भाव उत्पन्न कर देते है।

अभी कुछ ही दिनो पूर्व की बात है। यहा अमरावती मे मुनिसघ का चातुर्मास सम्पन्न हो रहा था। प्रात· प्रवचन मे मुनि श्री की वाणी मुखरित हो रही थी। मुनिश्री कह रहे थे, ''एक क्षण, केवल एक दीप यदि प्रज्वलित किया, तो अतीत के अधकार का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। तुम्हारे हृदय मे कुदेव, कुगुरू, कुशास्त्र का जो अधकार छाया है, यही मिथ्यात्व का प्रसार है। इन सस्कारो ने पता नहीं कब से तुम्हे आच्छादित कर रखा है। आवश्यकता है तो केवल श्रध्दा का एक मगलदीप प्रज्वलित करने की, जो कि आपके जीवन मे प्रकाश रूपी सौदर्य बिखेर देगा। आपका शरीर, मन, धन, यदि इस स्वप्निल ससार के पीछे दौड़ रहा हो तो याद रखे यह ऐसा चक्राकार मार्ग है जिसका परिभ्रमण करते करते मनुष्य कहीं भी

पहुच नहीं सकेगा। आपको इसका ज्ञान नहीं, ऐसा भी नहीं, किन्तु जबतक सम्यक दर्शन, सम्यक् श्रध्दा की प्यास आपके मन में उठती नहीं, आत्मदर्शन का बोध होना भी सभव नहीं।'' यही वे शब्द है, जो अलौकिक है, अद्वितीय है, क्रातिकारी हैं। किन्तु इस क्राति के पीछे जो समर्पण भाव हैं वे हैं आचार्य गुरुवर विरागसागर के सानिध्य मे हुये साधुत्व के विकास के।

प्रस्तुत कृति **पुरुषार्थ देशना** आचार्य अमृतचद्र की रचना **पुरुषार्थसिध्दियुपाय** इस ग्रथ की विदिशा मे हुयी वाचना का सकलन है। वाक् कला का एक गुण यह भी है कि श्रोता का मन लगा रहे इस हेतु बीच-बीच मे वक्ता विषयान्तर करते हुये अपना वाक-प्रवाह शुरु रखता है। किन्तु मुनिश्री की यह विशेषता है कि अपने एक घटे के प्रवचन मे वे किचित मात्र भी विषायन्तर नहीं होने देते। फिर भी किचितमात्र भी श्रोता का ध्यान नहीं टूटता। ऐसे इस सकलन का श्रेय सघस्थ मुनि श्री विश्ववीर सागरजी को जाता है। मुनिश्री ने न केवल सकलन किया, बल्कि इस ग्रथ का सपादन, सयोजन भी उपलब्ध कराया। प्रत्यक्ष प्रवचनो को सुनकर जिन्होने अतीन्द्रीय आनद प्राप्त किया है, उसी आनद का प्रसार इस ग्रथ के माध्यम से सामान्य जन को प्राप्त हो यही इस ग्रथ निर्मिती का एकमात्र उद्देश्य है। सयोजन सकलन मे निश्चित ही अविश्रान्त परिश्रम लिया गया है। भाषा सौष्ठव ऐसा है मानो स्वय मुनिश्री की वाणी मुखरित हो रही हो। यही प्रयास अन्यत्र सभव नहीं हो सकता क्योकि ऐसा अपूर्व सयोग, जहा एक गुरु की वाणी को गुरु ने ही प्रतिपादन किया हो, मानो तीर्थकरो की वाणी गणधरो द्वारा प्रतिपादित हुई हो।

आधुनिक युग मे मुद्रण सुविधा को देखते हुये प्राचीन जैन साहित्य मे आचार्यो की विभिन्न रचनाओ के अनेक सस्करण प्रकाशित हुये है व होते जा रहै है। यदि यह मान ले कि पाठको के लिये केवल एक अनुवाद या टीका भर की आवश्यकता है, तो फिर इस पुस्तक का कोई औचित्य नहीं बनता। वस्तुत किसी विवचन को अपना औचित्य सिध्द करने हेतु इतना स्पष्ट होना चाहिये जितना उसकी विषयवस्तु उसे स्पष्ट होने दे सके। विवेचन सुपाठ्य तो होना ही चाहिये साथ ही वह उथला ना हो। वह आधुनिक तो हो किन्तु सहृदयता से शून्य न हो। प्रस्तुत पुस्तक मे मुनिश्री ने मूल लेखक आ अमृतचद्र के विचारो को ज्यो का त्यो प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, ताकि पाठक भावो की समाधी तक पहुच सके यही इस पुस्तक का सफल प्रयास है। आशा है, विश्वास भी है, आपके मन एव मस्तिष्क को प्रभावित करने मे सफल होगा यह सकलन।

सुभाष कपूरचंद जैन

मुधोळकर पेठ, अमरावती ४४४ ६०१ (महाराष्ट्र)

सुमनांजलि एवं आभार

प पू १०८ मुनिश्री विशुध्दसागरजी को भावसुमनाजलि अर्पित करना मानो इन्द्रधनुष के रगो को पकड़ना है। प्रज्ञा एव आविष्कार के आप जनक हैं। चातुर्मास निमित्त उनका सानिध्य पाना यह एक ऐतिहासिक प्रसग ही है हम अमरावतीवासियो के लिये। पूर्व मे इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय विदिशावासियों के खाते मे लिखा जा रहा था, किन्तु आज से कोई पचास वर्ष पहले जैन दर्शन के महान आदि ग्रथ षटखडागम का प्रकाशन यद्यपि अमरावती से हुआ था पर उसका सारा श्रेय मिला था श्रीमत सेठ लक्ष्मीचद सिताबराय साहित्योध्दारक फड, विदिशा को। सो विदिशावासियो के इस उपकार से मुक्त होने का अनायास ही श्रेय अमरावतीवासियो को प्राप्त हुआ और इस ऋणानुबध के फलस्वरूप ही इस पुरुषार्थ देशना के प्रकाशन का सुअवसर हमे मिला।

प्राचीन एव अर्वाचीन जैन साहित्य के विकास मे कटिबध्द यह सस्था अन्य साहित्योध्दारक सस्था की भाति अमरावती मे कार्यरत है। प पू १०८ आ श्री विद्यासागरजी की प्रेरणा एव आशीर्वाद इसे प्राप्त है। वस्तुत मुनिश्री विशुध्दसागरजी की यह पुरुषार्थ देशना, पुरुषार्थ सिध्दियुपाय की एक एक कारिका पर एक एक प्रवचन को सकलित कर प्रवचनाश के रूप मे सकलित किया गया है। निष्काम कर्मयोगी एक जैनाचार्य की अमरकृती को, एक कर्मयोगी विद्वान मुनि द्वारा स्वानुभूति से विवेचन करना, इस देशना का सबसे महत्वपूर्ण बिदू है, जो धर्म क्षेत्र मे समाज को मिलनेवाली पवित्र एव अविछिन्न धारा का निर्मल प्रवाह है। इसकी एक अजुली भी यदि हम अपने माथे पर ले सके, तो हम धन्य हो सकते हैं, ऐसी यह अगाध ज्ञान सरिता है। अस्तु सर्व प्रथम आभारी है हम मुनिश्री विशुध्दसागरजी के जिनकी पावन देशना ने इस अक्षरातीत कृति को अक्षर रूप प्रदान कर साकार किया है।

आभारी हैं वयोवृध्द तपोमूर्ति मुनिश्री विश्ववीर सागरजी के जिन्होने इस देशना को अक्षर रूप प्रदान किया। निश्चित ही यह एक अत्यत कष्टसाध्य कार्य था, क्योकि किसी देशना को ग्रहण करना केवल गणधराचार्यों को ही सभव है। विदिशा निवासी प श्री विद्यानदजी ने भी इस कार्य मे आपको सहयोग किया है। अस्तु दोनो ही महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं एव हम आपके आभारी है।

इस ग्रथ के मुखपृष्ठ की साजसज्जा को मेरी कल्पना के अनुरूप भाव प्रदान करना यह एक अत्यत कुशल कलाकार ही कर सकता था। मेरे सहयोगी मित्र श्री शुक्लाजी ने इस दायित्व को अत्यत कुशलतापूर्वक निभाया और इस ग्रथ के सौदर्य मे चार चाद लगाकर मेरा और अपना गौरव बढाया है। हम उनके आभारी है।

विदिशा निवासी श्री सुनीलजी मोदी के हम आभारी है जिन्होने अपनी सस्था विवेकानन्द कम्प्यूटर के माध्यम से इस ग्रथ की छपाई की प्रक्रीया के शुभारभ को सभव किया। आपकी सेवा भावना एव मुनिभक्ति ने यह कार्य सभव किया है हम आपके आभारी है।

श्री सदीपकुमार फुकटे (जैन) एव सौ विजया सदीप फुकटे एक उत्साही नवदम्पत्ति है। इस ग्रथ के प्रूफ करेक्शन, पेज सेटींग आदि का कार्य वास्तविक रूप मे एक कठीन कार्य था। सॉफ्टवेअर की भिन्नता ने इसे और कठीन कर दिया था। फिर भी लगातार ३ माह तक परिश्रम लेकर चार-चार बार

प्रूफ निकालकर भी इस युवक ने अपने माथे पर शिकन नहीं आने दी। इस पुस्तक को सही अर्थ मे एक सही ग्रथ का आकार देने के लिये हम इस नव दम्पति के भी आभारी है।

आभारी है हम, श्री राजेशभाई मोरयानी, अमर आफसेट प्रिन्टर्स के जिन्होने इस ग्रथ को मूर्त रूप प्रदान किया है। यह रूप कैसा है ? सो ग्रथ आपके हाथो मे है ही।

अत मे उन सभी उदारमना दातारो के भी हम आभारी है, जिन्होने जिनवाणी के प्रसार के महत्व को जानकर अपना अमूल्य योगदान दिया, जिससे यह एक महान कार्य निर्विघ्न एव आसानी से सम्पन्न हो सका। सभी आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवालो के नाम इसी ग्रथ मे अन्यत्र दिये है।

सभी ज्ञात अज्ञात एव जिनवाणी मे रूचि रखनेवाले सुधी पाठको को एव इस ग्रथ के मुद्रण प्रकाशन कार्य मे सहयोगियो के हम आभारी है।

भवदीय

सुभाष कपूरचदजी जैन

विद्यासागर विचार मच, अमरावती

ग्रथ प्रकाशन सहयोगी
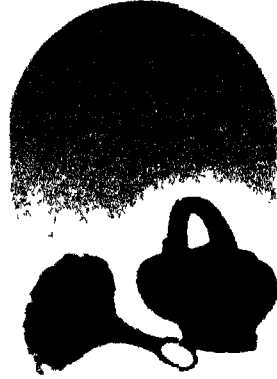
डॉ श्रीमति सुधाताई साखरे (रू ११००), सौ मंजुषा राजेश गुलालकरी (रू ११००),
श्री राजेन्द्र माधव महाजन (रू ११००), सौ. श्रीमति आशा शरद वारकरी (रू १००१),
एक श्रावक वज्रपुरवाले (रू ५०१), गुप्तदान सहयोगी (रू ५०१, रू १०१)

मंगलाचरण

ओकार बिन्दुसयुक्त, नित्य ध्यायन्ति योगिन ।

कामद मोक्षद चैव, ओकाराय नमो नम· ॥१॥

अविरल -शब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकलभूतल-कलङ्का।

मुनिभि - रूपासित - तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥

अज्ञान-तिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जन - शलाकया

चक्षुरून्मीलित येन, तस्मै श्रीगुरवे नम· ॥२॥

श्री परमगुरवे नम , परम्पराचार्यगुरवे नम । सकलकलुष विध्वसक, श्रेयसा परिवर्धक, धर्मसम्बन्धक भव्य-जीवमन प्रतिबोध-कारकमिद शास्त्र श्री पुरुषार्थसिद्धियुपाय नामधेय, अस्य मूलग्रन्थकर्तार· श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर - ग्रन्थकर्तार श्रीगणधर-देवा , प्रति गणधरदेवास्तेषा वचोऽनुसारमासाध्य श्री अमृतचद्राचार्येण विरचित, तस्य भाषा टीका मुनि श्री विशुद्धसागरेण विरचित एष पुरुषार्थ देशना नाम ग्रथ

मगल भगवान वीरो, मगल गौतमो गणी।

मगल कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ॥

सर्व मङ्गल्य-माङ्गल्य सर्वकल्याणकारकम्।

प्रधान सर्वधर्माणा जैन जयतु शासनम् ॥

मुनि विशुध्दसागर

"मंगलाचरण"

तज्जयति पर ज्योति सम समस्तैरनन्तपर्यायै ।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ।। १ ।।

अन्वयार्थ यत्र =जिसमे। दर्पणतल इव =दर्पण के सतह की तरह। सकला पदाथ मालिका = समस्त पदार्थों का समूह। समस्तैरनन्तपर्यायै सम = अतीत, अनागत और वर्तमान काल की समस्त अनन्त पर्यायो सहित। प्रतिफलति =प्रतिभाषित होता है। तत् = वह। पर ज्योति जयति = सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतना रूप प्रकाश जयवन्त हो।

|| पुरुषार्थ देशना || १ ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं, आज पावन सुकाल है, मगलभूत है जिस मगलमय काल मे अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन–पीयूष वाणी आज 'वीरशासन जयति के दिन खिरी थी। अनेक जीव दृष्टि को लगाये बैठे हुये थे, हे प्रभु! आपका रूप तो उपदेश दे रहा है, परतु मैं चाहता हूँ रूप का उपदेश तो ऑखो ने सुना है, पर कर्ण प्यासे हैं। एक–दो दिन नहीं, पैंसठ दिन निकल चुके तदन्तर योग्य पात्र को देखते ही ओकारमयी स्वर से वाणी खिरने लगी। "जिसमे सात तत्व, नौ पदार्थ, पचास्तिकाय, छह द्रव्यो का कथन किया गया। अनेकान्त–स्याद्वादमयी वह जिनेन्द्र–वाणी आज के दिन ही खिरी र्थ अतएव आज से महावीर

स्वामी का शासन प्रारभ हो गया। यह नियम है कि तीर्थंकर का शासन तीर्थंकर के जन्म से नहीं वरन् तीर्थंकर प्रकृति के उदय से प्रारभ होता है"और तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवे गुणस्थान मे होता है, जहाँ केवलज्ञान सूर्य उदित होता है। मिथ्यात्व का अधकार नष्ट कर कैवल्य की जाज्वल्यमान किरणे उदित हुई। केवली भगवान के कैवल्य को होते ही देव निहारने लगे। एक जगह ऐसा भी उल्लेख है कि इन्द्रभूति बहुत बडा यज्ञ कर रहा था। वह अपने शिष्यो से बोला– यह याज्ञिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। आकाश की ओर निहारो कि मेरी आहूति से प्रसन्न होकर देवता आ रहे हैं, परतु देखते–देखते सपूर्ण देव आगे बढ गये, तो इन्द्रभूति सोचने लगा क्या मेरे सिवाय और भी कही कोई यज्ञ हो रहा है? हे शिष्यो! आप मालूम करो कि किसका यज्ञ चल रहा है? एक शिष्य कहने लगा, हे स्वामी! नाथपुत्र का यज्ञ भी चल रहा है, वर्द्धमान को कैवल्य की प्राप्ति हुई है, उस कैवल्य की पूजा करने के लिए ही यह देवता वहाँ जा रहे हैं।

भो चेतन! विश्व मे दु खी व्यक्ति बहुत हैं, उनमे अनेक के दु ख का कारण है हीनभावना, जो वर्तमान का सुख नही भोगने दे रही है। भो ज्ञानी! जहॉ हीनभावना प्रारभ हो जाये वहॉ वर्तमान का सुख समाप्त हो जाता है, क्योकि उसने भविष्य निहारा नही है और भूत भूत हो चुका है वर्तमान को हीनभावना मे व्यतीत कर रहा है इस प्रकार उसने अपने तीनो काल नष्ट कर दिये। अहो! भविष्य तुम्हारे सामने है कि जैसा वर्तमान का परिणमन होगा वैसा भविष्य बनेगा। भूत तेरा मर चुका है, भूत के बारे मे सोच करके क्या तुम भविष्य को निर्मल कर सकोगे ? हीनभावना से भरे इन्द्रभूति के सामने एक शिष्य ने दौडते हुए आकर कहा–गुरुदेव ! वहॉ तो मनुष्यो एव तिर्यंचो की पक्तियॉ लगी हुई हैं और यहाँ तक कि बदर, भालू, सिह, नेवला तथा सर्प भी एक साथ विचरण कर रहे हैं। तब वह देखने पहुँचते हैं तो देखते ही दग रह गये परन्तु मन मे अह और हीनभाव एक साथ चल रहे हैं।

भो ज्ञानी! यह प्रभु वर्द्धमान का नही, यह वर्द्धमान की कैवल्य–ज्योति का प्रभाव था। श्वेताम्बर आगम ग्रथो मे उल्लेख आया है कि तीर्थंकर महावीर स्वामी पर लोगो ने अनेक प्रकार के उपसर्ग किये, परतु दिगम्बर आम्नाय मे ऐसा उल्लेख नहीं है। सिद्धात यह कहता है कि तीर्थंकर पर उपसर्ग नही होते किन्तु हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से अनहोनी घटनाएँ घट गई कि तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ और अतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी पर उपसर्ग हुआ। तीर्थंकर की कन्याये नहीं होती, लेकिन प्रथम तीर्थंकर की पुत्रियॉ हुई। चक्रवर्ती का मान भग नहीं होता, परतु प्रथम चक्रेश का मान भग हो गया। तीर्थंकर का जन्म अयोध्या में ही होता है और निर्वाण सम्मेद शिखर मे होता है यही दो शाश्वत भूमियॉ हैं। प्रलय काल में भी यहा पर वज्र स्वस्तिक का चिन्ह रहता है। अयोध्या जन्मभूमि है, सम्मेद शिखर निर्वाण भूमि है। प्रत्येक भरतक्षेत्र मे एक–एक अयोध्या और एक–एक

सम्मेद शिखर होता है। पाँच भरत क्षेत्र हैं, पाँचो मे अयोध्या और सम्मेद शिखर हैं। परन्तु हुण्डावसर्पिणीकाल के प्रभाव से ऐसी अनहोनी घटना हुई कि कुछ तीर्थंकरो का जन्म अन्य नगरी मे हुआ और निर्वाण भी अन्य क्षेत्रो मे हुआ। प्रथम तीर्थेश का निर्वाण कैलाश पर्वत पर हुआ।

भो ज्ञानियो! हुण्डावसर्पिणी के बहाने ऐसी अनहोनी घटना मत घटा देना कि पचम काल मे भी तीर्थंकर होते है, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। तीर्थंकर किसी के कहने से नहीं बनेगे और जो बन चुके हैं वह किसी के कहने पर मिटेगे नही, परतु ध्यान रखना जिनवाणी के अपमान से दर्शन मोहनीय कर्म का बध करके सत्तर कोडाकोडी स्थिति बाध कर ससार मे जरूर भटक जाओगे। इसलिए जिसे ससार से भय है, वही मुमुक्षु है। अहो! अग्नि एक पर्याय को जलायेगी, परतु परिणामो का विपरीत परिणमन अनत पर्यायो को नष्ट करेगा। इसलिए हुण्डावसर्पिणीकाल कहकर के आप स्वेच्छाचारी मत बन जाना इस काल मे जो होना था सब आगम मे आ चुका है।

भो ज्ञानी! तीर्थंकर की देशना है कि पचम काल मे धर्म–धर्मात्मा भी आपस मे मिलकर नहीं रह सकेगे। कषायो और अहकारो के पोषण में गुट बनाकर यश प्राप्त करेगे, परन्तु सिद्धात है कि वह भी यश कीर्ति से ही मिलेगा अन्यथा गुट क्या तुम महागुट बना लेना, भैया! कुछ नहीं होगा। तत्त्व तो वही है जो जिनदेव ने कहा और उसे ही तत्त्व समझो। अहो! जिनवाणी स्याद्वाद वाणी है, अनेक समीचीन नयो को लेकर, अनेकान्त का गुलदस्ता बनाकर भगवान महावीर स्वामी ने हमे पकडा दिया है। अदर आप कैसे प्रवेश करेगे ? आप पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रथ मे झाककर देखना– यह स्याद्वाद, अनेकान्त अध्यात्म, चरणानुयोग का बगीचा है।

जिनवाणी माता कह रही है कि तुम मेरी भाषा तो समझो हम तुमको भगाना नही, बुलाना चाहते हैं। तूने ससार की माताओ के आँचल का दुग्धपान तो अनेक बार किया है एक बार मेरे आँचल का पान कर ले, तेरी माँ ने तो केवल दो आँचल पिलाये हैं, पर बेटा! मेरे आँचल चार हैं और यह चार अनुयोग हैं। जो यही कह रहे हैं कि अपने प्रभु को सँभालो। आज वीर शासन जयति है, वीर प्रभु की प्रवचन सभा का नाम था समवशरण। जहाँ पर प्राणी मात्र के लिए समान शरण प्राप्त हो वह समवशरण कहलाता है। जिस सभा में यह भेद नहीं कि चक्रवर्ती है कि तिर्यंच है। अहो! कैसी वे पुण्य वर्गणाएँ होगी प्रभु परमेश्वर की कि एक ही घाट पर सिहनी और गाय पानी पी रहे हैं। गाय का बछडा सिहनी के आँचल का पान कर रहा हो और सिहनी का बच्चा गाय के आँचल का पान कर रहा हो। यह थी वीर जिनेश्वर के समवशरण की महिमा। इसलिए जिनके शासन मे आप विराजे हो उनके शासन की याद भर कर लिया करो, प्रभु! आपके शासन की यह महिमा थी कि जन्मजात विरोधी जीव भी अपने बैर–विरोध को छोडकर पहुँच गये थे और सभी परमेश्वर को एकटक निहार रहे थे। हे प्रभु! आपकी देशना मे क्या खिरने वाला है? उसी समय गौतम स्वामी

ने वर्द्धमान तीर्थंकर के समवशरण मे पहुँच कर नमन किया। अहो! गौतम स्वामी का पुण्य भी कम नहीं था कि जिनके बिना तीर्थेश की वाणी नहीं खिरी थी।

भो ज्ञानी! सुनना तो सभी चाहते हैं, परतु प्रश्न करने की क्षमता सबके अदर नहीं होती, साठ हजार प्रश्न किये थे राजा श्रेणिक ने। उन्होने साठ हजार प्रश्न करके अपना कल्याण नहीं किया वरन् हम सभी का भी कल्याण किया है। कभी–कभी प्रश्नकर्ता के प्रश्नो से पता नहीं कितने लोगो की गुत्थियॉ सुलझ जाती हैं। अहो! कितने जीवो की 'शका' नाम के अतिचार को राजा श्रेणिक ने नष्ट कर दिया। वह पूछता है, हे प्रभु! वह यति धर्म, श्रावक धर्म और सर्वांग अनेकात वस्तु क्या है? धर्म का स्वरूप क्या है? और प्रभु! लोक में नमन करूँ तो किसे करूँ? प्रभु! ऐसी युक्ति बताओ कि चौबीसो की वदना हो जाये, साथ मे अनन्तानन्त सिद्धो की भी वदना हो जाये। अहो! यह भूमिका अमृतचद्र स्वामी पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय मे निभा रहे हैं, नमस्कार कर रहे पर किसी का नाम नहीं ले रहे हैं, क्योकि विवाद नमन मे नही है, नाम मे है। अत इस मगलाचरण मे अनेकान्त को प्रकट कर दिया–' वदे तद्गुण लब्धये'' यह गुणो को ही नमन हैं, क्योकि 'गुणी, गुण' के बिना नहीं होता और गुण गुणी' के बिना नहीं।

भो चेतन! यह श्रमण सस्कृति है, वदना करने जा रहे, बध करने नहीं। ऐसी वदना आज से तुम बद कर दो, जिसमे बध होता हो। अत तुम झुकना सीखो, मदिर मे जाना चाहते हो तो छोटे बनकर प्रवेश करो, झुक जाओ। ध्यान रखना, जब तक यह जिनालय रहेगे तब तक जिन शासन जयवत रहेगा। जिनालय की स्थापना का उद्देश्य ही होता है कि जिन शासन जयवत हो। धर्म आयतन नहीं होगे तो धर्मात्मा भी नहीं होगे, तो फिर धर्म किस बात का? अहो! धर्म आयतन और धर्मात्मा की रक्षा से ही धर्म की रक्षा है। अत गुणो को नमस्कार कर लो तो गुणी की वदना सहज हो जायेगी।

भो-ज्ञानी! तत्ज्योति जयवत हो परम ज्योति जयवत हो। वह केवलज्ञान ज्योति जैसे अर्हंत वर्द्धमान स्वामी की है वैसे ही आदिनाथ स्वामी की है। जैसे आदिनाथ स्वामी की है वैसे ही अनतानत सिद्ध भगवन्तो की है। इसलिए कद को मत देखना, कद को देखोगे तो तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी की अवगाहना पॉच सौ धनुष की, उनके पुत्र बाहुबली स्वामी की सवा पाँच सौ धनुष की और भगवान महावीर स्वामी की सात हाथ की है और साढे तीन हाथ के भी केवली भगवान होते हैं। साढे तीन हाथ की जघन्य अवगाहना अर्हंत भगवान की भी होती है। अहो! तुमने प्रतिमा की अवगाहना देखकर प्रभु के गुणो मे लघुता–प्रभुता का भेद कर लिया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हाथ से साढे तीन हाथ का है, परतु ध्यान रखना जो सर्वार्थसिद्धि का देव होता है, उसका मूल शरीर मात्र एक अर्तनी प्रमाण होता है। विक्रिया से वह उसे बहुत विशाल बना सकते हैं।

भो ज्ञानी! अब सोचो विक्रिया धारी जीव की गति, शरीर, अवगाहन आदि—इसमे ऊपर—ऊपर जाति के देव हीन होते हैं। जितना श्रेष्ठ व्यक्ति होगा, उसको अभिमान कम होगा और जो जितना हीन व्यक्ति होगा, उसको उतना ही अभिमान ज्यादा होगा। सोचो, भूत—व्यतर आदि सामान्य देव घूमते हैं, परतु उच्च जाति के देव इधर—उधर नहीं घूमते, अपने स्वर्गों मे ही रहते हैं और न तो एक देव, दूसरे देव को आज्ञा देते हैं न किसी की आज्ञा का पालन करते हैं, जैसे आपकी रसना इद्रिय घ्राण से कहे मैं थक गयी हूँ, तुम मेरा काम कर देना तो कह देगी—सुनो, मैं स्वतत्र हूँ , मैं अपना काम करूगी तुम अपना काम करो। अर्थात् एक इद्रिय दूसरी इद्रिय का कार्य नही करती है, ऐसे ही स्वर्गों मे एक अहिमेन्द्र दूसरे अहिमेन्द्र का कार्य नहीं करता। आज्ञा भी नही पालता और आज्ञा भी नही देता। अहो! सबसे ज्यादा दुख आज्ञा पालन मे हैं। कभी—कभी सम्राट से ज्यादा वैभव सेठ के पास होता है परतु सेठ को अपनी सीमा मे रहना पडेगा और सम्राट अपने देश पर आदेश चला रहा है। भो ज्ञानी! तेरे शरीर मे इद्रियो के बीच मन सम्राट बैठा है, जो आज्ञा दे रहा है वह स्वामी है इद्रियो का, परतु ध्यान रखना, प्रजा एक मत हो जाए तो सम्राट को झुकना पडता है। यदि इद्रियाँ कह दे कि अब असयम का सेवन नहीं चलेगा तो मन को भी शात बैठना पडता है।

भो ज्ञानी! वास्तव मे स्वामी तो स्वय चेतन्य द्रव्य है परन्तु विपरीत आचरण के कारण, अनादि से मोह की दशा मे लिप्त है। आत्मा की परिणति से ही मन एव इद्रिया काम कर रही हैं। अत इन्द्रियो को दोष मत देना मन को दोष मत देना। दोष देना है तो इस अशुद्ध चेतना को देना। यदि यह अशुद्ध चेतना निर्मल हो जाए तो इद्रिया तो अर्हन्त की भी होती हैं पर उन्होने मोहनीय कर्म को जीत लिया है। इसलिए मन सम्राट को पकड लो, सेना को मत मारो अब इद्रियो को कुचलने की कोई आवश्यकता नहीं है। अहो! आत्मा की सिद्धि का जिसमे उपाय लिखा हो वह है पुरुषार्थ सिद्धिउपाय। जैसी—जैसी पर्याये हो रही है, होनी है और हो चुकी है वह सब केवली के ज्ञान मे झलक रहे हैं। तीनो लोक केवली के ज्ञान मे झलकते है, जैसे दर्पण के सामने पदार्थ झलकते है, प्रतिबिम्ब झलकता है फिर भी ध्यान रखना ये दर्पण मे झलक रहे हैं। पर तुम्हारे मति श्रुत ज्ञान अपने दर्पण मे नहीं झलक रहे हैं, वर्ना यह अज्ञानी अपने ज्ञान मे केवली के ज्ञान को झलकाने लग जाये।

भो ज्ञानी! गुण की प्रधानता से कथन चल रहा है। पद्रह श्लोक पर्यन्त आप लोगो को बहुत एकाग्र चित्त होकर सुनना है। वर्तमान मे श्रमण सस्कृति मे जितने विसवाद खडे हो रहे है, वह सारे के सारे विसवादो की चर्चा इन पद्रह श्लोको मे होगी, बडी सरल दृष्टि से होगी, क्योकि एक हजार वर्ष तक, आचार्य कुदकुद स्वामी के साहित्य पर किसी ने कलम नही चलाई। ये अमृतचद्र स्वामी

प्रथम आचार्य हैं, जिन्होने आचार्य कुदकुद स्वामी को समझा और हमे समझाया है। अहो! जितने सहज कुदकुद स्वामी के सूत्र हैं, उतनी ही गहरी है अमृतचद्र स्वामी की टीका। जैनदर्शन मे प्रगाढ और प्रौढ भाषा यदि किसी की है तो मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी की है। जयसेन स्वामी की भी आप सबके ऊपर अनत कृपा है कि उन्होने 'समयसार' को ऐसा बना दिया जैसे हम कथानक वाचना कर रहे हों, एक–एक गाथा को, एक–एक नय को, स्पष्ट कथन कर दिया।

भो ज्ञानी! आज मनुष्य को ज्ञान का अजीर्ण हो रहा है। 'धवला' पुस्तक नौ मे लिखा है–अविनय पूर्वक श्रुत का अभ्यास किया और कालाचार आदि का ध्यान नहीं रखा, तो ध्यान रखो आपकी दुर्गति निश्चित है। विद्वान रोगी देखा जा रहा है, घर मे क्लेश देखा जा रहा है, परस्पर मे विसवाद देखे जा रहे हैं। कुछ रहस्य न होता तो हमारे आचार्य भगवन्त लिखते क्यो ? रात्रि के काल मे 'षट्खण्डागम' जैसे ग्रथो के स्वाध्याय का पूर्ण निषेध है। चार्तुमास मे जब बादल गरज रहे हो, बिजली तडक रही हो पानी बरस रहा हो तो सिद्धात/सूत्र ग्रथो का अध्ययन नही किया जा सकता है यदि इनका अष्टमी–चतुर्दशी की तिथियो मे अध्ययन करे तो असमाधि होती है, क्योकि यह पर्व के दिन हैं इन दिनो मे आपको बडा उत्साह रहता हो, उत्साह मे एकाग्रता भग हो जाती है। इसी तरह दिग्दाह हो रहा हो, ओले गिर रहे हैं, उस समय परिणाम विच्छेद रहते है, अत ऐसे काल मे सिद्धान्त ग्रन्थ का स्वाध्याय कर अनर्थ कर डालोगे। हम लड्डु खाकर आये हैं, पूडी–पापड खाकर आये हैं, ऐसी स्थिति मे इनका स्वाध्याय नही करना, क्योकि प्रमाद बढेगा, प्रमाद बढेगा तो तन्द्रा आयेगी और आप अर्थ का अनर्थ लगा देगे। अत कालाचार का स्वाध्याय मे अवश्य ध्यान रखना चाहिये।
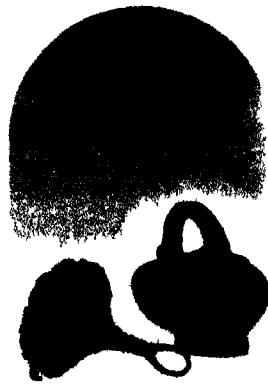
"स्याद्वाद को नमस्कार"

परमागमस्य जीव निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसिताना विरोधमथन नमाम्यनेकान्तम्।। २।।

अन्वयार्थ. निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् = जन्मान्ध पुरुषो के हस्ति–विधान का निषेध करने वाले। सकलनयविलसिताना = समस्त नयो से प्रकाशित वस्तु स्वभावो के। विरोधमथन = विरोधो को दूर करने वाले। परमागमस्य=उत्कृष्ट जैन सिद्धात के। जीव = जीव। भूत, अनेकान्तम् = एक–पक्ष–रहित स्याद्वाद को। अहम् नमामि = मैं (अमृतचन्द्र सूरि) नमस्कार करता हूँ।

|| पुरुषार्थ देशना || २||

भव्य बधुओं! अतिम तीर्थेश वर्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी के माध्यम से जिनदेव की परम समरसी भावयुक्त पीयूषवाणी का पान कर रहे है। अहो ! कैसा मधुर अमृत है, जिसे महिनो से कर्णान्जुलि से पी रहे हैं फिर भी तृप्ति नही हुई। प्रतिदिन–प्रतिक्षण,नवीन–नवीन अवेदन हो रहा है अनत ससार की वेदना शात हो रही है। यही तो जिन–देव की वाणी का प्रभाव है।

प्रथम श्लोक मे मगलाचरण करते हुए परमज्योति की वदना की है, जिसमे लोकालोक के चराचर पदार्थ प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, दर्पण के सदृश सम्पूर्ण ज्ञेयो का बिम्ब झलक रहा है, फिर भी प्रभु निश्यचयनय से पर' के ज्ञाता नहीं, स्वज्ञातत्व भाव से युक्त हैं। अत निश्चयनय से अरहत देव आत्मज्ञ हैं, व्यवहारनय से सर्वज्ञ हैं। पर ध्यान रखना–यह नय–विवक्षा समझना, परतु सर्वज्ञता पर कोई प्रश्न–चिन्ह खडा नही कर देना। नियमसार जी मे आचार्य कुदकुद स्वामी ने भी शुद्धोपयोग अधिकार मे कहा है –

जाणदि पस्सदि सव्व ववहारणएण केवली भगव।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाण।। १५९।। नि सा ।।

अर्थात् व्यवहार–नय से केवली भगवान सबकुछ जानते और देखते हैं। निश्चयनय से केवलज्ञानी आत्मा को जानते और देखते हैं। यह चेतन की परमशक्ति है जो कि विश्व के समस्त ज्ञेयो/प्रमेयो को निज का विषय किये है। यह परमज्योति अरहत–सिद्ध परमात्मा मे हुआ करती है। जहाँ गुण का कथन होता है, वहाँ गुणी का कथन स्वमेव हो जाता है। इस कारण से समझना कि जहाँ पर परम–ज्योति यानि कि केवलज्ञान की वदना की गई है, वहाँ पर गुणी अरहत–सिद्ध

परमेश्वर की वदना स्वत हो जाती है।

भो ज्ञानी! द्वितीय श्लोक मे आचार्यदेव परमागम की वदना कर रहे हैं। ज्ञानीजन उपकारी के उपकार का कभी विस्मरण नहीं किया करते। अहो ! कृतज्ञता गुण महान है। जैसे भिखारी के पास अमूल्य रत्न दुर्लभ होते हैं, ऐसे ही ज्ञानीजनो मे नानागुणो के होने पर भी एक कृतज्ञता गुण अतिदुर्लभ होता है। आगम ग्रथो मे स्पष्ट लिखा है कि जब भी ग्रथ का प्रारभ करे, सर्वप्रथम मगलाचरण करना चाहिए। नास्तिकता का परिहार, शिष्टाचार का पालन, पुण्य की प्राप्ति, निर्विघ्न कार्य की समाप्ति के निमित्त विज्ञपुरुष किसी भी श्रेष्ठ कार्य के प्रारभ मे मगलोत्तम शरणभूत मगलाचरण ही करते हैं। तद् परपरा का ध्यान रखते हुए आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने मगलाचरण किया। इस द्वितीय श्लोक मे इष्टागम को नमस्कार कर रहे हैं, जो कि स्याद्वाद–शैली से युक्त है। अनेकात/स्याद्वाद जैनदर्शन का प्राण है। अहो! विश्व के विवादो का विनाश तभी सभव है, जब स्याद्वाद का सूत्र अत करण मे घोष करेगा। वाणी मे स्याद्वाद, दृष्टि मे अनेकात, चर्या मे अहिसा ये तीन श्रमण सस्कृति के मूल सिद्धात हैं। विश्व मे कालदोष के कारण नाना मिथ्या–एकात मतो का उद्भव हुआ, जो कि मात्र ससार–दृष्टि का हेतु, भोले प्राणियो को ससार के गर्त मे डालना मात्र जिसका परिणाम होगा।

अहो ज्ञानी! कर्म की विचित्रता तो देखो, जिस जीव ने कषाय के वेग से तीर्थेश आदिनाथ स्वामी के समवशरण मे देशना का पान निर्मल भाव मे नहीं किया। अह भाव मे आकर धर्मसभा छोडकर, तीन सौ त्रेसठ मिथ्या मतो का सृजन कर अपनी आत्मा को दीर्घ–ससारी बना लिया। क्या कोई कहेगा प्रभु! इन मिथ्या पथो के जनक वर्धमान महावीर तीर्थकर होगे ? मारीचि की पर्याय मे जिन पथो को बनाया था, वर्धमान महावीर स्वामी बन कर भी उनको समाप्त नही कर सके। अहो क्या कहे ? काल का दोष या फिर मारीचि की पर्याय का रोष? कुछ भी हो–जीवन मे कभी ऐसी भूल मत कर जाना जिसे भगवान बनकर भी समाप्त नहीं कर सको। भगवान महावीर स्वामी के चरणो मे प्रार्थना कर लेना कि भगवान! आप तो ससार से तिर गये, परतु मिथ्या मतो का उपदेश समाप्त नही हुआ। ध्यान रखना, भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी समझ मे नही आये तो कोई बात नही, परतु जो मिथ्या–धारणा सामान्य–जनो मे आपके उपदेश से बनेगी, उसका हेतु आप होगे। साथ ही अनत जीवो को मोक्षमार्ग से च्युत कराने के हेतु भी होगे। अत ध्यान रखना, स्वय की ख्याति के पीछे परमागम के मार्ग को, नमोस्तु शासन को विकृत नहीं कर देना।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी द्वितीय मगलकारिका मे ऐसी पीयूष वाणी की वदना कर रहे हैं जो विरोध का मथन करनेवाली है, सम्पूर्ण नयो से सुशोभित है, परमागम यानि उत्कृष्ट जैन सिद्धात के मूलभूत 'ऐसे अनेकात, एक–पक्ष रहित स्याद्वाद को मैं ग्रथकर्त्ता अमृतचन्द्र स्वामी

नमस्कार करता हूँ।' वह स्याद्वाद वाणी मिथ्या–एकात का विरोध कैसे करती है? इस बात को आचार्यश्री दृष्टांत के द्वारा समझा रहे हैं। जैसे जन्म के अन्धे पुरुष हाथी के पृथक्–पृथक् अवयवो का स्पर्श करके, उनसे हाथी का आकार निश्चय करने मे विवाद करते हैं, क्योंकि वे हाथी के एक–एक अग को अपने–अपने हाथों के द्वारा स्पर्श करके जान रहे थे। जिस जन्माध ने जो अग देखा उसे ही वह हाथी मान रहा था। जितने अगो का स्पर्श किया, उतने प्रकार से उन्होने हाथी की कल्पना की तथा एक दूसरे के प्रति द्वेष–भाव भी प्रकट करने लगे, क्योंकि प्रत्येक अधा अपने द्वारा स्पर्शित अग को हाथी बोल रहा था। देखना अज्ञानता का परिणाम, एकागी–ज्ञान की विषमता। अहो! अधूरा ज्ञान अज्ञानता से ज्यादा घातक होता है और विपरीत–ज्ञान तो अधूरे से अधिक घातक हो जाता है।

अहो ज्ञानियो! लिखने–बोलने के पूर्व आगम–सिद्धात को लख लेना चाहिए। जब तक जिनागम अर्थात् न्याय, नय, निक्षेप, अध्यात्म, सिद्धात का विशद् ज्ञान न हो तब तक लेखनी चलाने तथा प्रवचन करने की भावना ही नहीं लाना। आज तक जो भी नवीन पथो की स्थापना के हेतु देखे गये है उन स्थापको के साहित्य के आडोलन से यही ध्वनित हुआ है कि वह एक नय व निजी चितवन के ऊपर खडा किया गया मिथ्यामत है। आगम एकात–नय को मिथ्या ही कहता है, क्योकि अपेक्षाशून्य नय कभी भी सम्यक्पने को प्राप्त नही होते। जैसा कि कहा है –

निरपेक्षा नया मिथ्या।। १०८।। आ मी ।।

कोई निश्चय को मुख्य मानता है, कोई व्यवहार को पर सत्यता तो यह है कि एक–एक को माननेवाले दोनो स्वसमय से च्युत है। सम्यग्दृष्टि उभय नय को स्वीकारता है तथा माध्यस्थ रहता है। नय तो वस्तु व्यवस्था को समझने की शैली है, वस्तु–स्वभाव नहीं हैं। वस्तु का स्वभाव तद्–तद् वस्तु का भाव है, जैसा कि आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है –

तस्य भावस्तत्त्वम्। तस्य कस्य?

योऽर्थोयथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः।। स सि ।२।टीका। ६।।

अर्थात् उसका भाव 'तत्त्व' कहलाता है। यहॉ 'तत्' पद से कोई भी पदार्थ लिया गया है, आशय यह है कि जो पदार्थ जिस रूप मे अवस्थित है उसका उस रूप मे होना, यही तत्त्व शब्द का अर्थ है। इस प्रकार यहॉ इस बात का ध्यान रखना कि वस्तु का स्वभाव ही तत्त्व हैं। उस वस्तु–स्वभाव को समझने के लिए नयो का कथन किया जाता है। 'स्याद्वाद' कथन शैली है, अनेकान्त बहु–धर्मात्मक वस्तु है। अनेक धर्मों को एकसाथ कहा नहीं जा सकता। इसलिए सप्तभगी न्याय का उपयोग जैन–दर्शन मे किया गया है। सात नय, सात जन्मान्धो के दृष्टात से ही आचार्यश्री समझा रहे हैं। एक व्यक्ति ने हाथी के कान पकडे, दूसरे ने आँख का स्पर्श किया, तीसरे

ने सूड पकड़ी, चौथे ने पीठ, पाचवे ने पेट, छटवे ने पूछ तथा सातवे ने पैर पकडा। सातों ही विसवाद करने लगे कि हाथी तो हमने देखा है। जिसने कान पकड़े थे वह कहता है हाथी तो सूपे–जैसा था, जिसने आँखे स्पर्शित की थी उसे हाथी चने–जैसा लगा, जिसने पेट पकडा था वह दीवार–जैसा हाथी को मानता है। जिसने पीठ पकडी उसे चबूतरे–जैसा हाथी लग रहा था, पूछ को स्पर्श करने वाले की दृष्टि मे हाथी रस्सी–जैसा था, सूड को ग्रहण करने वाले की दृष्टि मे मूसल–जैसा था। एक–एक अग को पकडकर सातो जन्माध परस्पर विसवाद करने लगे तथा कहने लगे कि जो मैंने देखा वही सही है।

भो ज्ञानी! विसवाद देखकर नेत्र सहित विद्वान मधुरवाणी मे पृच्छना करता है– अहो! भोले प्राणियो! आप किस कारण से परस्पर मे मैत्रीभाव का अभाव कर विसवाद कर रहे हो? विद्वान की बात सुनकर सातो ही मुखर हो गये, सभी अपने स्पर्शन–जन्य ज्ञान के अनुभव से कहने लगे कि मैंने अपने हाथो से हाथी को स्पर्श करके देखा है। तभी ज्ञानी पुरुष ने विवेक से युक्तिपूर्वक विचार किया–यदि इनको सीधा समझाते हैं तो इनकी समझ मे आनेवाला नही है, अत इनको इनकी भाषा मे ही समझाया जाए। वह कहता है–बधुओ! आप सभी शात होकर मेरी बात सुनो। जितने प्रकार से आप लोगो ने हाथी माना है, उतने प्रकार का हाथी नही है परतु उन सभी से रहित भी हाथी नही है। इस प्रकार सभी जन्माधो का विसवाद समाप्त हो गया। अहो! आश्चर्य है, जन्माध शात हो गये परतु मोहान्धो का विसवाद दूर नही हो रहा। तत्त्व को समीचीन जानकर भी वस्तु के पर्याय–स्वरूप को समझना नहीं चाहते। अरे भाई! जैनशासन के स्याद्वाद अनेकातरूप अरहत–दर्शन मे एकात दृष्टि वाले हठी धर्मात्माओ को स्थान ही कहाँ? यहाँ तो सम्पूर्ण विरोध को दूर करनेवाली अपूर्व स्याद्वाद–शैली है। यदि व्यक्ति प्रत्येक पदार्थ को अनेकात–धर्म से देखना प्रारभ कर दे तो कोई विसवाद ही न रहे।

भो ज्ञानी! एकाकी विचारधारा सम्पूर्ण विसवादो की हेतु है। सम्यग्ज्ञानी, स्याद्वाद–विद्या के प्रभाव से यथावत् वस्तु का निर्णय कर भिन्न–भिन्न कल्पनाओं को दूर कर देता है। साख्य–दर्शन वस्तु को केवल नित्य तथा बौद्ध दर्शन क्षणिक मानता है, परतु स्याद्वादी कहता है कि यदि सर्वथा नित्य है तो अनेक अवस्थाओ का परिणमन किस प्रकार होता है ? और यदि सर्वथा क्षणिक है तो 'यह वही वस्तु है जो कि मैंने पूर्व मे देखी थी' इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान क्यो होता है ? पदार्थ द्रव्य अपेक्षा नित्य और पर्याय अपेक्षा क्षणिक ही है। स्याद्वाद से सर्वांग वस्तु का निश्चय होने से, एकात श्रद्धान का निषेध होता है। अत सर्वप्रथम हमे यह समझना चाहिए कि स्याद्वाद का अर्थ क्या है ? स्यात् = कथचित्, नय अपेक्षा से। वाद = वस्तु का स्वभाव, कथन शैली अर्थात् अपेक्षाकृत कथन करने की पद्धति का नाम ही स्याद्वाद शैली है।

एकस्मिन्विरोधेन प्रमाणनय वाक्यत ।
सदादि कल्पना य च सप्त भगी च सामता।। पचा गाथा टीका–१४।।

अर्थात् एकही पदार्थ मे बिना किसी विरोध के प्रमाण व नय के वाक्य से सत् आदि की कल्पना करना सप्तभगी कही गई है। आचार्य कुदकुद स्वामी ने पचास्तिकाय ग्रथ जी मे सप्तभगी का कथन किया–

सिय अत्थि णत्थि उहय अव्वतत्त्वं पुणो य तत्तिदय।
दव्व खु सत्त भग आदेस–वसेण सभवदि।। १४।।

अर्थात् द्रव्य विवक्षावश सात भेदरूप होता है। जैसे स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् उभय अर्थात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। एक ही द्रव्य मे सात भग कैसे घटित होगे ? ऐसा प्रश्न होने पर समझना चाहिए– कि मुख्य एव गौण अपेक्षा से सातो भग घटित हो जाते हैं। जैसे–एक राम पिता भी हैं, पुत्र भी हैं, भाई भी हैं, पति भी हैं–यहाँ राम एक हैं परतु सबधो की अपेक्षा से अनेक रूप भी हैं। इस प्रकार सापेक्षता से अनेकात–स्याद्वाद को कहा है। विशेष के लिए न्याय–शास्त्रो का अध्ययन करना अनिवार्य है। आचार्य महाराज ने विरोधनाशक –शैली का कथन किया, उसे ही स्वीकारो।

"तीन लोक का नेत्र"

लोकत्रयैकनेत्र निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन।
अस्माभिरुपोद्धियते विदुषा पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।। ३।।

अन्वयार्थ लोकत्रयैकनेत्र = तीन–लोक–सबधी पदार्थों को प्रकाशित करने मे अद्वितीय नेत्र। परमागम = उत्कृष्ट जैनागम को। प्रयत्नेन = अनेक प्रकार के उपायो से। निरूप्य = जानकर अर्थात् परम्परा जैन सिद्धान्तो के निरूपणपूर्वक। अस्माभि = हमारे द्वारा। विदुषा = विद्वानो के लिए। **अयं** पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय = यह पुरुषार्थ–सिद्धि–उपाय नामक ग्रथ। उपोद्धियते = उद्धार करने मे आता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ३ ।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने बहुत ही अनोखा सकेत दिया है। यदि जीव के भावो की हिसा का विनाश हो जाता है तो द्रव्य की हिसा छूट जाती है, भावो की हिसा का हेतु कोई है तो वह एकात–दृष्टि है। **एकात–दृष्टि ही भाव हिसा है।** किसी जीव का वध करो या न करो यदि आपने तत्त्व के विपरीत श्रद्धान किया है, तो आपने निज भावो का विनाश किया ही है। जब एकात–दृष्टि बन जाती है, तो हम एक–दूसरे की सुनना पसद नहीं करते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि, जो मैं सोचता हूँ वही सच है। आप सोचते हो कि मैं सही हूँ। जब दोनो अपने–अपने को सही मानना प्रारभ कर देते है, तो धीरे से एक–दूसरे को गलत कहना भी प्रारभ कर देते हैं। परिणति यह होती है कि धीरे–धीरे तत्त्व दृष्टि शत्रु दृष्टि मे बदल जाती हैं। फिर परिणाम यह होता है कि हम एक–दूसरे को मारने–पीटने को भी तैयार हो जाते है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद स्वामी कह रहे हैं– **'विरोध मथनम्'** स्याद्वाद–शैली विरोध को नष्ट करने वाली है। स्याद्वाद को समझकर भी विरोध को नहीं छोडा तो वह जैन–विद्या का ज्ञाता हो ही नहीं सकता। जब मन में ही सकल्प–विकल्प उठते हैं तो वचनो से कहना प्रारभ होता है। जब तक मन मे था, तब तक तो ठीक था और जब वचन मे एकात आ जाता है तो वहीं पर एक नये पथ का जन्म हो जाता है। जहाँ पथ का जन्म होता है वही सत स्वभाव का विनाश हो जाता है। जितनी शक्ति मुझे निज स्वरूप मे लगानी थी, उस शक्ति का उपयोग पथ के गठन मे प्रारभ हो जाता है। आचार्य अमृतचन्द स्वामी कहते हैं कि 'नय' कोई पहाड नहीं है।

नय यानि वक्ता का अभिप्राय। क्योंकि जितने वचन–वाद हैं, उतने ही नयवाद हैं। आचार्य सिद्धसेन स्वामी ने 'सम्मत्त सुत्त' मे कहा है "जावदिय वयवाद तावदिय णय वाद" उन वचनो को हम कैसे समझ पाये कि किस दृष्टि से कौन कह रहा है ? बस, अनेकात लगा लो, सभी विसवाद समाप्त हो जायेगे।

भो ज्ञानी! आचार्य कुदकुद स्वामी कह रहे हैं कि जिसने एक आत्मा को जान लिया उसने सबको जान लिया है। उस एक आत्मा तक पहुँचने के लिए बहुत पुरुषार्थ करना होता है। उस एक को जानने का राजमार्ग एक ही है, परतु गलियॉ इतनी ज्यादा बनी हुई हैं कि समझना तो एक को ही चाहता है पर गलियो मे प्रवेश करके राजमार्ग को छोडकर, वह राजधानी मे प्रवेश करना चाहता है। इसलिए वे बता रहे हैं कि जितने नय हैं, वे सब गलियॉ हैं। उन सब गलियो को पार करते हुए एक राजमार्ग है वह रत्नत्रय मार्ग है। उस रत्नत्रय–मार्ग के अभाव मे आप चाहो कि मैं अनेक नयो को जानकर भी मोक्ष प्राप्त कर लूँ , तो भी प्राप्त नहीं कर सकते। नयो को इसलिए जानना है कि हमारा कुनय मे प्रवेश न हो जाये। खोटे नय मे प्रवेश से खोटा अभिप्राय आ जाता है। अत वह मोक्ष को तो मानता है आत्मा को तो मानता है पर कोई जडरूप मान रहा है, कोई सत्तारूप मान रहा है, कोई असत्तारूप मान रहा है। परतु जिन–शासन सत्‌रूप मान रहा है। वह उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त सत्‌दृष्टि है। इसलिए हे योगी ! जब तू एक को जानने लगेगा, तो तू सर्व का ज्ञाता हो जायेगा और जब तक तू सबको जानेगा, तब तक तू सबका ज्ञाता नही होगा। जिसने एक विशुद्ध आत्मा को जाना है उसने ही विश्व को जाना है और विशुद्धात्मा को जानने का उपाय है परमागम। **परमागम को जानने का उपाय है न्याय, नय, स्याद्‌वाद और अनेकात।** भो चेतन! जब विचार मे वैषम्यता प्रवेश कर जाती है, तो भाव हिसा, द्रव्य–हिसा का जन्म हो जाता है। वैचारिक एकता बनी रहे, तो न भाव–हिसा होगी, न द्रव्य हिसा। विचारो की विषमता से ही हिसा का जन्म है।

मॉ ने कहा कि पिताजी ऊपर हैं और बेटे ने कहा कि पिताजी नीचे हैं। अत झगडा शुरू हो गया हिसा शुरू हो गई। भो ज्ञानी ! बेटे ने भी सत्य कहा था मॉं ने भी सत्य कहा था, क्योकि पिताजी बीच की मजिल मे बैठे हुए थे। मॉं से जब पूछा तो उन्होने कहा ऊपर हैं, क्योकि आपने नीचे से पूछा था। बेटा ऊपर बैठा हुआ था। उसने कहा–पिताजी नीचे हैं। वह भी सत्य है, क्योकि पिताजी बीच की मजिल मे है। दोनो ने झूठ नही बोला, परतु आपकी समझ नासमझ हो गई। अत इस ग्रथ को समझने के साथ–साथ शात भाव बनाकर चलना, क्योकि समय (आत्मा) को समझना है और समय नही दिया तो काम नहीं बनेगा। यदि बडे भाई ने मॉ से पूछा कि पिताजी कहॉं हैं ? मॉं ने कह दिया ऊपर, छोटे भाई ने कह दिया नीचे। यह सुनकर यदि तुम थोडा समय दे देते

तो आप माँ और छोटे भाई पर न झुझलाते। अनेकात यह भी कह रहा है कि मुझे समझना, परतु समय देकर समझना। समय नहीं दोगे तो मुझे नहीं समझ सकोगे। पुन समझना कि जब घर मे बहुत सदस्य हैं और उन सबके अपने–अपने भाव हैं, तो सबकी बात आपको सुनना है। कोई कुछ कह रहा है, तो कोई कुछ कह रहा है। यदि आप समय को समझते हो तो कहना ठीक है। इनका यह सोच है, आपका क्या सोच है ? सबके सोच को सुन लो और सुनने के बाद निर्णय करो। यदि पहले ही निर्णय कर दिया तो आपसे दूसरा नाराज हो जायेगा। इसलिए प्रश्न एक नहीं होता प्रश्न सात होते हैं, इसी कारण इसका नाम सप्तभगी है। इस विषय को बहुत गहरे मे समझना है। यदि यह समझ मे आ गया तो आप वास्तव मे जैनदर्शन को समझते हो। जैनदर्शन की पहचान विश्व मे स्याद्वाद से है और स्याद्वाद जिस दिन नष्ट हो गया उस दिन किसी देश का सचालन हो ही नहीं सकता।

भो ज्ञानी! **दृष्टि मे अनेकात, वाणी मे स्याद्वाद और चर्या मे अहिसा–यह जैनदर्शन का मूल आधार है।** अनेकात धर्म है वस्तु धर्मी है, उस धर्म और धर्मी को कहने वाली वाणी स्याद्वाद है। यह स्याद्वाद कथनशैली है। इसमे ही नय एव प्रमाण है अर्थात् श्रुतज्ञान मे नय एव प्रमाण होते हैं। केवलज्ञान प्रमाण है, नय नहीं। स्याद्वाद–ज्ञान नय, प्रमाण दोनो ही हैं। अत शुद्ध द्रव्य मे भी भग लगेगे, परतु पर्याय दृष्टि और द्रव्य दृष्टि अथवा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य की अपेक्षा से। अहो! इस कथनशैली को समझकर आचार्य समन्तभद्र स्वामी आचार्य विद्यानद स्वामी आचार्य अकलक स्वामी आदि महान आचार्यों को पूरा जीवन अनेकात स्याद्वाद के लिए ही समर्पित करना पडा।

एक दिन प्रश्न आया कि महाराजश्री, स्वामी' क्यो लगाते हैं ? भो ज्ञानी ! जिन्होने मूल ग्रथो की टीकाये की हो उन आचार्यो के नाम के आगे स्वामी लगाया जाता है। पच–परमेष्ठी की दृष्टि से पाचो ही परमेष्ठी तुम्हारे स्वामी हैं। लेकिन यह विषय न्याय का चल रहा है नय का चल रहा है यहाँ तुमको तर्क से चर्चा करनी पडेगी कि जिन्होने मूल आचार्यों के मूल ग्रथो पर टीकाग्रथ लिखे हो उन आचार्यों के नाम के आगे स्वामी सज्ञा जोडी जाती है। जिनने कोई टीकाग्रथ नहीं लिखे उनके स्वतत्र नाम तो होते है पर 'स्वामी' शब्द नही जोडा जाता, जैसे कि अमृतचद स्वामी, क्योकि इन्होने समयसार ग्रथ' पर आत्म–ख्याति टीका लिखी और समन्तभद्र 'स्वामी' के लिये जो स्वामी शब्द लगाया जाता है क्योकि उन्होने 'तत्वार्थ सूत्र ग्रथ' पर 'गधहस्ती–महाभाष्य टीका लिखी जो आज अनुपलब्ध है। उन्होने जगत मे स्याद्वाद–अनेकात का डका पीटा था, सपूर्ण भारत वर्ष मे। इसलिए मनीषियो! उनके लिए उपाधि दी गई थी 'स्वामी'। अकलक देव महाराज ने 'तत्वार्थसूत्र' पर 'राजवार्तिक' टीका एव पूज्यपाद स्वामी ने 'तत्वार्थसूत्र' पर 'सर्वार्थसिद्धि' टीका

लिखी है जो दिगम्बर आम्नाय में सबसे पहली टीका है। अकलक देव ने सर्वार्थसिद्धि टीका के ऊपर टीका ग्रथ लिखा, इसको वार्तिक कहते हैं। आचार्य अकलक देव की प्रतिभा थी कि जो एक बार सुन लिया, याद हो गया।

भो ज्ञानी! अपन तो कगूरों को निहार रहे हैं। यदि समतभद्र, अकलक देव जैसे महान आचार्य नही होते, तो चोटी मे गाठ बधी होती। वह काल ऐसा था जिसमें कहा जाता था कि नमन करो अन्यथा गमन करो। यह प्रश्न था कि यह वीतरागी–शासन जयवत कैसे रहेगा? पर जबतक समतभद्र के इस शरीर मे सासे हैं तब तक हे प्रभो ! आपको छोड करके नमन तो सभव नहीं है, है इतनी श्रद्धा ? है विश्वास ? तनिक सी फुसी हो जाती है तो पता नहीं कितनी जगह सिर पटककर आ जाते हो। महाराज श्री! लोकव्यवहार है, लोकाचार है। अहो! सम्यक्त्व कहाँ ? क्योकि यह लोकाचार नही है, लोकोत्तराचार है। यह मोक्षमार्ग की यात्रा है। इसलिए ऐसा ही दृढ–सम्यक्त्वी लिख सका –

भयाशा स्नेह लोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणाम विनय चैव न कुर्य शुद्धदृष्टय ।। ३० ।। र क श्रा ।।

भो ज्ञानी! ध्यान रखो, जिसे लोक मे जीना है वह लोकव्यवहार बनाकर चले और जिन्हे लोक मे नही जीना, सिद्ध बनके रहना है, ऐसा ज्ञानी आत्मा "प्रणाम विनय न कुर्य शुद्ध दृष्टय ' प्रणाम, विनय आदि भी नहीं करता, वह शुद्ध सम्यक्दृष्टि जीव है। हम मात्र आपस मे ही शुद्धदृष्टि बन रहे है, आपस मे कलुषता बढा–बढाकर शुद्ध सम्यकदृष्टि बन रहे हैं। ओहो! तुमसे बडा तो कोई मिथ्यादृष्टि नही। जब समन्तभद्र स्वामी के सामने लोकविनय का प्रसग आया तो बैठ गये ध्यान मे, हे नाथ क्या! होगा? 'जिन शासन रक्षणी, ज्वालामालिनी देवी प्रकट होकर कहती है– हे समन्तभद्र स्वामी ! चिता मा कुरू', आप चिन्ता मत करो! तुम्हारी दृढ श्रद्धा कभी च्युत नहीं हो सकती। समन्तभद्र प्रसन्न होकर बोले–राजन! पिडी नमस्कार सहन नहीं कर सकेगी, तो राजा ने पिडी को बधवा दिया था साकलो से, हाथियो से। परतु भो ज्ञानी आत्माओ!

चद्रप्रभ चद्र–मरीचि–गौर, चन्द्र द्वितीय जगतीवकान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्य महतामृषीन्द्रं, जिन जित–स्वान्त–कषाय बन्धम् ।। (स्व स्तो)

जैसे ही वन्देऽभिवन्द्य कहा कि भगवान चदाप्रभु स्वामी प्रकट हो गये। मनीषियो! जिनके अतरग मे ऐसा निर्मल सम्यक्त्व लहरे ले रहा हो ऐसे जीव आचार्य समतभद्र स्वामी को आचार्यों ने भावी तीर्थंकर कहा है। उन्होने 'स्वयभूस्त्रोत, देवागम–स्त्रोत' लिखकर स्याद्वाद अनेकात का विस्तृत कथन किया है। अष्टसती अकलक देव का एव अष्ट–सहस्त्री आचार्य विद्यानद जी के 'देवागम स्त्रोत' पर टीकाग्रथ हैं और ग्रथकर्त्ता लिखने के बाद लिख रहे हैं कि यह तो कष्ट–सहस्त्री

है, क्योकि इतना गूढ हो गया, कि सामान्य लोगो को तो इसकी हिन्दी भी समझ नहीं आती। परतु लिखना बहुत अनिवार्य था, क्योकि कुछ लोगो को तत्त्व से प्रयोजन नहीं था, उन्हे कथ्य से ही प्रयोजन था।

भो चेतन! तथ्य को तथ्य ही समझना, तथ्य को कथ्य (कथनी) मात्र मत समझो। ये

ध्यान रखो, यदि यह समझ मे आ गया, तो आगे आत्मा भी समझ में आयेगी और सयम भी समझ मे आयेगा। क्योंकि जिस वचन मे कोई अर्थ निहित हो, जिस वचन मे कोई तथ्य निहित हो, जिस वचन को सुनकर व्यक्ति के अतरग मे विशुद्धता की लहर दौडे उसका नाम 'प्रवचन' है। इसलिए ध्यान रखना कि **सच्चे देव, सच्चे गुरु का वचन प्रवचन है, वही जिन वाणी है, वही जिनदेशना है और वही परमागम है।** जिसमे स्याद्वाद–शैली नहीं है उसे परमागम शब्द से अकित मत करो।

उभय नय विरोध ध्वसिनि स्यात्पदाके
जिन वचसि रमन्ते ये स्वय वान्तमोहा।
सपदि समयसारं त्रे पर ज्योतिरुच्चै–
रनवमनयपक्षा क्षुण्णमीक्षन्त एव ।। 4 ।। (अ अ क)

अमृतचन्द्र स्वामी ने जब समयसार के ऊपर 'अध्यात्म अमृत कलश' लिखा, तो सबसे पहले उन्होने वहाँ पर भी स्पष्ट लिखा है हे प्रभो ! आपका स्यात पद विरोध का मथन करने वाला है। स्यात् यानि कथचित्, स्यात् यानि अपेक्षा और वाद् यानि शैली। जिसमे स्यात् पद जुडा होवे ऐसी शैली से चर्चा करना। इसलिए याद रखना जैनदर्शन कहता है कि ऐसा 'भी' है, और एकात हो तो 'ही' लगाना। सब जगह स्याद्वाद भी नही लगता।

भो ज्ञानी! जो सम्यक् एकात हैं, उन सभी का समूह ही अनेकात है। यदि 'सम्यक' शब्द नही जुडा है तो वह एकात मिथ्या है। एकातनय ही मिथ्यात्व है। बोले–महाराज श्री। मैं तो भगवान की पूजा करता हूँ, गुरुओ को भी दान देता हूँ ,लेकिन मैं यह लोक–परलोक नहीं मानता। भो ज्ञानियो! अब मिथ्यादृष्टि की खोज करने कहाँ जाऊँ ? समझना, करता सब कुछ हूँ , लेकिन यह नहीं मानता कि स्वर्ग होता है, नरक होता है, मोक्ष होता है। मिथ्यादृष्टि देवो के भवनो मे भी अरिहत देव की प्रतिमाये होती हैं और वे देव भी अरिहत की प्रतिमाओं की पूजा करते हैं, लेकिन वे मानते यही हैं कि यह मेरे कुल देवता हैं। अरे! यह ध्यान रखना जितने लोग भगवान जिनेन्द्र की वदना करें, जिनवाणी सुने, इन्हे कुल–परम्परा मानकर नहीं, अपितु इन्हें धर्म की व्यवस्था मानकर करें। यदि कुल परम्परा मानकर चलोगे, तो कुल परम्परा मे कुल–गुरु बन जायेंगे, कुल देवता बन जायेगे

और कुल के शास्त्र बन जायेगे, परतु कुल–कोटियो का विनाश नही कर पायेगे। कुल कोटिया साढे निन्नयानवे लाख करोड हैं। यदि इनमे भटकना नहीं है, तो उन्हे 'देवाधिदेव' मानकर पूजना।

भो ज्ञानियो! धर्म व्यवस्था का तात्पर्य यह भी मत मानना कि हमारी धर्म की व्यवस्था है। आप यह मानकर चलिए कि यह हमारे स्वभाव की व्यवस्था है। धर्म यानि वस्तु का स्वभाव। व्यवस्था धर्म के उद्देश्य से नहीं, निज धर्म के उद्देश्य से करनी है। एक कहता है कि मैं जिनदेव को तो मानता हूँ, पर जिनवाणी को नही मानता। अरे! जिनवाणी को नही मानता तो जिनदेव कहा से आये ? एक कहता है कि मैं जिनवाणी को मानता हूँ जिनदेव को नहीं मानता। भो ज्ञानी! तुझमे भी अभी कुछ कमी है और एक कहता है कि मै जिनवाणी को मानता हूँ जिनदेव को मानता हूँ परतु गुरूदेव को नहीं मानता।

भो ज्ञानी आत्माओ! वीतराग–विज्ञान कह रहा है कि ध्यान रखो सम्यकदर्शन–ज्ञान–चारित्र और देव–शास्त्र–गुरु ये तीनो इकटठे जब तुम्हारे सामने होगे तभी चैतन्य–ज्योति का प्रकाश दिखेगा, अन्यथा प्रकाश दिखने वाला नही है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने पहले कैवल्यज्योति को नमस्कार किया फिर परमागम को नमस्कार किया। अभी ग्रथ प्रारभ नही हुआ भूमिका चल रही है। जिसकी भूमिका इतनी निर्मल होगी, वह ग्रथ कितना निर्मल होगा। आचार्य अमृतचद्र स्वामी जो इतना गहन लिख रहे है, तो श्रद्धान कितना गहन होगा और जब यह ग्रथ लिख रहे होगे तो उपयोग की कितनी निर्मलता मे भरे होगे, कितनी बार स्व–स्वरुप मे स्पर्श कर रहे होगे ? ध्यान रखना प्रवचन से ज्यादा लेखन मे विशुद्धी बनती है और जब विशुद्धि बनती है तब तो भगवान जिनेद्र के शासन पर कलम चल रही होती है। भो ज्ञानियो! कवियो ने तो खोटे–काव्य लिख–लिखकर के इतने ऊँचे–ऊँचे पर्वत बना डाले तो सुकवि आचार्य भगवत कहते हैं कि हे नाथ ! जिनकी कुकाव्य लिखने मे कलम नही थकी, तो मेरे सुकाव्य लिखने मे कलम कैसे थक सकती है ? भर्तृहरि ने कितनी–कितनी उपमा दी हैं सो आप पढ लेना श्रृगार शतक' मे और फिर उन्ही भर्तृहरि की पढ लेना 'वैराग्य शतक। आप कहेगे–यह 'श्रृगार शतक का कि लेखक कैसे हो सकता है और जिसने 'वैराग्य शतक पढ ली हो फिर 'श्रृगार शतक पढेगा वह कहेगा यह वैराग्य शतक के लेखक कैसे हो सकते है ? यह तो मनीषियो! बुद्धि का व्यायाम है। परतु आचार्यो ने बुद्धि का व्यायाम नही किया, उन्होने तत्त्व का व्यायाम किया है।

भो ज्ञानी आत्माओ! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने पहले ही कह दिया कि यह ग्रथ 'विदुषा' (विद्वानो) के लिए लिखा जा रहा है, अज्ञानियो के लिए नही। हे विद्वानो! वही ज्ञान, ज्ञान है जिसमे सवेदन है और जिसमे सवेदन नहीं वह ज्ञान नही। जिसमे अनुभवन नही, वह ज्ञान तो अज्ञान है। इसलिए आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान हैं। पर यदि आत्मज्ञान मे शून्यता है तो आगमज्ञान

भी उसके लिए ज्ञान का काम कर जायेगा पर तुम्हारे लिए तो अज्ञान ही है।

"अज्ञानात् कृतम् पापम् सद्ज्ञानात् विमुच्यते।
ज्ञात्वाज्ञान कृतम् पापम्, वज्रलेपो भविष्यते"।। सु र ।।

भो मनीषियो! मै आज बताये देता हूँ , ध्यान रखना कि यदि अज्ञान से कोई पाप हो जाये तो सम्यक्ज्ञान से छूट जाता है, पर यदि जान करके पाप कर रहा है तो बज्रलेप हो जाता है। अब पूछ लेना अपनी आत्मा से कि हिसा झूठ, चोरी कुशील परिग्रह छल, कपट, दम्भ ये पाप हैं कि नहीं ? इनसे दुर्गति होती है कि नही ? अब आपको मालूम चल गया कि छल-कपट आदि करने से पाप का बध होता है और जानते हुए भी पाप करोगे, तो भो ज्ञानी ! नियम से वज्रलेप ही होगा। यहाँ 'ही' लगाना 'भी' नही लगाना। इसलिए यदि आपको अपनी आत्मा पर करुणा हो, तो आज से पाचो पापो को छोड दो।

भो चेतन! परिग्रह को तो आपने पुण्य मान लिया है आगम को पढकर देखना बह्वारम्भ-परिग्रहत्व नारकस्याऽऽयुष'।। त सू ।। अरे! जितनी-जितनी हिसा आज तक हुई है चाहे वह महाभारत काल मे हुई हो, चाहे रामायण काल मे, वह परिग्रह के कारण ही हुई है। इसलिए नारी भी परिग्रह है। देखो, रावण स्त्री- परिग्रह के पीछे नष्ट हो गया, हिसा हुई। महाभारत किसके कारण हुआ? परिग्रह के पीछे राज्य के पीछे। उसमे भी हिसा हुई। भो ज्ञानी! परिग्रह को मूल मे इसलिए रख दिया जैसे "णमो लोए सव्व साहूण' अर्थात् नमस्कार-मत्र के अत मे णमो लोए सव्व पद रखकर लोक के सम्पूर्ण अरिहत, सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधू को ले लिया इसी प्रकार से पापो का भी शिरोमणि परिग्रह है।

भो ज्ञानी! राजमार्ग यह है कि यदि आप गृहस्थ भी हो, तो कम से कम परिग्रह का परिमाण तो कर लो। यह हाय-हाय तो समाप्त हो जाये। करोड की मर्यादा कर लो। हम यह नहीं कह रहे तुम कम परिग्रह का परिमाण करो लेकिन कम से कम शाति से तो बैठो अन्यथा तीन लोक की सपदा तो तुम्हे मिलने वाली नही है। जब आपको प्रधानमत्री राष्ट्रपति पद मिलना ही नही है तो भो ज्ञानी आत्माओ! यह पद भी परिग्रह मे ही आते है। जब इन पदो की सम्भावनाये ही नही हैं, तो उन पदो का विसर्जन कर दो। ध्यान रखो, यदि ऑख फूट जाये तो भी चिता मत करना, परतु श्रद्धा का नेत्र न फूटे और आगम न छूटे। यदि श्रद्धा का नेत्र फूट गया और आगम छूट गया तो भो ज्ञानी ! तुम दो चश्मे और लगवा लेना लेकिन वह काम मे नही आयेगे। वह तो ससार को ही दिखायेगे, जबकि श्रद्धा का नेत्र परमार्थ को दिखायेगा।

भो चेतन! यदि आपका वश चल जाता तो आप बडी तरकीब से आयुकर्म को पकड लेते और कही बद करके रख देते। यदि कही पैसा देकर आयु बढाई जाती, तो सब लोग रूखा-सूखा दाना खा-खाकर सो लेते पर पैसा इकट्ठा जरूर कर लेते। वह तो अच्छा हुआ कि कुछ व्यवस्था ऐसी है जो तुम्हारे हाथ की नही है। भो ज्ञानी आत्माओ! यदि अपना हित चाहते हो तो बस तत्त्व को समझो, तत्त्व-दृष्टि को समझो। इस हेतु श्रद्धा के नेत्र और आगम के नेत्र को सुरक्षित रखना।

"उपदेश दाता आचार्य के गुण"

मुख्योपचारविवरण–निरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधा ।
व्यवहारनिश्चयज्ञा प्रवर्त्तयन्ते जगति तीर्थम् ।। ४ ।।

अन्वयार्थ मुख्योपचारविवरण निरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधा = मुख्य और गौण कथन की विवक्षा से शिष्यो के गहरे मिथ्या ज्ञान को दूर करने वाले 'महापुरुष'। व्यवहारनिश्चयज्ञा = व्यवहार–नय व निश्चय–नय को जानने वाले ऐसे आचार्य। जगति = जगत मे तीर्थम् प्रवर्त्तयन्ते =धर्मतीर्थ को फैलाते हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || ४ ||

भव्य बधुओ! अतिम तीर्थेश वर्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। भगवान जिनेन्द्र के शासन मे अनेकानेक श्रुतधारक आचार्य हुए, जिन्होने अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा के द्वारा मिथ्यामार्ग का विच्छेद कर सम्यक बोध के दिव्य प्रकाश से जन–जन के मिथ्यात्व–तिमिर का नाशकर उनके मोक्षमार्ग का प्रशस्त किया। उन्ही आचार्यों की श्रेणी मे विराजे परमवदनीय, समयसार के सार को उदघाटित करनेवाले, अपूर्व आत्मविद्या के धनी आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अपनी सम्पूर्ण प्रज्ञा का प्रयोग श्रुताराधना मे लगाकर तीर्थंकर–देशना के रहस्यो को उदघाटित किया। आचार्य कुदकुद भगवन् के समयसार को प्रकाश मे लाने वाले सर्वप्रथम आचार्य अमृतचद्र स्वामी हुए। जिनकी आत्मख्याति टीका एव कलश ऐसे लगते है मानो महान समयसार–प्रासाद के ऊपर आत्मख्याति काव्य–कलशो के साथ विशाल कलशारोहण ही किया गया हो। आचार्यश्री ने टीका–ग्रथ के अतिरिक्त मौलिक–ग्रथो का भी सृजन किया। उन्ही महान कृतियो मे यह ग्रथराज पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय भी है। इस ग्रथ मे श्रावक के बारह व्रतो का एव सक्षेप मे यति–धर्म का भी कथन है। इस ग्रथ की यह भी विशेषता है कि अहिसा का जितना विशद् वर्णन इस ग्रथ मे विभिन्न पक्षो से तर्क सहित समझाया गया है, वह अन्यत्र उपलब्ध नही होता। प्रारभ मे तो लगता ही नही है कि यह कोई श्रावकाचार ग्रथ चल रहा है। न्याय, अध्यात्म, सिद्धात, चरणानुयोग को आचार्यश्री ने एकसाथ सजाकर अपूर्व मणिमय ग्रथराज का सृजन किया है।

इस चतुर्थ कारिका (श्लोक) मे जगत मे तीर्थ का प्रवर्त्तन कैसे हो इस बात को समझाया गया है। तत्त्व को समझे बिना दूसरे के लिए सम्यक् बोध प्रदान नही किया जा सकता। श्रुत देने के पूर्व श्रुत की निर्मल आराधना अनिवार्य है। सशयादि दोषो से रहित ज्ञान ही सम्यक्ज्ञान है, किंतु लोकपूजा की दृष्टि से की गई ज्ञान–आराधना समीचीन नही है। मोक्षमार्गी–जीव बध के हेतुओ से

बचने हेतु श्रुतामृत का पान किया करता है तथा यही भावना रखता है कि ससार मे व्याप्त अज्ञान–तिमिर का विनाश होवे, प्राणीमात्र वीतराग धर्म की ओर अपने कदम रखे, भूतार्थ मार्ग को समझे। ससार पक से स्वपर रक्षा मे सलग्न रहता है ज्ञानी जीव।

देखो, सत्यार्थ–प्रकाश के लिए आगम का ज्ञान अनिवार्य है। आगम ज्ञान के अभाव मे तत्त्वोपदेश नही करना चाहिए, कारण कि यदि कदाचित किसी जीव को विपरीत देशना प्रदान कर दी तो उसका अहित तो होगा ही साथ मे स्वय का भी अहित होगा। कारण कि स्वय के द्वारा जिनदेव की आज्ञा के विपरीत कथन होने से स्वय के सम्यक्त्व मे दोष आता है। 'रयणसार ग्रथ" मे लिखा है कि जो व्यक्ति मतिश्रुत क्षयोपशमिक ज्ञान के बल से आगम मे स्वछद बोलता है– वह मिथ्यादृष्टि है। उसका वचन जिनेद्रदेव के मार्ग मे आरूढ व्यक्ति का वचन नही है –

मदि सुदणाण–बलेण दु, सच्छद बोल्लदे जिणुदिट्ठ।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्ग–लग्गरवो ।। ३।। रसा ।।

परन्तु सम्यक्दृष्टि जीव जिनदेव एव आचार्य परम्परा के विरुद्ध कभी भाषण नही करता। वह आगम आधार से वचनालाप करता है।

पुव्व जिणेहि भणिद, जहिदिट्ठ गणहरेहिवित्थरिद।
पुव्वाइयरियक्कमज, त बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठी।। २ ।। रसा ।।

अर्थात् 'जैसा पूर्वकाल मे जिनेद्रो ने कहा, गणधरो ने जिस यथावस्थित वस्तु स्वरूप को विस्ताररूप से बताया और पूर्वाचार्यों की परम्परा से जो प्राप्त हुआ है उसे ही जो कहता है वह सम्यक्दृष्टि है। सम्यक्दृष्टि जीव अपने प्रवचनो मे जिनागम के बाहर कथन नहीं करता। नमोऽस्तु शासन के पक्ष को दृढ करने की ही चर्चा करता है। यहाँ–वहाँ की बातो मे समय निकालना श्रेष्ठ वक्ता का लक्षण नहीं है। वक्ता श्रेष्ठ वही है जो सभा को देखकर मधुर–गम्भीर वाणी मे जिनवाणी को सहजभाव से जन–जन के अत करण मे प्रवेश करा दे तथा सद्शास्त्रो के पढने के लिए लोगो को वाचाल कर दे। श्रोता ग्रथ पढकर निर्ग्रथो के प्रति आस्थावान हो जाए, वही सच्चा वक्ता है। आचार्य भगवन् इस कारिका मे यही बतला रहे हैं कि जगत मे तीर्थ की प्रवृत्ति कौन कर सकता है ? जो सम्यक् रूप से जिन–प्रवचन को जानता है तथा स्याद्वाद नय विद्या का पारगत कुशल प्रवक्ता, वाणी मे माधुर्य, ओज की प्रधानता, समयानुसार भाषण करने वाला तथा निश्चय एव व्यवहार उभय नय को अपनी विषय–वस्तु बनाने वाला, एकात–नय से अपनी वाणी की रक्षा करने वाला तत्त्वज्ञानी जीव ही जगत मे शिष्यो के अज्ञान को दूर करने वाला ही तीर्थ का प्रवर्तन कर सकता है।

भो ज्ञानी! उपदेशदाता आचार्य मे जिन–जिन गुणों की आवश्यकता है उन सबमे मुख्य गुण व्यवहार और निश्चय नय का ज्ञान है, क्योकि जीवो का अनादि–अज्ञान–भाव मुख्य कथन और उपचरित कथन के ज्ञान से ही दूर होता है सो मुख्य कथन तो निश्चय नय के अधीन है और उपचरित कथन व्यवहार–नय के अधीन है।''**स्वाश्रितो निश्चय**'' अर्थात् जो स्वाश्रित (अपने आश्रय से) होता है उसे ''निश्चयनय'' कहते है इसी कथन को मुख्य कथन एव परमार्थ–दृष्टि कहते हैं। इस नय के जानने से शरीर आदि परद्रव्यो के प्रति एकत्व–श्रद्धान–रूप अज्ञान–भाव का अभाव होता है, भेद–विज्ञान की प्राप्ति होती है तथा पर–द्रव्यो से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्य–स्वरूप का अनुभव होता है तब जीव परमानद दशा मे मग्न होकर केवलदशा को प्राप्त करता है। जो अज्ञानी पुरुष इसके जाने बिना धर्म मे लवलीन होते हैं वे शरीरादिक क्रियाकाण्ड को उपदेश जानकर ससार के कारणभूत शुभोपयोग को ही मुक्ति का साक्षात् कारण मानकर स्वरूप से भ्रष्ट होकर ससार मे परिभ्रमण करते हैं। इसलिये मुख्य कथन को जानना, जो कि निश्चयनय के अधीन है। निश्चयनय को जाने बिना यथार्थ उपदेश भी नही हो सकता। जो स्वय ही अनभिज्ञ है वह कैसे शिष्यजनो को समझा सकता है? किसी प्रकार नही।

भो ज्ञानी! यहॉ पर इस बात का ध्यान रखना, जो शुभोपयोग को ससार का हेतु कहा है वह सर्वथा नही समझना। निदान रहित सम्यक्दृष्टि जीव का शुभोपयोग तो परम्परा से मोक्ष का ही हेतु है, परन्तु निर्वाण का साक्षात हेतु शुद्धोपयोग ही है। अत व्यवहार क्रियाओ मे सतोष धारण नही करना चाहिए। परमार्थ पर दृष्टि प्रतिक्षण बनाकर मुमुक्षु जीवो को चलना चाहिए, अन्यथा भूतार्थ स्वरूप से अपरिचित ही रहेगा। अनादि से परिचय मे आये विषय–कषायरूप परिणामो से ही सम्बध रहेगा। कौन चाहता है कि श्रेष्ठ व्यक्ति व वस्तु से मेरा सम्बध विच्छेद हो पुद्गलमय कर्म, परमेश्वर मय आत्मा को क्यो छोडेगे? अत निश्चयनय को समझना अनिवार्य ही है।

भो ज्ञानी! व्यवहारनय ''पराश्रितो व्यवहार ' जो पर–द्रव्य के आश्रित होता है उसे व्यवहार कहते हैं और पराश्रित कथन उपचार कथन कहलाता है। उपचार कथन का ज्ञाता शरीरादिक सम्बधरूप ससार दशा को जानकर ससार के कारण आस्रव बध का निर्णय कर मुनि होने के उपाय–रूप सवर–निर्जरा तत्त्वो मे प्रवृत्त होता है, परतु जो अज्ञानी जीव इस व्यवहारनय को जाने बिना शुद्धोपयोगी होने का प्रयत्न करते है वे पहले ही व्यवहार साधन को छोड़ पापाचरण मे मग्न हो नरकादि दु:खो मे जा पडते हैं। इसलिये व्यवहार नय का जानना भी परमावश्यक है। अभिप्राय यह है कि उक्त दोनों नयो के जानने वाले उपदेशक ही सच्चे धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं। जो एक नय का पक्ष लेता है, वह दूसरे का घातक हो जाता है। कथनशैली मे प्रधानता तथा गौणता तो आ सकती है, परतु गौणता के स्थान पर अभाव नही होता, यही जैन–दर्शन की अनेकात–शैली है।

जो व्यक्ति नय–विवक्षा को नहीं जानता वह निश्चय एव व्यवहार उभय तीर्थ का घातक होता है। कहा भी है–

जइ जिणमय पवज्जह ता गा ववहारणिच्छएमुएहा।
एकेण विणा छिज्जइ. तित्थ अण्णेण पुण तच्च।। अ घ ।। पृ–१८।।

अर्थात् यदि तू जिनमत मे प्रवर्तन करता है तो व्यवहार–निश्चयनय को मत छोड। यदि निश्चय का पक्षपाती होकर व्यवहार को छोड देगा तो रत्नत्रयस्वरूप धर्मतीर्थ का अभाव हो जायेगा और यदि व्यवहार का पक्षपाती होकर निश्चय को छोडेगा तो शुद्ध तत्त्वस्वरूप का अनुभव होना दुष्कर है। इसलिये व्यवहार और निश्चय को अच्छी तरह जानकर पश्चात यथायोग्य अगीकार करना पक्षपाती न होना यह उत्तम श्रोता का लक्षण है। यहॉ पर यदि कोई प्रश्न करे कि जो गुण (निश्चय–व्यवहार का जानना) वक्ता का कहा था वही श्रोता का क्यो कहा? तो उत्तर यही समझना है कि वक्ता के गुण अधिकता से रहते हैं और श्रोता मे वे ही गुण अल्परूप से रहते हैं। अत पुन समझना धर्मतीर्थ के प्रचार हेतु उभय नय का ज्ञान अनिवार्य ही है। इसके बिना उपदेश देने का भी अधिकार नहीं है। इस प्रकार समझकर स्वपर कल्याण के इच्छुक को सतत् नय अभ्यास करते रहना चाहिये।
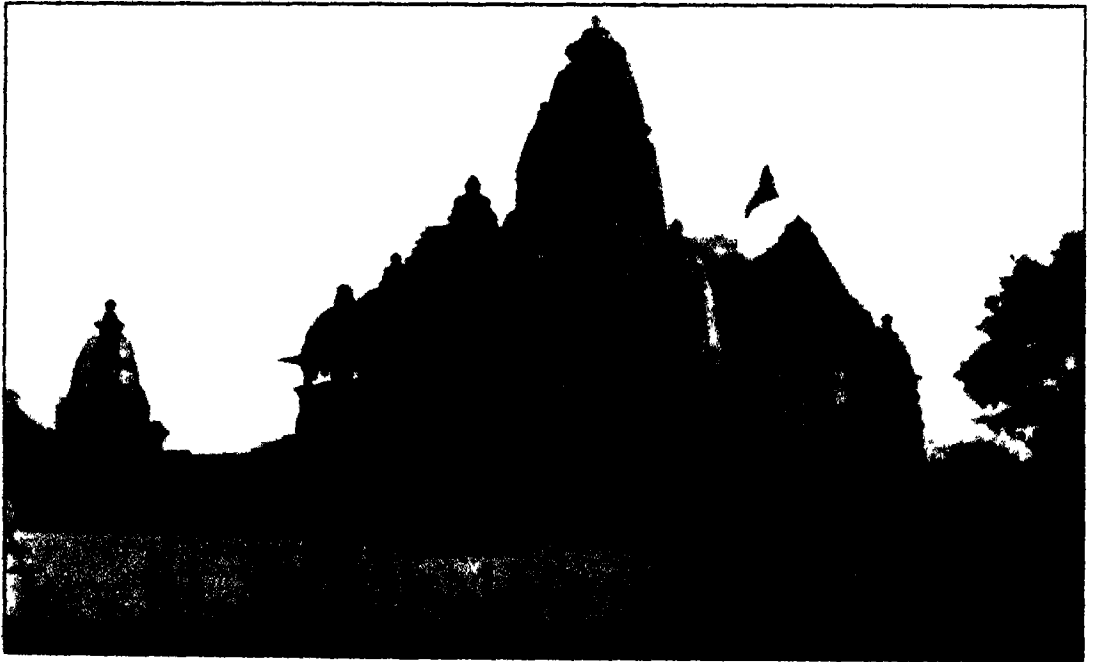
जैन मदिर समूह, खजुराहो

"भूतार्थ दृष्टि"

निश्चयमिह भूतार्थ व्यवहार वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुख प्राय सर्वोऽपि ससार ।। ५।।

अन्वयार्थ इह = इस (ग्रथ मे)। निश्चय भूतार्थ = निश्चयनय को भूतार्थ। व्यवहार अभूतार्थ = व्यवहार नय को अभूतार्थ। वर्णयन्ति =वर्णन करते हैं। प्राय = प्राय। भूतार्थबोधविमुख = भूतार्थ अर्थात् निश्चय नय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय है वह। सर्वोऽपि = समस्त ही ससार = ससार स्वरूप है।

|| पुरुषार्थ देशना || ५||

मनीषियो। जगत मे धर्म तीर्थ का प्रवर्तन वही करा सकता है जो निश्चय और व्यवहार नयो का ज्ञाता हो और दोनो नयो को आधार मानकर चले। एक नय का ही आश्रय करने वाला कभी भी धर्म तीर्थ को न तो समझ सकेगा और न ही प्रवर्तित कर सकेगा। जो धर्म तीर्थ को ही नही समझ सका वह आत्मतीर्थ को भी नही समझ सकता। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने "पुरुषार्थ सिद्धयुपाय" ग्रथ की चौथी कारिका मे यही बात कही कि—मुख्य और उपचार के कथन द्वारा ही शिष्यो का दुर्निवार अज्ञान भाव नष्ट किया जा सकता है तथा निश्चय नय और व्यवहार नय के जानने वाले आचार्य ही धर्म तीर्थ के जगत मे प्रवर्तिते है।

भो ज्ञानी। 'अलाप पद्धति" मे आचार्य देवसेन स्वामी कहते है कि प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म को अर्थात् अश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते है। अध्यात्म भाषा मे मूलरूप से नय के दो भेद हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय। निश्चयनय का विषय अभेद है, व्यवहारनय का विषय भेद है। अभेद के विषय के आधार पर भी निश्चय नय के दो भेद होते हैं, जो नय कर्मजनित विकार से रहित गुण—गुणी को अभेदरूप से ग्रहण करता है वह शुद्ध निश्चय नय है जैसे "केवलज्ञान स्वरूपी जीव अथवा केवलदर्शन स्वरूपी जीव।" जो नय कर्म जनित, विकार सहित गुण—गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करता है वह अशुद्ध निश्चयनय है जैसे मति ज्ञानादि स्वरूपी जीव अथवा रागीद्वेषी जीव। आचार्य अमृतचद्र स्वामी इस ग्रथ की पाँचवी कारिका में नय की बहुत गहरी गुत्थी को सुलझाने जा रहे हैं—जिससे वर्द्धमान स्वामी के तीर्थकाल मे शिष्यो का दुर्निवार अज्ञानाधकार नष्ट होकर जगत मे धर्म तीर्थ का प्रवर्त्तन पचमकाल के अत

तक चलता रहे।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र महाराज इस कारिका मे निश्चय नय को भूतार्थ और व्यवहार नय को अभूतार्थ बताते हुए कहते हैं कि भूतार्थ के बोध से विमुख प्राय सब ही ससारी जीव है। अत इस ग्रथ मे अबुधस्य बोधनार्थं" अर्थात् बोध से रहित जीव को व्यवहार के स्वरूप का बोध हो जाने से उसका दुर्निवार ससार स्वरूप नाश को प्राप्त हो जाता है। अत हमे यह समझना अत्यत आवश्यक हो जाता है कि अध्यात्म ग्रथों मे व्यवहार को अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहा इसका क्या अर्थ है ? मनीषियो! अभूतार्थ का अर्थ मात्र 'झूठा' नही होता क्योकि मोक्षमार्ग मे 'अ' उपसर्ग का अर्थ ईषत्' होने से अभूतार्थ/असत्यार्थ का अर्थ तात्कालिक प्रयोजनवान' माना गया है। आचार्य जयसेन स्वामी ने समयसार' ग्रथ की टीका करते हुए कई स्थानो पर लिखा है कि व्यवहार नय असत्यार्थ होने पर भी, साधक को उसकी भूमिका के अनुसार प्रयोजनवान है। निर्विकल्प समाधि मे निरत होकर रहने वाले सम्यग्दृष्टियो को भूतार्थ स्वरूप ही प्रयोजनवान माना गया है किन्तु उन्ही निर्विकल्प समाधि रतो मे से किन्ही को सविकल्प अवस्था मे मिथ्यात्व–कषाय रूप दुर्ध्यान को दूर करने के लिये व्यवहारनय भी प्रयोजनवान होता है। आलाप पद्धति ग्रथ' मे आचार्य देवसेन स्वामी ने एक सूत्र दिया है – मुख्या भावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचार प्रवर्त्तते' ।।२१२।। अर्थात् मुख्य के अभाव मे प्रयोजन वश उपचार की प्रवृत्ति होती है। भो ज्ञानी! आगम एव अध्यात्म भाषा मे व्यवहारनय के कई भेद किये हैं। जब तक इनकी गुत्थी नही सुझलती है तब तक मोक्षमार्ग पर आरोहण नही हो पाता। अध्यात्म अपेक्षा व्यवहारनय के दो भेद किये गये है–सद्भूत व्यवहारनय एव असद्भूत व्यवहारनय। एक वस्तु को विषय करने वाला सद्भूत व्यवहार नय है और भिन्न वस्तुओ के विषय को ग्रहण करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है। सद्भूत व्यवहारनय के उपचरित और अनुपचरित नामक दो भेद हैं। "कर्मजनित विकार सहित जीव के गुण–गुणी के भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहारनय है जैसे जीव के मति ज्ञानादिक गुण। यह अशुद्ध "सद्भूत व्यवहार" शब्द से भी जाना जाता है–जैसे जीव के राग द्वेष आदि है।

'कर्मजनित विकार से रहित जीव के शुद्ध गुण–गुणी के भेद रूप विषय को ग्रहण करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है जैसे जीव के केवलज्ञानादि गुण।" इसे 'शुद्ध सद्भुत व्यवहारनय" शब्द से भी जाना जाता है। जैसे सद्भूत की तरह "असद्भूत व्यवहार के भी दो भेद हैं–उपचरित असद्भूत एव अनुपचरित असद्भूत।' सश्लेष–सम्बन्ध से रहित ऐसी भिन्न–भिन्न वस्तुओ का परस्पर मे सम्बन्ध ग्रहण करना उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का विषय है–जैसे देवदत्त का धन देवदत्त की स्त्री, आत्मा, घट पट और रथ आदि का कर्त्ता है। 'सश्लेष सहित भिन्न–भिन्न वस्तु के सम्बन्ध को विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है" जैसे जीव का शरीर, आत्मा द्रव्यकर्मो का कर्त्ता और उसके फलस्वरूप सुख–दुख का भोक्ता है। जीव यथा

सम्भव द्रव्य–प्राणों से जीता है।

भो ज्ञानी! आगम की भाषा मे असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का कहा है (1) स्वजाति असद्भूत (2) विजाति असद्भूत (3) स्वजाति–विजाति असद्भूत।

(1) परमाणु को बहुप्रदेशी कहना स्वजाति असद्भूत व्यवहारनय का उदाहरण है।

(2) मतिज्ञान मूर्त है, क्योकि मूर्त द्रव्य से उत्पन्न हुआ है, विजाति व्यवहार नय असद्भूत है

(3) ज्ञान का विषय होने के कारण जीव–अजीव ज्ञेयो मे ज्ञान का कथन करना स्वजाति–विजाति असद्भूत व्यवहारनय है।

इसी प्रकार आगम भाषा मे उपचारित व्यवहारनय के भी तीन उपनय कहे गये है। जैसे पुत्र–स्त्री आदि मेरे हैं ऐसा कथन करना स्वजाति उपचरित असद्भूत उपनय है।

= वस्त्र आभूषण स्वर्ण आदि मेरे है ऐसा कहना विजाति उपचरित असद्भूत उपनय है।

= देश राज्य, दुर्ग आदि मेरे हैं ऐसा कहना स्वजाति–विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है।

भो ज्ञानी! व्यवहारनय अभूतार्थ है इस गुत्थी को हमारे दैनिक जीवन की चर्या मे भी समझा जा सकता है। जिस घट मे घी भरा है उसे घी का घडा कहा जाता है और जो घट पानी भरने के काम मे लिया जाता है उसे पानी का घट कहते हैं, जबकि घट न तो घी का है और न पानी का, घट तो मिट्टी का है,यह कथन दो भिन्न वस्तुओ मे सयोग सम्बन्ध होने के कारण उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा गया है। इसी तरह से "यह शातिनाथ जिनालय है, यह शीतलनाथ जिनालय है–ऐसे कथन भी उपचरित असद्भूत के अन्तर्गत आते है,' परतु मेरे शरीर मे फोडा हो गया है, मुझे बहुत दुख हो रहा है, मैं विह्वल हूँ, यह अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की दृष्टि से कहा जाता है। यदि तुम इस सब व्यवहार को झूठा कह दोगे तो तुम हिसा झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह के पाप मे अन्दर बाहर से एक रहते हुये भी ज्ञान स्वभावी हो तथा आत्मा के अभिप्राय को न समझकर ससार के स्वरूप मे ही भटकते रहोगे।

आचार्य अमृतचद्र स्वामी की कारिका पढते समय व्यवहारनय अभूतार्थ है अर्थात् झूठा मानकर तुम सोच रहे थे कि हमे बोध हो गया और हम मोक्षमार्ग पर आरूढ हो गये, पर ऐसा मानकर अज्ञानाधकार नाश को प्राप्त नही होता है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने "समयसार" ग्रथ की बारहवीं गाथा की टीका करते हुये कहा है कि "हे भव्यो! यदि तुम जिनमत का प्रवर्त्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय–दोनो नयो को मत छोडो, क्योकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ व्यवहारमार्ग का नाश हो जायेगा और निश्चय के बिना तत्त्व (वस्तु) का ही नाश हो जायेगा।" ऐसे ही पहले जिनवाणी का

विरलन कर दो, फैला दो, फिर आत्म तत्त्व को समेट लो। जैसे–गदे कपडों को साफ करने के लिये पहले तुम पानी मे गीले करते हो, साबुन लगाते, रगडते हो, फिर साफ पानी मे डालकर उसका सारा साबुन निकालकर सूखने के लिये फैला देते हो– मौसम के अनुसार पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर सूखे और साफ कपडो का तुम उपयोग करते हो। इसी तरह तुम्हें निश्चयनय एव व्यवहारनय के भेद प्रभेद की गुत्थि मे प्रवेश करना पडेगा, मथन करना पडेगा। अत सावधानी पूर्वक इनका बोध ा प्राप्त होने पर मोक्षमार्ग मे प्रवेश होगा।

भो ज्ञानी! निश्चय व्यवहारनय की चटपटी बातों मे ही मत अटक जाना, अन्यथा जैसे दाल मे भपका (बघार) डाल देने से या नमक डाल देने से जो दाल का स्वाद आता है वह दाल का मूल स्वाद नहीं होता, जीवन भर ऐसी दाल खाते रहने पर भी तुम दाल के स्वाद को नहीं बता सकते हो। इसी तरह आत्मा का जो स्वाद (बोध) होता है, वह 'डाला' नही जाता है, पर के हटाने से स्वय सत्य स्वभाव मे प्रगट होता है।

भो ज्ञानी! अनादि से भोगो के बघार दिन–प्रतिदिन क्षण–प्रतिक्षण डालते हुये तुम आत्मा के स्वाद को जानना चाहते हो ? आचार्य अमृतचद्र स्वामी इस कारिका मे कह रहे हैं कि 'निश्चयनय के बोध से रहित यह सब ससार ही है" मेरा विदिशा मे प्रभाव है तथा देश के प्रधानमत्री का देश मे प्रभाव है तो वो पुण्यात्मा है, भो ज्ञानी! चारित्र की कीमत प्रभाव से मत जोडना। जिसने सयम को, आगम को प्रभाव से जोडा उसने सयम और आगम की कोई कीमत नही की। जैसे जब तुम श्रीजी की प्रतिमा लेने जयपुर जाते हो तो वहाँ प्रतिमा की कीमत नहीं चुकाते हो, न्यौछावर देकर आते हो। कारण अरिहन्तो को खरीदा नही जाता, निर्ग्रंथो को खरीदा नहीं जाता।

भो ज्ञानी! तुमने समयसार" पढा, "मूलाचार" पढा, "प्रवचनसार' पढा सब आगम पढ लिये फिर भी हम गिरे तो कहाँ गिरे– जैसे गिद्ध उडा तो आसमान मे लेकिन उसकी दृष्टि रही मास के टुकडे पर। जैसे ही मास का टुकडा या मरा जानवर दिखा, झपट्टा मारकर मास को ले उडा। इसी तरह तू अर्हतो के जिनालय से निकला, जिनवाणी के पास से गुजरा निर्ग्रंथ गुरूओ के पास बैठा, सत्सग किया, लेकिन फिर उडा तो बैठा कहाँ ? गिद्ध की तरह या तोते की तरह। तुमने दान दिया, नाम अकित कराया। नाम अकित नही हुआ या जहाँ तुम चाहते थे वहाँ अकित नहीं हुआ। तो बोले कि– महाराज! मैं नही आऊँगा प्रवचन सभा मे, रूठ गये। एक ओर था चिन्तामणि रत्न और एक ओर था खली का टुकडा। तुम आज भी चितामणी रत्न को छोडकर खली का टुकडा न मिलने पर नाराज हो धर्मायतन को छोडने तैयार हो। तो समझो, तुमने अभी निश्चयनय को भूतार्थ और व्यवहारनय को अभूतार्थ जाना ही नहीं है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि– भूतार्थ के बोध से विमुख जो कुछ भी निश्चय–व्यवहार को जानते हैं वह सर्वोऽपि=समस्त ससार

स्वरूप ही है।

अहो! किसी ने अर्घ चढाना धर्म मान लिया, किसी ने अर्घ हटाना धर्म मान लिया, किसी ने आरती उतारी, किसी ने आरती फेक कर धर्म मान लिया। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं—भूतार्थ से विमुख हे ज्ञानी! आरती उतारने मे राग, और अर्घ हटाने/आरती फेकने मे जो द्वेष हुआ है, हो रहा है—यह तो धर्म से विमुख होना है। अत भूतार्थ को समझो और उतारना है तो कषाय को उतारो। अदर—बाहर की कषाय उतर जायेगी तो भूतार्थ समझ मे आ जायेगा। व्यवहारनय स्वत अभूतार्थ हो जायेगा, क्योकि वह तो था ही तात्कालीन प्रयोजनवान।

अतिम-श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहू की गुफा, चद्रगिरी, श्रवणबेलगोल
यहीं सेउन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ था

"द्रव्य व द्रव्य दृष्टि"

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा. देशयन्त्यभूतार्थम् ।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ।। ६ ।।

अन्वयार्थ मुनीश्वरा अबुधस्य = ग्रन्थकर्ता आचार्य, अज्ञानी जीवो को। बोधनार्थं = ज्ञान उत्पन्न करने के लिये। अभूतार्थं देशयन्ति = व्यवहारनय का उपदेश करते हैं और। य केवल= जो जीव केवल। व्यवहारम् एव अवैति = व्यवहार नय को ही साध्य जानता है। तस्य देशना नास्ति = उस मिथ्यादृष्टि जीव के लिये उपदेश नही है।

माणवक एव सिहो यथा भवत्यनवगीतसिहस्य ।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयता यात्यनिश्चयज्ञस्य ।। ७ ।।

अन्वयार्थ यथा = जैसे। अनवगीतसिहस्य = सिह को सर्वथा नही जानने वाले पुरुष को। माणवक एव = बिल्ली ही। सिह भवति = सिहरूप होती है। हि तथा = निश्चय करके उसी प्रकार। अनिश्चयज्ञस्य = निश्चयनय के स्वरूप से अपरिचित पुरुष के लिये। व्यवहार एव = व्यवहार ही निश्चयता याति = निश्चयनय के स्वरूप को प्राप्त होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ६ ।।

मनीषियो! भूतार्थ दृष्टि ही सत्यार्थ दृष्टि है। व्यवहार को अभूतार्थ कहने का आचार्य महाराज का उद्देश्य लोक व्यवस्था भग करना नहीं है। व्यवहार को अभूतार्थ कहने का उद्देश्य आचार्य महाराज का यह है कि कही 'घी का घडा' वाक्य से चलने वाले व्यवहार को सुनकर, कोई भोला जीव 'घी से निर्मित घडे को 'निश्चय' मे न ले, क्योकि घी से निर्मित घडा होता ही नही है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। जब तुम कहीं बाहर जाते हो तो रिक्शे वाले का नाम तो मालूम नही होता है, दूर से ही चिल्लाते हो–ऐ रिक्शा! तो रिक्शा खडा हो जाता है। मनीषियो! यही व्यवहार की व्यवस्था है।

भो ज्ञानी! परमार्थ तत्त्व को समझने के लिये व्यवहार दृष्टि से देखते हैं तो खडिया से पुती दीवार चूने से पुती दीवार को भले ही आप 'सफेद दीवार' कहते हो, लेकिन दीवार सफेद नही है, सफेद तो चूना है। चूना दीवार पर पुता है इसलिये हम दीवार को सफेद कहते हैं। इसी प्रकार

आत्मा, शरीर नहीं है, आत्मा, पुद्गल नहीं है। किन्तु आत्मा शरीर रूप कही जा रही है। मनुष्य होने के कारण यह आत्मा भी शरीर रूप कही जा रही है यह मनुष्य है, यह तिर्यंच हैं, यह नारकी है, ये भी मनीषियो! भूतार्थ नहीं, सभी अभूतार्थ है।

मनीषियो! इस ससार के स्वरूप को तुमने अनत काल से नही समझा है। ससार के स्वरूप को न समझने के कारण ही तुम ससार मे फँसे हो। अब कुछ उस दिशा–दशा को भी देखो, कि आज तक तुम ससार को क्यो नहीं समझ सके हो ? एक नीलमणि को दुग्ध के बर्तन मे आपने छोड दिया,पूरा दूध नीला दिखता है। दूध नीला क्यो दिखता है ? क्योकि मणि की आभा से दूध नीला झलक रहा है। ऐसे ही यह चैतन्यमयी आत्मा इस शरीर मे है, इसलिए यह शरीर चैतन्य कहला रहा है परतु आत्मा चैतन्य है शरीर जड है। उस मणि के कारण दूध को तू नीला निहार रहा है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि हे जीव! शरीर के सयोग से शरीर को चैतन्य मानकर पता नहीं तूने कितने कर्मों को आमत्रित किया है। यथार्थ बताना कितना समय आपने शरीर को दिया है और आत्मा को कितना समय दिया ? यह समय अपने शरीर को दिया होता तो भी समझ मे आता है पर आपने सयोग सबधो को दिया है। अहो प्रज्ञात्मन! आप जितना अपने पीछे नहीं रो रहे, जितना पर सयोग के पीछे रो रहे हो। आपने इन सयोगो को जीव की स्वभाव दृष्टि से देखा है। ध्यान रखना जितने सयोग है उतने ही वियोग है और जितना वियोग है उतना ही रोना है इसलिये आचार्य भगवन् इस व्यवहार को अभूतार्थ कह रहे हैं।

पाचवी कारिका मे आचार्य भगवन ने कह दिया कि निश्चय भूतार्थ है। वह ही सत्यार्थ है। इसे बहुत स्थूल दृष्टि से समझ लो कि जब आप कही बाहर विदेश मे होते हो, तो अपने देश के व्यक्ति को आप भाई कहते हो। वहाँ पर आप जाति नही देखते हो, पथ नही देखते हो आम्नाय नही देखते हो, वहाँ पर तो आपको देश दिखता है और जब तुम भारत मे आ जाते हो तो प्रदेश झलकने लगता है, सभाग झलकने लगता है और कही आप विदिशा पहुँच जाते हो तो मोहल्ले वाले को भाई कहने लगते हो। सभाग का भाई समाप्त हो गया और जब आप मोहल्ले मे ही आ जाते हो तो पडोसी भाई होने लगता है और जब घर मे पहुँच जाते हो तो भाई भाई दिखता है, तो फिर तुम सगे को देखने लगते हो। यथायोग्य निश्चय–व्यवहार का यह सयोग, भूतार्थ है। भो ज्ञानी! जिस दिन सत बन जाओगे उस दिन सगे भी तुम्हे पराये दिखेगे और जिस दिन स्वरूप मे चले जाओगे उस दिन ये पुद्गल भी पराया हो जायेगा। अत दृष्टि सम्यक् रखना। वस्तु स्वरूप यही है, यही भूतार्थ है, यही सत्यार्थ है। वास्तविक तत्व यही है बाकी सब व्यवहारिकता है। जैसे–जैसे आप अपने पास आते हो वैसे–वैसे सबध तुम्हारे छूटते जाते हैं। छठवीं कारिका मे अमृतचद्र स्वामी गहनतम बात करने जा रहे हैं कि आज तक जीव ने निश्चय और व्यवहार शब्दो को सुना है। निश्चय–व्यवहार के स्वरूप को नहीं समझा।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र स्वामी दोनों नयों को समझा रहे हैं–व्यवहार अभूतार्थ हैं, निश्चय भूतार्थ हैं, परतु निश्चय भूतार्थ भी हैं, अभूतार्थ भी हैं। समझना, पडोसी किसी भी जाति का क्यो न हो, परतु उनमे भी आप काका, दादा, चाचा का सबध बनाकर चलते हो और पडोसी के भाई को भाई कहते हो। उसका बेटा, वह भतीजा है, परतु ध्यान रखो तुम्हारे भाई का बेटा भी तो भतीजा है। निश्चय, निश्चय ही है, भूतार्थ भी है। लेकिन जिसने व्यवहार को ही लेकर अपना जीवन प्रारभ कर दिया है उसके लिये कहना कि अभी थोडा रुक जाओ। निश्चय–व्यवहार के विवाद हैं। निश्चय नय द्रव्य–दृष्टि है, द्रव्य नहीं है। इसलिये जो द्रव्य है वह तो भूतार्थ ही है, द्रव्य–दृष्टि भूतार्थ को समझने की दृष्टि है, परतु द्रव्य निश्चय–व्यवहार दोनो से परे हैं, वो ही तेरी शुद्ध दशा है। पूर्व गाथा मे कहा कि आत्मा नय से अतीत है, वह द्रव्य है। अनेकान्त कहता है द्रव्य दृष्टि से, द्रव्य शुद्ध है। द्रव्य, द्रव्य है। द्रव्य दृष्टि, द्रव्य नही है। अब देखना द्रव्य दृष्टि से सोलह वर्ष का बालक, पिता है। द्रव्य दृष्टि से, जन्म लेने वाली बालिका, माता है। परतु द्रव्य से जन्म लेने वाला वो बालक पिता नही है और वह बालिका माता भी नहीं है। स्त्री धर्म उसी दिन से है जिस दिन से जन्मी थी, परतु माता धर्म तब होगा जब बेटे को जन्म देगी। थोड़ा समझना, द्रव्य दृष्टि और द्रव्य को। जब एक इक्कीस वर्ष का युवा होगा और सतान उत्पत्ति की क्षमता से युक्त होगा तब उसका पुरुषत्व धर्म प्रगट होगा। लेकिन पुरुष उसी दिन से था, जिस दिन जन्मा था।

मनीषियो! यह आत्मा जब निगोद मे थी तब भी द्रव्य दृष्टि से परमात्मा थी और आज जब मनुष्य के शरीर मे है तब भी परमात्मा है, परतु द्रव्य से परमात्मा तभी होगी जब अष्ट कर्म से रहित होगी और जिसने द्रव्य दृष्टि को ही द्रव्य परमात्मा मान लिया है वह मिथ्यादृष्टि ही है। जिसने द्रव्य को द्रव्य माना, दृष्टि को दृष्टि माना, वो ही बनने वाला शुद्ध भगवान हैं। भो ज्ञानी! दृष्टि समझने का ही विषय हैं। दृष्टि वस्तु नहीं है। दृष्टि, दृष्टि है और सम्यक् पना भिन्न है। जो नय दृष्टि को मानता है, वह सम्यक्दृष्टि हैं। जो नयदृष्टि को नहीं मानता हैं, वह दोनो ऑखो से युक्त होने पर भी दृष्टि हीन हैं।

पुन समझना, द्रव्य से, द्रव्य है। पर्याय से पर्याय है। गुण से गुण हैं। परतु द्रव्य, पर्याय, गुण से रहित कोई द्रव्य ही नही है। क्योकि आगम मे तीन बाते ही हैं– द्रव्य, गुण, पर्याय। द्रव्य मतलब वस्तु। ये पेन दिख रहा है आपको? पेन मत कहना, पुद्गल कहना । इसकी सज्ञा पेन है। भो ज्ञानी! पुद्गल द्रव्य की पर्याय पेन है। स्पर्श, रस, गध, वर्ण यह गुण हैं। इसमे से रस को अलग कर दो, पेन पर्याय को अलग कर दो, पेन द्रव्य को अलग कर दो। तो क्या बचेगा? भो ज्ञानी! जहाँ द्रव्य होगा वहॉ नियम से पर्याय होगी। जहॉ पर्याय होगी वहॉ नियम से द्रव्य होगा। दोनो परस्पर मे कभी पृथक–पृथक नही होते हैं और लोक व्यवहार कहेगा ये मेरा पेन है। निश्चय नय कहेगा

यह किसी का द्रव्य नहीं है। यह अपनी स्वतत्र सत्ता से युक्त है। वह पेन जब तुम्हारे हाथ से गुम हो जाता है तो वह ज्ञानी, अध्यात्म विद्याशील कहता है कि पेन अपने चतुष्टय से कहीं गया ही नहीं। जेब से चला गया है तो मैं दुखी हो रहा हूँ, मेरा कुछ गया नहीं। जब हम द्रव्य दृष्टि से देखते हैं, तो मैं सुखी भी नहीं, दुखी भी नहीं, रक भी नहीं, राव भी नहीं हूँ। मैं मात्र चैतन्य द्रव्य हूँ। जब पर्याय दृष्टि से देखते हो तो मैं मनुष्य हूँ, मैं धनी हूँ, मैं दरिद्र हूँ। बस यही दरिद्री होने के लक्षण हैं। क्योंकि जहाँ रोना प्रारंभ हुआ वहाँ रोना ही रोना हैं। पुन देखना मुझे एक स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति हुई, प्रसन्न हो गया। जबकि वह द्रव्य अपने चतुष्टय मे स्वतत्र है, यह भूतार्थ है। उसे मैं अपना मान रहा हूँ, यह अभूतार्थ है। व्यवहार आ गया। वही स्वर्ण की डली कोई उठा ले गया तो यथार्थ बताना, तुम्हारे परिणाम क्या हो गये?

भो ज्ञानी। कामना चित्त को प्रभावित करती है और जब चित्त प्रभावित होता है तो कर्म बध ा प्रारभ हो जाता है। एक योगी के सामने स्वर्ण माला चढी, पर उसे खिन्नता–प्रसन्नता नहीं, क्योकि उसे भूतार्थ दिख रहा था। जिसने भूतार्थ को, अभूतार्थ मान लिया, असत्यार्थ को सत्यार्थ मान लिया, उसे हर्षित होना पडा और बिलखना भी पडा। इसलिये, न तो धर्म तीर्थ के नाश के लिये, न लोक व्यवहार के नाश के लिये, न आगम व्यवस्था के बिगाडने के लिये, अपितु अपने स्वचतुष्टय को निर्मल रखने के लिये निश्चय भूतार्थ हैं और व्यवहार अभूतार्थ हैं। सर्वज्ञ देव ने न्याय करने के लिये नय का कथन किया है। इसलिये परादृष्टि ही सम्यक्‌दृष्टि और पर–दृष्टि ही मिथ्यादृष्टि। अहो। आत्मदृ ष्टि ही परादृष्टि है, परा याने उत्कृष्ट। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो पुरुषार्थ मे यदि कोई परा है, तो मोक्ष है।

भो ज्ञानी। द्रव्य दृष्टि ही आत्म दृष्टि और द्रव्य दृष्टि ही मिथ्या दृष्टि। पर द्रव्य, द्रव्य है। देखो तो, छह द्रव्य हैं, छह द्रव्यो के ही मध्य मे सब कुछ हो रहा है। तीन लोक मे छह द्रव्य के आगे कुछ भी नही है। छह द्रव्यो मे से जो आत्म द्रव्य को पकडे–वह सम्यक्‌दृष्टि और जो पर–द्रव्य को पकडे, पुद्‌गल द्रव्य को पकडे, धन पैसे को पकडे–वो मिथ्यादृष्टि। इसलिये 'शब्दानाम् अनेकार्था'। एक निर्ग्रंथ योगी जिसकी दृष्टि निर्मल होती है, प्रत्येक अर्थ को निर्मल देखता है।

भो ज्ञानी। अर्थ, अर्थ है। अर्थ को अर्थ ही रहने देना, अर्थ को अनर्थ मत कर देना। नय–नय है। वस्तु, वस्तु है। दृष्टि, दृष्टि है। दृष्टि, वस्तु नहीं, परतु विवाद तब आ जाता है जब भाषा मे, तुम्हारे विपरीत भाव मिश्रित हो जाते हैं। भाषा मे दोष नही, चाहे निश्चय की भाषा हो, चाहे व्यवहार की, परतु भावो की गडबडी भाषा को गडबड कर देती है। जैसे कि बिल्ली उसी मुख से अपने बच्चे को पकडती, तो कैसे लाती है और चूहे को पकडती है, तो कैसे लाती है। मुख मे दोष नहीं है, दोष उसके भावो मे है।

भो ज्ञानी! भाषा मे दोष नहीं है। बेटा उसी मुख से पिता को बुलाता है, उसी मुख से माता को बुलाता है, उसी मुख से पत्नी को बुलाता है। परतु क्या एक से भाव होते हैं? इसलिये स्त्री–राग द्वेष का कारण नही है। स्त्री के प्रति राग–द्वेष की भावना ही, विकार की भावना होती है। माँ/पत्नि वह भी स्त्री थी।

भो ज्ञानी! स्त्री मे विकार नहीं, स्त्री मे राग नही, स्त्री में द्वेष नही, यह तेरी दृष्टि का दोष है। वस्तु मे दोष नही। अहो! जब राग था तो व्यवहार था जब वैराग्य है तो निश्चय है, भूतार्थ है। भो चेतन! दृष्टि दृष्टि है। दृष्टि, वस्तु नही है। यह सब विकारी भावो की दृष्टियाँ हैं। शुद्ध भावो मे न कोई दृष्टि है, न कोई वस्तु है। एकमात्र मै ही चिद्रूप व्यक्ति हूँ, इसलिये पुरुषार्थ करना पडेगा।

भो ज्ञानी! जो पुरुषार्थ को गौण कर रहा है, वह भी पुरुषार्थ कर रहा है। जो पुरुषार्थ को नाश करने का विचार कर रहा है जो निमित्त को उडाने की बात कर रहा है, वह भी निमित्त ही बन रहा है। पुरु अर्थात आत्मा। 'बृहद द्रव्य सग्रह मे आचार्य नेमीचद्र स्वामी लिख रहे हैं–

पुग्गल कम्मादीण कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदे।
चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्ध भावाण ।८।

यह जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता है। भो ज्ञानी! यह धर्मशाला किसने बनवाई ? पुरुष ने या परमेश्वर ने ? देखो भटकना नही। ऐसा कह दो– उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से यह जीव घटपट मकान आदि का भी कर्ता है और अशुद्ध निश्चय नय से रागादिक भावो का कर्ता है। निश्चय नय से स्वभावो का कर्ता है। परम शुद्ध निश्चय नय से न किसी का कर्ता है न किसी का भोक्ता है। मैं पर का किचित मात्र भी कर्ता नही हूँ। यदि कर्ता बने रहे तो रोते रहोगे। जो–जो कर्ता है वह–वह रोता है और जो अकर्ता है वह कभी नही रोता।

अस्पताल मे एक बालक तडफ रहा था एक पलग पर, बगल मे दूसरा बालक भी तडफ रहा है। बालक सज्ञा दोनो की है। पहले बालक के लिये डाक्टर ने कहा–बस, दस–पाच मिनिट का जीवन है पर आपको कोई असर नहीं हुआ। वह डाक्टर पुन लौटकर आया जिस पलग पर आप बच्चे को लेकर बैठे थे और उसी भाषा का उपयोग किया, तो ऑखो मे टप–टप ऑसू टपकने लगे। अहो! बालक तो दोनो थे, एक मे तुम्हारा अपनत्व भाव छिपा था, एक मे अपनत्व का भाव नहीं था। जहॉ कर्ता भाव था, वहाँ तुम रोने लगे। जहॉ कर्ता भाव नहीं था, वहाँ तुम चुप रहे।

भो ज्ञानी! द्रव्य दृष्टि और पर्याय दृष्टि दोनो की व्याख्या करते–करते पूरा जीवन निकाल देना, पर तुम द्रव्य की प्राप्ति कर ही नहीं सकते। मालूम चला कि वह द्रव्य दृष्टि सम्प्रदाय बन गया।

द्रव्य दृष्टि खो गई और सप्रदाय की रक्षा प्रारम हो गई। अहो! इस पर्याय दृष्टि समझने मे पूरी पर्याय निकली जा रही है, पर पर्याय को समझ नहीं पा रहा है। मालूम चला कि पर्याय का पथ बन गया, परतु अमृतचद्र स्वामी कह रहे 'तस्य देशना नास्ति', उनको देशना नहीं है।

मनीषियो! निश्चय व्यवहार कोई हउआ नहीं है। यह वस्तु समझाने की व्यवस्था है। भाषा है। भाषा, भाषा होती है। भाषा न कभी वस्तु हुई, ना कभी होगी। वस्तु कथन की शैलिया भिन्न–भिन्न है। वस्तु स्वरूप तो एक ही है। जो वस्तु है, वो ही स्वरूप है। जो स्वरूप है, वो ही वस्तु है। जिसमे स्वरूप नहीं है वह वस्तु कैसी है ? भाषाओ को लेकर तुम झगड रहे हो और परिणाम खराब कर रहे हो। देखो निश्चय वाले आ गये, व्यवहार वाले आ गये। यह अध्यात्म नहीं है। अध्यात्म वह है जो टूटी आत्मा को आत्मा मे जोड दे। अध्यात्म कहता है कि तुम सबसे हट जाओ पर्याय से हट जाओ। अपनी आत्मा को आत्मा मे जोड दो इसका नाम अध्यात्म है। जब हम एक इद्रिय वनस्पति मे देख रहे हैं कि भावी भगवान बैठा है, कितु घर मे भाई–भाई से मुँह नही बोल रहा है, क्योकि हमारे अनुसार नहीं चल रहे हैं।

अहो भाषा के भगवन्तो! तुम्हे कभी सुख की प्राप्ति नही होगी। भाषा के भगवान बनाने से भगवान नही बनोगे। भावो के भगवान बनने से भगवान बनोगे। ग्रथ से नहीं, निर्ग्रंथ दशा से ही मोक्षमार्ग है। भो चेतन! मोक्ष मार्ग क्या है ? निर्ग्रंथ होना मोक्षमार्ग है। अहो निर्ग्रंथो की उपासना ही सग्रथो का मोक्षमार्ग है। श्रावको! यही तुम्हारा मोक्ष मार्ग है, परतु इससे मोक्ष नहीं मिलेगा। मोक्ष तभी मिलेगा जब तुम इस मार्ग को प्राप्त कर लोगे। इसलिये 'देशना नास्ति' कहा, क्यो? क्योकि उसने आराधना को सर्वथा मान लिया इसलिये देशना नही है। मार्ग भी है। परतु आगे मार्ग पकडना पडेगा।

भो ज्ञानी! अबुध को बोध कराने के लिए व्यवहार नय का कथन किया है। परतु जो व्यवहार मात्र को ही मोक्ष मार्ग मान बैठा, निश्चय को मानना ही नहीं चाहता है, सुनना ही नहीं चाहता है समझना ही नही चाहता है, 'तस्य देशना नास्ति" उसके लिये भी देशना नही है। परमार्थ को समझने के लिए कथन चल रहा है और जो मात्र नि सही, नि·सही चिल्ला रहा है, उसके लिये देशना नास्ति।' भो ज्ञानी! ध्यान रखना, कथन काकतालीय न्याय से भी होता है। जैसे पडित जी ने कहा, बेटा! घी रखा है, कौआ आये तो बचाना, बिगाड न जाये, बेटा बोला–ठीक पिताजी, जो आज्ञा। बिल्ली आई, बिगाड कर चली गई। पडित जी बोले–क्यों बेटा? पिताजी आपने बोला था कि कौआ से रक्षा करना, बिल्ली से नही बोला था। तो बेटा! इतनी बुद्धि तुम्हारी नही चली कि कौआ से बचाने को बोला था, तो बिल्ली से तो पहले ही बचाना था। वैसे ही जब एक नय से व्यवहारी को 'देशना नास्ति', वैसे ही एक दृष्टि से निश्चयी को भी 'देशना नास्ति।' बिना व्यवहार के निश्चय हो नहीं सकता। ध्यान रखो, जैसे बिल्ली शेर नहीं है, वैसे ही आपकी आत्मा भगवान नहीं है। कार्य परमात्मा तभी होगा जब कारण परमात्मा का कार्य करेगा। बिना कार्य करे भगवान

आत्मा नहीं है। सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही तो कारण परमात्मा है। इस अशुद्ध आत्मा को योगो मे लिप्त आत्मा को, कारण परमात्मा मत बना देना। आचार्य, उपाध्याय, साधु की आत्मा कारण परमात्मा है और अरिहत, सिद्ध की आत्मा कार्य परमात्मा।

भो चेतन! निश्चय के स्वरूप को व्यवहार मत मान लेना। व्यवहार को निश्चय का स्वरूप समझने का माध्यम मानना। इसलिये सिह, सिह है और बिल्ली, बिल्ली है। लेकिन बिल्ली, सिह नहीं है। जिसने सिह को नहीं देखा है, वह बिल्ली के हाव–भाव, बिल्ली की प्रवृत्तियो से सिह के हाव–भाव एव प्रवृत्तियो को जान सकता है।

खजुराहो- आदिनाथ मदिर

व्यवहार निश्चयौ य प्रबुध्य तत्वेन भवति माध्यस्थ ।
प्राप्नोति देशनाया स एव फलम् विकलं शिष्य ।। ८ ।।

अन्वयार्थ :– य = जो (जीव)। व्यवहार निश्चयौ = व्यवहारनय और निश्चयनय को। तत्वेन = वस्तुस्वरूप से। प्रबुध्य = यथार्थ रूप से जानकर। मध्यस्थ = मध्यस्थ। भवति = होता है (अर्थात निश्चयनय और व्यवहारनय के पक्षपात रहित होता है)। स = वह। एव = ही। शिष्य = शिष्य। देशनाया = उपदेश का अविकल। फलम् = सम्पूर्ण फल को। प्राप्नोति = प्राप्त होता है।

अमृतचंद्राचार्य विरचित पुरुषार्थसिध्द्युपाय ग्रंथ की भूमिका समाप्त

ग्रंथारंभ

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जित स्पर्शगन्ध रस वर्णे
गुणपर्यय समवेत समाहित समुदयव्यय ध्रौव्यै ।।९।।

अन्वयार्थ – पुरुष = पुरुष (अर्थात् आत्मा) । चिदात्मा = चेतना स्वरूप अस्ति है। स्पर्शरसगन्धवर्णे = स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से। विवर्जित = रहित है, गुणपर्यय समवेत = गुण और पर्याय सहित है।तथा समुदयव्यय ध्रौव्यै =उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से। समाहित = युक्त है।

|| पुरुषार्थ देशना || ७ ||

मनीषियो! सर्वज्ञ शासन मे आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने सहज दशा का सकेत देते हुए कथन किया है कि आत्मदेव को दिखाने और देखने का मार्ग बताने वाले अरिहत देव हैं। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि बस जिसने इस तत्त्व को समझ लिया वह तटस्थ हो जाता है, तटस्थ हुये बिना आज तक कोई तत्त्व को समझ नहीं सका। क्योकि धाराओ मे बहने वाला कभी सत्य को नही सुन पाया। नदी के दो तट हैं, परतु वह नीर नहीं है, दो तटो के बीच मे जो बह रहा है वह नीर है। निश्चय नीर नहीं, व्यवहार नीर नही, निश्चय व्यवहार के मध्य मे जो वीतराग धर्म की धारा बह रही है वह है नीर। जिसने तटो को पकड लिया वह कभी–भी अपनी प्यास बुझा नहीं सकेगा। अहो! किनारे तो किनारे हैं, किनारे धारा नही हैं। किनारो के मध्य मे जो बह रही है उसका नाम धारा है। इसलिए निश्चय नय व्यवहार नय तो दो किनारे हैं, उन दोनो के बीच जो रत्नत्रय धर्म

है वह तेरा नीर है वह धारा है। इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि दोनो नयों को समझो तथा जानने समझने के उपरात, दोनो के प्रति मध्यस्थ हो जाओ।

मनीषियो! भगवान अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि व्यवहार और निश्चय नय दोनो नय हैं (य प्रबुध्य) जो यथार्थ तत्त्व को जान लेता है (भवति मध्यस्थ) वह मध्यस्थ हो जाता है। किसी जीव ने कहा–आत्मा शुद्ध–बुद्ध है, कोई दिक्कत नहीं है। किसी ने कहा–आत्मा ससारी है, कोई दिक्कत नहीं है, क्योकि वह जैन है तत्त्व को जानता है, लडे क्यो? जो कह रहा है कि आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है, वह शुद्ध–द्रव्यार्थिक–नय से कह रहा है। एक आत्मा को ससारी कह रहा है कोई दिक्कत नही है। ससार अवस्था मे अशुद्ध द्रव्यार्थिक–नय से कह रहा है। पर्यायार्थिक दृष्टि से तो आत्मा अशुद्ध ही है। विवाद वह करे जो अज्ञानी हो, जिसने तत्त्व को जान लिया है वह कभी झगडेगा नही। जिनवाणी मे ज्ञानी उसे कहा है–जो दोनो नयों को जान कर मध्यस्थ हो जाता है। (प्राप्नोति देशनाया) वही देशना को प्राप्त करता है।, ऐसा ही शिष्य सपूर्ण विद्या के फल को प्राप्त करता है। जो जीव निश्चय व्यवहार को नय समझ करके अपनी दृष्टि को माध्यस्थ कर लेता है, वही जीव तत्त्वज्ञानी है।

भो ज्ञानी! जिसने नय पक्षो को लेकर अपने आपको कलुषित भावो से युक्त किया है उससे बडा अल्पज्ञ ससार मे दूसरा कोई नहीं है। आचार्य बह्मदेव सूरि ने बृहद द्रव्यसग्रह की टीका मे लिखा–वही ज्ञान तत्त्वज्ञान है जिसमे सत्य के प्रति शात स्वभाव का उद्भव हो। वही तत्त्वज्ञान है जिसमे बिखरे ह्रदय मिलकर एक हो जायें, जिसमे कलुषता की आधी शमन को प्राप्त हो जाये, जिसे समझ कर स्वय मे स्वय का सुख (आनद) प्रकट हो जाये। जिस तत्त्वचर्चा से विसवाद हो उसे आचार्य ब्रह्मदेव सूरी ने तत्त्वचर्चा नहीं कहा। क्योकि विसवाद से कषाय का उद्भव होता है कषायो से कर्म का आस्रव होता है और कर्म आस्रव से ससार की वृद्धि होती है। हम मा जिनवाणी के पास पहुँच कर ससार वृद्धि नही करना चाहते, हम तो ससार–बधन की हानि के लिये यहाँ आए हैं और जो जिनवाणी को सुनकर भी कषाय भाव से पूरित हो रहा है उसे जिनवाणी का ज्ञानी मत कहना।

भो ज्ञानी! अज्ञानी बनकर रह लेना, पर अधूरे ज्ञानी बनकर रहने का कभी प्रयास मत करना क्योकि अधूरा ज्ञान अज्ञानता से ज्यादा खतरनाक होता है। जब तक सर्वज्ञता की सिद्धि नहीं होती तब तक अरिहत तीर्थंकर भी मुनि अवस्था मे मौन रहते हैं, क्योकि जिस विद्या को मैंने समझा ही नहीं है उस विद्या को मैं दूसरे को क्या बता सकूँगा? जिस दिन सत्य का सूर्य उदित हो जाता है उस दिन सर्वांग से व्याख्यान प्रारभ हो जाता है। आज अपने पास सर्वज्ञ नही है, सर्वज्ञ की वाणी तो अपने पास मौजूद है इसलिए आप उतना ही कहना जितना सर्वज्ञ की वाणी मे स्पष्ट कथन है। यदि आगम मे आपको पढने को नहीं मिले तो अपना चितन प्रवेश मत करा देना। क्योकि अपने चितन मे ही विसवाद होता है, तत्त्व चितन मे कहीं विसवाद नही, तत्वज्ञान मे कही विसवाद नहीं है। जहाँ हम सोचते हैं कि मैं भी कुछ हूँ वहीं आप सब कुछ बिगाड कर लेते हो। जिस दिन

आप अपने आपको कुछ भी मत मानो, उसी दिन आप सब कुछ बन जाओगे और जब तक कुछ मानते रहोगे तब तक तुम कुछ भी नहीं बन पाओगे। इसलिए वस्तु स्वरूप कह रहा है–नय मे खीचोगे तो द्वेष होगा, नय से चिपकोगे तो राग होगा। ससारी जीव राग–द्वेषरूपी दो लबी रस्सी के द्वारा कर्म को बाधता है, ग्रहण करता है और अज्ञान से ससार समुद्र मे चिरकाल तक भ्रमण करता है। अहो! आज प्रतिज्ञा कर लेना कि मुझे निश्चय से द्वेष नहीं, मुझे व्यवहार से राग नही, मुझे व्यवहार से द्वेष नहीं और निश्चय से राग नही। निश्चय–व्यवहार यह दोनो नय हैं ये रागद्वेष को छोडने के मार्ग हैं। परतु इनमे ही राग–द्वेष कर लिया तो फिर मार्ग तेरा क्या बनेगा ? विष को उतारने के लिये अमृत का सेवन किया और जब अमृत ही जहर बनने लग गया तो भो ज्ञानी ! विष कैसे उतरेगा ? एकात दृष्टि को शमन करने के लिए निश्चय–व्यवहार दो नेत्र हैं। दोनो नेत्रो को सुरक्षित रखना। एक के अभाव मे एक का कार्य नही चल सकता है। इसलिए दोनो ही समझ करके माध्यस्थ हो जाओ। यह हमारे जिनागम को समझने की दो शैलिया है, वस्तु स्वरूप समझने की व्यवस्था है।

भो ज्ञानी! प्रत्येक जीवद्रव्य ज्ञान–दर्शन सत्ता से समन्वित हैं, प्रत्येक जीवद्रव्य सिद्ध–सत्ता से समन्वित है। जब तू रागभाव से प्रेरित हो उस समय तू अपने आप मे सोच लेना, अहो! धिक्कार हो मेरे विकारी भाव को। एक निगोद के शरीर मे द्रव्य प्रमाण देखा गया है कि अतीत मे जितने सिद्ध हो चुके है वे सुई की नोक के बराबर एक आलू के अश मे विराजमान हैं। भो ज्ञानी! उन सिद्ध भगवतो को छोक लगाके तू खा गया, और कहता है कि मैं भगवान आत्मा हूँ। इतना समयसार' मे नही समझ सके तो तुमने 'समयसार" को समझा ही नही है। अब समझना मेरी रसना इद्रिय को धिक्कार हो मैं जान रहा हूँ कि कद मे सिद्धत्व–सत्ता से युक्त जीव विराजमान है फिर भी उसका सेवन कर रहा हूँ।

भो ज्ञानी! जीवत्व सत्ता सबकी एक है। अत जैन दर्शन को स्वीकार करके जीना नही सीख पाये तो अब आप कही भी जी नही सकोगे। यह दर्शन मात्र जीना नही कहता है। वरन यह दर्शन कहता है–' जियो और जीने दो"। यदि जीना तुम्हारा अधिकार है तो जीने देना तुम्हारा कर्त्तव्य भी तो है। घर मे मक्खी–मच्छर घूम रहे है और आपने औषधि छिडक दिये तो आपने कौन सा काम किया है? एक श्रावक कह रहे थे–महाराजश्री! मैं चारपाई पर चारो प्रकार के आहार और पॉचो पापो का त्याग करके सोता हूँ और उधर कछुआ छाप अगरबत्ती लगाकर सोता है। बताओ, तू क्या करके सोया है? अहो! हिसक परिणाम करके तू पहले ही सोया है। भो चेतन आत्माओ! पर्याय पर ध्यान रखना, परिणामो पर ध्यान रखना। अब तो आप लोग हिसक उपकरण का उपयोग करेगे ही नही? यदि 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय" सुनने की पात्रता रख रहे हो तो आचार्य अमृतचद्र स्वामी आपसे कुछ कहने वाले हैं कि मुझे तभी सुनना, जब आपके पास पॉच अणुव्रत हो और तीन मकार का त्याग हो। पॉच अणुव्रत और अष्टमूलगुण नहीं हैं तो जिनवाणी के सुनने के भी पात्र नही हो।

समझना, जिसका रात्रि भोजन का त्याग नहीं, पानी छान करके पीने का नियम नहीं, अभक्ष्य सेवन का त्याग नही वह जिनवाणी के पृष्ठो को पलटने का अधिकारी भी नही हैं। हमने तो जिनवाणी को उपन्यास बना डाला कि यात्रा कर रहे हो तो बगल मे दबायी और चले दिये। अहो! अविनय करोगे तो परिणाम अच्छा नहीं होगा। माँ जिनवाणी कह रही है–मुझे तभी छूना, जब तुम्हारे पास अष्ट मूलगुण हो। ध्यान रखना, कम से कम उस पुरुष को समझने के लिए ऐसा पुरुषार्थ करना कि पुरुष मेरी समझ मे अच्छी तरह से आ जाय। यदि निर्मल पुरुषार्थ नहीं किया तो पुरुषार्थसिद्धिग्रथ पूरा हो सकता है परतु पुरुष की प्राप्ति सभव नही है। अरे! बिल्कुल नहीं घबराओ, जब तेरे अदर सिद्ध बनने की शक्ति है तो मनुष्य और श्रावक बनने की शक्ति कैसे नहीं है?

भो ज्ञानी! एक छोटी सी बात श्रावक की कर रहे हैं। श्रावको! बारिश का मौसम है, कितने दिन का आटा खा रहे हो, आप लोग? चटका दिया बटन को और पिस गया आटा। पर देखने गये थे कि क्या पिसा है? अरे! चिदात्मा की बात तो करो पर चैतन्य आत्मा पर करूणा करके करो। पहले माताये पाटे को उठाकर, झाड–पोछ कर, फिर भजन गाते–गाते आटा निकालती थीं। महाराज रोज–रोज मशीन को कौन खोलेगा? जितने तिरूले और सूडे उसमे रहते हैं सब पिस जाते हैं और सबका स्वाद उस आटे मे आप लेते हैं और कहते हैं महाराजश्री मैं मास का त्यागी हूँ। दो इद्रिय से मास की सज्ञा प्रारभ हो जाती है इसलिए ध्यान रखना यदि आप वास्तव मे आगम और जैनत्व को समझ रहे हो तो अपनी चर्या और क्रिया को अब सुधारना प्रारभ कर देना। जब सुबह से ही हिसा प्रारभ हो जाती है, फिर मध्यान्ह और रात्रि मे परिणाम निर्मल कैसे होगे?

भो ज्ञानी! जब तक विवेक नहीं जागेगा तब तक भगवान नही बन पाओगे। आचार्य महाराज ने पहले आपको शुद्ध की बात बता दी और निश्चय–व्यवहार का खुलासा कर दिया, अब नौवीं कारिका मे कह रहे हैं–तू सबसे भिन्न है पुरुष है। जब तू धर्म क्षेत्र मे आये तो मात्र आत्मा बनकर आना। पुरुष, स्त्री नपुसक बनकर मत आना। यदि तीन वेदो से बनकर आओगे तो तुम्हारे अदर मे विकार सतायेगे और तुम्हे परमात्मा नहीं दिखेगा। यह कारिका अखडता–एकता के लिये परम रामबाण–औषधि है।

मनीषियो! भगवान अमृतचद स्वामी कह रहे है–(अस्ति पुरुषचिदात्मा) यह चैतन्य आत्मा ही पुरुष है और वह पुरुष चाहे एकेद्रिय मे हो, चाहे द्विइन्द्रिय में हो त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि मे हो परतु उस चैतन्य–आत्मा मे कोई फर्क नहीं है। लेकिन निश्चय नय से कह रहे हैं कि वह आत्मा स्पर्श गध, रस, वर्ण से रहित हैं, ये सब पुद्गल के धर्म हैं, मेरी आत्मा के धर्म नही है।

अरस मरुव मगध अव्वत चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिगग्गहण जीवमणिदिट्ठ सठाण।।४९।।

समयसार जी मे आचार्य कुदकुद स्वामी कह रहे हैं–जब तू निर्विकल्प दशा का वेदन करने की भावना रखता है तो ऐसा चिन्तन कर मैं अरस हूँ, अरूपी हूँ, मैं अगध स्वभावी हूँ, इन्द्रिय

गोचर नही हूँ। मैं अपने आपमें सस्थान से रहित हूँ, मेरा कोई निश्चित सस्थान नहीं है, ये सब कुछ जो दिख रहा है–यह देह धर्म है, यह देह, धर्म नही है और देह धर्म के पीछे ही मैंने देही के धर्म को छोडा है,।

अहो! शरीरो का राग ही तुझे, अशरीरी नहीं बनने दे रहा है। अत वृद्धो के साथ रहो जो शरीर सिकुड चुके हैं उन शरीरों के पास बैठो। उनके पास बैठोगे, तो वासना सिकुड जायेगी और फूले–फूले शरीरो के पास बैठोगे तो कामवासनाये फूलेगी, यह प्रकृति का नियम है। वृद्ध–सगति पर आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने 'ज्ञानार्णव' मे एक स्वतत्र अधिकार लिखा है। हे साधक! यदि तू निर्मल साधना करके मुक्ति की ओर गमन करना चाहता है तो वृद्धो की सगति कभी मत छोड देना, वृद्धों की सेवा मत छोड देना, ध्यान रखना, शास्त्रो मे तुम्हे शब्दज्ञान तो मिल जायेगा पर अनुभवज्ञान तो वृद्धो के पास ही मिलेगा। इसलिए वृद्धो का अविनय कभी मत करना, जो ज्ञानवृद्ध हैं, उम्र वृद्ध हैं, तप वृद्ध है, उन सब वृद्धो का सम्मान रखना। इसके साथ ही कभी किसी की अवहेलना नही करना, क्योकि हमारे आगम मे कहा है–चाहे वृद्ध का शरीर हो, चाहे युवा का, चाहे शिशु हो सबके अदर भगवती–आत्मा है। अहो ज्ञानी! वो आज का अहकार तेरी साधना के विनाश का हेतु बन जायेगा। इसलिए सबसे मिलकर चलना, सभलकर जीना और सभलकर चलना। भावो मे निर्मलता रखना मृदुता रखना, तभी तुम उस चिदात्मा को प्राप्त कर सकोगे।

भो चेतन! अब आचार्यश्री कह रहे हैं–(गुण पर्यय समवेत) एक–एक काल मे जैसा गुण होगा, वैसी पर्याय होगी और जैसी पर्याय होगी वैसा द्रव्य होगा, बिना द्रव्य के परिणमन के पर्याय नही बदलती है। इसलिए द्रव्य, गुण, पर्याय एक काल मे एक से होते हैं और जब द्रव्य शुद्ध होगा तो गुण, पर्याय भी शुद्ध होगी। जो मिट रही है वह पर्याय है, फिर भी नही मिट रही है उसका नाम ध्रौव्य है। मनुष्य पर्याय मे तेरा जीव है तो मनुष्य आकार है, मनुष्य पर्याय–मिटी देव हो गया, देवाकार है, पर जीव ध्रौव्य है, ध्रौव्य कभी नष्ट नही है। भो ज्ञानी! द्रव्य, गुण, पर्याय युगपत ही होते हैं। कार्य मे तीन रूपता दिख रही है परतु काल की तीन रूपता फिर भी जो नहीं है, जिस समय उत्पाद है उसी समय व्यय है और जिस समय व्यय है उसी समय ध्रौव्य है, काल भेद नही है, समय भेद नहीं है। इसलिए ध्रौव्य ही तो द्रव्य है। सत्ता कभी असत्ता नहीं बनती है, सत्ता का परिणमन ही पर्याय है। सत्ता असत्ता रूप नहीं होती है सत्ता मे जो परिणमन चल रहा है उसका नाम पर्याय है। गुणो के विकार का नाम पर्याय है। आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र मे पॉचवे अध्याय मे यही बात कही है–

सद् द्रव्य लक्षणम् ।।२९।।
उत्पाद–व्ययध्रौव्य–युक्त सत्।।३०।।
गुण–पर्ययवद् द्रव्यम् ।।३८।। (त सू)

"भोग में योग कहाँ"

परिणममानो नित्यं ज्ञानविवर्त्तैरनादिसन्तत्या ।
परिणामानां स्वेषा स भवति कर्त्ता च भोक्ता च ।।१०।।

अन्वयार्थ.– स = वह (चैतन्य आत्मा)। अनादिसन्तत्या= अनादि की परिपाटी से। नित्य = निरन्तर। ज्ञानविवर्तै = ज्ञानादि गुणो के विकाररूप रागादि परिणामो से। परिणमनमान = परिणमन करता हुआ। स्वेषा = अपने। परिणामाना = रागादि परिणामो का। कर्त्ता च भोक्ता च = कर्त्ता और भोक्ता भी। भवति = होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८।।

भो मनीषियो! तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की दिव्य–देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने पूर्व सूत्र मे बहुत ही सहज कथन किया कि पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रथ पुरुष की सिद्धि के उपाय का ग्रथ है। जो आत्मा है, वही पुरूष है। जो आत्म–दृष्टि से देखता है, उसे पर्यायो का परिणमन नही दिखता। सयोग या वियोग पर्यायो का है, सुख पर्यायो के कारण। द्रव्य–आत्मा अपने आप मे अखण्ड है, अस्ति रूप है, चिद्रूप है, चैतन्य स्वरूप है। इसलिए इसका नाम सच्चिदानन्द चैतन्य आत्मा है, वही आत्मा का स्वरूप है। उस सच्चिदानन्द स्वरूप को न समझने के कारण इस जीव ने पुद्गल में आनद मनाया है और पुद्गल के आनद के कारण ही ससार मे परिणमन चल रहा है। अत आत्मा का स्वरूप सामान्य है। द्रव्य 'सामान्य ही होता है, पर्याय विशेष' होती है। इसलिए 'सामान्य' त्रैकालिक होता है और 'विशेष' तात्कालिक। जैसे– चातुर्मास के समय आप से कोई पूछता है–क्यो, विशेष क्या हुआ? स्वाध्याय–प्रवचन तो सब जगह होता है विशेष क्या हुआ? अत पर्याय 'विशेष' होती है और गुण द्रव्य 'सामान्य' होता है। 'विशेष परिवर्तनशील होता है सामान्य' त्रैकालिक होता है। चाहे आप मनुष्य हो, चाहे तिर्यंच हो, चाहे देव हो, जीव वहॉ भी होगा परन्तु विशेष' बदलता है। इसलिए पर्यायार्थिक नय को विशेष कहा जाता है और द्रव्यार्थिक नय को सामान्य' कहा जाता है। परन्तु ध्यान रखना, सामान्य से रहित विशेष को जो मानता है, वह गधे के सींग के समान है।

मनीषियो! जैनदर्शन की यह तात्त्विक चर्चा है, जिसमे नीतियाँ सामान्य होगी, परन्तु सिद्धान्त विशेष ही होता है। सिद्धातो से ही दर्शन की पहिचान होती है। पर ध्यान रखना, सामान्य विशेषात्मक वस्तु का स्वभाव है। चैतन्य 'सामान्य' है, सिद्ध–पर्याय 'विशेष' है, निगोद पर्याय 'विशेष'

है। इसलिए ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफल–चेतना–यह तेरी तीन चेतनाएँ हैं, पर चैतन्य–चेतना सामान्य है। तू निगोद मे था, उस समय कर्मफल–चैतन भोग रहा था। आप स्थावर एक–इद्रिय वनस्पतिकाय मे थे, जब लकडहारा अपने कधे पर कुल्हाडी लिए आ रहा होगा, तब आप खडे हो अनुभव कर रहे होगे, कि यह कुल्हाडी मेरे शरीर पर चलाई जायेगी, वेदना होगी कि नहीं ? उसकी वेदना को वही वेद रहा है। भो ज्ञानी। कर्मफल चेतना क्यो कहीं जा रही है? क्योकि वहाँ से भाग भी नहीं पा रहा है। ओले पडेगे, तब भी वहाँ होगे और गर्मी के थपेडे पडेगे, तब भी वहाँ होगे। दुनियाँ तेरी छाया मे बैठकर ओलो से बच रही है, पर तू अपनी छाया से अपनी रक्षा नही कर पा रहा अर्थात् जब अशुभ कर्म का उदय होता है, तो तेरे भवन के नीचे अनेको छाया मे बैठ लेते है, पर तेरा भवन तेरे लिए ध्वस्त कर देता है।

हे आत्मन्। तेरी छाया मे कितने बैठे हैं ? हे वृक्ष। तेरी डालियो पर भी लोग बैठे है, पर तेरे ऊपर तो कुल्हाडी ही है। जब एक–इद्रिय पर्याय को तुम प्राप्त करोगे, उस समय सोचना कि मैंने 'पुरुष" को नहीं देखा था। घर मे जब एक दातुन की आवश्यकता पडी थी, हमने पूरी डाली ही तोड कर फेक दी थी। उस समय 'पुरुष' नही देखा था। काश। वृक्ष भी ज्ञान चेतना से भरा होता तो आज उठ के चल देता या आपका हाथ पकड लेता कि यह मेरा शरीर है । मनुष्य के शरीर मे रहने वाला पुरूष अपने स्वार्थ के पीछे पता नही कितने जीवो की पर्यायो को भोजन के रूप मे, लेपन के रूप मे, औषधि के रूप मे उपयोग कर रहा है। एक दिन के भोजन मे कितनी हरी साग खाई है? गोबर के जीवो के साथ–साथ पता नही कितनी औषधि छिडक करके, वह साग बनकर तेरी थाली मे सजकर आयी है। उन जीवो से पूछना, हे आत्मन्। यदि मैंने 'पुरुषत्व' को प्राप्त कर लिया होता, तो मैं थाली को नही देखता। हे नाथ। वह दिन कब आये जब मुझे थाली न देखना पडे। परम वीतरागी दशा मे जाने वाला वह योगी थाली को देखकर बिलख रहा है, कितु भोगी जीव थाली को देखकर मुस्कुरा रहा है। इतना ही योगी और भोगी मे अतर है। मत होना गद्‌गद्, कि थाली सज कर आयी है। अरे। उस खेत को देखो जो थाली–सा चमक रहा था हरा–भरा, उसने उजडकर तेरी थाली भरी है। प्रकृति की थाली उजाडकर तुमने अपनी थाली भरी है। भो ज्ञानी आत्माओ। दूसरो की प्रकृति को उजाडकर अपनी थाली भरने का प्रयास मत करना, यही तेरी अज्ञान दशा है। भोगो मे लिप्त होने का नाम ज्ञानचेतना नही, अज्ञानभाव है। कुदकुद स्वामी ने पचास्तिकाय ग्रथ में ज्ञान–चेतना केवल सिद्धो मे कही है।

सव्वे खलु कम्मफलं थावर–काया तसा हि कज्ज जुद ।
पाणित्त–मदिक्कंता णाण विदति ते जीवा ।। ३९ ।।

जो प्राणो से अतिक्रान्त आत्मा है, वह ज्ञान का वेदन करती है, वह ज्ञान चेतना है। सभी

एक– इद्रिय स्थावर जीव कर्म–चेतना और त्रस जीव कर्म–कर्मफल चेतना भोग रहे हैं और प्राणो से अतिक्रात शुद्ध परमात्मा मे शुद्ध ज्ञानचेतना है ।

भो ज्ञानी! चलो वनस्पतिकाय की चर्चा करे, क्योंकि आपको 'पुरुष' की बात करना है। वनस्पति– काय से पूछना कि तुम प्रत्येक हो कि साधारण। यदि साधारण है, तो माँ जिनवाणी आपसे कह देगी, बेटा! इसको छूना भी मत। जैन–योगी जब चलता है, तो पैर रखना महापाप मानता है। अपने शरीर का ताप भी उसको नहीं देना चाहता है, क्योकि मेरे शरीर में गर्म वर्गणाएँ (तरगे–ऊर्जा) निकल रहीं हैं तथा उन जीवो मे इतने नाजुक ततु हैं कि मेरे शरीर के ताप से उनको पीडा होगी, वध हो जायेगा, अहिसा– महाव्रत समाप्त हो जायेगा।

अरे! ज्ञान–चेतना को भोगने की सामर्थ्य रख कर के भी, फूलों को देखकर, कर्मफल–चेतना का बध कर रहे हैं। हे मानवो! तुम पुष्प की पराग को देखकर महक रहे हो तथा उसे बगीचे मे लगाकर बार–बार निहार रहे हो। अरे! जिनवाणी माँ कह रही है–तेरे चक्षु मे वह शक्ति है कि यदि तू सिद्धो को निहार ले तो तू सिद्ध बन जायेगा। निहारने का ही परिणाम है कि आज तुझे दुनियाँ निहार रही है, कि देखो, वनस्पति बन गया।

भो ज्ञानी! यह मनुष्य–पर्याय इसलिए महान है कि तुम्हारे पास महाव्रती बनने की सामर्थ्य है। हे मानवो! तुम महान इसलिए नहीं हो कि तुम्हारे पास इद्रिय–भोगो का सुख है। **तुम महान इसलिए हो कि तुम्हारे पास पाँचो पाप छोडने की सामर्थ्य है।** देवो मे वह सामर्थ्य नही है। देखो, मुमुक्षु–जीव अर्हन्त की उपासना करता है कि अब तो मेरी पर्याय समाप्त होने वाली है। जितनी आयु शेष है, परमेष्ठी की आराधना कर लो। मिथ्यादृष्टि देव रोना प्रारम्भ कर देते हैं कि हाय! हाय! अब यह भोग कब मिलेगे। रो– रोकर अपनी पर्याय नष्ट करता है। जितने उत्तम जाति के वृक्ष हैं, वे देव–पर्याय से च्युत होकर ही आये हैं। हे मनीषियों! जब इद्रिय–सुख मे देव भी वनस्पति बन गया, तब तुम्हारी दशा क्या होगी ? स्थावर से नीचे यदि कोई भूमिका है तो **'एक सास में अठ–दस बार'** मरने जीने की पर्याय है, उसका नाम निगोद है।

हे प्रभु! ज्ञान–वैराग्य शक्ति के प्रभाव से मैं ज्ञानचेतना का भोगी बनूँ , राग और भोग की दृष्टि से मै कर्मफल चेतना का भोक्ता न बनूँ। भो ज्ञानी आत्माओ! अब ईश्वर को और कर्मो को दोष देना बद कर दो। यदि पुण्य तेरे साथ होता है तो तू माँ के आँचल मे जन्म के साथ दूध लेकर आता है और पाप तेरे साथ होता है तो माँ को काल उठा ले जाता है। तुम माँ जिनवाणी के लाल हो, तीर्थंकर तेरे तात हैं और निर्ग्रंथ गुरु तेरे भ्राता है। ऐसे उज्वल कुल मे तू जन्मा है और पुद्गल के टुकडो के पीछे तू भोगो की थाली पर बैठा है। माँ जिनवाणी कह रही है–तुम सुन भर लो और गुन लो, गमाओ मत ! परन्तु जीव ने आज तक तत्त्व की चर्चा को सुना ही नहीं। आचार्य योगेन्दु

स्वामी ने योगसार ग्रथ मे लिखा है –

बिरला जाणहि तत्तु बुह, बिरला णिसुणहि तत्तु।
बिरला झायहिं तत्तु जिय, बिरला धारहिं तत्तु ।।६६।।

अर्थात् इस लोक मे तत्त्वो को जानने वाले जीव ससार मे बिरले हैं, सुनने वाले कम हैं। सुनने से ज्यादा जानने वाले कम हैं। जानने वाले हजारो हैं, तो भो ज्ञानी! मानने वाले बहुत कम है और मानने वालो मे धारणा बनाने वाले जीव अगुलियो पर गिनने लायक हैं। भो ज्ञानी! इन शब्द–वर्गणाओ को नष्ट मत करो, इनको सजोकर रखो, यह पुण्य के योग से मिली हैं। यदि यह नष्ट हो गई तो एक–इद्रिय बनना पडेगा, जो कह नहीं पा रहा है, वेदना हो रही है, कुल्हाडी से काटा जा रहा है, करोते से छीला जा रहा है। इसलिए एक काम कर लो, भोग–उपभोग का परिमाण कर लो। जितनी लेते हो उतनी रख लो, बाकी को छोड दो, नहीं तो जितनी वनस्पतियाँ हैं उन सबके भक्षण का दोष तुम्हे लग रहा है, आस्रव हो रहा है, लाखो की सख्या मे जीवो के खाने की भावना तो मत बनाओ।

भो ज्ञानी आत्माओ! धूप तो नही लग रही, वनस्पति को तो देखो कब से खडी है। कभी–कभी धूप लगना भी चाहिये, क्योकि ज्यादा छाया मे बैठ–बैठकर के तुम धूप को भूल गये हो। पुण्य की छाया मे बैठे–बैठे बहुत दिन बीत गये और जरा–सी पाप की धूप आ गई तो उतने मे ही तुम बिलखने लगे। अरे! जिसने धूप मे बैठना सीख लिया हो, उसे छाया और धूप मे कोई फर्क नही पडेगा। हे योगी! यह तो जरा–सी धूप है, उस कामना और वासना की धूप की तपन को तो देखो। यह धूप तो शरीर को ही तपा रही है, वासना के ताप ने तो आत्मा को ही जला डाला।

अहो! अनादि काल से तूने अपने ज्ञान का विपरीत परिणमन किया है। तू ही कर्ता है, तू ही भोक्ता है। कर्मों के पिण्ड का परमेश्वर कर्त्ता नही है, कर्म कर्त्ता नही है, तेरा रागादिक भाव ही तेरा कर्त्ता है। रागादिक भाव का तू कर्त्ता होने से तू जड कर्मों का भी कर्त्ता है।

जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमदि।
पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमदि ।। ८० ।। स.सा. ।।

हे जीव! तेरे रागादिक भावो से कार्माण वर्गणाएँ कर्मरूप हुई हैं। उन कार्माण वर्गणाओ के बध होने के कारण तू रागादिक भाव से परिणत हुआ है। बिना जीव के सयोग के कर्म वर्गणाये कर्म रूप नहीं बनती और बिना कर्मबध के जीव रागादिक भाव को प्राप्त नहीं होता। यह आगम का कथन है। यह भूल कर्मों की नहीं, यह भूल तेरी ही है। कर्मो को दोष मत देना। वह तो हर समय आप से भिन्न हैं। पर आप पकड़े बैठे हो, इसलिए यह रागादिक परिणामो का जो परिणमन चल रहा उसका कर्त्ता–भोक्ता तू ही है। कर्मों को दोष देते रहोगे तो उससे तुम्हारा कार्य सिद्ध नही

होगा। अपने आप को ही आप दोष दे।

भो चेतन! इद्रियो को दोष मत देना, देह को दोष मत देना। इद्रियो ने इद्रियाँ नहीं दिलाई, देह ने देह नहीं दिलाई। तेरे देह के विकारी भावो के ज्ञान का जो विपरीत परिणमन हुआ है उसके कारण तुम ससार मे भटक रहे हो। कौन भटका रहा है? आपके ज्ञान का विपरीत परिणमन कहे या रागादिक भाव कहे या अज्ञान दशा कहे। भो ज्ञानी! यह सब आत्मा की ही दशा है। आप मिथ्यात्व के कारण कहे ठीक है। दूसरो के दोष देखना तुम्हारी आदत बन चुकी है। अरे अज्ञानी! तू क्यो दूसरों को देख रहा है? यह जीव स्वय का कर्त्ता है, स्वय का ही भोक्ता है और स्वय ही रागादिक भाव करेगा तो कर्त्ता बनेगा। रागादिक भाव करेगा तो भोक्ता बनेगा। रागादिक भाव को छोडकर के परमात्म दशा को प्राप्त करेगा, तो वहाँ पर भी सिद्ध–स्वभाव का स्वय ही भोक्ता है।

मनीषियो! आज अपने घर मे जाकर के इतना ही विचार कर लेना। हे प्रभु! मैं छाया मे बैठ कर, धूप मे न चला जाऊँ। यह पुण्य की छाया मिली है इसे भोगो की धूप मे मत जला डालना। ऐसा चितवन करोगे तो चिता नष्ट हो जायेगी और तुम्हारा सब कुछ छूट जायेगा।

"परमात्म–स्वरूप"

सर्वविवर्त्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति ।
भवति तदा कृतकृत्य सम्यक्पुरुषार्थसिद्धिमापन्नः ।। ११।।

अन्वयार्थ - यदा स = जब उपर्युक्त (अशुद्ध आत्मा)। सर्वविवर्त्तोतीर्णं = सर्व विभावो से पार होकर। अचल = (अपने) निष्कम्प। चैतन्य = चैतन्य स्वरूप को। आप्नोति = प्राप्त होता है तदा = तब यह आत्मा उस। सम्यक्पुरुषार्थसिद्धम् = सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ के प्रयोजन की सिद्धि को। आपन्न = प्राप्त होता हुआ। कृतकृत्य भवति = कृतकृत्य होता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ९ ||

भो मनीषियो! वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने तत्त्व–दृष्टि, द्रव्य–दृष्टि और पर्याय–दृष्टि का बृहद कथन किया है। जो वस्तु का स्वभाव है वह तत्त्व है, जो द्रवणशील है वह द्रव्य है जो त्रैकालिक मौजूद है वह पदार्थ है द्रव्य मे जो परिवर्तन है, वही पर्याय है। अहो! परिवर्तन हो तो भी ज्ञान–दर्शन है, नरक मे है तो भी ज्ञान–दर्शन है और मनुष्य है तो भी उनके ज्ञान–दर्शन गुण है। पर्याय–धर्म भिन्न है, गुण–धर्म मे भिन्नता नही है। चाहे वह साधारण वनस्पति हो या प्रत्येक हो, चाहे ज्ञानी मनुष्य हो। उस गाजर के अदर बैठा जीव भी महावीर भगवान है। उस मूली के अदर बैठा जीव भी महावीर भगवन्त है। अहो मुमुक्षुओ! ध्यान से सुनना, तू पर का कर्त्ता भी नही है, तू पर का भोक्ता भी नहीं हैं। निज की परिणति का कर्त्ता भी तू है भोक्ता भी तू है। यह विषय मात्र शब्दो का नही, तुम्हारी अतरग वृत्ति का है। जिसका भाव विशुद्ध होगा उसकी वृत्ति नियम से विशुद्ध होगी। जिसके भावो मे निर्मलता नहीं है, उसकी विशुद्ध–वृत्ति दिख सकती है पर हो नहीं सकती, क्योकि योग–उपयोग–सयोग की दशा पर वृति निर्भर है। योग बगुले का निर्मल है, एक टॉग से खडा है, उपयोग की दशा निर्मल है, पर वृत्ति निर्मल नही है। माँ जिनवाणी कहती है कि योग भी निर्मल हो उपयोग भी निर्मल हो और सयोग भी निर्मल हो, उसका नाम मोक्षमार्ग है। द्वादशाग मे मात्र द्रव्य–गुण–पर्याय का ही कथन है। मिथ्यादृष्टि भी कथन करेगा तो द्रव्य–गुण–पर्याय का ही कथन करेगा। मिथ्यात्व तो इस बात का है कि उसका सिद्धात विपरीत है। भगवान पूज्यपाद स्वामी ने तत्त्व की परिभाषा

सर्वार्थसिद्धि मे इस प्रकार की है–'तस्य भाव तत्व' जो पदार्थ का स्वभाव है, वही तत्त्व है।

भो ज्ञानी! जिस दिन गाय को उत्तम घास खिलाई जाती है, शाम को ही दूध अच्छा निकलता है। परिणमन की योग्यता, निमित्त गाय का, लेकिन उपादान घास मे था। चरणानुयोग कहेगा कि हरी मत खाओ, जीव है। द्रव्यानुयोग कहेगा–भैया! ऐसे–वैसे जीव नहीं हैं, वे भी सिद्ध बनने वाले जीव हैं। आप जिन अनत सिद्धो की वदना करते हो, उन अनत सिद्धो की हिसा कैसे करोगे? इसलिए तुम वनस्पति का सेवन मत करो। अहो! जो भविष्य मे बनने वाले मेरे वदनीय भगवान हैं, उनका भक्षण मैं कैसे करूँ ? प्रभु! मुझे प्रकृति ने बहुत दिया है। जीने के लिए बहुत खाने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य सन्मति सागर जी महाराज ने दो साल से सिर्फ गन्ना रस और छाछ लिया है। अब गन्ने का रस भी छोड दिया, मात्र छाछ ले रहे हैं। वह भी रोज नही ले रहे, आठ दिन के अभी उपवास किये है। वह जीव, जी रहा है कि नही? इससे लगता है कि वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम है तो छाछ भी बल दे देती है। अन्यथा दूध–मलाई भी तुम्हे सुखा देती है। साधना के क्षेत्र मे आचार्य सन्मति सागर (मासोपवासी) का दुबला–पतला शरीर है फिर भी विहार भी कर लेते हैं, प्रवचन भी रोज देते हैं और घटो–घटो शीर्षासन से सामायिक करते है। इसलिए यह भ्रम छोड देना कि भोजन से ही बल मिलता है। उपादान–शक्ति तुम्हारे आत्मा की होती है। आत्मबल नहीं है, तो रक्त का पानी बनता है। डॉक्टर कहेगा–हारमोंन्स की कमी है। मगर कर्म–सिद्धात वीतराग–विज्ञान कहेगा कि तेरे कर्मो की कमी है। क्षयोपशम वीर्यान्तराय कर्म तेरा मद पड चुका है। यही तेरे लिए शाति का हेतु बनेगा। वे हारमोंन्स तो तुम जुटाते रहो, पर जुटेगा नही। अरे! अनत जीवो को खाकर तुम इस पुद्गल को मत गिराओ नियम से राख होगा। विश्वास न हो तो श्मशान–घाट को देखकर आ जाओ। यही तत्त्व देशना है।

भो ज्ञानी! जिस दिन तत्त्व ने तत्त्व को समझ लिया, उसे परमतत्त्व बनने में देर नहीं लगेगी। आप स्वय तत्त्व हो, शब्द के श्रद्धान मे डूबे हो। जिस दिन तत्त्व–श्रद्धान जम जायेगा, उस दिन आप किसी से 'तू' कहके नहीं बोलोगे। कहोगे कि मैं किसी सिद्ध तत्त्व की अविनय नही करना चाहता। फिर कौन भाई– भाई लडेगा? कौन सास–बहू लडेगी? देखना घर की क्या व्यवस्था बनती है ? जो मात्र द्रव्यानुयोग को ही समझ रहा है और शेष तीन अनुयोगो की अविनय कर रहा है, वह घोर मिथ्यादृष्टि है। जिनवाणी कह रही है कि मेरे समझाने की चार शैलियाँ हैं। मैं किसी को अविनय नहीं सिखा रही। अनुयोगो का ज्ञाता हर शैली (दृष्टि) से तत्त्व को समझेगा।

भो ज्ञानी! जहॉ गजराज जैसा मृतक तिर्यंच पडा हो, जिसकी सडान्ध इतनी तीव्र हो कि

एक--दो धूपबत्ती/अगरबत्ती की सुगध कुछ नहीं कर पायेगी। इसी प्रकार जिस जीव के अतरग मे मिथ्यात्व का सड़ा तिर्यंच पड़ा हुआ है, उसकी दुर्गंध इतनी विशाल है, कि भो ज्ञानी! तुम्हारी छोटी--मोटी बाते उसको प्रभावित नहीं कर पा रही हैं। उसके लिए साक्षात् जिनेन्द्र--देशना की अगरबत्ती ही चाहिए और वह भी तभी काम करेगी जब हड्डी पसलियो को वहाँ से हटाया जायेगा। जब तक मिथ्यात्व की प्रकृतियाँ नहीं हट रही हैं, तब तक सम्यक् की सुगध उस घर मे आने वाली नही है। मिथ्यात्व की प्रवृतियो को धीरे से निकाल दो। जैसे घर की सफाई कर लेते हो, वैसे निज घर की सफाई क्यो नहीं कर रहे हो? अपने घर की सफाई के लिए आप खुद स्वामी बन जाते हो और निज घर की सफाई के लिए आप आचार्य भगवन्त और तीर्थंकरो की ओर देखते हो, कि महाराज! कुछ उपाय बता दो।

अरे! शोधन आप को ही करना होगा। ध्यान रखना, उपादान की योग्यता तुम्हारी निर्मल होगी, तो अल्पचितन भी चेतन--प्रभु को जगा देगा। देखो, तीर्थंकर भगवान जैसा निमित्त भी काम मे नही आया और जब उपादान जाग्रत हुआ तो शेर की पर्याय मे दो निर्ग्रंथ सतो की वाणी काम आई और भगवन्त बनाकर चले गये। हे भावी भगवान! शेर की भवितव्यता कितनी निर्मल थी, कि जिसने मृग को पजा मारकरके ऑसू टपका लिये। हे नरसिहो! अभक्ष्यो का सेवन करके तुम अपनी भवितव्यता को नही निहार रहे हो। कौन नही जानता कि अमुक वस्तु भक्ष्य है कि अभक्ष्य? अरे! ऐसे निर्मलकाल मे भी आप नहीं सुधर सके, तो छठवे काल मे सुधरने का कोई अवसर नही है। आज विवेक भी काम कर रहा, जिनवाणी भी है, अर्हन्त बिम्ब भी है, निर्ग्रंथ भी तुम्हारे पास हैं। इसे मै पुण्य कहूँगा लेकिन वैभव का नाम कभी पुण्य मत कह देना। पुण्य को पूज्यपाद स्वामी ने वैभव नही लिखा, जिससे आत्मा पवित्र हो, उसका नाम पुण्य है।

भो ज्ञानी! पवित्र करने वाला कोई द्रव्य है, तो वह रत्नत्रय--धर्म है। रत्नत्रय--धर्म के प्रति जिसकी भावना निर्मल हो रही है, भक्ति उत्पन्न हो रही है, अरहत वाणी पर भावना है, श्रद्धा है, विश्वास है तो बिल्कुल नही घबराना, भवितव्यता निकट है। आपने कोई खोटा कृत्य किया था, तो खोटे काल मे आ गये, पर आवश्यक नही कि खोटा, खोटा ही बना रहे। आप इस पर्याय मे मारीचि की पर्याय से ज्यादा खोटे तो नहीं हो, क्योकि तीन सौ त्रेसठ मिथ्या मत नही बना रहे हो। इसलिए तुम पर्याय के खोटे भाव को द्रव्य का खोटा मानकर मत बैठ जाना। 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय मे कथन है कि अपने परिणाम के कर्ता भोक्ता तुम स्वय हो। ध्यान रखना, अच्छा करोगे तो अच्छा भोगोगे और बुरा करोगे तो बुरा भोगोगे, अब निर्णय आप को स्वय करना है।

भो ज्ञानी! देखो भगवान की प्रतिमा को, हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। आप नमोस्तु भी करो,

तो आशीर्वाद नही देते और निदा करो तो नाराज भी नहीं होते। भगवन्त समन्तभद्र स्वामी ने लिखा–

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निदया नाथ विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य–गुण–स्मृति ने, पुनातु चित्त दुरिताञ्जनेभ्य ।। ५७ ।। स्व.स्त्रो ।।

हे प्रभु! आप निदा करने वाले पर बैर भाव नही करते हो और प्रशसा करने वाले पर खुश भी नहीं होते, क्योकि आप वीतरागी हो। जब तक हर्ष–विषाद है, तब तक वीतराग भाव नही है। वीतरागी के हर्ष–विषाद कहाँ और हर्ष–विषाद वाले वीतरागी कहॉ ? वदना भी करना, तो देख लेना कि हमारा वदनीय कैसा है? इसकी वदना करने से मैं बध तो नहीं जाऊँगा? मैं बधन के लिए वदना नहीं करता हूँ, मैं निर्बन्ध होने के लिए वदना करता हूँ।

भो ज्ञानी ! हमारा आगम ज्ञान से मोक्ष नही मानता है। कभी भी भूलकर ज्ञान मात्र से मोक्ष मत कह देना। आपको याद होगा कि जब हाथी के पग तले बेटे की मृत्यु को सुन सेठ मूर्च्छा खाकर गिर गया और जैसे ही एक छात्र दौडते–दौडते आया बोला–सेठजी! वह तो पडोसी का बच्चा है तो उनकी मूर्च्छा भग हो गई। बोले–मोक्ष हो गया, ज्ञान होते ही मोक्ष हो गया। यह बौद्ध–दर्शन कह रहा है कि बोधि होते ही मोक्ष होगा। हाथी के पग तले बेटे की मृत्यु को सुनकर मूर्छित हुआ, परतु मेरा बेटा नहीं है, ऐसा सुनकर मूर्च्छा भग हुई–इसमे दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनो थे। बेटा आपका नही था ये ज्ञान हुआ, जैसे श्रद्धान बना कि हाँ मेरा नही था कि मूर्च्छा भग हो रही है, मोह का छूटना चारित्र था, इसलिए कुदकुद स्वामी ने 'प्रवचनचार' मे चारित्र की चर्चा की है–

चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।। ७।।

भो ज्ञानी! मोह अर्थात् दर्शन–मोह, क्षोभ याने चारित्र–मोह। दर्शन–मोह और चारित्र–मोह रहित परिणाम जिस जीव के है, उसका नाम सयम है। दर्शनमोह एव चारित्रमोह चल रहा है, उसका नाम सयम नहीं है। इसलिए ध्यान रखना, ज्ञान से मोक्ष नहीं होता है। सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनो की एकता की पूर्णता का नाम मोक्ष है। इसलिए जैन–सस्कृति आत्मा के क्रमिक विकास की सस्कृति है। ध्यान रखना, निर्मल पुरुषार्थ मोक्ष–पुरुषार्थ है, उस मोक्ष–पुरुषार्थ की सिद्धि जिसे हो जाये–वही पुरुषार्थसिद्धि है। उस पुरुष के अर्थ की सिद्धि का हेतु 'चारित्र खलु धम्मो' है। चारित्र के अभाव मे महान नहीं बन पाओगे। आप कम से कम अणुव्रत स्वीकार कर लेना क्योकि अमृतचद स्वामी ने शर्त रख दी है कि इस ग्रथ को तभी सुने जब आप अष्ट मूलगुण–धारी हो। इतनी बडी शर्त लगाने वाला यह पहला ग्रथ है। ग्रथराज 'षट्खण्डागम' मे उल्लेख है कि जब तक महाव्रती

नहीं बनोगे, तब तक आप इसे अध्ययन नहीं कर सकते हो। आचार्य अमृतचद स्वामी कह रहे हैं कि जब तक अणुव्रती नहीं बनोगे, तब तक पुरुषार्थसिद्धि नहीं सुन सकते। बात को समझना, मोक्षमार्ग चौदहवे गुणस्थान तक चलता है और जिस दिन मार्ग की पूर्णता हो जायेगी उस दिन, हे मार्गी! तू मोक्ष प्राप्त कर लेगा। इसलिए कल्पनाओ मे मोक्ष का आनद मत लूटना।

यदि ज्ञान से मोक्ष मानोगे तो आप जैन-दर्शन मे नही रहोगे। समयसार आदि ग्रंथो मे ज्ञान से मोक्ष कहाँ है? सम्यक्त्व से भी मोक्ष कहाँ है? चारित्र से भी मोक्ष कहाँ है? भो चेतन! अध्यात्म ग्रथ अभेद की बात करते हैं। अत सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय से मोक्ष होगा। इसलिए मोक्ष तो एक ही है। आचार्य उमा स्वामी ने सूत्र को बडे हिसाब से लिखा-**सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्ग**, इन तीनो की एकता का नाम मोक्षमार्ग हैं।
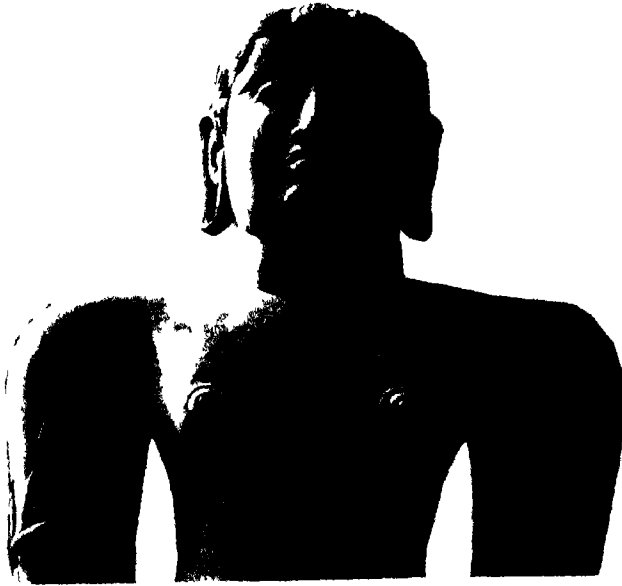
स्मितहास्ययुक्त करुणा-सिंधु भगवान बाहूबली

"बंध निर्बंध दशा"

जीवकृत परिणाम निमित्तमात्र प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गला कर्मभावेन।।१२।।

अन्वयार्थ – जीवकृत =जीव के किये हुये। परिणाम = (रागादि) परिणामों का। निमित्तमात्र प्रपद्य = निमित्तमात्र पा करके। पुन =फिर। अन्ये पुद्गला =जीव से भिन्न अन्य पुद्गल स्कन्ध हैं वे अत्र स्वयमेव = आत्मा मे अपने आप ही। कर्मभावेन = (ज्ञानावरणादि) कर्म रूप से परिणमन्ते = परिणमन कर जाते हैं।

।। पुरुषार्थ देशना ।।१०।।

मनीषियो! ज्ञान–चेतना यदि निर्मल हो तो परमात्म तत्त्व दूर नही है और जहाँ ज्ञान का विपरीत परिणमन हुआ, समझ लो कि मेरा मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो गया। ऐसा चितवन जीव को विशालता देता है और यही चितवन जीव को सकुचन भी देता है। आत्मा वही है अन्यत्र नही गई पर विशाल चितक सर्वज्ञ हो गया और सकुचित नीचे चला गया, क्योकि चितन की धारा विशाल थी, समदृष्टित्व भाव था, प्राणीमात्र के प्रति एकत्व भावना थी तथा स्व के प्रति अभिन्नत्व भावना थी। पर भिन्नत्व मे अभिन्नत्व देखना, अभिन्नत्व मे भिन्नत्व देखना–यही तत्त्व की सबसे बडी भूल है। ज्ञान–दर्शन तेरा अभिन्न स्वभाव है उस पर तेरी अभिन्न दृष्टि नही है और पौद्गलिक पदार्थ तेरे से अत्यत भिन्न हैं, उन पर तू अभिन्न दृष्टि किये है, यह सबसे बडी तत्त्व की भूल है। यह ज्ञान के विपरीत परिणमन का प्रभाव ही है कि यह जीव ससार मे गोते खा रहा है। पदार्थ अपने आप मे मूक है, द्रव्य अपने आप मे शात है परन्तु परिणति मे उथल–पुथल है। मनीषियो! ध्यान रखना सर्वज्ञ बनने वाली आत्मा सपूर्ण सबधो से परे होती है। बात समझना कि जब तक आपका एक से सबध होगा तब तक अनेक से सबध नहीं होगा, जिसका एक से सबध छूट जाएगा उसका अनेक से सबध बन जाएगा, यही सत दृष्टि है।

भो ज्ञानी! सर्वज्ञ तभी बने, जब वे आत्मज्ञ थे। जब तक सबको जानने की भावना बनी रहती तब तक सबको जानने वाला नहीं बन सकते। यदि सबके ज्ञाता बनना चाहते हो तो सब का ज्ञान छोड दो, जिस दिन सबका ज्ञान छूट जायेगा उस दिन आप स्व के ज्ञाता बन जाओगे, क्योकि सबको जानने की भावना रागी मे होती है। जब तक राग रहेगा, तब तक सबको जानने की दृष्टि भी रहेगी और जिस दिन राग बीत जाएगा तुम सबको जानने की दृष्टि भी नहीं रखोगे। आपके

ज्ञान मे सब आ जाएगा। इसलिये ज्ञानी जीव जानने की दृष्टि मे नहीं रहता। ज्ञानी जीव न जानने की दृष्टि मे रहता है कि जितना कम जानोगे, उतना ही स्वय को जानोगे और जितना ज्यादा जानने का विचार करोगे, उतना ज्यादा आप स्वय से अज्ञानी बनते चले जाओगे, अहो! आपके पास क्षयोपशम तो अल्प है चाहे आप जिनवाणी को जान लो अथवा उपन्यास पढ लो, परतु जानने मे बध नहीं, जानने–जानने की दृष्टि मे बध है। इसी प्रकार से ज्ञाता भाव बध नहीं कराता, ज्ञाता भाव मे राग भाव बध कराता है। इसलिये बध का हेतु ज्ञाता भाव नहीं है। भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने 'समयसार' मे कहा है–ज्ञाता भाव बध नहीं, बध का कारण राग है, इसलिये विरागता की सम्पत्ति मे लिप्त होकर राग मत करो।

भो ज्ञानी! एक जीव कहता है जड कर्म घुमाते है मुझको, यह मिथ्या भ्राति रही मेरी" और एक जीव कह रहा है कि 'रागद्वेष घुमा रहे हैं'। मनीषियो! घुमा कौन रहा है ? और घूम कौन रहा है ? एक कार्य मे एक ही कारण नही होता, एक कार्य मे अनेक कारण होते हैं और उनमे से अपने–अपने स्थान पर वे सभी कारण प्रबल ही होते है। कुछ नजदीक हैं, कुछ दूर हैं, निमित्त है, उपादान है। इस बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं कि बध किसने कराया ? 'समयसार जी मे अस्सी नबर की गाथा और पुरुषार्थ सिद्धि उपाय मे बारह नबर का श्लोक यह दो समझ मे आ गए तो दोनो भ्रातिया समाप्त हो जाएगी।

भो ज्ञानी! देव–शास्त्र–गुरु की उपासना तो चल रही है पर साथ मे सिद्धात के विपरीत श्रद्धा भी दौड रही है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि उपासना तो कषाय की मदता मे भी हो जाती है और मद मिथ्यात्व मे भी हो जाती है। यह उपासना लोक देशना के लिये भी हो सकती है तथा उपासना मे कोई आशा भी हो सकती है, परतु सिद्धात मे आशा और लोभ नही होना चाहिये। अरिहत भगवान को भाव मोक्ष होता है,लेकिन द्रव्य मोक्ष तभी होगा जब अष्ट कर्म से रहित आत्मा हो जाएगी। अष्टकर्म से रहित आत्मा तभी होगी जब पहले आप आत्मा मे कर्म बध स्वीकार करोगे। यह विषय भले ही आपको शुष्क दिखेगा परतु प्रमाणिकता के नाते बहुत गहरे मे समझ के चलना है। यह जीव बध के अभाव मे मोक्ष मान रहा है, तो छुडाओगे किसे? वृहद द्रव्य सग्रह मे आचार्य नेमिचद्र स्वामी ने कहा है

वण्ण रस पच गधा, दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो सति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बधादो।। (वृ द स)

अहो चैतन्य! वर्ण, रस, गध आदि मे आत्मा का धर्म नहीं है। यह पौद्गलिक धर्म है, वर्ण पाच, गध दो, स्पर्श आठ, रस पाच निश्चय से हमारी आत्मा मे नहीं है। इसलिये मेरी आत्मा अमूर्तिक है। व्यवहार नय से ये आत्मा मूर्तिक है। इसलिये जब तू परमार्थ दृष्टि से देखेगा तो अभूतार्थ है

परतु व्यवहार दृष्टि से देखेगा तो भूतार्थ है। अत उभयदृष्टि से देखना, अभूतार्थ को अभूतार्थ नहीं समझोगे भूतार्थ को भूतार्थ नहीं समझोगे तब तक अभूतार्थ को नहीं छोडेगे और भूतार्थ को स्वीकार नहीं कर सकोगे। 'समयसार' जी में आचार्य कुदकुद स्वामी लिख रहे हैं –

जह बधे चिततो बधणबद्धो ण पावदि विमोक्ख।
तह बधे चिततो जीवोवि ण पावदि विमोक्खं।। ३११।।
जह बधे छित्तूणय बधणबद्धो य पावदि विमोक्ख।
तह बधे छित्तूणय जीवो सपावदि विमोक्ख।। ३१२।। (स सा)

बन्ध को तोडने से बध छूटेगा। बधन से बधा, निर्बधता का चितवन करे तो भी नही छूटेगा। बध से बधा है और बध रूप स्वीकार ले तो भी नहीं छूटेगा। द्रव्यानुयोग कहता है बधन मे पडा निर्बंधता को जान रहा है कि सुख निर्बधता मे है तो बध को छोडने का पुरुषार्थ करता है। निर्बधता का ज्ञान जिसमे करा दिया वह द्रव्यानुयोग है। जो बाध के रखे है वह करणानुयोग है। जो छुडवा रहे है वह चरणानुयोग है। जो सकेत कर रहा भईया सभल के चलना वह प्रथमानुयोग है। यदि निर्बंधता के सुख की बात करते हो तो बैल से पूछो–अहो वृषभ! तूने बध को समझा है तेरे सामने हरी घास है दाने भी रखे हुए है परतु मौका देखता है कि मालिक गया कि खूँटे को तोडने के लिये पुरुषार्थ प्रारभ कर देता है। हरी घास को नहीं निहार रहा है।

भो चैतन्य आत्माओ! तुम्हारे पास ऐसी हरी घास राग की है, पर पता नहीं कौन से खूँटे से बँधे हो। खूँटा, रस्सी भी नहीं दिख रही है आपकी। ध्यान रखना यदि बधन मे सुख होता तो तिर्यच खूँटा तोडने का प्रयास कभी नहीं करता? सोने के पिजरे मे तोते को रत्नो की कटोरी मे बादाम की खीर दिख रही है, पर देखो तो एक पक्षी तोड के चला गया छोड के चला गया, परतु आप ऐसे पक्षी हो कि फिर भी छोड के नहीं जा रहे। यह कमजोरी स्वय की है और स्वय ही दूर करेगा। इसलिये तो आचार्य कुदकुद देव ने लिखा है–जिस प्रज्ञा से बध किया है, उसी प्रज्ञा से बध ा से छूटेगा। परतु आप शक्ति को छिपाए बैठे हुए हो, बुरा मत मानना आगम मे स्पष्ट लिखा है कि अपने वीर्य को छिपा कर, अपनी शक्ति को छिपाकर, डाकू तो पर द्रव्य पर डाका डालता है पर तुमने तो स्वय के द्रव्य पर डाका डाला है। कहता है शक्ति नहीं है और विषयो की दौड मे तेरे पास शक्ति आ जाती है। ऐसे ही माँ जिनवाणी के शब्दो से तेरे अदर की शक्ति जाग्रत हो जाए तो तेरी शक्ति स्वभाव की ओर चली जाए। पर तुम शक्ति को छिपा रहे हो, जितनी शक्ति है उतना तो कर सकते हो। इतनी शक्ति तो है कि मदिर मे बैठकर भगवान का नाम ले सको। ऐसा कोई पुरुष नहीं होगा जो बिना कुछ सोचे बैठे रहे, उपयोग तो काम करेगा। भो ज्ञानी! उस उपयोग को आप शुभ उपयोग मे लगा दो। भो ज्ञानी! वर्तमान मे जिओ, सुखमय जीवन जिओगे। वर्तमान तेरा

निर्मल है, तो भविष्य तेरा नियम से निर्मल होगा। ज्ञानी भूत मे नहीं जीता, भविष्य मे नहीं जीता, वह तो वर्तमान मे जीता है। जो वर्तमान मे जीता है, वही वर्द्धमान बनता है। इसलिये बध मे सुख नही है, सुख तो निर्बंध मे ही है। यदि वर्तमान मे तुम बध के कार्यो मे लिप्त रहोगे तो निर्बंध दशा भविष्य मे मिल नहीं सकती। इसलिये बध तभी बद होगा जब बध के काम बद कर दोगे। अपनी खिडकी स्वय को ही बद करनी पडती है। पडौसी को तुम कहोगे भी, वह नही कर पाएगा, इसलिए भो चेतन! तुम तीर्थंकर को भी अपना पडौसी बना लेना, तो वे भी कहेगे–तेरे घर की खिडकियाँ तो हम एक बार बद कर सकते हैं, परतु तेरे निज घर की खिडकियॉ नही बद कर सकते, उनके लिए तो तुझे ही बद करना पडेगा। आगम मे लिखा है कि श्रुत के श्रवण मात्र से असख्यात गुण श्रेणी कर्म की निर्जरा होती है

भो ज्ञानी! जिस वृक्ष की जड जितनी गहरी चली जाए वह उतना ही तूफान से बच कर रहता है। आचार्य पूज्य पाद स्वामी लिख रहे हैं जैसे कि नवीन सकोरा (कुल्हड) मिट्टी के बर्तन मे आप एक बूँद पानी डाल देना। वह दिखेगा नहीं, परतु और डालते जाओ, डालते जाओ कुल्हड मे पानी दिखना प्रारभ हो जायेगा। भो ज्ञानी आत्माओ! अभी आप सिद्धात की दृष्टि से, आगम की दृष्टि से नये सकोरे है। श्रुत तुम्हारे उस सकोरे मे पड रहा है बाहर नही जा रहा है। पडते–पडते, एक दिन वह आ जाएगा कि आप बहुत बडे विद्वान के रूप मे दिखना प्रारभ कर दोगे। ऐसे ही जितने गूढ ग्रथो मे प्रवेश कर जाओगे उतना शुद्ध चेतनत्व प्रस्फुटित होगा। ज्ञान कम हो कोई दिक्कत नही, परतु विपरीत न हो। अल्प–ज्ञानी को तो मोक्ष है पर विपरीत–ज्ञानी को मोक्ष नही है। आचार्य समत भद्र स्वामी ने लिखा है कि मोही का बहु ज्ञान भी ससार का कारण है, पर निर्मोही का अल्प ज्ञान भी मोक्ष का कारण है। यदि अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव ग्यारह अग को भी समझ लेता है तो भी उसका ज्ञान ससार का ही कारण है और यदि एक भव्य सम्यक्दृष्टि जीव अष्ट प्रवचन मातृ का (पाँच समिति, तीन गुप्ति) को जान लेता है, समझो मुक्ति हो गई। मोक्ष जाने के लिये बहुत शास्त्र पढने की जरूरत नहीं है, परतु परिणामो को स्थिर रखने के लिये बहुश्रुत ज्ञान जरूरी है। इसलिए कभी भी ज्ञान का अनादर मत कर देना। अभिमान आए तो केवली को देखना, हीन भावना आए तो निगोदिया को देख लेना। भो ज्ञानी! बध का कारण है–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। आचार्य उमा स्वामी महाराज ने लिखा है कि ये ही पाँच शत्रु तुझे बाँधने मे लगे हुये हैं। आचार्य कुदकुद स्वामी ने चार शत्रु ही गिनाये हैं, क्योंकि प्रमाद को कषाय में सम्मिलित कर लिया गया है। इन बध के कारणो के द्वारा तेरे कषाय रूप परिणाम हुए और वे कर्म प्रदेश आत्मा के प्रदेशो मे प्रवेश कर गये। आत्म प्रदेशो में, कर्म प्रदेश का दूध पानी की तरह एकमेक सश्लेष भाव हो जाना ही बध कहलाता है।

भो ज्ञानी! जैसे ही तूने राग भाव किया, मिथ्यात्व भाव किया, असयम भाव किया, वह तुरत वही के वही बध को प्राप्त हो गये। यह दशा आपकी कर्म बध की है, इसलिये पुद्गल को सर्वथा दोष मत देना, अपने परिणामो को दोष देना, परिणाम तुमने नहीं किए होते तो पुद्गल कार्माण वर्गणाए कभी कर्म रूप परिणित नही हुई होतीं। योगेन्द्र देव स्वामी ने 'परमात्म प्रकाश, योगसार' मे लिखा है–भो ज्ञानी आत्मा! यह देह ही देवालय है, इसमे बैठा आत्म ब्रह्मा ही तेरा परमेश्वर है। जहा देव विराजमान हो उसे आप देवालय कहते हो, चैत्यालय कहते हो, मदिर कहते हो। भो चेतन! तू मदिर के बाहर चला जा, जितने पाप करना हो कर लेना, परन्तु जब तक देव देवालय मे बैठा है तब तक तू पाप बिल्कुल नहीं करना। बस, इतना नियम कर लो, कि जब तक देव–देवालय मे निवास करेगे तब तक पाप बिल्कुल नही करेगे।

हम्पी-हेमकूट पर्वत पर मदिर समूह

"बंध व्यवस्था"

परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै स्वयमपि स्वकैर्भावै ।
भवति हि निमित्त पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।।१३।।

अन्यवार्थ हि = निश्चय से। स्वकै = अपने चिदात्मकै = चेतना स्वरूप। भावै = रागादि परिणामो से। स्वयमपि = स्वय ही। परिणममानस्य = परिणमन करते हुए। तस्य चित अपि = पूर्वोक्त आत्मा के भी। पौद्गलिक = पुद्गल। कर्म = ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म। निमित्तमात्र भवति = निमित्त मात्र होते हैं।

|| पुरुषार्थ देशना ||११||

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की दिव्य देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य अमृतचन्द स्वामी ने बहुत ही सहज सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि पुद्गल का स्वतत्र परिणमन चल रहा है जीव का स्वतत्र परिणमन चल रहा है, परतु एक–दूसरे के निमित्त को प्राप्त करके राग–भाव और बध–भाव को प्राप्त हो रहे हैं।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद स्वामी ने समयसार आत्मख्याती टीका की अस्सी वीं गाथा मे दोनो बाते कह दी हैं कि जीव के रागादिक भावो के निमित्त को पाकर, यह कार्माण वर्गणाएँ कर्म रूप को प्राप्त हो रही हैं और कर्म के निमित्त को पाकर, जीव रागादि भावो को प्राप्त हो रहा है। दृष्टि को निहारना कि जीव चेतन है और कर्म जड है, फिर भी जड का चेतन पर प्रभाव पड रहा है। छह द्रव्यो के अन्तर्गत मात्र जीव और पुद्गल दो ही ऐसे द्रव्य हैं, जिनमे क्रियावती शक्ति है। क्षेत्र से क्षेत्रान्तरित होना–इसे ही क्रियावती शक्ति कहते हैं। जिस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य तथा कालाणु स्थाई हैं उसी प्रकार आकाश भी अपने आपमे स्थिर है। लोक सज्ञा को प्रदान कराने वाले छह द्रव्य जिस प्रदेश मे देखे जाते हैं–उसका नाम है आकाश और निश्चय दृष्टि से तो मेरी आत्मा ही लोक है। इस प्रकार पर मे पर को देखना बाह्य लोक है, निज मे निज को निहारना अन्दर का (निज का) लोक है।

भो ज्ञानी! लोक मे छह द्रव्य है। छह द्रव्यो मे एक पुद्गल द्रव्य है और उसके भी छह भेद हैं। (१) जिसका विखण्डन किया जा सकता है, जिसको पृथक–पृथक किया जा सकता है। वह स्थूल–स्थूल पुद्गल है जैसे कि पाषाण खड को तोड दिया, उसके आपको दो टुकडे आखो से दिख रहे हैं और हाथो से उठा रहे हो/स्पर्शित भी कर रहे हो–यह स्थूल–स्थूल स्कन्ध है। (२)

जो विखण्डित करने पर पुन मिल जाता है, वह 'स्थूल' पुद्गल का भेद है। जैसे घृत, तेल पानी आदि। (३) जो चक्षु इन्द्रिय से दिख तो रहा है, लेकिन जिनका छेदन–भेदन अथवा हस्तादिक से ग्रहण नही किया जा सकता है–जैसे छाया, धूप आदि वह स्थूल–सूक्ष्म' पुद्गल है। (४) जिसे आप ग्रहण तो कर रहे हो, अनुभव भी कर रहे हो पर दिख नही रहा है जैसे–आपके कानो मे शब्द जा रहे हैं, आप शीत उष्णता का वेदन कर रहे हो, चार इन्द्रिय के जो विषय हैं–यह 'सूक्ष्म–स्थूल' है–जैसे स्पर्श, रस, गध, शब्द आदि। (5) कार्माण वर्गणादि 'सूक्ष्म' भेद है। (६) कर्म वर्गणा से नीचे के द्विअणुक स्कध सूक्ष्म–सूक्ष्म' भेद हैं। जो अवधिज्ञानी और केवलीज्ञानी का विषय बनता है, श्रुत ज्ञान से 'परोक्ष' विषय बनता है, परन्तु आपके ज्ञान का विषय नहीं है। यह कार्माण वर्गणाए भी प्रत्यक्ष विषय नही। ज्ञान का स्कध परमाणु जो सूक्ष्म–सूक्ष्म है, के बारे हमारे आगम मे दो आचार्यों के दो अभिमत है। यदि हम इनके भेद करेगे तो परमाणु यहॉ नहीं आ पायेगा और पुद्गल के भेद करोगे तो परमाणु को ग्रहण करेगे।

भो ज्ञानी! लोगो ने आत्मा और पुद्गल शब्द को मात्र द्रव्यानुयोग की भाषा समझ लिया है, पर द्रव्यानुयोग इतना ही नही है। द्रव्यानुयोग को समझना है तो ग्रथराज पचास्तिकाय का अध ययन करो। जितना न्यायशास्त्र है, दर्शन शास्त्र है वह सब द्रव्यानुयोग है। आगम मे जितना दर्शनपक्ष है वह सब द्रव्यानुयोग है। आत्मा और पुद्गल के अदर क्या–क्या परिणमन चल रहा है, यह सब द्रव्यानुयोग का विषय है। सूक्ष्म की चर्चा के पहले आचार्यों ने पुद्गल के चार भेद और कर दिये–स्कध देश, प्रदेश और परमाणु।

अहो! अणु–परमाणु की चर्चा करने वाला और शून्य का आविष्कार करने वाला कोई दर्शन है, तो जैन दर्शन है। भौतिक विज्ञान आज भले ही न्यूट्रोन–प्रोट्रोन की बाते कर रहा है लेकिन मॉ जिनवाणी से पूछोगे तो यह कहेगी कि अभी तुमने स्कन्ध को ही जाना है परमाणु को तो जाना ही नही है। यह पूरा विषय मात्र आपके मस्तिष्क का चल रहा है। अरे! अनन्तानन्त परमाणुओ का समूह 'स्कन्ध' है, उसका आधा कर दो वह देश' सज्ञा को प्राप्त होता है। उस देश का आधा प्रदेश है तथा जिसका विभाग होना बद हो जाये उसका नाम 'परमाणु' है। जब तक विभाग चल रहे हैं तब तक परमाणु सज्ञा नही है, स्कन्ध है। जब आपके पास अविभाज्य बचे–उसका नाम परमाणु है। परमाणु देशावधि ज्ञान का भी विषय नहीं है, वह तो सर्वावधि–परमावधि ज्ञानी मुनिराज के ज्ञान का विषय है। देशावधि ज्ञान तो देव, नरक, तिर्यंच, मनुष्य आदि चारो गतियो मे हो जाता है पर सर्वावधि–परमावधि ज्ञान नियम से एक भवातारी, चरमशरीरी मुनिराज के ही होता हैं। वह व्यतिपाती (छूट जाने वाले) नहीं होता अर्थात् उनका अवधिज्ञान छूटता नहीं है।

भो ज्ञानी! आज के युग मे कर्म सिद्धात समझना बहुत सरल हो गया है। कर्म एक वस्तु है, आत्मा भी एक वस्तु है। इसे आप रहस्य का विषय मत बनाओ। आत्मा एक द्रव्य है, कर्म एक

द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य परस्पर मे निमित्त नैमित्तिक सम्बध रखते हैं। जैसे कि आज आपके हाथ मे मोबाइल है बिना तार के आप शब्द सुन रहे हैं। यह पुद्गल के छह भेदो में 'सूक्ष्म–स्थूल' भेद हैं, जो चार इन्द्रिय का विषय है, दिखता नहीं, पर अनुभव मे आता है। यह पुद्गल वर्गणाये, भाषा वर्गणाये इतनी गतिशील हैं कि एक सैकड मे, आप यहाँ बैठे–बैठे हजारो किलोमीटर दूर की बाते कर रहे हो। एक स्थूल पौद्गलिक शक्ति को वर्तमान के विज्ञान ने इतना विकसित किया है। ऐसे ही शब्दो को सस्कारित करके बोलना अर्थात् शब्दो को व्याकरण द्वारा सस्कारित किया जाना–उसका नाम ही सस्कृत है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि पहले भावों का जन्म होता है, फिर बोली का जन्म होता है। बोली जो खड–खड होती है तो व्याकरण से इसे सुधार किया जाता है–उसका नाम हो गया भाषा। शब्द को लोगों ने आकाश का धर्म कह दिया, किन्तु आकाश अमूर्तिक है, शब्द मूर्तिक है। शब्द आकाश का धर्म नही, शब्द पुद्गल का धर्म है। यह पुद्गल द्रव्य की पर्याय है और उसे जिनवाणी शब्द वर्गणा कहती है।

यह आत्मा पुद्गल के आलम्बन से इतने सब काम कर रही है। यह चैतन्य विद्युत की तरगे इस शरीर रूपी मशीन से अपना सब काम करा रही है।बटन चटकाया काम प्रारम्भ हुआ। चैतन्य बिजली चली गई तो मशीन रह गई। भो ज्ञानी! विद्युत चली जाती है वह आत्मा है। आचार्य कुदकुद स्वामी कह रहे हैं कि बिना व्यवहार के हम परमात्मा को नही समझ सकते। इसी प्रकार बिना पुद्गल के सयोग के हम आत्म द्रव्य को नहीं समझ सकते। पर आत्मा ही उपादेय है, पुद्गल उपादेय नही। ये ध्यान रखना, आत्मा के ज्ञान दर्शन की तरगो को अर्थात् आत्मा की उपयोग दशा को यदि तुम भोग मे लगाओगे तो जला देगी, योग मे लगा दोगे तो जिला देगी, अमर कर देगी। अब चाहे तुम अशुभ मे जाओ चाहे शुभ मे। उपादान शक्ति तो आत्मा की है अज्ञानी ने विभाव को पुद्गल मे जड दिया और स्वभाव को आत्मा मे जड दिया है, जबकि विभाव–स्वभाव दोनो धर्म आत्मा के है।

मोबाइल की सिद्धि हेतु जैन आगम कह रहा है कि जब उस तीर्थंकर आत्मा ने जन्म लिया तब स्वर्ग–नरक मे कोई मोबाईल नहीं रखा था। परन्तु बिना तार के बिना लाइन के उस पुण्य वर्गणा ने प्रभाव दिखाया। सौधर्म इन्द्र का मुकुट हिलने लगा और नरक के नारकी को एक क्षण के लिये शाति मिलने लगी। ये क्या था? मोबाइल की तरह पुद्गल वर्गणाए अपना काम कर रही हैं। विज्ञान ने कुछ नया नहीं खोजा। सब खोजा हुआ दिखाया है खोजा हुआ रखा है आगम मे। अन्तर इतना है कि आज हम अपनी समाज को जैन साहित्य पर आकर्षित नही करवा पा रहे हैं जिनवाणी के सूत्रो के रहस्यों को खोल नहीं पा रहे। आज तो दीवारो पर सूत्र लिखे है, लेकिन उन सूत्रों मे क्या–क्या है, मालूम नहीं। जब कोई पुण्यात्मा जीव निकलता है, और अपन उससे मिलते

हैं तो रोगटे खडे होने लगते है। इसका तात्पर्य है उन वर्गणाओ ने, उन तरगो ने आपको प्रभावित कर लिया है।

जैसे एण्टीना लगाकर आप पिक्चर खीच रहे हो और बाहर भेज रहे हो, ऐसा ही आगम कहता है। आपने किसी की प्रशसा की तो वह व्यक्ति समझ जायेगा कि यह हमारे को ही केद्र बना रहा है। इतने सारे लोग बैठे हैं, उन्हे प्रसन्नता नहीं आ रही क्योकि हमारा एण्टीना उनकी ओर नहीं है। जिस जीव के अदर कषाय भाव है, उस जीव को कार्माण वर्गणा टपकती है और जिसको कषाय भाव नहीं होते उसको बध होगा ही नहीं, क्योकि इसी लोक मे तीर्थकर केवली रहते हैं, इसी लोक मे ऋषि मुनिराज जी रहते हैं और यहीं रोगी–भोगी भी होते हैं परतु वे बध नहीं रहे हैं और ये बध रहे है। जबकि वर्गणाये सभी के पास हैं। तेईस वर्गणाओ मे से पाच काम कर रहीं हैं।

भो ज्ञानी! आगम मे देवो के चार भेद हैं, भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषि और कल्पवासी। इनमे व्यतर के भेद है– भूत पिशाच, उनके वैक्रियक शरीर हैं। भूत किसी को लग गया मतलब व्यतर देव ने किसी को परेशान किया है। यहा तक कि हाथ पैर हिलाना प्रारभ हो गये। जब कोई मत्रवादी कोई मत्र फेकता है, तो वह प्रसन्न हो जाता है। यदि भगाने की दृष्टि से किया है तो वह चिल्लाता, तडपता है, जिसको लगे हुए हैं, मैं जा रहा हूँ। मुझे छोड दो जबकि कोई पकडा नही है और पुदगल से पुदगल ने उसे खींच के बाहर कर दिया। ऐसे ही कर्म वर्गणाये इस लोक मे ठसाठस भरी हुई हैं। जैसे एक कम्प्यूटर मे छोटी सी चिप्स के अदर कई ग्रथ भर देते हो! उसमे कौन सी ऐसी शक्ति है जो भरे जा रहे हो, ये पुदगल मे पुद्गल भरे जा रहे है।

आत्मा चाहे निगोदिया के शरीर मे हो, चाहे हाथी के शरीर मे, वह असख्यात प्रदेशी ही है और सत्तर कोडा कोडी तक बध करने वाले कर्म भी इस आत्मा मे चिपक जाते हैं। अहो! सत्तर कोडा कोडी सागर प्रमाण मे भटकने की जिसे फुरसत हो वे देव–शास्त्र–गुरु आदि की खूब अवहेलना करे। इसलिए कभी किसी के बारे मे अपशब्द मत कहना। किसने क्या कहा! किसे क्या किया! उसकी भवितव्यता वह जाने! हमारे यहाँ पापी की भी आलोचना को मना किया है। आगम तो कहता है कि मुझे समझकर, ऋजुता लाओ! जो जिनवाणी पढकर भी सूखे बने हुए हैं ऐसे लोगो के परिणाम बडे कलुषित होते हैं। पर ध्यान रखना यह ससार की माँ तो तुझे जन्म देकर ससार मे डाल देती है परन्तु जिनवाणी माँ ससार से निकाल करके सिद्धालय मे भेज देती है। ससारी माँ ने तुझे आचल का दूध पिलाया है, तेरा पेट भरा है, पर जिनवाणी माँ चारो अनुयोगो के आचल का पान कराकर तेरे जन्म, जरा, मृत्यु के रोग को मिटाने वाली है। इसलिए इस माँ को भूल नहीं जाना।

"पुरुषार्थ की सिद्धि का उपाय"

एवमय कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशाना प्रतिमास स खलु भवबीजम्।। १४।।

अन्वयार्थ – एवम् अय = इस प्रकार यह (आत्मा)। कर्मकृतै = कर्मों के किए हुए। भावै = (रागादि या शरीरादि) भावो से। असमाहितोऽपि = सयुक्त न होने पर भी। बालिशाना = अज्ञानी जीवो को। युक्त इव = सयुक्त सरीरवा। प्रतिभाति = प्रतिभाषित होता है, (और)। स प्रतिभास खलु = वह प्रतिभास ही निश्चय करके। भवबीजम् = ससार का बीजभूत है।

विपरीताभिनिवेश निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलन स एव पुरुषार्थसिद्धयुपायोऽयम् ।। १५।।

अन्वयार्थ – विपरीताभिनिवेश निरस्य = विपरीत श्रद्धान को नष्ट कर। निजतत्त्वम् = निजस्वरुप को। सम्यक् व्यवस्य = यथावत् जानकर। यत् = जो। तस्मात् = उस अपने स्वरूप से। अविचलन= च्युत न होना। स एव अयम् = वह ही यह। पुरुषार्थसिद्धयुपाय = पुरुषार्थ की सिद्धि का उपाय है।

|| पुरुषार्थ देशना ||१२||

भव्य बधुओ! आज सभी भव्यो का अहोभाग्य है कि सर्वज्ञ–शासन मे विराजकर सर्वज्ञदेव की पीयूषवाणी का पान कर रहे है। क्षीण पुण्य वाले जीवो को जिनवाणी सुनने के भाव ही नही होते, वह तो ससार को वृद्धिगत करने वाली गोष्ठियो मे जाकर बैठेगे, परतु निजात्म–तत्त्व की गवेषणा गोष्ठी मे बैठने के परिणाम उनके नही होते। यही तो जीव के परिणामो की परीक्षा है कि पुण्य–परिणामी पुण्य–क्षेत्र की ओर दौडता है और पाप–परिणामी पाप–क्षेत्र की ओर जाता है। अहो, किया भी तो क्या जाय ? विधि का विधान ही ऐसा है, यानि कर्मों का विपाक कर्मानुसार ही होता है।

आचार्य अमृतचद्र स्वामी आज अपूर्व चर्चा करने जा रहे हैं। वे अनादिकाल की भूल को सुधारने हेतु भव्यो को निर्मल भाव से सम्बोधन कर निज भूल को सुधारने की प्रेरणा दे रहे हैं कि अन्तर–दृष्टि को विशुद्ध कर लो, क्योकि बाह्याचरण की निर्मलता होने पर भी अतरग निर्मलता के

अभाव मे कर्म–निर्जरा नहीं हो पाती। अत तत्त्व–निर्णय विशुद्ध होना चाहिए। जब तक तत्त्व–निर्णय नहीं होगा तब तक विशुद्धि मे वृद्धि नहीं हो पाती। जैसे ही जीव के तत्त्व का निर्णय होता है, उस समय सम्पूर्ण भय, आश्चर्य, अरति आदि भाव उपशमता को प्राप्त हो जाते हैं। अत निज जाति ध र्म का ज्ञान होना अनिवार्य है। जब तक शूद्र–गृह–पोषित–ब्राह्मण–सुत को निज जाति का ज्ञान नही होता, तब तक वह अपने को शूद्र–पुत्र ही मानता है, परतु निज कुल का ज्ञान होते ही उसकी अवस्था शीघ्र ही परिवर्तित हो जाती है। उसी प्रकार यह जीव शूद्र–स्थानी देह मे जन्मा है, अज्ञानता से उसे ही निज स्वभाव मान बैठा है। पूर्णरूपेण शरीर मे ही आत्मबुद्धि होने के कारण आत्मा के कष्ट का विचार नहीं कर पा रहा। अत जीव के द्वारा शरीर के कष्टो को दूर करने के प्रयास ही हो रहे हैं, जबकि आत्मा के कष्ट दूर होते ही शरीर के कष्ट स्वयमेव दूर चले जायेगे।

भो ज्ञानी! आचार्यश्री यहॉ पर बहुत ही उपादेयभूत तत्त्व का कथन कर रहे हैं– जिससे अज्ञान एव अनादि की अविद्या का भ्रम समाप्त हो जाता है। उसे सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक द्रव्य अपनी–अपनी स्वतत्र सत्ता से युक्त है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के वश मे नहीं है। उपादान– दृष्टि से अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार ही परिणमन करता है। धर्म–द्रव्य कभी भी अधर्म द्रव्यरूप नही होता काल–द्रव्य कभी भी आकाशरूप परिणत नही होता, जीव कभी अजीव–पुद्गलादिरूप नही होता। स्वभाव अपेक्षा से तो वह आत्मा शुद्ध चिद्रूप है, पर उपाधि से परे है, परतु व्यवहार–नय से ससार–अवस्था मे कर्म सापेक्षता की अपेक्षा नाना रूप हैं जैसा कि पूर्व मे कहा गया कि रागादिक भाव पुद्गल कर्म के कारणभूत है, जबकि यह आत्मा निज स्वभाव की अपेक्षा नाना प्रकार के कर्म–जनित भावो से पृथक् ही चैतन्य–मात्र वस्तु है। जैसे–लाल रग के निमित्त से स्फटिक मणि लालरूप दिखाई देती है, यथार्थ मे लालस्वरूप नही है रक्तत्त्व तो स्फटिक से अलिप्त ऊपर ही ऊपर की झलक मात्र है और स्फटिक स्वच्छ श्वेत वर्णपने से शोभायमान है। इस बात को परीक्षक (जौहरी) अच्छी तरह से जानता है परतु जो रत्न–परीक्षा की कला से अनभिज्ञ है वह स्फटिक को रक्तमणि व रक्तस्वरूप ही देखता है। इसी प्रकार कर्म के निमित्त से आत्मा रागादिक–रूप परिणमन करता है परतु यथार्थ मे रागादिक भाव आत्मा के निज भाव नहीं हैं।

भो ज्ञानी! आत्मा अपने स्वच्छतारूप चैतन्य–गुण–सहित विराजमान है। रागादिकपन अथवा स्वरूप विभिन्नता ऊपर ही ऊपर की झलक मात्र है। इस बात को स्वरूप के परीक्षक (जौहरी) सच्चे ज्ञानी भलीभॉति जानते हैं, परतु अज्ञानी अपरीक्षको को आत्मा रागादिकरूप प्रतिभाषित होता है। यहाँ पर यदि कोई प्रश्न करे कि पहले जो रागादिक–भाव जीवकृत कहे गये थे, उन्हे अब कर्मकृत क्यो कहते हैं? तो इसका समाधान यह है कि रागादिकभाव चेतनारूप है, इसलिए इनका कर्ता जीव ही है परतु श्रद्धान कराने के लिए इस स्थल पर भूलभूत जीव के शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा

रागादिक भावकर्म के निमित्त से होते हैं, अतएव कर्मकृत हैं। जैसे भूत–गृहीत मनुष्य भूत के निमित्त से नाना प्रकार की जो विपरीत चेष्टाये करता है उनका कर्ता यदि शोधा जावे तो वह मनुष्य ही निकलेगा। परतु वे विपरीत चेष्टाये उस मनुष्य के निज भाव नहीं हैं, भूतकृत हैं। इसी प्रकार यह जीव कर्म के निमित्त से जो नाना प्रकार के विपरीत भावरूप परिणमन करता है, उन भावो का कर्त्ता यद्यपि जीव ही है, परतु यह भाव जीव के निज स्वभाव न होने से कर्मकृत कहे जाते हैं, अथवा कर्मकृत नाना प्रकार के पर्याय, वर्ण, गध, रस, स्पर्श, कर्म, नो कर्म, देव, नारकी, मनुष्य तिर्यंच, शरीर सहनन, सस्थानादिक भेद एव पुत्र, मित्रादि, धन, धान्यादि भेदो से शुद्धात्मा प्रत्यक्ष ही भिन्न है।

भो चेतन! स्वभाव–दृष्टि से विचार करने पर तत्त्व–ज्ञान सहज प्रकट होता है, तथा वस्तु के अतरग स्वभाव का वेदन होना प्रारभ हो जाता है। अज्ञानी जीव देह को प्राप्त कर देही को भूल जाते है। सम्पूर्ण पर्याय के क्षणो को पर्याय–दृष्टि मे ही लगा देते हैं, द्रव्य–दृष्टि पर दृष्टि ही नहीं डालते। अतएव एक बार निज द्रव्य के भूतार्थ स्वरूप पर निज दृष्टि को ले जा। अहो ज्ञानियो! मालूम चल जायेगा कि आत्मधर्म स्पर्श, रसादि, पुद्गल धर्मों से अत्यन्त भिन्न है। चार अभावो मे जीव का पुद्गल के साथ अत्यन्ताभाव है। जीव ज्ञान–दर्शन स्वभावी है, दोनो के गुणो–पर्यायो मे विभक्त भाव हैं। पुद्गल जड है, आत्मा चैतन्य है। आचार्य भगवन् समझा रहे हैं–यह आत्मा कर्मकृत शरीरादि समाहित न होने पर भी अज्ञानी जीव शरीरादि–युक्त आत्मा को मानते हैं। शरीर और आत्मा का सश्लेषरूप सबध तो है, परन्तु अविनाभाव सम्बध नही है। अविनाभाव सबध तो जीव के ज्ञानदर्शन के साथ है। आत्मा उपयोगमयी चिद्रूप है। कर्मकृत रागादि भावो को एव शरीरादि को निजरूप मानना ही अनन्त भवभ्रमण का बीज है। देह व जीव को एक–रूप मानना ही तो बहिरात्म–भाव है। बहिरात्म–भाव का परित्याग किये बिना अतरात्मा नहीं होता और अतरात्मा हुये बिना जीव कभी परमात्मा नहीं बन सकता। भो मुमुक्षु आत्माओ! भव–बीज देह मे आत्म–दृष्टि का त्याग करो, तभी परम लक्ष्य की प्राप्ति सभव है।

भो ज्ञानी! विपरीत अभिप्राय को बदलना ही तो सम्यकत्व है तथा विपरीत जानकारी को समाप्त कर सम्यक् रूपेण पदार्थ को जानना सम्यक्ज्ञान है। विपरीताचरण से रहित होना ही तो सम्यक् चारित्र है। इन तीनो की एकता का नाम ही तो मोक्षमार्ग है। इनमे से एक के भी अभाव मे मोक्षमार्ग की सिद्धि नही होती। इसलिए पूर्वकथित पर्यायो मे आत्मबुद्धि अथवा सात तत्त्वो से विपरीत तत्त्वो को स्वीकार लेना विपरीत श्रद्धान है। उस विपरीतता से रहित सम्यक् निज आत्मस्वरूप को यथावत् जानकर अपने स्वरूप से च्युत न होना, यह पुरुषार्थ–सिद्धि का उपाय है। उसी उपाय का पुरुषार्थ कर निज पुरुष की प्राप्ति करो यही मुमुक्षु जीव का लक्ष्य होना चाहिए, शेष अलक्ष्यो से निज की रक्षा करो।

"निर्ग्रंथ चर्या अलौकिक वृत्ति"

अनुसरता पदमेतत् करंम्बिताचारनित्यनिरभिमुखा ।
एकातविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्ति ।।१६।।

अन्वयार्थ एतत् पद = इस पद को। अनुसरता = अनुसरण करने वाले (अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुए)। मुनीना = मुनियो को। करम्बिताचार नित्यनिरभिमुखा = पाप मिश्रित आचार से सदा पराङ्मुख एकान्तविरतिरूपा = सर्वथा त्यागरूप। अलौकिकी वृत्ति भवति = लोक से विलक्षण प्रकार की वृत्ति होती है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।१३।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने बहुत ही सहज सूत्रो का कथन किया कि द्रव्य को नहीं अभिप्राय को सुधारने की आवश्यकता है। आदिनाथ जैसे तीर्थेश भी, मारीचि को, अभिप्राय निर्मल नहीं होने से भगवान के रूप मे नहीं दिखे। अत व्यक्तियो मे दोष निहारने से पहले अपनी दृष्टि मे दोष निहारना बहुत आवश्यक है। ज्ञानी हमेशा अपनी दृष्टि मे दोष खोजते हैं। निज की दृष्टि मे दोष खोज लोगे तो मोक्ष है और दूसरो के दोषो को खोज कर उन्हे सुधार भी करवा दोगे तब भी तुम्हारा मोक्ष नही है।

भो चेतन! धोबी की पर्याय में आप कब तक जीते रहोगे तूने पर के वस्त्रो को धोया है, परतु स्वय की चादर को नहीं निहारा कि मेरी चादर मे कितने दाग हैं ? दूसरे के वस्त्रो को तूने सिला है, परतु अपने वस्त्र पर लगा थिगरा नहीं देखा। अहो! जीव को पर का दोष सुमेरू जैसा दिखता है एव स्वय के सुमेरू जैसे दोष राई जैसे भी नहीं दिखते। भो ज्ञानी! माँ जिनवाणी वस्तु को नहीं, दृष्टि को निर्मल करती है। दृष्टि की निर्मलता ही वस्तु की निर्मलता है। इसलिए मनीषियो! अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं जिसने मोक्ष को उपादेय माना है उसकी दृष्टि अलौकिक है। पद्रहवी कारिका मे तो यह कह दिया कि यदि अभिप्राय निर्मल नहीं हुआ तो साधु भेष तो प्राप्त हो जाएगा, परतु सत स्वभाव प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि मोक्षमार्ग साधु भेष से नही, साधु स्वभाव से बनेगा। अत भेष आधार है, भाव आधेय है। अत जैसा आधेय है वैसा आधार हो जाता है। आधेय तेरा सत स्वभाव है तो भेष तेरा साधु है। जब तुम भूल को निकाल कर फेंकोगे तभी मूल स्वभाव को प्राप्त कर सकोगे।

भो ज्ञानी! तुम पहले श्रावक धर्म का उपदेश मत देना, पहले यति धर्म (महाव्रत) का कथन

करना। यदि महाव्रत स्वीकार करने की समर्थता नहीं हो, तो फिर अणुव्रत की बात करना। मुमुक्षु आत्माओ! माँ जिनवाणी कहती है–भोग भोगना तो पशुवृत्ति है, बध का कारण है। अहो! चारित्र का कथन जितना सरल होता है चर्या उतनी कठिन होती है। किंतु वास्तव मे चर्या से सरल विश्व मे कोई पदार्थ नहीं होता, विषयो का सेवन कठिन होता है। भोगने मे ग्लानि होती है, शर्म लगती है, परतु सत बनने मे कोई शर्म नहीं लगती। जिसको छिपाकर किया जाए, वही तो पाप है। यदि कोई धर्म और पाप की परिभाषा पूछे तो क्या बताओगे? जितने काम छिपकर किए जाते हैं, वे पाप हैं। मनीषियो! तुम कितने ही कमरे के अदर बद होकर पाप कर लेना, परतु जिस दिन विपाक आयेगा उस दिन छिपा नही पाओगे। वह तो सामने आऐगा ही। जिसके कहने मे ग्लानि न हो, बताने मे ग्लानि न हो, दिखाने मे ग्लानि न हो, वह पुण्य कर्म है। जिसके सुनने–सुनाने मे ग्लानि हो, कहने मे ग्लानि हो, दिखाने मे ग्लानि हो, समझ लो इससे बडा कोई पाप कर्म नहीं है।

भो ज्ञानी! ससार कठिन है, परमार्थ कठिन नहीं है। आप जो कुछ करते हो सप्त व्यसनो मे उलझ कर करते हो। सब कुछ तेरा पराधीन है, बाल भी कटवाना होता है तो नाई की दुकान के चार चक्कर लगाते हो, पर देखो साधक वृत्ति, जब मन मे आ जाए तो किसी से नहीं पूछते केश–लोच के लिए अर्थात् योगी की प्रत्येक क्रिया स्वाधीन है। एक छोटा सा बालक आया, बोला–महाराज! हमे प्रायश्चित दे दो। हमारा रात्रि भोजन का त्याग था, जो हमसे टूट गया। मैंने पूछ लिया कैसे टूट गया? बोले–हमने नही चाचा ने जबरदस्ती खिला दिया। हमने मना किया, तो वे मारने को तैयार हो गए। अब देखना ससार की दशा, उस छोटे से बच्चे का हृदय कह रहा कि नहीं खाना, परतु चाचा ने जबरदस्ती खिला दिया। भो ज्ञानी! इसलिए समझ जाना, सँभल जाना बधो के बीच मे तुम निर्बंध होने की बात कर रहे हो। यह तो आप गाय के सीग से दूध निचोड रहे हो। आप कहोगे जिनवाणी सुनाओ, वे कहेगे पानी पिलाओ, अत बधुओ के बीच निर्बंध नहीं हो सकते, निर्ग्रंथो के बीच जाओगे तभी निर्बन्ध हो पाओगे। व्रत, समिति, गुप्ति, द्वादस अनुप्रेक्षा चारित्र ये निर्बंधता के हेतु है। इसलिए आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि आप लोग गरीब नहीं हो, दरिद्र नही हो। आपका द्रव्य आपको दिख नहीं रहा, इसलिए आप दरिद्री मान के बैठे हो। अहो! जितने धनाढ्य अर्हन्त प्रभु है, जितने धनाढ्य सिद्ध परमेश्वर हैं, उससे आप किचित भी अल्प धनाढ्य नहीं हो। अतर इतना है कि तुम्हारे मोती दीवार मे छिपे हैं। अत यह मोह की दीवारे तोड दो और अपनी सिद्ध पर्याय पर दृष्टि पात करो। क्या अशुद्ध को ही शुद्ध मानकर बैठे रहोगे ? यही मान्यता ही तुम्हे शुद्ध नहीं होने दे रही है, जिस दिन अशुद्ध को अशुद्ध मान लोगे और शुद्ध को शुद्ध जान लोगे, उस दिन तुम शुद्ध होने का पुरुषार्थ प्रारभ कर दोगे।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, बीज मे वृक्ष तो होता है, पर बीज वृक्ष नहीं होता। तिल मे तेल

होता है, लेकिन तिल, तेल नहीं है। बिना पिरे तिल से तेल नही बनेगा। चैतन्य ही परमेश्वर है, लेकिन प्रत्येक चैतन्य परमेश्वर नही। जब भी परमेश्वर बनेगा तो चैतन्य ही बनेगा। पाषाण मे प्रतिमा है परतु प्रत्येक पाषाण प्रतिमा नहीं है, जब भी प्रतिमा निर्मित होगी तो पाषाण से ही होगी। लेकिन बिना छैनी–हतौडी के, बिना शिल्पकार के पाषाण प्रतिमा बनेगी नहीं। भेद विज्ञान की छनी, चारित्र की हतौडी और चैतन्य शिल्पकार होगा तो जो व्यर्थ के उपल खण्ड हैं, शिल्पकार उन्हे तोड–तोड के फेक देगा। ऐसे ही आठ कर्मों के जो उपल खण्ड हैं उसे भेद विज्ञान की छैनी से टाक–टाक कर तुम निकाल दो, तेरा आत्म प्रभु प्रकट हो जाएगा। जैन दर्शन मे बनाई गई प्रतिमा की पूजा नहीं की जाती जैन दर्शन मे तो निकाली हुई प्रतिमा की ही पूजा होती है। प्रतिमा तो त्रैकालिक उसमे विराजमान है ऐसे ही तेरे मे तेरा प्रभु त्रैकालिक विराजमान है परतु कर्मों से ढका है। मात्र भेद विज्ञान का बाण छोड दो तेरा प्रभु प्रकट हो जाएगा। पर ध्यान रखना निज के प्रभु को निकालने के लिए षट्रस का भोजन करते–करते तू प्रभू को कैसे निकाल पाएगा ? षटरस मे लिप्त आत्माओ! यदि तुम अपने प्रभु को निकालना चाहते हो, तो जब तक शुद्ध भोजन नहीं करोगे तब तक शुद्ध चेतना जागृत नही होगी। मूलाचार' मे गाथा ४८९ की टीका मे शुद्ध भोजन का अर्थ है पानी मे दाल उबालकर रख दो, पानी मे साग उबालकर रख दो। उसमे नमक नही डालना, कोई बघार नही देना। यानि एक द्रव्य मे दूसरे द्रव्य का प्रवेश बिल्कुल नही करना। जो शुद्ध नीरस भोजन है उसका नाम शुद्ध भोजन और जो मिला दिया वह है विकृत भोजन, अशुद्ध भोजन। अहो! भोजन ही विकार का जनक है। भोजन मे विकृति है, तो तेरे भावो मे विकृति का उदय हो जाता है। यदि निर्विकारता को हासिल करना चाहते हो, तो निर्विकार वस्तु को ही देखना होगा। जैसा धवल वस्त्र है वैसा ध वल परिणाम रहेगा। तुम्हारी वेष भूषा मे, भोजन मे, इन सब मे सयम होना अनिवार्य है, तब निर्विकारी शुद्ध बन पाओगे।

भो चैतन्य! बाहर की चमको को नही अदर की चमक देखो। श्रावकाचार मे इसका सर्वत्र निषेध किया है, क्योकि आप भडको या न भडको, तुम्हारे भडकीले वस्त्र देखकर दूसरे की भावना भडक गयी, तो तुम ही दोषी हो। इसलिए हे निर्ग्रंथ! तू कर्मों से निर्लिप्त होना चाहता है तो मल से लिप्त रहो, मल ही सत का आभूषण है, इसलिए मल परिषह नाम का एक परिषह होता है बाईस परिषहो मे। आचार्य अमृतचद स्वामी कह रहे हैं कि धरती के देवता सतो के हम चरण भी छू लेते हैं और आचरण भी छू लेते हैं। आगम में लिखा है–

साधुना दर्शन पुण्य, तीर्थभूता ही साधवा ।
कालेन फलित तीर्थ, सद्या साधु समागम ।।

तीर्थ का फल तो कालान्तर मे फलता है पर साधु की वदना का फल तुरंत फलता है।

हे प्रभु! मैं सत बनूँ न बनूँ, परतु सत स्वभाव की वदना अवश्य करूँ। लोक जहाँ जन–रजन में लीन होता है, वहाँ सत आत्मरजन में लीन होता है। अहो! असतो का मनोरजन होता है, तो सतो का आत्म रजन होता है। भो ज्ञानी! वह ही सत चरण है जिन्हे देखकर असतो के मन में भी एक क्षण के लिए सत बनने की भावना आ जाए। निर्विकारी बनना चाहते हो तो इन आँखो से कहना, हे निर्मल नेत्र! जब भी देखो तो साधु को साधु रूप मे ही देखना, क्योकि जब भी हम सत चरणो में निहारते हैं, तो तपो वृत्ति ही मिलती है।

भो ज्ञानी! तुम सौभाग्यशाली हो। देखो उन विद्वानो को, तडप–तडप के चले गए, कब मिले हैं वे गुरु ? ते गुरु मेरे उर बसो", क्योकि ऐसा मध्यकाल आया कि जिस युग मे निर्ग्रंथ दशा लुप्त हो रही थी, उस समय के आचार्य महाराज शातिसागर, आदिसागर भगवन्तो को नमन कर लेना कि हे प्रभु! आपने हमारी सुप्त गुरु व्यवस्था को जागृत किया है और धन्य है भगवन्त कुदकुद स्वामी जिन्होने सत स्वरुप का व्याख्यान किया और परम वदनीय भगवन् समन्तभद्र स्वामी, जिन्होंने जिनवाणी को भी कसौटी पर कस कर नमस्कार किया। उन्होने कहा कि मैं सब देवो को नहीं मानता जिसमे क्षुधा आदि अठारह दोष नही है वह ही मेरा वदनीय आप्त है। जिसमे कुपथ का वर्णन किया हो उसे आगम परमागम सज्ञा मत दे देना। जो आप्त के द्वारा कथित हो और जिसका कोई उल्लघन नही कर सकता, पूर्वापर विरोध से रहित हो। अहो! जिन देशना पूर्वापर विरोध से रहित होती है कुपथ का खण्डन करने वाली होती है। उसका नाम वीतराग द्वादशाग वाणी है। जो विषय–कषाय से रहित हैं आरभ–परिग्रह से रहित है, ज्ञान–ध्यान–तप मे लीन हैं ऐसे निर्ग्रंथ तपोधन ही हमारे परम आराधनीय, वदनीय, मगल, उत्तम, शरणभूत हैं। वे ही हमारे निर्ग्रंथ गुरु हैं।

भो आत्मन्! हमे व्यक्ति से प्रयोजन नही, ' णमो लोए सव्वसाहूण लोक के सपूर्ण साधुओ को नमस्कार हो जो अदर–बाहर से निर्ग्रंथ हैं, जो दर्शन–ज्ञान से सलग्न है। जो चारित्र मोक्ष का मार्ग है ऐसे चारित्र की सिद्धि कर रहे हैं वे ही साधु हैं वे ही मेरे द्वारा पूज्यनीय–वदनीय है–ऐसा आचार्य भगवन् नेमिचद्र स्वामी ने द्रव्य सग्रह' ग्रथ मे लिखा है। लोक मे बहुत गुरु होते हैं–विद्या गुरु, शास्त्र गुरु, शस्त्र गुरु, परतु आस्था के गुरु तो निर्ग्रंथ ही होते हैं। मोक्षमार्ग के गुरु तो निर्ग्रंथ ही हैं। बाकी विधाओ के गुरु का आप बहुमान रखे, सम्मान रखे, कोई परेशानी नही है, परतु ध्यान रखना, सिखाने वाले सिखाने तक ही गुरु है, पर पच परम गुरु की सज्ञा के गुरु नहीं है। इतना ध्यान रखना, यदि इससे तुम आगे बढ गए तो ग्रहीत मिथ्यात्व है। क्योकि सत्य का निरूपण तो असत्य भाषी जीव भी कर सकता है, मद्यपायी भी कर सकता है, पर उसका सत्य, सत्य नही कहलाता है। यदि कोई सग्रथ जिनवाणी का व्याख्यान करता है तो उसमे निर्ग्रंथ वाणी जोड देता है क्योकि उस बेचारे को मालूम रहता है कि मैं रागी हूँ, मैं द्वेषी हूँ मेरा शब्द हितोपदेशी नही हो

सकता है। ध्यान रखना यदि एक छोटा सा बालक भी जिनवाणी को कहता है तो उसकी जिनवाणी को सुनने को तैयार रहना। भो ज्ञानी! उद्देश्य, आदेश निर्णय, परीक्षा, इन चार बातो पर पहले ध्यान देना चाहिए, फिर उपदेश सुनना चाहिए। जो कहा जा रहा है, वह पूर्व आचार्यों के वचनों से मिलाप खा रहा कि नहीं। इसका नाम तत्त्व की परीक्षा है।

मनीषियों! निर्ग्रंथ योगी विषय–कषाय, आरभ–परिग्रह से रहित होता है। विद्धानो ने प टोडरमल जी को आचार्य कल्प लिख दिया है, पर वास्तव मे पच परमेष्ठी आचार्य भूत है वैसे आचार्य मत मान लेना। वह विद्धान इतना प्रकाण्ड ज्ञानी था, यदि वे आज तुम्हारे सामने होते, वह स्वय कहते–मेरे साथ मिथ्यात्व को मत जोडो। प टोडरमल जी जैसा करणानुयोग का प्रकाण्ड विद्वान, जिसने अल्प काल मे जीव काण्ड, कर्म काण्ड की टीका लिखी त्रिलोक सार ग्रथ की टीका लिखी। मोक्षमार्ग प्रकाशक मे मिथ्यात्व का खण्डन किया है, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय पर भी उन्होने टीका की है, परतु अधूरी कर पाए थे उसकी पूर्ति दौलतराम जी ने की है। अभी तक तो यह व्यवस्था थी गुरूओ की टीका को, शिष्यो ने पूरा किया है। आचार्य भगवन् वीरसेन स्वामी की धवला टीका पूरी नही हो पायी तो उनके शिष्य जिनसेन स्वामी ने पूर्ण की, वे महापुराण जैसे चौबीस पुराण लिख रहे थे यदि यमराज तनिक करुणा कर लेता, तो आज दिगम्बर जैन साहित्य मे महापुराण जैसे चौबीस पुराण होते जो आज विश्व मे एक अनुपम कृति होती, लेकिन काल कहॉ दया करता है ? चौबीस पुराण लिखने वाले थे तीर्थकर के, लेकिन एक बहुकाय अदिनाथ स्वामी का कथन ही कर पाए। बाद में उनके शिष्य गुणभद्र स्वामी ने उत्तर पुराण मे तेईस तीर्थकारो का वर्णन किया है। अत आचार्यो के अधूरे ग्रथो को शिष्यो ने पूरा किया। यद्यपि पुरुषार्थ सिद्धी उपाय ग्रथ की टीका पडित टोडरमल जी ने लिखी पर उनकी मृत्यु के बाद प दौलतराम जी ने उसे पूरा किया यह उनका बडप्पन था। आप ध्यान रखना, कभी किसी की कृति को चुरा मत लेना। जहॉ से ली, उसका नाम जरूर लिख देना। मुनियो की वृत्ति रत्नत्रय से मण्डित पापाचार से रहित होती है पर से परान्मुख होते है और निज मे अभिमुख होते हैं एकान्त वृत्ति से लिप्त होते हैं।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना भीड से सतो के चारित्र का मापदड मत करना, भीड तो जादूगर भी बुला लेता है। भीड सत ह्रदय की पहचान नहीं है, साधना सत ह्रदय की पहचान है–ऐसे ऋषियो को नमस्कार कर लेना।

'कल्याण हेतु क्रमिक देशना'

बहुश· समस्तविरति प्रदर्शितां यो न जातु गृह्णाति।
तस्यैकदेशविरति· कथनीयानेन बीजेन।।१७।।

अन्वयार्थ · य बहुश प्रदर्शिताम् = जो जीव बारम्बार बताने पर भी। समस्त विरति = सकल पाप रहित (मुनिव्रत को)। जातु न गृह्णति तस्य= कदाचित् ग्रहण न करे तो उसको। एकदेशविरति =एकदेश पाप क्रियारहित (गृहस्थाचार को)।अनेन बीजेन = इस हेतु से कथनीया = समझाये (अर्थात् कथन करे।)

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमति।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।। १८।।

अन्वयार्थ य अल्पमति= जो तुच्छ--बुद्धि (उपदेशक)। यतिधर्मम् अकथयन् = मुनिधर्म को नहीं कहकरके। गृहस्थधर्मम् = श्रावक धर्म का। उपदिशति तस्य = उपदेश देता है, उस उपदेशक को। भगवत्प्रवचने = भगवत के सिद्धात मे। निग्रहस्थानम =दण्ड देने का स्थान। प्रदर्शित = दिखलाया है।

अक्रमकथनेन यत प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्य।
अपदेऽपि सम्प्रतृप्त प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।।१९।।

अन्वयार्थ यत तेन = जिस कारण से उस। दुर्मतिना = दुर्बुद्धि के। अक्रमकथनेन =क्रमभग कथनरूप उपदेश करने से। अतिदूरम् =अत्यत दूर तक। प्रोत्साहमानोऽपि = उत्साहवान होने पर भी। शिष्य अपदे अपि =शिष्य तुच्छ स्थान मे ही। सप्रतृप्त = सतुष्ट होकर। प्रतारित भवति = ठगाया जाता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||१४||

मनीषियो! धरती के देवता निर्ग्रंथ योगी की दशा अनुपम है। जहाँ सारा विश्व सोता है, योगी जागते हैं। जहाँ सारा विश्व जागता है, वहाँ निर्ग्रंथ योगी सोता है। यह परम वीतरागी सत की दशा है। अहो! जिनकी दृष्टि मे प्रत्येक जीव के प्रति निर्मल परिणाम हैं तो उनके भाव मे भी पदार्थ वैसा ही झलकता है। यदि आप ऐसा मानकर चले कि सभी मेरे शत्रु हैं, तो आपको कोई मित्र

मिलने वाला नही। यदि साधु को श्रावक पर विश्वास नहीं हो तो गमन ही नहीं हो सकता। अपरिचित हैं फिर भी परिचित है। निर्ग्रंथ योगी को जिस ओर तुमने मोड दिया, उसी गली में चल देते हैं। कितना निश्चिन्त जीवन होता है। निश्चिन्त जीवन जीना है तो सच्चे साधु बनकर बैठ जाओ। जिनवाणी कह रही है—बेटा! हम तुमको विकल्प मे नही रखेगे। तुमको यह भी विकल्प नही होगा कि कल मेरा किसके यहाँ भोजन होगा। तुम तो प्रतिज्ञा करके निकल जाना, आखडी ले करके निकल जाना।

भो ज्ञानी! आचार्य शान्तिसागर महाराज एक बार चर्या को निकले, तो सहजता मे चले गये और ऐसी आखडी ली कि जिसके द्वारे पर रत्न पडे होगे, वहीं आहार करूँगा। एक दिन हो गया, दो दिन हो गये फिर भी सत की मुस्कान नहीं गई, क्योकि पराधीन नहीं थे स्वाधीन थे। तीन दिन हो गये, अब तो श्रावको मे हलचल मच गई। भौंरा पुष्प से रस तो लेता है पर पुष्प मे छिद्र नहीं करता है इसी प्रकार यति श्रावक से आहार तो लेते हैं, परतु उसे कष्ट नही देते—यह मधुकरवृत्ति है। आचार्यश्री को घूमते—घूमते सात दिन हो गये। धन्य हो यति की साधना! धन्य हो शान्तिसागर महाराज! इधर एक सेठानी इतनी विकल थी कि सात दिन हो गये, आचार्य महाराज की चर्या नही हो पाई। जब एक—दो चक्कर लगते हैं तो आप कैसे घबराते हो और फिर विधि मिलाते कैसे मशीन से चलते हैं हाथ आपके? इधर से उधर यूँ लोटा यूँ फल पटका। उसी गिरा—पटक मे सेठानी कलश उठा रही थी और झटका लगा तो स्वय के गले के मोती की माला टूट गई और पूरे मे बिखर गई। आचार्य महाराज खडे हो गये, क्योकि विधि थी कि मोती—माणिक द्वार पर पडे होने चाहिये।

भो ज्ञानी! विधि बलवान है! जब विधि होती है, तभी विधि मिलती है। विधि नही है, तो विधि मिलनेवाली नही है। कुण्डलपुर मे एक श्रावक ने चार माह तक चौका लगाया, अतिम दिन था चातुर्मास का और आचार्य महाराज के मन मे भी विकल्प आ गया। अब विधि तो नही मिल रही इसी श्रावक के यहॉ ही चलो। अब देखना, श्रावकराज सबेरे से पधार गये, बोले—महाराज! आज तो आखिरी दिन है। अहो! वह दिन भी चला गया क्योकि निर्ग्रंथ योगी किसी के निमत्रण पर नही जाते, किसी के कहने पर नही जाते। पर देखना, विधि याने भाग्य, विधि याने कर्म, इसलिये आप कभी व्यर्थ मत रोना। सब विधि पर छोड दो परतु पुरुषार्थ अवश्य करो। इसलिये अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि जिन विषमताओ मे लोक रोता है, उन विषमताओ मे प्रभु हँसते हैं! योगी सोचता है कि मेरी गुप्तियॉ समितियॉ पहरा दे रही हैं। धर्म के दस ताले पडे और वज्र कपाट मेरा सत्यशील का है, वहॉ भय किस शत्रु का है ? भो ज्ञानी! यदि शत्रु प्रवेश करेगा भी तो चरण की दीवारो को ही तोड पायेगा, परन्तु धर्म के वज्र कपाट मे उसका प्रवेश सभव नही है। निर्ग्रंथ योगी चिन्तन करता

है कि लोष्ट (पत्थर) पाषाण और स्वर्ण मे, कॉंच–कामिनी मे जिसकी समदृष्टि है, वही सत–दृष्टि है। यदि इनके पीछे साधक पड गया, तो उसे अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति असम्भव है। इसलिये कौन क्या कह रहा है–यह मेरा विषय नहीं, अज्ञानियों का विषय है, अल्पज्ञो का विषय है। जिनके 'चक्षु' पर को निहार रहे हैं उनके चक्षु स्वय के लिये नहीं है। "नियमसार' मे कहा गया है–जिससे निर्मलता हो, चित्त मे विशुद्धि हो, कर्म की निर्जरा हो, वह जिनेन्द्र के शासन मे ज्ञान है। पर को देखना अनाचार है, निज को देखना ही शील है, वही सयम है अन्यथा विकल्पो के अलावा कुछ भी नही है। लोक मे नाना जीव हैं, नाना द्रव्य हैं, नाना परिणमन हैं। किस–किस के परिणामो को तुम परिवर्तित कराओगे? भो ज्ञानी! स्वय के घर मे जब तुझे अपने पर विश्वास नहीं तो पराये के विश्वास को क्यो देख रहा है? अपने भावो से पूछ लो कि मेरी परिणति कहॉ से कहॉं जा रही है। सब कुछ जानने का पुरुषार्थ करोगे, तो आप कुछ भी नही जान सकोगे। तुम्हारा पूरा जीवन निकल जायेगा, पर कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। एक पिजडे मे दो पक्षी कैसे पलेगे? पिजडे मे दो पक्षी पलेगे नहीं, लडेगे। निज कार्य के वश से कुछ कहते हैं, फिर उसको भूल जाते हैं, क्योकि उनके पास सयम का पक्षी बैठा है। यदि असयम को पालेगे तो बेचारा सयम पलेगा ही नही, इसलिये योगी वैभव से रहित होते हैं। इस जीव ने योग के वेश को अनत बार देखा है, पर योग–स्वभाव को नहीं देखा, क्योकि योगी–स्वभाव बाह्य चक्षुओ से नही देखा जाता है। योगी–स्वभाव का वेदन होगा, तभी तो शेर को देख करके वह घबराते नही। क्योकि उन्हे शेर मे भी शेर नहीं दिखता है, गीदड मे भी गीदड नही दिखता है। योगी–स्वभाव तो देखो, सप्तव्यसनी को देख करके उसे सप्त विषयो का व्यसनी नहीं कहा। उसे भी उन्होने मुनि बना लिया और धिक्कार हो उन योगीवेशो को जो योगी मे योगी को नही देख पाते हैं। धन्य हो उस योगी को, जो सप्त व्यसनी को योगी बना लेते हैं। आचार्य शान्तिसागर महाराज के सघ मे पायसागर आचार्य महाराज हो गये हैं, जो कि सप्त व्यसनी जीव थे।

महाराज का विहार हो रहा था। लोग आ गये–महाराजश्री! हमारे नगर मे प्रवेश नही करना, क्योकि डर था कोई उपद्रव न हो। तुम सोचना! उपद्रवी मे भगवान बैठा था, पर निकालने वाला चाहिये। जितने भगवान बने सब उपद्रवी ही तो हैं। भगवान महावीर कौन साधु थे, वह तो इतने उपद्रवी थे कि वे भगवान के पास सुधर नहीं पाये। ३६३ मिथ्या पथ चलाने वाले वे मारीच के जीव थे, भगवान बने हैं। इसलिये उपद्रवी से भयभीत न हो, उपद्रवो से भयभीत रहो। तो जैसे ही महाराज चल दिये, वे सज्जन पहले ही मिल गये। लोग सोचने लगे हाय! अब क्या होगा, उस पारखी जौहरी को देखो उपद्रवी को जैसे ही सामने देखा, अपना कमण्डल पकडा दिया। हाय, अब तो गया कमण्डल। वे नहीं सोच रहे थे कि यह भावी योगी हैं।

प्रवचन–सभा में बगल मे बिठा लिया। सबकी ऑखे आचार्य महाराज के बाद उसके पास

ही थी। जैन आचार्य भगवन् की पावन पवित्र वाणी सुनते ही वह नवयुवक जो सप्तव्यसनी था, सभा मे खडा हो गया। प्रभु! मैं आज से अखण्ड ब्रम्हचर्य का व्रत लेता हूँ। आशीर्वाद दे दिया और वह बने योगी पायसागर, जो कडकती दोपहरी में, ग्रीष्म ऋतु में, बालू मे, घुटनो के बल पद्मासन मे सामायिक करते थे, लोगो ने पूछ लिया–महाराज! इस काल मे ऐसी घोर तपस्या! बोले–भाईयो! उस दिन पूछने नहीं आये जब मैं घोर सात व्यसनो को सह रहा था! इसलिये सत–हृदय असत मे भी सत को खोज लेता है। आवश्यकता दृष्टि की है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि एकान्त में निवास करने वाले ऐसे योगियो की आलौकिक वृत्ति है। सब कुछ सुने, सब कुछ कहे, फिर भी अपने को न भूले। रास्ते मे अनेक उपसर्ग, परीषह, भक्त–अभक्त सभी प्रकार के जीव मिल रहे हैं, सबसे चर्चाये करो पर अपने आत्मघट को मत भूल जाना। यह है सत–दशा यही मोक्ष मार्ग है, यही समयसार है, यही तत्त्वसार है, यही पुरुषार्थ की सिद्धि है। आचार्य महाराज अब वक्ता से चर्चा कर रहे हैं। भो ज्ञानी! यदि तुम्हारे सामने कोई साधक मुमुक्षु आता है अपनी भावना को लेकर, उसकी भावना मत गिरा देना किसी के घाव पर नमक मत छिडकना जिसे बध हो गया हो वह कभी जिनेन्द्र के शासन की मार्ग प्रभावना नहीं कर सकता, क्योकि अशुभ आयु के बधक की दृष्टि वीतराग मार्ग के प्रति निर्मल नहीं होती। अत मिथ्या उपदेश मत कर देना।

भईया का विचार बना कि मैं तो आज दो प्रतिमा ले रहा हूँ। दूसरे भाई खडे हो गये बोले–तुम्हे पार्टियो मे जाना पडता है व्रती बनकर क्या करोगे? भो ज्ञानी! तुम गये थे पार्टी मे और पता चला दूसरे दिन तुम्हारे द्वारे पर पार्टी बैठ गई। किसी को रोकना मत, कोई सयम की ओर बढ रहा हो तो इतना जरूर कह देना कि भैया ले लो–ले लो, परन्तु पीछे मत लौटना सयम से। आप किसी को रोकना मत, आप तो और साधन बना देना कि बहुत अच्छा।

भो ज्ञानी! अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि सबसे पहले आपको महाव्रतो का वर्णन ही करना चाहिये। अणुव्रत श्रावकों के व्रतो का नाम है। मुनियो के व्रतो का नाम है महाव्रत। समतभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जो व्रत जीव को महान बना दे उन व्रतो का नाम है महाव्रत जिन्हे महापुरुष धारण कर सके उसे महाव्रत कहते हैं। जिस कुल मे महाव्रती बनते हों वह ही कुल उच्च–गौत्र है। जब तुम आये हो, कुछ तो ले जाओ, उसको श्रावक के व्रतो का कथन करे, देशव्रतो का कथन करे, अणुव्रतो का कथन करे। क्योकि आपकी सामर्थ्य महाव्रत धारण करने की नही है। यह भी परम्परा से मोक्षमार्ग है। यह भी सयम– असयम देशव्रत है, लेकिन मोक्ष तभी होगा जब तुम सकल–सयमी बनोगे। मनीषियो! उचित तो यही है कि आप सब महाव्रती बनो, नहीं बन पा रहे हो तो कम से कम अणुव्रती तो बन ही जाना। यदि अणुव्रती भी नहीं बन पाओ तो हमारा आगम बडा ही विस्तृत है–बडा उदार है, कम से कम पाक्षिक श्रावक तो बन ही जाना, क्योकि जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रंथ गुरु के

अलावा अब तुम्हारे पास कोई सहारा इस पचमकाल मे नहीं। डूबते को तिनके का सहारा है। अरहत देव नही हैं आज, गणधर परमेष्ठी नहीं हैं आज, साक्षात केवली नहीं है। आज तुम्हारे पास जो हैं उनको ही तुम छोड बैठे तो भो ज्ञानी ! अब सहारा कोई नहीं है तुम्हारे पास। इसलिये निर्मल बनो, निर्मल बनाओ परन्तु समलता न फेको।

भो चेतन! हिंसा चार प्रकार की होती है–आरम्भी, उद्योगी, विरोधी और सकल्पी। यदि आप श्रेष्ठ हैं, तो चारो प्रकार की हिसा का त्याग कर दो। नही छूट रही गृहस्थी, तो सकल्पी हिसा तो मत करो। जानकर किसी जीव का वध मत करो। ऐसा असत्य तो मत बोलना, जिससे किसी जीव के प्राण ही चले जाये। ऐसा सत्य भी मत बोलना जिससे किसी के प्राण चले जाये। वह सत्य, सत्य नहीं जिससे धर्म और धर्मात्मा की हँसी होती हो। तुम्हारा वह सत्य भी असत्य है जिससे धर्म व धर्मात्मा के ऊपर उँगली उठती है। अहो! तेरे शब्द से सस्कृति ही विपत्ति मे पड जाये तो कहाँ की सत्यवृत्ति। जिसकी वाणी से पूरे धर्म पर आँच आ रही हो, जिन–शासन पर एक विपत्ति खडी हो जाये उसको सत्य मत मानना, ऐसा आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है। मूलाचार मे आचार्य वट्टकेर स्वामी ने भी स्पष्ट लिखा है–जिनवाणी, जिनवाणी है। अपने मन के अर्थ निकालकर जिनवाणी की दुहाई मत दो। मन का अर्थ निकाल कर, कषाय को प्रकट करके, जिनवाणी की दुहाई देकर हम धर्म का बिखराव न करे। यह जिनशासन है, नमोस्तु शासन है। इसलिये चर्चा करो, व्याख्यान नहीं मिथ्या उपदेश नहीं। भो ज्ञानी! सत्यव्रत के भी अतिचार हैं, वे अतिचार श्रावक को ही नही लगते है, साधु को भी लगते हैं। जिनवाणी जिनवाणी ही रहने देना, महाव्रतो का कथन करे, जब कोई पाल न सके तब अणुव्रतो की चर्चा करे। अधिकाश लोगों की भाषा रहती है कि भैया थोडा सँभल–सँभल कर चलो, क्रम–क्रम से बैठो, पहले तुम यह बनो, वह बनो। भो ज्ञानी! फिर उतने मे ही सतुष्ट हो गये तो क्या बने ? अब आपके सामने आगम है, लेकिन जैन–शासन को लजाना मत, क्योकि हम प्रभावना नही कर पाये तो हमे कोई चिता नही है परन्तु जिनदेव की अप्रभावना इस तन से नही करना।

भो चेतन! अन्दर–बाहर दोनो वृत्ति ही मुनिव्रत है। जब तक बाहर नहीं आया, अन्तर मे कैसा है, क्या मालूम। बाहर मे निर्ग्रंथ–दशा होगी तो अन्तस मे निर्विकल्प दशा होगी, परन्तु कोई ऐसा न मान बैठे कि पहले हम निर्विकल्प दशा को प्राप्त कर ले फिर हम मुनि बन जायेगे। भो ज्ञानी! वही दशा होगी कि पहले केवलज्ञान हो जाये, फिर दीक्षा ले लेगे। ऐसा नही है! अन्दर–बाहर दोनो परिग्रह का त्याग होगा। क्या मूगफली के ऊपर के लाल छिलके को पहले हटाया जाता है ? भो चेतन! ऊपर का छिलका बाह्मय परिग्रह है और अन्दर की लालिमा कषाय–वृत्ति। इसलिये क्रम से टूटेगा। जैसे–जैसे तुम आगे बढते जाओगे वैसे–वैसे कषाय मद होती चली जायेगी। यही आगम–परम्परा है, आगम व्यवस्था है। जिसका आत्मबल प्रबल नहीं है वह गभीर सयम के बारे मे

कह नहीं सकता और जिसके पास जरा भी कमी होगी वह निर्दोष सयम की चर्चा कर नहीं सकता। स्वय दृढता नहीं है, वह दूसरो से दृढता की बात क्या करेगा? इसलिये भूल नहीं करना कभी, ठीक भैया तुम जाओ सयम की ओर बहुत अच्छा है। सहयोगी बनना और कोई दूसरा हो तो उसे समझा देना। ऐसा मत करना, कि देखो–देखो वह गिर रहा है, गिर जाने दो फिर हम बतायेगे। फिर लोगो से कहेगे कि देखो, गिर गया। तुम देखते रहे, तुम कैसे धर्मात्मा थे? तुम्हारा कर्त्तव्य क्या बनता है? कोई गिर रहा है तुम्हारी सामर्थ्य है तो पहले सहारा दे देना। उन वारिसेण मुनिराज से पूछो, उन्होंने जाकर के कहा था, माँ! मेरी बत्तीस रानियो को बुलाओ। माँ भी घबरा गई हाय! क्या होने वाला है? माँ! ने भी दो आसन रख दिये–एक वीतराग आसन, एक सराग आसन। बेटा जाकर काष्ट आसन पर बैठ गया। मॉ प्रसन्न थी कि मेरा बेटा तो वीतरागी आसन पर बैठा। अहो! देखो, क्या स्थितिकरण किया था, छॉटो बत्तीस मे से तुमको जो अच्छी लगे। अहो! धिक्कार हो मुझे, चलो स्वामिन् चलो। एक क्षण मे वैराग्य उमडा कि बारह वर्ष मे जो अनुभूति नही हुई वह एक क्षण मे हो गयी। ऐसी युक्ति, ऐसा वात्सल्य ऐसी निर्मल भावना तुम्हारे अन्दर मे आये तो भो ज्ञानी! कोई अधर्मात्मा दिखेगा ही नहीं। जैसे एक दीवार खिसकती है, आप तुरन्त उसको ठीक कर लेते हो, क्योकि घर अच्छा लगना चाहिये। जो प्रत्येक दीवार को सुरक्षित रखता है उसका नाम धर्मात्मा है।

भो मुमुक्षु! सम्यक्दृष्टि जीव मात्र अपने ही अपने को नही देखता यह स्वार्थ का मार्ग नही। "स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं, ऐसे ज्ञानी साधु जगत मे दुख–समूह को हरते हैं"। इसलिये, मनीषियो! हम तो सबसे यही कह रहे हैं कि मुनि बन जाओ लेकिन शक्ति न हो तो कम से कम आप श्रावक बनकर रहना, क्योकि आचार्य महाराज कह रहे हैं, कोई शिष्य उत्साही था महाव्रती बनना चाहता था आपने उसके प्रोत्साहन को क्या दिया ? अब मालूम बाद मे भाव बने कि नहीं बने। आचार्य श्री उपदेशक से कह रहे हैं– तुझ दुर्मति के द्वारा वह बेचारा ठगा गया। कौन ? जो मुनि बनने गया था, परन्तु आपने श्रावक बना के छोड दिया। इसलिये पहले महाव्रत का ही कथन करो। यदि सामर्थ्य नही है, योग्यता नही है, तो वैसे समझाओ। योग्यता है, सामर्थ्य है, तो आप उसे महाव्रत का ही उपदेश करे। इस प्रकार से अपने जीवन मे आप सब महाव्रती बनो, अणुव्रती बनो और मुमुक्षु बनकर मोक्ष को प्राप्त करो।

"मोक्ष का मार्ग–रत्नत्रय"

एवं सम्यग्दर्शनबोध चारित्रत्रयात्मको नित्यं
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति ।। २० ।।

अन्वयार्थ · एव = इस प्रकार। सम्यग्दर्शनबोध चारित्रत्रयात्मक = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,सम्यग्चारित्र इन तीन भेद स्वरूप।मोक्षमार्ग = मोक्षमार्ग। नित्य = सदा। तस्य अपि = उस (उपदेश ग्रहण करनेवाले) पात्र को भी। यथाशक्ति = अपनी शक्ति के अनुसार। निषेव्य = सेवन करने योग्य। भवति = होता है।

तत्रादौ सम्यक्त्व समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन
तस्मिन सत्येव यतो भवति ज्ञान चारित्र च ।। २१ ।।

अन्वयार्थ तत्र = उन तीनो मे। आदौ = पहले। अखिल यत्नेन = सपूर्ण प्रयत्नो से। सम्यक्त्व = सम्यग्दर्शन। समुपाश्रयणीय = भले प्रकार प्राप्त करना चाहिए। यत = क्योकि। तस्मिन् सति एव = सम्यग्दर्शन के होने पर ही। ज्ञान= सम्यग्ज्ञान। च = और। चारित्र = सम्यग्चारित्र। भवति = होता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||१५||

मनीषियो! इस जीव ने बाह्य–तत्त्व को अनन्त बार समझा है। जिस दिन अन्तस्थ–तत्त्व अर्थात् अन्तरग के तेज को तुमने समझ लिया, उस दिन ससार के सम्पूर्ण बाह्य–तत्त्व तुझे व्यर्थ नजर आयेगे। वह अन्तरग दिव्य ज्योति वह दिव्यप्रकाश इस आत्मा को अनन्तता की ओर ले जाने वाला है। जिसे भगवान कुदकुद स्वामी ने धर्म का 'मूल' कहा है और पडित दौलतरामजी ने जिसे 'प्रथम–सोपान' कहा है।

मनीषियो! प्रथम सोपान मत खो बैठना, यह मोक्ष महल की पहली सीढी है। अत अपने दर्शन गुण की रक्षा सबसे पहले कर लेना। क्योकि श्रद्धा है, विश्वास है तो मोक्ष तेरे पास है। श्रद्धा, विश्वास नहीं तो ज्ञान ज्ञान नहीं, चारित्र–चारित्र नही। अरे! अक नहीं है, तो शून्य शून्य है। देखो, शून्य की महिमा एक को दस बना देती है और शून्य रखते जाओ तो कीमत बढती जाती है, पर

यदि अक सामने है। हजारों शून्य लगे रहने दो और यदि अक को हटा दो, तो शून्य की कीमत शून्य है। ऐसे ही ग्यारह अग का ज्ञान और परम विशुद्ध चारित्र हो, परतु सम्यक्त्व का एक अक निकल चुका है तो सब शून्य है। ऐसे ही श्रद्धारहित सारा जीवन शून्य है। इसलिए सर्वप्रथम जैन धर्म का दर्शन यदि प्रारम्भ होता है, तो दृष्टि से ही होता है। जिस धर्म के प्रारम्भ मे ही सम्यक्त्व शब्द जुडा हो, फिर भले ही आपके व्रत भी नहीं हैं तो भी तुम दरिद्र नहीं हो। यदि तेरे पास शुद्ध सम्यक्त्व है तो तुम लगड़े–लूले नहीं हो सकते, तुम भुवनत्रय मे नही जा सकते, तुम–नारी पर्याय मे नहीं जा सकते हो, नीच कुल मे नहीं जा सकते हो और तुम नपुसक नहीं हो सकते हो।

भो ज्ञानी! इस लोक मे सम्यक्त्व के समान कोई श्रेष्ठ नहीं है और मिथ्यात्व के समान कोई हेय नही है। अरे! सब लुटा देना, परन्तु सम्यक्त्व जब दिख जाये तो झोली फैला लेना लेकिन मिथ्यात्व को सिर मत झुका देना। याद रखो, जब भावी भगवन्तो के प्रति ईर्ष्या भाव का जन्म होता है, तब तीव्र अशुभ का उदय समझ लेना। मेरा भगवान जब तक नहीं मिलता, तब तक भगवान बनने वाली इन आत्माओ का विरोध मत करना, मिलकर ही रहना। कोई आपका विरोध करे तो आप समझना कि मेरे अशुभ कर्म का उदय है, मेरे निमित्त से यह भगवती–आत्मा विकल्प मे जी रही है। यदि आज मैं अर्हंत होता तो जन्म जाति विरोधी जीव भी बैर छोड देते। आज मेरे पास ऐसी पुण्य वर्गणाएँ नही हैं, जिस कारण मुझे देखकर इस जीव के भाव बिगड रहे हैं। निर्मल सोच ऐसी होती है कि मैं पापी हूँ, इसलिये मुझे देखकर इस मनुष्य के परिणाम विकार को प्राप्त हो रहे हैं यह मेरे अशुभ का उदय है। हे नाथ! मेरे निमित्त से बेचारा कर्मबन्ध को प्राप्त हो रहा है। अहो! मुमुक्ष–जीव शत्रुता मे भी धर्म–ध्यान कर लेता है और मित्रता मे भी धर्म–ध्यान कर लेता है। परतु ईर्ष्या नही देख पाती अरहत को, ईर्ष्या नही देख पाती निर्ग्रंथ को, ईर्ष्या समवशरण मे भी ऑखे बद करा देती है। इसलिये प्रवचन सुनना कभी मत छोडना क्योंकि वह सम्यक्त्व उत्पत्ति का हेतु बनेगा। जैन शासन 'युक्तानुशासन है इसमे युक्ति से अनुशासन की शिक्षा दी अर्थात् युक्ति पूर्वक अनुशासन की बात की गई है। युक्ति यानि विवेक। वदना भी करो तो युक्ति से करो। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने श्रावक धर्म की सुदर व्याख्या की है। श्रद्धावान, विवेकवान, क्रियावान जो है, उसका नाम है श्रावक। अर्थात् जो श्रद्धापूर्वक, विवेकपूर्ण आचरण करता है और जिनवाणी को श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसका नाम है श्रावक। यह श्रावक जब सर्वप्रथम सम्यक्तव गुण की ओर चलता है, तो वह एक देश–जिन बन चुका है, क्योकि उसने मिथ्यात्व को जीता है। इसलिये तुम घबराना नहीं, आपके पास जिनेन्द्र का अश आ रहा है और तुमने मिथ्यात्व को जीता है, इसलिये आप जैन हो।

भो ज्ञानी! जिसने मिथ्यात्व और असयम को जीत लिया है, परन्तु यदि वह धन व सम्मान

का भूखा हो, तो उससे बड़ा ससार मे कोई अल्पज्ञ नहीं। सम्यक्त्व खोकर तुमने वैभव प्राप्त कर भी लिया, तो तुमने क्या किया? मिथ्यादृष्टि का वैभव, केवल मल है। अहो! जिसका सम्यक्त्व–धन लुट गया है, उसके पास बचा ही क्या? श्रावक तो चाहता है कि हे नाथ! मैं दासी का पुत्र बन जाऊँ, लेकिन प्रभु आपकी दासता न भूल पाऊँ। मैं वह चक्रवती नहीं बनना चाहता हूँ जिसने णमोकार–मत्र पर पैर रख कर अपने जीवन की रक्षा चाही। हे नाथ! मैं वह धनी नहीं बनना चाहता हूँ जो पचपरमेष्ठी को दुत्कार कर वैभव की प्राप्ति चाहता है। ससार मे अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये ही पच शरणभूत हैं। हे ज्ञानी आत्माओ! क्या अरहत देव के चरणो मे तुम्हे इतना भय महसूस होता है, कि जो तुम जगह–जगह भटकते हो? अरे! जब तक राग और मोह के बादल हैं तब तक सबको चिता होती है, जिस दिन मोह के बादल छट जाते हैं, उस दिन अमूल्य–शक्ति दिव्य–शक्ति प्रकट हो जाती है–जिसका नाम है सम्यग्दर्शन। भो ज्ञानी! जिसे अपनी आत्मा पर दया नहीं है, जो मिथ्यात्व का सेवन करे, वह कसाई है।

भो ज्ञानी! जगल मे राम, लक्ष्मण, सीता जा रहे थे। सीता कहने लगी–स्वामी! अब तो मेरे से एक कदम नही रखा जाता, कठ सूख रहा है। ध्यान रखना, पानी ज्यादा मत फैलाना। देखो, वे दिन भी देखने पडते हैं, जब कठ मे चुल्लू भर भी पानी नहीं मिलता। राजकुमारी, सम्राट की पुत्र वधु, बलभद्र की महारानी, नारायण की भाभी थी–सीता। वह भी आज कह रही है। हे स्वामी! प्यास लगी है। कर्म किसी को नहीं छोडते हैं। इसीलिये तुम लाखो दान मे दो, मत दो, पर किसी को चुल्लू भर पानी के लिए मना मत करना। इस कारिका मे आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनो की एकता ही मोक्षमार्ग है। इसीलिये 'सर्वार्थसिद्धि' में आचार्य पूज्यपादस्वामी ने लिखा है– चतुर्थ गुणस्थान–वर्ती जीव उपचार से मोक्षमार्गी ही है। पडित टोडरमल जी लिख रहे हैं कि मोक्षमार्गी होसी यानी मोक्षमार्गी होगा, क्योकि अभी तीनो की एकता (रत्नत्रय) इसके पास नही है। मोक्षमार्ग पर लग तो गया है, इसलिये मोक्षमार्गी ही है। पूर्ण–मोक्षमार्गी तब ही बनेगा जब रत्नत्रय की प्राप्ति होगी। सम्यक्दर्शन होते ही जितना ज्ञान था, वह सम्यग्ज्ञान हो जाता है और जो आचरण चल रहा था, वह सम्यक्आचरण हो जाता है। ऐसा आचार्य कुदकुद महाराज ने 'अष्टपाहुड' मे लिखा है।

भो ज्ञानी! आपको यथाशक्ति सम्यक्–आचरण का सेवन करना चाहिए। सम्यक्आचरण से आशय है दोषो से रहित–शुद्ध सम्यक्त्व का पालन, अभक्ष्यो का त्याग और सप्त व्यसनो का त्याग। इसीलिये सबसे पहले यत्नपूर्वक सम्यक्त्व की उपासना करना चाहिए क्योकि सम्यक्त्व सहित नरक में निवास करना श्रेष्ठ है, पर सम्यक्त्व से रहित देव बनकर स्वर्ग मे निवास करना उचित नहीं है। जब तक सम्यक्त्व नहीं है तब तक ज्ञान–ज्ञान नहीं है और चारित्र, चारित्र नहीं है।

सागर चातुर्मास मे एकबार जेल में प्रवचन करने गये, अचानक घनघोर मूसलाधार पानी बरसा। तब सारे कैदियों के मन मे आया कि उठ जाये, पर जेलर ने मात्र अगुली से सकेत कर दिया तो एक भी नहीं उठा। प्रवचन चलते रहे, मैं सोच रहा था एक अगुली मे क्या शक्ति थी कि एक नही उठा। मनीषियों। वे अधिकार के पानी मे बैठे थे, पर हमें श्रद्धा के पानी में बैठना है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने स्वयभू स्तोत्र मे, सुपार्श्वनाथ स्वामी का स्तवन करते हुये लिखा है—बेटे को मेले मे तब तक आनन्द आता है जब तक पिता व माँ की अगुली हाथ में रहती है और अगुली छूट गयी तो मेले का आनन्द लुट जाता है। ऐसे ही हे नाथ। तभी तक मुझे आनन्द है, जब तक आपकी अगुली मेरे हाथ है यदि यह छूट गई तो प्रभु मे बाराबाट हो जाऊँगा। इसीलिये देव, शास्त्र गुरु की अगुली रुपी श्रद्धा मत छोड़ देना। श्रद्धा मे आक्रोश नहीं होता, अशान्ति नहीं होती। वह श्रद्धा तो ज्ञान--चारित्र की फसल को उत्पन्न करने वाली है। अत अपने जीवन मे ऐसी श्रद्धा बनाकर चले कि मेरी आत्मा भगवती—आत्मा बने।
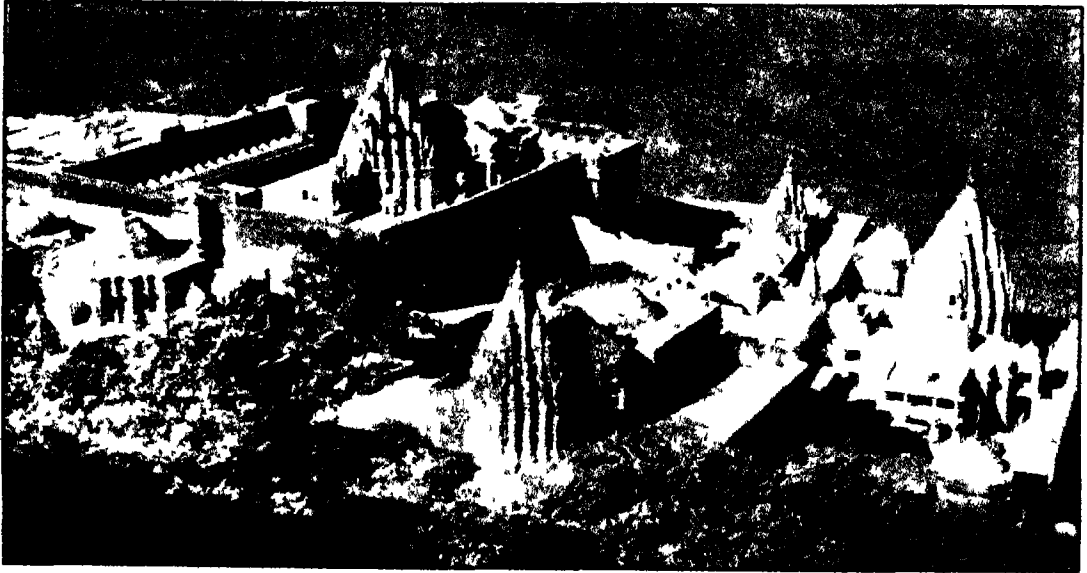
गिरनार - मदिर नगर का एक भाग

"प्रयोजन भूत सात तत्त्व"

जीवाजीवादीना तत्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धान विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्।। २२।।

अन्वयार्थ — जीवाजीवादीना = जीव, अजीव आदिक। तत्वार्थाना = तत्त्वों का, तत्त्वरूप पदार्थों का। विपरीताभिनिवेशविविक्त = मिथ्या अभिप्राय एव मिथ्याज्ञान से रहित, जैसे का तैसा। सदैव श्रद्धान = सदा ही निरन्तर ही श्रद्धान। कर्तव्य =करना चाहिए। तत् आत्मरूप = वही श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है।

|| पुरुषार्थ देशना ||१६||

अतिम तीर्थेश महावीर स्वामी की दिव्य देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने सहज सूत्र प्रदान किया है कि भो ज्ञानी! ससार मे आत्मा के उत्थान का उत्तम मार्ग सम्यक्दर्शन है। जब श्रद्धा के अभाव मे ससार मे भी सुख नही हैं तो फिर परमार्थ के सुख को तू कैसे प्राप्त कर सकता है ? यदि तू भोजन करने भी जाता है और तुझे पत्नी पर अविश्वास हो जाए तो तू भोजन भी नही कर सकता। जहाँ भी तू जायेगा और अविश्वास है, तो तू अपने जीवन से स्वय ही परेशान हो जायेगा। करूँ तो क्या करूँ ? अहो! जीवन मे यदि कोई महानता का सूत्र है तो वह विश्वास है।

भो ज्ञानी! पर्याय के क्षणिक सुख के पीछे, त्रैकालिक आत्म सुख को मत भूल जाना, परतु जिसे परमेश्वर पर विश्वास है उसका अविश्वास बाल भी बाका नही कर सकता। भगवान गोमटेश बाहुबली की प्रतिमा पर अपूर्व श्रृद्धा का ही उदाहरण है। मैसूर नरेश जैन नहीं था, परतु जैनत्व के प्रति अगाध श्रृद्धा थी। वैदिक परपरा के अनुसार कर्नाटक की परम्परा मे भगवान की प्रतिमा का जो अभिषेक होता है उसको लोग पी लेते हैं। नरेश को भी इतना अगाध विश्वास था कि वह गोमटेश बाहुबली भगवान के चरणो मे हर सप्ताह आता, जब भी मौका मिलता प्रभु के चरणो मे शीश झुकाता, कहता— मेरी अजली मे आप जल दे दो और श्रृद्धा पूर्वक जल को चरणामृत मान कर पी लेता। भो ज्ञानी! सुख सर्वत्र है, पर ईर्ष्या में न कही सुख है, न कहीं शाति है। यदि आप स्वभाव की ओर दृष्टि डालोगे तो आपको सर्वत्र सुख नजर आएगा, दुख सर्वत्र नही हैं। आप अपने घर गये, सबधियो से झगडा हो गया, फिर किसी तीर्थ मे चले गए तो वहाँ शाति महसूस होगी, अत सुख सर्वत्र है। दुख वहीं है जहाँ राग—द्वेष है। तुम्हारा पडोसी पैसा कमाता है तो आपको राग—द्वेष होता।

बाहर कितने करोडपति और अरबपति बैठे हैं, वहाँ आपका ध्यान नहीं जाता है। इसका तात्पर्य है जितना सबन्ध बनाओगे तो राग द्वेष होगा। सबध छोड दो दुख समाप्त हो जाएगा। जब तक सबध ा नहीं छोडोगे तब तक सुखी नहीं हो पाओगे। इसलिए सबध छोड दो तो सुख ही सुख है।

भो ज्ञानी! भगवन् अमितगति ने बडा सुन्दर सूत्र लिखा है कि– सयोग की महिमा देखो कि एक जिए लाख हँसे, एक मरे लाख रोए और जिसका सयोग समाप्त, न हँसे न रोए। एक सम्राट के प्रति ईर्ष्या ने घर कर लिया। पडोसी सम्राट चाहता था कि इसके राज्य को मैं अपने राज्य मे मिला लूँ । पर कोई उपाय नही दिख रहा था कि इसका घात कैसे हो, क्योकि वह सबल था। खोजते–खोजते मालूम हुआ कि यह गोमटेश बाहूबली जाते हैं एव वहाँ जाकर उनके चरणो का जल पीते हैं, क्यो न उस जल मे जहर मिला दे। लोभ बडा खतरनाक होता है। उस पडोसी राजा ने पुजारी को लोभ देना शुरू कर दिया। पुजारी लोभ मे आ गया और कहा आप चिता मत करो आप का काम हो जाएगा, परतु जिसके ह्रदय मे प्रभु बैठा हुआ है उसका कोई बाल–बाका नही कर सकता है। भो ज्ञानी! शरीर को जहर दिया जा सकता है पर आज तक किसी ने पुण्य को जहर नहीं दिया। कौरवो ने लाक्षागृह मे पाडवो के शरीर को जलाने की बहुत चेष्ठा कर ली थी, परतु हे कौरवो! तुमको करना ही था, तो पुण्य को जलाने के विचार कर लेते।

अहो! सम्राट रोज की भाति पहुँचता है, भगवान की वदना करता है, नमस्कार करता है स्तवन करता है। स्तवन करके कहता है, पुजारी जी चरणोदक दो। वह कटोरा भर के लाया, परतु उसका हाथ कापने लगता है। अहो! लोभ तो आज आया है पहले से तो वह भगवान का भक्त था। शिशु अवस्था मे जो सस्कार माता–पिता से प्राप्त किए, जीवन मे एक दिन वे सस्कार सामने आकर खडे हो जाते हैं और हमे पाप के गर्त मे गिरने से बचा लेते हैं। पुजारी का ह्रदय काँप उठता है–सम्राट! मुझे क्षमा कर दो। मेरे अदर पाप ने निवास कर लिया है। मैं पापी तो नहीं था, पर पैसा बडा पापी है। जिससे आज आपकी हत्या करने का विचार किया। राजन्! इसमे जहर मिला है। मैं जहर कैसे आपको पिलाऊँ ? मैसूर नरेश कहता है कि आपकी दृष्टि मे जहर हो सकता है, पर आप जैसे देते थे वैसे मेरी अजली मे दीजिए। यह तो प्रभु के चरणो का चरणोदक है। अहो! अजली मे लिया और घूँट पी लिया। हे मुमुक्षु आत्माओ! इन वीतरागी चरणो की श्रृद्धा से जहर का प्याला अमृत का काम कर गया, विष निर्विष हो गया। भगवान जिनेश्वर का स्तवन करने मात्र से जहर भी अपनी शक्ति को खो गया। क्योकि ये श्रृद्धा थी, विश्वास था। इसी आस्था रूपी परिणामो की प्रवृत्ति से, कर्मो का सक्रमण हो गया। इसलिए सब कुछ चला जाए चिता नहीं करना, परतु श्रृद्धा न जा पाए। भो ज्ञानी! मैं समझता हूँ अमीरी पुण्य की है गरीबी पाप की है, पर श्रृद्धा पुण्य–पाप दोनो से परे है। पुण्य–पाप दोनों से जो परे होता है वही मोक्ष मार्ग है। पुण्य मे लिप्त रहोगे तब तक मोक्ष नहीं मिलेगा और पाप में लिप्त रहोगे तब तक भी मोक्ष नहीं मिलेगा। क्योकि पुण्य–पाप

दोनो से रिक्त आत्मा ही परमात्मा बनती है।

अहो! श्रेणिक का पुण्य कितना बडा होगा जिसने साक्षात तीर्थेश प्रभु के चरणो मे साठ हजार प्रश्न किए और फिर भरतेश का कितना प्रबल पुण्य होगा जिसने प्रथम तीर्थेश की वाणी सुनी। परतु हम लोग भी अभागे नहीं है क्योकि उन प्रभु वर्धमान की वाणी को सुन रहे हैं। जिनवाणी के प्रसाद से आप ऑखे बद करके सारे विश्व की वदना कर सकते हो। ऑंखे बद करो और चितवन करो अभी तुम नदीश्वर द्वीप की भी वदना कर सकते हो, जहॉ कि तुम जा नहीं सकते हो, पर वही फल मिलेगा जो सौधर्म इन्द्र को साक्षात अभिषेक एव वदना करके मिलता है। नदीश्वर द्वीप में उनके भाव तो किसी समय इधर--उधर हो सकते हैं, पर चितवन करने वाले के नहीं हो सकते, क्योंकि वह चितवन से जा ही रहा है। तन से पहुँचने वाला एक बार भाग सकता है पर मन से पहुँचने वाला कही नहीं जा सकता है। क्योकि उसे श्रृद्धा, विश्वास और प्रतीती है।

भो ज्ञानियो! सम्यक्दर्शन कह रहा है यदि मैं खिसक गया तो तुम श्रावक नहीं बचोगे, साधु नही बचोगे। मुझे सभाल कर रखना। कितने ही शिखर बना लेना, उन पर कगूरे बना लेना, ध्वजा चढा देना पर नींव की ईंट कह रही है, ध्यान रखो मेरे ऊपर मिट्टी डाल दो। मैं उखड गया तो तुम्हारे एक भी कगूरे नहीं बचेगे। सम्यक्त्व कहता है ध्यान रखो वह ज्ञान का कलश और चारित्र की ध्वजा सब नीचे आ जाएगी यदि मैं खिसक गया तो। इसलिए मेरे ऊपर विश्वास करो। जो कुछ हो रहा है सब विश्वास पर ही हो रहा है क्योकि श्रृद्धा का भगवान होता है, श्रृद्धा का गुरु होता है, श्रृद्धा की जिनवाणी है। श्रृद्धा नही है तो पाषाण की प्रतिमा है, श्रृद्धा नही है तो चर्म का शरीर है और श्रृद्धा नहीं है तो वे कागज की किताब है। विश्वास है तो पाषाण मे परमेश्वर नजर आता है। चरम मे गुरु का धर्म दिखता है और कागजो मे वीतराग वाणी झलकती है। श्रद्धा से बडी वस्तु ससार मे है ही नही। हृदय से हृदय मिलता है तो श्रृद्धा है, नहीं तो लगता है कि हम कोई अपरिचित हैं। जब श्रृद्धा बढती है तो लगता है कि कितने भवो का परिचय है।

यह भी सत्य है कि अपने पास केवली नही है। देखो, पचम काल के भव्यों को इन बेचारो के पास कोई तीर्थंकर नहीं, केवली नहीं, गणधर नहीं, धर्म पुरुषार्थ का कोई फल प्रत्यक्ष दिख भी नही रहा। यहाँ पर देव विद्याधर भी नही आ रहे फिर भी लोगो का विश्वास, श्रृद्धान अगाध है। इस काल मे भी वे साक्षात नहीं तो प्रतिमा मे भगवान को निहार रहे हैं, जिनवाणी मे जिनेद्र की वाणी को देख रहे हैं और मुनि मे गुरु को देख रहे हैं। इससे बडा कोई विश्वास नहीं है।

भो चेतन! इस विश्वास के फलस्वरूप यहाँ बैठकर ढोक लगाने मे आपके कर्म की निर्जरा भी उतनी ही हो रही है जितनी सीमन्धर स्वामी के चरणो मे बैठकर ढोक लगाने वालो की हो रही थी। आचार्य देवसेन स्वामी ने 'भाव सग्रह' ग्रथ मे लिखा है-- चतुर्थ काल का श्रमण एक हजार वर्ष तक तपस्या करे और पचम काल का श्रमण एक वर्ष तक वैसी ही तपस्या करे तब भी पचम काल

का श्रमण साधना मे श्रेष्ठ है। इसलिए श्रृद्धा जैसी आज है, अभी है, उसमे कमी मत करना। यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं–"तत्वार्थ श्रृद्धान सम्यक् दर्शन" जो प्रयोजन भूत तत्त्व है, उन पर श्रृद्धान करना सम्यक्त्व है। भगवन् कुदकुद स्वामी ने कहा आत्मा पर श्रृद्धान करना सम्यक्त्व है। समतभद्र स्वामी कहते हैं–देव, शास्त्र गुरु पर श्रृद्धान करना सम्यक्त्व है। जहाँ "तत्त्वार्थ श्रृद्धान" शब्द आ जाता है वहाँ सब परिभाषाये समाविष्ठ हो जाती है। कुदकुद स्वामी ने चौरासी पाहुड लिखे हैं। अष्ट पाहुड मे कुदकुद देव लिख रहे हैं–

हिसा रहिए धम्मे, अट्ठारह दोष विवज्जिसे देवे।
णिग्गथे पत्वयणे, सद्दहण होई सम्मन्त। (मो.पा) ९०।

अठारह दोषो से रहित देव, निर्ग्रंथ गुरु, जिन प्रवचन हिसा से रहित धर्म इन पर जिसका श्रद्धान है, उसका नाम सम्यकदर्शन है।

आचार्य भगवन कहते हैं उस तत्वार्थ का उदय कहाँ से हुआ है? आगम कौन सी वस्तु है ? अहो! आप्त के वचन का नाम ही तो आगम है। आगम पर श्रद्धान करते हो और आप्त को नहीं मानते हो तो मिथ्यादृष्टि हो। आप्त के वचन को जिनवाणी मानती है पर हम आप्त को नही मानते, जिनदेव को नही मानते। भो ज्ञानी! जिन देव को नहीं मानोगे तो जिनवाणी कहाँ से आयी ? ठीक है मैं आप्त को मान लेता हूँ , जिनवाणी को मान लेता हूँ, लेकिन हम गुरु को नहीं मानेगे। अरे! तुम यह तो बताओ जो आप्त ने कहा है वो लिखा किसने है? निबद्ध किसने किया, गुथन किसने किया, ग्रहण किसने किया, झेला किसने है? यदि हमारे आचार्य परमेष्ठी न होते, गुरु न होते तो जिनेन्द्र की वाणी तुम्हे देता कौन? इसलिये जो 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक्दर्शन' मानता है और देव–शास्त्र गुरु को भी मानता है, वही सम्यक्त्वी है।

भो ज्ञानी! अलग से शब्द जोडकर दीवार खडी मत करो। जैसा आगम है वैसा आगम स्वीकार करते जाओ। आत्म श्रद्धान, देव शास्त्र गुरु से हटकर नहीं है और तत्त्व का श्रद्धान आत्मा से हटकर नहीं है, क्योकि तत्त्वो में पहला प्रयोजन भूत तत्त्व जीव है, पर जब तक आप जीवादि शब्द नहीं लगाओगे तब तक जीव की सिद्धि भी नहीं होगी। इसलिए अजीव को भी जानना जरूरी है। सिक्के पर यदि एक पहलू नहीं होगा तो दूसरा कहाँ से होगा। इसलिये दो का जोडा है। जीव के दो भेद हैं त्रस–स्थावर। यह ससार की दशा है। बिना जोडे के तुम चल नहीं सकते हो।

भो चेतन! इसीलिये व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय दोनों का जोडा है। जब तक स्त्री–पुरुष का सयोग नहीं है तब तक सतान का जन्म नहीं है। जब तक व्यवहार, निश्चय रत्नत्रय का जोडा नहीं है तब तक सिद्ध सतति का जन्म नहीं है। अहो! अनेकात दृष्टि बना लो तो चित्त/पट्ट आपकी ही हो जाएगी। जब तक अनेकांत दृष्टि नहीं है तब तक पट्ट हो तो पट ही रहोगे और चित्त हो तो चित्त ही रहोगे। अनेकात ही वस्तु का धर्म है और स्याद्वाद कहने की शैली

है जो सब कुछ करा रही है। कैसी है आत्मा ? सबसे जो निकट वस्तु है उसका नाम है आत्मा। जो कुछ परिणमन हो रहा है तेरी आत्मा की देन है। इसलिये आप किसी को मत पकडो इस आत्मा को पकड लो। माँ जिनवाणी कहती है कि तुम सो रहे हो तो मैं तुम्हे जगा दूँगी और तुम बहाना बनाकर पडे हो तो तुम्हे कोई नहीं जगा सकता। जो जान के सोया उसे कोई नही जगा सकता, पर जो सचमुच सोया है उसे जगाया जा सकता है। इसलिये कहा है–

मोह नीद के जोर, जगवासी घूमे सदा।
कर्म चोर चहु ओर, सरवस लूटे सुध नही। बा भा

इसीलिये तो आपको जिनवाणी माँ जगा रही। 'सत्गुरु देय जगाए मोह नीद जब उपसमे'। भो ज्ञानी! अग्नि को गर्म करने के लिये क्या बाहर से ऊष्णता लानी पडती है ? यह तो उसका निज धर्म है। ऐसे ही किसी के कहने से शीश तो झुकाया जा सकता है पर किसी की श्रद्धा नही झुकाई जा सकती। अरे! बुदेलखण्ड के लोग कहते हैं– मार–मार के ऐसा नही करना। जिसके मन से मिथ्यात्व की चिडिया भग जाए तो सम्यक्त्व रूपी फसल की अपने आप रक्षा हो जाएगी। इसलिये अतर मे चितवन करना कि आप क्या हो ? वास्तव मे मेरी श्रद्धा कैसी है ? निष्कप अचल है कि नही ? कही सामाजिकता के नाते तो नही। श्रद्धा का आधार क्या है ? अहो! श्रद्धा जब होती है उसमे आत्मा ही आधेय होता है और आत्मा ही आधार होता है। यह अभेद श्रद्धान है।

भो मनीषी! स्व–रमण चल रहा है वही निश्चय सम्यक्त्व है, वही निश्चय ज्ञान, वही निश्चय चारित्र है। जो कहा जा रहा है वह सब व्यवहार है सहचर है, सयोगी है पर अनुभव अवक्तव्य है। शब्दो मे अनुभव की व्याख्या नहीं है। ये सब स्थूल बाते हो रही हैं। अब अदर की बाते आप जानो या आप्त जाने, तीसरा कोई जानता ही नहीं है। परतु विपरीत अभिप्राय छोडकर जो श्रद्धा होगी वही आत्म रूप श्रद्धान है वही सम्यकदर्शन है।
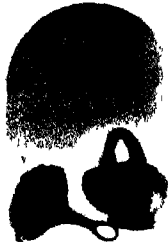
"निशक सम्यग्दृष्टि"

सकलमनेकान्तात्मकमिदमुक्त वस्तुजातमखिलज्ञै ।
किम सत्यमसत्य वा न जातु शकेति कर्त्तव्या।। २३।।

अन्वयार्थ – अखिलज्ञै उक्त = सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुओ। इदम् सकलम् = यह सारा वस्तुजातम = वस्तुसमूह। अनेकान्तात्मकम् = अनेक स्वभावरूप। उक्त = कहा गया है, सो किमुसत्यम् वा असत्यम् = क्या सत्य है या झूठ है ? शकेति जातु = ऐसी शका। कदाचित् भी न कर्तव्या = नही करनी चाहिये।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥१७॥

मनीषियो! भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने बहुत सुन्दर सूत्र दिया है कि जैसे शरीर मे आठ अग है, उनमे से एक भी अग आपके शरीर मे न हो तो आप सर्वांग–सुन्दर नही कहलाते। ऐसे ही सम्यक्त्व के आठ अग होते है। जैसे यदि मत्र मे एक अक्षर कम हो तो विष को दूर नहीं किया जा सकता, ऐसे ही मुमुक्षु आत्माओ! तुम्हारे सम्यक्त्व के आठ अग मे से एक अग भी कम है तो मिथ्यात्व का जहर कम नही हो सकता। ध्यान रखना, सर्प के डसे व्यक्ति की तो एक पर्याय ही नष्ट होती है, पर मिथ्यात्व का सेवन करने से अनेक भव नष्ट हो जाते है।

भो ज्ञानी! जब भी कोई तत्त्व–देशना प्रारभ होती है तो सम्यक्त्व क्यो खडा हो जाता है? अथवा जब भी कोई तत्त्व–चर्चा होती है तो मिथ्यात्व को छोडने की बात आ जाती है। क्योकि आप चाहे गृहस्थ की क्रिया करे अथवा परमार्थिक क्रिया। अभिप्राय को निर्मल करने की बात तो पहले ही आती है। अभिप्राय निर्मल नही होगा, तो किसी भी सस्था को चला नही सकेगे चाहे वह गृहस्थ सस्था हो अथवा साधक सस्था हो।

भो ज्ञानी! निर्मलता यानि परिणामो की भद्रता, कषाय की मदता तथा वस्तु–स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन करने की दृष्टि, वस्तु स्वरूप को समझने की दृष्टि। अत जैसा हम अपने लिये समझते हैं वैसा दूसरो के लिए आप समझने लगो तो आपका अभिप्राय निर्मल कहा जायेगा। निर्मलता के लिए सकोच नहीं विस्तार लाओ। दृष्टि को विस्तृत करो। श्रमण सस्कृति कह रही है कि श्रावक भी सम्राट होता है और सम्यक्दृष्टि भी वही होता है। तत्त्व श्रद्धान तथा देव, शास्त्र गुरु के श्रद्धान से पहले अनुकपा का होना आवश्यक है। यदि अनुकपा ही नहीं है, तो श्रद्धान कुछ नही करेगा।

अनुकपा यानि दया, कृपा, करुणा ये सम्यक्त्व का पहला गुण है।

'भक्तामर–स्तोत्र' मे आचार्य मानतुग महाराज कह रहे हैं कि–हे जगदीश! आप जगत के ईश्वर हो, प्राणी मात्र को शरण देने वाले हो, इसीलिए आप भूतनाथ हो। आपका शासन सर्वोदयी शासन है क्योकि आप सपूर्ण प्राणियो को समान शरण देने वाले हो। सम्पूर्ण प्राणियो के लिए समान पूज्यता उदय करने वाले हो। इसलिए आपका शासन सर्वोदयी है। 'युक्तानुशासन' ग्रथ मे कहा है–हे प्रभु! आपका शासन सर्वोदय शासन है, जिसमे अनेक सभाएँ होती है, प्रवचन सभाएँ होती है। यह प्रवचन की परम्परा अनादि से चली आ रही है। अहो! तीर्थंकर की सभा का जो नाम होता है, वह विश्व मे किसी सभा का नहीं होता है। जिसको सुनकर जाति–पाति पथ भेद समाप्त हो जाते है उस सभा का नाम है समवशरण सभा। जिसमे प्राणी मात्र को समान शरण दी जाती है समान उपदेश दिया जाता है। जहॉ भेद भाव न होता हो, जहॉ सम्पूर्ण जीवो को जीव दृष्टि से देखा जाता हो उस सभा का नाम है समवशरण सभा। जिस वृक्ष के नीचे प्रभु विराजे है उस वृक्ष का नाम अशोक वृक्ष होता है।

भो ज्ञानी! तीर्थंकर सभा मे जो आता है उसके सम्पूर्ण शोक समाप्त हो जाते है, इसीलिए आप अशोक वृक्ष के नीचे विराजते हैं। अशोक वृक्ष के नीचे बैठने वाले प्रभु की सभा की वाणी शोक को विगलित करने वाली वाणी है। इसलिए विश्व कल्याणीवाणी वीतराग–वाणी ही होगी क्योकि यहॉ किसी हवन पूजा से नही अपितु सम्यक्दर्शन से धर्म की शुरूआत की जा रही है। सम्यक्दर्शन यानि दृष्टि साफ करना। क्योकि विकार होते है तो वासना तन और मन मे होती है। अत वासना सयोग मे नही वासना वियोग मे नही वासना तेरे विमोह मे यानि मोह दृष्टि मे है।

भो ज्ञानी! दृष्टि विशाल करो। परिणामो मे जितनी विशुद्धी होती है उतना ही धर्म होता है। इसलिए हमारे आचार्यो ने क्षपणासार, लब्धिसार ग्रथ परिणामो के मापने के लिए लिखे है। जिस दिन आपने अपने परिणाम माप लिये उस दिन कुछ भी मापने की आवश्यकता नही। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि तो देखो कि श्रावकाचार मे पूरी द्रव्यदृष्टि की बात कह रहे है कि वस्त्रो का धोना धर्म नही, तन को धोना धर्म नही, दृष्टि को निर्मल करना ही धर्म है, दृष्टि को धोना ही धर्म है। जिसकी दृष्टि पवित्र है वह परम पवित्र है। जिसकी दृष्टि पवित्र नही है वह चाहे गगा मे डुबकी लगाले चाहे क्षीरसागर मे मगर वह पवित्र नही है, उसमे विशालता नही है। क्योकि सकुचित हृदयी कभी भी धर्म की विशालता मे प्रवेश नहीं कर सकता। सकुचितता मे तो घाट दिखते है, विशालता मे कुआ नजर आता है। भो मनीषियो! जिनवाणी किसी भी मुख से आ रही हो, तुम मुख को मत देखना, तुम तो वीतराग वाणी को देखना, घाटो को देखोगे तो प्यासे रह जाओगे। सम्यक्दृष्टि

कमल की पखुडी को नही कमल के पुष्पो को देखता है। पखुडी को देखने वाला पुष्पो को समझ नही पाता है कि पुष्प मे कितनी सुगध है क्योकि वह पखुडी को पकडे हुये है। भो मुमुक्षु आत्माओ। यह पखुडी का धर्म नही, यह वीतरागी कमल के हृदय को विकसित करने वाला धर्म है। जिसका हृदय कमल खिला होता है जिसका हृदय विशाल होता है। उसके ही हृदय मे परमेश्वर की प्रतिमा विराजमान होती है। जिसके हृदय मे विष मे होता है अर्थात् जिसका हृदय सकुचित होता है, उसकी मानवता मर जाती है। क्योकि मेरा–तेरा शब्द कमल पखुडियो मे ही होता है।

भो चेतन आत्माओ। सर्वदर्शी बनना चाहते हो तो पहले समदृष्टित्व को लाओ। सम्यक्दृष्टि बनोगे तभी सर्वांग दृष्टि पाओगे। जब तक समदृष्टि नही तब तक सम्यक्दृष्टि भी नही है तथा सम्यक्दृष्टि नही है तो सर्वदृष्टि भी नहीं है। इसलिये आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि विशालता हासिल करो। आप सामर्थ्य जुटाओ मेहनत करो। निगोद से यहाँ तक आ गये हो, अब तुम्हारे पास बुद्धि विवेक आचार–विचार सभी कुछ है। तुम पीछे क्यो हटते हो? थोडी सी मेहनत कर लो। बस दृष्टि को धो लो। ध्यान से समझना जब एक व्यक्ति को एक पदार्थ के दो दिखे समझलो कि अब हमारी आयु अल्प बची हुई है अथवा जिसकी ऑख मे मिथ्यात्त्व का कीचड है उन्हे तत्व मे दो–पना दिखता है, भगवानो मे भेद दिखते हैं, जिनवाणी मे दो–पना दिखता है और वीतरागी सतो मे दो–पना दिखता है । परन्तु जिसका कीचड निकल जाता है उन्हे जिनवाणी–जिनवाणी वीतरागी–वीतरागी, निर्ग्रंथ–निर्ग्रंथ दिखते है। अत जैन दर्शन कह रहा है कि दृष्टि साफ रखो। दृष्टि जितनी साफ होती जाती है उतना–उतना पानी फैलाना बद होता जाता है। इसीलिये दिगम्बर मुनि कभी स्नान करते ही नही है। कातत्र व्याकरण का श्लोक है–

शुचि भूमिगत तोय, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचि धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचि ।। का व्या

'जो राजा धर्म परायण होता है वह पवित्र होता है, जो पानी भूमि मे बहता होता है वह अपने आप पवित्र होता है जो नारी पतिव्रता होती है वह अपने आप मे पवित्र होती है। पतिव्रता मनोरमा के पैर का अगूठा लगा कि किले का गेट (दरवाजा) खुल गया। यह परिणामो के पवित्रता की दृष्टि है, भावो की निर्मलता की दृष्टि है। अभी तुमने बाहर के आनद लूटे है अन्दर का आनद तो विचित्र ही है।

भो चैतन्य। ब्रम्हचारी को घर मे ही रहना चाहिये, जो बाहर रहता है वह व्यभिचारी होता है। निज घर ही मेरा घर है पर घर मेरा घर नही हैं, यह तो यम घर हैं। यहाँ से तो तुझे उठकर ही जाना होगा। मनीषियो। यदि निज घर मे चलना है तो तत्त्व की दृष्टि आपके घर की रोटी है कभी भी अपचन नहीं करायेगी चिन्ता मत करना, बिल्कुल स्वस्थ्य रखेगी। वीतराग–वाणी ही सर्वांग–वाणी

है। जो शाश्वत–सुख को प्रदान करती है। इसलिए सम्यक्दृष्टि जीव निशक होता है। निशक वही होगा जो निसग होगा। जरा भी लोभ–लालच होगा तो निशकित हो ही नही सकता। निशक यानि निस्पृह, निष्पृहग्रही। तुम्हारी हालत ऐसी है कि यहाँ गये वहाँ गये। सभी जगह भटक आये। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं– भो जहाज के पछी! कही भी उड लो, पर बैठना तो पडेगा धर्म के पोत पर। बिना धर्म पोत पर बैठे तुम पार हो नही सकते। इसीलिए सम्यक्दृष्टि जीव निशकित होकर निसगता की ओर जाता है और कहता है कि जो सर्वज्ञ देव ने कहा है वह यथार्थ ही है अन्यथा नही है। जैसा कि तलवार पर चढा पानी नही उतरता चाहे तलवार टूट जाय। ऐसे ही सम्यक्दृष्टि जीव प्राण छोड सकता है, परन्तु मिथ्यात्व को प्रणाम नही कर सकता है।

मनीषियो! दृष्टि तुम्हारी है कही वीतराग मार्ग मे अश्रद्धान मत कर लेना। क्योकि शका मे दौलन–गति चलती है कि यह सत्य है कि वह सत्य है। अरे! देखो जिसे तुम अजनचोर कहते हो वह निरजन बन गया। जिसे आप सप्त व्यसनी कहते हो उसकी ऐसी निशकित दृष्टि थी कि निर्ग्रंथ योगी बन गये। आचार्य भगवन कह रहे है–विश्व मे जितने पदार्थ है, सब अनेकान्त दृष्टि से भरे है। भूतनाथ के स्वामी को छोडकर तुम भूतो के पीछे जा रहे हो। इसलिये इतने पवित्र शासन को छोडकर तुम कहाँ दौडते हो? तत्त्वो को जानने वाले, भीख मत मागो। मागने से मरना भला, यह सद्गुरु की सीख है। पर सर्वज्ञ–देव, वीतरागी–निर्ग्रंथ गुरु सत्य हैं कि असत्य है? ऐसी शका कभी भी नही करना चाहिये। जिन तत्त्वो का कथन सर्वज्ञ–देव ने कहा है–वह ही यथार्थ है, वह ही सत्य है।

खजुराहो-शातिनाथ मदिर
तीर्थंकर के माता-पिता

'नि'कांक्षित अग'

इह जन्मनि विभवादीन्यमुत्र चक्रित्वकेशवत्वादीन्।
एकातवाददूषित पर समयानपि च नाकाक्षेत्।। २४।।

अन्वयार्थ इह जन्मनि = इस जन्म मे। विभवादीनि = ऐश्वर्य, सम्पदा आदि को। अमुत्र = परलोक मे चक्रित्वकेशवत्वादीन =चक्रवर्ती नारायणादि पदो के। च=और एकातवाददूषितपरसमयान् = एकातवाद से दूषित अन्य धर्मो को। अपि = भी। न आकाक्षेत् = नहीं चाहे।

।। पुरुषार्थ देशना ।।१८।।

मनीषियो! भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना हम सभी सुन रहे हैं कि जिसे स्वय पर भरोसा है उसे सब पर भरोसा होता है जो स्वय कषायो से भरा होता है, स्वय मे वासनाओ से भरा होता है उस जीव को सब पर शका ही होती है। ऐसे ही जिसका हृदय पवित्र होता है वह सोचता है कि ससार मे सब पवित्र आत्मा है। शका मे जीव चाहे कि मै तीर्थंकर प्रकृति का बध कर लूँ, ससारी जीव चाहे मै परमात्मा बन जाऊँ परमात्मा तो बहुत दूर है वह तो परिवार का मुखिया भी नही बन सकता। तुम बडे होगे तो बन भी जाओगे पर तुम्हारे बनने से क्या होता है, कोई माने तब ना। मॉ जिनवाणी कहती है जो स्वय मे यथार्थ नही होता असत्यता मे जीता है, स्वय के अविश्वास मे जीता है वह परमेश्वर मे भी विश्वास नही कर पाता उसके हृदय मे विशुद्धता नही है। क्योकि जो विशुद्धता से, निर्मलता से भरा होता है उसे इतनी फुरसत कहॉ कि इसके बारे मे सोचे इनके बारे मे सोचे। जो फुरसत मे बैठा है जिसे कर्मबध से भय नही है, जिसे ससार मे रुकने का भय नही है ऐसे जीव का काम इतना ही अवशेष बचा है कि तुम यहॉ की वहॉ, वहॉ की यहॉ करो, स्वय शका मे जियो और दूसरो को शका मे डाल दो।

भो ज्ञानी! पहली भावना का नाम दर्शन विशुद्धि है, सम्यक्त्व विशुद्धि है। सोलह कारण भावना का उल्लेख पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थ सिद्धि' ग्रथ मे किया है। उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' मे किया है। धवला मे (षड्खण्डागम) पुस्तक नबर ८ मे जहॉ तीर्थंकर प्रकृति के बध ा का वर्णन है वहॉ आचार्य वीरसेन स्वामी ने उल्लेख किया कि आपकी १५ भावनाये हो जाये और पहली दर्शन विशुद्धि सम्यक्त्व विशुद्धी भावना नही है तो १५ भावनाये महत्व ही नही रखती हैं इसलिये ध्यान रखना निज का हृदय निर्मल सरोवर है तो सबके प्रतिबिम्ब निर्मल नजर आते है और

तुम्हारा हृदय–सरोवर ही मलिन है, तो प्रतिबिम्ब भी तुम्हे मलिन ही दिखते हैं। इसलिये प्रतिबिम्ब निर्मल करना है, तो हृदय सरोवर मे फिटकरी डाल दो। अहो! वीतराग वाणी की निर्मली तुम्हारे हृदय सरोवर मे प्रवेश कर जाये तो जैसे तीर्थंकर आत्मा को प्रत्येक जीव के प्रति साम्य दृष्टि झलकती है, ऐसे ही तुम्हारी दृष्टि भी बन जायेगी।

भो ज्ञानी! लोक मे अनेक दर्शन कहते हैं कि सर्वज्ञ नाम की कोई वस्तु नही, पर आचार्य समतभद्र स्वामी ने उन सबसे, बडे प्रेम से पूछा है कि सर्वज्ञ नही है, तो आज नही है या भरत क्षेत्र मे ही नही है अथवा यह भी बता दो कि क्या भूत मे भी नही हुये और भविष्य मे भी नही होगे? मना करने से पहले विवेक से सोच लेना। अहो! जिसके ज्ञान मे त्रैकालिक पदार्थ अर्थात् त्रैकालिक द्रव्य गुण पर्याय एक साथ झलकते हो उसका नाम सर्वज्ञ देव है और जो त्रैकालिक व्यवस्था को जानता है, उसे सर्वज्ञ कहते हैं। सर्वज्ञ आज नही हैं, भरत क्षेत्र मे भी नही है लेकिन क्या सर्वज्ञ भविष्य मे भी नही होगे भूत मे भी नही थे? अरे! मेरा सर्वज्ञ तो तू ही बैठा है। आपके सिर के पीछे क्या है आप बता सकते हो? यदि नही बता सकते तो अपने त्रैकालिक सर्वज्ञ का अभाव कैसे कर सकते हो?

भो चेतन! आप त्रैकालिक सर्वज्ञ का निषेध बता रहे हो, इसका तात्पर्य तुम तो सर्वज्ञ बन गये और आपको सर्वज्ञ के कथन पर शका हो रही है कि पचम काल मे तो सम्यक्दृष्टि हो ही नही सकता। अहो! मत खोजने जाना कही मिथ्यादृष्टि को उसी का हाथ पकड लेना। क्योकि जिनवाणी कह रही है कि मै सम्यक्दृष्टि उसे कहता हूँ जो देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धावान है। आपकी दृष्टि मे देव भी नही है शास्त्र भी नही है गुरु भी नही है और आप सबको मिथ्यादृष्टि कहते हो अत पहला मिथ्यादृष्टि तू खुद ही है क्योकि रयणसार ग्रथ मे लिखा है जो जीव पचमकाल मे सम्यक्त्व को नही मानता, धर्म ध्यान को नही मानता धर्मात्माओ को नहीं मानता वह घोर मिथ्यादृष्टि है। आज भी धर्म है, धर्मात्मा हैं सज्जन ह, सत्पुरुष है यदि नही होगे तो भो ज्ञानी! धर्मात्मा के बिना धर्म नही होता, धर्म तभी तक है जब तक धर्मात्मा है। इसलिये जिसने यह कह दिया कि कोई धर्मात्मा नही है, तो आपकी दृष्टि निशक भी नही है, क्योकि निशकित गुण कहता है कि सात तत्वो जिनदेव और जिनवाणी पर कोई शका नही है और निर्ग्रंथो पर भी कोई शका नही है।

भो ज्ञानी आत्माओ! यदि कोई जीव इस सन्मार्ग को प्राप्त करके भी उन्मार्ग मे जा रहा है हम उसे अनायतन कहते हैं ? आगम की दृष्टि मे आयतन का सेवक सम्यक्दृष्टि और अनायतन का सेवक मिथ्यादृष्टि है, अत पहले तू स्वय पर नि शक होना सीख ले। क्या मालूम हमने व्रत लिया, हमसे पालन होगा कि नही नि शकता नही है। आप मोक्ष की बात कर रहे हो तो निर्मल दृष्टि, दृढ सकल्प, दृढ आस्था ही शास्ता का मार्ग है। ऐसा जब नि शक होता हो तब निकाक्षित भाव उत्पन्न

होता है। जब तक कि नि शक नही होगा तो निकाक्षित भी नही हो सकता। यह सम्यक्दर्शन का अग है और समाचीन जीवन जीने की शैली भी है। भो ज्ञानी ! तू करोडो का व्यापार फोन के विश्वास पर कर रहा है फिर परमेश्वर पर अविश्वास क्यो है।

भो ज्ञानी! यह रोटी का टुकडा मेरा पेट भर देगा उस पर विश्वास रखकर आप भोजन करते हो। रोटी पर कितनी श्रद्धा है अहो! एक पुद्गल के टुकडे पर इतना विश्वास तो क्या देव–शास्त्र–गुरु उस रोटी के टुकडे से भी गये गुजरे है ? एक इजीनियर हाथ मे श्रीफल लिये और एक ताबे की छड लिये जा रहा है, खेत मे घुमाकर बोले–यहॉ पानी है तो विश्वास हो जाता है कि वहॉ पानी है। जब भूमिगत पानी को तुम श्रद्धा से पकड सकते हो तो इस भगवती आत्मा मे तुम भगवान को क्यो नही पकड पा रहे ? यह सब श्रद्धा ही तो है। जैसे भूमि मे पानी है, ऐसे देह मे परमात्मा है परतु जब तक खोदोगे नही तब तक पानी नही, ऐसे ही जब तक खोजोगे नही तब तक परमेश्वर नही परतु शका मे भगवान नही मिलेगे। नि शकता से ही भगवान मिलेगे, पहले भगवान मिलेगे फिर भगवान बन जाओगे।

भो ज्ञानी! यही है द्वैत–अद्वैत भाव। भगवान से मिलना यह द्वैत भाव है और भगवान बनना यह अद्वैत भाव है इसलिये किसी मे शका मत करो। नि शकित अग को गहराई से समझ लेना जिनेन्द्र के वचन मे शका मत करना। किसी व्यक्ति ने अपनी असमर्थता से कोई गलत काम कर लिया हो उसे जिनदेव का काम मत कहना वह तो उस व्यक्ति का दोष है जिन शासन का दोष नही है। जिनदेव का शासन निज पर अनुशासन की बात करता है, निज पर शासन ही जिनेन्द्र का शासन है और जिसका निज पर शासन नही है वह जिनेन्द्र के शासन मे ही नही है। भो चेतन! यदि करना ही है तो प्रभु बनने की वान्छा करो लेकिन बिना वान्छा करे भगवान बनने वाले भी नही। इस अवस्था मे तो आपको वान्छा करनी ही होगी। जब तुम नि शकित और नि काक्षित शुद्धोउपयोग दशा मे प्रवेश कर जाओगे तो सपूर्ण वान्छाये आपकी स्वमेव समाप्त हो जायेगी परतु ध्यान रखना जिनेन्द्र के शासन मे लिखा है कि जो कुछ मिलता वह मॉगने से नही मिलता वहॉ दुआये भी काम नही आती और दवाये भी काम नही आती। कुछ लोग दुआओ मे जी रहे है कुछ दवाओ मे जी रहे हैं परतु दबा नही रहे। दबा दे, तो दुआ भी लग जाये दवा भी लग जाये परतु दबाना पडेगा। तुम पाप को दबा दो, पुण्य को उठा लो। भो ज्ञानी! दुआये भी लगेगी दवा भी लगेगी, लेकिन इस मिथ्यात्व को छोड दो। यह जिन शासन है वरदान वाला शासन नही है अत मात्र विश्वास करके भगवान के चरणो मे आना पर व्यापारी बनकर नही।

भो ज्ञानी! गुरुओ के पास भी आना परतु व्यापारी बनकर नही, क्योकि आप धन से धर्म को मापने लग जाओगे। अरे! धन तेरे पुण्य–पाप का परिणमन है। अत यह देने–लेने वाले

शक्तिवान नहीं है। लेने–देने का काम तो बनिया करते हैं, रागी–द्वेषी करते हैं, परमेश्वर से लेने–देने की बात मत करो। 'गीता' को आपने सुना होगा, नारायणकृष्ण, अर्जुन को सकेत कर रहे हैं– हे पार्थ! जो कर्म तू कर रहा है वह तेरे अधिकार मे है, उसके फल पर तेरा अधिकार कदापि नहीं। निष्काम आराधना करो। माँ जिनवाणी कहती है –नि कॉंक्षित आराधना करो, कॉक्षा मत करो, करोगे तो अविश्वास बढेगा, उपेक्षा आयेगी, क्योकि अपेक्षा ही सबसे बडी उपेक्षा है। अहो! जहाँ कुछ मागने की भावना आती है, वही से लघुता प्रारभ हो जाती है। भो चेतन! भले आप बहुत सम्मान देते हो, पूजा करते हो, तीन–तीन प्रदक्षिणा भी लगाते हो, लेकिन वह घडी कैसी आती है कि आपका हाथ ऊपर होता और साधु अजली लिये खडा होता है, वह क्षण भी कैसा होता है। सोचता हूँ भगवन् काश! बज्रवृषभनाराच शरीर प्राप्त कर लिया होता तो श्रावक के द्वार पर जाना बद हो जाता। भो ज्ञानी! जहॉ लेने की दृष्टि होती है, वहॉ लेने वाला नीचे और देने वाला ऊपर आ ही जाता है और इतना ही नही कभी–कभी दाता की डॉट भी खानी पडती है। जब एक निर्ग्रंथ योगी की दशा यह हो सकती है तो चौबीस घटे माँगना ही मॉगना जिनका विषय बना है उनकी क्या दशा होगी है? भावना भाओ कि प्रभु! क्षुधा वेदनीय का विनाश हो।

भो ज्ञानी! देवदत्त महाराज की रानी ने राजा को धक्का मार नदी मे पटककर कुबडे के साथ चली गई, क्या तुम तभी चेतोगे जब तुम्हारे साथ ऐसी घटना घटेगी ? अहो! इसके पहले सँभल जाओ समझदार वही होता है जो सामान्य विशेष समझ लेता है। यह सब कुछ पुण्य का द्रव्य अपने पास रखा था सो आज काम मे आ रहा है कि ऐसी बाते सुनने की सूझ रही है, अन्यथा लोगो को तो पता ही नही कि भूल कर रहे है कि नही कर रहे, बल्कि भूल को ही धर्म मान रहे हैं। एक सज्जन बोले–महाराज श्री आज तो बडा पुण्य का काम करने जा रहे है हमने भी पूछा–बताओ भैया क्या कर रहे हो। बडे खुश थे जैसे उन्हे मोक्ष मिल रहा है। महाराजश्री! एक बिटिया के पॉव पूजने जा रहे है। ओहो पापी! कहॉ जा रहे हो ? जो नौ कोटि जीवो की हिसा करेगा और उसे तू धर्म कह रहा है। भो ज्ञानी ! लोक व्यवहार कह लेना, समाज व्यवस्था कह लेना पर उसे धर्म तो मत कहना। धर्म तो यह है कि तू ब्रम्हचारी बन जाता और उसे ब्रम्हचारी व्रत दिला देता इसका नाम धर्म है। मैं भी तेरी पीठ ठोक देता, आशीर्वाद दे देता कि वास्तव मे तू पुण्य करने जा रहा है यहॉ तो तू ससार मे फॅसाने जा रहा है। देखो, कैसे ससारी जीव हैं, अपनी भूल को भी भगवत्ता की प्राप्ति कह रहा है, धर्म मान रहा है। भो ज्ञानी! वैभव को देखकर के अदर के वैभव को मत खो देना। आचार्य महाराज कह रहे हैं मात्र वर्त्तमान के सुख को सर्वस्व मान लिया तो वर्तमान की पर्याय को ही देखते रहोगे। विश्वास करना आप न तो किसी के मित्र बन पाओगे और न किसी के सगे बनकर रह पाओगे, क्योकि वर्तमान के सिवाय जो भी है वह शत्रुता को ही बढाने वाले हैं। जब दो बैलो को एक साथ घास डाली जाती है तब जीव की, आकाँक्षा देखो–अपने सामने की घास नही खाता दूसरे

की खाने लगता है, स्वय की घास पर पैर रख रहा है, मलमूत्र छोड रहा है, नष्ट हो जाये खराब हो जाये पर दूसरे को सीग मार रहा है।

हे मानवो! उसे तो आपने पशु कह दिया अज्ञानी कह दिया है, परतु भो ज्ञानी आत्माओ! आप भी तो कषाय का सींग मार रहे हो। तुम भी अपनी घास खाओ, दूसरो की दूसरे को चरने दो। तुम बैल नहीं हो, तुम मानव हो बैल का सीग तो बैल के पेट मे ही लगता है पर कषाय का सीग तो अन्त करण मे प्रवेश कर जाता है। अत वाणी के सीग मत मारो, भावो के सींग मत मारो, वासनाओं के सींग मत मारो। तुम मानव हो अत ध्यान रखना जब कोई विकल्प मन मे आये, तो कहना भैया! मैं मानव हूँ, मनुष्य हूँ। मनुष्य कौन होता है ? महान सिद्धाताचार्य भगवन् नेमीचद्र स्वामी जो सिद्धात चक्रवर्ती कहलाते थे जिन्होने गोमटेश बाहुबली स्वामी को सूरी मत्र दिया। ऐसे महान आचार्य लिखते हैं कि मनुष्य वही होता है जो मननशील होता है। जो मन से उत्कृष्ट होता है मानवता से भरा होता है। जो मनु की सतान हो उसे मनुष्य कहा है। मनुष्य याने कुलकर इसलिये आपसे कहता हूँ मनुष्य का अर्थ है ज्ञानी प्रज्ञावान बुद्धिमान।

मनीषियो! समझो आप मनुष्य ही हो मवेशी नही। दूसरे की घास वह खीचे, जो मवेशी हो परतु जब भी किसी की धन--धरती आदि पर तुम्हारी दृष्टि जाये समझ लेना इस समय मै मनुष्य नही, मवेशी हूँ। पराधीन वैभव आदि को देखकर यह इस लोक सबन्धी आकाक्षा नही करना कि मैं चक्रवर्ती बन जाऊँ, मैं नारायण बन जाऊँ और दूषित एकात भाव से पर को ऐसा भी नही देखो, कि लोगो की, कैसी पूजा? कैसी ख्याति? कैसा लाभ? मेरी भी हो जाये तो समझ लो, तुम मिथ्यात्व के पोषण मे चले गये।

"मत करो, किसी से घृणा"

क्षुत्तृष्णाशीतोष्णप्रभृतिषु नानाविधेषु भावेषु।
द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया ।। २५।।

अन्वयार्थ क्षुत्तृष्णा = क्षुधा, तृषा, (भूख, प्यास) शीतोष्ण= शीत, उष्ण (सर्दी, गर्मी)। प्रभृतिषु = इत्यादि नानाविधेषु = अनेक प्रकार वाले। भावेषु = भावो मे। पुरीषादिसु = मल आदिक। द्रव्येषु = पदार्थों मे । विचिकत्सा = घृणा (ग्लानि)। नैव = नहीं करणीया = करनी चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना ||१९||

मनीषियो। अतिम तीर्थकर भगवान वर्द्धमान स्वामी की पियूष वाणी हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी बहुत ही सहज कथन कर रहे है कि यदि भाव बदल गये, तो तुम्हारी भावनाये भी बदल गई। भावना बदलने का कारण मात्र यह था कि आपने सीमा से ज्यादा सोच लिया था। चादर छोटी है और पैर लम्बे है, तो या तो पैर बाहर निकलेगे या सिर बाहर निकलेगा। भो ज्ञानी। ऐसा करो, चादर बढाने की सामर्थ्य है नही, पैर छोटे करने की भी सामर्थ्य नही तो पैरो को सकुचित कर लेना। ना चादर बढाना पडेगा और ना पैर काटने पडेगे। मुमुक्षु जीव इच्छाओ को सकुचित कर लेता है। अत, आकार–प्रकार मत घटाओ, पर आकार–प्रकार को बढाने वाली जो भावनाये है उनको सकुचित कर लो, इसी का नाम सयम है। भो चेतन । ससार रहे, उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं, पर मैं ससार मे न रहूँ यह मुझे प्रयोजन है। जो ससार का नाश करना चाहता है, वह तो हिसक है। अपनी सस्कृति को समाप्त करके, निमित्तो को नष्ट करके जो मुमुक्षु बनना चाहता है वह अपने घर मे बैठे। क्योकि निमित्तो का नाश करके मुमुक्षु नही बना जाता। निमित्तो के होने पर उपादान को सँभाला जाता है। निमित्त तो सर्वत्र मिलेगे ही। इसीलिए स्वय की दृष्टि निर्मल करो।

भो ज्ञानी। नगर मे तो कम से कम विषयो की मर्यादाएँ है परतु जगल मे तो तिर्यंचो की मर्यादाए भी नहीं हैं, वहाँ भी आप को निमित्त मिलेगे। नगर मे आपके अदर विकार और कषाय भडकते हैं तो आप कुछ समय के लिये सीमा मे बध जाते हो, लेकिन जैसे ही कषाय उदय मे आई तो विकार उदय मे आया तो वह भी प्रकट दिखता है। इसीलिए तुम निमित्तों से बचकर रहो, निमित्तो को अपने अन्दर प्रवेश मत दो। भो ज्ञानी । इच्छाओ को सम्हाल लो। वस्तु को तुम नही सम्हाल

पाओगे। एक बात का ध्यान रखना, वस्तु तुम्हे मिल भी जावेगी, यदि पुण्य नही होगा तो तुम सम्हाल भी नहीं पाओगे। जिसे चक्रवर्ती की विभूति मिलती है, उसे चक्रवर्ती की बुद्धि भी मिलती है। जो तीर्थंकर बनता है, वह जन्म से तीन ज्ञान का धारी होता है। अत आकाक्षाएँ जब पूरी नही होती हैं तो ईर्ष्या का उद्‌भव होता है। आकाक्षा यदि नहीं है, तो आप धनी हो। आकाक्षा है तो चक्रवर्ती भी निर्धन है, चाहे किसी की आराधना कर लेना, कितनी साधना कर लेना। आचार्य कार्तिकेय स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे लिख रहे है –

णयकोवि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुषदि उवयार ।
उवयार अवयार कम्म पि सुहासुह कुणदि।। ३१९।। (का प्रे)

हे जीव! तुझे कोई लक्ष्मी नही देता न तेरा कोई उपकार कर सकता है और न कोई तेरा अपकार। शुभ–कर्म ही उपकार करने वाला है और अशुभ–कर्म अपकार करने वाला है। परन्तु निमित्त आपको दिख जाते है कि इन्होने मेरे साथ ऐसा किया, इन्होने मेरे साथ बुरा किया। ध्यान रखो जिसे तुम बुरा कहते हो वह किसी का अच्छा करने वाला भी हो सकता है, जिसे तुम अपना अच्छा करने वाला कहते हो वह किसी का बुरा करने वाला भी हो सकता है। अब कैसे कहूँ कि यह अच्छा करने वाला है कि बुरा करने वाला है ? इतना ही तो समझना है।

भो चेतन आत्मा! जीव उपयोग–मयी है, लेकिन उपयोग का कर्ता तू ही है और उपयोग के फल का भोक्ता भी तू ही है। सिद्धान्त मे तुम्हारा स्वार्थ हो जाये तो पुण्य का परिणाम समझना। लेकिन सिद्धान्त किसी के स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए नही होता। आकाक्षाए होगी, तो कर्म–बध होगा। चाहे द्रव्य मिले चाहे न मिले। कभी–कभी बिना भोगे भी बन्ध होता है। मन कहता है कि उठा लू ? नही अपनी वस्तु नही है। अरे! सब ही तो उठा रहे है। यह भूल कभी भूल के मत कर देना। अमुक भैया ने किसी के कुरते को उठा लिया, तो उसका तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे भैया कहे कि जब इतने बडे भैयाजी कर सकते हैं, तो हमे क्या दोष ? ध्यान रखना पूर्व मे सुकृत किया था इसीलिये बडे हैं। जब उन्होने दूसरे का कुरता उठा लिया, इसीलिये बडे नही हैं। वह तो परम छोटे हो चुके है बध कर चुके है।

भो ज्ञानी! वह दृश्य कैसा होगा जब साक्षात् केवली–भगवान विराजते होगे ? उनके चरणो मे श्रावक बैठे होगे श्रमण बैठे होगे। उन जीवो का कितना शास्वत पुण्य होगा। अरे! आकाक्षा करो तो ऐसी करो जिससे फिर दूसरी आकाक्षा करने की आकाक्षा न हो। '**दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ सुगइगमण समाहि–मरण, जिण–गुण–सम्पति होउ मज्झ।**"

हे जिनदेव! आपके गुणो की सम्पदा मुझे प्राप्त हो जावे। बस, मेरी अन्तिम आकाक्षा यही है। भो ज्ञानी ! यह सुख और दुख कर्म के वश है। जब तक नि काक्षा नहीं बनेगी तब तक ग्लानि हटेगी

नहीं। अरे! इनसे साइकिल मागी थी, नहीं दी। ठीक है, वस्तु उनकी है, इच्छा उनकी थी, नहीं दिया तो क्या करें ? जबरदस्ती तो नहीं है। अरे! ऐसी काललब्धि थी कि वह मना करेगे ही। देखो, सयम की बात करे तो काललब्धि दिखने लगी। असयम की बात करे तो दुकान दिखने लगी। भो चेतन आत्मा ! स्वार्थ के लिये सिद्धान्त की बलि मत दे। पर्याय तो स्वार्थ है, पर पर्यायी को नरको मे बिलखना होगा। आज तुम ताम–झाम मे जी लो, लेकिने ध्यान रखना, जो जितना ऊँचे से कूदता है उतना नीचे जायेगा। जितनी विभूति और आकाक्षाओ से भरके तुम कूदोगे, उतने ही नीचे गहरे मे चले जाओगे।

भो ज्ञानी! मुमुक्षु जीव उस किसान के तुल्य होता है जो कि भोगने के पहले बीज को सुरक्षित रख देता है। ऐसे ही पुण्य को बचाके रखना और बीज को बोकर अब बाडी की व्यवस्था लगानी होगी। अन्यथा आकाक्षा के मृग तेरी बसी बगिया को उजाड देगे। गुणभद्रस्वामी लिख रहे है आत्मानुशासन ग्रन्थ मे–

आशागर्त प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य कि कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।। ३६।।

प्रत्येक प्राणी की आशा का गड्ढा इतना बडा है कि विश्व की सारी विभूति उसके गड्ढे मे अणु–प्रमाण दिखती है। अब बताओ सभी का गड्ढा इतना है कि वह भरा ही नहीं जा सकता है। एक ही तरीका है भरने का। भो ज्ञानी! छोड दो तो, नि काक्षित भाव भी आ जायगा। अब आपको लोक से ग्लानि होना बन्द हो जायेगी, फिर किसी से नही कहोगे यह ऐसा, वह वैसा। उल्टा मत पकड लेना। तुम इतने निर्मोही बनके रहो, अकर्ता बनके रहो। कोई आपको क्यो टोकेगा ? जब आप अपने आप मे रहोगे अपनी सीमा मे रहोगे। सागर इतना बडा क्यो ? क्योकि उसने अपनी सीमा को कभी भी नहीं लाघा। प्रज्ञाशील जीव अपनी सीमा से बाहर नही जाता। पैर भी बडे होगे तो सकुचित कर लेता है, पर दूसरे की चादर को खीचने का प्रयास नहीं करता। अत, इतना सीख के जाना कि दूसरे को उघाडने का विचार अपने मन मे मत लाना। वर्णीजी को देखे जिन्होने अपने वस्त्र दूसरो को उढा दिये और एक आप हो कि दूसरे को उघाड रहे हो।

भो मुमुक्षुओ! निर्विचिकित्सा–अग जिसके अन्तरग मे नहीं होगा, वह स्वय की समाधि भी नहीं कर पायेगा तथा दूसरे की समाधि मे भी कभी सहयोगी नही बन पायेगा। आगम कहता है कि सल्लेखना के काल मे ऐसे ही साधको को साथ रखा जाता है जो उपगूहन, स्थितिकरण, निर्विचिकित्सा और वात्सल्य अग के धारी हो। जिनके पास ये अग न हो, ऐसे व्यक्ति को कभी क्षपक के पास मत बिठाना, क्योकि वह तो छिद्रान्वेषी है। स्थिति देखेगा नही, परतु स्थिति का व्याख्यान करेगा। उसका व्याख्यान यदि क्षपक के कानो मे आ गया और परिणाम खराब हो गये, तो उसने

तो उसकी असमाधि करा दी। इसीलिए ध्यान रखना, धर्मात्माओ से, ग्लानि तो बहुत स्थूल है, पदार्थ मात्र के प्रति ग्लानि के भाव भी नहीं आना चाहिये, इसका नाम निर्विचिकित्सा है। अभी तक इतना ही तो पढा था कि मुनि के तन को देखकर मलिन शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना इसका नाम निर्विचिकित्सा अग है। परतु अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे है कि ससार के प्रत्येक द्रव्य को देखकर उसके स्वभाव को विचारना, और उसके स्वभाव को देखकर ग्लानि नही करना, इसका नाम निर्विचिकित्सा है।

भो ज्ञानी! बाहर का मल तो जल्दी झड जाता है, पर बाहर के मल को देखकर तू अन्दर मे मलिन हो गया तो उस मल को झाडना बडा कठिन हो जायेगा। पता नही कितनी पर्याये लग जाये। ध्यान रखना, आप अमृतचन्द्र स्वामी को सुन रहे है। यदि आचार्य भगवन्तो तीर्थंकरो की वाणी के अनुसार सारा राष्ट्र चलने लग जाए तो आपको किसी राजा की भी आवश्यकता नही। उनकी वाणी ने कह दिया कि किसी के प्रति ग्लानि मत करो।

हे मुमुक्षुओ! मृत पशु पडा हुआ है दुर्गन्ध छोड रहा है। आप दूर भाग रहे हो। यदि आप वहॉ पर थोडा रुक जाते, तो आपको जिनवाणी का चिन्तन करने मिल जाता। अहो! ससार की दशा इस हाथी पर कभी सवारी करते थे। उसे तुम प्यार से खिलाते–पिलाते थे। आज उसी को देखकर तुम दूर भाग रहे हो। हे ज्ञानी! जिस देहरूपी हाथी पर तू विराजा है उस हाथी की भी यही हालत होगी। चिन्ता मत करो कि तुझे भी देखकर लोग दूर भागेगे। इसको तो लोग कम से कम ऑखो से देख भी लेते है, पर मनुष्य के मुर्दे को तो बच्चे तक भी नही देखते है। कहते है कि भूत लग जावेगे। आज तक किसी ने नही कहा कि पशु मुर्दा पडा है कि भूत लग जायेगे। वहॉ से लोग बडे आराम से निकल जाते है। पर जहॉ मनुष्य का दाह–सस्कार होता है वहॉ सध्या हुई नही कि कहते है–बेटा! **उते न जइयो उते भूत आत हे**। अरे जिसने भूमिप्रदेश को भी भूत बना डाला, उस स्थान को जाने से रोकते हो। अब ग्लानि करो तो किससे करो ? करना ही है तो उन कार्यों से ग्लानि करो जिन कार्यो से चमडे मे आने को मिलता है। ऐसे कार्यो से ग्लानि कर लोगे तो फिर तुम्हे कही ग्लानि करने का मौका ही नही मिलेगा।

भो प्रज्ञात्माओ! ध्यान रखना ससार मे साता–असाता सबके साथ हैं चाहे मुनिराज हो चाहे श्रावक। असाता के उदय मार्ग भूल गये या भटक गये सो कहने लगे–वह धर्म अच्छा नही है जिसमे भूखे मरना पडता है। किसी ने पहली बार अनन्त–चतुर्दशी का उपवास कर लिया। अभ्यास नही था सो व्रतो को दोष देने लगे । यह व्रत का दोष नही, तुम्हारी सामर्थ्य का दोष है। रात्रि मे पानी नहीं पिया तो भी जी रहे कि नही ? पानी जीवन–धारण का निमित्त तो है, पर जीवन नही है। जीवन पानी से नही चलता जीवन तो आयु–कर्म से चलता है। आयु–कर्म को अवधारण करने के लिए

बाह्य द्रव्य भी आवश्यक होते हैं, लेकिन वह अनिवार्य नहीं होते। वह आवश्यक इतने हैं कि तुम दिन मे अपनी पूर्ति कर लो, पर रात्रि मे आप बिना पानी पिये जी सकते हो। यहाँ कह रहे हैं कि वीतराग–धर्म के परिणाम और चर्या को देखकर क्षुधा, प्यास, शीतोष्णता सहन करना पडे, फिर भी धर्म से ग्लानि मत कर देना। परिणामो मे मल आदि के प्रति भी नाक मत सिकोडना। दुर्गन्ध न फैले तो मल किस बात का? वह कम से कम अपने धर्म का तो पालन कर रहा है, पर आप अपने धर्म से भाग रहे हैं। माँ जिनवाणी कह रही है कि मल के टुकडे से तुम द्वेष मत करो ग्लानि मत करो।

हे मनीषियो! तुम इन भगवान–आत्मा पर कैसे द्वेष कर लेते हो? वह भी भगवान बनने वाला हैं। ध्यान रखना, सम्बन्ध कितने ही विलग हो जाये, पर रिश्ते टूटने वाले नही है। तुम्हारी ताकत नही कि इस पर्याय मे रिश्ता अलग कर पाओ। वह तब ही समाप्त होगा जब तुम्हारी पर्याय समाप्त होगी। पिता पिता होगा, मॉ मॉ होगी, गुरु गुरु होगा, शिष्य शिष्य होगा, क्योकि तुमने बनाया है। ऐसा नियोग था। सम्बन्ध विछिन्न हो जायेगा पर रिश्ते टूटने वाले नहीं है। तोडना चाहते हो तो, भो ज्ञानी! पर्याय छोडना पडेगी। पुरुषार्थ पर्याय मे है। पर्याय से हो रहा है, परन्तु करने वाली पर्याय नही है, पर्यायी है। अत नाना द्रव्यो को उनके स्वभाव की दृष्टि से देखना, परन्तु किसी को हीन–दृष्टि से मत देखना। हे ज्येष्ठो! तुम ज्येष्ठता की बात तो करना पर, कभी छोटो को मत छोड देना छोटे का अनादर मत कर देना। उसी ने आपको बडा बनाया है। इन माताओ से पूछ लो, कि बडा बनता कैसे है? पहले मूग की दाल से पूछ लेना। बेचारी को पानी मे डाला जाता है फिर सिलबट्टे पर पीस लिया, तब रोती है, पर मन मे आता है कि बडा' बनना है। शान्त हो जाती है। थोडी देर बाद फिर निकालकर पहले पानी छिडक दिया। उसमे नमक मिर्ची डाल दिये और ओह! कडाई मे डाल दिया। अभी भी शान्ति नही मिली, निकाल करके उसको खटाई मे डाल दिया और भो ज्ञानी! अब बना वह बडा, अब उसकी कीमत भी बढ गई। दोने मे आ गया प्याली मे आ गया कीमत बढ गई, पर उस बेचारी मूग की दाल से पूछ लेना कि बडे बने कैसे हो? इसलिए ध्यान रखो, बडे भैया से यह तो कह देना कि हमने आपको बडा बनाया, पर उसको परेशान भी मत करना कि हमने तुम्हे बडा बनाकर बिठाया है। भो ज्ञानी! इस ससार मे प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपनी अवस्था मे है, परन्तु मात्र आपको अपनी दृष्टि निर्मल करना है।

"पज्जय मूढा—परसमया"

लोके शास्त्राभासे समयाभासे च देवताभासे।
नित्य मपि तत्व रूचिना कर्त्तव्यम मूढ द्रष्टित्वम्।। २६।।

अन्वयार्थ — लोके = लोक मे। शास्त्राभासे = शास्त्राभाष मे। समयाभासे = धर्माभाष मे।च = और। देवता भासे = देवता भास मे। तत्वरूचिना = तत्वो मे रूचि रखने वाले सम्यग्दृष्टि पुरुष को। अमूढ द्रष्टित्वम् = मूर्खता रहित द्रष्टित्व अर्थात् श्रद्वान। कर्त्तव्यम् = करना चाहिये।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥२०॥

मनीषियो! वर्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन अमृतचन्द्र स्वामी ने सकेत दिया है कि भो ज्ञानी! ससार का प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव मे लीन है। पुद्गल कभी भी किसी दूसरे के भाव को प्राप्त नही होता कभी किसी से ग्लानि नही करता, किसी को हेय नही देखता है परन्तु जीव द्रव्य ऐसा है कि द्रव्य को देखकर के नाक सिकोड लेता है। जब भोजन की बेला होती है तो उसे राग बुद्धि से देखता है और जब उसी का परिणमन मल रूप हो जाता है तो द्वेषबुद्धि से देखने लगता है, जबकि द्रव्य जड था, न द्वेष करने योग्य था, न राग करने योग्य था। इस राग–द्वेष से बन्ध उस पुद्गल पिड को नही बल्कि आत्मद्रव्य को हुआ है। जबकि द्रव्य कहता है कि मै तो अपने आप मे तटस्थ हूँ। तूने मेरा उपभोग किया फिर भी मैने कुछ नही कहा मेरा परिणमन मल के रूप मे हो गया फिर भी मैने कुछ नही कहा, परन्तु खेद है कि तू मुझे देखकर बन्ध को प्राप्त हो रहा है।

भो ज्ञानी! जिनबिम्ब कुछ भी नही देता है पर एक ज्ञानी जीव जिनबिम्ब को देखकर के अनत कर्मो की निर्जरा करता जा रहा है और अज्ञानी बन्ध को प्राप्त हो रहा है। अहो! बन्ध तेरी दृष्टि मे था, निर्बन्ध भी तेरी दृष्टि मे था।

भो ज्ञानी! देखना दृष्टि को। एक जीव को वृक्ष मे फूल दिखते है किसी जीव को वृक्ष मे ईधन दिखता है। एक निर्ग्रंथ योगी को देखकर किसी को रत्नत्रय ध्यान आ रहा है, किसी को गुरु नजर आ रहे है किसी को प्रभु नजर आ रहे हैं। किंतु मिथ्यादृष्टि जीव को गुरु मे पाखण्ड दिखता है। पाखण्ड यानि ढोग। छल पर जिसकी दृष्टि हो उसे सत मे पाखण्ड ही पाखण्ड दिखेगा, उसे रत्नत्रय धर्म नही दिखेगा। एक तो वह निर्ग्रंथ के शरीर को ही देखता है शरीर को देखने से तुझे चर्म ही दिखेगा। कोई ठिगने दिखेगे कोई बडे दिखेगे, कोई सावले दिखेगे कोई गोरे दिखेगे। परन्तु

भगवन देवसेन स्वामी, योगीन्दु देव स्वामी, पूज्यपाद स्वामी, कुदकुद स्वामी यही कहेगे कि तेरी दृष्टि पर्यायो पर है। अहो! भगवान के लिए भगवान को देखना, भगवान की प्रतिमा को नहीं देखना। तुम गुरु को देखना पर गुरु के शरीर को नहीं देखना। मूर्ति को देखोगे तो तुम परसमय मे ही रहोगे, क्योकि सम्यक्दृष्टि जीव पर्याय मे पर्यायी को ढूढता है।

मनीषियो! जिनदेव से दुनियाँ मिलती है, पर वह किसी से नहीं मिलते, यही तो अरिहत का स्वरूप है। जिससे दुनियाँ मिले, पर जो दुनियाँ से कभी नही मिले यही सच्चे देव का स्वरूप है। यदि वे मिलने लग गये, समय देने लग गये तो वे हमारे भगवान बिल्कुल नही है। समय रागी देता है, समय द्वेषी देता है। वीतरागी किसी को समय नही देते वह तो समय मे लीन रहते हैं।

भो ज्ञानी! जिसे लोग भूषण कहते हैं, उसे शीलवती दूषण कहते हैं। जिनवाणी मे पढ लेना शरीर के सस्कार का नाम अब्रह्म है, जो शरीर को सजाए वह शील से दूषित है। जिसका स्वश्रगार नही है वह पर के श्रगार से जडा होता है। हे प्रभु आपके शासन मे जीने वाले सत शील से मडित होते हैं। मनीषियो! यह वसन आपने नहीं पहने, ये वसन तो वासनाओ ने पहने हैं। वासना उतर जाती है तो वस्त्र भी उतर जाते हैं। भईया! जिन्हे स्वय के तन की चिन्ता नही है, ऐसे वे धरती के देवता है।

भो चेतन! शरीर स्वभाव से तो अपवित्र जरूर है, लेकिन रत्नत्रय से पवित्र है। ऐसे रत्नत्रय से पवित्र शरीर को क्लान्त, रोगी, पीडित देखकर ग्लानि नही करना, उसका नाम निर्विचिकित्सा अग है। ध्यान रखना, धर्मात्मा कही भी दिख जाये उसको गले से लगा लेना। कह देना आप तो मेरे वीतराग धर्म को लेकर चलते हो और धर्म से मुझे वात्सल्य है। यदि किसी ने एक बार भी 'णमोकार मत्र' पढकर सुना दिया हो तो उसकी पीठ थपथपा देना, क्योकि आपने पचपरमेष्ठी के ध्यान मे मन, वचन, काय लगाया है। परन्तु धर्मात्मा से कह देना कि आप मेरे से माला और पूजा की अपेक्षा मत रखना। मेरा कर्त्तव्य आपकी उपासना करना है। परतु आपने मेरे ऊपर एहसान के लिए धर्म धारण नही कर रखा है, स्वय के कल्याण के लिए धारण किया है। हे धर्मात्मा! तुम्हारी परिणति ऐसी हो कि अधर्मी रूपी भौंरा बाहर जा रहा हो, और वह धर्म की सुगन्ध को देखकर सुभाषित सौरभ मे आकर के बैठ जाए, इसका नाम धर्मात्मा है।

अहो अव्रतियो! आप व्रतियो का आदर करते रहना, ताकि अव्रतियो के भी व्रती बनने के भाव बनते रहे। दोनो अपना काम करे तभी तो तीर्थंकर शासन कायम रहेगा। भगवान गौतमस्वामी ने जब तीर्थंकर वर्धमान स्वामी के प्रथम दर्शन किये तो पहले नमस्कार नही किया। उन्होने कहा—हे प्रभु! आपका शासन जयवन्त हो, परम जयवन्त हो। हे सवर्ज्ञ प्रभु!आपके शासन मे जीने वाला—सत, श्रावक, निर्ग्रंथ इतने अनुशासित हैं तो आपका अनुशासन कितना विशाल होगा। इसलिए हे प्रभु!

आपका शासन आत्मानुशासन है। आत्मानुशासन मे वही रह सकता है जो युक्तानुशासन को समझता है, जिसे आप लोग कहते हो जुगाड।

आचार्य जयसेन स्वामी समयसार' की टीका मे लिख रहे है–जुगाड लगाओ। अर्थात् जो नजदीक होता है उनसे जुगाड लगाते हैं। ऐसे ही मोक्षमार्ग के नेता, सर्वज्ञ प्रभु भगवान अरिहत देव तीर्थंकर है उनके बगल मे रहने वाले नेता आचार्य परमेष्ठी हैं। अत उनसे तुम जुगाड लगा लो। वह धीरे से कह देगे–सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी मोक्षमार्ग जुगाड का सूत्र है। यदि इस पर तुम चलोगे तो आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी फिर कहेगे कि सच्चा नेता वही होता है जो निन्दा भी सुन रहा है, गाली भी सुन रहा पर इधर–उधर कान ही नहीं ले जा रहा है। वह समझता है कि सुन लूँगा तो परिणाम खराब होगे, इसलिये किसी की सुनता ही नही है। तलवार भी चल जाये तो कुछ नही कहते, क्योकि उन्हे अपना राज्य दिख रहा है। जिसे सत्ता दिख रही हो वह छोटी–मोटी बाते नही देखता। जिसको आत्मा की शुद्ध–सत्ता दिखती है, वह ससार की सामान्य सत्ता को नही देखता, यही वस्तु तत्व है। जो सर्वज्ञ वाणी को सुनता है उसे वैसा ही दिखता है।

भो चेतन! किसी के दरवाजे पर भटकने की जरूरत नही है जो चाहोगे वह यही मिलेगा। इसलिए अमूढदृष्टि अग यही कह रहा है कि निज घर मे सब कुछ है। परन्तु अमूढता तभी आयेगी जब वीतराग मार्ग पर ग्लानि–भाव नही रहेगा। अन्यथा अमूढता आने वाली नही है, मूढता ही मूढता रहेगी। मूढता का शाब्दिक अर्थ मूर्खता, अल्पज्ञता अथवा प्रज्ञा की हीनता है बुद्धि की विकलता है। अत उससे दूर रहकर पहली प्रतिज्ञा तो यह है कि मै किसी पदार्थ को देखकर ग्लानि भाव को प्राप्त नही करूगा।

भो ज्ञानी! जीवन मे ध्यान रखना कि किसी जीव को हीन भावना मे नही डालना, क्योकि हीन भावना मे डालने से बडा कोई मीठा जहर नहीं। ऐसा व्यक्ति अन्दर ही अन्दर घुलता रहता है दु खित होता है सक्लेषित होता है। वह जितना सक्लेषित होगा, उसके उतने कर्मों का बध होगा और उसके निमित्त आप बध जाओगे। अत बिल्कुल दूर रहना जैसे कि (चूल्हे मे) रोटी अगर आग पर रख दोगे तो जल जायेगी। आग के पास नही ले जाओगे, तो कच्ची रह जायेगी। मॉ रोटी को उतने क्षण तक ही वहॉ ले जाती है जब तक कि वह सिक न जाए। ऐसे ही तुम पचपरमेष्ठी के सानिध्य मे ऐसे ही रहना जैसे चूल्हे मे रोटी। ज्यादा दूर रहोगे तो तत्त्व को समझ नही पाओगे। अग्नि का धर्म अग्नि जाने चूल्हे का धर्म चूल्हा जाने, परन्तु हमारा काम था हमने कर लिया। अपनी निर्बन्धता के लिए बस इतना ही सत समागम आगम होता है जितने मे परिणामो मे विशुद्धता होती है। अत ग्लानि नही करना राग नही करना द्वेष नही करना परन्तु अनुराग–वात्सल्य सर्वत्र रखना, यह निर्विचिकित्सा अग है।

भो ज्ञानी! मिथ्यात्व की गाठ बहुत कठोर है। सर्प की दाढ मे जहर रहता है, अत कठ की थैली को सपेरा निकाल लेता है, परन्तु आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशो मे मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत परिणामो की थैली पडी हुई है। इस मिथ्यात्व के कारण ही पचमकाल में ज़न्मे हो और (अब) छठवेकाल मे चले जाओगे उस काल में सम्यक्दर्शन प्राप्ति के निमित्त भी प्राप्त नही होगे। जिन बिम्बो के दर्शन, जाति–स्मरण, धर्मोपदेश यह मनुष्य जाति में सम्यक्त्व उत्पत्ति के हेतु है। ऐसा आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने "सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ" मे लिखा है। छठवे काल मे देव नहीं होगे, गुरु नही होगे, धर्म उपदेश नहीं होगे और एक मनुष्य दूसरे मनुष्यो को कच्चा चबायेगा। ऐसे छठवे काल की तैयारी की भावना मत रखना अभी भी अवसर है, साढे १८ हजार वर्ष मौजूद हैं, इतने काल मे जितना करना है कर लो। पचमकाल के अन्त तक धर्म–धर्मात्मा रहेगे। परतु छठवे काल मे कोई सम्बन्ध–रिश्ते नही होगे, सब तिर्यन्चो जैसा परिणमन होगा–यह सर्वज्ञ की देशना है।

भो प्रज्ञात्माओ! सर्वज्ञ की वाणी न झूठी होगी न हो रही है और न झूठी थी। जो ढाई हजार साल पहले खिरी थी, वह आज सामने दिख रही है। चक्रवर्ती के एव चन्द्रगुप्त के सोलह सपने आज स्पष्ट नजर आ रहे हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने आपके ज्ञान को नमस्कार किया है कि वह परम ज्योति केवल्य ज्योति जयवन्त हो, जिसमे सब झलक रहा है।

भो ज्ञानी! समय यानि आगम, समय यानि आत्मा, समय यानि शासन और समय यानि समय अत समय को देख लो तो स्वसमय को प्राप्त कर लोगे और समय को नही रोक पाये तो समय ठीक नही हो पायेगा। यह समय फिर मिलने वाला नहीं है वह समय चला गया तो समय भी चला जावेगा। अत निकल चलो अभी समय है अभी पचमकाल है जो छठवे काल की अपेक्षा बहुत सुहावना है। आज जगह–जगह धर्मात्मा, निर्ग्रंथ गुरु दिख रहे हैं, जिनवाणी दिख रही है। भगवान महावीर स्वामी का शासन आज भी जयवन्त है। मध्यकाल की अपेक्षा से तो आप पुण्य आत्मा हो, विशेष जीव हो क्योकि उन्हे गुरु भी नहीं मिले, लेकिन आज हर जगह अपने को अरिहत नही तो अरिहत मुद्रा तो दिख रही है, यही कलिकाल का चमत्कार है।

भो ज्ञानी! महान नीतिज्ञ आचार्य स्वामी सोमदेव–सूरि 'यशस्तिलक–चम्पू' महाकाव्य मे लिख रहे हैं–पचमकाल कलिकाल मे सबके चित्त चलायमान हैं और देह अन्न का कीडा बना हुआ है लेकिन फिर भी आश्चर्य है कि भगवान जिनेन्द्र के रूप को धारण करने वाले आज भी नजर आ रहे है, यही पचमकाल का चमत्कार है। देखो, सौभाग्यशाली समय को समझकर स्वर्ग चले जा रहे हैं और दुर्भाग्यशाली समय पर बैठकर आँखे बन्द करके नरक जा रहे है। भो ज्ञानी आत्माओ! अभी जिनवाणी मौजूद है, जब तक इस धरा पर अग्नि का वास है जब तब वीतराग–धर्म समाप्त होने वाला नहीं है।

भो ज्ञानी। दृढ सकल्प जिसके पास है, उसी के पास विश्व की सबसे बडी शक्ति है। ध्यान रखना दृढ सकल्प को कोई हिला नही सकता। जिसके मन मे अस्थिर विचार आ रहे हैं कि क्या मालूम, भगवान सही हैं या नही। पर हमे जरूर मालूम हैं कि तुम्हारा सम्यक्त्व निर्मल नही है, क्योकि ससार मे तुम डोल रहे हो। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं– जिसमे हिसा का कथन हो, अब्रह्म का कथन हो, हिसा मे धर्म लिखा हो, अनाचार को धर्म कहा हो, दया को पाप कहा हो, ऐसी वाणी को जिनवाणी मत कह देना। जिस जीव को शुद्ध दशा की प्राप्ति हो गई है उसके लिये शुभ भी छोडने योग्य है। पर जिसने शुभ पर दृष्टि ही नही डाली उसे पहले अशुभ छोडना जरूरी है। अन्यथा अशुभ करकरके निगोद मे चले जायेगे।

भो ज्ञानी। जैसा शास्त्र मे लिखा हो वैसा ही कहना और जितना सही समझ मे आ रहा है, उतना ही कहना। लोक मे देवत्व तो नही है देवताभास है गुरुत्व नही है गुरुभास है। जो ऐसा कहता है–ऐसे जीवो से आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि देव चार गति के होते हैं। अहो। वृक्ष और देहरी पूज रहे है कौन सा देवता है? दीपावली आ रही है तराजू पूजे, बाट पूजे, घिनोची पूजे लोटा पूजे, चक्की पूजे, चूल्हा पूजे, पता नही कौन–कौन से देव–देवी पूजेगे? ध्यान रखना बहुत पूज लिया अब तो परम देव को पूजो, जिससे तुम पूज्य बन जाओ। भो ज्ञानी। जिसकी निज तत्त्व मे रुचि है वह अमूढदृष्टि जीव है। निश्चय की दृष्टि से निज आत्मतत्त्व को जानना, अमूढदृष्टि भाव है। प्रपचो मे जाना मूर्खता का भाव है, इसलिए निज तत्वो को समझो।
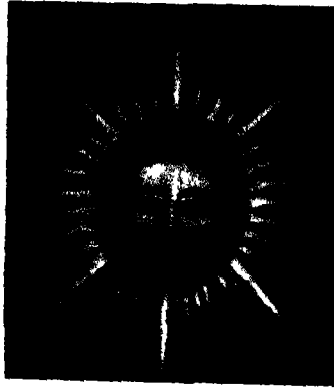
'उपगूहन अंग'

धर्मोऽभिवर्धनीय सदात्मनो मार्दवादिभावनया नया ।
परदोषनिगूहनमपि विधेयमुपबृहण गुणार्थम् ।।२७।।

अन्वयार्थ – उपबृहण गुणार्थम् = उपबृहण नामक गुण के अर्थ । मार्दवादिभावनया = मार्दव, क्षमा, सतोषादि भावनाओ के द्वारा। सदा = निरन्तर। आत्मनो धर्म = अपने आत्मा के धर्म अर्थात् शुद्ध स्वभाव को। अभिवर्धनीय = वृद्धिगत करना चाहिए और । पर दोषनिगूहनमपि = दूसरो के दोषो को गुप्त रखना भी विधेयम = कर्त्तव्य–कर्म है।

|| पुरुषार्थ देशना ||२१||

मनीषियो! भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना हम सभी सुन रहे है–आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने बहुत ही सहज सूत्र दिया है कि दृष्टि ही मूढ है, दृष्टि ही अमूढ है। द्रव्य न तो मूढ है न अमूढ है, द्रव्य द्रव्य है द्रव्य के प्रति प्रीति भाव का नाम मूढता है। द्रव्य यथातथ्य जैसा है वैसा ही भाव होना अमूढता का भाव है। पूज्य को पूज्य, आदरणीय को आदरणीय और परम पूज्य को परम पूज्य मानना यह निर्मल दृष्टि है। परन्तु सन्माननीय को पूज्यनीय पूज्यनीय को परम पूज्यनीय जहा तुमने प्रारभ किया वही मूढता का उद्भव हो जाता है। मनीषियो! पच परमेष्ठी मात्र परम पूज्य हैं शेष आपके सन्माननीय हो सकते है आदरणीय हो सकते हैं पूज्यनीय हो सकते हैं लेकिन देवाधिदेव की श्रेणी मे यदि आपने अन्य देवो को रख लिया, यही मूढता है।

भो ज्ञानी! भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक– इन चार निकाय के देवो को नही मानना भी मूढता है और इन देवो को, देवाधिदेव मानना भी मूढता है। देव–देव है देवाधिदेव–देवाधिदेव हैं। विद्यागुरु –विद्यागुरु है शिक्षागुरु–शिक्षागुरु है। जिन्होने मिथ्यात्व असयम का परित्याग किया है वे धर्म के गुरु है जिनके अनतानुबधी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान की सर्व घाती प्रकृतियो का उदयाभावी क्षय है। देशघाती सज्वलन प्रकृति का उदय है ऐसे समस्त मुनिराज हमारे लिए परम पूज्य है। ध्यान रखना कोई तुम्हारा उपकारी विशेष भी हो सकता है, और उसके प्रति विशेष बहुमान होता है। अत दीक्षा गुरु के प्रति उपकार भाव तो आयेगा लेकिन तीन कम नौ कोटि मुनिराजो के प्रति अनादर भाव भी नही आना चाहिये। यदि आता है तो वह तेरी अज्ञानता है।

भो ज्ञानी! लोग तत्त्व ज्ञानी तो बनते हैं पर तत्त्व की गहराई मे नही उतरते। तत्त्व की गहराईयाँ आ जाने पर तेरी दृष्टि मे सम्यक्त्व झलकता है। हमारी श्रमण सस्कृति मे गुण सम्पन्न

बालक भी पूजा जाता है और गुणहीन वृद्ध के प्रति माध्यस्थ भाव रहता है। उसके प्रति द्वेष भी नहीं है, परतु राग भी नही है। जिसके सयम मे शिथिलाचार है यदि ऐसे जीव को तुम बहुमान देते रहोगे तो उससे शिथिलाचार का ही पोषण होगा लेकिन यदि उसके प्रति द्वेष करोगे, तो तुम्हे कर्म का बध होगा। इसलिए हमारे आगम मे गम्भीर सूत्र प्रदान किये हैं कि प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव दीनो के प्रति करुणा भाव गुणियो के प्रति प्रमोद भाव और विपरीत वृत्ति वाले के प्रति माध्यस्थ भाव रखो। यही समता का भाव है।

भो ज्ञानी! अमूढदृष्टि को भाव को निश्चय–व्यवहार दोनो दृष्टि से समझो। हमारे आगम मे वदना के भी अतर दिये है। कोई ब्रह्मचारी अपने आप को नमोस्तु कहलवाने लग जाये यह आगम के विरुद्ध है। ऐलक–क्षुल्लक जी के लिए आगम मे इच्छामि' कहा है आर्यिका माताजी को वदामि कहा जाता है। पचपरमेष्ठी ही नमोस्तु' कहलाने के अधिकारी है। यदि इसके विपरीत बहुमान रखते हो तो जिनवाणी कहेगी यह तुम्हारा बहुमान नही अज्ञान भाव है। अहो! अभिवादन, बहुमान विनय करे, आशीर्वाद भी प्राप्त करे क्योकि आशीर्वाद की भी श्रेणी है। यदि कोई चाडाल नमस्कार करने आता है हिसक जीव नमस्कार करने आता है तो मुनिराज कहते है पापक्षयोस्तु –तेरे पापो का क्षय हो। आगम कह रहा है कि सभी को समान आशीर्वाद नही दिया जाता परतु दृष्टि असमान नही है कल्याण की भावना सबके प्रति है। यदि कोई सम्यक दृष्टि धर्मात्मा नमोस्तु कहता है तो योगी के श्री मुख से निकलता है– सदधर्मवृद्धिरस्तु –तेरे धर्म की और वृद्धि हो। जब कोई समकक्ष साधक नमस्कार करे जो रत्नत्रयधारी है तो समाधिरस्तु आपकी समाधि हो। मिथ्यादृष्टि धर्मात्मा है तो उसे दर्शन विशुद्धि भाव–तेरे दर्शन की विशुद्धि हो यानि तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ऐसा आशीर्वाद देगे। यह आगम की मर्यादा है।

भो ज्ञानी! शक्ति की बात को अभिव्यक्ति द्वारा कहना भी मिथ्यात्व है। अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु मेरी आत्मा मे विराजते है, इसीलिए मेरी आत्मा ही मेरा शरण है। यह निश्चय दृष्टि है और व्यवहार दृष्टि से प्रत्येक परमेष्ठी के लक्षण भिन्न है प्रत्येक परमेष्ठी का द्रव्य भिन्न है प्रत्येक परमेष्ठी के गुण भिन्न है और मूलगुण भी भिन्न है। यह परमेष्ठी का व्याख्यान है–परमेष्ठी को ही परमेष्ठी रूप समझना। आपके आगम मे चार देव हैं– देव, अदेव, कुदेव और देवाधिदेव। यह शीश इनमे मात्र देवाधिदेव को ही झुकता है शेष तीन को नही। अदेव' उसे कहते है जिसमे देवत्व की लोक मान्यता है–जैसे–कोई तिर्यच की आराधना कर रहा है, कोई वृक्ष की आराधना करता है और कोई पत्थर की आराधना कर उसमे धर्म मान रहा है, यह अदेव की आराधना है। जो वीतराग मार्ग से विपरीत है मिथ्यात्व मे सलग्न है और कुलिग धारण किये है वे कुदेव की श्रेणी मे है। जो चार निकाय के देव है वे सामान्यत देव है और जो सौ इन्द्रो से पूज्यनीय–वदनीय है, अठारह

दोषो से रहित हैं–वह सर्वज्ञ प्रभु 'देवाधिदेव' हैं। हम देवाधिदेव की ही वदना करते है, शेष सबका यथायोग्य सम्मान रखते हैं, पर अनादर किसी का नही है। मा जिनवाणी कह रहीं है– "बेटे तुम ध्यान रखो, आपका आगन बहुत हैं, वही तुम खेलो, दूसरे के आगन मे मत जाओ। जब मेरी मा का आगन सकुचित हो जायेगा तभी सोचूगा, लेकिन दुनिया मिथ्यात्व की आराधना कर रही है कि कुछ हो न जाये।

एक सज्जन आये बोले–महाराज! आपको जगह–जगह, सभी प्रकार के ऐसे स्थानो पर विहार करना होता है अत आपको कुछ सिद्धि रखना चाहिए। भो ज्ञानी! जिसने पचपरमेष्ठी के पद को ही प्राप्त कर लिया हो वही डरने लगे तो परमेष्ठी किस बात का? क्यो? 'णमो लोए सव्व साहूण' की आराधना करके मैं देवो को बुलाऊ? नही, मै तो देवाधिदेव की आराधना करुँगा देव तो अपने आप आयेगे।

भो ज्ञानी! जब तक निर्मल सम्यक्त्व तुम्हारे अदर मे नहीं गूजेगा अर्थात् रत्नत्रय नही है तो अपूज्य हो और रत्नत्रय है तो पूज्य हो। सुख–दुख रत्नत्रय के हेतु नही है यह पुण्य–पाप के हेतु है। पाप का विपाक है तो हजारो सैनिको के बीच शत्रु बदी बनाकर ले जायेगा। पाप के विपाक का उदय आया तो धर्म राज जैसे जीव की भी बुद्धि विपरीत हो गई थी। ध्यूत क्रीडा मे सब कुछ हार गये यहॉ तक कि नारी को भी दाव पर लगा दिया। यह कर्म की विचित्रता है। कहॉ गये थे देवी–देवता ? जब एक शीलवती के चीर को खीचा जा रहा था। देखो अमूढदृष्टि अग का पालक कहता है कि मै आराधना तो पचपरमेष्ठी की करुगा परमेष्ठी के प्रसाद से कोई मेरी सेवा करने आ जाये तो मुझे कोई एतराज भी नही। सीता ने देवो को आह्वान नही किया, पच परम–गुरु का आह्वान किया था। अहो! देखो ससार की दशा। जब पुण्य प्रबल होता है तो निमित्त भी ऐसे सामने होते है–केवली भगवान की आराधना करने जा रहे थे देव आकाशमार्ग से। सौधर्म देव एक देव को आज्ञा देता है कि आप जाओ, शीलवती सीता के शील की रक्षा करो। यदि आज यह उपसर्ग दूर नही किया तो लोगो की शील धर्म से आस्था उठ जायेगी। देख रहे थे राम लक्ष्मण! राम लक्ष्मण को तो ठीक है उन लव–कुश की लाल आखो को देख लो कि जिनकी मा अग्नि कुण्ड मे कूद रही हो उन लालो के हृदय से पूछना–बेटे! तुम कैसे देख रहे थे? पर धन्य हो उस मा को जिसने अपने बेटो का राग नही किया, परतु अपने पति को सत्य का परिचय दिया। यदि सीता इस उपसर्ग से मुख मोड लेती तो लोक का कलक जाने वाला नही था। अहो! एक नारी वह है जो दोनो कुलो को उज्ज्वल करने वाली होती है और एक नारी वह है जो दोनो कुलो को मलिन करने वाली होती है। यदि नारी की भावना निर्मल है तो दोनो कुलो मे शोभा है और नारी की भावना गिर गई तो दोनो कुल डूब गये।

भो ज्ञानी! जब अग्नि का नीर हुआ तो, जनक भी खुश थे कनक भी खुश थे, राम का पक्ष भी प्रसन्न था, अयोध्या मे भी जय–जय कार हो रही थी। परन्तु धन्य हो, हे सीते! आपने सम्यक्त्व को जयवत किया, इसके साथ–साथ जिन शासन को भी जयवत किया और नारी जाति को आपने निर्मल किया। नारी जाति का आपने बहुमान रखा। एक वह सूर्पनखा और मथरा भी नारी थी जिसने पूरी नारी जाति को ही बदनाम कर दिया। ऐसी एक धन–श्री भी थी जिसने काम की पीडा में आकर अपने पुत्र के ही दो टुकडे कर दिये थे। उनका कोई नाम नही लेता, परतु जब भी शीलवती के नाम मुख पर आयेगे तो सती 'सीता', मनोरमा' का नाम ही आयेगा।

भो ज्ञानी! यह व्यवहार दृष्टि मे चर्चा चल रही है। चूल्हा, चक्की, मूसल–उखरी ये कोई देव नही हैं। इस बात से भी मत घबराना कि यह हमारे कुल देवता हैं। आचार्य जिनसेन स्वामी ने महापुराण मे मिथ्यात्व छोडने की विधि का कथन करते हुए, इन देवताओ को सबोधित करते हुए लिखा है कि–बहुत अच्छा होगा आप भी मेरे साथ मिलकर अरिहत देव की आराधना करो। अब मै अरिहत की उपासना करूगा आज से आपको मानना बद करता हूँ । जब ऐसी दृढ आस्था तुम्हारे अदर होगी तो वे भी आकर के तुम्हारे चरण पकड लेगे। क्योकि सम्यक्दृष्टि जीव की देव भी पूजा किया करते है। यहॉ निश्चय दृष्टि कुछ और कहेगी कि हे जीव! नाना पर्याय तेरा धर्म नही है, नाना द्रव्यो मे लिप्त होना तेरा धर्म नही है, पर द्रव्यो को सभालना ही सबसे बडी मूढता है। अत जो परद्रव्य को परद्रव्य ही मानता है, स्व–द्रव्य को स्व–द्रव्य मानता है–वही सच्चा अमूढदृष्टि है क्योकि बहिरात्म–भाव ही मूढता है और अन्तर–आत्म भावना ही अमूढता है।

भो चैतन्य! यदि आत्मा पर करुणा है तो आप ऐसे काम मत करो जो कुल परपरा के विरुद्ध हो आगम विरुद्ध हो और सस्कृति विरुद्ध हो। यदि तुम मित्र हो तो अपने साथी का सहयोग भी कर देना कि भो मित्र! हम आपको ऐसे गलत कार्य को करते कैसे देख सकते हैं ? इसका नाम मित्रता है। जब पिता की अस्सी वर्ष की उम्र मे पुत्र सेवा करता है तब पिता–पुत्र की पहचान होती है। भो ज्ञानियो! ध्यान रखना सत की पहचान जब होती है जब उपसर्ग परिषह आलोचनाये हो रही हो, फिर भी अपनी समता मे जी रहा हो। इसीलिए हे मनीषियो! अपनी–अपनी पहचान कर लेना अपने को मत भूल जाना। ये सब पर्यायो के सबध झलक रहे हैं, झलकेगे क्योकि ससार है। इसीलिए जो अमूढ–दृष्टित्व को भी समझ लेता है वह दूसरो के दोषो और सम्मान के लिए ही अपना ही दोष, अपना ही सम्मान समझता है।

भो चेतन आत्मा! परम पुरुष वह होता है जो बोलते हुये मौन रहता है। अपने आपको तत्त्व मे स्थिर करने वाला श्रमण गमन करने पर भी गमन नही कर रहा देखने पर भी देख नही रहा, फिर भी सब कुछ कर रहा है यही स्वरूप लीनता है। यदि कदाचित् कुछ करना भी पडे तो कह

करके भूल जाता है, क्योंकि कहना पर्याय का धर्म था, सुनना पर्याय का धर्म था तथा निज मे ठहरना मेरा धर्म है। अरे! जो अपने को छोड के दूसरे के घर बैठ जाये, उसको व्याभिचारी कहते है। निज ध्यान को छोड कर अथवा निज द्रव्य को छोड कर जो पर के पीछे पडा है उसको समयसार 'व्यभिचारी' कहता है। इसीलिए सम्बध को स्वभाव मत बना लेना अन्यथा रोना ही रोना पडेगा क्योकि सम्बध विच्छेद होते हैं और स्वभाव विछिन्न होता नही है, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है।

भो ज्ञानी! जो पर्याय उपजती है, वह विनशती भी है। जो विनशती है वह किसी दूसरी पर्याय को भी प्राप्त होती है। इस सत्य को समझने वाला कभी नही रोता परन्तु जो रोता है वह असत्य मे जीने को सत्य मानकर रो रहा है। इसीलिये भैया जिसे तू वियोग कह रहा है वह भी सत्य है और जिसे सयोग कह रहा है वह भी सत्य है परन्तु जिसका वियोग--सयोग नही वह परम--सत्य है। यदि परम--सत्य को प्राप्त करना चाहते हो तो आज से हसना--रोना बद कर देना क्योंकि दोनो कषाय है। इसीलिये आपसे श्रमण सस्कृति कह रही है कि हसो मत रोओ मत मध्यस्थ रहो।

मनीषियो! ध्यान रखना कि पच--परम गुरु वीतराग शासन के प्रति कोई विपरीत कथन करेगा, मेरी सामर्थ्य होगी तो मै उससे कहूँगा ऐसा मत कहो! यदि सामर्थ्य नही है तो मै उसको सुनूँगा नही उठकर चला जाऊँगा। धर्म--धर्मात्मा की आलोचना सुनकर अपने जीवन मे गन्दगी नहीं भरना चाहता, क्योकि यदि खोटे सस्कार मेरी पर्याय मे भर दिये गये और वहाँ मेरी समाधि चल रही होगी तो वे शब्द मेरे अन्दर गूजने लगेगे तो मेरी समाधि भग हो जायेगी। जिनवाणी कह रही है उत्तम पुरुष वह होते है जो स्वय के कल्याण की चिता करते है, मध्यम पुरुष वह होते हैं जो शरीर की चिता मे डूबे है जो भोगो की चिता मे लिप्त है वे अधम है।

भो ज्ञानी आत्माओ! भगवान महावीर दुनियॉ को नही सुधार पाये तथा भगवान आदिनाथ अपने नाती को नही समझा पाये तो हम कौन से खेत की मूली है। सब जानते हैं फिर भी नही मान रहे, उनकी होनहार वह जाने हमे सक्लेष भाव नही करना। भगवान अमृतचद्र स्वामी कह रहे है उपगूहन का दूसरा नाम उपबृहण भी है, स्वय के गुणो को एव दूसरो के अवगुणो को ढँकना। दूसरो के गुणो को एव अपने अवगुणो को प्रकट करना इसका नाम उपबृहण अग है। आप यह विश्वास रखना, किसी की निदा करने से निदा होती नही है और किसी की प्रशसा करने से प्रशसा होती नहीं। यदि आपने समता से सहन कर लिया, तो असख्यात गुणी निर्जरा हो रही है। ध्यान रखो, यश भी यश कीर्ति से तथा अपयश भी अयश कीर्ति से मिलता है परन्तु निन्दा करने वाले बेचारे व्यर्थ मे कर्म का बध कर लेते हैं, उनकी हालत खराब ही है। कवियो ने तो लिख दिया है ' निन्दक नियरे राखिये, ऑगन कुटि छबाय'' अपने ऑगन मे कुटि बनवाकर समता से निन्दक को भी आप सम्मान दे दो।

"हो जा स्व में स्थित"

कामक्रोधमदादिषु चलयितुमुदितेषु वर्त्मनो न्यायात्।
श्रुतमात्मन परस्य च युक्त्या स्थितिकरणमपि कार्यम्।।२८।।

अन्वयार्थ कामक्रोधमदादिषु = काम क्रोध, मद लोभादि विकार। न्यायात वर्त्मन = न्यायमार्ग से अर्थात् धर्ममार्ग से। चलयितुम = विचलित करने के लिये। उदितेषु = प्रगट हुए हो तब। श्रुतम् = श्रुतानुसार। आत्मन परस्य च = अपनी और दूसरो की स्थितिकरणम्। अपि = स्थिरता भी। कार्यम् = करनी चाहिये।

।। पुरुषार्थ देशना ।। २ २।।

भो मनीषियो! तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने बहुत ही सुदर सूत्र दिया है कि "आत्म–गुणो का गोपन तथा पर के दोषो का गोपन अथवा आत्म–दोषो का प्रगटीकरण और पर के दोषो के गोपन का नाम ही उपगूहन है।' जिस जीव ने धर्म को समझा है वह व्यक्ति के पीछे धर्म का बलिदान नही करता। व्यक्ति की मृत्यु हो जायेगी और उसके दोष उसके साथ ही चले जायेगे, लेकिन व्यक्ति का नाम धर्म नही है। जिसने व्यक्ति को धर्म मान लिया है वह अभी धर्म से बहुत दूर है। फिर तो जब तक व्यक्ति रहेगा, धर्म रहेगा। जिस दिन व्यक्ति चला जायेगा तो धर्म भी चला जायेगा। इसलिये तीर्थंकर की देशना मे जो खिरा है वही धर्म का स्वरूप है। परमेष्ठी जो कह रहे है, वही धर्म का स्वरूप है। परमेष्ठी जो पालन कर रहे है वह धर्म है। परमेष्ठी का नाम धर्म नही है।

भो चेतन! तीर्थंकर मुनिराज दीक्षा के बाद मौन क्यो हो जाते हैं ? सबको गर्भ/जन्म से ही मालूम होता है कि बालक तीर्थंकर है। सबकी श्रद्धा जुडी होती है कि यह जो भी कुछ कहेगे सत्य कहेगे। लेकिन जब तक कैवल्य प्रगट नही होता तब तक पूर्ण सत्य का ज्ञान होता कहाँ है ? वे मुनिराज इसलिये मौन हो जाते है कि छद्मस्थ अवस्था मे मैने कुछ कह दिया तो लोग प्रमाणित मान लेगे और अभी मुझे पूर्ण कैवल्य का ज्ञान प्रगट हुआ नही है, मेरे पहले कोई केवली की वाणी है नही। तीर्थंकर भगवान गृहस्थ अवस्था मे गृहस्थी की बाते तो करते हैं लेकिन धर्म की बाते नही करते। जब प्रद्युम्न कुमार का मरण हुआ तब नेमीनाथ स्वामी से पूछा था। वे तीन ज्ञान के धारी थे बता भी सकते थे, लेकिन नही बताया। क्यो ? लोगो की भीड लगने लग जायेगी, लोग पूछना शुरू कर देगे।

भो ज्ञानी! आप उपगूहन की चर्चा कर रहे हो, आगे स्थितिकरण अग भी आयेगा कि, किसी से दोष क्यो हो जाता है। दोषी का दोष पहले मत देखो, दोष के कारण को देखो। अत अपनी सोच इतनी निर्मल बनाओ कि दोषी ने तो दोष कर लिया है यदि हम उसे न समझे और प्रचारित कर दिया तो हमने दोष पर और दोष कर दिया। अहो! जिसने दोष किया था, उसके पास अभी मौका था, वह सम्हल सकता था पर यदि दोषी को सम्हलने से पहले प्रचारित कर दिया, तो उसको आपने और निडर कर दिया। हे जीव! तू स्वार्थवश तो धर्मात्मा बन सकता है, परतु धर्म स्वार्थ का नही है। उपगूहन ही वह कर सकता है कि जिसने धर्म देखा है। वह तड़पता है कि कहीं यह बात प्रँकट हो गयी तो मेरे धर्म की हँसी होगी और जिसके अदर धर्म नही होता वह सोचता है कि मैं सही तो कह रहा हूँ आप लोग क्या समझोगे ?

भो ज्ञानी! एक छोटे बालक ने कहा—महाराज! वीतराग मार्ग ही सच्चा मार्ग है। एक युवा ने कहा—महाराज श्री! वीतराग मार्ग ही सच्चा मार्ग है। एक साधु ने कहा—वीतराग मार्ग ही सच्चा मार्ग है। इसमे असत्य कोई भी नही कह रहा है, पर तुम बालक की पर्याय को देखोगे तो सत्य को खो दोगे। वृद्ध की युवा की और साधु की पर्याय को देखोगे तो सत्य को खो दोगे ? वहाँ तुम यह देखो कि जिन—वचन है या नही। यदि जिन वचन है तो बालक के वचन भी उतने ही प्रमाणित है जितने साधु के वचन। यदि जिन—वचन नही हैं तो साधु के वचन भी अप्रमाणित है, क्योकि हमारे आगम मे लिखा है कि वचन की परीक्षा करो। वचन की परीक्षा आप कैसे करेगे ? तो प्रवचन से मिलान करो प्रवचन यानि जो प्रकष्ट वचन है वही जिनदेव के वचन हैं। उसी का नाम प्रवचन है। यदि जिनदेव के वचनो से इनके वंचन प्रमाणित होते है तो ये भी प्रवचन है। यदि आपके पुत्र से कोई भूल होती है तो समझदार पिता अपने पुत्र को एकात मे ले जाकर समझा देगे। यह नही कहते कि मेरे बेटे ने ऐसा कर डाला।

भो ज्ञानी! आचार्य परमेष्ठी के चरणो मे जिस शिष्य ने अपना सारा जीवन समर्पित किया है वे आचार्य परमेष्ठी शिष्यो के सम्पूर्ण दोषो को भी पी जाते है। यदि उन्होने गलती का व्याख्यान दूसरे शिष्यो से करना प्रारभ कर दिया, तो कल आप नही बचोगे, आपका सघ नही बचेगा धर्म नही बचेगा क्योकि प्रत्येक जीव के अदर एक कषाय बैठी है जिसका नाम अहकार है। अरे! जिसने आपको जीवन सौप दिया अपनी भूल को तुम्हारे चरणो मे निवेदित किया, आपने दूसरे से कह दिया। यदि उसका अहकार भडक गया तो तुम्हारे सघ पर उपसर्ग कर देगा, सयम छोड देगा। मालूम चला आपकी अल्प भूल का परिणाम सारी श्रमण—सस्कृति को भोगना पड रहा है।

भो चेतन! जो भी कदम बढाओ, जो भी मुख से बोलो इसके पहले ध्यान रख लेना कि मेरे बोलने का परिणाम भविष्य मे क्या हो सकता है। आप बोल कर चले जाओगे परतु भविष्य

आपको माफ नहीं कर सकेगा। कर्म छूट जायेगे, आप परमेश्वर बन जाओगे, परतु हे वर्द्धमान! आपने मारीचि की पर्याय मे जो बोला था, उसे मैं माफ नहीं कर पा रहा हूँ। यद्यपि आप भगवान हो, मैं आपको रोज नमस्कार करता हूँ , परतु प्रभु! आपकी अल्प हठ का परिणाम था कि आज तीन सौ त्रैसठ मत चल गये और अनेक जीव ससार मे भटक गये आप भले ही भगवान बन गये। एक क्षुल्लक भगवान जिनेद्र देव के शीश से छत्र को चुरा कर ले गया और जिनभक्त सेठजी के निवास मे जाकर छुप गया। सेठ जी ने देखा अरे! यह तो क्षुल्लक जी है। मै तो इनको चैत्यालय जी मे विराजमान करवाकर आया था। वह समझ गये, जरूर यह भेषी है। अगर इसके पास धर्म होता, तो यह ऐसा करता ही क्यो ? परतु मुझे विवेक से काम करना है। पहरेदारो से कहा–क्यो दौड रहे हो आप लोग ? सेठ जी! अपने जिनालय से छुल्लक जी ने छत्र चुराया है। अरे! एक धर्मात्मा को तुम चोर कहते हो यह छत्र तो मैने उठवाया था, आप लोगो को प्रायश्चित करना चाहिए। वे कहने लगे–धिक्कार हो! हमे हमने मैने एक धर्मात्मा को इतना बडा दोष लगा दिया। सारे के सारे पहरेदार लौट गये और चर्चा करने लगे– अरे! आज हम सभी से बडी भूल हो गयी। एक धर्मात्मा के प्रति हम लोगो ने भ्रम कर लिया, लेकिन वहॉ तो सेठजी ने सबको भगा दिया। अरे! उपगूहन यह नही कहता कि शिथिलाचार का पोषण करो उपगूहन कहता है कि धर्म की रक्षा करो। ध्यान रखना उपगूहन करके ही नही छोड देना आपके लिए आगे स्थितिकरण भी एक अग होता है। अत सेठजी ने एकात मे जाकर कहा– अरे भाई! तुझे छत्र ही चुराना था तो यह धर्मात्मा का भेष क्यो धारण किया ? वीतराग शासन को लजाने मे तुझे जरा भी सकोच नही होता। लोगो को क्षुल्लक–भेष पर अश्रद्धान हो जाएगा तेरी परिणति को देखकर लोग अनादर भाव से देखेगे परतु ध्यान रखना जन–सामान्य तो यही कहेगा कि अब धर्मात्मा ऐसे ही होते हैं।

भो चेतन! अपने घर को आग से बचाना चाहते हो तो पडोसी के घर की आग को बुझा देना। अत जैसी श्रद्धा–भक्ति अभी कर रहे हो ऐसी श्रद्धा–भक्ति इस धरा पर कोई भी सत आए उनकी करना, क्योकि अपने को धर्म देखना है, अपने को व्यक्ति नही देखना है। धन्य हो जिनभक्त सेठ, जिसने धर्म–भेषी को सत्य–भेषी बना दिया। क्षुल्लक ने सेठ के चरण पकड लिए। सेठ बोले– बात ऐसी है भेष को बदल दीजिये, आप चोर जरूर हो पर यह भेष चोर का नही है और मैं गृहस्थ हूँ , मै इस भेष से अपने पैर नही छुला सकता। यदि यही करना है तो भेष बदल लीजिये। इस भेष मे रहना है तो ध्यान रखो यह क्रिया तुम्हारी नही होगी, क्योकि यह वीतराग भेष है, पाप–प्रवृत्ति का भेष नही है। सेठजी की इतनी अगाध श्रद्धा देख क्षुल्लक जी कहने लगे– मुझे क्षमा करो और इतना बता दो कि वस्तु का यथार्थ स्वरूप क्या है?

भो ज्ञानी! वाणी मे वह ताकत होती है कि यथार्थ चोर श्रावक शिरोमणि बन गया।

प्रायश्चित ले लिया और भगवान जिनेंद्र बनने के लिए उसने सच्चा भेष स्वीकार कर लिया। पर ध्यान रखना, जिन–भक्त सेठ ने छुपाया था और आज के सेठ छपा रहे हैं। इतना अतर आ गया है। आज के धर्मात्मा ऐसे हो गये हैं कि पर्चे–पर–पर्चे छपाकर दे देते है कि हम सत्य को प्रकट कर रहे है। अरे! तुम क्या सत्य को प्रकट करोगे, तुमने सत्य को समझा ही नहीं। भो ज्ञानी! षटखण्डागम, समयसार जैसे ग्रथो का स्वाध्याय कर लिया, परतु श्रावकाचार के आठ मूल गुण को नही समझ सके। माँ जिनवाणी कहती है, कि जिसके पास सम्यक्दर्शन है, वही ज्ञानी जीव है, शेष सभी अज्ञानी हैं।

मनीषियो! आज कोई प्रश्न करने लगे कि देखो इतने सारे लोग प्रवचन–सभा मे जमीन पर बैठे हैं दो–चार अहकारी कुर्सियो पर बैठे है और तुमने जाकर के पर्चा छपा दिया। अरे! भो ज्ञानी! यह लिखने से पहले पूछ तो लेता कि वे क्यो बैठे थे कुर्सी पर ? इतनी तुम्हे फुर्सत नहीं मिली तुमने तो लिखवा के छपवा दिया। अहो! तुमने उस जीव की हॅसी नही की है तुमने तो वीतराग धर्म की हॅसी की है। अरे भैया! उम्र ही ऐसी है, स्वास्थ्य खराब है, बैठ नही सकते हैं तो क्या धर्म ही नही सुन सकते ? हमारी जिनवाणी मे स्पष्ट लिखा है तुम लेटकर भी सामायिक कर सकते हो लेकिन सामायिक करना, सामायिक नही छोड देना। कोई अस्वस्थ हो गया हो और सामायिक का समय है और वह आराम कर रहा है। आपने कहा कि हमारे यहाँ तो बैठकर सामायिक की जाती है। मालूम चला कि आपने बैठने के चक्कर मे मूलगुण ही छुडा दिया। इसलिए जितनी सामर्थ्य है उतना श्रद्धान करो किसी के कहने से पहले समझने की चेष्टा करो। भो चेतन! विद्वान कभी–कभी बडी विद्वत्ता का काम कर लेते है। एक ज्ञानी बाहर से व्यापार करके आया, उसके पास रत्न जवाहरात थे। कोई गाडी थी नही, वह बडा परेशान था कि यदि मैं यहा ठहरता हूँ, तो पता नहीं क्या हो जाए। अत उसने प्लेटफार्म का टिकिट नहीं लिया और पुलिस आयी– बाबूजी! क्यो घूम रहे हो टिकट कहाँ है ? बोले– है नही, तो थाने ले गये। अब रात्रि मे हमारी सुरक्षा तो हो जायेगी। तो जो ज्ञानी जीव होता है वह प्रज्ञा का उपयोग कहाँ और कैसे करना चाहिए, वहाँ करता है।

भो ज्ञानी! समन्तभद्र स्वामी ने उपगूहन की चर्चा मे बडा गहन सूत्र दिया है कि बाल और अशक्त लोगो से कही भी धर्म की हँसी हो रही हो तो उसे ढक देना, जिससे नमोस्तु शासन की छवि धूमिल न हो और फिर जाकर आप स्थितिकरण की बात करना। इसमे भी ध्यान रखना, उपगूहन तो करेगे पर अहकार को छोड करके। ऐसा नही कि बाते तो प्रकट कर दी और कह रहे हैं कि हमने तो ढकी थी, हमने बचा लिया था तुम्हें। इसीलिए कभी भी यह मत कहना कि हमने ऐसा किया। ठीक है, किया है, जैसे ही भूमि मे बीज डाल दिया, अब चुप रहो। जब फसल आयेगी तो नियम से फल मिलेगा, अभी हल्ला करने से कोई फायदा नहीं, क्योकि उपगूहन सम्यक्त्व का

अंग है। भो चेतन! उपगूहन पर का नही निज का ही धर्म है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि अपने चैतन्य गुणो को विभाव–भावो से गुप्त रखो यही तेरा उपगूहन अग है। अपने स्वभाव को विभावो से सुरक्षित रखो, यही तेरा वास्तविक उपगूहन अग है। ध्यान रखना, स्थितिकरण पहले स्वय का कर लेना फिर दूसरे का करना स्वय तो गिर रहे हो और दूसरे को उठा रहे हो, पता चला दोनो ही डूब गये।

भो मनीषियो! निज मे स्थित हो जाना और पर से हट जाना वही वास्तविक स्थितिकरण है। दूसरे को सम्हालने वाले करोडो है परतु स्वय को सॅम्हालने वाले करोडो मे से एक है। जब दूसरे के घर मे कुछ होता है तो बहुत समझदार होते है कि ऐसी होनहार थी। जब स्वय के घर मे कोई घटना घटती है तो समझदारी कहॉ चली जाती है ? रावण को सब समझा रहे थे अच्छा नही किया सीता का हरण कर लिया। अरे! उसने तो एक सीता का हरण किया एक पर दृष्टि डाली, परतु हे मन के रावणो! अपने मन से पूछ लो कि कितनी सीताओ के शील को भग कर चुके हो ? वहॉ तुम्हारी समझ कहॉ चली गयी थी ? वहा स्थितिकरण करने क्यो नही पहुॅचे थे ? आज यह समझ लेना कि जिनेद्र के शासन को मात्र क्रियाओ मे बाधकर मत रखना। जिनेद्र के धर्म को अतरग की परिणति का धर्म बनाकर चलना। यह जितना व्याख्यान चल रहा है क्या इसमे अध्यात्म नही है ? क्या इसमे सदाचार नही है ? क्या इसमे लोकाचार नही ? सब एकसाथ चल रहा है। क्या इसमे पूजा नही है ? व्यवहारिकता नही है ? जो सम्यक्त्व से मडित है उसी की तो पूजा है।

भो ज्ञानी! इसीलिए ध्यान से समझना वह पूजा नही करते उनका लडका पूजा नही करता। अरे! ऐसा कहकर तुमने पूजा करके भी पूजा खो दी, क्योकि तुम्हारे पास उपगूहन ही नही था स्थितिकरण ही नही था। अच्छा बताओ आप जिसके बारे मे चर्चा कर रहे हो, उसको समझाने कब गये थे ? बोले–हमे तो समय ही नही मिला। तब तुम्हे कहने का क्या अधिकार ? मैं तब मानता आपको धर्मात्मा जब किसी धर्मात्मा को पतित होते देखकर, तुम तुरत उठाने पहुॅच जाते। वह पतित हो रहा है उसके प्रचार मे तुम लगे हो। तुम्हारा कर्तव्य यह बनता है कि पहले प्रचार रोकना चाहिए था फिर आपको उनके पास जाना चाहिए था। ध्यान रखना, यह मत सोचना कि मै श्रावक हूॅ। गुरु किसके है, धर्मात्मा किसका है ? जब आपके गुरु है, आप उनके भक्त हो और कहीं आपको कमी नजर आ रही है तो भो ज्ञानी! अपने गुरु मे खोट तू देखता रहेगा ? एक पाषाण की प्रतिमा भी लाता है तो प्रतिष्ठा कराने के पहले प्रतिष्ठाचार्य से पूछ लेता है कि इसमे जो कमियॉ हो, वो अभी बता दो लेकिन भगवान बनने के बाद फिर कमी मत निकालना। यदि तुम्हे गुरु मे कमी दिखे तो दीक्षा लेने के पहले सब देख लो।

भो ज्ञानी! जब मेरी क्षुल्लक–दीक्षा हो गयी, तो एक विद्वान आये और एकात पाकर के

बोले– क्षुल्लक जी एक बात बताएँ, आप मान लोगे ? हमने कहा–यह तुम्हारी शर्त नही है। बताना तुम्हारी बात, मानना हमारी बात है। बोले– मेरी ऐसी भावना है कि इस सघ से दूसरे सघ मे चलो और व्यवस्था हम कराये देते हैं। आपको देख कर हमे ऐसा लगने लगता है कि हम तो आपको अमुक–अमुक सघ मे ले चले। हमने कहा– बहुत अच्छी बात है। लेकिन भैया! यह बताओ ऐसा क्यो करे ? बोले–वहाँ आपकी अच्छी प्रतिष्ठा बढेगी और अच्छे रहोगे। हमने कहा– भो ज्ञानी! यह प्रतिष्ठा के पीछे तू गुरु से छुडायेगा। अरे! प्रतिष्ठा के लिए मुनि नही बना जाता प्रतिष्ठा के लिए परमात्मा नहीं बना जाता। धर्मात्मा की तो स्वमेव प्रतिष्ठा हो जाती है। इसीलिए आप कहो, आचार्यश्री के पास भक्ति के लिए चलो, तो आचार्यश्री के चरणो मे मेरी भक्ति आज भी है, आगे भी रहेगी। वह भी हमारे गुरु हैं क्योकि निर्ग्रंथ हैं। यह ध्यान रखना ऐसी बाते कभी मत करना। ऐसे लोग ससार मे बहुत मिलेगे और वे ही बाद मे आयेंगे और तुम्हे नमोस्तु–इच्छामि नही करेगे। बोलेगे–हम जानते है तुम्हे एक गुरु को छोडकर दूसरे को गुरु बनाया है। भो ज्ञानी आत्माओ! दुनियाँ के कहने पर नही आना, जिनवाणी मे जो लिखा है उसे जानकर स्वय विवेक से काम करना। यह स्थितिकरण दूसरे के करने के पहले स्वय का भी करना भटकाने वाले तो अनन्त मिलेगे पर सभालने वाले बहूत कम मिलेगे। इसीलिए काम, क्रोध, मानादि कम करो ? स्वय के लिए तथा पर के लिये युक्तिपूर्वक स्थितिकरण भी करना चाहिये।

अबिका-सिंगनीकुप्पम्

दक्षिण आरकाट जिला

"धर्मी सो गौ बच्छ प्रीत कर"

अनवरतमहिसाया शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परम वात्सल्यमालम्ब्यम्।।२९।।

अन्वयार्थ – शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने = मोक्षसुखरूप सम्पदा के कारणभूत। धर्मे = धर्म मे। अहिसाया च = अहिसा मे और। सर्वेष्वपि = समस्त ही। सधर्मिषु = साधर्मीजनो मे। अनवरतम् = लगातार। परम = उत्कृष्ट। वात्सल्यम् = वात्सल्य व प्रीति को। आलम्ब्यम् =अवलम्बन करना चाहिये।

।। पुरुषार्थ देशना ।।२३।।

भो मनीषियो। हम अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने हमे अभूतपूर्व परमामृत सूत्र प्रदान किया है कि तुमने आज तक दूसरो को स्थिर किया है, लेकिन स्वय मे स्थिर नही हुए, यदि स्वय मे स्थिर हो गये होते तो कभी स्थिरता की बात करने की आवश्यकता नही थी। दूसरो को समझाने के लिए मै समझदार हुआ हूँ पडौसी के घर मे जब इष्ट का वियोग होता है तो हम सभी समझदार हो जाते है। जब स्वय के घर मे इष्ट का वियोग होता है तब वही समझ पलायन कर जाती है जो दूसरो को समझाने के समय आती है। उस समय समझ से कह देना कि हे समझ। जीवन की अतिम बेला मे जब मेरे ऊपर सकटो के पर्वत टूट रहे हो जब मेरी अतिम श्वास निकल रही हो उस दिन समझ चाहिये। अहो। उस दिन समझ आ जाए, तो विश्व मे तुमसे बडा समझदार नही।

मुमुक्षु इस अतिम दिन को कहता है कि यह मेरे जीवन का प्रथम दिन होगा कि जिस दिन मुझे वीतराग जिनेन्द्र का कीर्तन स्मरण करते हुए मेरी अतिम पलक झपकेगी। बस पलक झपकी नही कि पलक खुल गई। यह स्थितीकरण अग है स्थितिकरण किस–किसका करे ? स्वय का भी करे, पर का भी करे। पर जो व्यक्ति स्वय गिर रहा है, स्वय पतित है, स्वय दुर्बल है निर्बल है वह दूसरे को क्या अपने हस्त का आलबन देगा ?

भो ज्ञानी। यदि आप किसी को धर्म से जोडना चाहते हो तो ध्यान रखना, उसको भी विश्वास दिला देना कि मैं धर्म से जुडा हूँ। सर्वज्ञ के चरणो मे आप इसलिए नही झुकते हो कि प्रभु। आप विभूति सपन्न हो आपके यहा देव आते हैं, आपके समवशरण की विभूति है, बल्कि दृढ आस्था है। अमूढ दृष्टि अग मे आपको मालमू होगा कि वह विद्याधर, क्षुल्लक जी बन गये थे, उन्होने

तीर्थंकर का वेष भी बना के दिखा दिया था, लेकिन रानी रेवती तीर्थंकर को नमस्कार करने नही गई। परतु क्षुल्लक के वेष मे आए थे तो 'इच्छामि' जरूर कहा था। अहो बलभद्र आ गये रूद्र आ गये, ब्रह्मा आ गये, विष्णु आ गये, तीर्थंकर आ गये नमस्कार नहीं किया और क्षुल्लक आ गये तो नमस्कार कर लिया, क्योकि उसे मालमू था कि जिनेन्द्र की वाणी मे लिखा है कि पचम काल मे क्षुल्लक तो होते हैं, परतु तीर्थकर नहीं होते। तीर्थंकर चौबीस तो हो चुके, यह पच्चीसवे भगवान कहा से आ गये। अत रेवती रानी ने नमस्कार नही किया क्योकि दृढ श्रृद्धा थी।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् समतभद्र जैसी दृढ श्रृद्धा दृढ वात्सल्यता और दृढ स्थितिकरण किसी के पास नही था। वे कहते है–परमेश्वर वह होता है जो अविसवादी होता है और जिसका कोई विरोध नही होता। हे नाथ! जब मैने ऑख उठाकर देखा तो सपूर्ण ब्रह्माड मे मुझे कोई निर्दोष नही दिखा, निर्दोषपना तो आप मे ही झलका। हे प्रभु! प्रत्यक्ष–परोक्ष से अनुमान आदि से जब निहारा, तो भी आप निर्दोष छलके। इसीलिए समतभद्र आपके चरणो मे शीश झुकाता है। यहॉ किसे नमस्कार किया ? महावीर को नही क्योकि मुमुक्षु जीव नामो को नमस्कार नही करता है, वह भगवान को नमस्कार करता है। अज्ञानी जीव नामो मे रोते है विसवाद करते है और ज्ञानी जीव गुणो को देख कर नतमस्तक हो जाते है। वदे तद्गुण लब्धये ।

भो ज्ञानी! दूध से भरे गिलास को रखा था, छोटे से पोते ने आकर धक्का दे दिया। दूध का गिलास गिर गया। यहॉ सॅभालो अपने आप को फैलने वाला तो फैल ही गया, अब पुन दूध तो आने वाला नही है, पर पूत को क्यो पीटा ? पीटने से दूध भरने वाला नही है। परतु अज्ञानी दूध को भी फैला बैठा है और पूत को भी पीट सकता है। मॉ जिनवाणी कह रही है कि जीवन जीने की शैली सीखना है तो जिनेन्द्र–देव की देशना से स्थितिकरण अग को अदर मे प्रवेश करा दो। क्योकि धर्म यह कहता है कि किसी को पूजा करते वक्त गुस्सा आये तो उसे सॅभलवा देना। यहॉ स्थितिकरण यह है कि एक चिटक नही चढा पाया दीप के स्थान पर धूप चढा दिया और धूप मे जितनी गर्मी थी वह तो कम थी, लेकिन आपके क्रोध का

धुआ बढ गया। भो ज्ञानी! मॉ जिनवाणी कह रही है उस समय उस जीव को सॅभाल लो, यदि वास्तव मे दया है करूणा है तो गिरते हुए को उठा लेना इससे बडी अनुकपा नहीं और होगी। आप कैसे दयावान हो ? एक जीव भावो से गिर रहा है और आप देख रहे हो। मोक्षमार्ग कहता है कि लाखो वेदनाऍ, लाखो यातनाऍ सहन कर लेना लेकिन किसी जीव को दर्शन–ज्ञान–चारित्र से च्युत नही होने देना। हॉ, मै मानता हूँ, आपका अपमान भी हो सकता है, आपको गालियॉ भी सुनने मिल सकती है, लेकिन जिस व्यापारी को अर्थ से प्रयोजन होता है वह ग्राहको की गालियो पर ध्यान नही देता। ऐसे ही मुमुक्षु जीव भी अनादर मान,–सम्मान पर ध्यान नही देता है। अहो! व्यक्ति को देखने

वाला कभी भी धर्म नहीं कर पाएगा, क्योकि व्यक्ति मे नियम से राग–द्वेष होते हैं। यदि आप व्यक्ति देखोगे तो पहचान वालो को ही जय–जिनेद्र कर पाओगे, क्योकि तुम व्यक्ति देखते हो और धर्म देखोगे तो आपको हर व्यक्ति मे जय– जिनेद्र की दृष्टि दिखेगी। व्यक्ति देखोगे तो किसी– किसी को ही नमोस्तु–नमोस्तु करोगे और धर्म देखोगे तो तीन कम नौ कोडी मुनिराजो के चरणो मे शीश झुकेगा। मुमुक्षु , व्यक्ति को नहीं, धर्म को निहारता है। अहो! धर्मात्माओ! धर्म एहसान नहीं है, ध र्म तेरा स्वभाव है। धर्म को एहसान मानने लग जाओगे तो धर्मावलबियो से तुम सम्मान की भावना रखोगे कि मैंने आपके धर्म को चलाया है मैने आपके धर्म को प्रभावित किया है।

भो ज्ञानी! अरे! अपने आप का कल्याण करने के लिए धर्म स्वीकार किया जाता है न कि धर्म का कल्याण करने के लिए धर्म करे। हे वर्धमान! आपने जिनशासन को महान नही बनाया। दुनिया कुछ भी कहे, लेकिन वर्धमान से पूछोगे तो कह देगे कि हमने नमोस्तु शासन को महान नही बनाया, अपितु नमोस्तु शासन को स्वीकार कर लिया, तो हम भगवान बन गये।

अहो! श्रमण सस्कृति का जो आश्रय लेते है वह भगवान बन जाते है। यहा विवक्षा समझना व्यक्ति पर जोर देगे तो जिन शासन महावीर से अथवा आदिनाथ से प्रारभ हो जाएगा, जबकि जिनशासन सनातन शासन है। तीर्थंकर जिनशासन के प्रवर्त्तक नही प्रचारक होते है। उन्होने अनुकपा और वात्सल्य भाव से प्राणी मात्र को वीतराग धर्म की देशना दी है और स्वय मे स्थिर होकर स्थितिकरण किया है। मनीषियो! होलिका के दहन करने के पहले थोडा अदर मे झाक लेना अथवा दशहरा मैदान जाने से पहले स्वय के रावण से मिल लेना। प्रह्लाद होलिका का पुत्र नही, भाई का बेटा था। उसको लेकर पहुँच गई थी जलने के लिये पर जला नही सकी। लेकिन आज तक होलिका को जलाया जा रहा है। एक बेटे को जलाने वाले के लिए हमारी सस्कृति ने सहन नही किया आज तक उसको जलाते आ रही है। परतु ध्यान रखना जो अपने बेटे के टुकडे–टुकडे पेट मे ही कर रही है, उनकी होलियाँ कितनी जलेगी ? इसलिए पहले अपने हृदय से पूछ लेना कि मै कितना पवित्र हूँ? और सकल्पी हिसा मत करना।

यह स्थितिकरण की बात कर रहा हूँ। चाहे एक दिन का गर्भपात हो या नौ महीने का हो। जिनशासन कहता है पच इन्द्रिय जीव का ही घात किया है। भो ज्ञानी आत्माओ! आचार्य विराग सागर आचार्य विद्यासागर की माँ सोच लेती कि कौन पालन करेगा ? तो आज बुदेलखड और सारे देश मे श्रमणो की जो भीड दिख रही है उसे दिखाने कौन आता ? घर मे खाने को न हो तो उसके पुण्य पर छोड देना लेकिन एक भावी भगवान के टुकडे करने के विचार मन मे नही लाना, यदि स्थितिकरण समझ रहे हो तो।

भो चेतन! स्थितिकरण तेरे अदर का विषय है। जब रावण को जलाने दशहरा मैदान मे

जाओ, तो अपने मन से पूछ लेना तूने कितनी सुन्दरियो को निहारा है ? किसमे ताकत है, रावण मे आग लगाने की ? यदि रावण होता तो एक बात आपसे कहता कि हे मानवो! मैं अग्नि मे जलने से भयभीत नहीं हूँ, मुझे आप जला दो, लेकिन इतनी कृपा करना उन पवित्र हाथो से अग्नि लगवाना, जिसने कभी पर--नारी पर दृष्टिपात न किया हो। मन मे भी न किया हो, वचन से भी न किया हो और शरीर से भी न किया हो। ऐसे पवित्र पुत्र जो हो, तो मेरी यष्टि (देह) पर अग्नि लगवा देना। यदि दृष्टिपात किया है, तो भोली आत्मन्! मेरी दशा देख लो। मैं पैदा हुआ था मुनिसुव्रत के शासन मे मैंने पाप किया था मुनिसुव्रत के शासन मे और आज तक करोडो वर्ष बीत गये, पर जल रहा हूँ महावीर के शासन काल मे। अहो! इस शरीर की चिताएँ जल जाएँगी पर कलक की चिता जलाने वाला कोई विश्व मे आज तक नही हुआ। यह रावण नही जल रहा, वह तो तीर्थंकर बनेगा, रावण का कलक जल रहा है और तब तक जलेगा जब तक कोई दूसरा तीर्थंकर नही आ जाएगा, यह पचम काल की श्वासो तक जलता रहेगा।

भो चेतन! जलाना चाहते हो, ध्यान की अग्नि से कर्मो के समुदाय जलाओ। भो ज्ञानी! दोष पर्याय ने किया था क्रोध आपने। अहो! क्रोध की चर्चा आती है तो ऑखो के सामने वीतरागी मुनिराज द्वैपायन सामने खडे होकर सदेश देते हैं कि हे क्रोधी! तुझे भटकना ही होगा चाहे धर्म के पीछे क्रोध करना, चाहे कर्म के पीछे। क्योकि अग्नि चाहे चदन की चाहे बबूल की हो अथवा बेशरम की हो अग्नि का काम तो जलाना है। इसी प्रकार चाहे तुम पुत्र–पुत्रियो पर क्रोध करो चाहे तुम धर्म के नाम पर करो परतु सिद्धात कहेगा कि कर्म का बध तो निश्चित है। पडित दौलतराम जी ने लिखा ताहि सुनो भवि मन थिर आन । स्थिरचित्त हो करके सुनो, कि यदि क्रोध आ रहा हो लोभ आ रहा हो मान सता रहा हो और काम सता रहा हो तो उस समय अपने आपको अपने आप से आपने आप के लिए अपने आपके द्वारा अपने आप मे कुछ कह देना। बाहर कहने मे यदि शर्म लगे तो भो ज्ञानी! अपने अपको अपने आप मे ले जाना। अपने घर मे प्रेम से समझा देना कि यह उचित नही है।

भो ज्ञानी! जन्मता तू वासना की शैय्या पर ही है परतु ज्ञानी वो होता है, जो सल्लेखना के सस्तर पर आरूढ होकर परमेश्वर बन जाता है। इसलिए जीवन मे ध्यान रखना, यह प्रवचन आप आज के लिए नही सुन रहे हो। यह उस दिन के लिए सुन रहे हो जिस दिन यह ऑख तुम्हारी बद होगी, उसकी तैयारी कर लेना। भो चेतन्न! जब पथ भला है तो अत भला होता है। पथ भला नही है तो अत कभी भला नही हो सकता। प्रज्ञा से विवेक अनिवार्य है और विवेक के साथ युक्ति अनिवार्य है। जिसे आप लोग जुगाड कहते हो।

आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि जिनवाणी के सूत्रो से स्वय के लिए भी और दूसरे

के लिए भी स्थितिकरण करना चाहिये। उपगूहन तो आप लोगो ने कर लिया, लेकिन स्थितिकरण नहीं किया तो आपने पाप कर लिया, क्योकि उपगूहन तो शिथिलाचार का किया गया। पर आपने पुन स्थितिकरण नही किया तो आपने शिथिलाचार का ही पोषण कर दिया। अहो मुमुक्षु आत्माओ! जीवन मे यह भावना भाना कि हे नाथ! इन नैनो से कभी शिथिलाचार न देखूँ।

भो ज्ञानी! कोई जीव श्रृद्धा से डावाडोल हो रहा है तो आपका कर्तव्य बनता है कि वह श्रृद्धा नही खो देवे। कोई विपरीत ज्ञान मे जा रहा हो, तो उसे जिनवाणी पढने को कहे। सयम च्युत हो रहा हो तो कहना आप घबराओ नही, आपको तो बहुत बडी विभूति मिली है। यदि कोई साधक आपको विपरीत परिणमन करते दिख गया तो आप स्थितिकरण करना। पहुँच जाना एकात मे और सिर टेक कर तीव्र भक्ति प्रकट करना और कहना हे भगवान! आप धन्य हो। ऐसे कलिकाल मे लोग विषयो मे लिप्त है, लोग राग मे लिप्त है लोग परिग्रह मे लिप्त है। धन्य हो आपकी इस अवस्था को, कि आपने ऐसे काल मे वीतराग श्रमण के स्वरूप को स्वीकार किया है। हम तो आपके चरणो की धूल भी नही है। तुम्हारी मधुर प्रार्थना से उस शिथिलाचारी के अदर से शिथिलाचार का जहर जरूर निकल जाएगा। यही स्थितिकरण है। स्थितिकरण किया था वारिसेण महाराज ने मुनि पुष्पडाल का जो बारह साल तक कानी पत्नी की याद नही भूले थे। देखो क्या होता है ? वारिसेण महाराज के समक्ष बत्तीस दिव्य सुदरियॉ आकर खडी हो गई। नमोस्तु निवेदन करने लगी इधर मुनिराज पुष्पडाल देख रहे थे। पर वारिसेण महाराज ने अपनी माता से पुष्पडाल की कानी पत्नी को भी बुलाने हेतु कहा। महाराज वारिसेण बोले– हे पुष्पडाल यह बत्तीस रानियॉ खडी हुई है और एक तैतीसवी आपकी स्त्री खडी हुई है। इनमे स्वीकारो जो तुमको सुदर लगे।

अहो! धिक्कार हो मुझे, कि बारह वर्ष तक कानी का स्मरण किया। चलो स्वामिन! धिक्कार हो मेरी अशुद्ध वृत्ति को यह तो वमन करके चाटने की वृत्ति है। भो चेतन! हो गया खेल जो बारह वर्ष तक द्रव्यलिग मे जिया एक महूर्त मे भावलिग का उदय हो गया। यह स्थितिकरण है। मनीषियो! जैसे गाय अपने बछडे को दुलार करती है, चाटती है, ऐसे तुम भी, प्रेम वात्सल्य भाव बनाकर रखना। जीवन मिला है, अच्छे से जियो हिलमिल के जियो। बुद्धि तुच्छ है, उसे पथो मे मत बाटो कथो मे मत बाटो ग्रथो मे मत बाटो। कल्याण चाहते हो तो निर्ग्रंथ भगवतो की आराधना करो। भो ज्ञानी! ये जोडने का शासन है, तोडने का नही। मत कहो कि मैं बडा, यह छोटा। पता नही कौन सी पर्याय मे खडे मिलोगे, फिर नही पूछोगे कौन बडा ? कौन छोटा ? श्वान भी देव हो जाता है देव भी श्वान हो जाता है। इसलिए अहकार मत करो। वीतरागी शासन ही सत्य है।

'आत्म प्रभावना ही प्रभावना है'

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दान तपो जिन पूजा विद्यातिशयैश्च जिनधर्म ।।३०।।

अन्वयार्थ सततम् एव = निरतर ही। रत्नत्रय तेजसा =रत्नत्रय के तेज से। आत्मा = अपने आत्मा को। च = और। दानतपोजिनपूजा विद्यातिशयै = दान, तप जिनपूजन और विद्या के अतिशय से। अर्थात् इनकी वृध्दि करके। जिनधर्म = जिनधर्म को। प्रभावनीयो = प्रभावनायुक्त करना चाहिए।

|| पुरुषार्थ देशना ||२४||

मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी के माध्यम से हम महागगा का पान कर रहे हैं। उन्होने हमे सूत्र दिया है कि जीवन मे सब कुछ खो जाता है, फिर भी सब कुछ मिल सकता है जहाँ तेरा कोई नही होता वहा तेरे सब कुछ होते हैं, लेकिन सूखे सरोवर मे कभी हस नहीं बैठते सूखे वृक्ष पर कोई पक्षी आकर निवास नही करते। जिसके हृदय सरोवर का वात्सल्य नीर सूख गया है उसके पास धर्म रुपी हसो का वास नही हो पाता। धर्म वही है, जहा वात्सल्य भाव है। धर्म वही है जहाँ धर्मात्मा रूपी अनुराग है। जिसके अन्तरग मे अनुराग नही वात्सल्य भाव नही, वहा धर्म नहीं है। मनीषियो! धन–वैभव पुण्य का फल है ये विभूतियाँ ऊपरी चमक हैं परतु आत्मा के भोजन का यदि कोई द्रव्य है तो वात्सल्य और ज्ञान आराधना है।

भो ज्ञानी! आपकी पहचान अतिथि के आतिथ्य से होती है। अपने घर मे आप कितने अच्छे से रहते हो लेकिन अतिथि तुम्हारे व्यवहार का सही–सही प्रचार करेगा। ऐलाचार्य महाराज कुरुलकाव्य मे लिखते है–जिस घर, समाज एव देश मे अतिथि सत्कार नही है वह टेसू किसुक के पुष्प के समान है। जिसमे सुन्दरता तो बहुत होती है, लेकिन भौरे कभी नही मँडराते। पर जिसके अतरग मे वात्सल्य का पराग है सुगध है वहाँ तत्त्वज्ञानी धर्मात्मा, साधु–सत रूपी भौंरे अपने आप आते हैं। यह सुगध का प्रभाव है। अत मोक्षमार्ग सुन्दरता का नही, स्वभाव का है। जिसका स्वभाव सुवाषित होता है उसके बगल मे शेर भी बैठ जाता है, नाग भी आकर बैठ जाता है और नेवला भी बैठ जाता है, परन्तु जिसका स्वभाव कडक है, कडवा है एव परिणामो मे कलुषता भरी होती है उसे देखकर, आप तो मनुष्य हो, तिर्यंच भी मुँह फेर लेते हैं।

भो ज्ञानी! वात्सल्य की आँखो को देखकर श्वान भी पूँछ हिलाने लगता है और क्रूर आखो को देख कर वह भी भाग जाता है। घर मे वात्सल्य होगा तो एक रोटी के चार भाग भी हो सकते

हैं और वात्सल्य नही है तो चार रोटी का एक भाग नही हो सकता। जिसके घर मे चार चूल्हे होते हैं समझ लो उसके घर मे वात्सल्य की रोटी नही होती। वात्सल्य से परिपूर्ण घर मे चूल्हा एक होता है और आदमी चार होते है। इसी प्रकार तुम्हारे पास सम्पत्ति है और सन्मति नही है तो तुम श्रीमति को भी नही सँभाल पाओगे। धन्य हो उन सन्मति बर्द्धमान को जिनके सामने सिह और गाय एक ही घाट पर पानी पीते थे और आज तुम एक मच पर भी नही बैठ पाते हो।

भो ज्ञानी! मच्छर तो खून पीता है परन्तु जो परस्पर वात्सल्य भाव नष्ट कराता है समझ लेना वह मानव के रूप मे बडा मच्छर है, जो कि वात्सल्य के रक्त को चूस रहा है। तीर्थंकर के शरीर मे रक्त का रग दूध के समान होता है। इसी प्रकार जैसे ही कोई बालक मॉ के गर्भ मे आता है तो मॉ के आचल मे दूध भर जाता है। अहो! जिसका एक के प्रति वात्सल्य है और जिनका प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य भाव हो तो उसके (रक्त का रग) सर्वांग मे दूध भर जाता है।

भो ज्ञानी! वात्सल्य के धर्म से भरा हृदय चेहरे से समझ मे आ जाता है । जिन जीवो के अदर वात्सल्य भाव नही होता उनके चेहरे मे लालिमा दिखेगी और जिनके चेहरे पर अतरग मे वात्सल्य होता है उनके चेहरे मे आपको सफेदी नजर आयेगी। क्योकि जिनके हृदय मे करुणा प्रेम दया एव अनुराग होता है उनके शरीर मे श्वेत कणो की वृद्धि होती है। जिनके हृदय मे करुणा भाव नही टेशन हो रहा हो सिरदर्द हो रहा हो वहॉ वात्सल्य भाव कहॉ? घरो मे झगडा क्यो होता है? अरे सास! आप भी तो बहु बनकर आई थी। अब सास बन गई हो तो जैसा व्यवहार अपनी बेटी के साथ करती हो बहू भी तो किसी की बेटी है। आप भी उसे बेटी मान लो वह आपको मॉ कहने लगेगी और फिर देखो घर की क्या व्यवस्था बनती है? अरे! परिवार चलाना चाहते हो तो बहू और बेटी का भेद समाप्त कर दो।

भो ज्ञानी! आज धर्मात्मा से धर्मात्मा नही मिल रहा है। मेरा प्रश्न है आपसे, वे रोटियॉ किसकी खा रहे हैं? पानी किसका पी रहे है? पिता ने चौका लगाया बगल मे बेटे ने भी चौका लगा लिया, दोनो अपने आवास पर खडे हैं। उन दोनो के भाव देखो कि हमारे यहॉ आ जाते इनके यहॉ क्यो चले गये और मन मे कही भावना आई कि चलो पिताजी के यहॉ आहार दे आवे तो पिताजी घूर–घूर कर देखते है, बेटा भी घूर–घूर कर देखता है और आहार भी दे रहा है। ऐसी वर्गणाये जब भोजन मे मिल जाती हैं तो धर्मात्मा भी कहते है कि हम भी आपस मे नही मिलेगे। ध्यान रखना, आगम मे कितनी विधियाँ लिखी है–मन– शुद्धि, वचन–शुद्धि, काय–शुद्धि , परिणाम तुम्हारे निर्मल नहीं हो तो ग्रास देना तो दूर की बात तुम पैर भी मत छू लेना पैर मत दबा देना, क्योकि आपके शरीर की कलुषित वर्गणाएँ उनके शरीर मे प्रवेश होगी। यदि आपके परिणाम कुलषित हो रहे हैं तो कोई दूसरे के घर मे आहार देने भी मत जाना।

रयणसार ग्रथ मे लिखा है कि जैसे गर्भवती माँ एक–एक कदम सँभाल कर चलती है और भोजन भी सभलकर करती है कि मेरे उदरस्थ शिशु को कोई पीडा न हो जाये। आचार्य कुदकुद

देव कह रहे हैं–हे श्रावको! तुम उदरस्थ शिशु की माँ के तुल्य हो और पात्र तुम्हारे पुत्र हैं जैसे तुम उसे सम्हालते हो वैसे ही तुम इन्हे सम्हालो। अपने–अपने परिवार को कैसे सामन्जस्य बैठा कर चलाते हो, ऐसे आप पात्रो के साथ सामन्जस्य बिठाकर चलो। अहो मुमुक्षु आत्माओ! जिस माँ ने आपको जन्म दिया है, क्या–क्या सोचकर दिया था, कभी–कभी उस बुढिया माँ का भी ध्यान रख लिया करो। मनीषियो! यह प्रेम, स्नेह अथवा राग की बात नहीं की जा रही, यहाँ वात्सल्य की बात की जा रही है। वात्सल्य प्रेम नही है, स्नेह नही है राग नही है। प्रेम परस्पर मे होता है प्रेम बराबर वालो मे होता है। स्नेह छोटो से होता है, राग विशेषो से होता है, वात्सल्य धर्म–धर्मात्मा से होता है। यह धर्म का सबध विशेषो का सबध नही है यह रागी–भोगियो का नही, वीतरागियो का है। अत यह वात्सल्य पूर्ण है, क्योकि अपेक्षा से युक्त प्रेम वात्सल्य सज्ञा को प्राप्त नही होता, निरपेक्ष अनुराग ही वात्सल्य होता है। जैसा गाय को अपने बछड़े के प्रति वात्सल्य होता है, वैसा ही धर्मात्मा को धर्मात्मा से प्रेम होता है। कोई कहे मैं धर्म की प्रभावना करने आया हूँ, उससे कह देना कि पहले वात्सल्य से भर कर आओ, फिर प्रभावना करने आना।

अहो ज्ञानी! पति ने छन्द–व्याकरण वेद–पुराण आदि पढे, पत्नी ने पूछ लिया स्वामी! बताओ पाप का बाप क्या है ? ओह! मैने तो यह सीखा ही नही है। अरे स्वामी ! तो जाओ, पहले सीख कर आओ। सीखने गये और रास्ते मे गणिका के महल मे रुक गये। अरे! ये तो गणिका का महल है। इसमे ठहरूँगा तो पवित्रता भग हो जायेगी पर जैसे ही गणिका ने रुपयो की थैली दिखा दी, तो बोले–ठीक तो है अपन हवन करके शुद्ध हो जायेगे। बडा आश्चर्य है कि थैली दिखा दी तो सप्त व्यसनी भी शुद्ध हो जाता है। गणिका बोली– अरे! आप कहाँ परेशान होते हो? मै ही आपको भोजन बना दूँगी आप तो एक थैली और ले लो। बोले–ठीक तो है पुद्गल का परिणमन है बना देने दो। होते–होते बात यहाँ तक पहुच गई, वह गणिका पुन बोली– कि मै गणिका हूँ और आप विद्वान है, मेरे जीवन मे कब–कब ऐसा अवसर आना है। स्वामी! मेरे हाथ से ग्रास ले लो। बोले–यह नही हो सकता। गणिका से एक और थैली को पुन पाते ही उसने अपना मुख खोल दिया तो गणिका ने गाल पर एक चाँटा जड दिया। बोली– आप कहा बनारस जा रहे थे। पाप का बाप' पढने। मैने यही पढा दिया। लोभ' मे आकर के आपने गणिका के हाथ से मुख मे ग्रास ले लिया। अहो! जब तक लोभ पाप का बाप' नही पढा। तब तक आप पूरे आगम पुराण, शास्त्र पढ लेना, प्रलोभन मे आकर कुछ भी कर सकते है।

भो ज्ञानी! इसीलिए आचार्य उमा स्वामी ने ग्रथराज तत्वार्थ सूत्र' मे लिखा है कि क्रोध का त्याग करो, लोभ का त्याग करो! यदि कोई उपसर्ग भी आ जाये तो आप मृत्यु को महोत्सव के रूप मे देखना, तू घबराना नही मरण कर लेना, लेकिन असत्य के साथ मरण नही करना, प्राण चले जाये लेकिन अपने प्रण को नहीं छोडना।भो मनीषियो! पहले पाप का बाप' पढना चाहिए था। इसीप्रकार पहले तुम वात्सल्य पढ लोगे तो प्रभावना भी कर लोगे, जहाँ वात्सल्य होगा वहाँ भगवान भी आ जाते

हैं और भक्त भी आ जाते हैं। वात्सल्य मे जो शक्ति है वह ससार मे कही नही है। अहो! वात्सल्य की महिमा देखो–जड पत्थर–ईंट एक ही लाइन मे लगे हैं, भवन खडा हुआ है। इसलिए जीवन मे वात्सल्य पूर्ण सगठन ही सर्व शक्तिमान है, उसे खो मत देना। चींटियो को देखो जब वे चलती हैं तो पक्तिबद्ध चलती हैं कतार से चलती हैं। ऐसे ही तुम सब मिलकर चलोगे, तो लोग कहेगे कि यह धर्मात्मा का समूह जा रहा है, इनको निकल जाने दो। यही वात्सल्य है और वही प्रभावना का प्रभाव है। प्रभावना का अर्थ होता है–उद्योतन प्रकाशन प्रकाशित कर देना। जब चींटी अकेली थी तो समझ मे नही आ रही थी, और जब वे पक्ति मे आ गई तो उद्योतन हुआ ऐसे ही सगठन ही सबसे बडा उद्योतन है यही प्रभावना है।

भो ज्ञानी! एक नगर के पास से हम गुजर रहे थे किसान खेतो मे काम कर रहे थे उनका छोटा सा बालक हमे देखकर बोला–देखो जैनो के भगवान आ रहे है। अरे! उस बालक को मुनि मे भगवान दिख गये परतु जिनवाणी कह रही है हमे तो बालक मे भी भगवान दिख रहे है, क्योकि भगवान की पहचान भी वही कर सकता है जो भगवान बनने वाला हो, अघवान कभी भगवान को नही देख सकता। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं जो रत्नत्रय से शुष्क हैं वे क्या प्रभावना करेगे? गुड खाने वाला क्या दूसरो को गुड का परहेज करा पायेगा? इसलिए आत्मा को रत्नत्रय के तेज से प्रभावित करो, क्योकि प्रभावना का अर्थ ही प्रकाशन है। यदि दूसरो को धर्म से प्रभावित करना चाहते हो दूसरे के हृदय को तुम प्रभावित करना चाहते हो तो पहले ज्योति जला लेना। बुझे दीपक से कभी पदार्थ नही दिखता प्रचारक व्यक्ति से कभी धर्म की प्रभावना नही होती है। भगवान जिनेद्र के तीर्थ मे आज तक किसी को धर्म प्रचार के लिए कही नही भेजा गया। ससार के दर्शनो ने प्रचारक भेजे हैं, पर प्रचारक को तुम्हारी सस्था से कोई प्रयोजन नही, उसे मात्र प्रचार मे जो वेतन मिलेगा उस वेतन से प्रयोजन है। आपने विद्यालय से एक प्रचारक भेज दिया तुम्हारा विद्यालय टूट रहा है फूट रहा है उसे कोई प्रयोजन नही है उसे तो आपने एक हजार रुपए दिये हैं एक महिने तक प्रचार करना है। इसलिए जिन शासन मे प्रचारक नहीं होता प्रभावक होता है तथा प्रभावक वही होता है, जो धर्म से प्रभावित हो। अत प्रभावक धर्मात्मा होता हैं किन्तु प्रचारक धर्मात्मा भी हो सकता है नही भी हो सकता।

भो ज्ञानी! हम प्रचारक तो बन रहे है पर प्रभावक नही। ध्यान रखो प्रचारक का नाम तो किसी मदिर के पटिये पर हो सकता है पर प्रभावक का नाम तो सिद्धशिला पर ही होता है। इसलिए प्रचारक नही प्रभावक बनना। प्रचारक बाहर का होता है प्रभावक रत्नात्रय के तेज से मडित होता है। अत दान देना तपस्या करना, जिनेद्र की पूजा करना विद्या के साधन जुटाना भगवान जिनेद्र के शासन की प्रभावना करना–यह आपके सम्यक्त्व का अतिम आठवा अग है।

सम्यक् ज्ञान अधिकार
"आत्म साधना हेतु सम्यक् ज्ञान"

इत्याश्रितसम्यक्त्वै सम्यग्ज्ञान निरूप्य यत्नेन।
आम्नाययुक्तियोगै समुपास्य नित्यमात्महितै ।।३१।।

अन्वयार्थ – इति = इस प्रकार। आश्रितसम्यक्तवै = समयग्दर्शनको धारण करने वाले उन पुरूषको जो। नित्य आत्महितै = सदा आत्मा का हित चाहते हैं। आम्नाययुक्तियोगे = जिन र्धर्म की पद्धति और युक्तियो के द्वारा। यत्नेन निरूप्य = भले प्रकार विचार करके। सम्यग्ज्ञान समुपास्य = सम्यग्ज्ञान आदर के साथ प्राप्त करना चाहिए।

*

पृथगाराधनमिष्ट दर्शनसहभाविनोपि बोधस्य।
लक्षणभेदेन यतो नानात्व सभवत्यनयो ।।३२।।

अन्वयार्थ – दर्शनसहभाविन अपि = सम्यग्दर्शनका सहभावी होने पर भी। बोधस्य = सम्यग्ज्ञान का पृथगाराधन इष्ट = जुदा आराधन करना अर्थात् सम्यग्दर्शन से भिन्न प्राप्त करना इष्ट है। यत = क्योकि ।लक्षणभेदेन अनयो = सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मे लक्षण के भेद से। नानात्व सभवति = नानापन अर्थात भेद घटित होता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||२५||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने बहुत ही करुणा दृष्टि से कथन किया है। **जब तक तेरे अतरग मे वात्सल्य नही है, सहजता नही है, तब तक आपकी सत्यता भी जीव को कटुता के रूप मे महसूस होती है**। वात्सल्य की भाषा मे जहर के प्याले को भी जीव पीने को तैयार हो जाएगा परतु कटुता की भाषा मे अमृत का पान भी स्वीकार नही करना चाहता। बालक को भी मालूम है कि दूध पीने से पेट भरेगा परतु यदि बर्तन गरम है तो वह भी हाथ से छोड देगा। इसी प्रकार माँ जिनवाणी कहती है, भो मुमुक्षु! शीतल सहज होकर के भगवान की देशना करोगे तो उससे एक इन्द्रिय जीव पर भी प्रभाव पडेगा। क्योकि जहाँ सौभाग्य शालिनी स्त्रियॉ बगीचे मे प्रवेश कर जाऍ, वहॉ फूल खिलने लगते हैं और अशुद्ध अवस्था मे यदि स्त्री ने भोजन सामग्री को

देख भी लिया है तो, भो ज्ञानी! बडी–पापड भी बिगडने लगते है। एक इन्द्रिय जीव के पास करुणा नहीं है मन नहीं है, पर एक इन्द्रिय जीव के पास सवेदनाओ का अभाव भी नही है, वह भी खिल उठता है, प्रसन्न हो जाता है।

लकेश के पास कितना वैभव था? क्या उसके यहाँ सगीत नही होते थे, बाजे नही बजते थे , लेकिन प्रेम–सगीत नही था। जब राम जगल गये थे तो उनके साथ मात्र तीन थे, लेकिन अठारह अक्षौहणी सेना का अधिपति लकेश प्रभावना नही कर सका और मात्र तीन व्यक्ति जो जगल मे गये थे उनके पास वात्सल्य होने से बदर, भालू आदि वानर वशी आदि भी सेना मे शामिल हो गये। लका मे विजय कलुषता की नही, वात्सल्य की हुई थी। किसी को धुतकारा नही हर व्यक्ति को पुचकारा ही था सहज दृष्टि से ही देखा था तभी इतनी बडी प्रभावना हुई। अरे! बलभद्र तो हर काल मे हुये है लेकिन उन सब मे राम का नाम ही क्यो आता है? क्योकि मर्यादा के साथ चले थे उनके पास सहजता थी। रावण ने तो मदिर भी बनवाया था लेकिन आज कोई उल्लेख नही। मनीषियो! बहुत बडे–बडे मदिर भवन बनवा देने से प्रभाव नही रहता है अदर निज के भवन मे तुमने सबको स्थान दिया है ता आपका प्रभाव है। हमारी कषायो के बादल नही छटे तो माँ जिनवाणी कह रही है कि तू प्रभावना क्या करेगा? इसलिये सम्यक्त्व प्रगट करो, मात्र शास्त्र ज्ञान को सम्यक्ज्ञान मत कह देना। जिसमे हित की प्राप्ति हो अहित का परिहार हो वही ज्ञान सम्यकज्ञान है वह चाहे न्यून हो या अधिक। प्रभु! अल्प ज्ञानी होना कोई दिक्कत नही, लेकिन ज्ञानी होकर बहुमानी हो जाना अभिमानी हो जाना पाप कषाय है। अल्पज्ञान मोक्ष का कारण है क्योकि मोह रहित है जबकि मोही जीव का बहु–ज्ञान ससार का कारण है।

आचार्य कुदकुद स्वामी ने अष्ट–पाहुड मे लिखा है भो मुमुक्षु आत्माओ! मानव पर्याय का सार सम्यकज्ञान है। अज्ञानी अवस्था तिर्यच तुल्य होती है। अज्ञानता के सद्भाव मे व्यक्ति अपने आपको भी नही पहचान पाता है दर–दर अवहेलना होती है। देखो धनवान की पूजा अपने देश राज्य मे ही हो सकती है, पर विदवान की पूजा सर्वत्र होती है। यह विद्वत्ता! तभी हासिल होती है जब तुम्हारे पास विनय है। इसीलिए ज्ञानी तो बनना परतु ढक्कन के समान नही जो समय आने पर हट जाये अपितु बटलोई की तरी के समान स्थाई बनना। अत ज्ञान वही है जो हमारे लिए सकटो मे मित्र का काम करे, क्योकि निज ज्ञान का सहारा कभी छूट नही सकता। उपसर्गो–सकटो और परिषहो मे जब भी कोई काम आयेगा तो अदर का ज्ञान ही काम आयेगा। यदि अदर ज्ञान नही है तो न सयम काम आएगा न सम्यक्त्व क्योकि ज्ञान को दोनो के बीच मे रखा है। जो दीपक देहरी पर रखा हो वह अदर भी प्रकाश करता है बाहर भी प्रकाश करता है यही न्याय है। अत जो ज्ञान, दर्शन को विशुद्ध करता है तथा चारित्र को भी विशुद्ध करता है उसका नाम सम्यकज्ञान है।

भो ज्ञानी! जिस ज्ञान से निज के परिणमो मे निर्मलता बढे वही ज्ञान है और जो ज्ञान

अज्ञानता को बढा दे वह अज्ञान है। सावन का महीना, राखी के पर्व पर नाना–मामा के यहाँ से खिलौने–राखियॉ मिठाईयॉ न आने पर पुत्र ने कहा–हे जननी! मुझे बताओ मेरे नाना के यहॉ से कुछ क्यो नही आया? मॉ की ऑखो से आसू टपकने लगे। यह देख पुत्र बोला–मॉ! आपसे मैने इतना ही तो कहा है कि मेरे नाना के यहॉ से खिलौने क्यो नही आए? और आप रो रही हैं। मेरे लाल! जो तेरे पिता है, वही तेरे नाना हैं। बेटा! उल्लू को दिन मे नही दिखता कौओ को रात्रि मे नहीं दिखता, पर कामी पुरुष को दिन–रात दोनो मे ही नही दिखता। बेटा! जब मैं अपने पिता के भवन मे एक दिन श्रृगार कर रही थी तो उनकी कुदृष्टि पड गई। उन्होने मत्रियो से पूँछ लिया कि ससार मे सबसे सुदर वस्तु के उपयोग का अधिकार किसको है? मत्रियो ने कह दिया–स्वामिन्! आपका ही अधिकार है। उन्हे क्या मालूम था कि राजा छल–छिद्र से भरी बात कर रहा था। पश्चात राजा ने एक मुनिराज से भी पूँछा था। उन्होने कहा–राजन्! राष्ट्र मे जो सम्पत्ति होती है, उसका तो स्वामी राजा होता है लेकिन स्वय की बेटी, माता और मॉ जिनवाणी–जिनालय पर राजा का कोई अधिकार नही होता। पर राजा नही माना, जिसको कर्मो ने डस लिया है उसे जिनेन्द्र की देशना कहॉ सुहाती है? मनीषियो! नन्हा सा बालक मॉ के चरणो मे शीश टेक कर कहता है कि अब तो मै समता मॉ की गोद मे खेलकर निज आत्म–पिता की गोद मे ही बैठना चाहता हूँ। हे जननी! जिस पर्याय से पाप होते है मै उस पर्याय को ही नाश करके रहूँगा। ग्यारह वर्ष का वह बालक घर से निकला निर्ग्रथ वीतरागी गुरु के चरणो मे पहुँचकर निवेदन करता है कि हे प्रभु! ऐसा उपाय बताओ जिससे मेरी पर्याय का परिणमन समाप्त हो जाए। अब बालक कार्तिकेय नही, वह मुनिराज कार्तिकेय हो गये। कार्तिकेय मुनिराज ने अगाध ज्ञान का अर्जन किया और महान ग्रथ 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' का सृजन किया। जिसमे उन्होने अपने अदर की सम्पूर्ण भावनाओ को भर दिया।

भो चेतन! देख लो वह दृश्य भी कैसा होगा कि भगिन खडी–खडी देख रही है और उसके भाई मुनिराज के शरीर को वसूले से छिला जा रहा है। शरीर तो छील रहा है, यह तो नष्ट होगा ही परतु वेदक भाव किसी दूसरे का था वेदना देह मे थी वेदक भाव अदर का था अदर के वेदक भाव ने बाहर की वेदना का वेदन होने ही नही दिया। मुनिराज का चितन चल रहा है कि यदि ममत्व करूँगा तो बध जाऊँगा। बध्यते मुच्यते जीव जीव ममत्व से बधता–छूटता है। रक्त के फुब्बारे छूट पडे वह योगी समयसार मे लीन हो गया ज्ञान धारा मे लीन हो गया– अह मिक्को खलु सुद्धो' मै एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ परमाणु मात्र मेरा नही है मै तो ज्ञानमयी हूँ, जो छिल रहा है वह रूप छिल रहा है, और जो मै हूँ वह स्वरूप है। उस पर वसूला चल ही नही सकता है। अहो! कैसी समता होगी? परमाणु मात्र भी मेरा नही है–ऐसा अटल–श्रद्धान जिस मुमुक्षु का है, भो ज्ञानी! वही मोक्षमार्गी है। इसीलिए अमृतचद्र स्वामी कह रहे है, मनीषियो! ज्ञानी बन जाओ परतु बुद्धि के ज्ञानी नही क्योकि तर्को मे जिओगे तो अश्रद्धानी हो जाओगे। यह बुद्धि कैसी है जो दोषो की ओर जा रही हो सोचो जो जीव मल से मोती निकाल रहा है निश्चित ही वह कभी न

कभी भगवान बनेगा।

भो ज्ञानी! हमारे आगम मे मिथ्यादृष्टि को भी कुदृष्टि से नही देखा मिथ्यादृष्टि को कुदृष्टि नही लिखा, क्योकि दोष व्यक्ति का नही दोष दृष्टि का है। धन्य हो वह वीतरागी श्रमण–कार्तिकेय स्वामी जिन्होने कार्तिकेय अनुप्रेक्षा मे लिखा है कि सबधियो के द्वारा किया हुआ उपसर्ग सक्लेषता तो बढाता है परतु समता रखने पर उनके द्वारा प्रदत्त कष्ट से असख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है। अरे! कैसेट तो जड है और शब्द भी जड है पर शब्द शक्ति तुझे धन्य हो कि तू वीतरागता को प्रकट करा देती है। इसलिए भगवन अमृतचद्र स्वामी ने शब्द–ब्रह्म कहा है। दिगम्बर आम्नाय के दर्शन मे शब्द को ब्रह्म कहने वाले पहले आचार्य अमृतचद्र स्वामी हैं। क्योकि ब्रह्म की उत्पत्ति का कारण होने से शब्द–ब्रह्म कहा है आत्म–ब्रह्म तो आत्मा ही ब्रह्म है उस ब्रह्म का कोई माप ही नही है अनुपम है। अमृत के द्वारा विष को दूर किया जाता है लेकिन अमृत ही जहर का काम करेगा तो जहर किससे उतेरगा? मनीषियो! ध्यान रखना कभी अज्ञानता मत कर बैठना। वृक्ष मे जब फल आते है तो नीचे झुक जाता है ज्ञानी जब–ज्ञान से भरा होता है तो विनय से भर जाता है झुक जाता है परन्तु ज्ञानी ही अपने आपको अहकारी बना बैठे तो अज्ञानी बेचारा क्या करेगा? इसलिए जिनके पास विनय नही है ऋजुता नही है, उसे ज्ञानी कहकर ज्ञान की अवहेलना मत करना। अविनयी को ज्ञानी कहकर के तुम सम्यक ज्ञान की अविनय मत करना, वीतराग ज्ञान की अवहेलना मत करना, मध्यस्थ रहना पर द्वेष कभी मत करना। उसके अविनय का प्रचार भी मत करना। यदि कोई मार्ग से च्युत होता आपको लगे तो जाकर उसे सभालना चाहिए। इसलिए ऐसे अवसरो पर कही भी लोभ मत करना लोभ करना ही तो पाप है। लोभ करना है तो आयु कर्म से कर लो कि मेरी आयु क्षीण हो रही है तुरत पुण्य कर लो। भो ज्ञानी! विद्या का लोभ मत करना जितनी तुम्हारे पास है उतनी बाट दो। कम से कम तुम शुभ उपयोग मे तो लगाओगे अशुभ भाव से बचे तथा दूसरे को बचाने मे तो निमित्त बने ही परतु जितना भी समझाना समीचीन समझाना। मनीषियो! सस्कृत भाषा के धुरधर कवि आचार्य अमितगति स्वामी ने लिखा है यदि ज्ञान सयम शून्य है, तो वह गधे के ऊपर रखे चदन के समान होता है जो ढो रहा है परतु स्वय उपयोग नही कर पा रहा है।

भो ज्ञानी! उपदेश का भी ध्यान रखना। तत्व की चर्चा भी करना हो तो सभलकर करना। मिष्ट पकवान सूअर–गधे के सामने रख दो उसका तो मन नही रुचता रत्नो के हार मृग के गले मे लटका दो एक दौड लगायेगा टूट जाएगा अधे को दीप दिखाओ बहरे को गीत सुनाओ, कोई पागल हो तो सुना दो। इसी प्रकार मूर्खो को शास्त्रो की कथा सुनाओ, कोई उपकार नहीं होता है। इसलिये पडित दौलत राम जी ने लिखा ताहि सुनो भवि मन थिर आन भव्यो के लिये कहा है, अभव्यो के लिये नही। जिनकी भव्यता बिगड चुकी है वीतराग सर्वज्ञ की वाणी भी कुछ नही कर पाती। इसलिये मनीषियो! जितना तत्त्व उपदेश है भव्यो के लिये है, कितु अभव्यो के लिये नही है।

"कारण कार्य भाव"

सम्यग्ज्ञान कार्य सम्यक्त्व कारण वदन्ति जिना ।
ज्ञानाराधनमिष्ट सम्यक्त्वानन्तर तस्मात् ।।३३।।

अन्वयार्थ जिना = जिनेन्द्र देव। सम्यग्ज्ञान कार्य = सम्यग्ज्ञान को कार्य और। सम्यक्त्व कारण = सम्यक्त्व को कारण। वदन्ति = कहते है। तस्मात = इस कारण। सम्यक्त्वानन्तर= सम्यक्त्व के बाद ही। ज्ञानाराधनम इष्टम = ज्ञान की उपासना ठीक है।

कारणकार्यविधान समकाल जायमानयोरपि हि।
दीपप्रकाशयोरिव सम्यक्त्वज्ञानयो सुघटम् ।।३४।।

अन्वयार्थ हि = निश्चयकर। सम्यक्त्व ज्ञानयो = सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो के। समकाल जायमानयो अपि = एक ही काल मे उत्पन्न होने पर भी। दीपप्रकाशयो इव = दीप और प्रकाश के समान। कारणकार्यविधान = कारण और कार्य की विधि। सुघटम्= भले प्रकार घटित होती है।

|| पुरुषार्थ देशना ||२६||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे हम सब विराजते है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने सम्यकज्ञान की चर्चा करते हुए कहा कि जीव का लक्षण चेतना है। जिसमे चेतना है वही चैतन्य है वही चैतन्य भगवती–आत्मा है। 'भवम् ज्ञानम्' भव शब्द का अर्थ होता है ज्ञान। उस ज्ञान से युक्त जो है उसका नाम है भगवान। अब अपनी पहचान कर लेना आप क्या हो ? द्रव्यदृष्टि से जब देखते हैं तो निगोदिया मे भी भगवान है, मनुष्य भी भगवान हैं।

भो ज्ञानी! जब राग की तृष्णा और भोगो की लिप्सा मे मनुष्य पाप के पक मे फस जाता है। तब उस पक मे फसे मन को निकालने के लिए मन–हस्ती को ज्ञान का अकुश चाहिये। अहो! पाप तूने किया और उसे धोने भगवान आऐंगे ? यह कर्ता–दृष्टि भूल जाओ। लगता है कही न कहीं कर्तृत्व भाव से जुडे हो कि भगवान की कृपा होगी तो हो जाएगा। अहो ! वे परमेश्वर कर्मातीत हो चुके है। वे तुम्हारे पाप पक को धोने नहीं आएगे। उस पक को धोने का पानी तेरे पास ही है। अहो! कीचड को भी तो पानी ही चाहिये। आपने पाप किया है तो ज्ञान से किया है, बुद्धि पूर्वक

किया है, चित्त से किया है। अपनी पाप–परिणति को परमात्मा पर थोपना तो पाप है मायाचारी भी है। क्योकि जब काम बिगडने लगता है तो ईश्वर को बुला लेते हो और जब काम बनने लगता है तो सीना फुला के कहते हो कि हमने ऐसा किया।

भो ज्ञानी! मनुष्य से बडा कोई स्वार्थी जीव नही है। सभी जीवो से अपना काम निकाल लेता है। जब अपना नम्बर आता है तो कहता है कि मै तो भगवान–आत्मा हूँ मैं तो अकर्ता हूँ। शिष्य ने प्रश्न किया कि भगवन् शुद्धात्मा की प्राप्ति कैसे हो ? तब आचार्य कुदकुद महाराज ने कहा कि –

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा।
जह पण्णाए विभक्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो।। ३१८ समयसार।।

अहो! प्रज्ञा कितनी विशाल है आपने जिस प्रज्ञा से पाप किये है उसी प्रज्ञा से पाप का समाधान भी होगा। हाथी को निकालने के लिये हाथी ही चाहिये पडता है उसी तरह पाप से निकलने के लिये पुण्य ही चाहिये। पुण्य के लिये परिणामो की निर्मलता चाहिये। मनीषियो! ज्ञान तो ज्ञान है ज्ञान सम्यक नही होता है। दृष्टि सम्यक है, तो ज्ञान भी सम्यक है और यदि दृष्टि मिथ्या है तो ज्ञान भी मिथ्या है। वही ज्ञान मोक्ष मार्गी है वही ज्ञान नरक मार्गी है यह इस बात पर निर्भर करता है कि ज्ञान का उपयोग करने की तेरी शैली कैसी है ? एक जीव ज्ञान के द्वारा पाडवो को अग्नि मे जला रहा है। भो ज्ञानियो! कौरवो के पास क्षयोपशम नही होता, तो लाक्षागृह कैसे बना देते ? ज्ञान तो था पर उसे दूसरे को जलाने मे प्रयोग किया। ज्ञान तो दीपक के तुल्य होता है। अपने ज्ञान को प्रकाश का दीप बना लो परतु नाश का दीप नही बनाना। जब मोक्षमार्ग मे मिथ्यात्व का अधकार छाया हो तो ज्ञान का दीप जला देना।

भो ज्ञानी! जिसके जीवन मे पच परम गुरु के प्रति श्रद्धा हो, उनकी श्रद्धा को जलाने के लिये तुमने ज्ञान का असम्यक उपयोग कर दिया तो अग्नि से जो होता वह पानी से भी नही होता है। पानी मे यदि कोई व्यक्ति गिर भी जाए तो हड्डी पसली तो मिल जायेगी लेकिन अग्नि मे पडे व्यक्ति की केवल राख ही मिलेगी। इसलिये ज्ञानी तो बनना पर विवेक के साथ ज्ञान का उपयोग करना। अत आचार्य महाराज ने पहले सम्यक्त्व का कथन किया है कि यदि तेरा दर्शन निर्मल है तो ज्ञान का तू सही उपयोग कर सकेगा। दर्शन निर्मल नही है तो ज्ञान ससार का कारण ही बना रहेगा।

भो चेतन! मिथ्या ज्ञान की महिमा को देखो एक नही दो नही तीन सौ तिरेसठ मत चल गये। अत ज्ञान सम्यक नही ज्ञान मिथ्या नही, दृष्टि निर्मल करके चलना। दीप हाथ मे लेकर देखने के लिये चलते हो कि कही गड्ढे मे न गिर जाओ कही किसी जीव पर पैर न पड जाये,

परन्तु दीप लेकर भी जो मल मे गिर रहा हो, उसका दीप क्या करेगा ? भगवान आत्माओ! माँ जिनवाणी के अखण्ड दीप को लेकर तुम चल रहे हो और असयम के मल पर गिर रहे हो, तुम्हारा ज्ञान किस काम का है ? 'भगवती आराधना' मे आचार्य शिवकोटी महाराज ने लिखा है– दीप का उद्देश्य मात्र कुएँ से बचना होता है। अहो! मैं असयम से अपनी रक्षा नहीं कर पाया, कर्म–लुटेरो से अपनी रक्षा नही कर पाया, इसलिये एक दीप और जला लेना, परन्तु वह दीप तो चैतन्य के घृत का, चैतन्य की ज्योति मे और चैतन्य से ही जलेगा।

नम· समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्व भवान्तरच्छिडे ॥ १॥ (स सा टीका)

आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने समयसार की आत्मख्याति टीका मे लिखा है– उस चैतन्य–ज्योति को नमस्कार हो, जिसमे स्वानुभूति की ज्योति जल रही है। वह समयसार स्वानुभूति–स्वरूप अखण्ड–ज्योति मेरी आत्मा है। अत देख–देख कर चलो, निहार–निहार कर चलो, कही कषाय का कॉटा न लग जाये। यदि कॉंटा लग जायेगा तो कषाय का कॉंटा निकालने कोई अस्पताल नही है, एकमात्र जिनशासन अर्हत–वाणी, निर्ग्रंथ गुरु के आलबन के अलावा इस विश्व मे कषाय के कॉटे को निकालने वाला कोई नही है। ध्यान रखना कषाय का कॉटा निकलेगा भी तभी जब आत्मस्वरूप होकर समझेगा उसके प्रसन्न हुए बिना वह निकलने वाला भी नही है।

भो ज्ञानी! जिनवाणी मे कही नहीं लिखा कि अध्ययन का नाम ज्ञान है। अध्ययन का नाम ज्ञान होता, तो निगोदिया को ज्ञानी कैसे कहते ? यदि शास्त्रो मे ज्ञान है, तो अलमारियाँ ज्ञानी हो जाना चाहिये। यदि शास्त्र ज्ञान हो जाएँगे, तो हे जैनियो! आपको फिर जैन नहीं कह पायेगे। पदार्थ और प्रकाश वह ज्ञान नही है जो ज्ञान से जाने जाते हैं यह तो ज्ञेय है। पदार्थ से ज्ञान होता तो ध्यान रखना, यहॉ घट नही है, पर घट को आप जान रहे हैं, परन्तु ज्ञान के बिना घट के अभाव मे घट को नही जान पाओगे। ध्यान रखना, जिस व्यक्ति ने अपने दादा के दादा को नही देखा वह कहेगा कि मेरे दादा का दादा कोई है ही नही तो अनास्था आ जायेगी क्योकि सम्यक् ज्ञान का प्रकरण है और ज्ञान मे तो तर्क लगते ही हैं। ज्ञान का नाम ही तर्क बुद्धि है, अत ज्ञान को ज्ञान–दृष्टि से समझना, अज्ञान दृष्टि से मत समझना। यदि ज्ञान समझ मे आ गया तो सचमुच ज्ञानी बन जाओगे।

भो ज्ञानी! ज्ञान 'पदार्थ' नही है, ज्ञान 'प्रकाश' नही है। यदि प्रकाश से ज्ञान होता तो चमगादड–उल्लू को ज्ञान कैसे हो जाता है ? अहो! ज्ञान पदार्थ का धर्म नहीं, ज्ञान प्रकाश का धर्म नही, ज्ञान आत्मा का धर्म है। ज्ञान पदार्थ नही पदार्थ ज्ञान मे झलकते हैं, फिर भी पदार्थ ज्ञानरूप नही होता है और ज्ञान–पदार्थ रूप भी नही होता है। जब–जब मेरे सामने जो–जो पदार्थ

आएगा, उस समय मुझे वैसा दिखेगा। यह आत्मा की विशुद्धि का प्रभाव है कि दर्पण मे जैसा प्रतिबिम्ब झलकता है वैसे ही ज्ञान मे ज्ञेयरूप झलक रहा है लेकिन पदार्थ नही है। इसलिये ध्यान रखना, दूध मीठा भी नही होता है, दूध कडवा भी नही होता है, दुग्ध का धर्म माधुर्य होता है लेकिन पर की उपाधि लगा दी जाये, मिश्री डाल दी जाये तो मीठा हो गया और कडवी तुमडी मे रखा जाये तो कडवा हा गया। इसी प्रकार ज्ञान तो ज्ञान ही है। जैसे आपके रेलवे सिगनल मे कभी लाल कॉच जलता है तो कभी हरा कभी पीला किन्तु इस प्रकाश पर कॉच का आवरण है। नीला पीला, काँच के वर्ण के कारण दिखता है प्रकाश तो जैसा है वैसा ही है। ऐसे ही ज्ञान तो आत्मा का वस्तु– धर्म है। वही ज्ञान तुझे सिद्ध बना देता है और वही ज्ञान तुझे निगोद ले जाता है।

भो ज्ञानी! उपाधि के कारण ज्ञान भी बदनाम हो जाता है। जैसे आप बहुत सज्जन पुरुष हो लेकिन आपकी सतान ने कोई गलत काम कर दिया, तो आप सोचते हो– बेटा! तूने तो मेरी नाक काट दी लेकिन कुछ नही हुआ है, तुमने पर को अपना स्वीकार लिया। इसलिये ध्यान रखो जितने जुड के रहोगे उतने बदनाम होगे। यदि हटकर रहोगे तो तुम शुद्ध रहोगे निर्मल रहोगे विशुद्ध रहोगे। जहॉ कर्त्तव्य–भाव है वही बदनाम भाव है। जिसे लोक मे लोग अग्नि–देवता कहते है उसे भी लुहार के घन से पिटना पडता है, क्योकि कुधातु का सयोग किया है। भो मनीषियो! तुम्हे भी बदनामी सहन करना पडती है, क्योकि तुमने पुद्गल का सयोग किया है। योगेन्द्रदेव स्वामी ने परमात्म प्रकाश मे लिखा है कि घन की मार झेल रहा है वह अग्नि देवता, क्योकि कुध ाातु का सेवन किया। अहो! ज्ञानानुभूति से युक्त मेरे आत्मदेव! तुझे बदनाम होना पड रहा है क्योकि तूने अनादिकाल से मिथ्यात्व का सेवन किया है। इसलिये अपने ज्ञान का सम्यक उपयोग क्यो नही कर लेता। अपनी ज्ञान की धार को मिथ्यात्व मे नही ले जाना।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे है कि ज्ञान के क्षेत्र मे सतुष्ट नहीं होना सयम के क्षेत्र मे सतुष्ट नही होना। सतुष्ट तो कषाय मे हो जाना कि बहुत हो गई, पर ज्ञान के लिये हर समय बालक बनकर जीना और सयम के लिये हर समय बूढे बन जाना पता नही कब मृत्यु हो जाये। इसलिये उस ज्ञान का प्रयोग ज्ञानी बनकर ही करना क्योकि जब तक धैर्य सत्य और सयम का बाध बना है तब तक ज्ञान के नीर से चारित्र की फसल लहराती रहेगी। जिस दिन बाध टूट गया उस दिन वही ज्ञान तेरी फसल को उजाड देगा।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन यहॉ कारण और कार्य भाव की चर्चा कर रहे है कि सम्यक्त्व कारण है और ज्ञान कार्य। दीप किसी से नही कहता कि मेरे प्रकाश मे तुम देखो परतु ध्यान रखना अधेरे मे बिना दीप के कुछ दिखता भी नही है। नेत्र तो बडे–बडे है, कहॉ चली गयी ज्योति ? अहो! ज्योति मे कमी नही है दीपक की कमी खल रही है। दीप होता, तो मै शास्त्र पढ लेता। ज्ञान तो

तेरे अदर है, शास्त्र मे नही है। परतु ध्यान रखो, शास्त्रो के बिना, निमित्त के बिना सब कुछ होता तो अलमारी क्यो भर रहे हो ? कुछ योग–सयोग यही तो निमित्त है परतु उपादान की योग्यता आपकी ही है। अहो! निमित्त लेकर मत बैठ जाना। मात्र निमित्त को मानना वह भी मिथ्यात्व है, मात्र उपादान को मानना वह भी मिथ्यात्व है। योग्य निमित्त तो उपादान का ही होता है। इसलिये अमृतचद्र स्वामी की बात को आप बडे गौर से समझो। भगवान जिनेन्द्र कह रहे हैं कि यदि आप सर्वथा निमित्त को लॉघ दोगे, तो लोक व्यवस्था नहीं चलेगी

भो ज्ञानी! 'रयणसार ग्रथ' मे आचार्य कुदकुद स्वामी ने लिखा है–

मदिसुदणाण बलेण, दु सच्छद बोल्लदे जिणुदिट्ठ।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्गलग्गखो।। ३।।

जो जीव मति–श्रुत ज्ञान के बल से माँ जिनवाणी को स्वच्छदरूप से कहता है, अन्यथा कहता है तो वह मिथ्यादृष्टि है। जैनदर्शन मे मिथ्यादृष्टि से बडी कोई गाली नहीं है। इसलिये सम्यक्त्व के बाद ही ज्ञान की आराधना करना इष्ट है। दोनो एक ही काल मे उत्पन्न होते है, फिर भी कारण–कार्य विधान है। दीपक का होना, प्रकाश का आना और अन्धकार का भागना, कार्य तीन और समय एक। अत सम्यक्त्व होते ही अल्प–ज्ञान भी सम्यक हो जाता है और चरित्र भी सम्यक् हो जाता है।

खजुराहो– आदिनाथ मदिर

"अष्टांग सम्यक् ज्ञान"

कर्त्तव्योऽध्यवसाय सदनेकान्तात्मकेषु तत्त्वेषु।
सशयविपर्ययानध्यवसायविविक्तमात्मरूप तत्।। ३५।।

अन्वयार्थ – सदनेकान्तात्मकेषु = प्रशस्त अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक स्वभाव वाले। तत्त्वेषु = तत्वो या पदार्थों मे । अध्यवसाय = उद्यम करना। कर्तव्य = कर्तव्य है, और। तत् = वह सम्यग्ज्ञान सशयविपर्ययानध्यवसायविविक्तम् = सशय विपर्यय और विमोह रहित। आत्मरूप = आत्मा का निज स्वरूप है।

ग्रन्थार्थो भयपूर्ण काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिह्नव ज्ञानमाराध्यम्।। ३६।।

अन्वयार्थ – ग्रन्थार्थो भयपूर्ण = ग्रन्थ रूप (शब्द रूप) अर्थ रूप और उभय अर्थात् शब्द–अर्थरूप शुद्धता से परिपूर्ण। काले= काल मे अर्थात् अध्ययनकाल मे आराधने योग्य। विनयेन= मन वचन काय की शुद्धता स्वरूप विनय। च = और। सोपधान = धारणा युक्त। बहुमानेन समन्वितम् = अतिशय सम्मान कर अर्थात् देव, गुरु शास्त्र की बन्दना नमस्कारादि सहित तथा। अनिह्नव = विद्यागुरु की गोपना से रहित। ज्ञानम आराध्यम् = ज्ञान आराधना करने योग्य है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।२७।।

भो ज्ञानियो! अतिम तीर्थेश भगवान वर्द्धमान स्वामी की पावन देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने अनुपम सूत्र दिया कि ज्ञानी जीव आत्मा की आत्म शक्ति का निर्मल उपयोग करता है और अज्ञानी जीव इस ज्ञान शक्ति का दुरुपयोग करता है। अत सम्यकदृष्टि ज्ञानी है और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। सयमी ज्ञानी है, असयमी अज्ञानी है। अहो! जब कोई परिणाम विनय से भरे होते हैं, श्रद्धा से भरे होते हैं तो अज्ञानी भी ज्ञानी कहलाने लगता है क्योकि जो ज्ञान है वही प्रमाण नही है बल्कि जो सम्यक्त्व सहित ज्ञान है वही प्रमाण है। यदि हम ज्ञान को ही प्रमाण कहे तो लोक मे जितने ज्ञान है वह सभी प्रमाण हो जाएगे। अत हमारे आगम मे सम्यक् अपेक्षा ही अनेकात है सम्यक अपेक्षा ही सम्यकज्ञान है परन्तु अपेक्षा मात्र सम्यक–ज्ञान नहीं है। क्योकि मिथ्यादृष्टि भी कहता है कि मैं अपनी अपेक्षा से सत्य हूँ, लेकिन फिर भी जिनवाणी

कहेगी तू असत्य है। एकात को मानने वाला जीव भी कहता है कि मैं भी अपनी अपेक्षा से सत्य हूँ। भो ज्ञानी! जितने वचनवाद होते हैं उतने नय होते हैं।

ज्ञान प्रमाणमात्यादे रुपायो न्यास इष्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो, युक्तितोऽर्थ परिग्रह ।। लघीय.का । ५२।

ज्ञाता के अभिप्राय को जिनवाणी मे नय कहा है। यदि वह अभिप्राय सम्यक हैं तो सम्यक् नय है और असम्यक् है तो असम्यक् नय है, लेकिन जो नय अपेक्षा से शून्य होता है वह मिथ्या होता है और जो नय सम्यक् अपेक्षा से युक्त होता है वह सुनय होता है। यह सुनय ही सुनय करा सकता है, कुनय कभी सुनय नही करा सकता। मनीषियो! अभिप्राय निर्मल है तो आप सर्वत्र सम्यक् को खोज लोगे और अभिप्राय निर्मल नही है तो समीचीनता मे भी दोष नजर आता है। अहो! ससार की बडी विडम्बना है, उपकार भी करना तो नीति सीख के ही करना, क्योकि उपकार से बडा कोई धर्म नहीं है, परतु उपकार भी समझकर ही करना। एक बार बिल्ली को देख चूहा तडपने लगा तो राजहस ने करुणावश फैला दिये अपने पख, कि लो बेटा! तुम छुप जाओ, तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। जिसके परिणाम हस जैसे होते हैं, वह धवल होता है, शुभ्र होता हैं, क्योकि उसके परिणामो मे विकार नही होता परिणामो मे निर्मलता होती है। अत हस पक्षी ने अपने पख फैला लिए और चूहे को छिपा लिया पर चूहे ने पखो मे बैठे–बैठे अपने दॉतो का काम शुरु कर दिया। कुछ क्षण के उपरात बहेलिया (शिकारी) आया तो हस कहता है "हे मूषक! तेरा शत्रु तो जा चुका , अब मेरा शत्रु सामने आ रहा है अब आप मेरे पखो से बाहर निकल जाओ, मुझे उडान भरना है। चूहा आवाज सुनते ही फुदककर निकल गया, क्योकि वह तो स्वार्थी था। इधर जैसे ही हस ने उडान भरी कि पख नीचे टपक गए और बहेलिये ने बाण मार दिया। अहो! हस तू तो हस था पर नही समझ सका था उस काले चूहे की करतूत को।

भो ज्ञानी! ससार मे नाना जीव है जो पखो मे छिपे होते है और अदर ही अदर वह दाँतो से काटते रहते है। जीवन मे ध्यान रखना, साधु पुरुष अपने उपकारी के उपकार को कभी नही भूलता, परतु असाधु जन अपने कार्य की पूर्ति होते ही उपकारी को भी वही अवस्था दिखाते हैं जो चूहे ने हस को दिखायी है। अहो! सब कुछ चला जाए परतु उपकारी के उपकार को नही छोड देना।

भो ज्ञानी! सकट–विपदाओ को दुख मत मानो, उपहार मानो। ज्ञानी जीव सकटो के क्षणो को अपने जीवन निर्माण करने का उपहार मानता है, क्योकि जिन्होने कुछ सहन किया है, उन्होने प्राप्त किया है। जो काटो मे खिला होता है उसे साहित्य मे पुष्पराज कहा जाता है, इसीलिए सकटो के समय मे कभी घबराना नही, आपत्ति के दिनो मे ही तुम्हारी परीक्षा होती है। वे जीव बहुत ही

क्षीण पुण्यात्मा है जो विषमता के दिनो मे फॉसी लगाकर चले जाते हैं। अहो! तू इस पर्याय मे सहन नही कर पा रहा है तो तूने पर्याय का नाश कर लिया, परतु पाप का नाश तो नहीं किया, लोक अपवाद के पीछे तू फॉसी लगा बैठा। ऋण न देना पडे तो फॉंसी लगा ली। भो ज्ञानी! यह किसने कह दिया कि तू बच गया। अरे! इस पर्याय मे नही, तो अगली पर्याय मे तो तुमको ऋण चुकाना ही पडेगा। ध्यान रखना, राजपुत्री रघुवश की पुत्रवधू कुलबती सीता के ऊपर इतना बडा कलक थोपा गया लेकिन फिर भी समझदार थी। भो आत्मघाती! तुमने कभी यह विचार नही किया कि जीवन मे आप तो चले जाओगे उस परिवार की फिर क्या दशा होती है, कितना पाप का बध आपको होगा?

भो ज्ञानी! जिस समय राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले मे सॉंप डाला था और सेठानी ने निकाला था लेकिन धन्य हो वीतरागी मुनि को उन्होने दोनो को समान आशीष दिया। यह देखकर उस समय श्रेणिक को बहुत पश्चाताप हुआ। अत तलवार की ओर उसकी दृष्टि जाती है कि अब तो मै अपना सिर ही निकाल दूँगा तभी इस पाप का प्रायश्चित होगा। तब उन अवधिज्ञानी मुनिराज ने उस समय कहा था—हे राजन! क्या सोच रहे हो, रक्त से भीगे वस्त्र को आप रक्त से ही साफ करना चाहते हो। एक महापाप तो सत के गले मे साप डालकर किया अब तुम अपना गला निकालकर उसे साफ करना चाहते हो। अहो! अब तुम उस पाप को छुपाने के लिए नही, मुह छिपाने के लिए गला निकालना चाहते हो। राजन! ऐसा कर्म मत करो। अहो श्रेणिको! जीवन मे प्रतिज्ञा कर लेना कि कभी ऐसे भाव नही लाऊँ कि मैं मर जाऊँ।

भो ज्ञानी! जरा सी तकलीफ हुयी तो यह कभी मत कहना कि हे भगवान मेरी समाधि हो जाए साधक के मन मे कभी ऐसे परिणाम नहीं आते वह आत्म घात कर भी नही सकता, क्योकि धर्म से जुडा है। मॉ जिनवाणी कह रही है कि हे लाल। ऐसी युवा अवस्था मे तुम समाधि की भावना भा रहे हो, इसका तात्पर्य है कि तुमको सयम भार स्वरुप लग रहा है। स्वर्ग मे चले भी जाओगे तो असयम मे बैठकर क्या करोगे ? देवागनाओ के साथ रमण करोगे। अरे! जितना काल सयम मे बीते वह श्रेष्ठ है। एक योगी को आगम कह रहा है कि भावना तो यह होनी चाहिए कि समाधि सहित मरण हो, पर भावना यह नही होनी चाहिए कि आज समाधि हो जाए। जीवन की इच्छा, मरण की इच्छा, मित्रानुराग सुखानुबध निदान यह पॉच अतिचार सल्लेखना व्रत के हैं। बारह वर्ष उत्कृष्ट समाधि का काल है। जगत मे कुछ लोग मरते नहीं है, पर धमकियॉ दे—देकर सामने वाले को जरूर मार देते हैं कि सुनो! हम तेल डाल रहे है, हम चले जाएँगे। अहो! ज्ञानी आत्मा कहाँ जाएगी ? तीन लोक के बाहर तो जा नही सकती, त्रस नाली के बाहर आपको यदि निगोद अवस्था पसद है, तो जाओ। इसलिए यदि जाना ही है तो सिद्धालय जाओ।

भो ज्ञानी! कभी–कभी सबको मार्ग बताने वाले भी मार्ग भटक जाते हैं, यहीं कर्म की विचित्रता है, इसमें आश्चर्य मत करना। देखो, सध्या बेला मे भूखे–प्यासे राजा को, एक वृद्ध ने अपनी झोपडी में स्थान देकर एक गिलास पानी और एक फल दे दिया। प्रातकाल राजा चला जाता है पर परिचय नहीं दिया महापुरुष अपना परिचय देते भी कब हैं। दूसरे दिन उस वृद्ध के यहा सदेश आ गया कि आपको राजा ने सभा मे बुलाया है। वह घबरा गया, थर–थर कॉंप रहा था। राजा ने कहा–''आपने मेरे प्राणो की रक्षा की, एक गिलास पानी पिलाया, आपने बहुत बडा उपकार किया था अत आपको राजभवन मे आवास दिया गया। कालातर मे दादा जी के भाव बदल गये। सम्राट के एकलौते पुत्र को लुभाकर घर ले गया और जितने भी वस्त्र–आभूषण थे सब उतार लिए। बेटे को भी छिपा दिया। हलचल मच गयी, राजकुमार कहॉ गया? खोजी–दलो ने तो खोज ही लिया। जब राजा के समाने उस व्यक्ति को खडा किया गया तो राजा क्या कहता है– यद्यपि यह व्यक्ति दण्ड का अधिकारी तो बहुत ज्यादा है, लेकिन मै इसे मारूँगा नही, क्योकि इसने एक बार मुझ पर उपकार किया था।' अहो! एक गिलास पानी पिलाने वाले का इतना आदर रखा गया है। अरे! जिस मॉ ने तुम्हे पानी नही, ऑचल का दूध पिलाया हो, उस माँ का तू कितना उपकार मान रहा है। उन मॉ–पिता को तूने अलग कर दिया। एक अक्षर देने वाला गुरु, जिसने जिनवाणी का सार तुझे दिया और वह गुरु को भूल जाए, तो उससे बडा पापी कोई इस दुनियॉ मे है ही नही। इसलिए कगूरो को मत निहारते रहना नीव की ईंट देखना। भो ज्ञानी! ज्ञान यही कहता है कि किसी जीव के उपकार को मत भूल जाना अन्यथा तुम्हारा ज्ञान, अज्ञान है। अत ज्ञानी तो बने, पर ज्ञान का भी लोभ न करे।

भो ज्ञानी! जैसे धन के लोभी की समाधि नही होती है ऐसे ही ज्ञान के लोभी की भी निर्मल समाधि नही होती। ज्ञान का लोभी काल–अकाल नही देखता, कि सामायिक का समय है या प्रतिक्रमण का वह तो पुस्तक का कीडा बना रहता है। अरे! अकाल मे स्वाध्याय करने से तीव्र कर्म का आस्रव होता है। भो ज्ञानी! यदि कालाचार का ध्यान नही रखा तो अतिम समय मे भाव बिगड जाते हैं, रोगी होकर कुसमाधि को प्राप्त होते हैं। तुम्हारी पात्रता नही है रात मे बारह बजे षटखण्डागम खोलकर बैठे हो। धवला जी मे स्पष्ट लिखा है कि आप सामान्य गृहस्थो के बीच मे वाचना कर रहे हो तो असयम उत्पन्न होता है, सयम का नाश होता है, कलह होती है। पूर्णमासी को अध्ययन करे तो क्लेष होता है। चतुर्दशी को अध्ययन करो तो रोग बढते हैं। अमावस्या को अध्ययन करे तो परस्पर मे विरह हो जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या पूर्णमासी मे सिद्धात ग्रथो के लिए अनाध्य काल है। पूडी, पापड, चूडा ऐसे–ऐसे गरिष्ट भोजन करके आया है और सिद्धात ग्रथो का अध्ययन कर रहा है। आपको मालूम होगा गोमटेश बाहुबली भगवान जिस पर्वत पर विराजमान हैं उस पर्वत की श्रेणी पर आचार्य भगवन् नेमीचद्र सिद्धात चक्रवर्ती ग्रथराज

षटखडागम का स्वाध्याय कर रहे थे। वहा चामुण्डराय पहुँचते है, तो आचार्य महाराज ने स्वाध्याय बद कर दिया। मत्री चामुण्डराय अपना अपमान समझकर निवेदन करता है प्रभु! मेरे आते ही आपने ग्रथ क्यो बद कर लिया ? मत्रीवर! मै क्या करूँ। लोक को देखूँ या आगम की व्यवस्था देखूँ। लोक की अपेक्षा आगम पूज्य है। लोक कल्याण नहीं करेगा आगम कल्याण करेगा। आगम मे लोगो के समक्ष इस ग्रथ के अध्ययन करने की आज्ञा नही है, इसलिए मैंने इसको बद कर लिया है। चामुण्डराय ने जिज्ञासा प्रगट की हे प्रभु! यदि यह ग्रथ ऐसे ही बद रहेगे तो हम लोगो को ज्ञान कैसे प्राप्त होगा ? उस समय भगवन् नेमीचद्र स्वामी ने करुणा करके कहा– चामुण्डराय चिता मत करो हम तुम्हे ग्रथ देगे। अत उन्होने कर्मकाण्ड, जीवकाड ग्रथ का सृजन चामुण्डराय की प्रार्थना पर किया।

भो ज्ञानी! चारपाई पर बैठे–बैठे तुम जिनवाणी पढ रहे हो जिस पलग पर तुम सोए थे, जिन वस्त्रो मे तू सोया था ऐसे वस्त्रो मे तुम जिनवाणी का स्वाध्याय कर रहे हो। खडे–खडे लघुशका कर रहे थे पेट पहिनकर जिनवाणी उठा लाए। भो ज्ञानी! अब बताओ शुद्धी कितनी बची ? जबकि 'मूलाचार' मे लिखा है धर्मायतनो से पच्चीस हाथ दूर लघुशका का स्थान होना चाहिए अथवा पचास हाथ, सौ हाथ दूर मल–स्थान होना चाहिए। मार्ग तो यही है कि देव–शास्त्र–गुरु को स्पर्श करने के लिए शुद्ध होकर आना चाहिए। इतना नही कर पाओ तो कम से कम शौच और लघुशका के वस्त्रो मे शास्त्रो को नहीं छूना। अब बताओ ठण्डी के मौसम मे ऊन के वस्त्र पहनकर गद्दे पर बैठकर कोट पहनकर बढिया स्वाध्याय कर रहे हो। अहो! तुम्हारा कोट कब धुल कर आया था? आगम परम्परा के अनुसार विद्वान दुपटटा–टोपी लगाकर जिनवाणी पडता है यह स्कूल, कालेज का अध्ययन नही चल रहा। मुख मे पान दबाए हुए तुम उपन्यास पढ रहे हो या जिनवाणी! यह वीतराग वाणी की अवहेलना है। यदि स्वाध्याय की ललक है तो घर मे चौकी–चटाई की व्यवस्था कर लेना। पर उस चटाई पर मत बैठना, जिस पर तुम सोए हो। मनीषियो! यह गलीचो का शासन नही यह सस्तर का शासन है।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे हैं– सम्यक् ज्ञान के तीन दोष हैं। क्या मालूम सात तत्त्व सही है या गलत? वीतराग मार्ग सत्य है कि सरागियो का मार्ग भी सत्य है? सशय मे झूल रहा है और विपर्यय मे सरागी को ही सतगुरु स्वीकार लिया। विपरीत परिणमन ही विपर्यय भाव है। सीप है या चादी, जब तक ऐसा भाव है तब तक सशय था, परतु विपर्यय मे तो सीप को ही चादी मान लिया। निर्णय से रहित ज्ञान यह अनध्यवसाय दोष है। मनीषियो! सम्यक् ज्ञान वह होता है जिसमे सशय, विपर्यय अनध्यवसाय यह तीनो दोष नहीं होते। सम्यक् ज्ञानी जीव सम्यक् ज्ञान की आराधना आठ अगो सहित करता है, ताकि हमारी आत्मा मिथ्या से ग्रसित न हो। मिथ्यात्व की

आराधना कभी उपकारी नहीं मानी जाती। उपकार माना जा सकता है, पर मिथ्यात्व को नहीं पूजा जा सकता। क्योकि मिथ्यात्व उपकार का कोई सबध नही। आपके गुरु कहे बेटा पद्मावति धरणेद्र की पूजा करा दो, इनकी प्रतिमा विराजमान करा दो। प्रभु! आपने मुझे रत्नत्रय धर्म दिया है मुझे स्वीकार है आपका उपकार! लेकिन रत्नत्रय के साथ मिथ्यात्व कैसा ? इसलिए भो ज्ञानी! जो बात करो सौटच की करो, कोई लाग लपेट नहीं करना। जो है, सो है। कल रुठो सो, आज रुठ जाओ, तुम्हारे रुठने से मेरा कल्याण–अकल्याण कुछ नही होगा। मेरा सम्यकत्व रुठ गया तो मेरे अनत ससार खड़े हो जाएगे।

भो ज्ञानी! ग्रन्थ का शुद्ध वाचन करना यह ग्रथाचार कहलाता है। अत ग्रथ भी शुद्ध पढे, अर्थ भी शुद्ध निकाले। यदि नही बनता तो मौन हो जाना, परतु अन्यथा अर्थ मत निकालना। मध्यान्ह सधि बेला मे कभी जिनवाणी का वाचन नही करना। सामायिक के कालो मे शास्त्र नही पढना। याद हो या न हो, पर कालाचार का ध्यान रखना। कालाचार मे आप भक्ति–पाठ कर सकते हो। जब भी कोई जिनवाणी का स्वाध्याय करे कोई न कोई नियम लेकर बैठे। इसका नाम है उपधानाचार। बहुमान के साथ खडे हो जाओ। अन्तिम अग है अनिह्नवाचार – तुम पढ–लिखकर बडे हो गये, अब छोटे का कौन नाम ले। कुछ ऐसे जीव होते है जो शास्त्र पढकर आए और सुनाने लगे कि हमारा ऐसा चितन है। ताकि लोग समझने लगे, वाह! कितना ज्ञानी जीव है? अहो! तुमने शास्त्र का नाम छिपा लिया आप चाहे कितने भी मेघावी हो, वरिष्ठ हो, कुछ भी हों, लेकिन अपने गुरु का नाम मत छिपाना। जो गुरु का नाम छिपाता है उसके सम्यक् ज्ञान मे दोष लगता है और दर्शनावरणी, ज्ञानावरणी दोनो कर्मों का आस्रव होता है।
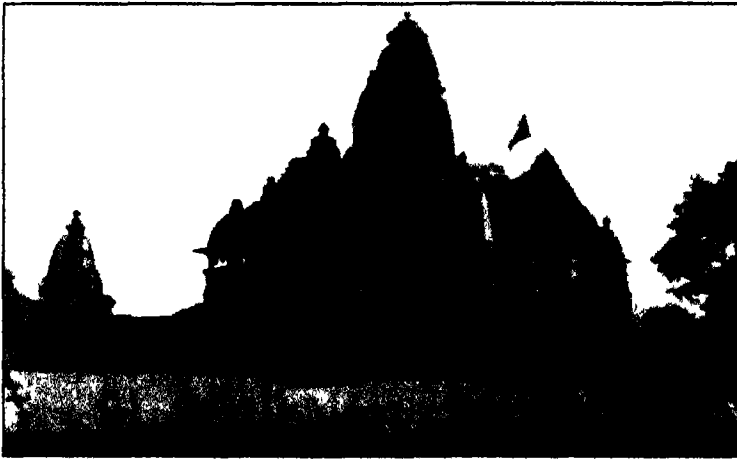
जैन मदिर समूह, खजुराहो

सम्यक् चारित्र अधिकार

"ज्ञान का फल सयम"

विगलितदर्शनमोहै समञ्जसज्ञानविदिततत्वार्थै ।
नित्यमपि नि प्रकम्पै सम्यक्चारित्रमालम्ब्यम् ।।३७।।

अन्वयार्थ विगलितदर्शनमोहै = जिन्होने दर्शनमोह का नाश कर दिया है। ञ्जसज्ञानविदिततत्वार्थै = सम्यग्ज्ञान से जिन्होने तत्वार्थ को जाना है। नित्यमपि नि प्रकम्पै = जो सदाकाल अकम्प अर्थात् दृढ चित्तवाले है ऐसे पुरुषो द्वारा। सम्यक्चारित्र = सम्यकचारित्र। आलम्बयम् = अवलम्बन करने योग्य है।

न हि सम्यग्व्यपदेश चरित्रमज्ञानपूर्वक लभते।
ज्ञानानन्तरमुक्त चारित्राराधन तस्मात् ।।३८।।

अन्वयार्थ अज्ञानपूर्वकचरित्र = अज्ञान सहित चारित्र। सम्यग्व्यपदेश = सम्यक नाम को। न हि लभते = प्राप्त नही करता। तस्मात् = इसलिए। ज्ञानानन्तर = सम्यग्ज्ञान के पश्चात।चारित्राराधन = चारित्र का आराधन उक्त = कहा गया है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।२८।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन अमृतचद्र स्वामी ने हमे बहुत ही सहज सूत्र दिया है कि जीवन मे आत्म ज्योति का दिग्दर्शन कराने वाला सम्यक ज्ञान है और सम्यकज्ञान है तो सम्यकचारित्र है, इन दोनो के भी पहले, यदि कोई विराजमान है तो उसका नाम सम्यकदर्शन है। कोई जीव यह कहे कि ज्ञान मात्र से मोक्ष होता है अथवा कोई कहे कि दर्शन मात्र या चारित्र मात्र से मोक्ष होता है। यह तीनो तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीव है। अहो! दर्शन–ज्ञान–चारित्र की एकता जहॉ से होती है। मनीषियो! वहॉ से मोक्ष नही मोक्षमार्ग प्रारभ होता है।

भो ज्ञानी! ज्ञान कह रहा है कि मुझे मत जानो मेरे से तुम जान लो, जैसे दीपक कहता है मेरी लौ मत देखो मेरे द्वारा देख लो। जो दीपक को देखता है वह कभी अभीष्ट प्राप्त नही कर पाता पर दीपक के माध्यम से जो देख लेता है वह अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेता है। दीपक कब तक जलाते रहोगे। मनीषियो तुम शास्त्र को कहॉ तक पढते रहोगे। तुमने जानने योग्य को

आज तक नही जाना, जानने मे अनन्त भव व्यतीत कर दिये। लगता है कि दीपक को ही देखा है दीपक से नहीं देखा। अहो! प्रकाश मे पदार्थ को देखने के लिये प्रकाश किया जाता है। ज्ञान कहता है कि मुझे मत देखो, मुझे मत जानो, मेरे से तुम अपने कल्याण को जान लो, मोक्षमार्ग को जान लो। मुझे जानते ही रहोगे तो ध्यान रखना कुछ भी सिद्ध नही होगा। हाँ इतना अवश्य है ज्ञान से कीर्ति फैलती है, श्रद्वान से देवत्व की प्राप्ति होती है, चारित्र से पूज्यता की प्राप्ति होती है, लेकिन तीनो की एकता से निर्वाण की प्राप्ति होती है। अत कीर्ति चाहिये तो ज्ञानी बन जाओ, देवत्व चाहिये तो पचपरमेष्ठि की श्रद्धा करो पूज्यता प्राप्त करना है तो पिच्छी–कमण्डल ले लो, लेकिन निर्वाण की प्राप्ति चाहिये तो तीनो एक साथ होना चाहिये

भो चेतन! ज्ञान हीन क्रिया विनाश का कारण होती है और क्रिया हीन का ज्ञान भी विनाश का कारण होता है, ज्ञान शून्य चारित्र अधा है और चारित्र शून्य ज्ञान लगडा है। ससार–जगल मे विषय–कषाय की अग्नि लग रही है। एक देखते–देखते झुलस रहा है एक दौडते–दौडते झुलस रहा है, लेकिन दोनो बच सकते हैं यदि अधे के कधे पर लगडा बैठ जाये तो दोनो की रक्षा हो जायेगी। मनीषियो ज्ञान लगडा है और चारित्र अधा है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनो मिल जाये तो विषय–कषाय की अग्नि से बच जाओगे।

मनीषियो! इस गाथा मे आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि चारित्र अनुपम निधि है क्योकि आपकी पहचान ज्ञान–श्रद्वान से नही, चारित्र से होती है। जब तुम पानी पियोगे तो छन्ना लगाओगे, तुम भोजन करोगे तो शोधन कर करोगे तो लोग आपसे कहेगे कि आप जैन साहब हो यही से आपके चारित्र की शुरूआत होती है। जिनवाणी मे इसे ही सम्यक आचरण अथवा समीचीन आचरण कहा है। जिस प्रकार सकुचित होकर पालने मे रहने से बालक जमीन पर गिरने से बच जाता है। इसीप्रकार तुम भी सयम के पालने मे सोना, लेकिन असयम की भूमि को देखकर पैर को सकुचित कर लेना। माँ जिनवाणी कह रही है कि चारित्र को स्वीकार करने से पहले तुम कछुआ बन जाना, क्योकि कछुआ जब देखता है कि कोई मेरा शत्रु है, तो वह हाथ–पैर और सिर को इतना सकुचित कर लेता है कि कोई पता ही नहीं चलता कि पत्थर पडा है या मिट्टी का पिड। ऐसे ही मनीषियो तुम्हारे जीवन मे विषय–कषाय रूपी के शत्रु सामने आये तो अपनी इद्रिय और मन को इतना सकुचित कर लेना कि कितने ही शत्रु निकल जाये पर पता ही नहीं चले। यदि आपके पास कछुए की दृष्टि नही है तो चारित्र पालन सभव नही। चारित्र की सिद्धि मन से अथवा चित्त से प्रारभ होती है। जब हमसे कोई गलती होती है तो हम अपने आप मे अपने आपके प्रति प्रसन्न नही होते। सयम यह कहता है कि जिस जीव को स्वय से स्वय की प्रसन्नता आ रही हो बस इसी का नाम सयम है। अरे! विश्व को खुश करना बडा सरल है, पर अपने आप को प्रसन्न वही रख सकता है, जिसका

चारित्र निर्दोष रहता है। चारित्र के मिलने से साम्य भाव उमडता है जिसमे न कोई शत्रु दिखता है न कोई मित्र न सम्यक मे भेद दिखता है न मुझे ज्ञान का भेद दिखता है। वहाँ सम्यक्–दर्शन–ज्ञान–चारित्र एक साथ टपकता है।

भो ज्ञानी। यदि आप अपने सयम को सुरक्षित रखना चाहते हो तो चित्त की पवित्रता से ही चारित्र की पवित्रता होती है। यदि चित्त पवित्र नही है तो चारित्र पवित्र रख पाना किसी के वश की बात नही है। चारित्र तो निर्मल है पर चित्त भागता है तो विकारो को उद्वेलित कर देता है और विकार उद्वेलित होने पर आचार खोखला होना प्रारभ हो जाता है। अत जब–जब आचार खोखला होता है तो विचारो से ही होता है। जिनेन्द्र के शासन मे प्रवचन को इतना महत्व क्यो दिया जाता है क्योकि बहुश्रुत भक्ति प्रवचन भक्ति तीर्थंकर प्रकृति के बध के हेतु है। जिसके जीवन मे प्रवचन की भक्ति नही है वह तीर्थंकर जैसी पुण्य प्रकृति की अवहेलना करता है। इस वीतराग वाणी का नीर जिस भूमि मे पहुँच जाता है वहाँ चारित्र के अकुर प्रकट होना आरभ हो जाते है। मनीषियो, कषाय के उपशमन का नाम ही चारित्र है। जब कषाये उपशमता को प्राप्त हो जाती है तो विकार दब जाते है जब विकार दब जाते है तो ब्रह्म–भाव उत्पन्न हो जाता है कुशील भाव छूट जाते हैं। इसी का नाम चारित्र भाव है। अरे। जिसके जीवन मे चारित्र के प्रति अनुराग नही आ रहा है भूलकर उसे सम्यकदृष्टि घोषित मत कर देना।

भो ज्ञानी। ज्ञानी की दशा एटिना के समान होती है और चारित्रवान की दशा टेलीविजन के समान होती है, ज्ञानी मात्र तत्त्व की बात को पकडने हेतु बुद्धि का विषय बना लेता है परतु सयमी चित्त और चारित्र का विषय बना लेता है क्योकि एटीना का काम तरगो को पकडने का है पर कौन सी तरग मे कैसा चित्र था यह तो टेलीविजन ही दिखा पाता है। ऐसे ही जिनवाणी की तरगो को पकडना विद्ववान के ज्ञान का विषय है एटीना का विषय है बुद्धि के तत्रो का विषय है, परतु उस जिनवाणी मे प्रसारित वर्गणाओ का दृश्य कैसा होता है यह एक योगी प्रकट कर सकता है। प्रचारक तो प्रचार कर देता है परतु पालन करने वाला तो कोई तीसरा ही होता है उसका नाम मुमुक्षु अथवा योगी होता है। इसलिये प्रचारक–विचारक से जो उपर उठा होता है उसका नाम चारित्रवान होता है। मनीषियो शब्द प्रवक्ता से प्राप्त किये जा सकते है बाहर के गुरु से मिल सकते है, परन्तु आत्म सिद्धि की प्राप्ति आत्म गुरू से ही प्राप्त होती है। ये शब्द जड की क्रिया है आत्म धर्म चैतन्य का धर्म है।

भो ज्ञानी। एकत्व होकर निर्ममत्व के लिये सुनना निर्मोही होकर सुनना क्योकि श्रद्धा अनन्त पदार्थो की होती है, ज्ञान अनन्त पदार्थ का होता है, चारित्र मात्र एक का होता है। उसका नाम शून्य है। आप लोग जिस विषय के ज्ञानी हो योगी उस विषय के अज्ञानी ही होते हैं। विश्व

में यदि किसी का विशाल अस्तित्व है तो मनीषियो शून्य का ही है। जब सपूर्ण सत्ता समाप्त हो जाती है तब शून्य की सत्ता का उदय होता है। ओंकार के ऊपर जो बिन्दु रखा हुआ है वह शून्य है। मुनि, उपाध्याय, आचार्य, अरहत की सत्ता समाप्त हुई तब शून्य सत्ता का उदय हुआ। शून्य कहता है जब सपूर्ण जगत के कर्म जाल समाप्त हो जाते हैं तभी भगवती आत्मा शून्य का उदय होता है इसी का नाम शुद्धात्मा है। इसलिये 'ओकार बिन्दु सयुक्त' अर्थात् ओकार बिन्दु से युक्त है। आचार्य योगेन्द्र देव ने शून्य स्वभावी आत्मा का कथन किया है। तारण स्वामी ने भी 'शून्य स्वभाव ग्रथ मे' शून्य स्वभावी आत्मा की चर्चा की है। अहो! जिसे लोक शून्य मानता है वह अज्ञानता का शून्य है लेकिन जिसे भगवती माँ जिनवाणी शून्य कह रही है वह भगवन्ता की प्राप्ति का नाम शून्य होता है। अत जब तुम्हारी कषाय शून्य हो जाए तुम्हारी वासना शून्य हो जाए तब निर्विकल्प आत्म ज्ञान प्रकट होगा।

भो चेतन! ध्यान रखना हलचल मे कभी सुख नही है, जब तक लहरे उठती है तब तक नीर मे मोती नही दिखता, सागर मे भी मोती होते है जब जैसे–जैसे लहरे–धाराएँ शात होती जाती है वैसे–वैसे माणिक्य झलकने लगता है। इसी प्रकार जैसे–जैसे कषाय रूपी विकारो के कोलाहल समाप्त होते है वैसे–वैसे शून्य स्वभावी आत्म रत्न झलकने लगता है। 'एकोह निर्मोह' जहाँ मात्र एक मैं दिखना प्रारभ हो जाए कि एकमात्र मेरा स्वभाव है, सयोग भाव मेरा धर्म नहीं है यह अनुभूति जिस दिन तुम्हारे अदर झलकने लग जाए उस दिन कहना कि मै चारित्र की ओर जाना शुरु कर रहा हूँ। जब तक निज भाव नही आता तब तक भक्त भगवानो की भीड तो दिखेगी पर भगवत्ता नजर नही आयेगी। चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिमाये नजर आयेगी आचार्य मुनि नजर आयेगे परन्तु चैतन्य चारित्र का चमत्कार जो निजानुभव की परिणति है वह अनुभव मे नजर नही आएगा।

भो चैतन्य! जिसने स्वभाव को जाना है उसे कुछ नही झलकेगा, उसे तो मात्र एक शून्य स्वभावी निजानन्द ही दिखेगा। जीवन मे ध्यान रखना चारित्र का व्याख्यान कर रहे हैं पर चारित्र व्याख्येय नही है। स्वरूप के वेदन होने का नाम है यथाख्यात चारित्र जो ग्यारहवे गुण स्थान से प्रारभ होता है, और चौदहवे गुणस्थान मे पूर्ण होता है। यह ऐसी आत्मा की दशा है कि पानी शातमय हो जाये तो चेहरा दिखना प्रारभ हो जाता है। जिस चित्त ने मुझे पाचो पापो मे सलग्न किया था उबलती कषाये मे कभी भगवती आत्मा नहीं आती थी। पर चित्त शात होने पर निज मे ही निज का यथाख्यात चारित्र दिखना प्रारभ हो जाता है, वही भगवती आत्मा है। अत तुम अपने मन के सकल्पो को स्थिर करो। असयम आचरण के बर्तन मे धक्का लगाओ क्योकि लड्डू , पेडा खाने मे और विषयो मे लिप्त होने मे तथा घर मे बैठकर कभी भगवान आत्मा दिखने वाली नही है।

भो ज्ञानी! आठवे गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है। जब यह जीव मिथ्यात्व के तीन टुकडे

करता है, तब भी करण परिणाम करता है वहाँ पर भी अपूर्वकरण होता है। कभी पूर्व मे ऐसा वेदन नही किया हो ऐसा वेदन का होना ही अपूर्व करण है। आचार्य भगवन अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं जब तक मुख मे कडवाहट है, तब तक मधुर दुग्ध भी कडवा लगता है। जिसके मिथ्यात्व की कडवाहट बैठी हो उसे कहाँ ज्ञान–चारित्र दिखता है, वह तो उपहास करता है, ज्ञानियो की हँसी उडाता है क्योकि उसे मालूम तो यही है कि मेरे मुख मे जैसा स्वाद है वैसा ही सबके मुख मे होगा। अरे! बाहर के मुख को तो इलायची से साफ कर भी लो, परतु मिथ्यात्व के मुख मे इलायची भी कुछ नही कर पायेगी। मिथ्यात्व की कडवाहट को दूर करने के लिए तो सद्गुरु की वाणी ही चाहिये। इसलिये ध्यान रखना

सद्गुरु देत जगाए, मोह नीद जब उपशमे।
तब कुछ बने उपाय कर्म चोर आवत रुके।। बा भा

जो स्वय जागा है वही दूसरो को जगा सकता है जो स्वय जला है वही दूसरो को जला सकता है। बुझे दीपो से कभी दीप नही जलते जले दीपो से ही दीप जलते है। जो स्वय सयम से बुझा–बुझा बैठा है वह तो यही कहेगा ज्ञान करो श्रद्धा करो पर हमे यह समझ मे नही आता कि किसका ज्ञान करे श्रद्धा किस पर करे। क्योकि श्रद्धेय दिखते ही नही है। मनीषियो, पचपरमेष्ठी हमारे श्रद्धेय है और एक निज आत्मा ही हमारा परम श्रद्धेय है। उसी का ज्ञान करना है उसी का श्रद्धान करना है।

भो ज्ञानी! ज्ञेय जब सामने होता है तभी ज्ञान से ज्ञेय को जाना जाता है। अत श्रद्धेय के अभाव मे श्रद्धा किसकी की जाये। पहले श्रद्धेय को प्रकट करो फिर श्रद्धा को प्रकट करो। हमारे श्रद्धेय सर्वज्ञदेव है निर्ग्रन्थ गुरु है, वीतरागवाणी है श्रद्धा मेरी आत्मा का धर्म है लेकिन जब तक दर्शन मोह का विगलन नही होगा तब तक श्रद्धा नही श्रद्धेय नही और ज्ञान भी नही ज्ञेय भी नही ये सब अज्ञान हैं। इसलिये सबसे पहली आवश्यकता मिथ्यात्व के जहर को निकालने की है पर केचुली से काम नही चलेगा, थैली निकालने की आवश्यकता है।

भो चेतन्य! इन नागो ने केचुली तो अनेक बार निकाल दी है पर हे विषधर! तुम केचुली के निकालने से निर्विष नही होते। इसी प्रकार वस्त्रो को उतारने से, भोगो को फेकने से आत्मा निर्ग्रंथ दशा को प्राप्त नही होती जब तक वासना और मिथ्यात्व रूपी जहर की थैली नहीं निकलेगी तब तक मुमुक्षु हो ही नही सकता। केचुली के छूट जाने का नाम निर्विषपना नही थैली छूटेगी तभी निर्विषपना होगा। भो ज्ञानी! ज्ञान करके श्रद्धान करके केचुली भी छूट गई, परतु जब तक चारित्र मोहनीय की गाँठ नही खुलेगी तब तक भगवती आत्मा प्रकट होने वाली नही है। मनीषियो! उपादान तभी जागेगा जब सम्यक् पुरुषार्थ होगा इसलिये जब दर्शन मोहनीय कर्म का विगलन होता है तो

सम्यक् रूप से तत्त्वो का श्रद्धान करता है, ज्ञान करता है। नित्य ही निश्कप होकर सम्यक्चारित्र का आलम्बन करता है।

भो ज्ञानीयो! रत्नत्रय मोक्ष नही है मोक्ष मार्ग है। यहॉ आचार्य भगवन् कह रहे हैं चारित्र तो धारण कर लेना लेकिन अज्ञान पूर्वक नही। पहले अच्छी तरह जान लेना कि कौन सा ज्ञान सम्यक ज्ञान, है आत्म कल्याण का ज्ञान है, यहॉ पोथियो के ज्ञान की बात नहीं कर रहे हैं, मोह को विगलित करने वाले ज्ञान की बात कर रहे हैं। आप शास्त्र ज्ञान भी करे पर आप उसका निषेध न करे, क्योकि श्रुतज्ञान केवलज्ञान का जनक होता है, श्रुत का अविनय मत कर देना। उत्तम ज्ञान के उपरात ही चारित्र आराधना होती है इसलिये ज्ञान के उपरात ही चारित्र की आराधना करनी चाहिये क्योकि जिसको तुम स्वीकार करने जा रहे हो उसके बारे मे इतना तो समझ लो कि मैं धारण कर क्यो रहा हूँ? चारित्र परम्परा नही है चारित्र तो आत्मा को परमात्मा बनाने की विद्या है उस विद्या को समीचीन रूप से समझ कर स्वीकार करोगे तो जरूर परमात्मा बन जाओगे।
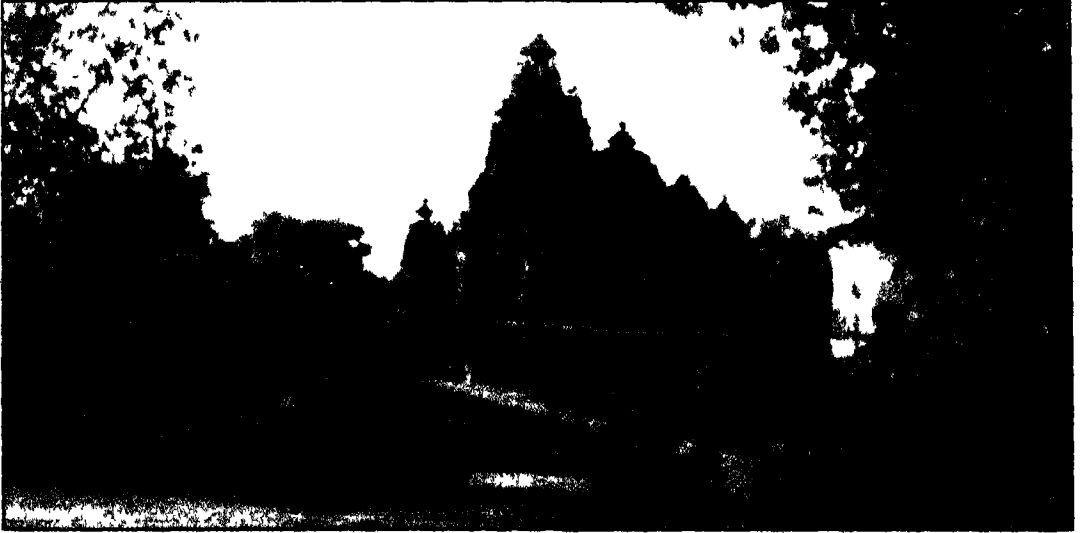
जैन मदिर खजुराहो

"उदासीन वृति– सम्यक् चारित्र"

चारित्र भवति यत समस्तसावद्ययोगपरिहरणात् ।
सकल कषायविमुक्त विशदमुदासीनमात्मरूप तत् ।। ३९ ।।

अन्वयार्थ – यत = कारण कि। समस्तसावद्ययोगपरिहरणात = समस्त पापयुक्त योगो के दूर करने से। चारित्र भवति = चारित्र होता है । तत् = वह। चारित्र सकलकषायविमुक्त = समस्त कषायो से रहित होता है। विशद = निर्मल होता है। उदासीन = रागद्वेष रहित वीतराग होता है। आत्मरूप = वह चारित्र आत्मा का निज स्वरूप है।

हिसातोऽनृतवचनात् स्तेयादब्रह्मत परिग्रहत ।
कात्स्न्यैकदेशविरतेश्चारित्र जायते द्विविध ।। ४० ।।

अन्वयार्थ – हिसात = हिसा से अनृतवचनात् = असत्य वचन से स्तेयात् = चोरी से अब्रह्मत परिग्रहत = कुशील से परिग्रह से कात्स्न्यैकदेशविरते =समस्त विरति एव एकदेशविरति से चारित्र = चारित्र द्विविध जायते = दो प्रकार का होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।२९।।

भो मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र जी महाराज ने ज्ञान के उपरान्त चारित्र की चर्चा की है कि वही ज्ञान शोभायमान होता है जिसमे सयम की सुगध हो। यथार्थ मे ज्ञान का फल सयम है और वह सयम अतरग का भाव है। आचार्य कुदकुद महाराज ने मोह और क्षोभ से रहित अवस्था का नाम साम्यभाव कहा है यह साम्यभाव ही सयम है।

भो ज्ञानी! सम्यक्दर्शन धर्म की पूर्णता नही है। भवन की नींव ही भवन की पूर्णता नही मान लेना। जिसने नीव को भवन की पूर्णता मान लिया है, वह भवन मे बैठ नही पायेगा। क्योकि नीव भवन नही है। आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जब ज्ञान की दीवारे खडी हो जायेगीं, तब चारित्र की ही छत ढालना पडेगी, तभी पानी रुक पायेगा, अन्यथा पानी टपकेगा। अहो! जो कष्ट शेर के सामने आने पर भी नही होता वह कष्ट टपका मे होता है। मनीषियो! निश्चिय धर्म का प्रारभ चारित्र के आने पर ही होता है और जहाँ चारित्र आता है, वहाँ दर्शन–ज्ञान स्वयमेव विराजता ही है क्योकि जिनेन्द्र के शासन मे उसे ही चारित्र कहा जाता है जिसमे दर्शन–ज्ञान होता है। आचार्य अमृतचद्र

स्वामी ने स्पष्ट कर दिया है कि ज्ञान के उपरान्त चारित्र की आराधना करना चाहिये। जहाँ "वथ्थु स्वभावो धम्मो" आ जाता है वहाँ कोई परिभाषा कहने की आवश्यकता नहीं पडती, क्योंकि मिथ्यात्व तेरी वस्थ्थु का धर्म नही है, अज्ञानता वस्तु का धर्म नहीं, असयम वस्तु का धर्म नही है। 'वस्तु स्वभावो धम्मो', यह सूत्र आचार्य कार्तिकेय स्वामी ने 'कार्तिकेयानुक्षा' मे लिखा है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव उत्तम आर्जव, उत्तम शौच उत्तम सत्य, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य ही वस्तु स्वभाव है और यह मेरी आत्मा के धर्म है। लोभ का त्याग, क्रोध का त्याग मान का त्याग वाणी सयम ये मेरी आत्मा के धर्म है। भो ज्ञानी! विवेक के साथ बोलने की आवश्यकता है। माँ जिनवाणी कह रही है कि वाणी सयम नही है तो प्राणी असयम भी होते देखा जाता है, और इन्द्रिय असयम भी होते देखा जाता है। अहो! एक दिन के ही वाणी असयम का प्रभाव था कि महाभारत हो गया।

भो ज्ञानियो! एक दिन आपसे कहा था पीना सीखो। यदि कषाय को पीना सीख लिया तो खून की नदियाँ बहना बद हो जायेगी। द्रोपदी के मुख से छोटा सा ही शब्द निकला था कि 'अन्धो की सन्ताने अन्धी ही होती है' इसका परिणाम देखो अहो! एक नारी की तो जीभ हिली, परतु महाभारत मे तो तलवारे हिल गई। जीवन मे ध्यान रखना यदि आपको साप ने डस लिया तो आप उपचार तो करो लेकिन तुम्हारा धर्म उसे मारना नही है। किसी ने आपको गाली सुना दी उस समय आपने कुछ नही कहा तो इससे लगता है कि आपने अनन्त–गुणो मे एक गुण की वृद्धि कर ली। जब गुरुदत्त स्वामी के शरीर मे अग्नि लगाई गई तो वे मुनिराज कह रहे थे–अहो! कितना सुन्दर अवसर मिला, अभी अत करण तप रहा था, अब बाह्य–पुद्गल भी अग्नि मे तप रहा है जब दोनो जल जायेगे तो मेरी आत्मा कुन्दन बन जायेगी। यही कारण था कि वे गुरुदत्त स्वामी केवली भगवान बन गये तथा अग्नि लगाने वाला कपिल ब्राह्मण प्रभु के चरणो मे भक्त बन कर बैठ गया और उसे सम्यग्दर्शन हो गया। लेकिन मुनिराज ने कपिल को दोष नहीं दिया। वे मुनिराज कहने लगे–यदि हम अग्नि और कपिल को देखेगे तो द्वेष नजर आयेगा। हम तो उस दोष को देखना चाहते है, जिस दोष ने आज मुझे अग्नि लगाई है। जब यह सिह के जीव, मैं था एक युवराज! मै ससुराल मे आया था, तथा द्रोणगिरी पर्वत की गुफा मे जहाँ सिह विराजा था, उसमे कण्डे लकडी भरवाकर अपने हाथो से आग लगा दी। तब इसी पर्याय मे सिह ऐसे परिणामो से मरा। अत जीवन मे ध्यान रखना कभी सर्प डसे तो है तो उपचार कर लेना, पर साम्यभाव रखना यह आपका स्वभाव है। यदि आपने साँप को मार दिया तो एक काला नाग तो अपने धर्म मे रहा लेकिन आपने अपना धर्म छोड दिया।

भो ज्ञानी! चारित्र ही तेरा गुण है, अचारित्र तेरा दुर्गुण है। यदि गुण होगा तो दुर्गुण कभी

प्रवेश करेगा ही नहीं। विभाव-स्वभाव के अभाव का नाम ही स्वभाव है। आप कुछ मत करो। बस स्वभाव मे चले जाओ लेकिन विभाव मे मत जाना और अधिक समय तक आप विभाव मे रह भी नहीं सकते। विभाव तो पकवान है स्वभाव रोटी है। आप लम्बे समय तक पकवान खाकर नही जी सकते। आप रोज रोटी खाकर ही पूर्ण स्वस्थ जीवन जीओगे। विभाव तडक-भडक होता है, आया और चला जाता है पर स्वभाव सहज होता है। सहज मे शाति मिलती है आनद आता है। प्रभु जब केवली बन जाते हैं तो किसी से नही कहते कि मुझे केवलज्ञान हुआ है। तीर्थकर महावीर स्वामी के सामने छह प्रति तीर्थकर थे लेकिन वर्धमान को जैसे ही केवलज्ञान प्रकट हुआ, फिर उनका पता ही नही चला? इसलिये आप अल्पज्ञानी बनकर जीना अल्पसाधक बनकर जीना यथार्थ बनकर जीना तो कभी भटक नही सकते और यदि ज्ञानी बनकर जीओगे तो परेशानी आयेगी, तुम धीरे से मायाचारी शुरू कर दोगे। अभी तो असयम ही था अब साथ मे मायाचारी और आ गई। इसीलिये जितना तुम कर रहे हो उतना सहज कर लो, लेकिन लोक मर्यादा का भी ध्यान रखे। माना कि आप शुद्ध भी हो, परन्तु लोक मर्यादा के विरुद्ध कोई काम हो रहा हो तो उसकी मर्यादा का भी ध्यान रखना।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे है कि चारित्र बडा गम्भीर है। एक ओर स्वय को दिखा रहा है और दूसरी ओर लोक की मर्यादा को दिखा रहा है। ऐसा नही है कि मुनिराज को कभी मल विसर्जन की आवश्यकता पड जाये तो कही भी बैठ जाये लोक मर्यादा का उनको भी ध्यान रखना होता है। जिसे जनसामान्य स्वीकारता नही है वहाँ चारित्र समाप्त हो जाता है। आपके घर मे नई बहू का घूँघट कुछ सीमा मे रहता है, लेकिन सयमी के लिये तो चौबीस घटे ही नही जीवन पर्यंत रहता है। हो सकता है कोई जीव गलत भी कर रहा हो अथवा नही मान रहा हो वहाँ आपको यही सोचना होगा कि इसके कर्म का ऐसा उदय है जो कि अच्छी बात भी स्वीकार नही कर पा रहा है। जिस दिन कर्म विपाक मद हो जायेगा उस दिन यह इस बात को स्वीकार कर लेगा। क्योकि जब तक कषाय का उद्रेक रहता है तब तक जीव किसी बात को नही मान पाता-यह तो लोक की व्यवस्था है। जिस बर्तन मे दूध भरा हुआ है वह भी तब तक रहता है जब तक अग्नि मद-मद है और तेज उबाल पर ढक्कन भी नही ठहरता। ऐसे ही जिस जीव की कषाय उबाल पर हो, उसको सयम ज्ञान चारित्र की बात बताओगे भी, तो वह नही ठहरती। एक माँ धीरे से उस उबाल पर ठण्डा पानी डाल देती है अथवा नीचे से लकडी को हटा देती है। तो वह शात हो जाता है। अत दो ही उपाय है। जिन निमित्तो से हमारे असयम भाव बनते हैं उन निमित्तो को हटा दे। यदि आप पदार्थ नही हटा पा रहे है तो आप स्वय पदार्थ से हट जाओ।

भो ज्ञानी! इन्द्रियो को समझाने के लिये तो तुझे गुरु मिल जायेगे, लेकिन मन को समझाने

वाला गुरु तो तुझे ही बनना पड़ेगा। मन की गलती को देखने वाला कोई गुरु है, तो तू स्वय ही है अथवा केवली भगवान हैं। अब तुम कुछ करोगे तो ध्यान रखना आस्रव ज्यादा ही होगा। इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सपूर्ण सावद्य क्रियाओ का बुद्धिपूर्वक त्याग करने का नाम सम्यक् चारित्र है। जिसमे हिसा होती है, झूठ बोला जाता है, चोरी छिपी हो अब्रह्म और परिग्रह भाव हो वह सब अचारित्र है। यदि तुम चारित्र का पालन करने लगोगे तो तुम्हारी भोगो की लिप्सा पूरी नही हो पायेगी मान–सम्मान समाप्त हो जायेगे, बडे–बडे भवन श्मशान घाट से नजर आयेगे। दूसरे शब्दो मे उदासीन वृत्ति का नाम ही चारित्र है, जहाँ भवन नही निज भवन की ओर दृष्टि रहती है। अत अपने आप मे उत्साहित रहना परतु विश्व से उदासीन हो जाना, लेकिन जो निज मे ही उत्साहित नही है, उससे सयम नही पल सकता।

भो चैतन्य! हिसा झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह पाच पाप है। इनको एक-देश छोडना श्रावको का चारित्र है और सम्पूर्ण रूप से पाच पापो का त्याग करना साधुओ अथवा महाव्रतियो का चारित्र है। इसीलिये आज बैठकर अनुभव कर लेना कि पूरी पर्याय हमने भोगो की भट्टी मे नष्ट कर दी है। अब उन भोगो का फल रोना है। क्योकि भोगो के भोग से रोग हुआ और सतान को जन्म दिया फिर कुटुम्ब बढ गया। कल किसी की मृत्यु, परसो किसी की, अब बैठे–बैठे रो रहे हैं। योग का फल है–निज मे लीन होना, प्रसन्नचित्त रहना। यदि प्रसन्न रहना चाहते हो तो किसी को प्रसन्न करने का विचार मन मे मत लाना। क्योकि आपकी ताकत नही है, कि आप सबको प्रसन्न कर लो। सब जीव सुखी रहे–ऐसा विचार तो लाना, लेकिन प्रसन्नता उथली वस्तु है सुख अदर की वस्तु है। अहो! परमसुखी अरिहत देव हैं और उनसे भी परम सुखी सिद्ध भगवान है तथा जो सुख के मार्ग पर चल रहे है वे आचार्य उपाध्याय, और साधु भगवत है। इसीलिये जिनवाणी मे सुख की परिभाषा प्रसन्नता है ही नही। 'आतम को हित है सुख हैं, सो सुख आकुलता बिन कहिये''। जहॉ आकुलता लगी हुई है वहॉ सुख किस बात का? अत लोक मे किसी को प्रसन्न करने का विचार मत लाना। लोक मे सभी जीव सुखी रहे ऐसा विचार बनाकर रखना, धर्मात्मा का लक्षण है क्योकि प्रसन्नता ऊपर की होती है, प्रसन्नता चेहरे तक होती है और सुखी हृदय से होता है। दूसरे शब्दो मे इसे आप प्रमुदित भी कह सकते हो क्योकि ज्ञानी, धर्मात्मा धर्म की बात को देखकर प्रमुदित होता है, वह प्रमोद गुण अदर से आता है। आपको पेन मिल गया आप प्रसन्न हो गये। जब घर मे बेटे का जन्म होता है तो पूरा परिवार खुश हो जाता है, लेकिन आनद नहीं आता है। आनद अदर से आता है। बाहर के द्रव्यो की प्राप्ति से जो सुख महसूस करते हो वह खुशी होती है, पर अन्दर के गुणों से जो खुशी आती है उसका नाम आनन्द होता है। जो ज्ञानी निज मे निज का रमण करता है, उससे जो आनद प्रकट होता है, वह परमानद होता है। इसलिये खुशी तक ही सीमित मत रह जाना आनद और परमानद की ओर बढना।

'मुनि ही भेष समयसार है'

निरत कात्स्न्र्यनिवृत्तौ भवति यति समयसारभूतोऽयम्।
या त्वेकदेशविरतिर्निरतस्तस्यामुपासको भवति ।। ४१।।

अन्वयार्थ कात्स्न्र्यनिवृतौ = सर्वथा सर्वदेश त्याग मे निरत। अयम् यति = लवलीन यह मुनि। समयसारभूत = शुद्धोपयोग स्वरूप मे आचरण करनेवाला। भवति = होता है या तु एकदेशविरति = और जो एकदेश विरति है। तस्याम् निरत = उसमे लगा हुआ। उपासक भवति = उपासक अर्थात श्रावक होता है।

आत्मपरिणामहिसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृत शिष्यबोधाय ।।४२।।

अन्वयार्थ आत्मपरिणामहिसनहेतुत्वात = आत्मा के शुद्धोपयोग रूप परिणामो के घात होने के हेतु से। एतत्सर्वम् हिसा एव = ये सब हिसा ही है। अनृतवचनादि =असत्यवचनादिक के भेद। केवलम् शिष्यबोधाय = केवल शिष्यो को समझाने के लिए। उदाहृत = उदाहरणरूप कहे हैं।

।। पुरुषार्थ देशना ।।३०।।

भो मनीषियो। ससार असार है। पर्याय दृष्टि से जितने द्रव्य है सब विनाशक है। नदीश्वरदीप, सुमेरुपर्वत ये सब अकृत्रिम पदार्थ है लेकिन अर्थपर्याय की दृष्टि से इनमे भी परिणमन होता है तत्स्वरुप परिणमन चलता है, कोई भी द्रव्य कूटस्थ नही है। अत विश्व के सम्पूर्ण द्रव्य परिवर्तनशील है और परिवर्तन के परिणमन मे जो परिणामी को भूल जाता है, वही अज्ञानी होता है। परिवर्तन मे परिणामी को जो परिणामीरूप निहारता है उसे द्रव्य सत्ता दृष्टिगत होती है। सयम और चारित्र मात्र पर्याय सुधारने के लिए नही है। पर्याय को सुधारकर हम करेगे क्या ? पर्याय तो पर–द्रव्य है। अशुद्ध व्यजन–पर्याय की दृष्टि से पर्याय आपकी है, लेकिन जो आप जीवत्व की बात करेगे तो उसमे स्पर्श रस, गध, वर्ण का लेश मात्र भी नही है। जीव का स्वरूप उपयोगमयी है, शरीर का स्वरूप स्पर्श–रस–गध–वर्णमयी है। दोनो मे सश्लेष सम्बन्ध है। अहो। सक्लेषता का नाश करना चाहते हो तो सश्लेष को सश्लेष स्वीकारो। ध्यान रखना, दूध मे मावा पहले था, पर

दूध मावा नहीं था। अहो! भगवती आत्माओ! आपमे भगवान तो पूर्व से ही विराजमान है, लेकिन आप भगवान नहीं हो।

मनीषियो! दूध को मावा बनाने के लिए उसमे पर–द्रव्य (पानी) का जो उपाधि परिणमन है, सश्लेष सबध है, उसको उडाया जाता है, तो मावा बन जाता है। ऐसे ही इस जीव को ध्यान की अग्नि पर (चारित्र की सिगडी) पर जब रखा जाता है, तो कर्मों का नीर वाष्पित होकर उड जाता है। एक मात्र शुद्ध आत्मा रहती है, उसी का नाम परमात्मा होता है। बिना प्रक्रिया के जो दूध से मावा निकालना चाहता है, वह बिना सयम के मोक्ष होना मानता है। क्या कछुए की पीठ के बालो की रस्सी से हाथी को बॉधा जा सकता है ?

भो ज्ञानी! चारित्र की निर्मलता से ही ज्ञान मे निर्मलता आती है। अहो! तुम्हारे परिणाम जितने सुलझे हुए होगे, उतना सुलझा हुआ तुम्हारा सयम होगा। सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय– यह तीन दोष जिनके ज्ञान मे चल रहे हो वह सयमी नही बन पायेगा, क्योकि वह सोचेगा कि जो मैने स्वीकार किया है यही मोक्षमार्ग है या और भी कोई है ? इसलिए सयमाचरण चारित्र त्रिदोष से रहित होता है। उस निर्मल मे भी जो निर्मल होता है उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र होता है। स्वरूपाचरण चारित्र की निर्मलता से जो अन्तिम निर्मलता निकलती है, उसका नाम यथाख्यात चारित्र है। यह परिणामो की निर्मलता है। अहो! यह भावो की निर्मलता कही बाहर से नहीं आती, योगी अपने आप मे ही, अपने आप से प्रकट करता है। एक बाह्य–ज्ञानी तो शरीर की रक्षा कर लेता है पर अन्तर–ज्ञानी आत्मा की रक्षा न कर सके, तो उसे जिनवाणी, ज्ञानी–सज्ञा नही दे पाती। निर्ग्रंथ–ज्ञानी चरम–चक्षु से नही, व्रिवेक–ज्ञान के आगम–चक्षु से निहारते–निहारते चलता है। भो ज्ञानी! जितने कर्मों की निर्जरा एक अज्ञानी हजार वर्षों मे करता है ज्ञानी एक श्वास मात्र मे कर लेता है। कुन्दकुन्द देव प्रवचनसार जी मे लिख रहे हैं– कि यह आगम–ज्ञानी की चर्चा नही आत्म ज्ञानी की चर्चा है। आत्म–ज्ञानी याने अनुभव–ज्ञानी। यह विद्या अनुभव–विद्या है बाह्य–विद्या नही। अनुभव अनुभूति का विषय है मात्र व्याख्यान तक सीमित नही है। तीन गुप्ति से युक्त वही होगा, जो चारित्र से युक्त होगा। इसीलिए अमृतचद्र स्वामी जिस ज्ञानी की चर्चा यहाँ कर रहे है वह ज्ञानी, विशद (निर्मल) है, उदासीन है और आत्मस्वरूप मे लीन है। 'समयसार तब ही प्रकट होगा जब सयम प्रकट हो जायेगा। ध्यान रखना जब तक नियमसार नही आ रहा है, तब तक समयसार कैसे आयेगा ? भो ज्ञानी आत्माओ! जिसे नियमसार, समयसार का द्रव्य आगम–ज्ञान हो जायेगा, उसे जिनवाणी ज्ञानी नहीं कहेगी। जिनवाणी मे भाव–आगम वाले ही मुमुक्षु होते है। द्रव्य–आगम से मोक्ष नही होता, द्रव्य आगम भाव आगम का हेतु तो होता है, परतु कार्य नही होता कारण होता है। इसीलिए मूलाचार' मे कुदकुद महाराज ने भी लिखा है–

भाव विरदो दु विरदो, ण दव्वविरदस्स सुग्गई होई।

विसयवणरमण लोलो, धरियव्वो तेण मणहत्थी ।। ९९७।। मू

भाव–व्रती को ही व्रती कहा गया है केवल द्रव्य व्रती की सुगति नहीं है। अहो! देह के रागियो, देह के ब्रम्हचारियो! अपने अन्त स से पूछो कि भाव के ब्रम्हचारी कितने हो ? यदि नहीं हो, तो सुगति नही होगी। भेष से कह रहे तो भेष पूजा जायेगा और यदि भाव से करोगे, तो भगवान बन जाओगे। नमोस्तु शासन बडा निर्मल है बडा ईमानदार दर्शन है। इसलिए मन–हस्ति को ज्ञान–अकुश से पकड लो और चारित्र की रस्सी मे बाध लो। वह जब तुम्हारे वश मे हो जायेगा तो आप उस पर सवारी करके मोक्षमहल पहुँच जाओगे। वह आपको सिद्धशिला मे पहुँचा देगा। भो ज्ञानी! आत्म ज्ञान ही सर्वस्व है। ज्ञान सर्वस्व नही है। ज्ञान तो अभव्य जीव को ग्यारह अग का भी हो जाता है लेकिन वह ज्ञान निर्वाण का हेतु नही होता। कोरा ज्ञान निर्वाण का हेतु नही है, वह ससार का ही हेतु है। अहो! निर्वाण के मार्ग पर चलने वाली आत्माओ! निर्माण मे मत लग जाना यदि और निर्माण मे लग गये तो निर्वाण कार्य तुम्हारा अवरुद्ध हो जायेगा। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि उदासीन का अर्थ उलटा मत लगा लेना। अरे हस आत्माओ! धर्म–धर्मात्मा को देखकर प्रमुदित हो जाना पर विषय–कषायो को देखकर उदासीन हो जाना द्वेष नही करना। अरे! जब सकट आ गया, तो ससार असार दिखने लगा और तनिक प्रशसा हो गयी, तो सार ही सार नजर आने लगा, ऐसा कैसा असार ? ज्ञानी तो जब विषमता थी तब भी असार मानता है और जब अनुकूलता है तब भी असार मानता है।

भो ज्ञानी! ध्यान रखो, उपासक ही उपास्य बनता है। श्रमण सस्कृति से जिनदेव का शासन उपासक को भी उपास्य बना देता है। आचार्य महाराज सहजता से कह रहे है कि योगी की वदना करना ही समयसार की उपासना है क्योकि समयसार ग्रन्थ तो कागजो पर हैं, परतु निर्ग्रथ की परिणति मे समयसार है। ग्रन्थ का समयसार शब्दो का समयसार है, जबकि निर्ग्रंथो का समयसार स्वभाव का समयसार है। स्वभाव समयसार को समझना चाहते हो तो स्वभावी के पास पहुँचना पडेगा। स्वभावी के पास जाये बिना स्वभाव समयसार मिलने वाला नही है, क्योकि जले दीप के पास ही बुझा दीप जाता है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'समाधि शतक' मे लिखा है–

भिन्नात्मनमुपास्यात्मा, परो भवति तादृश ।
वर्तिदीप यथापास्य, भिन्ना भवति तादृशी।। ९७।। (स श)

भिन्न आत्मा भी जब उपास्य आत्मा की उपासना करता है तो वह भी परमात्मा हो जाता है क्योकि ध्येय का ध्याता जब ध्यान करता है, तो वह स्वमेव ध्येय हो जाता है। भो ज्ञानी! एक बार समयसारभूत बन जाओ। ज्ञेय–ज्ञेय है, ज्ञाता–ज्ञाता है। ज्ञेय तत्त्व विश्व मे अनन्त हैं। उन अनन्त ज्ञेयो मे तू भी एक ज्ञेय है। लेकिन फिर भी यह जीव की अनुपम महिमा है कि यह ज्ञेय भी हैं और ज्ञाता भी हैं। द्रव्य मात्र ज्ञेय है, ज्ञाता नही है। अहो! जब जीव अनन्त ज्ञेयो को भूल जाता है, तब स्वज्ञेय ज्ञान मे आता है। जब तक अनन्त ज्ञेयो को जानने का विकल्प योगी के मन मे रहता है, जब तक स्वज्ञेय को जान नहीं पाता। जब सम्पूर्ण ज्ञेयो से अज्ञानी हो जाता है, तब

एक मात्र स्वज्ञेय को जानता है। जब स्वतत्त्व को जो एक बार जान लेता है, तो पुन अनन्त ज्ञेयो का ज्ञाता बन जाता है। भो चेतन! जब निज ज्ञेय–तत्त्व को जानेगा, तो उसी दिन अनन्त ज्ञेयो का ज्ञाता केवली भगवान भी बन जायेगा। उस ज्ञेयतत्त्व की प्राप्ति मे अनन्त बल की ताकत ही तुझे अनन्त बलशाली बना पायेगी, ऐसा है समयसार।

भो ज्ञानी! जैसे मक्खन की माधुर्यता स्निग्धता, कोमलता को मापकर बता पाना कठिन है, ऐसे ही आत्मा की निर्मलता का व्याख्यान पौद्गलिक वाणी से करना असभव है। इसलिए ध्यान से समझना, समयसार मे भी निरत हो और पाच पापो मे भी लीन हो, अहो! छल मत करो ,कपट मत करो निज आत्म–देव के साथ। पाचो पापो का भोक्ता बनकर कोई भी आत्मभोक्ता नही बन सकता। भो मनीषी! तर्क लगाना, जो पाचो पापो मे लिप्त है यदि परमेश्वर बन गया तो पच महाव्रतो का पालक क्या निगोद जायेगा ? ध्यान रखना महाव्रती कभी अनन्त भव धारण नही करते, महाव्रती कभी निगोद नही जाते। अरे ज्ञानी! अनन्त बार कोई मुनि नही बन सकता अनन्तबार कोई महाव्रती नही बन सकता, यह सिद्धात है। बत्तीस भव से ज्यादा कोई निर्ग्रंथ भावलिगी मुनि बन ही नही सकता। जो अनन्तवार ग्रेवेयक गया है, वह मुनि नहीं गया, मात्र मुनिव्रत धारण करने वाला गया है क्योकि कुन्दकुन्द देव ने समयसार जी मे लिखा है–अज्ञानी जीव कहता है कि इस मार्ग से नही जाना मार्ग लुटेरा है। अहो ज्ञानी आत्माओ! मार्ग ने कब, किसको लूटा है ? वे अज्ञानी है, जो मार्ग को लुटेरा कहते हैं। ऐसे ही महाव्रत कभी निगोद नही ले जाते। जो मोक्ष मार्ग मे पहुँच करके भी विषय–कषायो के लुटेरो के पीछे अपने आप को चिपका देते हैं ऐसे लोग नरक–निगोद जाते है। मुनि कभी नरक–निगोद जा ही नही सकता। ध्यान रखना, निर्ग्रंथ–दशा मे निगोद अवस्था कभी नही मिलती। परतु जो जीव सयम के मार्ग पर पहुँच कर भी सयमी नही होता वह निगोद जाता है।

भो ज्ञानी! परिणाम ही गुणस्थान हैं। अत चर्चा करो तो ऐसी करो, जिससे सयम मे वृद्धि हो चारित्र मे वृद्धि हो, श्रद्धा मे वृद्धि हो। अहो! जो गिरते को उठा ले वह आगम है, पर बेचारे गिरते को तुम और धक्का मत लगा देना। पाचो पाप का त्यागी, महाव्रती यति ही समयसारभूत होता है और जो एक–देशव्रती अर्थात एकदेश पाच पाप के त्यागी होते है वह उस समयसारभूत योगी के उपासक होते है। इसीलिए श्रावक का दूसरा नाम आया नत्र है–श्रमणोपासक। जैन आगम मे 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय" ग्रन्थ ऐसा अनुपम ग्रन्थ है जो अहिसा और हिसा के बारे मे विशद कथन करने वाला है। आत्मा के परिणामो की घात करना ही हिसा है। जरा–सा कुछ हो जाये–'तू मर जा कहने से नही मर रहा है पर आप कर्म से अवश्य बध गये। अत असत्य, चोरी, कुशील परिग्रह सब हिसा ही है। झूठ बोलना भी हिसा है, परिग्रह का सचय करना भी हिसा है, कुशील सेवन भी हिसा है। भो ज्ञानी आत्माओ! चोरी करना भी हिसा ही है। इसीलिए मनीषियो! ध्यान रखना, इस तत्त्व को समझना है। मेरी आत्मा समयसार–भूत बने और जब तक समयसार नहीं बन पा रहे हो तब तक एक 'समयसार" के उपासक तो बने रहे और ऐसी भावनाए भाए कि मेरी आत्मा मे भगवती आत्मा की अवस्था प्रकट हो।

"राग–हिसा, राग का अभाव–अहिसा"

यत्खलुकषाययोगात्प्राणाना द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करण सुनिश्चिता भवति सा हिसा।।४३।।

अन्वयार्थ कषाययोगात् = कषाय रूप परिणमन हुए मन वचन काय के योगो से। यत द्रव्यभावरुपाणम = जो द्रव्य और भाव दो प्रकार के। प्राणाना = प्राणो का। व्यपरोपणस्यकरण = व्यपरोपण या घात करना है। खलु सा = निश्चय से वह। सुनिश्चिता = भली–भाति निश्चय की हुई। हिसा भवति = हिसा होती है।

अप्रादुर्भाव खलु रागादीना भवत्यहिसेति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य सक्षेप ।।४४।।

अन्वयार्थ खलु = निश्चय करके। रागादीना = रागादि भावो का। अप्रादुर्भव = प्रकट न होना। अहिसा = अहिसा है और। तेषामेव उत्पत्ति = उन्हीं रागादि भावो की उत्पत्ति होना। हिसा भवति = हिसा होती है। इति = ऐसा। जिनागमस्य सक्षेप = जैनसिद्धात का सार है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।३१।।

भो मनोषियो! आचार्य महाराज अमृतचद्र स्वामी ने कथन किया है कि हिसा झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह पाच पाप है पर यथार्थ मे कोई पाप है तो हिसा ही है। उस हिसा से बचने के लिए ही आगम मे शेष चार पापो की भी चर्चा की है। जब आपने दूसरे के द्रव्य का हरण किया है, चाहे आपने अन्य हेतुओ से चोरी की हो वह भी हिसा है। असत्य भाषण किया है वह भी हिसा है। एक बार के अब्रह्म सेवन मे नवकोटी जीवो की हिसा होती है। मैं तो यह मान रहा था कि यह सब विभूति मुझे पुण्य के योग से प्राप्त हुई है। परतु परिग्रह पाप का सयोग करा के ही जी रहा है। परिग्रह हेतु जीवो का घात हिसा ही है।

भो ज्ञानी! लोक मे किसी का वध करने को हिसा कहा जाता है, परतु जिनेद्र की वाणी कहती है कि बदनाम करना भी हिसा है। इसलिए जीवन मे बध करने वाले ने एक समय मे तुझे कष्ट दिया है लेकिन बदनाम करने वाला क्षण–क्षण मे कष्ट दे रहा है। जैसे एक जननी अपने शिशु की रक्षा

करती है, ऐसा ही मुमुक्षु जीव वह जननी है, जिसे विश्व के प्राणीमात्र नवजात शिशु नजर आते हैं। यह द्रव्य–हिसा की बात कर रहे हैं, जिसमे मात्र प्राणो की हिसा को हिंसा कहते हैं। लेकिन 'नमोस्तु' शासन कहता है, भो ज्ञानी! किसी के भावो को विकल्पो मे डाल देना भी हिसा ही है। इसलिए द्रव्य–हिसा और भाव–हिसा आगम मे दो प्रकार का कथन है।

भो ज्ञानी! जीव वध के परिणाम करना, भाव हिसा है और किसी के प्राणो का वियोग करा देना, यह द्रव्य हिसा है। अरे! दोनो मार्गों के त्यागी जब तक नही बनोगे, तब तक मोक्ष–मार्गी नही हो। मुमुक्षु जीव उभय हिसा का त्यागी होता है। हम कभी–कभी निष्प्रयोजन हिसा भी कर लेते है। जिसमे टेलीविजन तो सप्त व्यसन का डिब्बा है। मैच आया बोले–वह जीत गया यह हार गया, क्या मिल गया आपको? कुछ नहीं मिल रहा है कुछ जा नहीं रहा, लेकिन आनद मना रहे हो–अत हिसा तो चल रही है। दो देशो का क्रिकेट मैच चल रहा है और आप लड्डू बॉट रहे हैं, क्योकि हमारा देश जीता है। सीरियल देख रहे थे, किसी का घात हो गया, आपकी ताली बज रही है, भाव–हिसा कर ली। किसी ने किसी को डाट दिया, मैं भी सोच रहा था अच्छा किया आपने। क्या हुआ? हिसा की अनुमोदना कर ली। चाहे स्वय करो चाहे दूसरे से करवाएँ अथवा हिसा करने वाले की प्रशसा कर देना यह हिसा ही है। कितनी बार स्वय की भी हिसा की है। जरा सी बात पर मान आ गया क्रोध आ गया। माँ जिनवाणी कह रही है कि उतने काल तक आपने अपने स्वभाव का घात किया है, इसलिए आप हिसक हो। अहिसक वही हो सकता है जिसने कषायो का शमन कर दिया हो। पूर्ण अहिसक चौदहवे गुणस्थान मे विराजे अरिहत भगवान ही हैं। जहाँ पर अठारह हजार शील की पूर्णता होती है–ऐसे सयोग केवली भगवान ही पूर्ण अहिसक है परतु अहिसा का प्रारभ महाव्रत के साथ, छटवे गुणस्थान से प्रारभ हो जाता है और अष्ट मूलगुणो के रूप मे अविरत–सम्यकदृष्टि जीव के भी शुरू हो जाता है।

भो ज्ञानी! मन,वचन काय तीनो योग हैं। किसी ने मन मे सोच लिया कि जितने ससार के लोग है वे सब नाश को प्राप्त हो जाएँ। अपने जनक तक को मारने के विचार मन मे आते हैं। अरे भगवान! दुनियॉ को तो काल ले गया इनको क्यो नही ले जा रहा है? यह तो अपनी आयुकर्म पूरा होने पर ही जायेगे। अहो! यह विचार कर आपने अपने कर्मकाल को जरूर बुला लिया है। सोचो, इससे बडा हत्यारा दुनियॉ मे और कौन होगा, जो अपने माता–पिता को मारने की बात सोच रहा है। जब वे जन्मे थे तो अपने पुण्य से ही जन्मे थे और उनकी मृत्यु भी आयु के क्षय होने पर ही होगी।

भो ज्ञानी! यदि कर्म–सिद्धात को जानते हो तो, शत्रु को भी शत्रु–दृष्टि से मत देखो। तुम दूसरे की खाल को निगल रहो हो, दूसरो के रक्त को मुख से नही तो बोतलो के माध्यम से पी रहे हो–यह हिसा ही है। अरे! मृत्यु को प्रति समय अपना प्रिय मान कर चलना, लेकिन सजगता

बनाकर चलना। आयुकर्म प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है। जब मरण चल ही रहा है तो मृत्यु जब होना होगी, तब होगी। अत सहजता से चलो। अहो! मरण श्रेष्ठ है, किन्तु दूसरे प्राणी के कलेवर को स्वीकार करना श्रेष्ठ नहीं हैं। जो मरण से डर रहा हो तो ऐसा लगता है कि वह ससार से डर रहा है कि कही यह ससार न छूट जाए। अरे ज्ञानी! अभी तू सिद्ध नही बना है दूसरी पर्याय मिल जायेगी। जितनी इच्छाए अभी पूरी नही हुई है, वह आगे कर लेना। लेकिन ध्यान रखो, वे भी तभी पूरी होगी जब दूसरे की हिसा नही करोगे। तुमने लोभ–प्रलोभन देकर दूसरे के हृदय का प्रत्यारोपण अपने हृदय मे करा लिया और उसे कमजोर बना दिया, वह तो मृत्यु के मुँह मे ही चला गया। भावना करो कि प्रभु! ऐसे रोग ही न हो। असाता का उदय भी आ जाए तो अपने परिवार से कह देना–बेटा! णमोकार–मत्र सुना देना, कोई वनस्पति आदि की औषधि हो तो करा देना, लेकिन मेरी अन्तिम विदा मे तुम किसी के मॉस को मत खिला देना। चाहे गोली बनाकर खिलाओ, चाहे तरल बनाकर पिलाओ, लेकिन अश तो है। यदि अहिसक हो तो, ध्यान रखो, पूजा–विधान कर लेना। जब अच्छे से सोच बन जाये तो कहना–प्रभु! हम परम प्रिय मृत्यु का वरण करेगे पर किसी जीव का मरण कराकर जीवन नही जीना चाहेगे।

भो ज्ञानी! स्वयभूरमण समुद्र का महामच्छ छ माह जागता एव छ माह सोता है। जब वह महामच्छ सो जाता है तो उसका दो सौ पचास योजन का मुख खुला रहता है उस समय उसके मुख मे अनेक जीव आते है, बाहर निकलते हैं। उसके कान मे एक छोटा सा तन्दुल मच्छ बैठा होता है, उसे कर्णमच्छ भी कहते हैं। वह सोचता है यदि मुझे इतनी बडी अवगाहना मिली होती, तो मै एक को नही छोडता। उस महामच्छ के कान के मल को खाने वाला तन्दुलमच्छ ऐसे कलुषित–भाव करके सातवे नरक जाता है। पता नही यह जीव बिना सताए कितने जीवो को सता रहा है? तुम सबल हो तो निर्बल को सता रहे हो। लेकिन कर्म कह रहा है कि तुम मेरे साथ रहो, हम सबको सबल बनाकर रखेगे सबका साथ देगे। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे है कि कषाय के योग से जो प्राणो का व्यपरोपण चल रहा है, चाहे तुम किसी पर बरसो, न बरसो पर यदि तुम अतरग मे जल भी रहे हो तो भी हिसा हो रही है।

भो ज्ञानी! एक मॉ कहती है कि हम तो अपने बेटे को डाक्टर बनाऐगे, परन्तु पिता कहता है कि हम तो वकील बनाऐगे। बात ऐसी बढ गई कि घर मे महाभारत शुरू हो गया। पडोसी ने हल्ला सुना, तो पूछता है–आप लोग तो बडे प्रेम से रहते थे, यह हल्ला क्यो होने लगा? तुम्हे क्या मालूम कि हमारे घर की क्या विडम्बना हो रही है? पत्नी कहने लगी–मैं बीमार रहती हूँ, इसलिए सोचा है कि अपने बेटे को डाक्टर बनाऊगी। पति कहने लगा–आपको मालूम नही कि मेरे कितने केस चल रहे है हम तो वकील बनाएँगे। पडौसी बोला– भैया! उस बालक से तो पूछ लो, वह क्या बनना चाहता है? जैसे ही यह शब्द आया कि बालक से तो पूछ लो तो दोनो हँसकर कहने लगे कि बालक

तो अभी जन्मा ही नहीं है। अभी तो मात्र गर्भ धारण हुआ है इससे पहले युद्ध शुरु हो गया। अहो! जो आपके सामने है ही नहीं, उसके बारे मे सोच–सोच कर आपने ऐसे परिणाम कर लिए कि रामायण–महाभारत हो गयी। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी का चिन्तन कितना बेजोड है ? वह कह रहे हैं कि जब भाव ही नहीं हो, तो द्रव्यहिसा कैसे होगी? इसलिए पहले द्रव्यहिंसा का कथन नहीं किया, पहले भावहिसा का कथन किया है।

भो ज्ञानी! रागादिक भावो को न होने देना इसका नाम अहिसा है। योगी को यह भी विकल्प नही होता कि यह पेन मेरा है। यदि यह विकल्प आ गया, तो हिसा हो गयी। क्योकि तूने निज–भाव से हट– कर, पर मे राग किया है और राग से कर्मबध होता है। अत यहॉ कह रहे हैं कि पर–द्रव्य मे राग का होना, हिसा है।जिसने राग के पहाड बनाये हो, वह हिसा अहिसा कैसे हो सकती है? अहो! राई मात्र राग जब बध का कारण है, तो विशाल राग अबध का कारण कैसे हो सकता है? इसलिए जितना बने, उतना हिसा से हटते जाओ। बस इतना ध्यान रखना कि यदि अहिसा मे जीना चाहते हो तो रिश्ता बनाकर ही चलना। जैसे रिश्तेदार घर मे आते है तो खूब सम्मान कर लेते हो परतु उनके जाने पर विकल्प नही आता। ऐसे ही परिवार को रिश्तेदार ही समझो। उनको हकदार या साझेदार बना लिया तो समझ लो कि कर्म का साझा होगा।

भो ज्ञानी! यह हिसा पुण्य के वेग मे हो रही हैं। व्यक्ति जीव को जीव नहीं समझता सतान को सतान नही बहु–बेटी को बहु–बेटी नही समझ पा रहा है। उसे अहकार है कि मेरे पास सबकुछ है। लेकिन ध्यान रखना, उस जीव का तो अशुभ कर्म का उदय है ही, पर आपने नवीन कर्म का बध कर लिया। यह मदिर की बाते नही हैं, यह घर की बाते हैं। धर्म तो आपके घर से होगा, मदिर मे तो धर्म सीखा जाता है। धर्म का पालन तो घर मे ही होता है। यहाँ आप से कहा जाता है कि पानी छानकर पियो तो क्या आप यहॉ (मदिर मे) पी रहे हो छन्ना तो घर पर है। लोगो की धारणाऍ बडी विचित्र है। दिन भर पाप करते हैं और थोडी देर को मदिर आ गये। बोले–महाराजश्री! हम धर्म कर आये। अहो! आपने धर्म नही किया, आप तो मात्र धर्म के स्थान पर गये थे, धर्म तो घर पर ही होगा।

मनीषियो! अहिसा की चर्चा प्रारभ हो गयी है। आपके नल की टोटी मे छन्ना लगा है। अहो! सोचो तो, आपको पानी की थैली मे बद कर दिया जाये तो क्या हालत होगी तुम्हारी? बिलछानी कब करते हो? बोले– महाराजश्री जब वह सडकर गिर जाएगी, तो स्वय हो जाएगी। आगम मे लिखा है–एक मॉ से एक बूद बिना छने जल की नीचे गिर गई थी। एक बूद गिरने से सात भव सूकरी बनी सात भव सियालिनी बनी, सात भव गधी बनी। एक बूद गिरने से उसकी यह दशा हुयी। अब बताओ, आपकी क्या हालत होगी? "नदियन बिच चीर धुवाऍ, कोसन के जीव मराये" कपडे

साफ होकर नहीं आये और उस धोबी को डाट दिया। देखो, हिसा–जन्य रौद्र–ध्यान चल रहा है। यह किसमे आनन्द मना रहे हो? वस्त्र साफ होकर आये प्रसन्न हो गये। परन्तु यह नहीं पूछा कि यह कपडे साफ कैसे हुए? कास्टिक सोडे, सर्फ या साबुन से धुलते हैं। उसकी एक बूद आँख मे टपका कर देखना। हमारी क्या दशा हो जायगी? जब साबुन–सोडा तुम्हारी नाली से बहकर जाता है, तब नाली के जीवो की हालत क्या होती है? भो ज्ञानी! जब तक हम कुछ नहीं जानते थे तो समझते थे, मैं बहुत बडा ज्ञानी हूँ। जब से कुछ पढा, तो लगने लगा कि मैं सागर मे पानी की बूद भी नही हूँ। इसलिए रागादि की उत्पत्ति नही होना, अहिसा है और रागादि की उत्पत्ति होना हिसा है–ऐसा जिनागम मे सक्षेप से कथन किया है। इसलिए जीवन मे ध्यान रखना विवेक के साथ, यतन के साथ काम करो, जिससे कर्म का बध न हो।
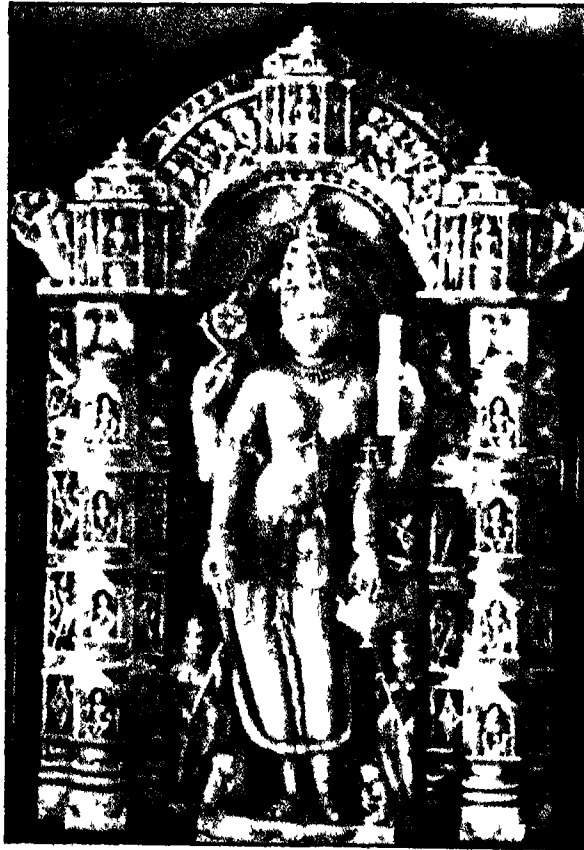
वाग्देवी, पल्लू बीकानेर सग्रहालय

'प्रमाद मे हिसा, अप्रमाद मे अहिंसा'

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि ।
न हि भवति जातु हिसा प्राणव्यपरोपणादेव ।। ४५ ।।

अन्वयार्थ अपि = और। युक्ताचरणस्य = योग्य आचरण वाले। सत = सन्त पुरुष के। रागाद्यावेशमन्तरेण = रागादिक भावो के बिना। प्राणव्यपरोपणात् = केवल प्राण पीडन से। हिसा = हिसा जातुएव = कदाचित् भी। न हि भवति = नहीं होती।

व्युत्थानावस्थाया रागादिना वशप्रवृत्तायाम्।
म्रियता जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुव हिसा।। ४६ ।।

अन्वयार्थ रागादिना =रागादिक भावो के। वशप्रवृत्तायाम्= वश मे प्रवृत हुई। व्युत्थानावस्थाया = अयत्नाचाररूप प्रमाद अवस्था मे । जीव म्रियता = जीव मरे। वा मा म्रियता = अथवा न मरे परतु। हिसा ध्रुव = हिसा तो निश्चयकर। अग्रे धावति = आगे ही दौडती है।

|| पुरुषार्थ देशना ||३२||

भो मनीषियो। आज तक मैने अनत पर्यायो को स्वीकारा अनत पर्यायो मे अनतो को जाना है, अनत भावो को किया, परतु अहिसा–भाव नही हुआ। अहिसा–भाव हो गया होता तो आज कलिकाल मे उत्पन्न नही हुआ होता। अहो। मैंने स्वय का भी घात किया है, स्वय से भी घात किया है। भो ज्ञानी। लगता जरूर है कि मैंने दूसरे का घात किया, परतु दूसरे की तो पर्याय का घात होता है लेकिन परिणामो का घात तेरा ही होता। दूसरे की पर्याय का विनाश हुआ है पर तेरी परिणति का पहले विनाश हुआ है। पर्याय जितनी महत्वशाली है, परिणति उससे कई गुनी महत्वशाली है। पर्याय पुन मिल जाती है परतु वैसी परिणति पूरी पर्याय मे नही मिल पाती। एक समय के निर्मल परिणामो से लगता है कि योगी की क्या दशा होगी और एक क्षण के परिणाम विकृत कर लेने पर लगता है कि क्रोधी की क्या दशा होती होगी ? यह किसी से पूछने की आवश्यकता नही है। तीर्थंकर भगवान ने यही तो कहा है–"कषाय के उदय मे तीव्र परिणामो से चारित्र–मोहनीय–कर्म का आस्रव होता है। हम आज तक साधु नही बन पा रहे , अहिसा के साथ नही चल पा रहे है, क्योकि कषाय की तीव्रता मे ऐसे चारित्र मोहनीय कर्म का बध कर लिया है

कि आज सयम धारण करने के हमारे परिणाम नही हो पा रहे।

भो ज्ञानी! मुमुक्षु जीव विभूतियो को देखकर प्रसन्न नहीं होता। वह यह ध्यान रखता है कि विभूति–वैभव मेरे वैभव–नाश के हेतु हैं। वैभव दो हैं– एक नि श्रेयस वैभव और एक अभ्युदय वैभव। अभ्युदय यानी स्वर्गादि विभूतियॉ, चक्रवर्ती आदि का वैभव। नि श्रेयस वैभव यानी शुद्ध सुख। यदि नि श्रेयस चाहते हो तो आज से लोक का श्रेय लेना बद कर दो। अहो! श्रेयो के पीछे नि श्रेयसो को खोखला कर लिया। मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे श्रेय दे, लेकिन श्रेय नि श्रेयस नहीं है। अरे ज्ञानी! अच्छा करोगे तो अपने आप अच्छा कहलाओगे। इसलिए अच्छा करना, पर अच्छा कहलाने के भाव मत लाना। श्रेय पाने वाले अहिसा का पालन कभी नही कर पायेगे, क्योकि उन्हे श्रेय दिखता है। फिर हिसा असत्य और स्तेय मे श्रेय नजर आने लगता है। मिथ्या विनय मे इस श्रेय के चक्कर मे वह विपरीतपने को भी नही समझ पाता। अत कुनय अज्ञानता और असयम को भी नही समझ पाता।

भो चेतन! श्रेयो को प्राप्त करने वालो के द्वारा कभी भी धर्म–प्रभावना नही हुई है और नि श्रेयस की दृष्टि से जिसने धर्म के मार्ग को चुना, उसके नियम से धर्म की प्रभावना हुई। आप स्वय कहने लगते हो कि प्रभावना तो कर रहे है, लेकिन लक्ष्य अपना ही दिखता है तो जितना हमने किया था पूरा समाप्त हो गया। आचार्य भगवन अमितगति स्वामी जो कि सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे उन्होने योगसार प्राभृत' नाम का ग्रथ लिखा। अहो ज्ञानियो! भवाभिनदी मत बनो अभिनदन मोक्ष का करो। वासनाओ के द्वार यह भोगो के वदनवार भव के अभिनदन के लिए तुमने खडे कर लिए कि मै भव का अभिनदन करता हूँ। यह भोग भी सोचते है और कर्म भी सोचते है कि अच्छे लोग मिले हैं यह तो हमारा अभिनदन कर रहे है। अहो! लोकोत्तराचार मे जीने वाली आत्माओ! लोक का अभिनदन मत करो। यह अभिनदन नही बधन है और बधन से बचना चाहते हो तो भोग–विनाश के कार्य करो, क्योकि स्वभाव से बाहर जब–जब भी जाओगे तब–तब भव का अभिनदन ही होगा भव का ही बधन होगा। इस पर्याय का अभिनदन मनाकर तू खुश हो रहा है। अहो मुमुक्षु आत्मन्! मोक्ष–मार्ग मे आकर तेरी दृष्टि पर्याय के अभिनदन पर ही टिकी है। अभिनदन तो तेरा तभी होगा जब तेरा कर्म–बधन छूट जायेगा फिर तो छद्मस्थो के मुख से नही तेरा अभिनदन सर्वज्ञ के मुख से होगा। निर्ग्रंथ भी तुम्हे शीश झुकायेगे। इसलिए आत्मा–अभिनदन आत्मा से करो, यही शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा है। भो ज्ञानियो! जब सौभाग्य का विनाश हो जाता है तब अहो भाग्य का प्रादुर्भाव होता। इसलिए सौभाग्य तक ही मत सोचते रहना तुम कुछ और चिन्तवन करना। इससे आगे भी वस्तु है। जो अहोभाग्य शाली बन जाता है, निर्ग्रंथ बन जाता है दिगम्बर बन जाता है फिर वह हस आत्मा परमहस की ओर बढती है। सौभाग्य–अहोभाग्य भी छूट

जाता और वहाँ परम शब्द भी छूट जाता। परमेश्वर जब समवशरण मे पहुँच जाते हैं फिर वह 'परम' शब्द भी छूट जाता है, उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं और अनुपम होकर उपमातीत हो जाते हैं।

भो ज्ञानी! प्रमाद को छोड अब जाग जाओ। आचार्य उमास्वामी महाराज ने हिसा का स्वरूप बताते हुए कहा है–"प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपण हिसा" प्रमाद के योग से जीवो का विघात करना हिसा है। प्रमाद यानी 'कुशलेषु अनादरा प्रमादा,' कुशल क्रियाओ मे अनादर भाव होने का नाम प्रमाद है। भो ज्ञानियो! जिसने कर्म के कुशो को अपने भेदविज्ञान के नखो से विवेक के साथ निकाल कर फेक दिया है, वही कुशल परमेश्वर, परम परमात्मा परमहस–आत्मा है और जब तक तुम कर्मो को नही निकाल पा रहे तुम कितने ही कुशल बन जाओ लेकिन अपने ही हाथ फाड रहे हो। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है–' प्रमाद को छोड दो प्रमाद रहेगा तो हिसा समाप्त होने वाली नही है।"

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र स्वामी के श्रावकाचार की शैली तो देखो और जब आप कही 'मूलाचार' को सुनोगे तो फिर आप कहोगे कि भगवान की सत्ता कैसी निर्मल होगी ? जब एक श्रावक की चर्या ऐसी है, फिर यति की चर्या कैसी होगी ? परमेश्वर का परिणमन कैसा होगा? इसलिए आचार्य योगेद्र देव स्वामी ने लिखा है कि– 'यदि किसी को साधु–स्वभाव पर शका हो तो एक घटे सामायिक कर लो और यदि किसी को सिद्ध–स्वभाव पर शका हो तो एक घटे साधु बनकर बैठ जाओ और फिर देखो कोई चिता नही, प्रसन्न–प्रमुदित है।' जब कभी यह शका हो कि भगवान कैसे होगे ? तो साधु बनकर फिर सामायिक करना। 'यो चिन्त्य निज मे थिरभये, तिन अकथजो आनन्द लहो'।

भो ज्ञानी! श्रद्धापूर्वक और विवेकपूर्वक क्रिया करो भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक रखो। कुछ भी आया खा लो यही तो मूल मे भूल है। मनीषियो! जीवन मे भक्ष्य–अभक्ष्य की गोष्टी मदिर मे करो–न–करो लेकिन घर मे बैठक जरूर कर लेना। यदि माता–पिता ने भक्ष्य–अभक्ष्य की गोष्टी कर ली, तो पता नही कितने श्रावको, मुनियो को जन्म दे देगे। ध्यान रखना, आजकल बहुत गोष्टियाँ हो रही हैं। गोष्टी' शब्द मनुष्यो से उत्पन्न नही हुआ, जब गाये चरकर आती हैं और एक स्थान पर बैठ जाती हैं, फिर वो जुगाली करती है रुथन करती हैं अर्थात् वहाँ बैठकर गोष्टी होती है। भो ज्ञानियो! ऐसे ही तत्त्व को वह एकसाथ बैठकर घर मे जुगाली किया करो कि आज जिनवाणी मे क्या कहा है, यही तो गोष्टी है। अहो! रुथन नही करोगे, तो पाचन नहीं होगा, अजीर्ण हो जायेगा और अजीर्ण का परिणाम तो आप सब भोग ही रहे हो। एक गुट इधर जा रहा है, एक उधर जा रहा है। रुथन कर लिया होता, जुगाली कर ली होती अर्थात् तत्त्व को पढने के बाद चितवन द्वारा व्यवस्थित ज्ञान अपने मे प्रवेश करा देता तो शका/भ्रम मे नही पडता, एकात मे नही जाता, क्योकि

उसके लिए ज्ञान का अजीर्ण नहीं है। मनीषियो! आचार्य भगवन् कह रहे हैं– राग–द्वेष के बिना युक्तिपूर्वक जो आचरण करता है उनकी कभी भी हिसा नहीं होती। यदि कदाचित किसी जीव का विघात भी हो जाये तो भी बधक नही अबधक है, क्योकि बध करने के भाव नहीं हैं। एक यति ईर्यापथ से गमन करके जा रहे हैं और कोई जीव शीघ्रता से पैर के नीचे आकर घात को प्राप्त हो जाए, फिर भी वे बधक नही हैं। अहो! यदि प्रमत्त शब्द नही जोडेगे तो अहिसा महाव्रत नाम की कोई वस्तु नहीं होगी। अब समझना, मुनिराज आहार कर रहे है, बोल रहे हैं प्रवचन चल रहे है तो हिसा होगी या नहीं ? श्वास ले रहे है, हिसा तो होगी, पर यहाँ जीव–वध करने के परिणाम नही है, किसी को कष्ट देने के भाव नही है। इसी प्रकार शल्यक्रिया करते–करते चिकित्सक के हाथ से मरीज की मृत्यु हो जाए, फिर भी वह हिसक नही है। कोई व्यक्ति किसी के हाथ पर ब्लेड मार दे, तो आप दौडकर थाने मे पहुँचोगे। जबकि डाक्टर पूरा पेट काट रहा है, फिर भी आप दौडकर नही जाते हो, क्यो ? तत्त्व को समझना। वहॉ उस डाक्टर के उस जीव की रक्षा करने के भाव थे, पर रक्षा करने पर भी रक्षा नही कर सका फिर भी वह बधक नही है, अबन्धक है। अहो ज्ञानी! इसमे छल ग्रहण मत कर लेना कि जानकर मार दिया बोले–हमारे भाव नही थे। अनर्थ हो जायेगा। इसलिए आगम को आगम–दृष्टि से समझना, लेकिन प्रमाद–अवस्था मे रागादि के वश होकर प्रवृति करते हो तो जीव मरे अथवा न मरे उसके आगे–आगे हिसा निश्चित दौड रही है। मार्ग मे सिर उठाये चले जा रहे है नीचे नही देख रहे। भो ज्ञानी! जीव बचे तो अपने पुण्य से बचे पर तुम्हारी दृष्टि से नही बचे। एक व्यक्ति ने बाण छोडा परतु लक्ष्य पर नही लगा, वह बच गया अपने पुण्य के योग से लेकिन तुम्हारी परिणति से नही, तुम्हारी परिणति तो मारने की थी। कर्म–सिद्धात कहता है कि आप जिस दृष्टि से भरकर आये हो, उसी दृष्टि से बध चुके हो। भो ज्ञानी! 'आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी' ने प्रवचन सार मे कहा है–

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिसा।
पयदस्स णत्थि बधो हिसामेत्तेण समिदस्स ।। २१७।।

अयत्नाचार है तो नियम से हिसा है। एक मॉ ने उदर मे शिशु हत्या के लिए गोली खा ली, परतु बेटा नही मरा गर्भ–वृद्धि को प्राप्त हुआ और पुत्र ने जन्म ले लिया। होनहार थी कि बेटा हुआ, पर माता तो बेटे की हत्यारी है, हिसक है, आपने सतान का घात तो किया। हे माताओ! आपने पूर्व मे मायाचारी की है सो तुम्हारी यह अवस्था दिख रही है, कम–से–कम अब तो ऐसा मत करो। इस नारी पर्याय का उच्छेद कर दो। वे पिता भी अपने आप को पवित्र पिता न समझ ले, यदि गोली खाने को बाध्य किया है तो आप नारी से भी पतित हो। नारी तो पर्याय को भोग रही है, वेदन कर रही है, पर तुम नारी–पर्याय का बध कर रहे हो। अहो! जीवन मे ध्यान रखना, आगे–आगे हिसा को मत दौडाओ, अहिसा की ओर बढो, परम ब्रह्म की ओर बढो।

'कषायवान ही कसाई है'

यस्मात्सकषाय सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्।
पश्चाज्जायेत न वा हिसा प्राण्यन्तराणा तु ।। ४७।।

अन्वयार्थ यस्मात् आत्मा = क्योकि जीव। सकषाय सन्= कषाय भावो सहित होने से। प्रथमम् आत्मना = पहले आपके ही द्वारा। आत्मानम् हन्ति = आपको घातता है। तु पश्चात् = फिर पीछे से चाहे । प्राण्यन्तराणा = अन्य जीवो की हिसा। जायेत वा न = हिसा होवे अथवा नहीं होवे।

हिसाया अविरमण हिसापरिणमनमपि भवति हिसा।
तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपण नित्यम् ।। ४८।।

अन्वयार्थ हिसाया अविरमण =हिसा से विरक्त न होना। हिसा = हिसा और। हिसापरिणमनम् अपि = हिसारूप परिणमन भी। हिसा भवति = हिसा होती है। तस्मात् प्रमत्तयोगे = इसलिये प्रमाद के योग मे। नित्यम् = निरन्तर। प्राणव्यपरोपण = प्राणघात का सद्भाव है।

|| पुरुषार्थ देशना ||३३||

भो मनीषियो! प्रमाद (आलस्य) जीवन का सबसे बडा शत्रु है। आत्मा की चैतन्य ज्योति को बुझाने वाला झझावत है। हमारे देखते–देखते आदिनाथ स्वामी भगवान बन गये अनत चौबीसियाँ निकल चुकी है परन्तु हम सोचते ही रहे कि काललब्धि आयेगी सो वह काललब्धि आज तक नही आ सकी। यह होनहार पर बैठे रहे होनहार ऐसी हो गई कि पचमकाल के मनुष्य बनना पडा। मनीषियो! परमार्थ दृष्टि से देखो तो तुम परमात्मा बन सकते थे, लेकिन प्रमाद ने, आलस्य के अनुत्साह ने आपको आगे बढने ही नही दिया।

भो ज्ञानी! आवश्यकता भोजन की नही, भूख की है। भूख होती है, तो भोजन की खोज हो जाती है। भूख नही होती है, तो भोजन रखा भी होता है तो भी कुछ ऐसे प्रमादी होते हैं कि भूखे रह लेते है। कहते हैं– समय नही मिला। माँ जिनवाणी कह रही है–बेटा! यह रत्नयत्र का पाथेय तुझे रख रही हूँ, तू उसे सेवन कर लेना, लेकिन जीव ऐसा प्रमादी है कि अनत भव की यात्राये निकल गई लेकिन आज तक इसने रत्नत्रय के पाथेय को खोल के ही नहीं देखा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी, उमा स्वामी, अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि–प्रमाद ही हिसा है। ध्यान से समझना कि कुछ

लोगो को तो मनुष्य–पर्याय तक का ज्ञान नहीं, कि मैं मनुष्य हूँ , कि तिर्यंच हूँ, क्योकि बेचारे दिन भर कमाते हैं और शाम को आकर सो जाते हैं। मालूम ही नही है कि मनुष्य पर्याय मे और क्या होता है। अहो! आप इसलिए महान नही हो कि भोजन कर लेते हो, सतान को जन्म दे देते हो सो जाते हो और परिग्रह का सचय कर लेते हो। हे मानव! तू इसलिए महान है कि तुझमे महाव्रत धारण करने की क्षमता है। आहार, मैथुन, परिग्रह और भय यह चार सज्ञाये ससार के प्रत्येक जीव मे (एक इन्द्रिय जीव मे भी) होती हैं। आपके पास एकमात्र रत्नत्रय धर्म विशेष है। यदि उसे भी स्वीकार नहीं कर पा रहे, तो ध्यान रखना, आप खेत मे सुरक्षा करने वाले उस मनुष्य के पुतले के तुल्य ही हो जिसे आप बिजूका कहते हो।

भो ज्ञानी आत्माओ! जिस रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति के लिए पूर्व मे आपने कितने पुरूषार्थ किये होगे–कषाय की मदता भावो की ऋजुता मार्दव परिणाम कर लिये थे, सो मनुष्य बन गये। भो ज्ञानी! अब क्यो भूल रहे हो ? बनिया के बेटे हो जितना लाये थे उतना तो लेकर जाना। कही तुम मनुष्य से मनुष्य भी नहीं बन पाये, तो ध्यान रखना आप अपनी ही जाति को बदनाम कर दोगे। उमा स्वामी महाराज ने कहा है कि जिसके स्वभाव मे मार्दवपना है वह मनुष्य है और यदि स्वभाव मार्दव नही है तो यह चर्म मनुष्य की अवश्य है पर धर्म मनुष्य का नही। ईर्ष्या ग्लानि के भाव यदि आ रहे तो मनुष्य नहीं है, क्योकि दूसरो को गिराने के, दूसरे को पटकने के, दूसरे को मारने के भाव नर मे नहीं नारकियो मे होते हैं। इसलिए ध्यान रखना नर बन जाना कठिन नही हैं पर नर बन कर रहना बहुत कठिन है। आप नर बन गये हो, नारकी बनने के लिए नही, नरोत्तम बनने के लिए बने हो। अरिहत आत्मा ही नरोत्तम हैं वे नर से ही बने हैं और आप भी नरोत्तम तभी बनोगे, जब प्रमाद छूट जायेगा।

भो ज्ञानी! जिस जीव की होनहार न्यून होती है, उसकी सोच भी भिन्न होती है। जिस जीव के अशुभ दिन आना होते है उस जीव के विचारो मे ही हीनता नही आचरण मे भी हीनता प्रारम्भ हो जाती है और उसके भोजन मे भी हीनता आने लगती है। कुदकुद स्वामी ने समयसार जी के सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार मे लिखा है–

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि।
गुडदुद्धपि पिवता, ण पण्णया णिव्विसा हुति ।। ३४० ।। (स सा)

गुड से मिश्रित दूध पिलाइये लेकिन विषधर को निर्विष नही किया जा सकता। इसी प्रकार अशुभ आयु का बध जिसने कर लिया है, तीर्थंकर प्रभु की सामर्थ्य नही कि उसे टाल सके। अपकर्षण हो सकता है, छूट नही सकते।

अहो श्रावको! आरम्भी, उदयोगी, विरोधी, सकल्पी यह चार प्रकार की हिसा हैं। इनमे सकल्पी हिसा का त्यागी तो प्रत्येक श्रावक होता ही है। यदि सकल्पी हिसा का भी तुम्हारा त्याग नही है, तो अपने आप को जैन कहना बद कर देना। अहो! भीख मागने वाला भगवान का नाम लेकर पाप से मुक्त होकर चला जायेगा, लेकिन भवनो मे रहने वाली आत्माओ! हिसा का उपदेश

करके तुम कभी भी ससार से पार नही हो सकते। हमारे आचार्य ने तो यहाँ तक लिख दिया कि हम चेटी (दासी) के पुत्र बन सकते हैं, पर हे नाथ! चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त करके मैं मिथ्यात्व की उपासना नही करना चाहता, असयम की उपासना नहीं करना चाहता, क्योकि चेटी का पुत्र,चेटी का पुत्र तो है पर पापी का पुत्र नही। लोग उसे गरीब की दृष्टि से तो देख सकते हैं, पर पापी की दृष्टि से नहीं देखते। इसी प्रकार से भीख माग करके शुद्ध भोजन कर लेना अच्छा है, परन्तु अनत जीवो का घात करके पकवान खाना अच्छा नही।

भो ज्ञानी! आप ब्याज का खाते हो। बेचारे गरीब रो रहे है उनके पुत्र भूखे मर रहे है, पर तुम्हें कोई करूणा नही होती है। अहो! ब्याज की खाने वाली आत्माओ! आज तनिक सोच लेना यह सब प्रमाद चल रहा है। मुर्गीपालन, मछलीपालन ऐसे अशुभ कृत्यो मे तुम्हारा धन जा रहा है बैंक से तुम्हे ब्याज मिल रहा है, उसका परिणाम तो भोगना पडेगा। भो ज्ञानी आत्माओ! जिस दिन तुम महावीर स्वामी की अहिसा को समझ लोगे उस दिन आपका जीवन कुछ और ही होगा। इसलिए ध्यान रखना, जिस कुटुम्ब मे जिस जीव की परिणति आपको हिसक झलक रही हो उनसे सम्पर्क कम कर लेना। उनका सम्मान तो रखना परतु उनकी बाते इसलिए मत मान लेना कि वे वृद्ध हैं। हमारी जिनवाणी मे ज्ञान–वृद्ध, चारित्र–वृद्ध तप–वृद्ध एव उम्र–वृद्ध का उल्लेख है। हमारे आगम मे सामान्य वृद्ध की पूजा नही, सयम–वृद्ध की पूजा होती है। अहो! विवेक लगाना। बेटे के भाव हो रहे है दान देने के और पिताजी कह रहे है–अरे! कल क्या होगा ? इसलिए धर्म मे जीने के लिए उत्साह की परम आवश्यकता है। यदि उमग नही है तो आप न श्रावक धर्म का पालन कर सकते हो और न यति धर्म का। उत्साह तो चारित्र के प्राण हैं। जो उत्साह आपको प्रथम दिन था वैसा ही उत्साह अतिम दिन तक रहे, उससे बडा पुण्यात्मा ससार मे कोई नहीं। इसलिए प्रमाद छोडकर अब जाग जाओ। अहो! अज्ञानी सोने को ही सोना मान लेता है परतु ज्ञानी सोने को सोना नही मानता वह तो सयम को ही सोना मानता है। आचार्य महाराज कह रहे हैं–''सोने को समझो इस सोने को छोड दो।

भो ज्ञानी! जो जीव कषाय से युक्त होता है वह सबसे पहले अपने आत्मा से अपनी आत्मा का घात करता है। अहो! अग्नि के अँगारे को हाथ मे उठाकर मारने वाले से पूछना कि दूसरे को लगे या न लगे परन्तु आपका हाथ तो जल ही जायेगा। ऐसे ही जिसके प्रति आप कषाय भाव रख रहे हो उस जीव का घात–अपघात उसके पाप–पुण्य पर निर्भर है लेकिन तुम्हारा घात तो निश्चित है। हे कस! आपने नारायण कृष्ण को मारने के लिए पूतना देवी भेजी, लेकिन वह पलायन कर गई और आप से ही बोली कि आपका पुण्य क्षीण हो चुका। इसीलिए कषाय–परिणाम जब–जब होते है, तब–तब स्वय का घात होता है और जो कषाय करता है, वही सबसे बडा कषायी होता है क्योकि कषायी पर का प्राणघात करता है परन्तु आत्म–कषायी स्वय के ही प्राण का घात करता है। इस कारिका मे आचार्य भगवन् कह रहे है कि आप चाहे हिसा करो या न करो, पाप करो या न करो, लेकिन जब तक तुमने बुद्धि–पूर्वक त्याग नही किया, तब तक आपकी हिसा का त्याग भी

नही है।

भो ज्ञानी! एक घटना आपको बताये–एक मार्ग मे मुनिराज और एक देशव्रत्ती श्रावक जा रहे थे। रास्ते में घास आ गई। मुनिराज पीछे हट गये। श्रावक के मन मे भाव आ गये कि हम कौन महाव्रती हैं, धीरे से निकल गया। बस देख लो व्रत का परिणाम। देशव्रत के नाते सयम तो नहीं गया लेकिन यह बताओ सयम का अभाव हुआ कि नहीं ? इसलिए उसका नाम व्रताव्रत, सयम–असयम है क्योकि देशव्रती त्रस–हिसा का त्यागी होता है स्थावर–हिसा का त्यागी नही होता परन्तु यह नही सोच ले कि मेरा त्याग नही है, तो उसका बध नही होगा। बध तो उसको होगा ही, लेकिन तुम्हारे व्रत मे दोष नही है, क्योकि तुम्हारा इतना ही व्रत था, लेकिन बध छूट जाये ऐसा नही कहना। महाराज जी! मै आलू नही खाता हूँ प्याज भी नही खाता हूँ , लेकिन मै नियम से नही बधना चाहता। पूछा क्यो ? तो बोले– कभी आवश्यकता पडे तो बस यही तो असयम है। बेचारा खा नही रहा जीवन भर, परतु आस्रव चला जीवन भर। क्यो चला ? अदर मे कषाय बैठी थी कि कभी आवश्कता पड जायेगी। यदि कोई नियम ले ले कि मेरा उन्नतीस दिन ब्रह्मचर्य व्रत है। उसका उन्नतीस दिन तक का व्रत है, पर ध्यान रखना, आपके उन दिनो मे भी शका चल रही है, तुम्हारे अन्दर कमजोरी बैठी हुई है। हिसा मे व्यक्ति का परिणमन नहीं है पर वह हिसा के परिणाम भी हिसा ही है। जिसके प्रमाद है, नित्य ही उसकी हिसा है। किसी जीव ने असयम का सेवन नही किया परतु असयम सेवन का भी त्याग नही किया इसलिए उसके नियम से हिसा का दोष लग रहा है जैसे कि आप रात्रि भोजन नही करते हो, परन्तु त्याग नही है। अब क्या होगा ? दो व्यक्ति गये मेहमानी पर। एक रात्रि भोजन का त्यागी था और दूसरा रात्रि भोजन करता नही था। दोनो के सामने रात्रि हो गई। दोनो के सामने बढिया दुग्ध का गिलास आ गया और कहा कि आपका रात्रि भोजन त्याग है ? हॉ। अब देखना दोनो के परिणामो को। पहला तो यह सोचता है इन्हे त्याग बघारना है और हम बीच मे फॅस जायेगे। कहॉ से कहॉ फॅस गये। अब ये तो लेगे नही अपन को बीच मे छोडना पडेगा। जिसका त्याग था वो कहता है–देखो भईया! मै रात्रि मे पानी भी नही पीता हूँ , कितनी दबगता से आवाज निकल रही थी। अब दूसरा क्या सोचता त्याग तो अपना है नही और भोजन हो नही पाये तो अब रात्रि भर चूहे लोटेगे। इसलिये बोले–नही पीना नही पीना और हाथ पकड़ लिया मालूम पडा वह पी गया। दोनो कमरे मे पहुँचे। बोले–क्यो, आप तो पीते नही थे, अब क्या करूँ वास्तव मे पीता तो नही था यानि नियम नही था तो असयम मे गिर गया। इसलिए ज्ञानियो! ध्यान रखना, चाहे आप एक दिन का नियम लो पर नियम के सस्कार डालना शुरू कर दो भले एक घण्टे का लो। भो ज्ञानी! छोटे–छोटे नियम लेते रहोगे तो एक दिन सयमी बन जाओगे महाव्रती बन जाओगे। इसलिए अपने जीवन मे अव्रत के साथ जीना उचित नही है व्रती बनकर ही जिओ।

"निश्चयाभास से मोक्ष की असिद्धि"

सूक्ष्मापि न खलु हिसा पर वस्तुनिबन्धना भवति पुस ।
हिसायतननिवृत्ति. परिणामविशुद्धये तदपि कार्या।। ४९।।

अन्वनार्थ – खलु = निश्चय कर। पुस = आत्मा के। परवस्तुनिबन्धना = परवस्तु का है कारण जिसमे। ऐसी सूक्ष्महिसा अपि = सूक्ष्म हिसा भी। न भवति= नही होती है।तदपि = तो भी। परिणामविशुद्धये = परिणामो की निर्मलता के लिये। हिसायतननिवृत्ति = हिसा के आयतन परिग्रहादिको का त्याग। कार्या = करना उचित है।

निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव सश्रयते।
नाशयति करणचरण स बहि करणालसो बाल ।।५०।।

अन्वनार्थ – य = जो जीव। निश्चयम् = यथार्थ निश्चय के स्वरूप को। अबुध्यमान = नही जानकर। तमेव = उसको ही (अतरग हिसा को ही हिसा का)। निश्चयत = निश्चय श्रद्धान से सश्रयते = अगीकार करता है। स बाल = वह मूर्ख। बहि करणालस = बाह्य क्रिया मे आलसी है। करणचरण = बाह्य क्रिया रूप आचरण को। नाशयति = नष्ट करता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||३४||

मनीषियो! भगवान तीर्थेश महावीर स्वामी की देशना को आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने विषयसुख का विरेचन करने वाली परम औषधि कहा है। अहो ज्ञानियो! जड–देह को जड–औषधियो ने बहुत ठीक किया लेकिन चैतन्य को शुद्ध करने वाली कोई परम औषधि है तो वह वीतराग जिनेन्द्र की वाणी है। शरीर को स्वस्थ्य करने के लिए पानी वाली दवाई मुख से पान की जाती है, परतु चैतन्य को सुख देने वाली औषधि कर्ण–अजुली से पान की जाती है। "पद्म–प्रभमलध ारि देव' ने नियमसार जी' मे, जिनेन्द्र की देशना को पान करने के लिए कर्ण–अजुली बनाने का आदेश दिया है। उसी देशना को एकाग्र चित्त से हम सुन रहे हैं। ससार के सभी वचन स्वार्थ से भरे होते है। मात्र जिनदेव के वचन ही ऐसे हैं जिनमे स्वार्थ की गध भी नही कोई अपेक्षा भी नही। यह अनमोल वाणी है! अमृत चन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि उस जिनेन्द्र की वाणी मे परम वीतरागता को प्रकट करने वाली अहिसा धर्म की वह पवित्र सीख प्रकट हुई है कि जिसको आपने समझ लिया

तो समझ लो कि जीवन मे आपने सब कुछ सीख लिया।

भो ज्ञानी! जब कषाय से युक्त परिणाम होते हैं तो नेत्र रक्त वर्ण हो जाते है, शरीर कम्पायमान हो जाता है। जिसका बाह्य वातावरण ऐसा है तो अदर की लालिमा कैसी होगी? कषायी व्यक्ति का शरीर कापता है। मद्यपायी मे और कषायी मे विशेष अतर नहीं होता। वह भी काँपता है यह भी काँपता है। उसके भी नेत्र लाल हो जाते हैं, इसके भी नेत्र लाल हो जाते हैं। हेय उपादेय का विवेक मद्यपायी एव कषायी दोनो के नही होता। कितने ही घर, नगर उजड गये, इस कषाय की महिमा से। कितने जीव अपनी पर्याय को छोडकर चले गये और कितनी पर्याय को छुड़ा के चले गये। भो चेतन्य!

सुहदुक्खसुबहुसस्स कम्मक्खेत्त कसेदि जीवस्स।
ससारदूरमेर तेण कसाओत्ति ण वेति ।। २८२ ।।
सम्मत्त देससयलचरित्तजहक्खादचरण परिणामे।
घादंति वा कषाया चउसोलअसखलोगमिदा ।। २८३।। गो जी का ।।

जो आत्मा को कसे उसका नाम कषाय है जिससे आत्मा तप्त हो उसका नाम कषाय है। जो यथाख्यात् धर्म का घात कर रही है उसे शुभ कैसे कहे? वह चारो ही अशुभ है। चारो चतुर्गति रूप ससार मे घुमा रही है। अतर इतना है कि तीव्र–कषाय मे तीव्र सक्लेषता होती है मद–कषाय मे मध्यम सक्लेषता होती है। कषाय–भाव ही लेश्या के जनक होते हैं और जैसे ही लेश्या की परिणति बनती है, वैसे ही तेरी आयु–बध की व्यवस्था होती है। जैसे ही आयु–बध की व्यवस्था होती है वैसी ही गति मे तेरा गमन होता है। जैसे ही मति वैसी गति का परिणाम भोगना पडता है। इसीलिए आपको जिस गति की व्यवस्था करना हो, कर सकते हो।

भो चेतन! जिस गति मे जाना, उस गति के परिणामो के पडोसी का ख्याल जरूर रख लेना। गति का पडोसी कषाय है! जब तक कषाय के पडोसी रहोगे, तब तक तुम कही शाति से नही रह सकोगे। चाहे आप असयमी के बीच मे रहना, चाहे सयमी के बीच मे रहना, परतु कषाय तो आपको ही बदलना होगी। कषायी जीव अपनी आत्मा का ही घात करता है। यदि तेरे अन्दर विभाव–परिणति न बने तो भो ज्ञानी! तुझे कोई गुस्सा भी नही दिला सकता। उपादान मे कमी है तो चीटी पर भी गुस्सा करता है। वो तो अज्ञानी थी, पर उस चीटी पर तुम हाथी जैसा क्रोध कर रहे हो। भो ज्ञानी! जो शक्ति तुझे सिद्ध बनने मे लगाना चाहिए वह उस छोटी सी चीटी को मारने मे नष्ट कर दी। मोह राजा को जीतने के लिए, अपनी सत्ता की शक्ति को भूल कर तू कहॉ लिप्त हो रहा है ? इसीलिए ध्यान रखना, किसी से तुम्हारा कुछ हो भी गया हो तो अदर से निकाल देना क्योकि घात उसका नही, घात हमारा है।

हे पर्ण! तू वृक्ष से नाराज मत हो। तू वृक्ष से गुस्सा होकर उसका कुछ नही कर पायेगा। वृक्ष तो आकाश मे खडा है खडा ही रहेगा, लेकिन पतन तुम्हारा ही होगा। शाति से रहो अन्यथा नीचे गिर जाओगे, फिर लगने वाले नहीं हो। वृक्ष मे तो अनेक पत्र आ जायेगे, लेकिन हे पत्र! तू वृक्ष पर पुन नहीं लग पायेगा। अहो ज्ञानी! ऐसे ही तू, पचपरमेष्ठी वीतराग धर्म को छोडकर मत चले जाना अन्यथा तुम्हारा पतन हो जायेगा। वीतराग धर्म को मानने वाले तो अनेको आ जायेगे। यह मार्ग नष्ट नहीं होगा। कषायी जीव मोक्षमार्ग को देखकर परस्पर मे उलझ–उलझ कर नीचे गिर जाते हैं। परतु मोक्षमार्ग के वृक्ष को आच आने वाली नही है। ध्यान रखना, यह शास्वत वृक्ष है। वनस्पतिकायिक नही है पृथ्वीकायिक नही है। यह रत्नत्रय का द्रुम है। वह मोक्षमार्ग के वृक्ष की डाली–डाली पर मुनि रूपी खग जिनेन्द्र की देशना, कठ से उच्चारण कर रहे है। मोक्षमार्ग के वृक्ष की डाली पर बैठकर वे उस परमहस को देख रहे हैं। हे पक्षी! तू पुन वृक्ष पर ही बैठ जा, अन्यथा जमीन पर तो तुझे कोई भी स्वान उठा ले जायेगा कोई बहेलिया बाण मार देगा। जाओ जाकर वृक्ष की डालियो मे छुप जाओ तुम्हारी रक्षा हो जायेगी। भो ज्ञानी आत्माओ! तुम रत्नत्रय के वृक्ष की डाली पर जाकर बैठ जाओ कर्म–बहेलिया से तेरी रक्षा हो जायेगी। कर्म का बहेलिया तो कहता कि तुम कषाय के परिणाम करो और हमने तुमको पकडा। इसीलिए अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि पर की ही अहिसा नही अहिसा स्वय की भी करो। पर की रक्षा तो करना पर की रक्षा के पीछे अपने परिणाम खराब नही करना। यह जिन शासन है। श्रमण सस्कृति नही कहती कि पर की रक्षा के पीछे दूसरो का घात कर दो।

फिर रक्षा हुई कहाँ ? भो चैतन्य! दोनो की ही रक्षा करो। जो दोनो की रक्षा कर रहा है, उसका नाम मुमुक्षु है। इद्रियो से भी आत्मा का घात हो रहा है। इद्रियो की भी रक्षा करो और इन्द्रियो से भी रक्षा करो। इन्द्रियो की रक्षा नही करोगे तो आप भगवान नहीं बन पाओगे और इन्द्रियो से रक्षा नही करोगे तो भी आप भगवान नही बन पाओगे। भो ज्ञानी! पचेन्द्रिय का ही निर्वाण होता है। इन्द्रियाँ विकल हो जायेगी तो सल्लेखना के काल मे जिनवाणी कौन सुन पायेगा ? यदि नेत्र काम करना बद कर देगे तो तू ईर्यापथ का शोधन किससे करेगा ? पैर काम नही करेगे तो जिनदेव की वदना कैसे करोगे ? हाथ काम नही करेगे तो निर्ग्रंथो के हाथ पर ग्रास कैसे रखोगे ? इसीलिए भो ज्ञानी! जिनशासन मे इन्द्रियो का नाश नहीं कराया, इन्द्रियो के नाश करने को जितेन्द्रिय नही कहा, इन्द्रियो के विषयो का दास ना बनने को जितेन्द्रिय कहा है। इन्द्रियो के दास बनना भोगी का भाव है, इन्द्रियो के स्वामी बनने का भाव योगी भाव है। जो जितेन्द्रिय नही है, वे हिसक ही हैं, जितेन्द्रिय ही अहिसक है।

भो मुमुक्षु आत्माओ! जिसके पास अहिसा धर्म ही नहीं उसके पास सहानुभूति कहाँ ? और

जिसके पास सहानुभूति नही, उसके पास स्वानुभूति कहाँ ? तुम करोडो दान दो, न दो, लेकिन इतना करना किसी तडफते हुये गरीब को सहानुभूति दे देना। इसमे क्या खर्च हो रहा आपका। ओहो! धन के दानी करोडो हैं, परतु सहानुभूति न देने वाले दरिद्रियो की सख्या करोडो में नहीं अरबो–खरबो मे है। इतनी दरिद्रता छा चुकी है कि सवेदी–भाव नहीं आ रहा है सवेदनाये नष्ट हो रही हैं। मनुष्य के टुकडे होते देख रहे हैं और मुख मे ग्रास दबाये जा रहे हो। कम से कम भोजन करते करते तुम टेलीविजन तो मत देखना। भो ज्ञानी! जीवो का घात आँखो से देखते हुये भोजन तो नहीं करना। आपके आगम मे जहॉ मन की शुद्धि हो वचन की शुद्धि हो, शरीर की शुद्धि हो और भोजन की शुद्धि हो उस स्थान का नाम चौका है। क्षेत्र शुद्धि है, भाव शुद्धि है तो अन्तरग मे विशुद्धि है। देखो, क्षेत्रो का कैसा प्रभाव पडता है? क्रूर क्षेत्र मे एक मॉ और बेटे का झगडा हुआ। मॉ ने बेटे के दो टुकडे कर दिये क्योकि क्रूर वर्गणाएँ उस क्षेत्र मे फैली हुई थी, इसीलिए माँ को सवेदना नही थी। जब आप भोजन कर रहे हो चित्र सामने आ रहे हैं–यह मारा, वह मारा तब भोजन के साथ–साथ वे वर्गणाए भी तुम्हारे अदर प्रवेश कर जाती है और फिर बेटा मॉ को मॉ नही कह पाता। मॉ बेटे को बेटा नही कह पाती है क्योकि तुम्हारी सवेदनाएँ मर चुकी हैं। सप्तव्यसन के डिब्बे के सामने बैठकर भो ज्ञानी आत्माओ! आज विवेक से सोचकर जाना टेलीविजन को देखते–देखते भोजन नहीं करना। कम से कम भोजन का स्वाद तो आता रहेगा। अन्यथा पता ही नहीं चलता चित्र का स्वाद ले रहे हैं या भोजन का। क्योकि उपयोग एक समय मे एक ही होता है। फिर झुझलाते हो घर मे कि खा तो सब गये पर स्वाद नही आया। देखो प्रेम की गगा बहेगी। बस कुछ नही करना। किसी को हटाना नही, बस हट जाओ।

भो ज्ञानी! जो पर को हटा के सत बनना चाहता है वह हठी तो बन सकता है, पर सत नही बन सकता। पर को हटा के साधु नहीं बना जाता है पर से हट के ही साधु बना जाता है। मुमुक्षु हट के ही रहता है। ज्ञानी भगाता नहीं, भाग जाता है, वो ही भगवान होता है। यदि वास्तव मे भगवान बनना है, तो हिसा से भाग जाओ, और अहिसा की ओर चले जाओ। हे मुमुक्षु आत्माओ! दृष्टि को निर्मल करके सुनना। जो मात्र निश्चय को मानके बैठा है, वह जिन–शासन का शत्रु है। जो मात्र व्यवहार को मानकर बैठा है वह भी जिन–शासन का शत्रु है। अमृतचन्द्र स्वामी पचासवी कारिका गाथा मे कह रहे हैं कि जो यह कहता है कि मैं तो निजानद रस मे लवलीन–हूँ यह बाह्य चर्या तो पाखण्ड है ढोग है। भो ज्ञानी! तू छद्मवेषी है। ढोग करके अपनी आत्मा से छल मत कर। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि तुम पापो से अशुभ परिणति से डरो। तुझे कर्मों से डर नही, क्योकि कर्म द्वेषी पापी को पकडते हैं, परतु हमने पापो को ही पकड के पटक दिया है। अरे! निश्चय–व्यवहार दोनो के माध्यम से ही मोक्ष है। इसीलिए विवेक लगाके चलना। पक्षो मे धर्म नही, पथो मे धर्म नही, धर्म आत्मा का गुण है। जिसे इसने समझ लिया, उसे कुछ भी समझने की

आवश्यकता नही। जब तक विषयातीत नही हो रहा, तब तक नयातीत होने वाला नही है।

भो ज्ञानी आत्माओ! आत्मा सूक्ष्म हिसक भी नही है। कथचित निश्चय से आत्मा त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध है। इसीलिए हिसक भाव शुद्ध आत्मा की अवस्था नहीं है, अशुद्ध आत्मा की दशा है। लेकिन परिग्रह के सयोग से हिसा होती है। इसीलिए जो हिसा के आयतन हैं उनको छोड दोगे तो हिसा छूट जायेगी। हिसा के आयतनो से निवृत्ति करके परिग्रह आदि का त्याग करना उचित है। परिणामो की विशुद्धि के लिए परिग्रह रहे और परिणाम विशुद्ध हो जाये--यह त्रैकालिक सभव नहीं है।

भो ज्ञानी! आप अध्यात्म को खूब समझो लेकिन अध्यात्म समझना भिन्न है और अध्यात्म को चखना भिन्न है। अध्यात्म कि भाषा भिन्न है और अध्यात्म भाव भिन्न है। भो ज्ञानी! भाषा मे अध यात्म का आनन्द लूट रहे हो ? अरे! जिसकी भाषा इतनी निर्मल है, उसके भाव कितने निर्मल होगे? भो चैतन्य! बाह्य आचरण का नाश कर रहा है, भक्ष्य अभक्ष्य का विवेक नही, हेय उपादेय का विवेक नही रात्रि मे पानी पी रहा भोजन कर रहा है और कहता है कि पुद्गल का परिणमन पुद्गल मे चल रहा है, कितनी बडी विडम्बना है। यह तो मिथ्यात्व है। पुद्गल का परिणमन' कहना तब सत्य है जब तेरे सिर के ऊपर से कोई सिगडी रख दे, फिर स्वभाव मे चले जाना वहॉ कहना कि मेरा कुछ नही है, यह पुद्गल का परिणमन पुद्गल मे है। इसीलिए भो ज्ञानी! स्वरूप की दृष्टि को भोगो मे मत लगाना, इतना ध्यान रखना कि जो भूल रहा है वह भी अपना ही बधु है वह भी भटकता भगवान है। उससे भी द्वेष मत करना।
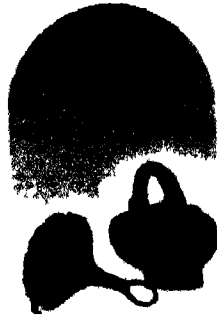
'परिणति–हिंसा अहिसा'

अविधायापि हि हिसा हिसाफलभाजन भवत्येक।
कृत्वाप्यपरो हिसा हिसाफलभाजन न स्यात्।। ५१।।

अन्वयार्थ हि = निश्चयकर। एक हिसा अविधाय अपि = एक जीव हिसा को नहीं करके भी हिसाफलभाजन भवति = हिसा फल के भोगने का पात्र होता है। अपर = दूसरा। हिसा कृत्वा अपि = हिसा करके भी। हिसाफलभाजन = हिसा के फल को भोगने का पात्र। न स्यात् = नहीं होता है।

एकस्याल्पा हिसा ददाति काले फलमनल्पम्।
अन्यस्य महा हिसा स्वल्पफला भवति परिपाके।। ५२।।

अन्वयार्थ एकस्य = एक जीव को। अल्पा हिसा = थोडी हिसा। काले = उदयकाल मे। अनल्पम् फलम् ददाति = बहुत फल को देती है। अन्यस्य = दूसरे जीव को। महा हिसा = बडी भारी हिसा भी। परिपाके = उदय समय मे। स्वल्पफला भवति = बिल्कुल थोडे फल को देने वाली होती है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।३५।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन देशना हम सभी सुन रहे है कि हिसा वही है जहॉ हिसा के साधन हैं। जब तक तुम्हारे घर मे अतरग साधन–कषाय परिणाम और बहिरग साधन–बाहरी परिग्रह तथा हिसा के आयतन होगे तब तक अहिसा भाव नही होगा। आप किसी से झगडो न झगडो, परतु लडाई के साधन घर मे नही रखना। आप शत्रु से अपने परिवार की रक्षा के लिए घर मे अस्त्र रखकर कहते हो कि इससे मेरी रक्षा होगी। अरे! यदि पुण्य का अस्त्र तेरे घर मे है तो शत्रु का चक्र भी तेरे काम मे नहीं आयेगा।

अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि हिसा के साधनो को आप घर मे इसलिए रखे हो कि मेरी रक्षा होगी। पर ध्यान रखो, वही अस्त्र तेरे लिए मृत्यु का कारण भी हो सकता है। इसलिए घर मे ऐसे उपकरण भी मत रखो। पुराने लोग कहते है कि जब बनिये को गुस्सा आती है तो वह गढी

हुई ईंट उखाडता है, गड्ढा पत्थर उखाडता है, क्योकि जब तक पत्थर उखाडेगा तब तक सामने वाला भाग जायेगा और उधर तुम्हारा क्रोध भी भाग जायेगा, फलत दोनो की रक्षा हो गयी। यदि घर मे अस्त्र रख लिया और आवश्यकता नही थी अस्त्र को चलाने की फिर भी आपने चला दिया। इसलिए आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने कह दिया कि परिग्रह को छोडो, कषाय भावो को छोडो, जिससे कि अहिसा का परिणमन हो। यदि आपने यह मान लिया कि मैं तो निश्चय स्वभावी हूँ , तो बाहरी चरित्र का लोप हो जायेगा और यदि आपने यह कहा कि मैं तो विभाव मे ही जीता हू तो निश्चय सयम का लोप हो जायेगा। जबकि दोनो मार्ग हैं। आज आप विश्वास करके जाना कि अस्त्र-शस्त्र रक्षा भी के साधन नहीं हैं। अस्त्र-शस्त्रो से कोई सुरक्षित या स्वतत्र नही होता। अस्त्र-शस्त्रो से किसी की रक्षा नही होती है। यदि स्वतत्रता की प्राप्ति अस्त्रो से ही होती तो गाधी जी को भगवान महावीर के अहिसा चक्र की क्या आवश्यकता थी?

भो ज्ञानी! अहिसा के अस्त्र से भारत स्वतत्र हुआ है। यदि देह से तू स्वतत्र होना चाहता है तो अहिसा महाव्रत को ही स्वीकार कर। देश तो गोरो से स्वतत्र हुआ। तुम गोरे से स्वतत्र हो जाओ। वास्तव मे आप इन गोरे शरीरो से परतत्र हो। चरम को देखकर अचरम धर्म को भूल रहे हो, चमडी को देख कर के ही तो आप ससार मे रम रहे हो। हस आत्मा निकल जाती है तो उस मुर्दे का स्पर्श करके सूतक मानता है। अत शरीर को पहले से ही मुर्दा मानो। शरीर पवित्र नही है पवित्र तो हस आत्मा ही है। इसलिए तू इस तन को मुर्दा मानकर ही चल, तो तेरे सयम का मुर्दा भाव नाश हो जाएगा। अन्यथा तन को जीवित देखकर के सयम मर जाता है। यह शरीर की दशा है। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है कि यदि तुम्हे अपने देश, परिवार और समाज को सुरक्षित रखना है तो तुम अणुबम की रचना मत करो, तुम तो अणुव्रतो को स्वीकार करना शुरु कर दो। श्रमण सस्कृति का सूत्र है कि अणुव्रती बन जाओ, तो अपने आप आपकी कषाय मद हो जाएगी।

भो ज्ञानी! हिसा, झूठ चोरी, कुशील को पाप कह लेते हो पर देखो ससार की दशा, सबसे बडे पाप परिग्रह को देखकर लोग पुण्य आत्मा कहते हैं। सबसे बडा पाप है-परिग्रह। इस सूत्र को अपने दरवाजे के ऊपर लिख देना।

यदि पाप निरोधोन्य सपदा कि प्रयोजनम्
अथ पापास्तबोऽस्त्यन्य सपदा कि प्रयोजनम् ।। २७ र क श्रा ।।

यदि पाप का निरोध है तो सपदा से क्या प्रयोजन ? कमा भी लोगे तो, पानी की तरह बह जायेगा। यदि पुण्यास्रव चल रहा है तो तुम नही भी कमाओगे तो भी छप्पर फाड़ के आयेगा। देखो, धन्य कुमार ने मुठिया पर हाथ लगाया तो मणियो का घडा निकल पडा। वही 'अकृत-पुण्य'

की पर्याय मे सोने मे हाथ लगाते ही, मिट्टी हो जाता है। इसलिए अमृतचद्र स्वामी ने सूत्र दिया है कि हिसा के आयतन अर्थात् हिसा के साधन होगे तो वैसे परिणाम भी बनेंगे। पता चला–कौरव पाण्डव भाई–भाई आपस मे लड कर मर गये। यदि आप जिनवाणी पर श्रद्धा रखते हो तो आप लोग विश्वास रखना, शत्रु के घर मे भी आपको बचाने वाला मित्र मिलेगा। वहाँ भी लोग कहेगे, इसको छोड दो। लुटेरे लूट भी ले जायेगे तो वह भी तुम्हारे घर मे वापस आ जायेगा। ऐसा आपको विश्वास होना चाहिये। पडित बनारसीदास जी के घर मे चोर ने इतना चादी–सोना चुराया कि बेचारे से उठाते नही बन रहा। धन्य हो, उस सेठ विद्वान की क्षमता और समता को कि वह विचारने लगे कि अरे! यह पुद्गल का परिणमन ही तो है। मेरे घर मे रखा था, अब इसके घर मे रखा जायेगा। न इसको इसे खाना है न मेरे को, पेट तो सोने से नही रोटी से ही भरेगा। अत पोटली उठाकर उस विद्वान ने चोर के सिर पर रख दी। चोर घर जाकर मॉ से कहता है मॉ! आज अनोखे व्यक्ति के यहॉ से चोरी करके आया हूँ। इतना सोना–चादी लाया हू कि उस पागल ने अपने हाथ से पोटली मेरे सिर पर रख दी। मॉ समझ गयी बोली–बेटा! लगता है तुम पडित बनारसीदास के घर पहुॅच गये। ऐसे विद्वान के घर चोरी करते हो तुम्हे शर्म नही लगती। मॉ को समझाने से बेटे के भाव बदल गये और उलटे पाव चल दिये पडित जी साहब के घर। बोला मॉ ने हमे डाटा है अत आपका धन आप ही रख लो। वह धन नही, सम्पत्ति थी।

भो ज्ञानी! धन और सम्पत्ति मे बहुत अतर होता है। ज्ञानी सम्यक दृष्टि मुमुक्षु जीव यदि गृहस्थ होता है तो आजीवका के लिए वह धन नहीं सम्पत्ति कमाता है। अत जो समीचीन रूप से धन का अर्जन किया जाता है उसका नाम सम्पत्ति है और जो मायाचार–भ्रष्टाचार से कमा रहा है वह तो धन ही है जो स्वय को ससार मे धर देता है। इसलिए ध्यान रखो, सम्पत्ति तो आपके लिए समीचीन हो सकती है लेकिन विपत्ति मे डालकर सम्पत्ति कभी सम्पत्ति नही हो सकती। कर लो इसका सदुपयोग, अन्यथा ध्यान रखना चक्रवर्ती की मृत्यु या चक्रवर्ती के सयम लेने के बाद वे चौदह रत्न, नौ निधिया विलय को प्राप्त हो जाती है। इसलिए यह भूल जाना कि मेरे घर मे बहुत है। पुण्य चला जायेगा तो घर तो वही रहेगा पर सामग्री नही रहती। अत चिता मे मत बैठ जाना सभी द्रव्य स्वतत्र है सबकी अवस्था स्वतत्र है, सबका पुण्य स्वतत्र है सबका पाप स्वतत्र है और सबका विपाक भी स्वतत्र है।

भो ज्ञानी! हम आपका सिर दबा देगे, परतु हम आपके सिर के दर्द को नही दबा पाएगे। जिसका जैसा विपाक होगा उसे ही भोगना पडेगा अत विपाक काल मे ही सभलने की आवश्यकता है। कोई भी व्यक्ति जीवन को सभालने के लिए भाषण दे सकता है। गाडी पर नही बैठने वाला भी बहुत व्याख्यान दे सकता है–ऐसे चलाना चाहिये ऐसे मोडना चाहिये, परतु जब भीड

में चलाने का अवसर आ जाए कि कैसे क्या करना है? तभी आप कुशल चालक हो। मनीषियो! ताला लगाना, परिवार मे अविश्वास का प्रतीक है। एक सज्जन के बैग मे चार हजार रुपए रखे थे और उसमे ताला पडा था पर होनहार देखो वे आहार के लिए आये और उधर चुराने वाले ने बैग नही चुराया, ताला नहीं तोडा। धीरे से ब्लेड से बैग काटा और पैसे निकाल कर ले गया। अब तुम रखे रहो बैग, खोलते रहो ताला। इसलिए कुछ भी कहो, परस्पर के अविश्वास का प्रतीक यह ताला है। आप मात्र उसे सुरक्षा की दृष्टि से देखो आगम यह कहेगा कि जब तक तेरा पुण्य है तब तक कोई नहीं चुरा सकता है। जीव कर्म क्षेत्र मे होनहार नहीं लगाता, धर्म क्षेत्र मे लगाता है कि महाराज जी! जब काल–लब्धि आयेगी तो मैं मुनिराज बन जाऊँगा। भइया, जिस दिन काल –लब्धि आयेगी तो चोरी होगी और जब काल–लब्धि नही आयेगी तो चोरी नही होगी। परतु घर मे छोटी से ताले से झलकती है कि परस्पर सास–बहू , बेटा–पिता पर विश्वास नही है। देखो, भगवान महावीर के शासन मे गाय–सिहनी एक ही घाट पर पानी पी रहे है। सिहनी का बच्चा गाय का और गाय का बच्चा सिहनी का दुग्ध पान कर रहा है। परतु आज एक मॉ के दो लाल, एक आचल पर एक साथ दुग्ध पान नही करते हैं। फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर ही रहा करे' ।

मनीषियो! प्रेम तभी फैलेगा जब मोह दूर रहेगा। यदि प्रेम का अस्त्र होगा तो शत्रु भी गले लगेगा। इस सूत्र को स्वीकार किया था राम ने, इसीलिए लका मे विभीषण भैया मिल गये। जगल मे मात्र तीन गये थे, परतु पूरी सेना की भीड लग गयी, क्योकि फैले प्रेम परस्पर जग मे' बस, इतना सीख लिया था। मैं समझता हूँ कि षटखण्डागम समयसार' तो बाद की बात है। पहले 'मेरी भावना का स्वाध्याय हो गया तो समयसार षटखडागम, धवला जी यह सब अदर मे आनद देने लगेगे और जब तक परस्पर मे प्रेम नही है तो वे ग्रथ भी आपके लिये सग्रथता का कारण बन जाएँगे। यदि आप सोचोगे की मै बडा विद्वान हूँ, तो पहले मुझे सम्मान मिलना चाहिये। आगम तो आपसे कह रहा है कि न सिद्ध छोटे हैं, न बडे हैं। निगोदिया न छोटे है, न बडे। अनेक मे एक मिलाने वाले मात्र दो स्थान है–ससार मे निगोद और परमार्थ मे सिद्ध। पर दोनो की प्रक्रिया मे अतर है क्योकि एक पुरुषार्थ साध्य है और एक सहज है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अहिसा–हिसा के भेद गिनाए है। जीव की अतरग दृष्टि को कैसे भावो से रखा है। एक जीव ने हिसा न करके भी हिसा के फल को भोगा और एक जीव के द्वारा हिसा हुई फिर भी हिसा के फल को नही भोग रहा है। हाथो से हिसा तो नही हुई पर सक्लेषित भावो से बैठा–बैठा यह कह रहा है कि इन्होने ऐसा किया, मैं इनको छोडूगा नही, जबकि ताकत नही है पर सक्लेषता इतनी ज्यादा है कि यदि यह मापी जाएगी तो सारे विश्व के जीवो को नाश करने की परिणति इसके मन मे है। जैसे लोभ कषाय सारे विश्व की सम्पत्ति मेरे

अधीन हो जाए की भावना होने पर तू भूल गया है, स्वामी उतने का हो पाएगा जितना तेरे पास पुण्य है। तेरे मन मे भाई को मारने का भाव आ गया, पर उसकी मृत्यु नहीं हुई, उसका भाग्य था। सिद्धान्तत आप भाई के हत्यारे तो हो चुके हो। अरे! लोक में जो दण्ड दिया जाता है वह दण्ड व्यवस्था मात्र शरीर के पाप अपराध की है, लेकिन मा जिनवाणी कहती है कि मेरी दण्ड व्यवस्था मात्र पाप की नहीं, मेरी दण्ड की व्यवस्था पाप के परिणामो तक की है। पर वीतरागी शासन का कानून भी अधा नहीं है वहाँ केवलज्ञान के नेत्रो से देखा जाता है। सबको उसका दण्ड कर्म के बध से दिलाया जाएगा तुम छिप कर नही जा सकते हो। अत तुम भावो मे भी हिसा नही करना।

भो ज्ञानी! एक जीव ईर्यापथ से विवेक पूर्वक जा रहा था कि किसी जीव का घात न हो जाए और अचानक एक जीव आकर के मृत्यु को प्राप्त हो गया फिर भी बध नहीं, क्योकि उसके वध करने के परिणाम नहीं थे। कभी–कभी पानी मे चींटी चली जाती है। आप धीरे से उठाते हो और उठाते–उठाते मर जाती है, दिखने मे हिसा हुई है पर वह हिसा नही, क्योकि उसके रक्षा के भाव थे। इसलिए हिसा का पाप नहीं लगेगा। एक जीव छोटी सी हिसा करता है पर बहुत बडा फल मिलता है जैसे कि भाव तो तुम्हारे यह थे कि अब तो पूरा नष्ट करके आएगे और वो गोली उसके पुण्य से दीवार से टकरा गयी। मारने वाले को तो हिसा का दोष पूरा ही लगा है। यह नियम हर क्षेत्र मे लगाना, एक माँ गर्भपात की औषधि खा रही है गर्भस्थ सतान के पुण्य के योग से उसकी मृत्यु नहीं हो रही है, लेकिन आप यह नही सोचना कि मैं हिसा से बच गयी। आप तो हिसा कर ही चुकी हो, उसका पुण्य था जो वह बच गया। यदि कभी पचेन्द्री मनुष्य का घात डाक्टर की शल्य क्रिया करते–करते हो गया, हिसा तो हुई है पर उसके मारने के भाव नही थे। दोष तो लगा पर अल्प लगेगा। इसलिए अब सँभल के सुनना तथा सभल–सभल कर चलना।
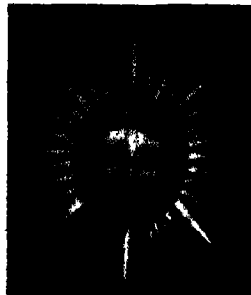
"कषाय भावों के अनुसार ही फल की प्राप्ति"

एकस्य सैव तीव्र दिशति फल सैव मन्दमन्यस्य।
व्रजति सहकारणोरपि हिसा वैचित्र्यमत्र फलकाले।।५३।।

अन्वयार्थ सहकारिणो अपि हिसा = एक साथ मिलकर की हुई हिसा भी। अत्र फलकाले = इस उदयकाल मे । वैचित्र्यम् व्रजति = विचित्रता को प्राप्ति होती है। एकस्य साएव = किसी एक को वही हिसा। तीव्र फल दिशति = तीव्र फल दर्शाती है। अन्यस्य = किसी को सा एव मन्दम् = वही हिसा न्यून फल देती है।

•

प्रागेव फलति हिसा क्रियमाणा फलति फलति च कृतापि।
आरम्य कर्तुमकृताऽपि फलति हिसानुभावेन ।।५४।।

अन्वयार्थ· हिसा प्राक्एव(प्रागेव) = कोई हिसा पहिले ही। फलति = फल जाती है। क्रियमाणा फलति = करते करते फलती है। कृतापि फलति = कोई कर चुकने पर भी फलती है। च = और। कर्तुम् आरभ्य =हिसा करने के आरभ मे ही। अकृता अपि फलति = न करने पर भी फल देती है। हिसा अनुभावेन फलति = इसी कारण से हिसा कषाय भावो के अनुसार ही फल देती है।

|| पुरुषार्थ देशना ||३६||

मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने पूर्व सूत्र मे सकेत दिया था कि हिसा के अभाव मे भी जीव हिसक है और हिसा के सद्भाव मे भी जीव हिसक है। 'भावेण बधो, भावेण मोक्षो"—परिणति ही बध है, परिणति ही मोक्ष है। परिणति निर्मल है, तो प्रत्येक क्षण तेरी निर्बंधता के हैं और परिणति तेरी निर्मल नहीं है, तो प्रतिक्षण तेरे बध के हैं। बध कोई पर द्रव्य नहीं करा रहा है, स्वय की परिणति ही करा रही है। अतएव जहा बधता के परिणाम है, वहीं हिसा है। जहाँ निर्बंधता के परिणाम हैं वही अहिसा है। माँ जिनवाणी कहती है—यदि आप भी स्वय के द्वारा स्वय को बधन में डाल रहो हो, तो आप भी हिंसक हो। एक सामान्य वध करने वाला तो पापी है ही, पर पापी का जो वध करता है, वह महापापी है। अत करुणा की दृष्टि से रक्षा के भाव लाना। भो ज्ञानी! केवल जीवो की रक्षा

करना ही नही अपितु छिपकली की भी रक्षा करना, अहिसा है। परतु अनेक की रक्षा के पीछे, एक का घात नही करना और एक की रक्षा के पीछे अनेक का घात भी नही करना, क्योकि वध तो वध है, हिसा तो हिसा है। एक मरीज के शरीर मे कीडे पड रहे हैं, औषधि डालोगे तो जीव अवश्य मरेगे। इसीलिए महाव्रती के शरीर मे खुजलाहट भी पडती है, तो वे उस अग को खुजलाते नहीं है। यदि असहनीय वेदना हो जाती है, तो पिच्छी से उस स्थान का मार्जन कर वहाँ स्पर्श करते हैं क्योकि असाता कर्म के उदय से यह कीडे पडे हैं। यदि पुन तूने उन कीडो को कष्ट दिया, तो फिर नवीन असाता का उदय होगा। जिस जीव ने तुम्हे पीडा दी है उस जीव के प्रति पीडा देने के भाव नहीं होना यह तो मध्यम अहिसा है। लेकिन किसी के द्वारा पीडित करने पर भी, उसे पीडित कराने, करने, करवाने के भाव भी नही लाना उत्कृष्ट अहिसा है। ज्ञानी सोचेगा कि इस जीव का कोई दोष नही है मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही दोष है, यह तो बेचारा निमित्त मात्र बना है।

भो ज्ञानी! कानो से नही, मस्तिष्क से नही, अन्त करण से समझना कि किसी की पीडा को सहन करना हिसा नही, क्षमा–धर्म कहा जायेगा। जीव पुण्य के उदय मे अनत पाप कर लेता है, जो झलकते नही हैं। परतु जिस दिन विपाक उदय मे आता है उस दिन कितना ही सुदर भवन हो , कितना ही सुदर महल हो जब समय आता है तो उसमे भी दरारे पड जाती है और पानी टपकना प्रारभ हो जाता है। ऐसे ही विशाल पुण्यात्मा के पुण्य के भवन मे पाप के छिद्र हो जाते हैं, तो वहाँ विपाक का पानी टपकना प्रारभ हो जाता है। 'आत्मानुशासन' मे गुणभद्र स्वामी लिख रहे है–बडे बडे वैभवशाली हो गये, परतु सूर्य का तेज ऐसा होता है कि सागर के पानी को भी सोख लेता है, उसको भी भाप बनाकर उडा देता है। ऐसे ही पुण्य–पाप दोनो का तेज बडा प्रबल होता है। पुण्य का तेज पाप को सुखा देता है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि अहिसा और हिसा के भावो को समझ लिया, तो भगवान बनने का पुरुषार्थ प्रारभ हो जायेगा। अभी आपने धर्म का स्वरुप नही समझा। रक्षा की नही, रक्षा का भाव किया तो पुण्य बध हो गया। हिसा की नहीं, हिसा का भाव हो गया तो पाप बध हो गया। अहो! एक जीव विमान मे बैठकर आया और जैसे ही उतरा तो गाडी लग गयी गाडी से उतरा तो पालकी लग गयी, पालकी से उतरा तो सिहासन पर बैठा दिया गया और पैर दबने लगे। गरीब जो सडक पर काम कर रहे थे, सोचने लगे कि भाई इनको थकान किस बात की आ रही है? अरे! पैर दबना चाहिये तो मेरे दबना चाहिये। मैं टोकरी डाल रहा हूँ, टोकरी डालते–डालते मेरे हाथो मे छाले पड गये हैं पैर छिल रहे है, परतु कोई भी पूछ नहीं रहा और उल्टे एक साहब डॉट भी गये–क्यो, कितनी खती खोदी? अहो! कही मत देखो। आखो से पुण्य भी दिख रहा है और हिसा का फल भी दिख रहा है। 'कुरल काव्य' मे लिखा है– मेरे से मत पूछो कि

धर्म का फल क्या है और पाप का फल क्या है? एक पालकी को ढो रहा है, उसको देख लीजिये और उस पर बैठे भूपति को देख लीजिये। दोनो ही मनुष्य हैं। पालकी नही दिख रही, तो रिक्शा देख लो। उस पर बैठे होते हैं आप बाबूजी बनकर और उसको खींच रहा होता है मनुष्य। सम्मेद शिखर मे जाकर देख लो, डोलियो पर तुम लदे हो, बेचारे खींच रहे हैं, वे क्या मनुष्य नहीं है? पर तिर्यंच के समान वाहन का काम कर रहे हैं, ऐसे ही देवो मे वाहन जाति के देव होते हैं। जो मनुष्य वर्तमान पर्याय मे कुछ धर्म तो करते हैं लेकिन मायाचारी भी करते हैं छल–कपट करते हैं, यदि उन्होने इस लोक मे देव–आयु का बध भी कर लिया हो, तो उन्हे वाहन–जाति के देव बनना पडता है। ये सब परिणति के परिणाम है।

भो ज्ञानी तीर्थंकर। मुनिसुव्रतनाथ स्वामी के बारे मे उल्लेख आता है कि जब वे बालक के रूप मे खडे हुए थे, तब वहा से मुनिराज निकले, तो उन्होने दूसरे लोगो से तो कह दिया कि ये मुनिराज हैं उन लोगो ने नमस्कार किया लेकिन स्वय नमस्कार नहीं किया। हॉ तीर्थंकर कभी किसी को वदन नही करते हैं, क्योकि यदि वदना कर लेगे, तो 'स्वय–भू' सज्ञा समाप्त हो जायेगी। ऐसा उनका नियोग है। वे कभी किसी से व्रत भी नहीं लेते हैं। स्वय ही व्रत लेते हैं। कभी किसी के पास पढने भी नही जाते, क्योकि जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं। वह किसी को गुरु नही बनाते है। यह तीर्थंकर भगवान की व्यवस्था है। यह पूर्व का प्रबल पुण्य का योग चल रहा है कि तीर्थंकर–प्रकृति का बध किया। लेकिन पूर्व मे उन्होने गुरु भी बनाये, अध्ययन भी किया है पूर्व मे नमस्कार भी किया है। अरे। अरहत, आचार्य, उपाध्याय की भक्ति नही की होती, तो तीर्थंकर प्रकृति का बध भी नही होता। पर देखो, उन्होने कि इतना पुण्य कमाया कि अब पुण्य झुकने भी नही दे रहा है। अब तो मात्र झुकायेगा ही झुकायेगा। मात्र दीक्षा लेते समय बोलते हैं "नम सिद्धेभ्य । ध्यान रखना 'ॐ नम' नहीं बोलेगे, क्योकि 'ॐ नम' कह देगे तो उसमे आचार्य, उपाध्याय भी आ जायेगे। मात्र नम सिद्धेभ्य'। अत जब कोई प्रसग आता है, तो वहॉ नमस्कार अर्थ मे ॐ का उच्चारण नही करते। यद्यपि देशना खिर रही है, वह ओकार रूप मे खिर रही है। वह वदना' नही, नम भी नही है।

भो ज्ञानी। साधना और तपस्या निर्वाण का ही कारण होती है, लेकिन उसमे थोडी कमी रह जाये तो भी उसका फल निष्फल नही जाता। एक पालकी पर बैठा है एक पालकी को ढो रहा है। देख लो, एक पुज रहा है, एक पूज रहा है। यही पुण्य और पाप का फल है। आप जो शुभ–अशुभ परिणति कर रहे हो, वह पुण्य–पाप है। जिस कृत्य के करने पर अतिसक्लेषता बढे या स्वय लगे कि मैं चेहरा दिखाने लायक नही हूँ, तो समझना, इसका परिपाक कितना गहरा होगा? गहरे पाप में ही गहरी सक्लेषता बनती है। अहो। आज मैं दृष्टि उठाकर नही देख पा रहा हूँ। आज

मैं विद्वानो के बीच बैठने का पात्र नहीं बचा। अहो! आज घर से बाहर निकलने की ताकत नही रखता हूँ। अरे, जैसे इद्रियों के पाप दिख जाते हैं, ऐसे मन के पाप दिख गये होते तो आज आप समाज मे बैठ नहीं पाते। जो तिर्यंचो की व्यवस्था है, वहीं व्यवस्था आपकी होती, क्योकि उनके प्रत्येक सज्ञा प्रकट है। अतर इतना है कि आप प्रज्ञाशील हो सो छुपा लेते हो लेकिन यह मानना पडेगा कि तिर्यंचो ने पूरी मायाचारी की थी तो तिर्यंच बने पर आदमी की सज्ञा मायाचारी रूप नही है। ये ध्यान रखना, हमारी प्रवृत्ति मायाचारी रूप होगी, तो परिणति हमारी यही होगी। इसलिए हिसा के भाव लाना भी हिसा ही है। अब सोचना कि मैंने चौबीस घटे मे कितनो का घात किया है?

हे मुमुक्षु आत्माओ! जब रागादि विषय–कषायों से थक जाओ, तो यतियो के पास आकर सुख की राह खोजो। जिसको सुख की चाह है, वह यतियो के पास जाकर खोज करता है कि इन्होने सुख को कहाँ से प्राप्त किया। अरे! पाप के परिणामो के समय ध्यान रखो कि सिद्ध परमात्मा का जो आकार है वही मैं भी हू। हे आत्मन्! पुरुषाकार मे सिद्धाकार निहारो। इसकी अवहेलना मत करो। आगम मे सस्थान–विचय नाम का धर्म ध्यान है उसमे लोक–सस्थान का विचार किया है। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे भी पुरुष आत्मा का लक्षण किया है। वह आत्मा स्पर्श रस गध, वर्ण आदि से रहित, उत्पाद–व्यय–धौव्य से युक्त, गुण–पर्याय सहित है। अत पाप की परिणति निकालो निर्मल भाव करो। भगवन्! जब आप ग्रथ लिख रहे थे उस समय, यदि हम निर्ग्रंथ बनकर पास मे बैठकर उन आचार्यो को देखते तो कितना आनद आता? किसी भी कृति मे गुणीजन अपना नाम, अपनी पहचान नही कराते। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने भी अपना नाम नही लिखा, पर ज्योति शब्द' से अपनी पहचान कराई। 'ज्योति को नमस्कार किया। उनको अह नही था क्योकि ज्योति स्वरूप आत्मा मे अर्ह भरा था और ऐसे बहुत से आचार्य हुए, जिन्होने अपनी पहचान नही कराई। परीक्षा–मुख, प्रमेय–रत्नमाला मे आचार्य कुमुदचद स्वामी ने कहीं भी अपना परिचय नही दिया। यह सब योग, नक्षत्र, पुण्य प्रबल होता है कि कृति अनुपम लिखी जाती है और ऐसी कृति लिख डालते है कि कृति मगलमय बन जाती है।

भो ज्ञानी! अपना पाप–पुण्य अपने साथ, दूसरे का दूसरे के साथ रहता है। गलत को सही समझ कर अपने को कुमार्ग मे मत ढकेलो। देखो कर्मो की विचित्रता कि अनादिकाल की जग पडी है कि इतने इतने सारे कर्म–बध इकट्ठे पडे हैं तथा पुरुषार्थ उतना है नही, पर देशना अवश्य ही कभी न कभी कार्य करेगी। आचार्य वीरसेन स्वामी ने 'षट्खण्डागम' के नौवे भाग मे लिखा कि सच्चे भावो से श्रवण की हुई यह देशना, कभी न कभी, किसी न किसी प्रकार धक्का देकर परिणमन करायेगी। हे भव्यो! जिनवाणी मा के समीप पहुचो, तो आप अवश्य ही मोक्षरूपी लक्ष्मी का वरण

करके अनत काल के लिए सुखी हो जाओगे।

हे आत्मन्! एक जीव को वही हिसा मद फल देती है और एक जीव को वही हिसा तीव्र--फल देती है। पाप तो एकसा हुआ, पर परिणति भिन्न--भिन्न है। अत चाहे ज्ञात भाव से करो, चाहे अज्ञात भाव से करो, फल अवश्य ही भोगना पडेगा। जैसे एक जीव के तीव्र वासना का वेग आया, फलत सयोग से पहले ही धातु--शक्ति नष्ट हो जाती। दूसरे जीव की इतनी पुरुषार्थ शक्ति प्रकट हुई कि साधु के पास पहुचने से पहले ही वैराग्य भाव प्रगट हो गया। अहो! जैन--सिद्धात मे कर्म प्रत्यक्ष दिखता है कि करने से ही कर्म--फल मिलते हैं, बिना किये कर्म--फल नही मिलता। भाव से ही बध होता है और भाव से ही मुक्ति मिलता है। जैसा करेगे, वैसा ही फल अवश्यमेव मिलेगा।

मदाकिनी, होयसल, बेलूर

'बहुजनो की हिसा का फल एक को एव एक की हिसा का फल अनेक को'

एक करोति हिंसां भवन्ति फलभागिनो बहव ।
बहवो विदधति हिसा हिसाफलभुग् भवत्येक ।। ५५ ।।

अन्वयार्थ एक हिसा करोति = एक पुरुष हिसा को करता है। फलभागिन = फल भोगने के भागी। बहव भवन्ति = बहुत होते हैं। हिसा बहव विद्धति = हिसा को बहुत जन करते हैं। हिसाफलभुक् = हिसा के फल का भोक्ता। एक भवति = एक पुरुष होता है।

कस्यापि दिशति हिसा हिसाफलमेकमेव फलकाले ।
अन्यस्य सैव हिसा दिशत्यहिसाफल विपुलम् ।। ५६ ।।

अन्वयार्थ कस्यादि हिसा = किसी को हिसा। फलकाले =उदयकाल मे। एकमेव हिसा फलम् दिशति = एक ही हिसा के फल को देती हैं। अन्यस्य = किसी को। सैव हिसा विपुलम् = वही हिसा बहुत से। अहिसाफल दिशति = अहिसा के फल को देती है। अन्यत् न = अन्य फल को नही।

।। पुरुषार्थ देशना ।।३७।।

भो ज्ञानी आत्माओ! द्रव्य (सम्पत्ति) को अर्जित कर लेना कोई बडी बात नही उसकी प्राप्ति पुण्य से होती है। जिस समय चक्रवर्ती के पुण्य का योग आता है तो उसकी आयुधशाला मे स्वमेव चक्ररत्न प्रगट हो जाता है ३२,००० मुकुटबद्ध सम्राट उसके चरणो मे शीश झुकाते है। मनीषियो! वैभव को महान वही मानता है जिसने धर्म को नही जाना, परतु जिसने धर्म को समझ लिया है उसकी दृष्टि मे वैभव कुछ नही होता। वह तो वैभव को आते हुए जाते हुए देखकर मुस्कराता है यह ज्ञानी की दशा है। अहो! अनुभव करना कि अल्प पुरुषार्थ से भी बहुत विभूति मिल जाती है तथा बहुत पुरुषार्थ करने पर भी पेट भर भी नही मिलता क्योंकि अल्प हिसा से भी महान हिसा कर रहा था और महान हिसा के होने पर भी उससे अल्प हिसा भी नही हुई। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं चिन्तन से गहराई मे देखना, कही दिगम्बर योगी बनके ऐसा चिन्तवन कर लिया होता, तो आज तुझे मुक्ति श्री का वरण हो गया होता। अहो! कितना विवेक लगाते हो कि अमुक द्रव्य को यहाँ से खरीदूगा वहाँ बेचूगा, फिर ऐसा करुगा। तू ऐसा क्यो नहीं सोचता कि ऐसे भाव होगे तो

ऐसे भाव करूँगा ?

भो ज्ञानी आत्माओ! तुम क्यों कमा रहे हो ? जिन लोगो को देना है उन लोगो को देके चले जाओगे ? तुम व्यर्थ मे हिसा का बध करके नरक–निगोद की वदना करोगे पुत्र के निमित्त से स्त्री के निमित्त से। स्वय का पेट भरने के लिए बहुत कुछ नहीं चाहिए। अपने जीने के लिए बहुत हिसा भी नहीं करनी होती है परतु पता नही कितने पेटों की चिता है, जबकि वे पेट भी जब बने थे तो पहले से अपने पेटी की व्यवस्था करके आये हैं।

भो ज्ञानी! यदि पिता ने पुत्र को जन्म दिया है तो पुत्र ने पिता की सज्ञा को जन्म दिया है, इसलिए किसी अहम् मे मत डूबे रहना। आप तो पुण्य की परिणति देखो, पाप की परिणति को देखा। अहो! जिस समय अहम् के सताये हुए को कुछ नही दिखा तो अपनी कन्या का कुष्ठरोगी के साथ सबध कर दिया। स्वय पिता की ऑख मे ऑसू टपक गए, बेटी! मैंने तेरे साथ क्या कर दिया ? आप होते तो छोडछाड के भाग जाते या तलाक दे देते। ओहो! तुमने भोगो के पीछे, इन्द्रिय सुख के पीछे, सस्कृति–धर्म का नाश कर डाला।

भो ज्ञानी! जिसकी दृष्टि मे जिनवाणी छा गई है, उसे दूसरे की छाया की कोई आवश्यकता नहीं है। जिसके शीश पर जिनेद्र की वाणी का आशीष है उसको दुनिया के आशीष की कोई आवश्यकता नहीं। पिता ने सबध तो कर दिया पर बेटी समझाती है–पिताश्री! शोक मत करो, आपका दोष नही है होनहार को कौन टाल सकता है। आप तो मेरे जनक है आपने तो मुझे पालन पोषण करके इतना बडा किया। आप मेरा बुरा सोच ही कैसे सकते थे, यह तो कर्म की विचित्रता है इसीलिए ऐसा हो गया। अब तो आप शीघ्रता करो, मेरी विदा कर दो। पतिदेव (कुष्ठरोगी) के साथ मैं अपना भाग्य सराहूँगी कि मुझे सेवा करने का मौका तो मिलेगा। दुखियो के मध्य रहूँगी, तो प्रभु की याद आयेगी। पिताश्री! यदि पुण्य का योग होगा तो यह कुष्ठी भी स्वर्णमयी काया से युक्त मिलेगा। इतनी दृढ आस्था के साथ जनक–जननी को बिलखते छोड, सात सौ कुष्ठियो की सेवा मे लीन हो गयी। पहुँच गयी निर्ग्रंथ योगी के चरणो मे, हे प्रभु! यह नही पूछ रही हूँ कि मैंने कौन से कर्म किये थे वह तो सामने दिख रहे हैं। लेकिन नाथ! इन कर्मो के शमन का उपाय क्या है ? बेटी! असाता को साता मे सक्रमित करने का कोई उपाय है तो मात्र पचपरमेष्ठी की भक्ति–आराधना है। यदि अरिहत–सिद्धो की भक्ति निर्दोष करोगी और गधोदक को शीश पर लगाओगी तो कुष्ठ भी साफ हो जायेगा, अत विकल्प मत करो। वही सिद्ध चक्र विधान आज भी है। भो ज्ञानी! उनका कुष्ठ ठीक हो गया, तुम्हारे फोडे–फुन्सी ठीक तक नहीं हो पा रहे हैं। बात यह है कि सिद्ध चक्र वही है, लेकिन परिणति तुम्हारी वैसी नहीं है।

मनीषियो! कुदकुदाचार्य महाराज ने अष्टपाहुड ग्रथ मे लिखा है–

सुहेण भाविद णाण दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबल जोई अप्पा दुक्खेहि भावए।। ६२।। (अ पा)

सुख मे भावित किया ज्ञान दु ख के आने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है और जिसने दु ख से ही अपने आप को भावित किया है, उसका ज्ञान पावन–पवित्र–शास्वत हो जाता है। भो ज्ञानी आत्माओ! तेरा चेतन्य ना सुखमय है ना दुखमय है वह शुद्ध चिन्मय चैतन्य भूत है। धन्य है उस नारी के लिए जिसको बाल्यावस्था मे वैधव्य को देखना पडा, फिर भी पिता से कहा–नही। अहो! यह तो मेरे पुण्य का योग है कि अब मैं पराधीन पर्याय से मुक्त होकर के स्वाधीन पर्याय की ओर आर्यिका दीक्षा लेने जाऊँगी।

आज भी देखो विशुद्धमति माताजी जिनकी सल्लेखना हो गई प्रकाण्ड आर्यिका विदुषी बाल विधवा थी। पहले छोटी अवस्था मे शादी हो जाती थी चौथी क्लास पढी है तिलोकसार' जैसे ग्रन्थो की टीका लिखी हैं। उनके माता–पिता आप जैसे नही थे कि ऐसे सस्कार देते कि चलो तुम्हारी दूसरी शादी किये देता हू।

मानतुग स्वामी की भक्ति से ४८ ताले टूट गये। वादिराज स्वामी का कुष्ठ दूर हो गया। आस्था से आप भी भगवान की भक्ति करोगे तो आपके भी पाप दूर हो जायेगे। भो ज्ञानी आत्माओ! वीतरागता की दृष्टि अलग है राग की दृष्टि, विकार की दृष्टि अलग है। जिसकी दृष्टि खोटी है तुम उसके सामने सत्य को कहकर भूल मत कर देना। जब उसकी खोटी दृष्टि फूट जायेगी, तो अपने आप उसे सत्य नजर आने लगेगा। अहो! जीवन मे आप निर्दोष हो तो कभी किसी को सफाई मत देना, तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे पास है। शुद्ध घी को ही यदि कोई व्यक्ति डालडा कह रहा तो मत बताओ उसे शुद्ध घी। श्रीपाल कहते है– पिताश्री! मै वही कुष्ठी हूँ आप अपनी बेटी पर शका तो मत करो उसके शील, तपस्या के प्रभाव से सिद्धो की आराधना से हम अकेले ही नही अन्य सात सौ कुष्ठी भी आज निरोग हो गये। भो ज्ञानी! 'अमृतचद्र स्वामी' कह रहे है– श्रीपाल के तन मे कुष्ठ हुआ था, तन का कुष्ठी मोक्ष जा सकता है। लेकिन जिसके मन मे कोढ है वह मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। एक निर्ग्रंथ योगी के ऊपर श्रीपाल ने कचरा फिकवा दिया था, क्योकि विभूति का वेग बडा खतरनाक होता है। जिसको तीनो मिल गये हो आज्ञा चलाना, वैभव का मिलना और युवावस्था फिर देखना क्या हालत होती है ? उस समय सात सौ व्यक्तियो ने कुछ नही किया था, बेचारो ने मात्र ताली ही बजाई थी। उसका परिणाम कि श्रीपाल कोढियो के सरदार हो गये और वे कोढी प्रजा हो गये। इसीलिए जीवन मे ध्यान रखना जिसकी परिणति जैसी है वह जाने, लेकिन निजपरिणति मे विकार करके हम अपनी आत्मा मे कर्मों के कुष्ठ रोग को उत्पन्न न करे।

भो ज्ञानी! देखो परिणामो की दशा – जितने पापी हुये हैं वे सब प्रायश्चित करके सिद्ध

बनकर चले गये, लेकिन उन पापियो की बाते कर– करके हम पापी क्यो बनें, हम उनकी परमात्म दशा की ही बात करें। मारीचि से बडा पाप कौन कर सकता है ? जिसने ३६३ मिथ्यामत चला दिये। मिथ्यात्व से बडा क्या पाप है, पर आज वे हमारे जिनालय में विराजमान हैं। उनके शासन को हम जयवत कर रहे हैं। अब तुम देखो मारीचि की पर्याय को और करो परिणाम खराब। भो ज्ञानी! मुमुक्षु की आँख पाप पर्याय के लिए तो बद होती है पर पुण्य पर्याय के लिए चौबीस घटे खुली होती है। मुमुक्षु अपनी आख से पाप पर्याय को देखना ही नही चाहता है इसलिए 'अमृतचद्र स्वामी' कह रहे हैं कि भाव अहिसा ही पूर्ण अहिसा है और जिसके पास भाव अहिसा हो, परतु द्रव्य अहिसा न हो, कैसे सभव है ? अरे! जिसका भाव होगा उसके पास द्रव्य भी होगा। इसीलिए धर्म तो वास्तव मे बचपन मे ही होता है, पचपन मे तो सिर हिलने लगता है, क्योकि बचपन मे सँभल गये होते तो पचपन मे यहॉ नही मिलते। इसीलिए अब भी कोई बात नही, तुम परिणति बचपन ही की बनाके चलना। जिनवाणी मे लिखा है कि सयम के लिए हर समय वृद्ध बनके रहना और ज्ञान के लिए बालक बनके रहना।

भो चेतन! आगम मे उल्लेख आया है कि एक अस्सी वर्ष के मुनिराज याद कर रहे थे 'एक्को करेदि कम्म' कोई विद्वान पहुँचा। प्रभु! अब तो आप सल्लेखना करो, आप याद करने मे लगे हो, यह तो बचपन के काम थे। वे योगी कहते है– भो ज्ञानी। यह बचपन ही तो चल रहा है। अभी मेरी सल्लेखना का बचपन ही तो चल रहा है। मैंने बारह वर्ष की समाधि कल ही तो ली है। अत मैं इस कारण याद नही कर रहा हूँ कि तुम्हे सुनाऊगा बल्कि मैं इसलिए याद कर रहा हूँ कि इस आत्मा मे सस्कार डाल दूँगा जो आगे चल कर केवलज्ञान के सस्कार बन जायेगे। इसलिए जब भी तुमको समय मिले, तो आप श्लोक याद करने बैठ जाया करो, याद नही हो इसकी चिता नही करना, जितनी देर से याद होगा उतना अच्छा होगा। देखो, ज्ञानी हमेशा हर बात को, अपनी परिणति की निर्मलता मे सोचता है कि जितनी देर तक हम याद करेगे, उतनी देर तक अशुभ से बचेगे। जो विचार तुम्हारे अन्यथा जा रहे थे वे आपके श्रुत चर्चा मे जाने लगे। शिवभूति महाराज जिनको बारह वर्ष मे णमोकार मत्र' याद नहीं हुआ था तो पहुँच गये गुरुदेव के चरणो मे प्रभु! क्या करूँ ? गुरुदेव बोले–कोई बात नही, तुम इतना याद कर लो ''तुष माश भिन्नम्''। अरे! वह भी भूल गये देखो कर्म की विचित्रता, जा रहे थे चर्या को, एक मॉ दाल धो रही थी तो 'तुष माश भिन्नम् याद आ गया, अहो! यही तो कहा था महाराज जी ने, माश यानी दाल से, तुष याने छिलका भिन्न है ऐसे ही देही से देह भिन्न है। अब नहीं जा रहा हूँ आहार करने, कहीं चला गया तो फिर भूल जाऊँगा। अत एक शिला पर बैठ गये। 'तुषमाश घोसन्तो''

तुसमासो घोसतो भाव विशुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुड जाओ ।। ५६।। भा पा ।।

"तुषमाश घोषन्तो" भावो की विशुद्धि पूर्वक शिवभूति महामुनि अतरमुहूर्त मे केवल ज्ञानी बन गये। जिन गुरुओ ने पाठ सिखाया था, वे गुरु आकर शीश झुका रहे हैं। त्रिलोकी नाथ, केवली प्रभु! आपके चरणो मे, मैं तो चिल्लाता रहा और आप केवली बन गये। इसलिए इस क्षयोपशम ज्ञान का अहम् मत करना, यह कब आ जाये, कब चला जाये, कोई पता नही है। प्राप्त करना तो क्षायिक ज्ञान को। इसलिए तुम सब जानना भूल जाओ एक ही जानलो, तो सब जान लोगे कि एक मेरी निज आत्मा है।

मनीषियो! आचार्य भगवन कह रहे हैं "एक करोति हिसा" हिसा एक कर रहा है। कचरा एक ने फेका था शेष ने तो कुछ नहीं किया, लेकिन सात सौ कुष्ठी हो गये। ज्ञानियो ध्यान रखना अनुमोदना करने के भाव भी आते हैं तो अच्छाई की अनुमोदना करना, बुराई की अनुमोदना नही कर लेना। कभी–कभी कितना व्यर्थ मे बध हो जाता है। बहुत गहराई से समझना, टेलीवीजन के सामने आप कैसे निर्बन्ध रहते होगे। मैच देख रहे है झगडे देख रहे हैं, कही कुछ भी देख रहे हो, भाव तो आ गये। दैनिक पेपर से भी तुम बच नही सकते, चोरी, छल–कपट, बलात्कार, हिसा आदि की घटनाएँ उसमे लिखी है, अनादि से सस्कार है, राग प्रचुर होता है। आप सम्मेद शिखर की वदना करने गये थे अचानक कोई घटना विदिशा की लिखी मिल गयी उसको पुन देखते हो। अरे! विदिशा की कहॉ बैठे थे आप ? अहो! सिद्ध क्षेत्र मे विराजी आत्माओ। आप यहाँ की याद कर रहे हो ? बध कहॉ का होगा ? अब देखना साधक को सिद्ध क्षेत्र मे अखबार पढने से मन मे कोई विकल्प आ गया, तो बध कहॉ का होगा ? उसमे स्त्रीकथा चोरकथा राज्यकथा एव भोजन कथा इन चार कथाओ के अलावा कौन सी वीतराग कथा लिखी होती है ? सोचो, उस समय भाव तुम्हारे कहा जा रहे है। प्रमाद तो आयेगा और नियम से बध होगा क्योकि कितने ही आप जैन हो धर्मात्मा हो भाव तो आते है। राग जहॉ हुआ, वहॉ तेरे मे एक क्षण भी नही लगेगा प्रवेश कर गये कर्मशत्रु। हिसा को एक ने किया फल को बहुत भोग रहे है। घर मे एक सदस्य अनाचार से कमा कर ला रहा है, तुम सब भूल नही जाना भोजन किसके घर मे कर रहे हो ? किसके कपडे पहन रहे हो और किसकी अनुमोदना मे लीन हो। भो ज्ञानी! जितना राग है उतना बध तो होगा। उत्तम वश वाले उत्तम काम करते थे, आटे की चक्की नही लगाते थे, कोल्हू नही लगाते थे। यह मत सोचना कि पिताजी कर रहे है तो पाप हमे नही लगेगा, क्योकि एक कर रहा है और फल बहुत भोग रहे है। एक सम्राट ने सेना को आदेश कर दिया, जाओ उस देश पर चढाई कर दो, इतनी बडी सेना हिसा कर रही है, पर भोग एक रहा है ? प्रधानता किसकी है ? आदेश जिसने दिया था वह तो सिहासन पर बैठा है लेकिन रक्त की इतनी धाराए बह रही है इन सब का दोष उसको तो लगना ही लगना है। किसी को हिसा उदय काल मे एक ही हिसा के फल को देती है और कोई एक जीव को हिसा होने पर हिसा का फल मिल रहा है और एक जीव से हिसा होने पर भी अहिसा का फल मिल रहा

है। भटक नहीं जाना, जैसे आपको कोई जीव आँखे दिखाने आया सो आपने उसकी आँखो मे ड्राप डाल दिया, लेकिन वह रियेक्शन कर गया, उसकी आँखे फूट गई, परतु पुलिस आपको नही पकडेगी क्योकि आपका उद्‌देश्य उसकी आँखे फोडना नहीं था, उसको ठीक करना था। इस प्रकार शल्य क्रिया करते समय डॉक्टर के यहाँ किसी मरीज की मृत्यु हो जाती है, फिर भी वहाँ बचाने का ही उद्‌देश्य था, अत उसको अहिसा का फल ही मिलेगा। अहो! एक जीव यह सोच कर चला था कि हम स्वय मारेगे तो लोग हमें पकड लेगे। सो ऐसा कर लो, भैया! तुम लो पचास हजार हमारा पता नहीं चलना चाहिए। अहो! उनको पता नहीं चल पाए और तुमने जहर खिलवाकर उसको खत्म करा दिया। भो ज्ञानी! हिसा तो आपने नही की, पर ध्यान रखना तुम अहिसक नहीं और चिता नहीं करो, बुन्देलखण्ड के लोग एक बहुत अच्छी कहावत कहते हैं– जब पाप उदय मे आता है तो मगरे पर चिल्लाता है।" अरे! इतने गहरे–गहरे एकात मे किये गये पाप पेपर मे कैसे छप गये ? सब पता चल जाता है इसलिए जीवन मे ध्यान रखना किसी को प्रेरित मत करना, किसी की प्रेरणा मे सयोगी मत बनना। ध्यान रखना बहेलियो का काम भी नहीं करना उसका काम झाडी मे छुपकर मारना है अर्थात् दूसरे के द्वारा दूसरे का घात करा दिया बोले– मैं तो धर्मात्मा हूँ और ज्यादा हुआ तो चलो हम श्रीजी का अभिषेक कर लेते है पवित्र हो जायेगे। ऊपर की क्रिया पवित्र नही कराती परिणति पवित्र कराती है परिणति के साथ क्रिया है, तो पवित्र हो जाओगे।

शितन्नवासल- जैन मुनियों की आवास गुफा

निग्रंथ गुरु ही शरण हैं

हिसा फलमपरस्य तु ददात्यहिया तु परिणामे।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्य–हिसाफल नान्यत्।। ५७।।

अन्वयार्थ – तु अपरस्य = और किसी को। अहिसा परिणामे = अहिसा उदयकाल मे। हिसा फलम् ददाति = हिसा के फल को देती है। तु पुन = तथा। इतरस्य हिसा = अन्य किसी को हिसा। अहिसा फलम दिशति = अहिसा के फल को देती है। अन्यत् न = अन्य फल को नही।

इति विविधमगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
गुरुवो भवन्ति शरण प्रबुद्धनयचक्रसचारा ।। ५८।।

अन्वयार्थ – इति = इस प्रकारसु =दुस्तरे = अत्यत कठिनाई से पार किये जाने वाले और विविध भगगहने =नाना भगो से गहन वन मे मार्गमूढदृष्टिनाम् = मार्गमूढ दृष्टि पुरुषो को अर्थात मार्ग भूले हुए पुरुषो को प्रबुद्धनयचक्रसचारा = अनेक प्रकार के नय समूह को जानने वाले गुरुव शरण भवन्ति = श्री गुरु ही शरण होते है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।३८।।

मनीषियो! अमृतचद स्वामी ने ग्रथराज पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे चर्चा की है कि जो अहिसा का पालन कर रहा है वह दूसरे की रक्षा नही वरन् स्वय की रक्षा कर रहा है क्योकि ज्ञानी, पर की रक्षा का भी कर्ता नही बनता, वह स्वय की रक्षा के भाव में जितना जीता है वह ही पर की रक्षा है।

अहो ज्ञानी आत्माओ! एक चीटी जा रही थी उस चींटी को बचाने के भाव तेरे मन मे आए कि निज को बचाने के भाव तेरे मन मे आए। जो निज की रक्षा करता है, वही विश्व की रक्षा कर सकता है। निर्ग्रंथ योगी कभी किसी जीव की रक्षा नही करते, वह तो स्वय की ही रक्षा करते है और जो स्वय की रक्षा करता है वह कभी किसी की हिसा भी नहीं करता। मुमुक्षु जीव निज को कर्म से बचाने के लिए पुरुषार्थ करता है। किसी की रक्षा करने में आपको तकलीफ होती हो तो इतना विचार कर लेना कि मैं कर्म से नहीं बधूँगा। अत ऐसे काम करना जिससे कर्म के बध

ाने से स्वय की रक्षा प्रारभ हो जाए।

भो ज्ञानी! तू सँभल–सँभल के चलेगा तो जीवो की रक्षा स्वयमेव ही हो जाएगी। ज्ञानी पुरुष स्वय की रक्षा करने के लिए ही दूसरो की रक्षा करते हैं और जब तक स्वय की रक्षा के भाव नहीं आएँगे तब तक आप अतरग से दूसरे की रक्षा कर भी नहीं पाओगे। किसकी रक्षा कर रहे हो आप ? जीव की रक्षा तो उसके कर्म के ऊपर है। आप रक्षा करने वाले थे कौन? अरे! उस जीव का पुण्य–योग था कि आपको रक्षा के भाव आ गये क्योकि कभी–कभी लोग रक्षा तो कर लेते है पर प्राण का वध होने मे उस जीव को जितनी वेदना नही होती जितनी आपकी रक्षा से होती है। इसलिए हम जीव की रक्षा तो करे, लेकिन दयापूर्वक करे।

भो ज्ञानियो! रक्षा तो करना, परतु उसकी रक्षा के लिए नही अपितु अपने पापो से बचने के लिए, पुण्य करने के लिए और निज के उपयोग को निर्मल कर लेने के लिए धर्म करना। कोई आपसे कहने लगे भैया! आपने मेरे साथ इतना अच्छा किया है, तब आप कहना–कुछ नही किया? मैं क्या कर सकता हूँ? मैं तो निमित्त बन गया हूँ। ऐसी भवितव्यता तुम्हारी थी कि यह यश मुझे मिलना था और आपका पुण्य का योग था मैं नहीं आता तो दूसरा आपकी रक्षा करता।

भो मुमुक्षु आत्माओ! जब हनुमान का जन्म होने को था तो गुफा के सामने शेर आ गया। मॉ अजनी थर–थर कॉपने लगी। देखो, हनुमान सामान्य पुत्र नहीं थे कामदेव थे, लेकिन कर्म किसी को नही छोडता। वहा पर भी पुण्य था पलडे मे। यक्ष ने देखा कि अबला के सामने सिह खडा है और वह गर्भणी पुत्र को प्रसूत करने वाली है। यक्ष ने अष्टापद का रूप बना लिया और शेर के सामने खडा हो गया। मनीषियो। सिह से कोई पराक्रमी होता है तो अष्टापद ही होता है और देखते ही देखते सिह से युद्ध करने को तत्पर हो गया। वहॉ भी मनीषियो! रक्षा करने वाला कोई नही था पर रक्षा हुई कि नही?

भो चैतन्य आत्माओ! ज्ञान की शक्ति भी वही काम आती है जब तेरी पुण्य की शक्ति रहती है। क्या रावण को ज्ञान नही था ? इतना बडा विद्वान, जिसने विश्व की इतनी विद्याएँ सिद्ध की कि आज तक कोई भी इतनी सिद्धी नहीं कर पाया, लेकिन वह ज्ञान कहॉ चला गया? एक परनारी को देखकर विद्याएँ विचलित हो गयी। जब पुण्य क्षीण हो गया तो ज्ञान भी काम नही आया। इसीलिए कुदकुद स्वामी को लिखना ही पढा कि प्रभु पुण्य का फल अरहत पर्याय है। पद्म पुराण मे आचार्य श्री रविसेन स्वामी को लिखना पडा कि जीव के पुण्य के न होने पर व्रतो का पालन नही कर पाता। पडित दौलतराम जी ने लिखा है 'मुनि सकल व्रती बडभागी', क्योकि भोगो से उदास होना प्रबल पुण्य का योग होता है और यह पुण्य एक भव की साधना नहीं समझना। जब तुमने छोटे–छोटे व्रतो का पालन किया था तब ही इतना पुण्य का सचय किया था। ससार के शत्रुओं का नाश करने के

लिए शरीर मे बल चाहिए और यह बल अनेक भवो के पुण्य का फल है।

भो ज्ञानी! किसी को कभी जिनबिब की वदना करने का निषेध मत कर देना, कभी निर्ग्रंथ गुरुओ के दर्शन करने का निषेध मत कर देना, व्यवस्था बनाना, लेकिन कर्म का बध नहीं कर लेना। दर्शन तो कर लो पर भीड मत करो और कभी भी किसी को दर्शन से मत रोकना। देखो, बाईस घडी तक जिन प्रतिमा को छिपा के रखा था, तो ऐसा नि काचित कर्म का बध हुआ था महारानी कनकोदरी को, कि अजना की पर्याय मे बाईस वर्ष तक पति का वियोग सहन करना पडा। यद्यपि वे प्रायश्चित ले चुकी थी, परतु बँध, बध गया था। ध्यान रखना, प्रबल पुण्य का योग है तो सिह के मुख मे भी प्रवेश कर जाओ तो भी रक्षा हो जाती है। प्रबल पुण्य के योग में पाप कर्म का भी उदय होता है, तो दुर्ग मे भी शत्रु खींच के मार देता है। इसलिए इस अहकार मे मत डूबना कि हमने आपकी रक्षा की है। पुण्य का योग न होता तो आपकी रक्षा काम मे नहीं आती। इसलिए उपकार तो करना परतु उसको बार बार मत कहना कि हमने तुम्हारे साथ ऐसा किया। भो भगवान आत्मा ! अहिसा बहुत गभीर है, जितने विश्व के दर्शन हैं, अहिसा के बाहर कोई नही है सभी का एकमात्र सूत्र, अहिसा परमोधर्म है और जिसने 'अहिसा परमो धर्म' समझ लिया उसे अलग से व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नही है।

मैंने एक दिन आपसे कहा था ज्यादा नियम मत पालो। आप तो छोटा सा नियम ले लो कि पानी छान कर पीयेगे, परतु विचार कर लेना कि पानी छानकर पीओगे तो बिना छने पानी की सामग्री कैसे सेवन करोगे। बाजार मे तुमको कौन पानी छान के बना रहा है ? बाजार की सामग्री छूट गई। अब विवेक लगा लो कि अडतालीस मिनिट की मर्यादा है छने पानी की। इसलिए माँ से मत माँगना अपने हाथ से छान कर पी लेना तो पराधीनता चली गई। नहीं तो ऐसा होता है बेटा! अभी– अभी छाना है पीलो। अरे! माँ तो वह होती जो कहती है नही बेटा। एक मिनिट ज्यादा हो गया, अभी नहीं पीना, मैं अभी छान देती हूँ।

आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं भो ज्ञानी! अहिसा के तत्त्व को समझना है तो ध्यान रखना दूसरे के उपकार का कर्त्ता बनकर उसे दुखित मत करना, वह भी हिसा है। उपकार करने के भाव तो अमरचद्र दीवान के थे। उन्हे पता चला कि एक बूढी माँ के लिए खाने को घर मे कुछ नही था। अपनी साडी के दो भाग मे एक से अपने बदन को ढके थी और एक से अपने बच्चे को लपेटे थी। दीवान ने देखा तो उन्होने अनाज की पोटली मे रत्न भरे और बुढिया माँ के यहाँ छोड कर आ गये और बोले भोजन बनाकर बच्चे को खिला देना। अहो! इतने रत्न ऐसे ही दे दिए बिना पटिया लिखाए। अरे! तुम्हारे पटिया तो यहाँ मिट जायेगे पर उनका पटिया तो वहाँ सिद्धालय पर लिखा जायेगा। अत किसी का उपकार तो करना, लेकिन उपकार करके भूल जाना, उसको

दोहराना मत। एक जगह एक व्यक्ति को हाथ ठेला दिया गया और जिसे हाथ ठेला दिया वह जब उसे लेने आया तो ऑखो से टप–टप आसू टपक रहे थे। इसकी वेदना उसके अदर थी कि आज मुझे हाथ ठेला समाज से लेना पड रहा है। अरे! उपकार करना था तो जैसे अमरचद्र दीवान ने किया था वैसे करते, किसी को पता ही नही चलता। तुम्हारे लिये तो तीन लोक का ज्ञानी देख रहा है कि तुम उपकार कर रहे हो। यही अहिसा है और किसी के हृदय को दुखी करके तुमने बहुत कुछ किया, तो कुछ भी नही किया। जिसका उपकार किया है उसका कर्त्तव्य बनता है कि उस उपकारी के उपकार को माने।

मनीषियो! भगवन् अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि अन्य किसी जीव को अहिसा के परिणाम उदय काल मे हिसा के फल को देते हैं। देखो, कितना गहन तत्व है? एक जीव ने वध नही किया फिर भी हिसा के परिणाम को भोग रहा है, एक जीव से हिसा हुई द्रव्य से, फिर भी अहिसा का फल भोग रहा है। जैसे कि किसी जीव ने दूसरे को मारने के भाव किये , लेकिन सोचता है कि मैं इज्जत वाला हूँ ,उत्तम कुल मे जन्मा हूँ इसलिए कैसे मार सकता हूँ? उसने मारा तो नही लेकिन परिणाम तो हो गये। भैयाजी त्यागी बन गये पर परिणाम कसाई के हैं, कहते हैं कि यदि आज मै इस वेश मे नही होता, तो मैं आपको देख लेता। यह तो वेश की मर्यादा है। ठीक है वेश से द्रव्य हिसा बच गई, लेकिन भाव–हिसा तो हो गई।

भो ज्ञानियो! श्रमण सस्कृति ने भावो की निर्मलता के लिए वेश दिया है वेश की निर्मलता के लिए भाव नही दिये। वेश काम मे नही आएगा, भाव काम मे आएँगे, भाव गडबड हो गए और वेश पूजता रहा तो जीव कहाँ से कहाँ चला जायेगा, कह नहीं सकते। इसलिए जीवन मे ध्यान रखना, यह वेश आपको अरहत, सिद्धो का मिला है। इस वेश को प्राप्त करके भाव सुधार लेना, भाव सुधर गये तो भव सुधर जाएगा। भाव नहीं सुधरे तो कितने वेश रचा के बैठ जाना, लेकिन भव सुधरने वाला नही है। जिनवाणी मॉ पुकार–पुकार कर कह रही है कि यह वेश दूसरे के लिए तो पूज्य है पर तुम्हारे लिए तो पूज्य भाव ही बनाएँगे। धर्म का वेश बदनाम न हो इसलिए तुम शात हो, पर वस्तुत तुम तो बदनाम हो चुके हो। हमारे आगम मे निदा के दो भेद किये हैं। लोक निदा और आत्म निदा। आपके भाव नीचे गिर गये पर आप पाप नहीं कर रहे तो लोक निदा तो बच गई। लेकिन कर्म से नहीं बचे। ध्यान रखना, आपकी रक्षा नहीं हुई आप तो बध चुके। इसीलिए कह रहे हैं कि हिसा नहीं करने पर भी हिसा का फल भोग रहा है।

भो ज्ञानी! एक आचार्य ने अपने शिष्य को ऐसे डॉटा कि उसकी आँखो से आँसू आ गये। अहो! शिष्य पर कषाय कर रहे हैं, फिर भी हिसक नही थे। वे कह रहे थे, बेटा! गलती मत करो, यह मोक्षमार्ग है। वे सुधार की दृष्टि से समझा रहे थे अत वे हिसक नही थे, क्योकि उनकी दृष्टि

मे रक्षा थी। गुरु की बात,

गुरु कुलाल शिशु कुंभ है, घढ–घढ काढे खोट ।
भीतर हाथ पसार के बाहर मारे चोट।।

जैसे कुभकार, घडे को बनाता है, सभलता है ऐसे ही गुरु कुमकार के तुल्य होते है बाहर से जरूर लगता है ताप दे रहे हैं पर अदर से सभाल रहे हैं। यह गुरु की दृष्टि है इसीलिए वहॉ पर अहिसा ही है। इसी प्रकार वैद्य ने किसी का उपचार किया परतु उपचार के काल मे ही उस मरीज की मृत्यु हो जाती है, फिर भी वैद्य हिसक नही है, अहिसक ही है। दृष्टि का ध्यान रखना यह रक्षा की दृष्टि है। इस प्रकार यह वीतरागी मार्ग है। परतु जो दृष्टिमूढ हैं, अज्ञानी है उनके लिए "गुरूवो भवन्ति शरण" यदि कोई शरण है, तो भो ज्ञानी! वीतराग गुरु की ही शरण है। जो निष्पृह, निर्द्वन्द्व और निरपेक्ष है वह निज की सेवा से भी दूर है। अहो! निज की सेवा के भाव आएँगे तो कभी सत्य का उपदेश नही हो पाएगा, क्योकि सत्य को सत्य ही कहना और सत्य को सत्य ही समझना, नही तो भो ज्ञानी ! लोभी गुरु और लालची चेला, होय नरक मे ठेलम ठेला '। ऐसे चेला नही बनना और ऐसे गुरु नहीं बनाना, यहा तो निष्पृह गुरु और निर्द्वन्द्व चेले की चर्चा है।

भो मनीषियो! यदि गुरु मिल गये होते तो भो अध्यात्म प्रेमियो! हमारी समाज के दो टुकडे नही होते। गुरु के अभाव मे तुमने जो ज्ञान हासिल किया उससे नय के चक्र को समझ नही पाये। इसी कारण पथो के चक्र चल गये और यदि नय चक्र समझ लिया होता तो पथ के चक्कर स्वयमेव समाप्त हो जाते। इसीलिए आचार्य देवसेन स्वामी ने कहा है कि भगवान जिनेन्द्र के नय चक्र को समझे विवक्षा को समझे तथा गुरू की शरण को प्राप्त करे क्योकि बिना गुरु के ज्ञान नही होता है। जब तक वीतराग गुरु की शरण नही मिलती। तब तक वीतराग जिनेन्द्र की निर्मल देशना समझ मे नही आती यह सत्य है, यथार्थ है। क्योकि जिसके पास जो होता है, वही देता है। यह किसी की भूल मत कहो, यह अपनी ही भूल कहो कि गुरु के अभाव मे ज्ञान होता है।'

अत हम सभी उस नयचक्र को समझे। "अध्यात्म अमृत कलश मे आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने लिखा है–हे प्रभु! स्याद्वाद से लक्षित आपकी जो वाणी है वह नय के विरोध को विध्वस करने वाली है। इसलिए उस वीतराग वाणी की एव पच परम गुरु की शरण को प्राप्त करे।

"मिथ्यात्व का शमन करने वाला जिन नय चक्र"

अत्यतनिशितधारं दुरासद जिनवरस्य नयचक्रम्।
खण्डयति धार्यमाणं मूर्धान झटिति दुर्विदग्धानाम्।। ५९।।

अन्वयार्थ – जनवरस्य = जिनेद्र भगवान का। अत्यत निशितधार = अत्यत तीक्ष्ण धार वाला। दुरासद नयचक्रम् = दुस्साध्य नयचक्र। धार्यमाण = धारण किया हुआ। दुर्विदग्धानाम् = मिथ्याज्ञानी के। मूर्धान = मस्तिष्क को। झटिति खण्डयति = शीघ्र ही खण्ड–खण्ड कर देता है।

अवबुध्य हिस्यहिसकहिसाहिसाफलानि तत्त्वेन ।
नित्यमवगूहमानैर्निजशक्त्या त्यज्यता हिंसा ।। ६०।।

अन्वयार्थ – नित्यम् = निरन्तर। अवगूहमानै = सवर मे उद्यमवान् पुरुषो को। तत्त्वेन = यथार्थता से। हिस्यहिसकहिसा = हिस्य हिसक हिसा भाव। हिसाफलानि अवबुध्य = हिसा के फलो को जानकर। निजशक्त्या = अपनी शक्ति के अनुसार। हिसा त्यज्यता = हिसा को छोडना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना ||३९||

मनीषियो! जैन आगम अपने आप मे अगाध है। इसका पार पाना ज्ञानियो को भी सहज नही है। "गुरुवो भवन्ति शरण" यदि लोक मे कोई शरणभूत मगलोत्तम है, तो पच–परम–गुरु हैं। वे जीव धन्य हैं जिनके परिणाम पच परम गुरु के चरणो मे नमस्कार करने के होते हैं। जीवन मे धनहीन को सबसे बडा अभागा नही कहना। जिसका मन हीन है, लोक मे उससे बडा कोई अभागा नही। अहो! जिस जीव की परिणति पच परमगुरु के चरणो मे सिर झुकाने की नही हो पा रही है समझ लेना उसका अत्यत क्षीण पुण्य चल रहा है, क्योंकि पुण्य की वृद्धि पचगुरु की आराधना से ही होती है। अशुभ–आयु का बधक कभी भी यह नही सोच पाता है कि वीतराग–मार्ग क्या है? आत्मा का हित किसमे है? जबकि मुमुक्षु प्रतिक्षण, प्रतिपल यही चिन्तन करता है कि आत्मा का हित किसमे है? 'प्रवचनसार' की टीका मे जयसेन स्वामी बडी सहज बात लिख रहे हैं–अहो! भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक वे निर्ग्रंथ योगी निज–स्वभाव मे लीन होते हैं, लेकिन वे भी शुभ–उपयोग मे

आते हैं तो यह मत कहना कि शुभ उपयोग में ही रहते हैं। जो शुभ–उपयोग मे आते हैं, वे ही शुद्ध उपयोग मे जाते हैं और जो शुद्ध–उपयोग मे होते हैं वे शुभ–उपयोग मे भी आते है, क्योकि अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा उपयोग बनता ही नहीं। शिष्य ने प्रश्न कर दिया–क्या श्रावक के भी शुद्धोपयोग होता है? भगवन् जयसेन स्वामी लिखते है–वह श्रावक भी सामायिक काल मे शुद्ध–उपयोग की भावना से युक्त होता है, उस श्रावक के भी शुद्धपयोग की भावना होती है और ऐसे शुद्धपयोग की भावना मे लीन हुआ श्रावक, जिस प्रकार आम के बगीचे मे एक–दो जामुन के वृक्ष हो फिर भी बगीचा जामुन का बगीचा नही, आम का ही कहलायगा। ऐसे ही शुद्ध–उपयोग की भावना से रत होने पर भी श्रावक शुभ– उपयोगी होता है, क्योकि वह शुद्ध–उपयोग का बगीचा नही, शुभ उपयोग का बगीचा है और निर्ग्रंथो के लिए यह बगीचा शुभ–उपयोग का नहीं। यहॉ शुभ–उपयोग गौण है, शुद्ध–उपयोग प्रधान है, इसीलिए यहॉ शुभ–उपयोग होने पर भी इनको शुद्ध–उपयोगी निर्ग्रंथ कहा जाता है। जिन्हे निज देह से भी राग–द्वेष नहीं, वे पर–देह मे राग–द्वेष कैसे कर सकते हैं? जब आप शरीर को पर–द्रव्य मानते हो, राग नही करते हो तो, द्वेष क्यो करते हो? यदि आप अपने शरीर से द्वेष रख रहे हो तो पता नही पर–शरीरो से कितना द्वेष होगा?

भो ज्ञानी! जिन्हे निज–देह एव पर–देह मे राग–द्वेष है, वे निर्ग्रंथ–वेशधारी नही है। आचार्य कार्तिकेय स्वामी अशुचि–भावना मे लिख रहे है–

जो पर देह विरत्तो णिय देहे ण य करेदि अणुराय ।
अप्प सरुव सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स ।।८०।। का अ ।।

जो पर–देह से विरक्त हैं और निज देह मे भी जिनका अनुराग नही है, जिनका सुरक्त (दृष्टि) आत्म–स्वरुप मे लगा है, वे अशुचि भावना मे लीन दिगम्बर वीतरागी गुरु ही हमारे परम गुरु है, वे ही शरण है। जिसको माता–पिता, स्त्री, पुत्र की शरण समाप्त हो जाती है, तो फिर लगता है कि कोई शरण है, तो वह गुरु की ही शरण है। जिसे धन, तन और ग्रथो की शरण है, उसे निर्ग्रंथो की शरण झलकती ही नही है। इसीलिए अमृतचद्र स्वामी कह रहे है–यदि आपको तत्त्व को समझना है, तो आपको शरण की खोज करनी पडेगी, आश्रय तो लेना ही पडेगा। बिना आश्रय के आप परमेश्वर बन ही नही सकते। अहो! जिसकी दृष्टि निर्मल होती है, उसे कही बुरा नजर नहीं आता। तीर्थंकर बनने वाली आत्मा वही होती है, जिसे सब अच्छा लगता है और जिसका विश्व के प्राणीमात्र के प्रति बालकवत् व्यवहार होता है। आप ऐसे ही गुरु की शरण मे चले जाना। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि यह नयचक्र बहुत गहन है। बिना गुरु के विद्या की प्राप्ति सभव नही है, गुरु तो चुनना ही पडेगा।

भो चेतन! लोक मे पच परम गुरु ही शरण हैं और जिस जीव की पच परम गुरु की शरण

हट गयी, उसका मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो गया। जब तक इनके प्रति आस्था है, तबतक धर्म का आनद है। आचार्य समतभद्र स्वामी लिख रहे हैं कि **"मातृवत बालस्य हितानुशास्ता"** जैसे एक माँ अपने बालक का हित चाहती है, वैसे ही प्रभु विश्व के सभी प्राणीयो का हित चाहते हैं। हे प्रभु! आप ऐसी माँ हो, जो कि बिना किसी अपेक्षा के सब कुछ कर रहे हो। ऐसे पच परम गुरुओ की शरण को जिसने प्राप्त कर लिया, उसे ससार मे कहीं भी भय नहीं लगता। एक मृगी का बालक अपनी माँ की गोद मे किलकारियाँ भरता है और उसे सिह का डर भी नहीं लगता। आचार्य मानतुग स्वामी 'भक्तामर–स्त्रोत' में लिख रहे हैं–हे मुनीश! हे गुरुदेव! हमारे गुरु निर्ग्रंथ हैं और परमगुरु अरिहत हैं, तीसरा मेरा कोई गुरु नही है। मनीषियो! ध्यान रखना जो निर्ग्रंथ नहीं है वे हमारे गुरु नहीं है। आचार्य महाराज भक्तामर–स्तोत्र मे लिख रहे हैं–"सोऽहँ तथापि तव भक्ति वशान्मुनीश", हे मुनीश! आपकी भक्ति के वश होकर के, 'कर्तस्तव' मैं आपका स्तवन कर रहा हूँ, लेकिन प्रभु मै जानता हू, मेरे अदर सामर्थ्य नही है। आप महान गुणो के अगाध सागर हो, मैं स्तवन कर भी कैसे सकता हूँ? हे प्रभु! 'निज शिशो परिपालनार्थम्" अपने शिशु के पालन करने के लिये जैसे मृगी मृगेद्र को देखकर के भयभीत नही होती और बालक के वात्सल्य मे आकर सिह से भी लडने को तैयार हो जाती है, उसी प्रकार अहो निर्ग्रंथो के भक्तो! प्रभु के चरणो मे प्रार्थना कर लेना कि हे नाथ! जब तक मेरे कण्ठ मे सासे चल रहीं हैं तब तक श्रद्धाओ और मिथ्यात्व के सिहो से मैं घबराऊँ नही। कितने ही अश्रद्धा के शेर मुख फाडे बैठे हो, कितने ही पच परमगुरु से दूर भगाने वाले आ जाये, लेकिन हे नाथ! हम फिर भी आपके चरणो के सामने खडे हो जायेगे। अहो! ससार मे कोई शरण है तो एक मात्र पच परम गुरु हैं, और दूसरी शरण कोई नही है।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि अभी तक तो आपको गुरु की शरण को प्राप्त कराया है परन्तु अब आप भगवान जिनेद्र के नयचक्र को समझो। यह नयचक्र ऊपर नही चलता और न ऊपर दिखता है, वह तो अदर के सिर को फोडता है। जो तुम्हारे अदर मिथ्यात्व का पुतला बैठा है, एकान्त का पुतला बैठा है, उस एकात के पुतले मे छेद करता है। नयचक्र किसी के सिर को फोडता नही है, क्योकि यह अहिसा धर्म है और हम अहिसा की बात कर रहे हैं, अन्यथा आप कहो आचार्य महाराज ने इतना कठोर शब्द क्यो लिख दिया? किसी का सिर नहीं फोड रहे हैं। यह ध्यान रखना शब्द बडा पैना है। पच– कल्याणक महोत्सव मे एक पाषाण को हमने चार दिन मे परमेश्वर बना दिया और हमारे देखते–देखते केवली बन गये और केवली बनाने वाला जैसा का तैसा बैठा है। एक प्रतिष्ठाचार्य ने एक पर्याय मे कितने भगवान बना डाले, लेकिन निज के भगवान को नही बना पाया। अहो! वह पाषाण श्रेष्ठ है, जो कुछ ही दिन मे परमेश्वर बन गया, पर अपना पाषाण कितना कठोर है कि इतनी छैनी पड रही है फिर भी असरकारी नही। इसलिए भगवान जिनेद्र के नय को समझना और जिसने नय को समझ लिया उसे सिद्धात समझने मे देर नहीं

लगेगी। जो नय को समझे बिना अध्यात्म को समझना चाहता है वह बिना मार्ग के जगल मे प्रवेश कर रहा है। अब बताओ उसका क्या होगा? यदि आगम के विरुद्ध, सिद्धात के विरुद्ध हमारी प्रवृत्ति चल रही है तो उससे बडी हिसा क्या हो सकती है? अरे! सबसे बडी हिसा मिथ्यात्व है जो अनादि से आत्मा को ससार मे भटका रहा है, इसीलिए आचार्य महाराज ने अहिसा मे नय को रखा है, क्योकि हिसा के भेदो को समझे बिना अहिसा मे प्रवृत्ति कैसे होगी? आपका अहिसा महाव्रत है तो उस अहिसा महाव्रत की रक्षा आप कैसे करोगे? जब तक आपको जीवस्थान मालूम नहीं होगा, तब तक उन जीवो की रक्षा कैसे करोगे?

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि अहिसा मे भी नय की बात की गयी है, क्योकि नय यानि वचनवाद। वचनशैली को समझने के लिए नय अनिवार्य होते हैं और जब तक आप अहिसा मे नय नही लगाओगे तो आप अपने मन से कुछ भी करते रहो, हिसा है। सिद्धात के विपरीत बोलना आगम के विपरीत चलना किसी के हृदय को दुखित कर देना हिसा है और निज के परिणामो को कलुषित करना महा हिसा है। निज के परिणाम यदि पर के द्वारा बिगड रहे हैं तो हिसा ही है, क्योकि बिगाड किसका हो रहा है? तुम निमित्त को कितना ही दोष देते रहो, लेकिन काम तो तुम्हारा ही बिगड रहा है। अहो! ससार की कितनी विचित्र दशा है काम बिगड जाये तो कहेगे–ऐसा निमित्त आ गया था। यह नही कहेगे कि उपादान बिगड गया था। कहोगे कि सामग्री रखी थी खाने के भाव आ गये सो हमने खा ली, हमारा क्या दोष? अब बताओ सामग्री ने आपको कब निमत्रण दिया था? इसलिए इस प्रपच मे मत पडो, सत्य को समझो, नयचक्र को समझो।

मनीषियो! आचार्य भगवन् कह रहे है कि नयचक्र अत्यत तीक्ष्ण पैनी धारवाला दुस्साध्य चक्र है। ऐसा भगवान जिनेद्रदेव का यह नयचक्र मिथ्यात्वी पुरुष की मूर्धा के मस्तक को खण्ड–खण्ड कर देता है फिर वहाँ मिथ्यात्व के मस्तक बचते ही नहीं है। भगवान जिनेद्रदेव का यह सप्तभगी नयचक्र सामान्य जीवो के द्वारा धारण नही किया जाता, इसलिए दुस्साध्य है।

भो ज्ञानियो! जैसे हाथी का पलान हाथी पर ही शोभा देता है, मूषक के ऊपर नही, ऐसे ही अरहत देव का यह नयचक्र प्रज्ञ आचार्यो के द्वारा स्वीकार किया जाता है, सामान्य जीवो के लिए दुस्साध्य है। इसीलिए आचार्य महाराज ने पहले ही कह दिया कि ऐसा नयचक्र स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति स्याद् अस्ति–नास्ति स्याद् अवक्तव्य स्याद् नास्ति अवक्तव्य स्याद् अस्ति अवक्तव्त, स्याद् अस्ति–नास्ति अवक्तव्य रूप सप्त भगी है। इस चक्र की निश्चय और व्यवहार रूप दो मूल धाराए हैं। यह सपूर्ण नय चक्र प्रमाण पर टिका हुआ है, क्योकि आगम को जान लेना और आगम को जानने की शैली मे जानना, कौन– सा विषय कहाँ कहना है, इस प्रज्ञा को प्राप्त करना भी तेरे पूर्व सुकृत का प्रबल योग है। अत इस नयचक्र को सीखे बिना अभिमन्यु–जैसी हालत हो जायेगी,

घुस गये तो निकल नहीं पाओगे। जीव ग्रंथो मे घुस तो जाता है, परतु निर्ग्रंथ नहीं बन पा रहा, क्योकि हाथ मे नयचक्र नहीं है। ये बडे–बडे ज्ञानी जीव मुनि क्यो नहीं बनते? क्योकि उन्होंने शब्द तत्त्व को तो समझा है, परतु आत्म तत्त्व को नहीं समझा। यदि आत्म तत्त्व को समझ लिया होता, तो भो ज्ञानी! एक क्षण नहीं लगता और नयचक्र को लेकर यह जीव कर्म–शत्रु को नष्ट कर देता।

भो ज्ञानी आत्मा! नियति, नियत है, पर नियत मिथ्यात्व को आगम स्वीकार नही करता है। द्रव्य छह हैं, तत्त्व सात हैं, यह नियत हैं। ऐसा सम्यक् नियत लगाकर पुरुषार्थ करोगे, तो कार्य सिद्ध होगा, ये भी नियत है। बिना पुरुषार्थ के नियत कोई नियत नही हैं। ध्यान रखना, जब तक निमित्त और पुरुषार्थ नहीं होगा, तब तक कोई वरदान काम नहीं आयेगा। पुरुषार्थ को साथ लेकर चलना ही पडेगा। पुरुषार्थ करोगे तभी पुरुष की सिद्धि होगी यानि आत्मा की सिद्धि होगी।

भो ज्ञानी! ऐसे नयचक्र को समझकर यदि वास्तव मे आपको तत्त्व समझ मे आया, तो उसको 'तत्त्व ज्ञान' कहना और जब भी वैराग्य के भाव आये, तो वैरागी बन जाना।

कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ, पेनुकोंडा

हिंसा त्यागने के उपाय 'श्रावकों के अष्ट मूल गुण'

मद्य मास क्षौद्र पंचोदुम्बरफलानि यत्नेन।
हिसाव्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ।। ६१।।

अन्वयार्थ हिसाव्युपरतिकामै = हिसा का त्याग करने की कामना करने वाले को। प्रथममेव यत्नेन =प्रथम ही यत्नपूर्वक। मद्य मास क्षौद्र = शराब, मॉस, शहद। और पचोदुम्बरफलानि = पच उदम्बर फल (ऊमर, कठूमर, बड पीपल, पाकर) जाति के। मोक्तव्यानि = त्याग करना चाहिये।

मद्य मोहयति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्मम्।
विस्मृतधर्मा जीवो हिसामविशकमाचरति।। ६२।।

अन्वयार्थ मद्य = शराब। मनो मोहयति = मन को मोहित करती है। मोहितचित्त = मोहितचित्त पुरुष। तु धर्मम् विस्मरति = तो धर्म को भूल जाता है। विस्मृतधर्मा जीव = धर्म को भूला हुआ जीव अविशकम् = निडर होकर। हिसाम् आचरति = हिसा का आचरण करता है। (अर्थात् बेधडक हिसा करने लगता है)

।। पुरुषार्थ देशना ।। ४०।।

भो मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने बहुत सहज सूत्र दिया है कि 'आत्मा का धर्म अहिसा है। अहिसा का जहाँ से प्रादुर्भाव होता है वहाँ से सपूर्ण धर्म अपने आप मे शुरू हो जाते है और जहॉ हिसा का प्रारभ होना शुरू होता है वहाँ सभी धर्म पलायन कर जाते हैं। एक जीव व्रत सयम तप सब कुछ करता है, भगवान जिनेन्द्र देव की भी घटो आराधना करता है लेकिन यदि उसके कर्म हिसात्मक हैं, तो सारी क्रियाएँ मिथ्या हैं। जो जीव स्वाध्याय करता है, प्रवचन भी सुनता है, देव-पूजा भी करता है, लेकिन चर्या में षटकाय जीवो की हिसा चल रही है अर्थात् बुद्धिपूर्वक जीवो का भी घात कर रहा हो तो भो ज्ञानी! उस जीव की सारी की सारी क्रियाये दुग्ध ा में मिश्रित जहर की एक कणिका के तुल्य है, क्योंकि तुम्हारा धर्म अहिसा है। हिसा के जो चार भेद हिस्य हिसक, हिसा और हिसा का फल है, वे मात्र सुनने के लिये नहीं है। भो ज्ञानी! जब तक हिस्य का ज्ञान नहीं होगा तब तक हिसा का त्याग कैसे होगा? किन-किन स्थानो पर

कैसे–कैसे जीव हैं? कैसे–कैसे घात होता है? यह जानने की आवश्यकता है। यह लोभ नही, विवेक है। पहले के बुजुर्ग जब भोजन करते थे तो अत मे थाली मे पानी डालकर पी जाते थे तथा उतना ही भोजन लेते थे जितना उनको चाहिये था। आप कहेंगे कि इतना लोभ कि थाली पीते थे। अरे! अज्ञानियो को लोभ दिखता है, परतु ज्ञानियो को अहिसा–धर्म दिखता है। शिकारी जब जगल मे जाता है तो सीधा किसी प्राणी को पकडता नहीं है, जाल फैलाता है और उसमे जीव फँस जाते हैं। आप भोजन की थाली ऐसी आधी–अधूरी खाकर छोड गये, उसमे मक्खियाँ, चीटींयाँ आएँगी और सम्मूर्च्छन जीव अन्तर्मुहूर्त मे उत्पन्न हो जायेगे। उनकी हिसा किसे लगेगी? वह दोष किसके सिर पर जायेगा? अहो! वह लोभ नहीं था, वह विवेक था कि मैं थाली मे एक कण भी नहीं छोडूँगा और ज्यादा हुआ तो थाली उल्टी करके रख दी कि मेरे किसी निमित्त से किसी भी जीव का वध न हो, क्योकि गृहस्थ है। आजकल रिवाज हो गया है कि पूरा खा लेगे तो कोई क्या कहेगा? अत आप झूठन छोड कर चले गये। अहिसा की दृष्टि से देखोगे तो अपना जूठा गिलास दूसरे को पीने को मत देना। तुम्हारे मुख के जीव और आपके शरीर के जीवाणु दूसरे के शरीर मे प्रवेश करेगे।

भो ज्ञानी! किसी को जूठन खिलाना–पिलाना वात्सल्य नही है। जूठन खिलाने को तुम लोग व्यवहार मानते हो। एक साधु भी अपनी पिच्छी दूसरे साधु की पिच्छी से सटा कर नही रखता। उमास्वामी महाराज लिख रहे हैं कि अहो! अहिसा के पालको! आस्रव के दो अधिकरण हैं– जीव अधिकरण अजीव अधिकरण। यह पिच्छी हमारा अधिकरण उपकरण है और मैंने इससे मार्जन किया है तो मेरे शरीर के जीवाणु उसमे हैं। दूसरे के शरीर के कीटाणु उनके उपकरण मे हैं। यदि परस्पर मे सघर्षण होगा तो जीवो का घात होगा। अत एक–दूसरे के वस्त्रो का प्रयोग भी नही करना चाहिए। अजीव अधिकार सूत्र कह रहा कि आपस मे जैसे आप लोग बैठे हो वैसे नही बैठ सकते हो सघर्षण हो रहा है। अभी तो आपको अहिसा का ज्ञान ही नही है।

भो ज्ञानी! आप जिसे व्यवहार कहते हो, भगवान महावीर उसे हिसा कहते हैं। कैसे? सीधे आए और हाथ से हाथ मिलाया, एक–दूसरे के हाथ के जितने जीव थे सब मर गये। अरे! हाथ नहीं मिलाया जाता जुहार किया जाता है। तुलसीदासजी ने भी रामायण मे जुहार शब्द को रखा है। जुग के आदि मे हुए अरू यानि पूज्य अरहत आदिनाथ स्वामी उनको है नमस्कार, इसका नाम है जुहार। किन–किन स्थानो पर हिसा है? बोलने मे, चलने मे, बैठने मे, सोने मे, यहाँ तक कि शौच–क्रिया मे इन सपूर्ण स्थानो मे सम्यक् दृष्टि जीव यह देखता है कि जीव तो नही है। जहाँ मल का विसर्जन हो जाता है वहाँ कीडे निकलते हैं, बिलबिलाते हैं। भो ज्ञानी! शरीर का गर्म मल जब गिरता है तब उन जीवो की क्या हालत होती होगी ? इसको यो ही मत टाल दिया करो। अदर जो जीव बैठा हुआ है वह सिद्ध–शक्ति से युक्त है और आपने गरम पानी पटक दिया। आप

लोग सामायिक मे पाँच मिनिट सबके बारे मे चितवन किया करो। कभी–कभी विष्टा का कीडा बनकर भी चितन करो कि एक तो मल मे कीट हुआ और किसी सुअर ने उठा लिया, उस समय उस अवस्था का, उस पर्याय का चितवन करना। अहो ज्ञानी ! ऐसी–ऐसी वेदनाएँ तुमने प्राप्त की हैं। जिस दिन दूसरे की वेदना का वेदन हो जाएगा उस दिन आपका विवेक जागृत हो जाएगा। लोटे भर पानी की जगह बाल्टी भर पानी का उपयोग नही करोगे। यदि देश का प्रत्येक नागरिक वर्धमान के अनुसार अहिसा का पालन करने लगे, तो नगर की दीवारो पर यह नहीं लिखना पडेगा कि बूद–बूद जल की रक्षा करो।

भो ज्ञानी आत्माओ! पानी का उपयोग ऐसे करो जैसे कि तुम घी और तेल का करते हो। खोल दी नल की टोटी और नीचे बैठ गए। चिता मत करो, सारी तपन तुम्हारी नरको मे ठडी हो जायेगी। ज्यादा गर्मी लगती है तो कूलर–पखे का प्रयोग करते हो, यहाँ तक कि मदिर मे भी यह लगने लगे। अरे! कम से कम इतना तो सयम बरत लो कि मदिर मे पखा नहीं चलायेगे। आप तो पूजा करके सोच रहे थे कि पुण्य–आस्रव हो रहा है, परन्तु वहाँ पखे मे एक पचेन्द्रीय आकर खत्म हो गया, अत आपको नरकगति का आस्रव हो गया। पूजा के काल मे भी तुम्हारा स्पर्शन–इद्रिय का भोग चल रहा था। इसलिये भैया, सँभलकर चलना, फिसलन बहुत है। एक बार हम लोग सम्मेदशिखर की वदना करने गये। उस तीर्थ मे बहुत आनद है, लेकिन एक अनोखी घटना देखी तो आँखो मे आँसू भर आये कि यात्रियो के लिए गर्म पानी की व्यवस्था हेतु वहाँ बडे–बडे हन्डे रखे हुए हैं नीचे अग्नि जल रही है और नल की टोटी मे छन्ने लगे हुये हैं। अब बताओ उन जीवो का क्या हो रहा होगा? वह तो आपस मे ही नष्ट हो गये। आपने गीजर लिया और चालू कर दिया। ठीक है, पहले ज्ञान नही था, पर अब तो जीव को जीव मान कर कम–से–कम इतने क्रूर तो मत बनो। दया से दया बढती है। ध्यान रखना, जैसे धन से धन बढता है, वैसे ही करुणा से करुणा बढती है। जीवन मे दया चली गई, तो बचा क्या?

अहो ज्ञानियो! जिसके चेतन घर मे अहिसा का दीप बुझ गया, तो समझो सब दीप बुझ गये– ज्ञान का दीप, चरित्र का दीप, श्रद्धा का दीप। कुदकुद देव का सूत्र है "धम्मो दया विशुद्धो" ।।बो पा २५।। कि धर्म वही है जो दया से विशुद्ध होता है। दया पाप नहीं, दया धर्म ही है। निश्चय से निज पर दया, व्यवहार से प्राणीमात्र पर दया। अत दया को पाप मत कह देना।

गौतम स्वामी ने सूत्र दिया है–"धर्मस्य मूल दया", धर्म का मूल दया है।

धम्मो मगल मुक्किट्ठ अहिसा सयमो तवो
देवा वि त णमसति जस्स धम्मे सयामणो ।। वी. म ।।

धर्म ही मगल है उत्कृष्ट है, जो अहिसा, तप, सयम से पवित्र है। ऐसे धर्म को देव भी

नमस्कार करते हैं। हे मन ! ऐसे धर्म को तू मान। भो ज्ञानी ! जिनेन्द्र की वाणी विरोध से रहित होती है। ध्यान रखना, कठोरता मे कष्ट होता है, लेकिन जब कठोरता समझ मे आ जाती है तब कठोरता के प्रति श्रद्धा अगाध हो जाती है। जो अध्यापक आपको ज्यादा कठोरता से पढाते थे, उनका विषय आज भी आपको याद है अत पीठ पीछे यह कहते हैं कि हमारे गुरुजी बहुत अच्छा पढाते थे। आचार्य श्री अपनी घटना सुना रहे थे कि एक बार वह जब कटनी विद्यालय मे पढते थे, धन्य कुमार नामक एक ईमानदार एव विद्वान पडित जी थे। वे कहते थे, बेटा! मैं वेतन लेता हूँ और आप माता–पिता का खाते हो। इसलिये दोनो ईमानदारी से चलो। उनके अतिअनुशासन मे बच्चे घबरा गये, तो उनका वहाँ से स्थानातरण कराने के लिये आवेदन लगा दिया। जिस दिन बिदाई थी, उस दिन वही छात्र ऑखो मे आँसू भरकर रो रहे थे।

अनुशासन कठोर तो होता है, परन्तु असत्य नही होता है और शिथिलाचार मृदु लगता है, परन्तु असत्य होता है। जिसको अपने जीवन का घात करना हो तो शिथिलाचार का पोषण कर लो। जिन्हे अपने बच्चे बिगडवाना हो, उन्हे नाना–नानी के घर मे भेज दो, क्योकि उनके यहाँ वे देवता कहलाने लगते है, वे उन्हे डॉटते–मारते नही। ठीक है, मेहमानी के लिये भेज दो, पर उनके भरोसे मत छोड़ देना। जैसे आचार्य–विहीन–शिष्य और पिता–विहीन–पुत्र की जो हालत होती है, मनीषियो! अहिसा से रहित धर्म की भी वही हालत होती है।

भो ज्ञानी! जब जीवन मे समीचीन आचार होगा तभी सम्यक्त्वाचरण होगा और जब सम्यक्त्वाचरण होगा तभी तो स्वरूपाचरण होगा। अब देखो, हमारे जीवन मे सम्यक्त्वाचरण की गध ा ही नही है, स्वरूपाचरण की दृष्टि कैसे हो सकती है ? यह तो छल है निज के साथ। मनीषियो! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सबसे पहले जो अष्ट मूलगुणो का पालन करता है, वह जैन होता है। जिसके जीवन मे अष्ट मूलगुण नही है वह जाति का जैन तो है, पर धर्म का जैन नही है। इतनी निडरता से कहने वाले आचार्य अमृतचद्र स्वामी ही है कि जब तक तुम्हारे अन्दर अष्ट मूलगुण का पालन नही है तो तुम्हे प्रवचन सुनने का भी अधिकार नही है। जो जीवरात्रि भोजन करता हो, दूध ा, फल मेवा आदि चखता हो, उनसे अमृतचद्र स्वामी जी कह रहे हैं कि जो रात्रि मे ग्रास खाता है वह मॉस के पिण्ड को खाता है और पानी को पीता है, वह रक्त को पीता है। अहो! कभी तो सोचा करो कि हम मरण के समय भी त्याग नहीं कर पा रहे हैं। जिसने स्वय अष्टमूलगुण धारण नही किये, वह जिन का उपदेश क्या करेगा? इसलिये ध्यान रखना, गणधर की गद्दी पर बैठो, तो कुछ तो त्याग करके बैठना।

भो चेतन! मॉस, मधु, मदिरा की तरह जितने द्रव्य चलित हो चुके हैं अर्थात् जितने चलित रस हैं और जितने औषधियो के,आसव आ रहे हैं एलकोहल उसमे मिला हुआ है। भो ज्ञानी!

बरसो–बरसो की जो बोतलें रखी रहती हैं कोका–कोला की और न जाने कब की भरी पडी हुई हैं। पानी उसमे है कि नही? कब छना है? क्या श्रावक धर्म का पालक ऐसी वस्तु को छू सकता है?

जिनसेन स्वामी ने महापुराण मे लिखा कि आठ वर्ष तक बच्चे को अष्टमूलगुण का पालन कराने का अधिकार माता–पिता का रहता है। नहीं कराया, तो हिसा का दोष माता–पिता को ही लगेगा। यदि वह साधु बन गया, तुम्हारी बात उसको पता चल गई, तो वह कहेगा–माँ! धिक्कार है जो मैंने तेरी कोख से जनम लिया, तूने मेरे सयम को जन्म से नाश करवा दिया। इसलिये हे माताओ! बच्चो को मदिरा का पान मत कराओ, अफीम मत खिलाओ। भो ज्ञानी! आयुर्वेद कहता है–बच्चा जितना ज्यादा रो लेता है उतना तदुरुस्त होता है। कब रोयेगा वह ? उसको रोने का मौका तो दो। माँ आचल का पान कराती है, तो उसके अदर वात्सल्य भाव रहता है। पर जब जन्म से ही उसे कठोर बोतल पकडा देती है, तो उसके अदर कठोरता सस्कारित हो जाती है।

अहो! आचार्य कुदकुद देव की माँ ने–शुद्ध हो बुद्ध हो, निरजन हो ऐसी लोरिया कहकर अपने लाल मे सस्कार डाले, परतु तुम्हारा बच्चा रोया, तो तुमने टेलीविजन खोल दिया। बताओ कैसे तुम्हारे घर मे राम जन्मे श्याम जन्मे, महावीर जन्मे, कौन जन्मे ? वे कस के सस्कार हैं, तो कस ही उत्पन्न होगे। 'बडा' खाते हो और मठे' की कडी बनाकर खाते हो। जैसे ही बेसन, छाछ आदि का सयोग लार से होता है उसमे जीव पड गए और तुम्हारे मुह मे चले गये।

आम वि दहियम् विदलनु होई ।
तम असवे पाप भणत जोई ।। अमरसेन चरिऊ।।

इसी प्रकार कच्चे दूध से बने दही–छाछ आदि खाने को योगियो ने पाप कहा है। टॉनिक मे मधु पडा है। एक बूद शहद के भक्षण से सात गॉव जलाने के बराबर हिसा होती है। अहो! शक्कर की चासनी बना लेना, पर शहद मे औषधी मत खाना। ध्यान रखना, मद्य, मॉस, मधु और पाच उदम्बर फल का त्याग ऐसे हिसा की इन आठ वस्तुओ का पहले ही त्याग कर देना। यह मदिरा मन को मोहित कर देती है। मदपायी धर्म को भूल जाता है। अत जिनका शरीर खोखला, मन खोखला और जो आचरण से भी खोखले हैं ऐसे लोगो की सगति मत करना।

"मदिरापान के दुष्परिणाम "

रसजाना च बहूना जीवाना योनिरिष्यते मद्यम्।
मद्यं भजता तेषां हिसा संजायतेऽवश्यम्।। ६३।।

अन्वयार्थ च मद्यम् = और मदिरा। बहूना = बहुत से। रसजाना जीवाना =रस से उत्पन्न हुए जीवो की योनि इष्यते = योनि (उत्पत्ति स्थान) मानी जाती है। मद्य भजता = मदिरा को सेवन करते है। तेषा हिसा = उन जीवो की हिसा। अवश्यम् सजायते = अवश्य ही होती है।

अभिमानभयजुगुप्साहास्यारतिशोककामकोपाद्या ।
हिसाया. पर्याया सर्वेऽपि च सरक सन्निहिता ।। ६४।।

अन्वयार्थ च = और। अभिमान भयजुगुप्सा हास्यारतिशोक=घमण्ड,डर,ग्लानि हास्य,अरति,शोक कामकोपाद्या काम क्रोध आदि। हिसाया पर्याया = हिसा के पर्याय या भेद हैं। सर्वेऽपि सरकसन्निहिता = यह सब ही मदिरा के निकटवर्ती है।

|| पुरुषार्थ देशना ||४१||

भो मनीषियो! तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना में आया है कि निज चैतन्य भावो का निग्रह जिस परिणति से हो, वह हिसा है तथा जिन परिणामो से आत्मा की निर्मलता मे वृद्धि हो, उसी का नाम अहिसा है। अत, विशुद्धि की वृद्धि का नाम अहिसा है और सक्लेश स्थानो की वृद्धि का नाम हिसा है। हिसा तो परिणामो की कलुषता है, चाहे वह क्लेश लोभ–कषाय–जन्य हो, चाहे माया कषाय जन्य हो, क्रोध या मान रूप हो, काम रूप हो, वह हिसा का ही परिणाम है। ध्यान रखना, मन को तो थकान आती है, लेकिन इच्छाओ को थकान नही आती। इच्छाएँ थक जाएँ, तो मन सयम लेने को तैयार है। भो ज्ञानी! सुख–दुख दोनो अवस्थाएँ साता–असाता के उदय से हैं। सुख रूप वेदन साता कराती है और दु ख रूप वेदन असाता कराती है और वेदन तभी तक है जब तक मोहनीय कर्म बैठा है। मोह का मद समाप्त हो जाये, तो दुख भी महसूस नही होगा। ज्ञानी साता मे साता नहीं देखता, असाता मे असाता नहीं देखता। अज्ञानी दोनो को देखता है, क्योकि मोह का मद है। ध्यान से समझना, मदिरा का मद तो सीमा मे है, मदिरा को उतारने की भी औषधि है। पर मोह की मदिरा को अनादि से पिया है। पडित दौलतराम जी ने लिखा है– 'मोह–महामद पियो

अनादि।" जीव जानता भी है, समझता भी है, सोचता भी है, किंतु स्वीकार नहीं कर पाता। जरा से मोह के पीछे निर्मोही, समरसी–भाव से युक्त, परम परिणामिक चैतन्य–आत्मा को खो बैठे हैं।

भो ज्ञानी! विश्वास रखना, मोह शाश्वत नही है कर्म का बध शाश्वत नहीं शाश्वत मेरी निर्बंध दशा ही है। एक साथ दो कार्य नहीं होते हैं। यदि मोह स्वभाव हो जाय, फिर तो उस निर्मोही–अवस्था को विभाव कहना पडेगा। मोह तेरा सत्य–स्वभाव नही है, मोह तेरा विभाव–स्वभाव है। आप लोग मानो न मानो एक समय निर्मोह का आनन्द आपको आता है। जब आप निश्चित होकर बैठे होते हो, कोई विकल्प नही होता है, उस समय सोचते तो हैं कि कुछ है। बस, आप जिसे 'कुछ कहते हो वह ही सत्य–स्वभाव है। वास्तविकता तो यह है कि मसालो के स्वाद ने दाल के स्वाद को नही लेने दिया, बादाम, बीज और केशर के घोल ने दूध के असली स्वाद को लेने नही दिया। ऐसे ही निज स्वभाव की मधुरता को खोकर मोह के स्वाद को ही तू आत्मा का स्वभाव कहने लगा है। अहो! मोह राग से रहित भोग को जिस दिन आपने देख लिया उस दिन आपको लगेगा कि मेरे जैसा अज्ञानी विश्व मे कोई नही होगा। आचार्य गुणभद्र स्वामी ने आत्मानुशासन ग्रथ मे भी लिखा है–

लब्धेन्धनो ज्वलत्यग्नि प्रशाम्यति निरिन्धन ।
ज्वलत्युभयथात्युच्चैरहो, मोहाग्निकत्कह ।। ५६।। आ शा

भो ज्ञानी! यदि अग्नि से भी प्रचड कोई दावानल है तो उसका नाम मोह है। अहो! मोह–अग्नि कितनी उत्कृष्ट है, जो ईधन के अभाव मे भी जलाती है। जब कोई तुम्हारे सबधी थे तब उनके राग मे झुलस रहे थे। उनकी मृत्यु हो गई तो वियोग मे झुलस रहे हो। अरे! वर्तमान को निहार लो, वर्द्धमान बन जाओगे और भूत–भविष्य मे जीओगे तो भूत ही बन के रहोगे। भो ज्ञानी! यह कभी मत सोचना कि मेरे बाद क्या होगा? 'वस्तु स्वभावो धम्मो", वस्तु का स्वभाव धर्म है स्वरूप है और स्वरूप कभी नष्ट नहीं होगा। हमारी पर्याय नष्ट हो जायेगी, लेकिन धर्म कभी नष्ट नही होगा। सम्प्रदाय नष्ट हो सकते है पथ नष्ट हो सकते है आम्नाये नष्ट हो सकती है। जो बनाई जाती हैं वे नियम से नष्ट होती हैं। जो शाश्वत ध्रुव होता है, वह कभी नष्ट नही होता। धर्म त्रैकालिक अखण्ड ध्रुव सत्ता है, वह कभी नष्ट नही होगी। लकडियॉ जल जाएँगी, ईधन जल जायेगा, परतु उष्णता कभी नही जलेगी। ऐसे ही पर्याय बदलती है, पर्याय नष्ट होती है, लेकिन वीतराग धर्म कभी नष्ट नही होता है। इसीलिए सत्य का कभी विनाश नहीं होता और असत्य का कभी उत्पाद नही होता।

भो ज्ञानी! आप ससार की किसी पर्याय मे आयेगे तो सुन्दर सुहावने शरीर को प्रदान कराने वाली जो कोई परम उपकारी वस्तु है उसका नाम मृत्यु है। आपको मनुष्य शरीर मिला, मृत्यु

सुधर गई तो देवो का वैक्रियक शरीर प्राप्त कर लोगे, इस सडे–गले शरीर मे नहीं रहना पडेगा। यदि आपने सल्लेखना सहित मृत्यु का वरण कर लिया, पडित–मरण हो गया, तो मनीषियो! सात–आठ भव तो दूर, दो–तीन भव मे ही आप पडित–पडित मरण को प्राप्त हो जायेगे। आज से ही तैयारियॉ करो। मोह–मदिरा पीना बद कर देना। मद एक व्यसन है और व्यसन विष से भी खतरनाक होता है। अब सोचो! जब आप तीव्र मोह मे लिप्त हो और तीव्र अशुभ कथन कर रहे हो, उस समय की पर्याय एक क्षण को देख लो तो अपने विभावो के स्वरूप का भान हो जाता है। भो ज्ञानियो! तुम्हारे मोह की खेती जहाँ भी चल रही है, वह पुण्य के पानी से चल रही है। जिस दिन पुण्य का पानी नष्ट हो जायेगा, दुनियॉ के राग–रग भी तुम्हारे फीके हो जायेगे। इसीलिए पानी का व्यय मत करना, बूद–बूद की रक्षा करो। पुण्य के पानी की रक्षा करना शुरू कर दो। क्योकि पुण्य का पानी अलग से नही लाओगे। अहो! जब बाल्टियॉ भर–भरकर जल फैलाओगे तो उसकी एक–एक बूद मे कितने जीव खत्म होगे ? भैया! जैन धर्म की अपेक्षा से तो असख्यात् है, पर वैज्ञानिको की गणना है छत्तीस हजार चार सौ पचास जीव एक बूद पानी मे दिखते हैं। एक बाल्टी पानी मे स्नान किया था, हम कैसे कहे कि आप लोग पवित्र हो ? हर क्रिया मे हिसा। कम से कम छान ही लेते। अरे! जिसकी राख होनी है, उसको क्या चमकाओगे ? इसीलिए चमडी को चमकाने के पीछे अहिसा को मत खो देना।

भो चेतन! वर्तमान मे जीना शुरू कर दो। हम ऐसे पाप अब तो न करे कि जिससे भविष्य मे विपाक का नाम हमारे सामने खडा हो। विपाक यानी कर्म का फल। तुम्हारे सोचने से कुछ होने वाला नही। आचार्य वादीभ सिह सूरि लिख रहे हैं कि–ससार के भोले प्राणी पाप का फल नही चाहते लेकिन पाप कर रहे हैं। पुण्य कभी भी नही करना चाहते और धीरे से कह देते हैं होता स्वय जगत परिणाम। भो ज्ञानी! स्वच्छन्दी बनने के लिए यह कारिका नही लिखी गई है। अरे! ससुर जब सिर पर सिगडी रख रहा था जब सिहनी खा रही थी, जब लोहे के आभूषण पहनाये थे जब बसूले से शरीर छिला जा रहा था, तब वे योगी कह रहे थे 'होता स्वय जगत परिणाम।' तुम तो मस्त हो रहे राग मे और कह रहे हो होता स्वय जगत परिणाम।' इसीलिए मनीषियो! ऐसे मोह–राग की मदिरा को छोड दो।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जो मदिरा है वह जीवो का ही रस है, सडाकर रख दिया है। आपके घर मे फल आये, भोजन बना, फफूद पड गयी कपडे से साफ किया और खा लिया। जो बचा सो आपने धीरे से फ्रिज मे रख दिया। एक सज्जन आये, बोले–महाराज! हमारे घर मे तो सोले की चप्पले हैं। फर्श बहुत ठडा रहता है, सो अलग से नई चप्पले लाये है, उन्हे ध ोकर रख ली हैं। जब रसोई मे जाते हैं तो पहन लेते हैं। अरे! चौका को चौका रहने दो, घूरा मत

बनाओ, चप्पल पहन कर घूरे पर जाया जाता है, चौके में नहीं। इसलिए विवेक का उपयोग करो। पचमकाल का अभी अन्त नहीं हुआ है, अभी तो मात्र ढाई हजार वर्ष हुए है। अठारह हजार वर्ष तक चलना है। अभी धर्म का विनाश मत कर देना। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जितने मादक द्रव्य है, मदिरा है और जितने चलित रस हैं, वह सब मदिरा हैं। चाहे तुम्हारे अनार का रस क्यो न हो स्वाद बिगड चुका है। जिनका मद का त्याग है वे अलकोहल और बोतलो मे भरी तरल औषधियो का उपयोग न करे। जो आयुर्वेद है, सूखी है वह ही शुद्ध है। आयुर्वेद मे भी जीवों की हड्डी–पसलियो का उपयोग होता है। वहाँ भी पूछ कर ही लेना। आयुर्वेद मे ऐसी औषधिया हैं जिनमे मूत्र आदि का उपयोग होता है अथवा साक्षात् जीवो के कलेवर होते हैं। पढ लेना, आयुर्वेद के नाम से शुद्ध मत कह देना। 'कल्याण–कारक' जैन आयुर्वेद ग्रथ हैं। उसमे उग्रदत्ताचार्य महाराज ने सब रसायन, वनस्पति औषधियो का कथन किया है। दूध भी अगर फट जाये तो, अभक्ष्य है। भो ज्ञानियो! जिनको वर्षो तक रखा जाये उसे भक्ष्य कैसे कहा जायेगा ? भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक नहीं, चैतन्य प्रभु तुम्हे कहाँ मिलेगे।

देखो अभी चाकलेट के बारे मे क्या निकला था आप पैसो भी दोगे ? बिस्कुट, ब्रेड भी खिला रहे हो। यदि ममता है तो बच्चे को अभक्ष्य मत खिलाना। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जहाँ जीव उत्पन्न होते हैं वह योनीस्थान है, ऐसे मद का जो सेवन करता है, वहाँ नियम से अवश्य ही हिसा होती है। आगम तो यह कहता है कि तुम्हारे घर मे कोई सामग्री बिगड जाये तो उसे ऐसे स्थान पर फेकना कि पशु भी न खाये। भैया बाजार से ककडी लाये, उसमे कीडा दिख गया तुमने उठाकर गाय के सामने डाल दिया यानि आपने अपने हाथ से गाय को मॉस खिलाया। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसे ऐसे स्थान पर छोडना जहाँ कोई जीव उसे न खाये। त्रैलोक्य मण्डल हाथी को जाति–स्मरण हो गया, तो उसने खाना छोड दिया। मुनिराज से पूछा, तो महाराज ने कहा–इसने पूर्व मे मायाचारी की थी ये मुनि का जीव है। अब इसको जाति स्मरण हो गया है। अब इसने अभक्ष्य खाना छोड दिया है। उसको शुद्ध भोजन खिलाया जाये। पुरुषार्थ की सिद्धि तभी होगी अन्यथा नहीं, कितनी ही बाते कर लो। जैसे मदपाई की अवस्था होती है ऐसे ही कषायियो की अवस्था होती है।

"माँस फल फूल नही, प्राणियों का कलेवर हैं "

न विना प्राणिविध्यातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मास भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिसा।। ६५।।

अन्वयार्थ – यस्मात् = क्योकि। प्राणिविध्यासातात् बिना = प्राणियो के घात बिना। मासस्य उत्पत्ति = मास की उत्पत्ति। न इष्यते = नहीं मानी जाती। तस्मात् = इस कारण। मास भजत = मासभक्षी पुरुष के अनिवारिता। हिसा प्रसरति = अनिवार्य हिसा फैलती है।

यदपि किल भवति मास स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादे।
तत्रापि भवति हिसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात्।। ६६।।

अन्वयार्थ – यदपि किल = यद्यपि यह सच है कि। स्वयमेव मृतस्य = अपने आपसे ही मरे हुए। महिषवृषभादे = भैंस बैलादिको का। मास भवति = मास होता है, तत्रापि = वहाँ भी, उस मास के भक्षण से। तदाश्रित = उस मास के आश्रित रहने वाले। निगोतनिर्मथनात् = उसी जाति के निगोद जीवो के मथन से। हिसा भवति = हिसा होती है।

|| पुरुषार्थ देशना ||४२||

मनीषियो! भगवान महावीर स्वामी की पावन तीर्थ देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने पूर्वसूत्र मे सकेत दिया कि अनादि मिथ्यात्व के वशीभूत मोह के मद मे उन्मत्त जीव की ज्ञानज्योति जिस दिन जागृतमान होगी उस दिन अविद्या, मिथ्यात्व और मोह का मद स्वयमेव विगलित हो जाएगा। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने कहा है कि–

अविघामिदुर ज्योति पर ज्ञानमय महत्।
प्रष्टव्य तदेष्टव्य, तद्दृष्टव्य मुमुक्षुभि ।। इष्टो ४९।।

मुमुक्षु जीवो के द्वारा वही पूछना चाहिए, वही जानना चाहिए है, जिससे अविद्या का विनाश हो। मनीषियो! ध्यान रखना–काम, भोग, बध की प्रदर्शनी को तूने अनादि से देखा है, अनादि से सुना है और अनादि से जाना है, यदि वही प्रदर्शनी देखने के भाव तुमने रखे तो इस पर्याय को प्राप्त करना, न करना समान है। भगवन् पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं–जितना भ्रम है, सब अविद्या का ही

है। विद्या यानि केवल्यज्ञानज्योति। हे प्रभु। आपकी विद्या केवल्य–ज्योति है। जिसमे लोकालोक के चराचर पदार्थ दर्पण के समान प्रतिबिम्बित होते हैं। वही विद्या परम–ज्ञान है।

भो ज्ञानी। परम–ज्ञान ही महान है और वह परम–ज्ञान योगियो को स्वात्मानुभव से उत्पन्न हो रहा है। जिसे आप जान रहे हो, जिससे आप जान रहे वह परम ज्ञान नही है। जो आत्मा से उत्पन्न हो रहा है, जो आत्मा को जान रहा है, वही परम ज्ञान है। जो ज्ञान विषयो मे जा रहा है और विषयो को बुला रहा है उसे ज्ञान नही कहना। वह तो परम–अज्ञान है। इसलिए आचार्य अमृतचद स्वामी कह रहे हैं कि यह अज्ञान–भाव का परिणमन ही है। कषाय–भाव और मद्य की सन्निकट्ता है। मद्यपायी कभी जननी को पत्नी कहता है, तो कभी पत्नी को भी जननी कहने लगता है। अहो। रागियो को राग हेय नही लगता, वह तो वीतरागियो को ही हेय लगता है, क्योकि जिसे नशा चढा हुआ है, उसे राग ही अच्छा लगता है। पिट रहा है, कुट रहा है, फिर भी वहीं जाता है। राग के वश आप घर मे क्या–क्या नही सुनते हो। कभी आपको उदासता आती है ? उन्मत्त पुरुष की दशा के बारे मे उमास्वामी महाराज ने लिखा है कि–सदसतोर विशेषाद्यदृच्छोपताब्धेरुन्मत्तवत्।। त सू । ३२।। क्या सत्य है क्या असत्य है उन्मत्त कोई विशेषता का ध्यान नहीं रखता।"

भो ज्ञानी। मल से दूषित बर्तन को पानी से धो लिया जाता है परतु यदि दूषित मन को धोने का कोई माध्यम है तो एकमात्र जिनवाणी ही है दूसरा कोई आलम्बन नहीं है। परन्तु जिसने जिनवाणी को ही नही समझा उसके मन का मैल धुलने वाला नही है। मल से मलिन होना कोई पाप नहीं है। मल तो मुनियो का आभूषण है। भो ज्ञानी । शरीर के मल से मलिन का तो मोक्ष हो सकता है, परतु मन से मलिन का कभी मोक्ष नहीं हो सकता। बाईस परीषहो मे एक मल परिषह भी है। निर्ग्रंथ मुनि स्नान नही करते, क्योकि ब्रह्मचारी सदा शुचि। उनके अस्नान नाम का मूलगुण होता है। अहो। कितनी निर्मल अहिसा है कि पानी डालेगे तो जीव का विघात होगा पानी बहेगा तो जीव का विघात होगा। अतरग मे कितनी करुणा गूज रही है। आप उनके भक्त हो, स्नान नही छोड सकते तो भो ज्ञानी। कम से कम पाप पक से तो स्नान मत करो। पक से स्नान करने पर शरीर धुलेगा कि मलिन होगा ? अहो। पाप–पक मे पडे ज्ञानियो। जिनवाणी के नीर मे अवगाहन करो। नीर से कल्याण नही होगा, ज्ञान नीर की आवश्यकता है।

भो ज्ञानी। अविद्या का नाश करने वाली परम ज्योति को अमृतचद स्वामी ने नमस्कार किया है। जिस प्रकार अधकार का नाश ज्योति से होता है, उसी प्रकार अविद्या का नाश भी ज्ञान से ही होता है मोह का विगलन भी ज्ञान से ही होता है। जब तक बलभद्र का विवेक (ज्ञान) नही जगा तब तक नारायण के जीव को लेकर छह महिने घूमते रहे। मर्यादा पुरुषोत्तम और क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव राम के चारित्र मोह की महिमा तो देखो ? कोई समझाता, तो कहते थे –तू मरे तेरा भाई मरे, मेरे भाई को मरा कहते हो। उठाकर चल देते थे। जब कषाय की सीमा पूर्ण हो गयी तो अहो। आत्मबोध हो गया प्रतिबोध हो गया कि यह मै क्या कर रहा हूँ ? विदिशा के हे रामो । तुमको तो छह–छह भव नही, छह–छह काल नही अनतानत भव बीत गए। यह तन मुर्दा है तू

तन की पीडा को अपना घर मत मान। छोड़ दो इस नशे को, क्योकि भगवान कह रहे हैं कि गौतम स्वामी से पूछ लेना–प्रभु ! आप अतिम तीर्थेश के प्रधान गणधर पद को प्राप्त किए हो, लेकिन जब तक आपको मद की मंदिरा चढी हुयी थी तब तक महावीर को आप भगवान नहीं कहते थे। आप शिष्य बनने नहीं आये थे, वह तो परमेश्वर की महिमा थी कि उनकी पावन तेजस्वी ज्योति को देखकर आपके मान का मद उतर गया और शिष्य बन गए। अहो! जिस जीव का तीव्र मिथ्यात्व का अथवा मान का उदय हो, उसका भगवान जिनेन्द्र की वाणी को सुनने का मन नहीं करता। मारीचि को देखो, वह समवशरण से उठकर चला गया। ऐसे ही जिन जीवो की भवितव्यता बिगड चुकी है, वे धर्मसभा को भी छोड कर चले जाते हैं।

भो ज्ञानी! जिस जीव के वर्तमान मे परिणाम इतने कलुषित हो रहे हो, किसी केवली को परेशान करने मत जाना कि हे भगवान! अब मेरी कौन सी गति होने वाली है ? बधुओ! कषाय की तीव्रता से नरक का ही बध होता है। इसलिए अभिमान, मदिरा के ही सन्निकट है। किसी के असयम को देखकर, किसी के दुष्चारित्र को देखकर आपको उसके प्रति ग्लानि आ रही है तो मनीषियो! ग्लानि तो करो मगर पापी से नही पापो से करो। ग्लानि, प्राणियो से मत करो।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

अहो! रावण बुरा दुर्योधन बुरा, पर जिस परिणति से दुर्योधन बना है वह परिणति आपके अदर भी है, तो ध्यान रखो आप भी वही हो। आप रावण को बुरा कहते हो, परतु केवली की वाणी मे खिर चुका है कि वह तो भविष्य मे भगवान बनने वाला है। भो ज्ञानी ! बुरा मत देखो, जो बुरा है उसे मत करो। दूसरे की बुराई देखने की दृष्टि उसी की होती है जो वास्तव मे अदर से बुरा होता है। दो चीटियो की कथा आप पढ चुके हो, सुन चुके हो। जिसके मुख मे नमक की डली थी, तो शक्कर का स्वाद भी उसे खारा ही आता था। अरे मुमुक्षु आत्माओ! इस मोह की मदिरा को तनिक तो निकाल दो।

भो ज्ञानी! मत करो किसी से ग्लानि। अहो! जिस पडौसी से आप ग्लानि कर रहे हो, यदि उसकी भवितव्यता कही निर्मल हो गई, तो वह जीव आयु पूरी करके तुम्हारे घर मे पुत्र बनकर उत्पन्न हो गया, तो बेटा!–बेटा! चिल्लाओगे, फिर नही कहोगे पडौसी–पडौसी। इसलिए जीव से भी राग नही होता, क्योकि जब चला जाता है तो कुछ नहीं कर पाते हो और पर्याय से भी राग नहीं झलकता, क्योकि यदि पर्याय से राग होता तो तुम जलाने क्यो जाते हो ? अहो! राग से राग है यानि स्वार्थ से राग है, क्योकि जब तक तुम्हारी किसी से बन रही है तब तक मेरे–मेरे कहते हो इसलिए जुगुप्सा भी मदिरा है। भैया! हँसना भी बडी कषाय है। आज तक जितने भी फँसे सब हँसने से ही तो फँसे। हँसी– हँसी मे ही तो कह दिया था कि अधो की सतान अधी होती हैं, बस महाभारत हो गया। भो ज्ञानी! ज्यादा हँसी भी मत किया करो। हास्य–कर्म का बध तुम हँसते–हँसते ही कर लेते हो। इसलिए विवेक से सुनना कि हँसी–मजाक भी अच्छा नहीं है।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना– क्षेत्र अशुभ नहीं होता, काल अशुभ नही होता, द्रव्य अशुभ नहीं होता और क्षेत्र दु ख नहीं देता, काल दु ख नहीं देता, द्रव्य दु ख नहीं देता। देखो उस क्षण की पर्याय को, कैसे कहे कि काल अशुभ है, क्योकि उसी काल मे विभीषण का राज्य अभिषेक हो रहा है और उसी काल मे लकेश के दो टुकड़े हो रहे हैं। हम किस काल को शुभ कहे ? राम का जयनाद हो रहा है अयोध्या मे और उसी काल मे लका मे हाहाकार हो रहा है। उस समय कौन मगल कौन अमगल ? जिसका उस समय पुण्य है उसका मगल है और जिसका पुण्य क्षीण है उसके लिए अमगल है। एक ही भवन मे एक ही मजिल पर मगलाचरण हो रहे हैं, उसी मजिल पर दूसरे की अर्थी निकल रही है। क्षेत्र मगल कहूँ कि अमगल कहूँ? कैसे कहूँ द्रव्य अशुभ है? चाँदनी एक को आनद दे रही है, वही चादनी चकवी को रुला रही है। वास्तविकता को समझते जाओ। ज्ञानी हेय को भी गेय देखता है और उपादेय को भी गेय देखता है। जिसकी ज्ञाता–दृष्टा–दृष्टि है वही सत दृष्टि है। इसलिए मनीषियो! विवेक से काम करो, वर्तमान को निहारो, इसमे मत जाओ कि यह चले गए, वह आए। यह तो प्रकृति का स्वभाव है।

भो ज्ञानी! मोक्षमार्ग निष्ठुर ही होता है। राग के प्रति जब तक निष्ठुर नहीं बनोगे तब तक वीतरागी सज्ञा आने वाली नही है। इसलिए सयम की छतरी के अलावा कोई छतरी काम नहीं करेगी। मात्र जिनवाणी के छींटे ही काम की तपन को समाप्त कर सकते हैं, चदन के छीटे नही। आज चक्रवर्ती भरतेश खडे–खडे ऑसू टपका रहे थे, क्यो ? आज यह हाथ–हाथ नही है मस्तिष्क–मस्तिष्क नही बचा क्योकि आज धरती के देवता मुझे नही मिले। देखो भाग्य–दो चारण–ऋद्धीधारी मुनिराज आकाश से उतर आए और चक्रवर्ती का हृदय गद्गद् हो गया। ऑखो के जल से चरण पखार लिए। यह अतरग मे भक्ति थी। इसलिए कम से कम इतने दरिद्र मत बनना कि नमक भी तुम्हारे घर मे शुद्ध न हो। मनीषियो! ध्यान से सुनना, जो नमक समुद्र से आ रहा है उस नमक का कौन से जैनी ने जाकर पानी छाना उसकी क्यारियो को धोया आचार्यश्री एक बार बता रहे थे–उन्होने भावनगर (गुजरात) मे चार्तुमास किया। वहॉ एक सेठजी कहने लगे कि उनकी नमक की क्यारियो मे एक मजदूर का सोलह वर्ष का बालक गिर गया और किसी ने नही देखा। पद्रह दिन बाद जब क्यारी खोदी गयी, नमक निकाला गया, उसमे चार–पॉच स्थूल हड्डियॉ मिली तब पता चला कि बेटा तो यहाँ गल चुका है। ऐसे ही उसमे छोटी–छोटी मछलियॉ–कीडो का शरीर गल जाता है। अरे! खाना है तो, पत्थर का नमक खाया करो। वह भी बिल्कुल चिकना हो तो मत लेना जो खुरदुरा हो वही लेना। ऐसा नमक मत खाना, जिसमे पचेद्रिय जीवो की हड्डी–मास मिले हो।

मनीषियो! आचार्य भगवन कह रहे हैं–"यदिना प्राणी विधाता" बिना प्राणी के विधात किए रिष्यते" कहीं भी माँस की उत्पत्ति नहीं देखी जाती। यह कोई फल, फूल, मेवा नहीं है, जीवो का पिण्ड है। जिन औषधियो मे जैविक द्रव पडा हुआ है चाहे वह गोलियाँ हो, केपसूल हो। अहो! मरना हो तो मर जाना, लेकिन जीवन के लोभ मे आकर हम जीवो का कलेवर क्यो खाऍं ? कुछ अज्ञानियो के तर्क आचार्य अमृतचद स्वामी के सामने भी थे, जो कहते थे हम कौन मार रहे हैं, हम तो मरे–मराए को ही खा रहे हैं परतु यह भी हिसा ही है।

"मत करो अधिक हिंसा–लालसा के पीछे पुण्य की"

आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मॉंसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ।। ६७।।

अन्वयार्थ – आमासु = बिना पकी अर्थात् कच्ची। पक्वासु अपि =पकी हुई भी। विपच्यमानासु अपि = पकती हुई भी। मॉंसपेशीषु = मास की डालियो में। तज्जातीना = उसी जाति के। निगोतानाम् = सम्मूर्च्छन जीवो की। सातत्येन उत्पाद = निरतर ही उत्पति होती रहती है

आमा वा पक्वा वा खादति य स्पृशति वा पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सततनिचित पिण्ड *बहुजीवकोटीनाम् ।। ६८।।

अन्वयार्थ – य = जो जीव। आमा वा = कच्ची अथवा। पक्वा = अग्नि मे पकी हुई।पिशितपेशीम् = मॉंस की डली को। खादति = भक्षण करता है। वा स्पृशति = अथवा छूता है। स = वह पुरुष सततनिचित =निरतर एकत्रित किये हुये। बहुजीवकोटीनाम् = अनेक जाति के जीवसमूह के पिण्ड निहन्ति = पिण्ड को नष्ट कर देता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||४३||

भो मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे पुरुष की सिद्धि का कथन करते हुये सकेत दिया है कि हे पुरुष ! पुरु होकर तुझे लघुकृत्य करना उचित नहीं। आचार्य भगवन् नेमीचदस्वामी ने जीवकाण्ड' मे पुरुष का अर्थ किया है–

पुरुगुण भोगे सेढे करेदि, लोयम्मि पुरुगुण कम्म।
पुरु उत्तमो य जह्मा, तह्मा सा वण्णिओ पुरिसो ।। २७४।। (गो जी का)

जिसके मात्र दो हाथ, दो पैर हो, सिर हो, इन्द्रिया हो तथा इन्द्रियॉं के भोग हो, उसका नाम पुरुष नही। पुरु याने श्रेष्ठ, उत्तम। हम पुरु के वश के हैं और पुरु यानि भगवान आदिनाथ स्वामी, जो कि पुराण पुरुष हैं और आप पुराण–पुरुषो के वश मे उत्पन्न हुये हो, इसीलिये आप पुरुष हो, श्रेष्ठ के भोक्ता हो, श्रेष्ठ कर्ता हो, उत्तम विचारो के विचारक हो। जिसकी वृत्ति मे ओछापन हो जो दोषो से आच्छादित है, दूसरो को दोषो मे लगा रहा है उसे मॉं जिनवाणी पुरुष नहीं स्त्री कहती है।

हे पुरुषात्माओ! जो स्वय अभक्ष्य का सेवन करता हो, दूसरो को अभक्ष्य खिलाता हो, और अभक्ष्य खाने वालो की अनुमोदना करता हो, उसे पुरुष कैसे कह सकते हो? इस पर्याय को प्राप्त कर पुरु अर्थात् उत्तम कार्यों को कर सके, सयम की साधना कर सके, उसे पुरुष कहेगे इसीलिये तो उत्कृष्ट पर्याय प्राप्त हुई है। मनुष्य–पर्याय का महत्व भोगो से नहीं, मनुष्य–पर्याय का महत्व तो सयम से है। हे पुरुषो! इस भूमि का नाम कर्म–भूमि है। भोगभूमियो का जीव तो भोग भोगता है और नियम से देव बनता है, लेकिन कर्म– भूमि का मनुष्य स्वतत्र होता है। इस पर्याय से आप भी परमेश्वर बन सकते हो, नरकेश्वर भी बन सकते हो और निगोद भी जा सकते हो। अब निर्णय आप कर लो कि क्या करना है? यह ध्यान रखना–नारकी निर्णय नही कर सकता क्योकि वह तपस्या नही कर सकता। एक पशु चाहे कि मैं साधु बन जाऊँ, नही बन सकता। देव चाहे कि मैं सयमी बन जाऊँ सिद्धालय चला जाऊँ, नहीं जा सकता लेकिन आप चाहो तो जा सकते हो।

भो ज्ञानी! मोक्षमार्ग पूर्ण स्वतत्र मार्ग है और ससार–मार्ग भी पूर्ण स्वतत्र मार्ग है। इसीलिये ध्यान रखना, कुटुम्ब से पूजा नही होती पिता से पूजा नहीं होती, परिवार से पूजा नहीं होती। यदि पूजा ही चाहते हो, तो तेरी निज परिणति ही तुझे पूज्य बनाती है। यह भ्रम भूल जाओ, अब तो पेट से राजा नही बन रहे, पेटी से राजा बन रहे हैं। इसलिए मोक्षमार्ग का चुनाव भगवान नही करेगे, चुनाव तेरी भगवन् आत्मा करेगी। अबुद्धिपूर्वक इष्ट–अनिष्ट हो रहा है यह तेरा भाग्य है। बुद्धि पूर्वक इष्ट–अनिष्ट हो रहा है, यह तेरा पौरुष है यानि पुरुषार्थ है, लेकिन बिना पुरुषार्थ के कोई अहिसा धर्म नही चला पायेगा। रक्षक–भाव भी पुरुषार्थ है, रक्षा करने वाला पुरुष है। जिसके रक्षा करने के भाव नहीं है, उसे कभी पुरुष मत कहना। मनीषियो! जीवो की करूणा और जीवो की रक्षा के भाव हीनता–दीनता मे नही आते, पुरुष मे ही आते हैं शक्तिशाली मे आते हैं। जो प्राणियो की रक्षा के लिये छत्र के समान खडा हो उसका नाम क्षत्रिय है और उस क्षत्रिय–शासन को जो चलाने वाला हो, वह तीर्थंकर अर्थात् प्रभु है। जिन्होने कहा है प्राणीमात्र के लिये मेरी छत्रछाया है। अपने क्षत्रियत्व को जाग्रत करो। अपनी क्षत्रियता को प्रकट करो।

हे ज्ञानियो! पुरुषार्थ कहता है–मैं अपना काम नही छोडूँगा। कर्म का विपाक यदि विधि है, तो सयम का भाव पुरुषार्थ है। हे चेतन! तेरा धर्म कहता है कि मै कर्म से डरूँगा नही, क्योकि वह जड़ है तू चेतन है, तू पुरुष है और तू जड से घबरा रहा है। यह मिथ्या भ्रान्ति तो है, लेकिन भ्रान्ति को मिटाना भी तेरा काम है। भ्रम करे हम और भ्रम भगाये भगवान? भो ज्ञानी! ध्यान रखना जिस भ्रम को जिसने किया है, उस भ्रम को दूर भी वही करेगा। इसीलिये आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने अनुपम सूत्र दिया था–'किसी जीव का घात मत करो और किसी जीव के माँस को मत खाओ'। अब समझना कि जो द्रव्य चमडे पर रखा हो, जो द्रव्य जैविक–द्रव्यो से पैक किया गया हो, उस द्रव्य को आप कैसे सेवन कर सकते हो? मनीषियो! धर्म व्यापारियो का नही है, धर्म

कपनियो का नही है, धर्म आपका है। अहो! एक गज गमन करता है, तो देख लेता है कि जमीन कैसी है, परन्तु धिक्कार हो आपको कि आप बिना देखे मुख मे कुछ भी रखने को तैयार हो जाते हो, पूछते भी नहीं कि इसमे क्या है? जिस भोजनालय मे दो–दो प्रकार का भोजन बन रहा हो, वहाँ जाकर तुम बडे चाव से भोजन कर रहे हो।

भो ज्ञानी! ध्यान से सुनना कि कोई सज्जन कहे कि आपकी भोजन–व्यवस्था हमने शुद्ध की है और आप कहे कि चलता है, तो उसकी श्रद्धा–सस्कृति पर आपने कुठाराघात किया है। जिसने आपकी शुद्ध व्यवस्था की हो और जो यह कहता हो कि आप लोगों की व्यवस्था है और आप कह दो कि आजकल तो चलता है। अहो! जिनवाणी मे स्पष्ट लिखा है कि जिस क्षेत्र में ध र्म की हॉनि होती है, भोजन–शुद्धि न हो उस क्षेत्र मे साधु विहार न करे। एक धर्मात्मा देशव्रती विदेश की यात्रा नहीं कर सकता, क्योकि उसका दिगव्रत है। जब विमान उडान भरता है, तो कितनी आवाज होती है, कितने पचेन्द्रिय पक्षियो का विघात होता होगा और कितने वायुकायिक जीवो का घात होता होगा। अरे! जिसके प्रचार के लिये धर्म नष्ट हो जाये, वह धर्म का प्रचार नही। इसीलिये तीर्थंकर महावीर ने अपने किसी भी शिष्य से यह नही कहा कि तुम विदेश जाओ।

भो ज्ञानी! मूलाचार' मे एक स्वतत्र अधिकार का नाम पिड शुद्धि अधिकार है यानि भोजन की शुद्धि नही है तो भावो की शुद्धि नही है और जिसके भावो की शुद्धि नही उसकी सयम की शुद्धि कैसी होगी ? परिणामो की शुद्धि के लिये भोजन की शुद्धि अनिवार्य है। यह ध्यान रखना जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन' और "जैसा पीओ पानी, वैसी बोले वाणी।" जहाँ पानी ही शुद्ध न हो वहाँ के प्राणी शुद्ध कैसे होगे? आपके घरो मे हैंडपप लगा है और बगल मे सन्डास बना है। अब बताओ पानी की शुद्धि कैसे हो? आप सोचो कि भोजन किया एक कमरे मे और विसर्जन किया दूसरे कमरे मे। वह कमरा ही तो है, घर की शुद्धि कहाँ है? इसीलिये मनीषियो! ध्यान रखना, अशुचिमय स्थान पर भोजन मत करना।

भो ज्ञानियो! मुझे आप पर करुणा आ रही है क्योकि आगम मे स्पष्ट है कि जो ज्ञानावरणी ततु होते हैं, ज्ञान के क्षयोपशम (बुद्धि) पर इनका साक्षात् प्रभाव पडता है। एक पिता अपने बेटो से कहता था कि मेरा बेटा तो एक ही है परन्तु बेटे थे चार। एक दिन पत्नी झुँझला पडी बोली–मैं तीन कहाँ से लेकर आई हूँ? वह बोला–परीक्षा कर लो, पर बेटा तो एक ही है। पहले छोटा बेटा आया और कहता है–माँ भूख लगी है, भोजन दो। माँ कहती है–आपके पिता ने मुझे पीटा है, उसी से भोजन ले–लो, मैने आज भोजन नही बनाया। बेटा बोला–कहाँ गया मेरा बाप? मैं अभी उसको देखता हूँ, वसूले से छील देता हूँ। दूसरा बेटा आया, माँ! भोजन चाहिये! माँ ने वही उत्तर दिया। वह भी कहता है–कहाँ गये पिताजी ? अभी मिल जाते तो मैं चप्पलो से खबर ले लेता, यह सुन माँ का हृदय विदीर्ण हो गया। तीसरे पुत्र से भी माँ बोली–बेटा! आज भोजन नही बना आपके

पिताजी ने मुझे पीटा है, अत मेरे शरीर मे भोजन बनाने की शक्ति भी नहीं थी। कहाँ हैं पिताजी ? मैं अभी उनको कोल्हू मे पेल देता हूँ। अत मे ज्येष्ठ पुत्र आया जिसे पिता कहता था कि मेरा मात्र एक बेटा है। माँ! भूख लगी है, भोजन चाहिये। माँ बोली–आपके पिताजी ने मेरे साथ अच्छा नहीं किया, बहुत पीटा है। मेरे प्राण ही लेने वाले थे, वह तो मैं बच गई। बेटा कहता है–माँ! आपको मालूम है कि पिताजी मेहनत करके आते है और आप भी अपनी आदत को नही सुधार पाती हो, उसी समय बहुत बाते करती हो। माँ हमारे पिताजी इतने अज्ञानी नहीं है, आपने भी जरूर कुछ कहा होगा, अन्तर इतना है कि उनके हाथ चल गये, आपका मुख चला होगा। आप कोई विकल्प नहीं करो, स्वस्थ्य हो जाओ, भोजन मैं बनाये लेता हूँ और सबको मैं ही करा दूँगा। यह सुनकर पिता सामने आकर बोले–क्यो देख लिया?

भो ज्ञानी! सब क्यो हुआ वह तो सुन लो। बात ऐसी थी कि जब ज्येष्ठ पुत्र गर्भ मे आया था, तो उनकी सासु जीवित थी और सासु के अनुसार अनुशासन मे रही बहू को गली–गलियारे मे घूमने को नहीं मिला। गर्भावस्था मे जिनवाणी सुनती थी णमोकार की मालाये फेरती थी, बेटे के अदर सुसस्कार थे। जब लघु पुत्र गर्भ मे आया उस समय सासु माँ चल बसी थी तो बढई के यहाँ गर्भ की अवस्था मे मुगरिया आदि बनवाने जाती थी, तो उस बेटे पर वसूले के सस्कार काम कर गये। जब द्वितीय पुत्र गर्भ मे आया तो उस समय माँ चप्पले आदि सुधरवाने जाती थी। तीसरा बेटा गर्भ मे था तब तेली के यहाँ तेल पिराने–खरीदने आदि के लिये जाती थी सो कोल्हू के सस्कार सतान के ऊपर थे।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, सस्कार भी बहुत बडी विद्या होती है। यदि आपके अतरग मे सस्कृति को जीवन्त रखने की परिणति है, तो सस्कारो को जीवन्त रखना पडेगा। सस्कार जीवन्त नही रहेगे, तो अहिसा की सस्कृति जीवन्त रहने वाली नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने परिवार के सस्कार निर्मल रखे जिससे हमारी सस्कृति निर्मल चले। अत अभद्र भाषा का उपयोग होना ही नहीं चाहिये। इससे पता चलता है कि सस्कार गर्भ से शुरू होगे। अत पहली पाठशाला घर है, पहला अध्यापक माँ है, दूसरा अध्यापक पिता है, फिर बाद मे दादा–दादी को देखना। परिवार के सस्कार ही व्यक्ति को महान बनाते हैं। एक पत्थर को आप सस्कारो के द्वारा परमेश्वर बना लेते हो तो यह तुम्हारी चेतन प्रतिमाएँ–बच्चो को तुम शैतान क्यो बना रहे हो? सस्कार डाल दो, इनको भी तुम परमेश्वर बना दोगे। याद है आपको, सत्यता वाणी की नहीं, सत्यता चर्या की होती है। सत्यवादी हरिश्चद्र सब कुछ देकर जब अपने बेटे राहुल को लेकर किसी देहात से गुजर रहे थे। बेटा कहता है–पिताजी! अब तो कठ सूख चुका। उसी समय एक किसान अपने खेत से मटके मे गन्ने का रस लिये आ रहा था। उससे रस लेकर बेटा राहुल के मुख की ओर ले जाते हैं तो एक तोता कहता है–जिसने अपने राज्य को दे दिया वह आज कैसे अपने बेटे को एक

घूँट रस पिलायगा? भो सत्यवादी! आज तुम दान देने के बाद भी, एक घूँट रस पिलाकर कितना बडा पाप का सचय कर रहे हो। अहो बेटा! तेरे प्राण देखूँ कि अपना प्रण। लाल कहता है—पिताजी! मेरे प्राणो के पीछे, अपना प्रण मत छोडो। मनीषियो! आप जैन हो, कम—से—कम अपनी पहचान को मत मिटाओ, तुम्हारी पहचान रात्रि में खाना—खाने से नहीं होगी अभक्ष्य खाने से नहीं होगी।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि आप अपने पुण्य को पैसे के पीछे बरबाद मत कर देना। कितना प्रबल पुण्य—सचय किया होगा आप लोगो ने, इतना सब कुछ मिला। अहो! जो माँस का सेवन करता है खाना तो दूर छूता भी है वहीं करोडों जीवो का घात हो गया। अब सोचना, यदि खाने वाले को भी यह ज्ञान नही है यदि जिनवाणी सुनने के बाद मन भी करेगा, तो विश्वास करना वह चला जायेगा क्योकि अज्ञानता मे जीव उसे जीव ही नही मानते। अरे! मछली भी जीव है, यह कोई फल—फूल नही है यह जीव ही है, इनमे भी सवेदना चेतनत्व है, इसलिये भो ज्ञानियो! अपनी सम्वेदनाओ को जाग्रत करो, सम्वेदनशील बनो, किसी जीव के प्राणो का विघात मत करो।

मथुरा-तीर्थंकर मूर्ति

"शहद का सेवन भी हिसा है"

मधुशकलमपि प्रायो मधुकरहिसात्मक भवति लोके।
भजति मधु मूढधीको य· स भवति हिसकोऽत्यन्तम्।।६९।।

अन्वयार्थ लोके मधुशकलमपि = इस लोक मे मधु का कण भी। प्राय = बहुधा। मधुकर हिसात्मक = मक्खियो की हिसारूप। भवति = होता है। य मूढधीक = जो मूर्खबुद्धि पुरुष। मधुभजति स = शहद का भक्षण करता है वह। अत्यन्तम् हिसक = अत्यन्त हिसा करने वाला होता है।

स्वयमेव विगलित यो गृह्नीयाद्वा छलेन मधुगोलात।
तत्रापि भवति हिसा तदाश्रयप्राणिना घातात्।।७०।।

अन्वयार्थ य छलेन वा = जो कपट से अथवा। गोलात = छत्ते मे से। स्वयमेव विगलितम = स्वयमेव टपके हुए। मधु गृह्नीयात् = मधु या शहद को ग्रहण करता है। तत्रापि = वहाँ भी। तदाश्रयप्राणिनाम = उसके आश्रयभूत जन्तुओ के। घातात् हिसा भवति = घात होने से हिसा होती है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।४४।।

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने बहुत सुन्दर सूत्र दिया कि जीवन मे तूने अनन्त क्षणो को अनन्त भोग के लिये समर्पित किया है अनन्त पर्यायो को तूने कषायो को सौंपा है। अहो! अल्प विचार तो कर कि हमने निज के लिए कितने क्षणो को दिया है साधना को कितना समय दिया है। हे चेतन! अनन्त चतुष्टय की सपदा तेरे अन्दर भी है फिर भी तू गरीब है। अरे! हीन मान के चलोगे तो हीनता ही दिखेगी जिसकी परिणति मे हीनता है, मनीषियो! वह कभी प्रभु नही बन पाएगा। जिस स्थान को तुम चाहते हो उस स्थान को सोचना तो पडेगा यही द्रव्यानुयोग है। द्रव्यानुयोग तुम्हारे सयम को नही मिटाता है, चर्या को नही बिगाडता परिणति को नहीं बिगाडता है। द्रव्यानुयोग तो तेरी 'प्रभुत्व–सत्ता' का भान कराता है। आचार्य कुदकुद देव कह रहे है कि तू विभुत्व–शक्ति से समृद्ध है। तेरी प्रभुत्व–शक्ति भी है विभुत्व–शक्ति भी है और प्रभु–शक्ति

भी है। उस शक्ति को उद्घाटित करने वाले रत्नत्रय ध्वज को, तो तुझे ही फहराना पडेगा। सैनिक भी तू ही होगा, शखनाद भी तेरा होगा, परतु शत्रु तू नहीं होगा, शत्रु पर ही होते हैं। एक सौ अडतालीस तो सम्राट हैं, जिनसे तुझे जूझना है, लेकिन असख्यात् लोक–प्रमाण उनके अनुचर हैं। ध्यान रखना–शत्रु बाहर से कभी भी सेना लेकर नहीं आता, देश के अन्दर ही जो आपसे नाखुश हैं, वे ही आपके शत्रु होकर शत्रु की सेना के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं।

भो ज्ञानी! तुम्हारे देश मे जो अग्रेज आये थे वह कितने से आये थे ? वह तो व्यापारी थे, लेकिन आपको ही परिवर्तित किया था, परस्पर मे ही लोगो को ज्यादा कषाय थी। अहो! बाहर के शत्रु कम होते हैं, अन्दर के शत्रु जो मित्र बने होते हैं, वे ही परिवर्तित होकर शत्रु का रूप बना लेते हैं। कार्माण वर्गणाएँ कर्मरूप होने के लिए बाहर से बहुत कम आती है। जो तेरे पास पुण्य रूप वर्गणाए होती हैं वे पुण्य वर्गणाऍ ही तेरी अशुभ परिणति से पाप रूप सक्रमित हो जाती हैं और वे ही पाप रूप मे उदय मे आकर फल देना प्रारभ कर देती हैं। देखिए, प्रबल पुण्यात्मा जीव के पास पाप वर्गणाऍ कम आती हैं, लेकिन प्रबल पुण्य के योग मे तुमने अशुभ कर्म करना प्रारभ किया, अत वह सारा–का–सारा तुम्हारा पुण्य–द्रव्य पाप रूप सक्रमित हो गया। शत्रु की अल्प सेना ने आपको परास्त कर दिया। मनीषियो! राम अयोध्या से कितने लोगो को लेकर रावण से युद्ध करने के लिये गये थे, लेकिन उनके पुण्य की प्रबलता ने तीन के कितने कर दिये? ऐसे ही मुमुक्षु जीव अल्प पुण्य के योग मे प्रबल पुण्य कर लेता है। भगवन अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि उस द्रव्य को देखो उस विभुत्व सत्ता को देखो, अपने आपको पराधीन मत मानो। आप अभी एक सौ अडतालीस सम्राटो से परतत्र हो जिस दिन आप स्वतत्र हो जाओगे, सिद्ध बन जाओगे। अरे! बास की जडो मे उतना घुमाव नही होता जितना हमारी परिणति मे घुमाव होता है। प्रभु! मैंने आपके चरणो मे अनुपम दृश्य देखा–चोर तो बदल गया पर अर्धांगिनी का हृदय चोर बन गया था। जिसे तुम अर्धांगिनी कह रहे हो जिसके पीछे तुम पूरे जीवन को बर्बाद कर रहे हो। प्रभु! तेरा स्वतत्रता दिवस उसी दिन मनेगा जिस दिन परिवार से स्वतत्र हो जायेगा।

भो ज्ञानी! सत्य पर विश्वास तभी मानकर चलना, जब स्वय पर विश्वास हो। भो मनीषी! यहाँ क्यो बैठे हो? अभी तक तो आपके हाथ मे पिच्छी–कमडल आ गये होते, परन्तु आपको स्वय पर विश्वास नहीं है। ध्यान रखो, सयम का इतना सुहावना जीवन आप स्वय की आँखो से देख रहे हो तभी तो झुक रहे हो, लेकिन विश्वास कमजोर है। ऐसा नही है कि आप लोग जानते नहीं हो। जानते भी हो और मानते भी हो, लेकिन कर नहीं पा रहे हो। कौन–सी वस्तु है जो आपके चलने के लिये पकडे हुए है। अहो ज्ञानियो! आपने जान लिया कि वस्तु मोह है, अब तो आपको रोग भी पकड मे आ गया। अब ठीक क्यो नही हो रहा है? जब मोह–रोग तुम्हे पकड मे आ गया है तो औषधी खा लो। तीन पुडियाँ हैं–सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। ज्यादा बडी बीमारी

हो तो सबसे बडे विशेषज्ञ डाक्टर आचार्य महाराज के पास भेज देगे, वहाँ पूरी शल्य–क्रिया हो जायेगी। यदि फोडा भी होगा तो ठीक हो जायेगा। भो ज्ञानी! अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि मोह की दशा मे बैठकर तुम अभक्ष्य का सेवन कर रहे हो। जुकाम हो गया, मुख में बलगम आ गई और मदिर मे खड़ा है, उसे निगल गया। बाहर निकाल देता तो क्या था? आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी ने लिखा–"अनुपसेव्यो" अभक्ष्य है, चितन तो कर लिया करो। मॉंस का सेवन नही करते हो, लेकिन ध्यान रखना–दो–इन्द्रिय जीव से मॉंस–सज्ञा प्रारम्भ हो जाती है। घी का डिब्बा रखा था, उसमे चींटी गिर गयी अब बताओ उस घी का तुम क्या करते हो जिसमे पूरा शव पडा है? शव को तुमने निकालकर फेक दिया और घी खा लिया, ऐसे त्यागी है। मुनि–चर्या की बात तो बाद मे करना, लेकिन श्रावक की चर्या तो बताओ। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि बोलकर आठ दिन की रखी मलाई से घी निकालकर उससे रोटी चुपडकर कह रहा है–महाराज! अन्न–जल शुद्ध है।

भो ज्ञानी! सूखा खिला देना, सूखा खा लेना पर जिनवाणी कहती है कि दूध आया तो वह अडतालीस मिनिट मे तपना चाहिये। **चौबीस** घटे के अन्दर आपने मक्खन निकाला, **अडतालीस** मिनिट के अन्दर आपने उसका घी निकाल दिया, तब तो ग्रहण करने योग्य है अन्यथा जिस जाति के जीव का दूध था उसी जाति के पचेद्रीय जीव उसमे उत्पन्न हो रहे हैं। शव का पिण्ड (कलेवर) तुमने तपाकर रख दिया। अहो! विभुक्त–शक्ति की बात कर रहे हैं आप, जिनको आपने तपाया वह भी विभुत्व शक्ति से युक्त थे। अभक्ष्य नहीं छोड पाए तो तुम्हारी सम्यक्‌दृष्टि आत्मा कैसी है? बाजार के घी–दूध के बारे मे आप ही सोच लेना। मुझे मालूम है कि किसान रोज–रोज नही तपाते, पद्रह–पद्रह दिन का मक्खन रखकर तपाते हैं, फिर घी निकालते हैं। अब सोचो जिसका अभक्ष्य अनीति अनाचार का त्याग नहीं है, वह भगवती आत्मा को कैसे प्राप्त कर सकता है? अरे! यह मत कह देना कि यह क्रिया–काण्ड बाहर का है वह अन्दर की बात है। बिना सयम के बात बनेगी कैसे? करूणा नही दया नही, तो आगम मे लिखा है कि निर्दयी को भगवान बनने का अधिकार नही है। बच्चो को बुखार आ गया, मधु मे डालकर औषधि चटा दी, बच्चा ही तो है। ध्यान रखना, शहद की एक बूँद का सेवन करने मे सात गॉंव जलाने के बराबर हिसा होती है, पाप होता है। शहद कैसे बनती है सब जानते हो, चार–इन्द्रिय जीव मक्खियो को बहेलिया अग्नि लगा देता है या फिर पानी डाल देता है, छत्ते के छत्ते टपक–टपक कर नीचे गिरते हैं। उनसे टपक रही है मधु, जिसका सेवन आप अमृत कहकर कर रहे हो। ध्यान रखो, तुम्हारे घर को जलाकर कोई तुम्हारे धन को उडा ले जाये, तब बताओ कैसा लगेगा? कितनी मेहनत से मक्खियो ने पुष्पो से पराग ले लेकर एकत्रित किया और आपने सब कुछ छीन लिया। इससे लगता है कि मनुष्य से बडा स्वार्थी जीव कोई नही है, जो एक–इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक का शोषण कर रहा है और फिर भी कहता है मैं श्रेष्ठ

हूँ। अरे! श्रेष्ठ तो है, पर इन कामो मे श्रेष्ठ नहीं है।

भो मनीषियो! देश की स्थिति बडी विचित्र है, लोग मॉस की खेती करने लगे हैं मछली पालन, मुर्गी पालन मधुमक्खी पालन। अहो! हिसा की कोई खेती नही होती है, यह तो पूर्णतया सकल्पी हिसा है। चिरगाव मे एक शर्माजी थे। उन्होने ऋण लेकर ऐसी खेती के लिए फार्म भर दिया स्वीकृति मिल गयी और अचानक 'पुरुषार्थ सिद्धि' के प्रवचन चल रहे थे, सुनने बैठ गये, प्रवचन के तुरन्त बाद आये, महाराज! बचा लिया आपने, मैं तो फार्म भर चुका था, स्वीकृति आ चुकी है। तैयारियाँ चल रही हैं। अत ध्यान रखना महीनों का (सीरव) आसव रखा है, वह भी मधु से कम नहीं है। बहुत सारी औषधियो मे भी मधु होता है। जो मधु का सेवन करता है वह अत्यत हिसक होता है। मधु स्वय भी क्यो न टपक रहा हो या छल से उस शहद के गोले को ग्रहण करता है, उसमे भी हिसा होती है क्योकि उसके आश्रय से उत्पन्न होने वाले जीवो का घात होता है। अरे! किसी भी प्रकार से शहद का प्रयोग नही करना चाहिये। अत मधु का सेवन न स्वय करना, न कराना, न सेवन करने वाले का अनुमोदन करना है। मात्र अपने जीवन मे अहिसा धर्म की ओर बढना है।
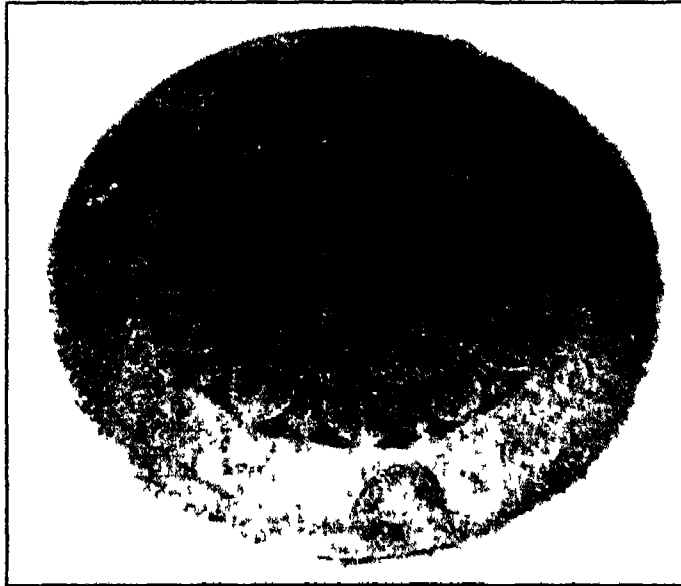
अतिम श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहू के पावन चरणचिन्ह

"हेय हैं–चार महाविकार"

मधु मद्य नवनीत पिशितं च महाविकृतयस्ता।
वल्भ्यन्ते न व्रतिना तद्वर्णा जन्तवस्तत्र ।। ७१।।

अन्वयार्थ मधु मद्य नवनीत = शहद, मदिरा, मक्खन। च पिशित =और मास। महाविकृतय = महाविकारो को धारण किये हुए। ता व्रतिना = ये चारो पदार्थ व्रती पुरुष के। न वल्भ्यन्ते = भक्षण करने योग्य नही हैं। तत्र तद्वर्णा = उन वस्तुओ में उसी जाति के। जन्तव =जीव रहते हैं।

योनिरुदुम्बरयुग्म प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलफलानि।
त्रसजीवाना तस्मात्तेषा तद्भक्षणे हिसा।। ७२।।

अन्वयार्थ उदुम्बरयुग्म = ऊमर, कठूमर अर्थात् अजीर। प्लक्षन्यग्रोधपिप्यलफलानि = पाकर, बड और पीपल के फल। त्रसजीवाना योनि = त्रस जीवो की योनि है। तस्मात् तद् भक्षणे = इस कारण उनके भक्षण मे। तेषा हिसा = उन त्रस जीवो की हिसा होती है।

।। पुरुषार्थ देशना ।।४५।।

मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अनुपम सूत्र दिया कि जिन–जिन निमित्तो से आत्मा कर्म से बधता है, वे सारे के सारे निमित्त आत्म–घात के हेतु होने से हिसक है। यहाँ पर आवश्यक नही है कि तू निमित्तादि द्रव्य का सेवन करे तभी बध होगा क्योकि सेवन करने से पहले भावो द्वारा द्रव्य के पास पहुचने से बध हो जाता है।

सिद्धात चक्रवर्ती आचार्य नेमीचद्र स्वामी ने गोमटसार जीव काड मे परिणामो के दस कारणो की चर्चा की है कि जिसने जैसा भाव किया, उसको वैसा बध हुआ, लेकिन बिना भाव के किसी को बध होता नही। मनीषियो! बध क्षेत्र मे नही, बध द्रव्य मे नही, बध पदार्थ मे नही, बध तेरी परिणति मे होता है। जैसे टेलीविजन का काम अशुभ चित्र दिखाना नही, उसका काम तो चित्र दिखाना है। वैसे ही ज्ञान का काम शुभ–अशुभ नही होता, उसका काम तो जानना होता है, परतु परिणति जैसी होती है वैसा शुभ–अशुभ होता है। इसी प्रकार जैसी कैसेट है जैसी आपने फिल्म बनाई है वैसा उसमे आयेगा। ध्यान रखना कर्म उदय को दोष देना सबसे बडा दोष है क्योकि

कर्म के विपाक को दोष देना, नवीन कर्म बध का कारण है। कर्म विपाक याने कर्म का फल। अरे! नल मे जो पानी आ रहा है, नल का दोष नहीं है, टकी में जैसा पानी भरा है, उस भरने वाले को दोष दो, लेकिन टोंटी का काम तो निकालना है, पानी भरना नहीं। अत नल की टोटी पर हथोडे मत पटको, नल मे पानी खारा नहीं है, भूमि मे पानी खारा है। उदय मे पानी खारा नहीं होता तो परिणति खारी क्यो होती ? इसी कारण कर्म का फल भी खारा है।

भो ज्ञानी! कर्म बध की प्रक्रिया को देखना कि आज बध्यमान काल मे विचारने की आवश्यकता है पर बध्यमान तभी होता है जब भुज्यमान निर्मल होता है। भुज्यमान मे नहीं समझ पाये तो बध्य अशुभ होगा ही होगा। जिस आयु को आप भोग रहे हो यह भुज्यमान आयु कहलाती है। उस आयु के काल मे आप जो बध कर रहे हो यह बध्यमान कहलायेगी। बध्यमान मे तुम क्या करोगे, भुज्यमान मे सभल जाओ। भुज्यमान को आप मिटा नहीं सकते, बध्यमान को उत्कर्ष भी कर सकते हो और अपकर्ष भी कर सकते हो और सक्रमण भी हो सकता है लेकिन निधत्ति–निकाचित का कुछ नही कर सकते वह तुमको भोगना ही पडेगा। निधत्ति निकाचित, आठो कर्मो मे होता है। जैसे सत निकल रहे, उनकी भक्ति–आराधना करके तुम अपने पुण्य को सचित कर लो। इसी प्रकार कर्म आ रहे हैं जा रहे हैं तुम अपनी परिणति सुधार लो, लेकिन तुम कहो कि हमारे पास शुभ कर्म आ जाए वह आने वाले नही। तुम्हारी अवस्था जैसी होगी वैसा ही होगा। इसलिए कर्म किसी का नही है जिसने शुभ परिणति की उसे शुभ के रूप मे फल देते हैं इसके विपरित अशुभ परिणति मे अशुभ फल देते है। आखो से कर्म दिखते नही है। वह कर्म विपाक साता–असाता के रूप मे आता है, वेदनीय कर्म का काम तो अनुभव कराना है कर्म लाना नही है, वेदनीय वेदन कराती है। अन्तराय कर्म का क्षयोपशम लाभ अन्तराय कर्म को लाता है मोहनीय उस पर कब्जा करा देता है और वेदनीय भोग कराता है।

भो ज्ञानी! निघत्ति–निकाचित कुछ नहीं करता वह तो यह कहता है कि तुमको उतना भोगना पडेगा जितना तुमने ग्रहण किया है जैसा तुमने स्वीकार किया है। वह तो इस प्रकार कहना चाहिए कि राजा ने पहरेदारो को आदेशित कर दिया, जाओ–उस व्यक्ति को फासी पर चढा दो, उनका काम फासी पर चढाना है लेकिन न वह कम कर सकता है, न वह बढा सकता है। फासी के फदे खीचना हीन काम है जो बुद्धिशाली के नही प्रज्ञाहीनो के होते हैं। ऐसे ही निघत्ति–निकाचित कह रहा है कि मेरे पास विवेक नाम की वस्तु नही है। मुझे आदेशित किया गया है हम तो इतने समय तक तुमको रोके रखेगे और ऐसे ही क्षेत्र मे तुमने अशुभ कृत्य कर डाला।

भो ज्ञानी! अन्य भेषो मे कोई पाप किया जाये उसके परिहार के लिये जिनभेष होता है, लेकिन जिनभेष मे ही तुमने पाप कर डाला तो ध्यान रखना वहा भी निधत्ति– निकाचित होगा–

अन्य लिगे कृतम् पापम्, जिन लिगे विनश्यति!
जिन लिगे कृतम् पापम्, वज्र लेपो भविष्यति।। अ पा टीका।।

भो ज्ञानी! आत्माओ! क्लेश आदि कुछ भी परिणति आपने की, तो बध होगा। इसीलिये

कर्म कहता है मेरा कोई दोष नहीं है तेरे भावकर्म न हो, तो द्रव्यकर्म कभी नही होगा। देखो, कासे की थाली मे सुइया भरो और नीचे से घुमा दो चुम्बक को, सुईया अपने आप थाली मे घूमने लगेगी, लोग इसे चमत्कार कहेगे कि क्या गजब की महिमा है ? भो चेतन। आत्मा घूम रही है आकाश मे उड रही है, नीचे देखो पुण्य कर्म की चुम्बक लगी है, तो भो ज्ञानी। यह मनुष्य पर्याय आपको मिली है और जिस दिन नीचे की चुम्बक के शकत्याश अधिक बढ जायेगे और ऊपर के शक्ताश कम रहेगे तो नीचे टपक जाओगे इसका का नाम नरक है, जिस दिन ऊपर की चुम्बक के शक्ताश ज्यादा होगे और नीचे की चुम्बक कम हो गई तो तुम ऊपर चले जाओगे। अब बताओ, चुम्बक का क्या दोष? लेकिन चुम्बक कह रही है मैं तो घुमाती हूँ। यदि आप मे जरा भी लोहा होगा तो मैं खीचती रहूँगी और जिस दिन शुद्ध सोना बन जायेगा तब सोने पर चुम्बक नही चलेगी, ऐसे ही शुद्ध आत्मा पर कर्मो की चुम्बक नहीं चलती। इसीलिये उदय को दोष नहीं देना। उदय काल मे साम्य परिणामो से नवीन कर्म का बध नही होगा और पुराने कर्म झड जायेगे।

भो ज्ञानियो। अब पुन समझना, यह उदाहरण मै आपको कई बार दे चुका हूँ–पच परमगुरु का स्थान देव–शास्त्र गुरु का स्थान चूल्हा है। विवेकी–ज्ञानी रोटी को चूल्हे मे डालकर घुमाता जाता है और यदि रखी छोड दी तो जल जायेगी। ऐसे ही पच परम गुरु के चरणो मे आप रोज आना वदना करना प्रदक्षिण देना। वहॉ आप बैठोगे तो राग की बाते शुरू करोगे और राग–द्वेष की बाते शुरू हुई कि जलना शुरू हुआ। इसीलिये जब भी धर्म क्षेत्र मे आओ तो भो ज्ञानी। जैसे चूल्हे मे मा रोटी को घुमाती रहती है ऐसे तुम घूमते रहना लेकिन वहॉ अपना स्थाई भाव बनाकर मत बैठ जाना और जहॉ तुमने कर्त्ता भाव बनाये, समझ लेना तुम्हारे ही भगवान तुम्हे अशुभ का बध कराने लगेगे। क्योकि राग परिणति है तो अशुभ का बध भक्ति भाव है तो शुभ बध। अब चाहे तुम्हारा बेटा मुनि बन गया हो चाहे पडोसी का बेटा। यदि भाव लिगी यति है और आपने उसके सामने कोई गडबड काम किया तो ध्यान रखना अशुभ का बध नियम से होगा। सयम वीतरागी अरहत देव का वेष है यह मत सोचना कि यह तो हमारे घर के महाराज है, इस प्रकार यह जीव बध हस–हस के करता है और जब कर्म का विपाक आता है तो ऑखो से ऑसू टपकते हैं, नाक से नाक बहती है बाल बिखर जाते है और अशुभ कर्म शरीर पर प्रकट होता दिखता है। यह कर्म सिद्धात मुनि को भी नही छोडता तीर्थंकर को भी नही छोडता।

भो ज्ञानी। कर्म सिद्धात ध्यान रखो, भगवान आदिनाथ स्वामी ने उसी पर्याय मे राज्य काल मे पशुओ को आहार करने से रोकने के लिए उनके मुँह को बधना (मुशीका) लगवाया था। अत छह माह तक आहार विधि नही मिली, क्योकि सिद्वात याने सिद्वात। तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर उपसर्ग आया तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ पर उपसर्ग आया, अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी पर उपसर्ग आया, यह सब पूर्व के विपाकी थे। अहो। कर्मों ने तीर्थंकर को भी नही छोडा तो अब तुम किसी की भलाई–बुराई के बारे मे मत सोचना। एक ग्रामीण व्यक्ति बहुत लम्बा कपडा सिर पर बाधे हुये था। वह इतना लम्बा था कि नीचे तक लटते चला जा रहा था, जमीन पर कपडे को देखकर सेठजी बोले भैया।

क्यो फाड रहे हो, तनिक ऊपर कर लो। वह कहने लगा–जिसने इतना बडा दिया है, फट जायेगा तो और दे देगा। सेठजी शात हो गये। तनिक आगे चले सो एक भैया मिले जो पैर की जूतियाँ ऐसे दबाये थे जैसे बच्चे को दबाये हो, सेठजी बोले–भैया इन्हे पहन लो, भूमि गरम है। भैया बोले–सेठजी! आपका पुण्य है तो फिर खरीद लोगे पर हम कहाँ से लायेगे। हम तो तनक–तनक पहन लेते हैं और जब कोई गाँव, शहर आ जाता है, तो पहन लेते हैं। इतने मे वहाँ से राजा के कर्मचारी गरीबो को मदद देने हेतु निकल पडे। उन्होने फटे फेटा वाले को देखा और नोट कर लिया कि इसकी व्यवस्था करना पडेगी। परतु जूतियाँ लेने वाले व्यक्ति के बारे मे कुछ नही लिखा।

भो ज्ञानी आत्माओ! यह तो दृष्टान्त था जो अपने आप मे स्वय व्यवस्था किये बैठे हैं, कर्म भी कहता है ठीक है तुम इतने ही ठीक हो और जो अपनी जैसी व्यवस्था किये होता है उसकी वैसी व्यवस्था होती है। अत आप चिता मत करो कर्ता बनकर मत जिओ, लेकिन वस्तु व्यवस्था विधि ा है सचालक है और जो सचालक है वही कर्म है। कर्म सिद्धात कहता है कि घृणा किसी से मत करो। जिससे आप घृणा कर रहे हो वह भी कल भगवान बन सकता है यह ध्यान रखो, गहरे पानी मे बुलबुले कम आते हैं उथले पानी मे बुलबुले ज्यादा उठते हैं, जिनके पास तनिक सा पुण्य है और वर्तमान मे दिखने लगा तो फूल जाते हैं, ऐसे उथले लोग, खाली गगरी की तरह होते हैं जो ज्यादा छलकती है पर भरी गगरी नही छलकती १३वे गुणस्थान मे केवली भगवान तीर्थंकर से बडा पुण्य किसी का नही होता है। ध्यान रखो, तुम्हारे पास थोडा सा तो पुण्य है और इतने फूलते हो अत उतने ही नीचे गिर जाते हो।

मनीषियो! ऐसे अल्प पुण्य के योग मे निधत्ती–निकाचित जैसे कर्म का बध मत कर लेना, अन्यथा जिनके चरणो मे किया है वे भी तुम्हे नही छुडा पायेगे। धवलाजी मे लिखा है पच परमगुरु की भक्ति ऐसी होती है जो इन कर्मो मे भी शिथिलता ला देती है। एकमात्र उन्ही पच परमेष्ठी की भक्ति के अलावा और कोई दूसरा उपाय नही है। इसलिये ऐसे पुण्य के योग मे और ऐसी निर्मल पर्याय मे उस पुण्य की वृद्धि तो करना, लेकिन अभक्ष्यो को खा–खाकर के अपनी हालत खराब मत कर देना। आजकल कच्चा मक्खन (बटर) खाने का बडा रिवाज चल चुका है। 'मूलाचार' जी मे कहा है–मधु, मद्य मास और मक्खन, ये चारो महाविकृतिया महामद को उत्पन्न करने वाली हैं। जब मक्खन का पिड खा रहे हो तब चितन जरूर कर लेना यह क्या हो रहा है? अरे भाई! किसी डेरी पर दूध लगवा लो पाँच किलो और घर मे जमा दो, उसमे से घी निकाल लो पर शुद्ध खाओ।

अहो! ऐसे अभक्ष्य घी की अपेक्षा से रूखा खाना श्रेष्ठ है, पर वह मक्खन भक्षण करने योग्य नहीं है। उस मधु–मक्खन आदि मे उसी वर्ण के, उसी रग के जीव होते है। आप कहोगे दिख तो रहे नही हैं। अरे! जैसे मिट्टी मे मिट्टी के जीव कभी दिखते नही है परतु जीव होते अवश्य हैं। पच उदम्बर फल–ऊमर, कठुमर, पाकर, अजीर और पीपल के फल अभक्ष्या है क्योकि फोडने पर उडते हुए जीव दिखते हैं। उसके भक्षण मे नियम से हिसा होती है। इसलिये पाँच उदम्बर फलो का त्याग अवश्य ही करना चाहिए।

"जिन देशना की पात्रता, अष्टमूलगुण की धारणा"

यानि तु पुनर्भवेयु कालोच्छिन्नत्रसाणि शुष्काणि।
भजतस्तान्यपि हिसा विशिष्टरागादिरूपा स्यात्।।७३।।

अन्वयार्थ तु पुन = और फिर भी। यानि शुष्काणि = जो पाच उदुम्बर सूखे हुए। कालोच्छिन्नत्रसाणि = काल पाकर त्रस जीवो से रहित। भवेयु = हो जावें। तान्यपि = उनको भी। भजत =भक्षण करने वाले के। विशिष्टरागादिरूपा = विशेषरागादिरूप। हिसा स्यात् = हिसा होती है।

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया भवन्ति पात्राणि शुद्धधिय ।। ७४।।

अन्वयार्थ अनिष्टदुस्तरदुरितायतनानि = दु खदायक दुस्तर और पापो के स्थान। अमूनि अष्टौ = इन आठ पदार्थों को। परिवर्ज्य = परित्याग करके। शुद्धधिय = निर्मल बुद्धि वाले पुरूष। जिन धर्मदेशनाया = जिनधर्म के उपदेश के। पात्राणि भवन्ति = पात्र होते हैं।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥४६ ॥

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन अमृतचद्र स्वामी ने बडा अच्छा सूत्र दिया कि राग की दशा कितनी विचित्र है। बध को समझता हुआ भी बध की क्रियाओ को बद नही कर पा रहा है। अहो! बाहरी भावो पर जिसकी दृष्टि है वह (भाव यानि पदार्थ और भाव यानि परिणाम) पर–भावो से हटना नही चाहता पर भगवान बनना चाहता है लेकिन जब भी भगवान बनने वाले होगे, तब आपको परभावो से हटना ही होगा। अज्ञ प्राणी जब तक पर द्रव्य और निज द्रव्य मे भेद नहीं कर पा रहा है, तब तक भेद दृष्टि नही बनेगी, क्योकि पहले भेद विज्ञान होता है, उसके बाद अभेद रत्नात्रय धर्म होता है। जो भेद विज्ञान के अभाव मे रत्नत्रय धर्म की सिद्धि करना चाहता है, वह तो अग्नि मे कमल वन को देखना चाहता है। मनीषियो! भोगो की अग्नि मे झुलस करके मनीषियो तुम शुद्ध आत्मा के वेदन का अनुभव करना चाहते हो यह तीन काल मे सभव नही है। ये भोग उन रिश्तदारो के समान है,

जो आते हैं और सहानुभूति सी दिखा कर चले जाते हैं, लेकिन ध्यान रखो सगा भाई इनसे अलग ही होता है ऐसे ही भगवती आत्मा को जो सगा है वे दो है एक ज्ञान और दर्शन, उसे आप भूल रहे हो।

भो चेतन्य! कितने लोगो से तूने सबध स्थापित किया है मद्य, मॉस, मधु, मक्खन मे नजदीक के रिश्ते क्रोध, मान, माया, लोभ हैं और जो दूर के हैं, इनसे वास्तव में रिश्ता नही है। मनीषियो! ध्यान रखना अतिम दशा मे अतिम अवस्था मे क्रोध काम मे आने वाला नही है। लोभ, मान, माया काम मे नहीं आयेगी। जब शुद्ध आत्मा बनेगी तो तेरा ज्ञान दर्शन ही काम मे आएगा। इसलिए जो तुम्हे कभी नहीं छोडेगा उसके साथ जुडो। सुहावने शरीर को पाकर जो देह आपकी आज नजर आस रही है, भो ज्ञानी! पता नहीं वह कब धोखा दे दे। अत भगवन् अमृतचद्रस्वामी कह रहे हैं तीर्थेश की देशना वही सुने, जिसकी बुद्धि सुबुद्धि हो।

हे सुधी आत्माओ। अपना कल्याण चाहते हो तो रागी बुद्धि को छोड दो। पयूर्षण आएगा हरी नही खाएँगे इसलिये सुखाकर रख रहे हैं। अहो! ज्ञानी आत्माओ! कब खाओगे और क्या मालूम खाओगे कि नही खाओगे। लेकिन कर्म आस्रव तो तब से शुरू कर दिया, जिस दिन से आपने सोचना प्रारभ किया। जबकि अभी तो खरीदा ही नही है, परतु सुखाना सामने खडा हो गया। कभी–कभी व्यर्थ मे ही कर्म को बुलाते हो। अत विवेक लगा लो तो बहुत से कर्म–आस्रव से आप बच जाओगे। पर आवश्यकता निर्मल चितन की है, आप शुद्ध बोलते–बोलते कुछ व्यर्थ शब्द बोलते हो–जैसे 'फल–मल सब खा लिये' बात को पकडना कि व्यर्थ शब्द जोडकर आपने कितना गलत शब्द बोल दिया है, हम मनुष्य हैं, मल नही खाते हैं यह शब्द आपने क्यो बोल दिया अलग से। सपादक तो कागज पर कलम चलाता है, लेकिन योगी निज भावो को शब्दो मे लाने पर ही सपादित कर लेता है, और वाणी मे तो सपादित वाणी ही आती है। पडित प्रवर दौलतरामजी ने लिखा है–"जिनके वचन मुख चद्रते अमृत झरे"। जो इस भावना से ओत–प्रोत होकर निर्विकल्प भाव मे लीन होता है तो वह शब्दो का श्रावक नहीं कहलाता, चर्या का योगी बन जाता है, लेकिन आखो का खोलना, बद करना मुख से "अहा बोलना, ये बाहरी क्रिया है।"

भो ज्ञानी! तुम देशना सुनने के पात्र तब होगे, जब तुम्हारी आत्मा अष्टमूल गुणो के सस्कारो से सपादित हो जाएगी। अत इतनी तो योग्यता तो रख लेना की कही भी जाओ तो कह सको कि मैं जिनेद्र की वाणी सुनने की योग्यता रखता हूँ। एक दिन ऐसा भी आएगा जब आप वाणी देने की भी योग्यता रखोगे! क्योकि जब आप सयम से समन्वित हो जाओगे। फिर आपके मुख से भाषण नही होगे। फिर आपके मुख से प्रवचन ही होगे। "प्रकट वचन इति प्रवचन" जिसने भाषा–समिति को स्वीकार कर लिया है, वचन गुप्ति को स्वीकार कर लिया है, अब उसको शैली

बनाने की क्या आवश्यकता है ? इसलिए जो भावो से उत्पन्न हो, जिनेद्र की वाणी से समन्वित हो वही प्रवचन है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं, ऐसी देशना सुनने का पात्र वही होगा जो अष्टमूल गुण से युक्त हो।

आपने जिज्ञासा प्रकट की कि उदम्बर फलो के त्याग की बात ठीक है, हम गीले नहीं खाएँगे। भो ज्ञानी! चाहे वह सूखा कलेवर हो चाहे वे माँस के टुकडे हो ध्यान रखना यह कोई सूखे केले के चिप्स नही है फिर तो कल आप ये भी कहेगे कि माँस के टुकडो को सुखा कर भी खा सकते हैं। कुछ ऐसे भी लोग है जो कच्चे आलू तो नहीं खाते हैं पर चिप्स खाते हैं, बोले रात्रि भोजन का त्याग होता है तो फलाहार कर लेते हैं। भो चेतन्य आत्माओ! जितने जीवो को पिन्ड था, वही तो सूख गया। इसलिए धर्म का पालन तो करना लेकिन उसमे कोई बहाना मत निकाल लिया करो। सुनो हरी का त्याग है और नीबू भी हरी मे आता है। कुछ लोग नीबू, केले को हरी नही मानते, क्योकि वह रग से हरा नही होता है परतु वह सत् से हरा माना जाता है। चाहे आम हो या केला हो, हरा ही है। यह जो भुट्टा खा रहे हो यदि आपका नियम, दो हरी का और दो अनाज का है तो भुट्टा एक अनाज भी हो गया और एक हरी भी हो गया। अहो! बडे चतुर हो दूध का त्याग है इसलिये मावा तो चल सकता अहो! आपने रसना इद्रिय की विजय के लिए त्याग किया था या मात्र खाने के लिए त्याग किया। जिसने गौ रस का त्याग किया वो न दूध ले सकता है, न मावा घी ले सकता है, न छाछ ले सकता है, परतु घी का त्यागी दूध ले सकता है। दही का त्यागी दूध ले सकता है पर ध्यान रखना, तुम्हारी मायाचारी वाली छाछ नही कि आपने क्या किया आपने एक ग्लास दही लिया उसमे थोडा सा पानी मिला दिया और चम्मच से घुमा दियाए लो बन गयी छाछ। भो ज्ञानी ! छाछ यानि मठा, जिसमे से मक्खन निकाला जा चुका है, वो छाछ है जो बिलकुल तरल हो चुका है, उसको ही स्वीकार करना।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना यह रूढियो का धर्म नही है, यह तात्विक सैद्धातिक एव वैज्ञानिक तत्त्वो से समन्वित धर्म है। यदि श्रमणाचार और श्रावकाचार की चर्या के अनुसार जीव चले तो रोग तुम्हारे घर मे कभी नही आएँगे। माँ जिनवाणी कह रही है, बेटा! पेट के चार भाग कर लो, मौसम के अनुसार, एक भाग मे तरल, दो भाग मे खादय तथा एक खाली। ग्रीष्म काल मे एक भाग मे भोजन दो भाग मे तरल तथा एक भाग खाली। वर्तमान मे बारिश चल रही है, ऐसे मे गरिष्ठ भोजन अर्थात् जो सामग्री आपको नही पचती है उसे भी जो खाता है, वो अभक्ष्य ही खाता है। जिनवाणी कहती है, कि आपको हलुआ नही पचता है फिर आप जबरदस्ती खाते हो तो आप अभक्ष्य खाते हो, क्योकि वह आपके शरीर को अस्वस्थ करेगा और शरीर अस्वस्थ होगा तो साधना अस्वस्थ होगी। अहो! इस पुद्गल की रक्षा करना जब तू निष्पृह भगवती आत्मा को प्राप्त न कर ले, लेकिन

राग दृष्टि से नहीं। शरीर को चलाने के लिए बहुत कुछ खाने की आवश्यकता नहीं, परतु इद्रियो की लिप्सा के लिये ससार मे बहुत कुछ खा सकते हो। भगवन् समन्त भद्र स्वामी ने लिखा है "अल्प फल बहु विघातान" अर्थात् जिसमे फल अल्प हो और विघात ज्यादा हो, बैर, मकुईया सुखा-सुखा के रख लिया, बरसो तक चलता है, अचार डाल दिया, मुरब्बा बना लिया इसमे त्रस जीव पड जाते है, मर्यादा के बाहर अचार और मुरब्बा का सेवन करता है, वह अपने आप को मॉंस एव मदिरा से अछूता न समझे। अहो! नरक के चार द्वार सधान, रात्रि भोजन, सुरापान और पर-स्त्री-सेवन ये ही तो है।

भो ज्ञानी ! जीवन मे तत्त्व को समझो और तत्त्व प्राप्ति का उपाय भी समझो। समयसार' तत्त्वज्ञान है और मूलाचार', श्रावकाचार' यह तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के उपाय है। तत्त्वज्ञान कर लिया, तत्त्वज्ञान से तत्त्वज्ञ नही बन पाओगे। पचास्तिकायो मे शुद्ध जीवास्तिकाय बनना है, सात तत्त्वो मे शुद्ध जीव तत्त्व बनना है नौ पदार्थो मे शुद्ध जीव पदार्थ, छह द्रव्यो मे शुद्ध जीव द्रव्य बनना है तो मनीषियो अशुभ भावो को एव अशुभ क्रियाओ को छोडना पडेगा। 'पचास्तिकाय" ग्रथ मे जब ग्रथकार ने नमस्कार किया भगवान का नाम नही लिया, उन्होने लिखा शुद्ध जीविस्त काया को नमस्कार। अर्हन्तो तक को नमस्कार किया, तो भगवान का नाम नही लिया, उन्होने अर्हन्तो तक को नमस्कार नही किया, शुद्ध जीवास्तिकाय' को नमस्कार किया है। आप शुद्ध 'जीवास्तिकाय' हो क्या? जबकि प्रत्यक्ष मे आप पुद्गल मे लिपटे दिखते हो, प्रत्यक्ष मे आप कर्म से बद्ध हो। भो ज्ञानी! यदि शुद्ध 'जीवास्तिकाय' की प्राप्ति करना चाहते हो तो शुद्ध परिणति का परित्याग करो। जो शुद्ध जीवास्तिकाय नही होता वह द्रव्य से भी अशुद्ध होता है, पर्याय से भी अशुद्ध है और गुणो से भी अशुद्ध होता है।

भो चेतन्य! दृष्टि रखो, कि मेरे अदर जो जीवत्त्व शक्ति है, वो शक्ति इन उदम्बर फलो के अदर भी है। औषधियाँ खा रहे हो उनमे जो जीव बैठे है वे कौन है? वे भी सिद्ध-शक्ति सहित हैं। शक्ति सर्वत्र लगाओ, जब तुम मॉंस को नहीं खा सकते है, तब दूसरो की रक्त की बोतलो को कैसे ले सकते हो? रक्त मॉस कोई दान नही है, हमारे आगम मे चार ही दान कहे हैं-औषध, अभय, आहार, शास्त्र। लेकिन औषध के नाम पर रक्त नही लिखा। पहले भी औषधियॉं थी, क्या पहले ताकत की आवश्यकता नही पडती थी? मॉं जिनवाणी कहती है आप श्रावकाचार के अनुसार चलो, भोजन भी करो, वह भी विवेक के साथ करो। सुरविज्ञान कहता है कि स्वस्थ रहना चाहते हो तो दिन के बारह बजे भोजन नहीं करना, थोडा आगे-पीछे कर लो। भोजन कर लिया और सो गये, वैज्ञानिक दृष्टि से समझो, जो भोजन करके तुरत सो जाता, उसका भोजन वैसा ही रखा रहता है पच नहीं पाता, इसलिए वह बीमार हो जाता है। इसी प्रकार इच्छानुसार मत खाया करो, भूख के

अनुसार खाया करो, जो इच्छानुसार खाएगा वह कभी निरोग नही रह सकता। जो भूख के अनुसार खाएगा वह कभी अस्वस्थ नही रह सकता।

भो ज्ञानी! भगवान अमृतचद्र स्वामी समझा रहे है 'यस्मात कषायासन हन्यत आत्मन् प्रथमयम जो कषायो से युक्त होता हैं वह पहले तो अपनी ही आत्मा का घात कर ही लेता है। क्योकि जहाँ राग होता है वहाँ हिसा होती है। तुम साग-भाजी क्यो सुखा रहे हो? क्योकि तीव्र राग लगा हुआ है। एक जगह लोगो ने कहा-हम मठा नहीं खाते, हरी और द्विदल का त्याग है, इसलिए नीबू की कढी बनी है। दूसरे ने कहा अरे! मेरा हरी का त्याग है। भाई! यह तो सूखे नीबू की बनी है। नींबू कैसे सुखाया? बोले-एक कपडा लिया, उसमे नीबू निचौडा और उसको सुखाने रख दिया, जब उतना सूख गया फिर उसी पर दूसरा नीबू निचोड दिया ऐसे दस-बारह नीबू कपडे मे निचोड दिए और जब कढी बनानी हुयी, तो कपडा को पानी मे डुबो दिया। धन्य हो! तुम्हारी महिमा इतना राग कि पर्यूषण पर्व मे कढी खाना है। अहो! राग की दशा कितनी विचित्र है? इसलिए अमृतचद्र स्वामी कहे रहे हैं-जो पॉच उदम्बर फल को सुखा लिया है, उसमे भी हिसा है, क्योकि विशेष राग है। ध्यान रखो, मत सोच लिया करो हमने भाजी सुखा ली, पत्ती सुखा ली तो वो जीव से रहित हो गयी ऐसा नहीं है। रोटी सुखा ली, फफूँद चढ रही है। अहो! इतना राग इतना लोभ। ध्यान रखो, जिनेन्द्र की देशना मे बासा भोजन को अभक्ष्य कहा गया। अब तो कहते है कि फ्रिज मे रख देगे लेकिन आपको यह ज्ञान नहीं है कि फ्रिज की कोई भी सामग्री भक्ष्य नही है, क्योंकि मर्यादा के बाहर की है उस सामग्री मे उसी की जाति के सम्मूर्छन जीव विराजे हैं। शुद्ध घृत मॉस नही है, शुद्ध दूध-जीव का द्रव्य नही है, यदिआप दुग्ध को रक्त की सज्ञा दोगे तो आप जो मल-मूत्र जाते हो, इसे क्या कहोगे। आपके शरीर मे मूत्र की नलिकाएँ भी है आप कितनी ही मशीनो से जॉच करा लो, उसमे आपको कोई भी मॉस का कण नही मिलेगा। जल की तरह दुग्ध भी शुद्ध अजैविक ही है। अहो! प्रकृति का परिणमन देखो- मॉ के ऑचल मे दूध आता है भोग भूमियो मे शेर मॉस नही खाता, वह कल्पवृक्ष से फल आदि का ही सेवन करते हैग।

भो ज्ञानी! वास्तविकता यह है कि रक्तदान से रक्षा नही होती है। सयम धारण करके समाधि कर लो, रक्षा औषधियो से नही होती औषधिया तो मात्र निमित्त है, लेकिन रक्षा तो तुम्हारे आयुकर्म से होगी। अहो! मणि, तत्र, मत्र, औषधिया काम कर जाती तो मनुष्य मरना कभी नही चाहता। इसलिए जो अभक्ष्य हैं-पॉच उदम्बर फल और तीन मकार वह बहुत ही दुष्कार है। उन आठो का त्याग कर दो, । आचार्यश्री चौहत्तरवी कारिका मे तो कह रहे है कि जिन देशना को सुनने का उसे ही अधिकार है, जो अष्टमूल गुण का धारी है। **"जिन धर्म देशनाया भवन्ति पात्राणी शुद्धधिया।"** ऐसा जीव ही जिनेन्द्र की देशना को सुनने का पात्र होता है। और शुद्ध बुद्धि वाला। इसलिए सब आज अष्टमूल गुण का नियम लेकर ही जाना उसमे छल नही करना।

'आचार से संस्कारित विचार'

कृतकारितानुमननैर्वाक्कायमनोभिरिष्यते नवधा।
औत्सर्गिकी निवृत्तिर्विचित्ररूपापवादिकी त्वेषा।। ७५।।

अन्वयार्थ.– औत्सर्गिकी निवृत्ति = उत्सर्गरूप निवृत्ति अर्थात् सामान्य त्याग। कृतकारितानुमननैन = कृत–कारित अनुमोदना रूप। वाक्कायमनोभि = मन वचन काय करके नवधा इष्यति = नव प्रकार मानी है। तु एषा = और यह। अपवादिकी= अपवादरूप निवृत्ति। विचित्र रूपा = अनेक रूप हैं।

•

धर्महिसारूप सशृण्वतोपि ये परित्यक्तुम्।
स्थावर हिसमसहास्त्रसहिसा तेऽपि मुचन्तु।। ७६।।

अन्वयार्थ.– ये अहिसा रूप धर्मम् = जो जीव अहिसा रूप धर्म को। सशृण्वन्त अपि = भले प्रकार श्रवण करके भी। स्थावर हिसाम् = स्थावर जीवो की हिसा। परित्यक्तुम् असहा = छोडने को असमर्थ हैं ते अपि = वे भी। त्रसहिसाम्= त्रस जीवो हिसा को। मुचन्तु = छोडे।

|| पुरुषार्थ देशना ||४७||

मनीषियो! इस जीव ने बहुत साधन प्राप्त किये हैं पर साधनो का होना साधन नही है। जिस साधन से साध्य की सिद्धि हो,वो ही साधन उपादेय है। जिससे हमारे साध्य की सिद्धि न हो वह हमारे लिये साधन नहीं है, यद्यपि वही साधन दूसरे के लिये साध्य की सिद्धि भी करा रहा है। इससे लगता है कि जीव की होनहार ही है कि जीव की भवितव्यता एक चाण्डाल के लिये साधन बन गये और वही बैठे एक क्षत्रिय के लिये साधन नहीं बन पाये। तो हम साधना मे दोष क्यो दे? हमारी आदत दूसरो को दोष देने की रही है, पर ध्यान रखना, मिथ्यात्व अवस्था मे कषाय की तीव्रता मे, धोखे से भी भगवान के दर्शन हो जाये तो वह भी पुण्य का ही योग है परतु उसने दर्शन किये नही, मात्र देखा और चला गया। माँ जिनवाणी कह रही है–मिथ्यादृष्टि भी सत्य जानता है। जो इन प्रतिमाओ को कभी नहीं पूज रहा है, उसने प्रतिमा बनाई हैं। समझना बात को, जिसकी प्रतिमा बनी है वह भी एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि है। पाषाण की प्रतिमा मे विराजा एकेन्द्रिय जीव है और

एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय जीव नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं परतु जो वदना कर रहा है वह सम्यक्दृष्टि है। जो पाषाण मे विराजा जीव है, उसकी आप वदना तो नही कर रहे हो, लेकिन ध्यान रखना उस जीव का तीव्र यशकीर्ति नाम कर्म का उदय है। क्योकि एक पाषाण प्रतिमा के आकार मे है और एक पाषाण तुम्हारे सडास मे लगा हुआ है। दोनो मे जीव है। यह मत कह देना कि खदान से निकल गया तो अजीब हो गया, क्योकि सिद्धान्त यह कहता कि घनाअगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना एकेन्द्रिय जीव लेता है और निगोदिया जीव की सबसे सूक्ष्म अवगाहना बनती है। निगोदिया जीव भी जब जन्म लेता है सबसे पहले आयताकार बनता है अर्थात् लबाई अधिक, चौडाई कम। द्वितीय समय मे वह जीव चतुर्कोण होता है यानि क्षेत्र कम हो गया। तृतीय समय मे वृत्ताकार अर्थात् गोल हो जाता है। ऐसा घना अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना से युक्त एक ही शिला मे पता नही कितने जीव अपना शरीर बनाये बैठे हैं। अब देखना कि एक पूज रहा है एव एक पुज रहा है, दोनो जीव हैं।

अहो! पचम काल की ज्ञानी आत्माओ! एकेन्द्रिय पाषाण मे परमेश्वर का उपचार करके तुम तीर्थकर की वदना कर लेते हो तो चेतन निर्ग्रंथो मे तुम्हे मुनि–दृष्टि नहीं दिखती है। पाषाण मे भगवान हो सकते है तो भगवानो मे भगवान जिसे नही दिखे, उसकी दृष्टि क्या होगी? यदि किसी जीव ने धोखे से भगवान देख लिये 'धोखा' शब्द याद रखना और धोखे से जिनवाणी सुन लिये ध ोखे से मुनिराज देख लिए 'दर्शन' शब्द नही, क्योकि 'दर्शन' श्रद्धा से होते हैं और 'देखना' अश्रद्धा का विषय होता है। मुमुक्षु पच परमेष्ठी के दर्शन करता है और मिथ्या दृष्टि पच परमेष्ठी को निहारता है, देखता है।

अज्ञानता से कोई पच परमगुरु को न माने, तो भो ज्ञानी! पच परमगुरु का अभाव नही है। जिसकी पच परावर्तन की दृष्टि चल रही है उसे पच परमगुरू नजर नही आते। उसे पचपरमेष्ठी कभी नही दिखेगे क्योकि दिख गये कही तो उसका परावंतन समाप्त हो जायेगा। जिस जीव ने एक बार भी पच परमगुरु के दर्शन श्रद्धा से कर लिए, उसको अर्द्धपुद्गल परावर्तन से ज्यादा भगवान भी ससार से नहीं रख सकते। सर्वार्थ–सिद्धि मे 'दृश धातु' यद्यपि देखने के अर्थ मे आती है। लेकिन मोक्ष मार्ग का प्रकरण होने से उसको श्रद्धा के अर्थ मे रखा है। अत दर्शन सम्यक्दृष्टि करता है और पच परमेष्ठी को जो देखते हैं वह मिथ्यादृष्टि होते है। जो तीर्थों को देखने जाते हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि होते है और जो तीर्थों के दर्शन करने जाते हैं, वो सम्यक्दृष्टि होते है। देखने तो प्रदर्शनी को जाया जाता है, प्रभु को नही। प्रभु के तो दर्शन करने जाया जाता है। जो दर्शन करने जाता है वो दर्शन ही करता है। जो देखने जाता है वो देख के ही आता है। जब एक सम्यक्दृष्टि जीव अरहत देव के गुण पर्याय को देखता है तो वह दर्शन करता है। 'दृश' धातु देखने के अर्थ मे भी

आती है और 'गम' धातु गमन अर्थ मे आती है और ज्ञान अर्थ मे भी आती है।

भो ज्ञानियो! पाषाण में अरहत देव को देख रहे हो, तो जो उदम्बर फल है इनमे कौन विराजा है? आपको सम्मेद शिखर की मिट्टी मे सिद्ध भगवान नजर आ रहें हैं तो केचुए की पर्याय मे सिद्ध क्यो नहीं दिख रहे? भगवान की पूजा करने के लिए वाहन पर बैठ कर मदिर मे गया, उध ार नीचे भगवान जा रहे हैं, पर उन भगवान पर कोई ध्यान नहीं हैं। पाँच मिनिट पहले चल देते, ईर्यापथ से चलते। मनीषियो! ध्यान रखना, कम से कम जिनालय मे तो पैदल आ जाया करो। जिस अहिसा की बात 'अमृतचद स्वामी' कर रहे हैं–उसे समझो, कि एक ओर आप पाषाण मे स्थापित परमेश्वर की वदना कर रहे हो और दूसरी ओर उस पर्याय मे बैठे भावी भगवान को तुम कुचलते चले जा रहे हो। अहो! बोले–मेरे भाव थोडे मारने के थे, भगवान की वदना के भाव थे, अच्छी बात है। पर एक बात और बता देना कि वध मात्र भावो से होता है कि मन वचन काय से होता है? यदि भावो से सब कुछ आप कर लेते हो, तो आज से भावो का भोजन करना शुरू कर देना।

भो ज्ञानी! विवेक लगाओ हमारे पास दो बगीचे हैं एक देह है–एक देही है पर पानी बहुत कम है। यदि मै आत्म–उद्यान मे जल देता हूँ तो देह का उद्यान सूखता है और देह के उद्यान मे नीर देता हूँ तो देही का उद्यान सूखता है। मनीषियो! यहॉ यह देख लो कि तुम्हारी दृष्टि मे कीमत किसकी है? आयु कर्म का नीर अल्प है। देही मे दोगे तो परमेश्वर बन जाओगे और देह मे दोगे तो नरकेश्वर बन जाओगे। अब जो आप की इच्छा हो वह कर लेना। आचार्य भगवन् उमा स्वामी कह रहे हैं भाव सुधार लेते तो तेरी भवितव्यता निर्मल हो जाती। मुमुक्षु भाव, भव की बाद मे बात करता है पहले भावनाए सुधारता है। तुम्हारी भावनाये निर्मल हैं, इस बात को तुम कैसे प्रमाणित कर सकते हो? भोजन होटल मे चल रहा है, रात्रि मे भोजन चल रहा है, रात्री मे काजू किशमिश चल रहा है। फिर भी कहता है कि भाव निर्मल हैं और भावनाये निर्मल हैं। अहो! परमात्मा बनता कैसे है ? भावो से बनता है कि भावनाओ से? चाहे दर्शन की बात करो, चाहे ज्ञान की बात करो, चाहे कोरे सयम की करो, लेकिन जब तक कि तीनो की एकता नही हो रही है तब तक मोक्षमार्ग सभव नही है। आचार्य अमृतचद स्वामी' ने बहुत विवेक के साथ लिखा है कि ये मुमुक्षु बेचारे भटक ना जाये शुद्धि की बाते करते–करते वह आचार को अशुद्ध करके बैठ गये। कभी कल्याण नही होगा। ध्यान रखना भारतीय सस्कृति मे विचारो की पूजा बिल्कुल नहीं की गयी है, विचार पूज्य नही है पर आचार से समन्वित विचार हैं, तो पूज्य हैं।

भो ज्ञानी! 'गौतम स्वामी' को सामान्य जीव मत समझ लेना, वे बहुत बडे विचारक थे। उनके पाच सौ शिष्य थे, परतु आचारक नहीं थे और जब तक आचारक नहीं थे तब तक किसी जैन ने नमस्कार नहीं किया। जिस दिन वही विचार आचार मे ढल गये तो आज भगवान महावीर स्वामी

के बाद 'मगलम् भगवान वीरो, मगलम् गौतमोगणी'' गौतम स्वामी को दूसरे स्थान पर रखा है, क्योकि आचार से समन्वित हो गये तो उनके विचार भी वन्दनीय हो गये। अहो! आचार–विचार हीन व्यक्ति का ज्ञान, ज्ञान नहीं है, चरण–चरण नही है, विचार–विचार नही है। इसीलिए ध्यान रखना कि आज तक हमने जिनवाणी को बहुत सुना है, विचारो को बहुत सुना है, अब विचारो को विचारना है। पर बेचारे विचारो को विचार नहीं पा रहे हैं, इसीलिए आचार से शून्य हो जाते हैं। आचार्य योगेन्द्रदेव सूरी ने परमात्म प्रकाश मे बडा दयनीय शब्द लिख दिया–''अन्तरग मे विषयो की वासना चल रही है, बाहर मे लोकलाज सता रही है, इसीलिये बेचारे दीन ससारी और दीर्घ ससारी मनुष्य सयम को धारण नहीं कर पाते। प्रभु ने दीन कह दिया, फिर दीर्घ कह दिया।

मनीषियो! सिद्धान्त ध्यान रखना कि–अभव्य जीव मे भी भगवान हैं। फिर वो अभव्य कैसा ? भव्य के भगवान तो प्रकट हो जायेगे, लेकिन अभव्य के भगवान कभी नही प्रकट होगे इसीलिए अभव्य है, पर भगवत सत्ता तो उसके अन्दर भी है। जिसके केवलज्ञान पर आवरण पडा हुआ है पर कभी हटेगा नही, उसे अभव्य कहते हैं और जिसके केवलज्ञान पर का आवरण तो पडा है पर नियम से हटेगा, उसका नाम भव्य है। भो ज्ञानी! ध्यान रखना, कभी अपने आप को अभव्य मानना भी मत। अभव्य वे है जिनको श्रुत मे प्रीति नही है, जिनदेव मे प्रीति नही है जिनवाणी मे और निर्ग्रंथ धर्म गुरु मे प्रीति नही है परन्तु जिनका इन सब मे चित्त अनुरक्त है वे भावी भगवत ही हैं। इसलिए भो मनीषियो! उत्साह भी भगवत्ता को उठा देता है। जब एक क्षपक/श्रमण रात्रि मे कह उठा था कि प्रभु पानी चाहिए, भूख लगी है, प्यास लगी है। आचार्य शाति सागर महाराज पहुँच गये। नमोस्तु! ऑख खुली तो क्षपकराज ने देखा कि प्रभु नमोस्तु कर रहे हैं। भगवन्! आप नमोस्तु मुझे कर रहे है? बोले–मैं तो यही खडा हूँ, आप तो सल्लेखना ले रहे हो, आप तो परमतीर्थ हो। भगवती आराध ाना' मे लिखा है सल्लेखना चाहे छोटे की हो रही हो, चाहे बडे आचार्य महाराज की हो रही हो यदि किसी जीव के सल्लेखना देखने के भाव नहीं आते हैं तो समझना कि उसकी सल्लेखना के प्रति प्रीति नही है, उसे समाधि के प्रति अनुराग नही है। यदि आप सम्मेद शिखर की वदना को जा रहे हो, उसको निरस्त कर देना, परतु समाधि चल रही हो तो क्षपक के दर्शन पहले कर लेना, क्योकि तीर्थ पुन मिल जायेगा, यह तीर्थ गया सो चला जायेगा। ध्यान रखना, उस समय आचार्य महाराज ने जैसे ही नमोस्तु किया और बोले–पानी चाहिए? नही चाहिए। देखो, नमोस्तु मे कितनी शक्ति है कि मना कर दिया। आचार्यश्री बोले–हे मुनिराज! रात्रि–काल का प्रायश्चित कर लो, कायोत्सर्ग कर लो, त्याग कर दो। हाँ प्रभु! त्याग है। अहो! स्थितीकरण के दोनो उपाय हैं, कभी डाटना तो कभी पुचकारना और जब पुचकार के काम चल जाये, तो डाटने की कोई आवश्यकता नही है। भो ज्ञानी! मेरी समझ मे तो नहीं आता कि मनुष्यो को डाँटा जाये, क्योकि मनुष्य की परिभाषा बहुत ही उत्कृष्ट है। जो मननशील हो चितनशील हो, मनन ही जिसका धर्म है चितन ही

जिसका धर्म है और जो मनु की सतान है उसे मनुष्य कहा है। यदि मनुष्य को बार--बार डाटा जाये, फटकारा जाये तो वह मनुष्य तो है नहीं, करूणा का पात्र है। यद्यपि मनुष्य की खोल मे तो है, पर परिणति तिर्यंच है, क्योंकि जो घोर अज्ञानी हो, पाप बहुल और माया से भरा हो, उसका नाम तिर्यंच है। आज घर मे जाकर चितवन करना है कि हम मनुष्य है कि तिर्यंच। इसीलिए 'कारिका' मे 'अमृतचद्र स्वामी' यह कह रहे हैं कि--मननशील हो तो कुटिलता छोड दो। ध्यान रखना अभी विवेक काम कर रहा है, बुद्धि काम कर रही है और पुण्य काम कर रहा है इसलिए सुकृत्य के काल में सुकृत्य कमा लो, दृष्कृत्य के काल मे सुकृता के भाव नहीं आते हैं। सिद्धात का नियम है आयुबध के काल में अशुभ परिणाम जिनके होगे, जब उनका मृत्यु का समय आयेगा, नियम से सयम छोड देगा और जो जीवन भर आपको पाप मे लगा दिखा, परतु उस के आयुबध ा के काल मे परिणति निर्मल थी और मृत्यु का काल आयेगा तो सब पाप छोड देगा। कहेगा--मेरी सल्लेखना करा दो ऐसे भाव करता है। यह आपके जीवन की निर्मल घडी है। अपने--अपने की निहारना।

भो ज्ञानी! आपको उत्कृष्ट मार्ग यही है, नव कोटि से हिसा का त्याग होना चाहिये लेकिन अहिसा रूपी धर्म को अच्छी तरह से सुनकर के भी जो स्थावर हिसा को नही छोड पा रहे हो तो उन्हे त्रस हिसा तो छोड ही देना चाहिए। गृहस्थो के लिये कह रहे है आप भोजन बनाते हो, व्यापार आदि करते हो इसमे एकेन्द्रिय का घात हो रहा है, लेकिन वहाँ भी ध्यान रखना। नल खोल दिया तो पानी बह ही रहा है, अग्नि जल रही है तो जल ही रही है। किसी जीव का न वध ा करना न करवाना, न अनुमोदना करना, न मन से करना, न वचन से करना न शरीर से करना, कृतकारित अनुमोदना से नवकोटि से त्याग किया है, वही यथार्थ मार्ग है। यदि आपसे उतना पालन नही हो सके तो आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जितना आपसे बने, उतना ही आप पालन करे, उसमे प्रमाद न करे। ऐसा भी न कहे कि थोडा त्याग है अत त्यागी नही हो। अहो! किसी के विराध ाक और विदारक भी मत बनो। इतने स्वच्छदी मत हो जाओ कि जिसमे अगली पर्याय का भी ध यान न रहे। ध्यान रखना जो आपको पुण्य के योग से सम्पत्ति मिली, सुख मिला, सुविधाएँ मिली, उसमे इतने तल्लीन मत हो जाओ कि आगे खोखले के खोखले रह जाओ। यहाँ तो आप पुण्य से भर कर आये थे और यहा से पाप से भर के चले गये। इसीलिए जितने पुण्य से भर कर आये थे, उससे भी अधिक भर कर जाओ, जबकि उत्तम तो यही है कि दोनो से खाली होकर जाओ। यदि नही जा पा रहे हो तो कम से कम पाप के मल से भरकर तो मत जाना।

"परम रसायन है अहिंसा"

स्तोकैकेन्द्रियघाताद्गृहिणा सम्पन्नयोग्यविषयाणाम्।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम्।। ७७।।

अन्वयार्थ – सम्पन्नयोग्यविषयाणाम् = इन्द्रियो के विषयो का न्यायपूर्वक सेवन करने वाले। गृहिणाम्=श्रावको को। स्तोकैकेन्द्रियघातात् = अल्प एकेन्द्रिय घात के अतिरिक्त। शेषस्थावरमारणविरमणमपि = अवशेष स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवो के मारने का त्याग भी। करणीयम् भवति = करने योग्य होता है।

अमृतत्वहेतुभूत परमहिसारसायन लब्ध्वा।
अवलोक्य बालिशानामसमजसमाकुलैर्न भवितव्यम्।। ७८।।

अन्यवार्थ अमृतत्वहेतुभूत = अमृत अर्थात् मोक्ष के कारणभूत। परम अहिसारसायन = उत्कृष्ट अहिसारूपी रसायन को। लब्धवा = प्राप्त करके। बालिशानाम = अज्ञानी जीवो के। असमजसम् = असगत बर्ताव को। अवलोक्य = देखकर। आकुलै न भवितव्यम् = व्याकुल नही होना चाहिये।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥४८॥

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने परम तथ्य को प्रकट करने वाली परम अहिसा का कथन किया है कि विश्व मे यदि कोई धर्म, कोई चारित्र, कोई सयम है तो मात्र अहिसा ही है। जितना व्याख्यान है जितनी चर्याये हैं क्रियाये हैं सब अहिसा के लिए हैं। चाहे वह लौकिक दृष्टि हो परमार्थ दृष्टि हो अथवा नैतिकता की दृष्टि हो, सभी अहिसा की दृष्टि है। अत द्वादशाग का सार एकमात्र अहिसा है। भो ज्ञानी! कोई जीव शरीर से हिसा करता है, कोई वचन से, कोई बैठे–बैठे मन से ही कर लेता है। जगत मे वचन के हिसक कम हैं, तन के हिसक भी कम हैं, पर मन के हिसक बहुत ज्यादा हैं, क्योकि वचन और तन से हिसा करेगे तो पकडे जायेगे, लेकिन मन की हिसा इतनी विचित्र होती है कि क्षण मे विश्व के प्राणियो के घात के परिणाम कर लेते हैं। मन द्वारा एक समय मे अनत जीवो के वध द्वारा मनुष्य पापस्वरूप बध को प्राप्त कर लेता

है। ध्यान रखो, किसी का मरण तो जीव के आयुकर्म के क्षय से ही होता है, लेकिन आपका बध आपकी परिणति से ही होगा। मनीषियो! जब हम भावों से हिसा कर सकते हैं, तो भावो से अहिसा भी तो कर सकते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का बधक जीव भी शरीर से उतने जीवो की रक्षा नही कर पाता है, जितनी परिणामो से करता है। अविरत–सम्यक्दृष्टि जीव भी मन से सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बध कर लेता है, जबकि महाव्रती बनकर तदरूप भावना नहीं भा पाता है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि जब तक तुम्हारे जीवन मे तीव्र पुण्य–प्रकृति काम नहीं करेगी तब तक पुण्य करने का परिणाम भी नहीं होगा और किसी जीव की रक्षा के भाव भी नही आयेगे, खाली बैठा रहेगा, गुनगुनाता रहेगा, यहाँ–वहाँ की कहानी–कथाओ पर दृष्टि चली जायेगी। पर इतना पुण्य ही नहीं होता कि हम धर्म का सोच पाएँ। अरे! आप भोजन मे, निहार मे यात्रा मे कोई काम करते समय सोचते हो, जब आप घर मे होते हो, ऑफिस मे होते हो तब भी सोचते हो। तीर्थंकर भी इतना ही तो सोचते हैं। मदिर जी से आप जायेगे तो रास्ते मे कोई काम करते चले जाते हो। वह समय आपके पास था या नही? लेकिन लोगो ने यह समझ लिया कि धर्म याने मदिर मे बैठेगे, तभी होगा। अरे! चाहे श्मशान हो, चाहे मदिर सभी तेरे धर्म का स्थान है। जिनवाणी कहती है कि मुनियो के विहार के समय उनका अदर चैतन्य–विहार होता है। अहिसा धर्म के लिए निर्ग्रंथ योगी पैदल चलते हैं, और चैतन्य–विहार मे निज–धर्म के लिए चलते हैं। आप लोग रुके हो इसलिए रुके हो, विहार करने लगो तो विहार हो जायेगा। रुके मे राग होता है रुके मे मल होता है, अत कीचड हो जाता है। पर जो प्राणी विहार करता है वह निर्मल होता है। ऐसे ही चैतन्य विहार मे जो लोग होते हैं, वे निर्ग्रंथ होते हैं। अत धर्म के लिए स्थान की खोज नही करना। चिन्तन तो चलता रहता है। अरे! गाडी को आगे ले जाओ, चाहे पीछे ले जाओ डीजल, पेट्रोल तो जलता ही है। ऐसे ही भो ज्ञानी आत्माओ! चाहे परिणति को शुभ मे ले जाओ अथवा अशुभ मे वीर्य का क्षय तो होता ही है, आयु–कर्म का क्षय तो होता ही है और क्षयोपशम का व्यय तो होता ही है। अत धर्म को कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। दीपक के प्रकाश के लिए कौन–सा प्रकाश लाओगे? तुम्हारे ज्ञान–दर्शन की खोज करने कौन–सा ज्ञान दर्शन लाओगे। जो धर्म की खोज करे उसने धर्म को जाना ही नही। धर्म तो धर्म होता, है, खोज तो धर्म की क्रियाओ की, की जाती है। मदिर बना रहे हो, जिनालय बनाकर, पूजा कर रहे हो, यह धर्म की खोज नही है। यह धर्म की क्रियाओ की खोज है, जिससे हम अपने धर्म को पा सके। धर्म कही गया ही नही है। आप ही बताओ दुग्ध गरम है दूध को ठडा करने के लिए आप पखा कर रहे हो। ऊष्णता तो पर के सयोग से है। जो विकृति आई उस विकृति को हटाने के लिए पखा चल रहा है। अहो मुमुक्षुओ! धर्म की खोज के लिए धर्म नही होता, अधर्म को भगाने के लिए हम धर्म की क्रियाये करते हैं। जो

मेरा धर्म नहीं है उसको तुमने लपेट लिया है। इसलिए आप उसको हटाने का पुरुषार्थ कर रहे हो। धर्म को कभी खोजना मत, धर्म तो अपने पास है। प्रत्येक जीव के पास धर्म है। अधर्म किसी के पास नही। कुछ लोग शास्त्रो मे तो कुछ तीर्थों मे धर्म खोज रहे हैं। जबकि जिनवाणी कह रही है कि तुम धर्म को खोज रहे हो या खो रहे हो। तीर्थंकर की भूमि का परिचय वही देगा जो यहाँ से रत्नत्रय धर्म को लेकर जायेगा। इसलिए धर्म के लिए स्थान की खोज वह करेगा जिसने धर्म को समझा नहीं। एक जगह एक सज्जन ने कहा—महाराजश्री हम ध्यान—केद्र बना रहे है। अरे! ध्यान यदि केद्र पर चला जाये तो ध्यान—केद्र बनाने की आवश्यकता ही नही। ध्यान केद्र तो पूरा ढाई द्वीप है। अन्यथा जितने निर्वाण को प्राप्त हुए है उन सबको पहले ध्यान—केन्द्र बनाना पडता लेकिन तेरी विशुद्ध आत्मा ही ध्यान केद्र है। जिसमे निज ही ध्याता है और निज का ही ध्यान होता है। अत कोई स्थान खोजने की आवश्यकता नही, क्योकि तीर्थ बाद मे बने हैं तीर्थंकर पहले हुये हैं 'जे गुरु चरण जहॉ धरे, जग मे तीरथ होए' अर्थात् निर्ग्रंथों ने तीर्थ नही बनाये, निर्ग्रंथ के जहॉ चरण पड गये वहॉ तीर्थ बन गये। तीर्थंकर भगवतो की देशना जहॉ खिरी वह तीर्थ बन गया, जहॉ साधना की वह तीर्थ बन गया और जहा निर्वाण को प्राप्त हुये वह तीर्थ बन गये। इसलिए अब बताओ, कौन से क्षेत्र को अतीर्थ कहे? भारत के कौन—से प्रदेश पर तीर्थंकर भगवतो का बिहार नहीं हुआ, निर्ग्रंथो का बिहार नही हुआ? तथा तीन लोक मे ऐसा कौन—सा प्रदेश है जहॉ केवली भगवत की केवली—समुद्घात के समय वर्गणाये शरीर के आत्म—प्रदेश स्पर्शित न हुए हो? अतएव तीनो लोक तीर्थ है। आप एक काम कर लो, जहॉ पाप करने का निर्जन स्थान मिले उसे खोजो, लेकिन जहॉ तीर्थंकरो भगवतो के चरण, उनकी वर्गणाये और प्रदेश फैले हो ऐसे क्षेत्र को छोड देना। इसलिए ध्यान रखना, पुण्य—क्षेत्र खोजने की आवश्यकता नही है। पुण्य—क्षेत्र तो सर्वत्र है। आज पाप क्षेत्र खोजने की आवश्यकता है जहॉ तुम पाप कर सको इतना गभीर चितवन जब तक नहीं ले जाओगे तब तक पाप से परिणति नही हटेगी, क्योकि आप लोग सोच लेते हो कि यहॉ कोई नही देख रहा यह तो अशुद्ध स्थान है। अरे! जिस दिन तुम्हारे घर मे निर्ग्रंथ गुरु के चरण पडे, उसी दिन तुम्हारा घर तीर्थ हो चुका।

भो ज्ञानी! शौक के पीछे इतना ध्यान नही रख पा रहा है कि कितना शोक मुझे आगे सहन करना होगा। शोक से बचना है तो शौक करना छोड देना। ध्यान रखना, ये ठीक नही कि इस उत्तम पर्याय का तुम विघात कर रहे हो। पुरुष बनकर रहो, पुरुषार्थ करो, श्रेष्ठ काम करो। भगवान कह रहे हैं—हिसा के भाव मत बनाना, स्त्रियो से कभी मत झगडना। झगडा करने से तनाव बढता है और तनाव से पाचन—ततु काम नहीं करते, उसका भोजन नहीं पचता, खाने को मन नहीं करता, बीमारियॉ होती हैं। पहले शरीर बीमार हुआ, फिर मन बीमार हुआ, फिर धर्म भी बीमार हो गया। इसलिए ऐसे काम मत करो। जिनवाणी मे कितना अच्छा लिखा है—मन शुद्धि वचन शुद्धि

काय शुद्धि आहार–जल शुद्ध है। इन चारो शुद्धियो का ध्यान रख लो। आज से कषाय मत करना झगड़ना मत। आचार्य भगवन् गृहस्थो की समुचित व्यवस्था बता रहे हैं। यदि एक बाल्टी पानी से काम चल रहा हो तो टकी का उपयोग मत करो, विवेक से काम करो। तुम्हे आरती करना है तो उतना ही घी का उपयोग करो। आपने घी भर कर रख दिया और पखियॉं आकर गिर गई, अत हिसा हो रही है। अर्हन्त भगवान हमारी पूजा से न तो प्रसन्न होते हैं और हमारी निदा से नाराज भी नहीं होते। पूजा तो अपने चित्त को पवित्र करने के लिए है और दुष्ट कर्मों का शमन करने के लिए आराधना है।मनीषियो! यह मत सोचना कि हम बहुत घृत भर देगे तो भगवान और खुश हो जायेंगे। यह विवेक रखो। बरसात चल रही है, जीव आ रहे हैं, खत्म हो रहे हैं। ठीक है, निषेध न करो पर विवेक तो रखो। आराधना करो, भक्ति करो, पूजा करो, उसका निषेध नही, लेकिन विवेक और मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखो।

भो ज्ञानी! आजकल एक नई प्रथा शुरू हो गई है कि भगवान के सामने बल्ब जलता है। अहो ज्ञानियो! अहिसा की बात करते हो तो विद्युत जहॉ से उत्पन्न होकर आ रही है उसमे कितने जीव मर रहे हैं? तुमने बल्ब जला दिया और रात भर जल रहा है। तनिक विवेक तो रखो सुबह आपने वेदी खोली तो उसमे कितने सारे कीडे–पतगे मिले आपको ? यही तो हिसा है। मार्ग को मार्ग रहने दो उन्मार्ग मत बनाओ, जैसा आगम मे मार्ग है वैसा रहने दो। अगर इतिहास की खोज की जायेगी कि जैन दर्शन कब से है? तुमने प्राचीन ग्रथ अलमारी मे बद करके रख दिये। सस्कृत की पूजाये, प्राकृत की पूजाये आप लोग पढते नही हो। सब की हिन्दी कर डाली। वे सस्कृत की पूजाएँ, दस धर्म की पूजाएँ आप लोगो ने पुराने लोगो से सुनी होगी। जब वे दस धर्म की पूजाएँ सस्कृत मे करते थे तो ऐसे मदिर गूजता था, भले समझ मे नही आये, लेकिन बडा अच्छा लगता था। अब कोई हिसक अनाचारी है और उसके पास खूब धन भरा है, तो बहुत सारे धर्मात्मा ऐसी विभूति को देख कर विचलित हो जाते है। आज जिनके घर मे हिसक काम चल रहे हैं और वे सम्मान पा रहे हैं। अहो! यह हिसा का सम्मान नही है, यह हिसा से धर्म नही आ रहा, बल्कि इनके पूर्व पुण्य का उदय चल रहा है। इसलिए आप कही यह मत सोच बैठना कि हमारे अच्छे काम करने से पैसा नही आता तो हम भी बुरा काम करे। इसलिए आचार्य भगवन् कह रहे है कि ऐसे परम अहिसा रसायन का पान करमा अमृत का हेतु भूत है। अत अहिसा रसायन का पान करो। भ्रम मे मत पड जाना कि हिसक/पापी बहुत सुखी देखे जा रहे। वे हिसा से सुखी नही, वे पूर्व के पुण्य के योग से सुखी हैं। हिसा का फल उनको नियम से भोगना ही होगा। कहावत है– 'एक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घर दिया न बाती''

'धर्म देवता के निमित्त की गई हिंसा भी हिसा ही है'

सूक्ष्मो भगवद्धर्मो धर्मार्थं हिसने न दोषोऽस्ति।
इति धर्म मुग्ध हृदयैर्न जातु भूत्वा शरीरिणो हिस्या ।।७९।।

अन्वयार्थ – भगवद्धर्म = परमेश्वर कथित–भगवान का कहा हुआ धर्म। सूक्ष्म = बहुत बारीक है। धर्मार्थं हिसने = धर्म के निमित्त हिसा करने मे। दोष नास्ति = दोष नही है। इति धर्ममुग्ध हृदयै = ऐसे धर्म मे मूढ अर्थात् भ्रम रूप हुए हृदय सहित। भूत्वा = हो करके। जातु = कदाचित् शरीरिण न हिस्या = शरीरधारी जीव नही मारने चाहिये।

धर्मो हि देवताभ्य प्रभवति ताभ्य प्रदेयमिह सर्वम्।
इति दुर्वि वेककलिता धिषणा न प्राप्त देहिनो हिस्या ।।८०।।

अन्वयार्थ – हि धर्म = निश्चय करके धर्म। देवताभ्य प्रभवति = देवताओ से उत्पन्न होता है। इह = इस लोक मे। ताभ्य सर्वम् प्रदेयम = उनके लिये सब ही दे देना योग्य है। इतिदुर्विवेककलिता = इस प्रकार अविवेक से ग्रसित। धिषणा = बुद्धि को। प्राय = पाकर के। देहिन न हिस्या = शरीर धारी जीव नही मारना चाहिए।

।। पुरुषार्थ देशना ।।४९।।

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने अध्यात्म सिद्धान्त की गहराइयो को स्वय लख–लख के लिखा है। भो ज्ञानी! अपनी कृति को अमरत्व देना चाहते हो तो पहले लिखो नहीं लखो। अहो! धर्म की पुस्तक लिखना बहुत सरल है लेकिन धर्म की पुस्तक का जीवन जीना बहुत महान है। हमारे आचार्यों ने पहले धर्म की पुस्तक को बनकर देखा है, फिर लिखा है। इसलिए आचार्य कुदकुद देव ने समयसार' जी की पॉचवी गाथा मे स्पष्ट लिखा है कि मैं जो कथन कर रहा हूँ वह मैंने स्वानुभव किया है, आत्मा की शान्ति का उपाय एकत्व विभक्त स्वभाव ही है।

तं एयत्त विहत्त दाएह, अप्पणो सविह वेण । ५। (स सा)

भो ज्ञानी! जिस समय आपके परिणाम प्रभु वन्दना के हो, जिनवाणी सुनने के हो गुरुओ

के पास बैठने के हो, समझ लेना मेरी लेश्या पीत है। पीत लेश्या प्रेम उत्पन्न कराती है, परिणामो को निर्मल बनाती है। ये अशुभ नहीं शुभ लेश्या है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि अग्नि आप को प्रकाश दे रही है और पीत सोना भी आपको प्रकाशित कर रहा है। सोने को इतना पीलत्व भाव देने वाली अग्नि है। हे चेतन्य! तुझे पीला करने वाली पीत लेश्या ध्यान की अग्नि है। कही साने–चॉदी मे खो मत जाना लिखना हो तो लख के ही लिखना। किसी भी आचार्य ने यह नही लिखा कि मैं दूसरो के लिए लिख रहा हूँ, प्रत्येक आचार्य ने पुस्तक के अन्त मे यही लिखा–'परिणाम शुद्धर्थम् विषय कषाय वचनार्थम्' विषय कषायो से बचने के लिए और परिणामो की विशुद्धि के लिए मैं ग्रथ का सृजन कर रहा हूँ। मनीषियो! जिस पदार्थ से स्वय की परिणति मे निर्मलता न हो वह दूसरे की परिणति को निर्मल कैसे करायेगा? हमारे परिणामो मे जो निर्मलता उत्पन्न करा सकता है वह दूसरे के परिणामो मे भी निर्मलता का हेतु बन सकता है। दिगम्बर आचार्यों की शैली तो देखो, पहले अनुभव किया अनुभव सिद्ध करके जो पदार्थ आपको जिसने दिया है उसके प्रति आपको सहज विश्वास होता है। निर्ग्रंथो की वाणी पर इसीलिए विश्वास होता है, क्योकि उन्होने लायी हुई नही दी, वेदन के बाद ही लिखा है। आचार्य कुन्दकुन्द देव कह रहे है मैने अनुभव करके कहा है– कि एकत्व–विभक्त चिन्मय–चैतन्य की जो दशा है, वही निर्मल है। वही लोक मे सबसे सुन्दर है, एकत्व मे कोई विसवाद नही होता, द्वैत मे ही विवाद होता है अद्वैत मे कोई विवाद नही है। इसीलिए सबके बीच मे रहना परन्तु वेदन एकत्व का ही करना। यदि आप सबके साथ रह करके सब को अपना मान बैठे तो आचार्य अमृतचद स्वामी फिर कहेगे कि हिसा समाप्त होने वाली नही है, क्योकि पर मे परिणति को ले जाना ही हिसा है।

भो ज्ञानी! स्वानुभव करके कोई भी हिसा नही कर पायेगा। मुनिराज ने चोर को सोते समय वध नही करने का नियम दिलाया। आप भी नियम ले लेना कि हम सोते हुए किसी का वध नही करेगे, जागृत होकर करेगे। तुम निद्रा मे नही सोये हो मोह राग द्वेष मे सोये हो, क्योकि निद्रा का सोने वाला इतना वध नही कर पाता, जितना राग–द्वेष का सोया हुआ व्यक्ति वध करता है। अत वध करने के पहले तनिक भी सवेदना को जन्म दे देना कि मै वधिक हूँ, मै हिसक हूँ। लोक मे हिसक की कितनी प्रशसा होती है ? जिसका मै वध कर रहा हूँ उसकी वेदना कितनी हो सकती है ? मै उसके प्राण हरण करने तो जा रहा हूँ, क्या मै किसी को प्राण भी दे सकता हूँ? मनीषियो! जब तुम उत्तर प्राप्त करोगे तो तलवार मे वार नही दिखेगा तुम्हे भेद विज्ञान मिलेगा कि मै एक सिद्ध प्रभु के ऊपर तलवार उठा रहा हूँ। मैं भी तो सिद्ध शक्ति से सम्पन्न हूँ। अहो! प्रभु पर वार कैसा? अत वध करने के पहिले सवेदना को जन्म जरूर दे देना।

भो ज्ञानी! अक्सर हिसक विभूति सम्पन्न देखे जा रहे हैं। यदि वैभव हिसा का फल हो

गया तो अहिसा का फल क्या होगा? नरक की प्राप्ति किसको होगी ? मनीषियों! यह श्रमण सस्कृति है यहाँ तलवार का वार तो दूर, तलवार का विचार करना भी तुम्हारे लिए हिसा है। तलवार मकान मे रखना भी हिसा है, क्योकि रखी क्यो है? उद्देश्य क्या है? जिस आगम मे यह लिखा हो कि प्रभु की भक्ति के परिणाम कर लेना भी शुद्ध उपयोग की हिसा है, उस आगम मे किसी जीव का वध करने को अहिसा कैसे कहा जा सकता है? जिनवाणी कह रही है कि तुम किसी से यह भी मत कहो कि आपने लम्बा शब्द बोल दिया, क्योकि उस शब्द को सुन कर उसके हृदय मे ठेस पहुँच गई अगर तुम्हे समझाना है तो धीरे से कहो, जोर से बोलने मे मर्म भेदी शब्दो का उपयोग कर देना तो महा हिसा है। कभी–कभी आप किसी का वध नहीं करना चाहते परतु उसको, बिना मारे भी नही छोडना चाहते हो, तो एक ही उपाय है कि उसके सयम के बारे मे उसके चारित्र के बारे मे उससे ऐसे शब्द बोल दो कि वह कभी जीवन मे सिर नही उठा पायेगा, क्योकि बोली गोली से ज्यादा कठोर होती है।

हे भावी भगवन्त आत्माओ! महापुराण मे लिखा है कि बडी मछली छोटी मछली को निगल रही है परतु उस मछली को ज्ञान नही है कि मेरे सामने मगरमच्छ है। हे छोटी मछलियो! तुम मत घबराओ परिणाम खराब करके भाव हिसा मत करो। क्योकि द्रव्य हिसा करने की ताकत तुम्हारे अन्दर है नही। अत भाव हिसा करके तुम सातवे नरक का बध मत कर लेना। आप तन्दुल मच्छ मत बन जाना क्योकि राघव–मच्छ तो मछली खाकर नरक जा रहा है, तुम खाने की सोच–सोच के नरक जा रहे हो। खजुराहो के म्युजियम मे प्रत्येक वेदिका पर एक–एक टेलीविजन सेट है आप सोचो कि कोई नही देख रहा धीरे से एक प्राचीन सिक्का निकाल लूँ अथवा कोई प्रतिमा जेब के अदर रख लूँ। भो ज्ञानी! तुम क्या कर रहे हो, बाहर सब दिख रहा है। हो सकता है खजुराहो मे लगे टेलीविजन कैमरे फैल हो जाये, लेकिन केवली के ज्ञान का कैमरा इतना विशाल है कि तुम कमरे के अदर कमरे मे छिपकर कितने ही गुप्त कृत्य कर लेना वहाँ जैसे ही तुमने स्पर्श किया उन कर्मो ने बाध लिया। केवली के कैमरे मे यह भी झलक रहा है कि तुम क्या सुन रहे हो और क्या करने की सोच रहे हो। मोहनीय कर्म राजा के सैनिक चारो ओर फेल हुये हैं वे तुरन्त तुझको वही पकड लेगे।

भो ज्ञानी! जो कर्मो से दबे होते है उनकी कोई जय नही बोलता है। तीर्थंकर महावीर स्वामी की आज तक क्यो जय बोल रहे हैं, क्योकि उन्होने कर्मो को दबा दिया था। इसलिए कभी किसी को दबाने सताने का भाव भी मत लाओ क्योकि वह कम से कम मुझे समता का पाठ तो सिखा रहा है। अरे! जितना सुन रहे हो शताश भी तुमने अनुशरण कर लिया तो आप पचम काल से क्या छठवे काल से भी बच जाओगे, अन्यथा आगे की भूमिका का भी ध्यान रखना।

सोचो पचमकाल के बारे मे, हम लोग कितने हीन पुण्यात्मा है। हमारे सामने विद्याधर नहीं आते, वैमानिक देव नहीं आते इनका अभाव हो गया। पचम काल मे जीव का इतना पुण्य नही है कि कोई ऋद्धीधारी मुनिराज तक नहीं हैं, कोई अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, केवली भी नही है, लेकिन फिर भी हम खुश हैं। हमारे पास देव–शास्त्र–गुरु तो मौजूद है, श्रद्धा तो मौजूद है, भो ज्ञानी! यह बीज है पर उसे मिट्टी भी तो चाहिए है, भूमि नही है तो बीज क्या करेगे ? सयम नही है तो श्रद्धा क्या करेगी ? क्योकि श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र के अभाव मे शिवमगचारी नही होगा। इसलिए अहिसा की दृष्टि रूढी दृष्टि बनाकर चलना। अहिसा कहने की आवशकता नही प्रत्येक हृदय ही अहिसामय है। बस इतना ही ध्यान रखो, आप अपने साथ जैसा चाहते हैं, वैसा आप दूसरो के साथ करो। यदि हमने बीज को ही वृक्ष कह दिया और वृक्ष को ही फल कह दिया तो सब गडबड काम हो जाएगा। शक्ति शक्ति है अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति है। शक्ति मे अभिव्यक्ति छिपी हुई है पर अभिव्यक्ति शक्ति से पार हो चुकी है। क्योकि तिल–तिल मे तेल होता है, तिल तेल नही होता पर जब भी तेल निकलेगा तिल से ही निकलेगा। लेकिन ध्यान रखो, तिल मे कभी पूडिया नही सिकती है, तेल मे ही सिकती हैं। जब भी मोक्ष होगा तो सम्यक्त्व पूर्वक ही होगा। कोरे सम्यक्त्व से मोक्ष नही होगा। भो ज्ञानी! सम्यक्त्व का टिकिट ले लो। टिकट खरीदने के बाद भी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन तक तुम यहाँ रह सकते हो क्योकि टिकिट तो खरीद लिया परतु तुमने (पुरुषार्थ) सम्यक नही किया तो टिकिट महत्वहीन हो जाएगा। परतु यह पक्का हो गया कि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन के अन्दर निर्वाण की प्राप्ति होगी।

भो ज्ञानी! विभूति देख कर, वैभव देखकर खुश होकर कभी तुम हिसा मे तल्लीन मत हो जाना। विश्वास रखना, कोई सशय मत रखना कि सर्वार्थ सिद्धि मे तैतीस सागर कैसे निकलते हैं ? तैतीस सागर तत्त्व चर्चा करते हुए निकल जाते है। श्रुत मे बडा आनद होता है ऐसा भगवान कह रहे है। ससार मे अनन्त अज्ञानी जीव हुये हैं जिन्होने हिसा मे धर्म स्वीकार कर लिया। कोई भी देव मॉस भोजी नही होता है और वे मदिरा पान भी नहीं करते। यह तो रसना के लोलुप लोगो ने निरीह प्राणियो के टुकडे करके स्वय रक्त पिया, सेवन किया और कहा प्रभु प्रसन्न हो गये। अहो! जैनियो ध्यान रखना चाहे प्रभु की पूजा हो चाहे पात्र का दान हो, चाहे जिनालय निर्माण हो चाहे धर्म का प्रवर्तन हो कभी हिसक प्रवृति को बढावा नही देना। विवेक से काम करना, क्योकि जैन दर्शन का प्राण ही अहिसा है। जहाँ एक पत्ते को तोडने मे हिसा कही गई है वहॉ किसी के प्राणो को तोडने को अहिसा कैसे कहा जा सकता है ? इसलिए धर्मात्मा तो होना, पर धर्मान्ध मत बनना। यह बडी अज्ञानता है कि धर्म के नाम पर कितनी–कितनी खून की नदियॉ बह जाती है ? यह ध र्म नही है, सम्प्रदाय है धर्म–द्वेष नही सिखाता। अरे! धर्म तो अहिसा है या फिर आत्म धर्म धर्म है। तीसरा कोई धर्म है ही नही। जिसमे प्राणी का बलिदान हो वह कैसा धर्म जिसमे एक दूसरे

के भाई चारे का भाव नष्ट हो जाए वह कैसा धर्म? भो ज्ञानी! पिता पुत्र से नहीं मिल रहा है, ऊपर नीचे रह रहे है। माता बेटी से बात नहीं कर रही है यह कैसा आत्मा का धर्म है? इसीलिए ध्यान रखो, आत्मा का धर्म तो अहिसा है, करूणा है, दया है, प्रेम है, वात्सल है। ध्यान रखना, भीड धर्म के नाम पर जुड जाती है किसी को अपना स्वार्थ सिद्ध करना हो तो धर्म का नाम ले लो और जो कुछ करना सो कर लो। नही, ये वीतराग धर्म है यह वीतराग विज्ञान का धर्म है, इसमे रूढियो को कोई स्थान नहीं है। अत प्राणियो की हिसा नही करनी चाहिए।

'गीता' मे स्वय नारायण कृष्ण ने कहा है कि– हे पार्थ! प्रत्येक प्राणी अपने कर्म का फल स्वय भोगता है कोई किसी के सुख दु ख का दाता नही है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस मे स्पष्ट लिखा है–**कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करहि तो तस फल चाखा।** आचार्य भगवन् अमित गति स्वामी लिखते हैं–

स्वय कृत कर्म यदात्मना पुरा–फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्त यदि लभ्यते स्फुट–स्वय कृत कर्म निरर्थक तदा ।।३०।।द्वा सा पा ।।

अहो ज्ञानीयो! स्वय के किये कर्म स्वय भोगोगे, दूसरो का किया दूसरा भोगता है। इसलिए ध्यान रखना, जीवो का वध करके यह कहना कि यह शिवालय चले जायेगे यह बहुत बडी अल्पज्ञता होगी। इसलिए कभी भी धर्म के नाम पर किसी जीव का वध नही करना। इस प्रकार अविवेक से ग्रसित जिसकी बुद्धि है–ऐसी दुर्बुद्धि को प्राप्त करके भी किसी जीव की हिसा नही करना।
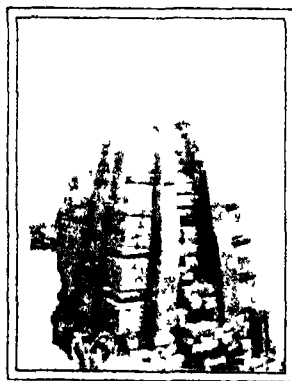
"पूजन के निमत्त भी हिंसा अकरणीय है"

पूज्यनिमित्त घाते छागादीना न कोऽपि दोषोऽस्ति।
इति सप्रधार्य कार्यं नातिथये सत्त्वसज्ञपनम्।। ८१।।

अन्वयार्थ – पूज्यनिमित्त = पूजने योग्य पुरुषो के लिए। छागादिना = बकरा आदिक जीवो के। घाते = घात करने मे। क अपि दोष नास्ति = कोई भी दोष नहीं है–इति सप्रधार्य विचार करके। अतिथये = अतिथि व शिष्ट पुरुषो के लिए। सत्त्वसज्ञपनम् =जीवो का घात। न कार्यं =करना योग्य नही है।

बहुसत्त्वघातजनितादशनाद्वरमेकसत्त्वघातोत्थम्।
इत्याकलय्य कार्यं न महासत्त्वस्य हिसन जातु।। ८२।।

अन्वयार्थ –बहुसत्त्वघातजनितात्= बहुत प्राणियो के घात से उत्पन्न हुए। अशनात्=भोजन से एकसत्त्वघातोत्थम् =एक जीव के घात से उत्पन्न हुआ भोजन। वरम् = अच्छा है।– इति अकलय्य = ऐसा विचार करके। जातु = कदाचित् भी। महासत्त्वस्य = बडे जीवका। हिसन न कार्यं = घात नही करना चाहिए।

|| पुरुषार्थ देशना || ५०||

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने बहुत ही अनुपम सूत्र दिया है कि इस जीव ने अनेक बार देशना को सुना लेकिन देशना को प्राप्त नही कर सका। मनीषियो! विनयपूर्वक जिसने जिनवाणी का श्रवण किया और निश्चल/निष्कम्प होकर के जिसने श्रुत की आराधना की, उस जीव को वर्तमान का श्रुत भविष्य मे देशनालब्धि का कारण होता है। कदाचित् अशुभ कर्म के योग से जीव को दुर्गति का भाजन भी बनना पडे फिर भी देशना नही छोडना। क्योकि देशना से आपके दुर्गति मे भी शुभ के सस्कार जाग्रत हो जाएँगे वहाँ सम्यक्त्व प्राप्ति हो जाएगी। यह जिनवाणी नरक मे भी देशनालब्धि का काम करेगी। यदि आपने जिनवाणी का अविनय कर लिया, श्रुत को निर्मल दृष्टि से नही समझा तो आपको अशुभ गति का बध हो जायेगा। ध्यान रखना, जब आप भगवान की पूजा ऐसे भक्तिभाव से करते हैं कि अन्य भी आपकी आवाज को सुनकर के ऐसा सोचने लगे कि थोडा सुन लूँ, पूरा ही सुन लूँ। अरे! ऐसा कभी नही बोलना कि बगल मे पूजा करनेवाला सोचे कि यहाँ से जल्दी चला जाऊँ। इस प्रकार तुम्हारी परिणति दूसरे के लिए सम्यक्त्व का हेतु भी होती है और

दूसरे के लिए मिथ्यात्व का भी हेतु हो जाती है।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, मेरी चित्तवृत्ति ऐसी हो जो चैतन्य के चमत्कार को प्रकट करा दे। मेरी वृत्ति ऐसी न हो कि मेरे कारण कोई दूसरा सम्यक्क्षेत्र को छोडकर असम्यक् क्षेत्र मे चला जाये। अत प्रभु से आप प्रार्थना करना हे नाथ! अरिहत देव की वन्दना करने के भाव मेरे बने रहे, क्योकि भोगो मे जीव इतना अधा हो जाता है कि भगवान को भूल जाता है। वह सुकृत्य तथा यश के जीवन मे सँभल नही पाता। हे नाथ! यदि कहीं मुझे तिर्यंच–आयु का बध हो गया हो तो अब मै तिर्यच बनकर ऐसे क्षेत्र मे जन्म लूँ जहाँ पर पचपरमेष्ठी भगवन् के, जिनेन्द्र की वाणी के शब्द मेरे कानो मे पडते रहे। मनीषियो! एक वृत्ति छिद्रान्वेषी होती है और एक वृत्ति गुणान्वेषी होती है। जिसकी प्रवृत्ति गुणो के खोज की होती है उसे सर्वत्र गुण ही गुण नजर आते हैं और जिसकी वृत्ति छिद्रान्वेषी होती है, उसे छिद्र ही छिद्र मालूम होते हैं।

भो ज्ञानी! एक बार चार व्यक्ति बनारस से अध्ययन करके आये। उनके गुरुजी ने उन्हे बडी–बडी नीतियो का ज्ञान कराया था। लेकिन नीतियॉ भी उसे ही काम आती है जो नीतिवान होता है। यदि अतरग तुम्हारा नीति कुशल है, तो ग्रथ की नीति काम कर सकती है और स्वय प्रज्ञा ही नही है तो लोगो ने नीतिग्रथ तो पढे, विद्वान बन गये, लेकिन बुद्धिमान नही बन पाये। अहो! शास्त्रो से विद्वान तो बना जा सकता है पर शास्त्रो से बुद्धिमान नही बना जा सकता है। बुद्धि क्षयोपशम से होती है और आपके प्रज्ञा आपकी स्वय के प्रबल पुण्य से सहज प्राप्त होती है। विद्या कही भी सीखी जा सकती है क्योकि वह कला होती है और बुद्धि कुशलता होती है। यदि कुशलता नही है, तो एक–जैसे दो छात्रो ने वकालत पढी उनमे एक जज बन गया और दूसरा जहॉ था वही रह गया। यद्यपि ग्रथ तो दोनो के समान थे, पर प्रज्ञा समान नही थी। पडित शिखरचद्र जी का नाम आपने सुना होगा भिन्ड के बहुत प्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य थे। कही पढने नही गये घर मे ही वह पढे रत्नकरण्ड–श्रावकाचार और तत्त्वार्थ–सूत्र' का अध्ययन किया। जब प्रज्ञा जाग्रत हुई तो देश के ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठाचार्य बने। आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी बाल विधवा हैं, चौथी क्लास तक पढी है, पर राजवार्तिक' जैसे ग्रथो की टीका की है। अत प्रज्ञा/कुशलता अलग है विद्या अलग है क्योकि कुशलता सहज प्रकट होती है।

भो ज्ञानियो! गुरु ने शिष्यो को समझाया कि– (१) जहॉ महाजन चले वहॉ चलना। (२) जिसमे छिद्र हो उसे छोड देना। (३) डूबते हुए को सहारा दे देना। (४) यदि कोई तुम्हे कुछ दे, तो लेकर बाट लेना। शिष्यो ने सभी बाते नोट कर लीं। जैसे ही वह मार्ग मे चले कि वहॉ कुछ महाजन लोग श्मशान घाट पर जा रहे थे तो वे उन्होने भी उसी ओर चल दिये, क्योकि विद्या थी परन्तु बुद्धि नही थी। रास्ते मे भूख सता रही थी, लोगो ने उन्हे मालपूये खाने को दे दिये, उन्होने सोचा, डायरी देख लो क्या लिखा है? लिखा था जिसमे छिद्र हो उसे छोड देना सो मालपूये छिद्रो का पिन्ड ही होता है। उन्होने उनको छोड दिया और भूखे ही रह गये। चलते–चलते नदी मिली

पर पार करने हेतु नौका नही थी। अत नदी मे जैसे ही उतरे कि एक मित्र डूबने लगा, उन्होने कहा–डायरी खोलो क्या करना है? भो ज्ञानी! हर क्षेत्र मे डायरी नहीं खोली जाती, विवेक भी खोला जाता है। उसमे लिखा था–डूबते हुए को सहारा दे देना। भैया! डूबते हुए को ऐसा सहारा दिया कि बेचारा सर्वांग डूब गया। गये थे चार, बचे तीन। अब उनके पास एक सूत्र बचा कि कोई दे तो बाट लेना। लेकिन ठीक से नहीं समझ पाये कि बाटें कैसे? क्योकि 'बाटे' के बहुत अर्थ होते हैं, एक बाट लेना याने विभाग कर लेना दूसरा बाटना याने पीस देना। उनके पास बुद्धि तो थी नहीं, आगे चलकर रोटी खाने को दी, उन्होने डायरी खोली और उन्होने कहा भैया! पहले बाटो। अहो! बुद्धि के अभाव मे विद्या कभी सफल नही होती है। विद्याहीन–बुद्धिमान सफल हो सकता है, किन्तु बुद्धिहीन–विद्वान कभी भी सफल नहीं होते। आपके पास विद्या है पर आपको मालूम नही है कि हमे किस समय क्या करना है? किसी के घर मे शोक था और आप जाकर श्लोक सुनाने लगे।

भो ज्ञानी! प्रज्ञा कहती है कि कुशलता को हासिल करो। मोक्षमार्ग तो पूरा कुशलता का ही मार्ग है अकुशलता का उसमे स्थान है ही नही। अप्रमत्त–अवस्था, प्रमादरहित वृत्ति है।जहॉ प्रमाद है वहॉ कुशलता नहीं है। इसलिए आगम मे कहा है कुशलेषु अनादरा प्रमाद' कुशल–क्रिया मे अनादर–भाव का होना प्रमाद कहलाता है। अत पूजा भी करना तो कुशलता से ताकि अकुशल भी कुशल हो जाए। किसी को धर्म के प्रति अनास्था न हो वही कुशलता है। हमारी किसी भी वृत्ति से एक व्यक्ति के भाव धर्म से विमुख हो रहे हैं, पचपरमेष्ठी से हट रहे हैं तो आपने बहुत बडा अनर्थ कर डाला। आचार्य भगवन् कुदकुद स्वामी यही तो कह रहे हैं। कानो का सुना भूल जाओगे पर जो दृष्टिपटल पर आया है वो अदर अमिट हो गया है। इसलिए जिनशासन मे सवा महिने के बालक को सबसे पहले अरहत–देव की प्रतिमा के दर्शन कराये जाते हैं कि बेटा! तुम सुनकर तो समझ नही पाओगे लेकिन तुम देख लो वीतरागी भगवान ऐसे होते हैं। अहो! तुम्हारी शुभ–वृत्ति देख दूसरे की दृष्टि सम्यक हो जाये अथवा अशुभवृत्ति देखकर दूसरे की दृष्टि विपरीत हो जाये। मिथ्यादृष्टिजीव जिनबिम्ब को देखकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर रहा है। वह बिम्ब दो प्रकार का है–चैतन्य जिनबिम्ब और अचेतन जिनबिम्ब। अचेतन–जिनबिम्ब–अरहतप्रतिमा और चैतन्य जिनबिम्ब–आचार्य उपाध्याय, साधु। समवशरण मे विराजमान अरहतदेव को देखकर ही तो कितने तिर्यंचो ने सम्यक्त्व को प्राप्त किया है।

भो ज्ञानी! सगीत से प्रभावित करके किसी को बुला लेना, डमरू बजाकर बुला लेना, यह तो मदारी भी कर सकते हैं। बाहर की भीड तो मदारी भी जुटा सकते हैं, सगीत आदि किसी के माध्यम से किसी को रिझा लेना अथवा कर्ण इन्द्रिय का विषय बनाकर किसी को भी बिठाया जा सकता है। लेकिन अन्त करण का विषय जिनवाणी को बनाकर जो बैठा दे, उसका नाम सत होता है। सत के हृदय मे तो मृग मे भी भगवान दिखते है और असत के हृदय मे तो भगवान मे भी भगवान नही दिखते। अहो! जो निर्मलता से श्रुत को सुने उसी का नाम श्रावक है। श्रुत–वदना, श्रुत–आराधना के प्रभाव से वह मृग का जीव बालि मुनिराज हुआ। मनीषियो! ध्यान रखना–कभी भी, कही भी बैठे हो, तो यह कभी नही सोचना कि यहाँ तो पशु खडा है। अहो! उसने कुछ किया था, तो

बेचारा आज पशु बना है। तुम भगवानो और इसानो के साथ छल करोगे तो फिर कहाँ जाओगे? पशु भी नहीं बन पाओगे, निगोदिया ही बनोगे। जिनवाणी कहती है कि तुम्हारे घर मे तुम्हारे कारण पशु बधा है। एक तो तुम उसे बाधे हो और समय पर उसे भोजन पानी भी नहीं देते हो तो ध्यान रखो, आपको नियम से वहीं अशुभ–कर्म का आस्रव होगा, क्योकि जिनवाणी पर्याय को नहीं देख रही है, जिनवाणी पर्यायी को देख रही है। आपकी आत्मा और एक पशु की आत्मा (इन दोनो आत्माओं) मे मात्र पर्याय का अतर है, पर्यायी का कोई अतर नही है।

भो ज्ञानी! करोडो सकट झेल लेना, करोडो विपत्ति को सह लेना और एक बार तुझे कोई अज्ञानी भी कह दे तो उस घूँट को भी पी लेना लेकिन अपनी वृत्ति से जिनशासन के प्रति किसी को अनास्थावान् मत बना देना। ध्यान रखना, धर्म के क्षेत्र मे आकर यदि आपने धर्म को हिसारूप कह डाला, वह सबसे बडी मायाचारी है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने स्पष्ट कहा है कि धर्म के नाम पर हिसा, हिसा ही है। हिसा कभी धर्म नही हो सकती, कषाय कभी धर्म नहीं होगी। धर्म मे कषाय आ जाये तो वह कषाय रूप ही परिणित होगी, धर्मरूप परिणित नहीं होगी। ध्यान रखना–दूध मे पानी मिला दो लेकिन वह रहेगा पानी ही। आपने पुण्य के योग मे धर्म मे भी कषाय की है, मायाचारी की है, तो तुम्हारा पुण्य भी उतना पतला हो जायेगा, जितना पानी डालने से गाढा दूध पतला हो जाता है। ऐसे ही शुद्ध–पुण्य का सचय आपने किया, पर मायाचारी करने का परिणाम तिर्यंचो मे जन्म लेना पडेगा। नारी–पर्याय मे पुण्य कर देव–आयु का बध कर लिया, फिर मायाचारी की,, तो देवी बनना पडेगा। इसलिए विवेक के साथ जीना। एक ग्वाले ने प्रभु के चरणो मे समर्पित करने हेतु तालाब से पुष्प निकाला, तो कीचड मे उसके हाथ–पैर बिगड चुके थे। पर भक्ति के आवेश मे उसी कीचड के साथ वह मदिर मे पहुँच गया। भगवान की भक्ति की थी, सो उसको इतना पुण्य का आस्रव हुआ कि अगली पर्याय मे सम्राट (करकण्डूक) बना, मगर कीचड भरे पैर–हाथ सहित भगवान के जिनालय मे प्रवेश किया था सो हाथ–पैरो मे खाज हो गई। ध्यान रखना, मदिर मे बिना पैर धोए प्रवेश मत कर जाना। भक्ति तो है, पर भावो को भी तौलो, द्रव्य भी देखो, क्योकि आस्रव भावो से ही नहीं, मन वचन काय के योग से होता है। कुछ लोगो की सोच है कि भाव शुद्ध है, पर भाव के साथ–साथ द्रव्य की शुद्धि अनिवार्य है। अहो! सूतक पातक लगा हो अथवा मुर्दा को जलाकर आये, यहाँ भगवान का अभिषेक करने लगे। बोले–हमारे भाव शुद्ध है। अहो! ऐसा अनर्थ मत कर देना, द्रव्य की शुद्धि भी रखना, साथ मे भाव–शुद्धि भी रखना परम आवश्यक है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं–पूज्य के निमित्त से यदि आपने छल–कपट की, मायाचारी की हिसा की है, तो कर्म का बध होगा, निर्बंधता नहीं मिलेगी। घर मे मेहमान आये, सत्कार करने बाजार से मीठा खरीद लाये, गोली–बिस्कुट खरीद लाये, लेकिन यह नहीं पूछा कि इनमे है क्या? अतिथि सत्कार तो करना, पर रात्रि मे भोजन नहीं कराना। उनसे कहना कि मैंने गुरुचरणो में नियम लिया है। हम आपका कल अच्छा सत्कार करेंगे, लेकिन रात्रि में हम नहीं खिला पाऐगे, सबध कल टूटता था, तो अभी टूट जाये, लेकिन यदि नियम तोडा, मायाचारी की, तो तुम्हारा व्रत भग हो गया। ध्यान रखो व विवेक लगाओ, अनत पर्याय बीत गई ससार के दु खों को भोगते–भोगते, अब मायाचारी न करो।

"हिंसक जीवों का घात भी हिंसा है"

रक्षा भवति बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन।
इति मत्वा कर्त्तव्य न हिसन हिंससत्त्वानाम्।। ८३ ।।

अन्वयार्थ – अस्य ="इस। एकस्य एव = एक ही। जीवहरणेन = जीव घात करने से। बहूनाम् = बहुत से जीवो की। रक्षा भवति = रक्षा होती है"। इति मत्वा =ऐसा मानकर। हिस्रसत्त्वानाम् = हिसक जीवो का भी। हिसन = हिसा। न कर्त्तव्य = नही करना चाहिये।

बहुसत्त्वघातिनोऽमी जीवन्त उपार्जयन्ति गुरू पापम्।
इत्यनुकम्पा कृत्वा न हिसनीया शरीरिणो हिस्रा ।। ८४।।

अन्वयार्थ –बहुसत्त्वघातिन ="बहुत जीवो का घाती। अमी = ये जीव। जीवन्त = जीते रहेगे तो। गुरू पापम् = अधिक पाप। उपार्जयन्ति = उपार्जन करेगे'। इति = इस प्रकार की। अनुकम्पा कृत्वा = दया करके। हिस्रा शरीरिण = हिसक जीवो को। न हिसनीया = नहीं मारना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना ||५१||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन देशना आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने हम सभी को प्रदान करते हुए बहुत ही सहज सूत्र दिया है कि जब अतरग मे विशुद्धता का उद्‌गम होता है तब अदर की अग्नि शमन को प्राप्त हो जाती हैं और बाहर की अग्नि कुछ भी नहीं कर पाती। जिसके अतरग मे भेद विज्ञान की निर्मल सरिता बह रही हो, उसका बाहर के ओले–शोले कुछ भी नहीं कर पाते और जिसका अतरग वासनाओ से दहक रहा हो उसके लिए बाहर से चदन के छींटे कुछ भी नहीं कर पाते। कितनी ही चद्रमा की चादनी हो, सुगधित समीर बह रही हो, किन्तु कलुषिता की परिणति आपके अदर लहरे ले रही हो तो शीतल समीर, भी तुम्हे शाति प्रदान नहीं करेगी। अत आवश्यकता है अतरग की अग्नि को बुझाने की।

भो मनीषियों! आज भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का निर्वाण दिवस है। कौन कहता है कि भगवान पारसनाथ स्वामी ने कमठ का उपसर्ग सहा है। भो ज्ञानी ! जिस पर उपसर्ग किया था,

वह पारसनाथ नहीं, मुनिराज थे, क्योकि पारसनाथ पर उपसर्ग हो सकते हैं पर प्रभु पारसनाथ पर उपसर्ग नहीं हो सकते। केवली पर उपसर्ग नहीं होते, छदमस्थ अवस्था मे ही उपसर्ग होते हैं। तत्त्व की गहराइयाँ एव तत्त्व की दृष्टि देखो–यही तो समयसार है। अहो! पूरे दस भव जिसे सताया हो उस अतर–आत्मा मे कितनी शक्ति होगी? जिस आत्म–तत्त्व ने किचित भी आह नहीं कहा। अरे! चीखता–चिल्लाता वह है जिसे चैतन्य की सत्ता का भान नही होता। जिसे अपने प्रभु का ज्ञान हो जाता है वह परद्रव्यो को पर ही देखकर कभी खीझता नही है। ज्ञानी सदैव यही सोचता है कि इन पर–द्रव्यो की मेरे मे कुछ करने की ताकत ही नहीं है। यदि मेरी अयश कीर्ति प्रकृति काम नहीं कर रही होती, तो दूसरे के मुख में अशुभ कहने की शक्ति ही नही थी। यदि मेरी यश कीर्ति उदय मे न होती तो दूसरे का मुख मेरी प्रशसा मे खुल ही नही सकता था। अत ज्ञानी पर को कर्त्ता नही बनाता तथा पर का कर्त्ता भी नही बनता। वह तो स्वय का कर्त्ता, स्वय ही होता है और स्वय के फल का भोक्ता स्वय होता है।

भो ज्ञानी! एक मॉ के दो सुत थे। ज्येष्ठ कमठ और लघु मरूभूति। राजा अरविद एक दिन मत्री से सलाह कर मरूभूति के साथ विदेश यात्रा को जाते हैं। बडा पुत्र कमठ था परतु उसमे ज्येष्ठत्व नहीं था, क्योकि ज्येष्ठ से ज्येष्ठत्व नही आता, श्रेष्ठता से ज्येष्ठत्व आता है। जिनवाणी कहती है–ज्येष्ठ बनने की होड मत लगाओ, श्रेष्ठ बनने की होड लगाओ। जिसके अदर श्रेष्ठता होती है उसे आप छुपा नही सकते क्योकि कौए–कोयल की पहचान वर्ण से नही, वाणी से होती है। इसी तरह सज्जन दुर्जन की पहचान रग–रोगन से नही, उसकी परिणति से होती है। अज्ञानी कमठ अपने लघु भ्राता की पत्नी को देख, कुदृष्टिपात कर अपने मित्र से कहता है कि जब तक मेरे भाई की पत्नी अरूधती मुझे प्राप्त नही होगी, तब तक मेरा जीवन व्यर्थ है। मित्र समझाता है कि लघु भ्राता पुत्र के तुल्य होता है, उसकी पत्नी तुम्हारी बेटी के तुल्य अथवा पुत्र–वधु के समान है, ऐसा मत करो। महान नीतिकार आचार्य वादीभसिह सूरी 'क्षत्रचूडामणि ग्रथ' मे लिख रहे हैं–

विषयाशक्त चित्ताना, गुणा को वा न नश्यति।
न मानुष्य वैदुष्य, न आभिजात्य न सत्यवाक्।। क्ष चू ।।

जिसका चित्त विषयो मे आसक्त है वह जीव मनुष्यता को ध्यान नही रखता। जो काम के बाण से बिधित हुआ है, भगवती मॉ जिनवाणी कहती है कि वह तिर्यच है, उसके वचनो मे भी सत्यता नही है, उसका देवत्वपना भी नष्ट हो जाता है, पुण्य भी नहीं दिखता, वह पिता को भी दुश्मन देखता है।

भो ज्ञानी! व्यसनी कामी, भोगी राजा के तुम मित्र बनकर मत जीना। भीख माग कर चाण्डाल के पत्तल का भोजन कर लेना, पर चाण्डाल हृदयी के हाथ का नीर मत पी लेना। उस कामी

ने उसकेशील को भग कर दिया। जब भाई मरुभूति वापस आया, तो कमठ कहने लगा—भाई के नाते आप मुझे क्षमा कर दो। यह जानकर सम्राट अरविद कहता है कि नीति कहती है कि यदि सम्राट की भुजा भी गलत काम करती है तो उस भुजा को निकाल देना चाहिये। जो व्यक्ति सर्प के द्वारा डसे जाने पर, एक अंगुली के अभाव जन्य दुँख से दुखित हो, अगुली को नहीं काटता है, वह अपने पूरे जीवन को नष्ट कर लेता है। यदि आज मैंने कमठ को दड नहीं दिया, तो कल इसके उपद्रव और बढ जाएगे। अत उसको खर (गधा) पर विराजमान कर, काला मुख करके बाहर निकाल दिया। अहो!ससार मे अपमान से बडा कोई दड नहीं है, क्योकि जब तक सास रहती तब तक अपमान चलता है। उधर कमठ पर्वत की चोटी पर पाषाण की शिला को ले कर खडा है और साधु का रूप बनाकर तपस्या करने लगा।

भो मनीषियो! मरूभूति ने महाराजा अरविद् से कहा—स्वामी! मैं अपने भाई के दर्शन करने जाना चाहता हूँ। राजा बोले—किसके दर्शन? जिस दुष्ट ने तेरी पत्नी के शील को भग किया है उस व्यभिचारी के दर्शन। मरूभूति बोले—स्वामी! अब वह साधु है। मरूभूति नही माना और जैसे ही राग—वश वह जाकर सिर झुकाता है। उसे देखकर कमठ सोचता है—अहो! इसी के कारण मुझे यह भेष बनाना पडा। अत जो चट्टान हाथ मे तपस्या के लिए थी वही भाई के ऊपर पटक दी। जिससे मरूभूति मरकर हाथी की पर्याय को प्राप्त हुआ। अहो! उसे करूणा नहीं आयी, बनने वाले भगवान के ऊपर शिला पटक दी। भो ज्ञानी! इस पर्याय मे कमठ का जीव ऐसा पाप कर बैठा कि कुर्कुट जाति का सर्प बना। उधर पारसनाथ बनने वाला हाथी जगल मे विचरण कर रहा था। महाराजा अरविद निर्ग्रंथ योगी होकर जगल मे ही विराज गये। मनीषियो! रात्रि मे मुनि मौन रखते है। आचार्य शुभचद स्वामी 'ज्ञानार्णव ग्रथ" मे लिखते हैं—

धर्मनाशे क्रियाध्वसे, सुसिद्धातार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्य, तत्वस्वरूप प्रकाशिने।। १५।। ज्ञानार्णव।।

हे निर्ग्रंथ! आपके लिए मौन रखना चाहिए, लेकिन जहाँ पर धर्म का ध्वस हो रहा हो, क्रियाओ का विप्लव हो रहा हो, धर्म के नाम से हिसा का ताडव चल रहा हो और मनमाने सिद्धात की बाते चल रही हो, हे योगी! वहाँ पर तुमसे कोई न भी पूछे, फिर भी तुमको बोलना चाहिए।

मनीषियो! वह हाथी अनेक जीवो को कुचल रहा था। मुनिश्री ने कहा—हे भावी भगवत! राग की महिमा मे तथा भाई के मोह मे तुमने वीतरागता को नहीं समझा। आपको भी मैंने समझाया था, पर तुम नही माने और उस दुष्ट कमठ के पास पहुँचकर आर्त्त—ध्यान से प्राणो का विसर्जन किया सो आज तुम हाथी बने हो। यह सुनकर हाथी के नैनो से पश्चाताप का नीर बहने लगा और सूँड उठाकर मस्तक चरणो मे टेककर विनती करने लगा—हे धरती के देवता! आप अब मेरी पर्याय

का सुधार करो। मुनिराज बोले हे जीव! अब तो तूने पर्याय को प्राप्त कर ही लिया है, लेकिन तिर्यंच पर्याय मे भी पचम गुणस्थान होता है। अत तुम देशव्रत का पालन करो। हाथी ने प्रतिमा लेकर बारह व्रत अगीकार कर लिए। वह सूखे पत्ते खाता था, सो सचित्त त्याग हो गया। जमीन को फूक–फूक के चलता था, करवट लेता था, तो देख लेता था। जब पानी पीने जाता था, तो देख लेता था कि दूसरे जानवर पानी मे प्रवेश कर चुके कि नही अथवा सूर्य की किरणे पड चुकी हैं। मूलाचार जी मे कहा है–जहाँ सूर्य की किरणे पड रही हो, ऐसे नदी–तालाब का पानी ले सकते हैं, परतु सहजता मे नहीं अशक्य अवस्था मे। क्योकि यह राजमार्ग नही है, अपवाद मार्ग है। अष्टमी–चतुर्दशी का प्रोषध कभी कर लेता था। एक बार जैसे ही वे गजराज पाडना के लिए पानी पीने गया, पर दुष्ट ने दुष्टता नही छोडी। कुर्कुट जाति का वह सर्प सिर पर बैठ गया और डस लिया। सल्लेखना सहित समाधि मरण कर श्रावक गजराज बारहवे स्वर्ग मे जाकर देव हुआ और सर्प नरक पर्याय को प्राप्त हुआ।

भो ज्ञानी! अब देखना, ससार की दशा। अब वह देव स्वर्ग से च्युत होकर चक्रवर्ती पद की विभूति प्राप्त कर वज्रदत चक्रवर्ती बना और वह कमठ का जीव भी नरक से चयकर के तिर्यंच योनि मे सिह बना। उन वज्रदत चक्रवर्ती ने छ मास के पोते को राजतिलक कर बेटो के साथ जैनश्वरी दीक्षा धारण कर ली। मुमुक्षु आत्माओ! जो सारी विभूति को सडे तिनके के समान त्याग के चला गया। उसे सिह ने आकर के पुन खा लिया अत वे पुन स्वर्ग मे देव हुए और वह सिह पुन नरक मे चला गया। वहॉ से च्युत होकर अत मे वह गजराज मुनि महाराज ने आनद की पर्याय मे तीर्थंकर–प्रकृति का बध किया और कमठ का जीव अजगर हुआ। जब मुनिराज आनद, साधना मे लीन थे तब अजगर ने उन्हे सीधा आकर के उठाकर मुख मे रख लिया। अहो ज्ञानियो! देखो उन्हे साप निगल रहा है और वे कषायो को निगल रहे हैं। यही तो था तत्त्वसार यही था समयसार यही था प्रवचनसार। ध्यान रखना, उस समय वे योगी सोच रहे थे कि जिसे निगल रहा है वह देह है, देही (मैं) नहीं है। मैं तो एक, शास्वत हूँ। मुझे कौन निगल सकता है, कौन मार सकता है? मैं तो चिन्मय चैतन्य ही रहूँगा। देखते ही देखते मुनिश्री को अजगर ने निगल लिया। अत वे स्वर्ग को प्राप्त हुए तथा कमठ का जीव पुन मरकर नरक की वदना करने चला गया।

भो ज्ञानी! परपरा से वे बनारस के राजा अश्वसेन और महारानी वामा के यहाँ तीर्थंकर बालक के रूप मे उत्पन्न हुए। ससार की विचित्रता तो देखो, प्रभु पारसनाथ के नाना थे, उनकी माँ के पिता कमठ का जीव। नाना के घर मे बधाइयॉ चल रही हैं कि मेरी बेटी के तीर्थंकर बालक उत्पन्न हुआ है। फिर देखना ससार की विडबना जब बालक पारसनाथ सैर करने जा रहे थे, तो वही नाना का जीव पचाग्नि तप कर रहा था। जिसकी लकडियो मे नाग–नागिनी झुलस रहे थे। पारसनाथ ने

कहा–आप इन जीवो को क्यों जला रहे हो? तू बालक मुझे समझाता है। हे तपस्वी! यदि आप मेरी बात नहीं मानते तो इस लकडी के आप विभाग करके देख लो। क्योकि तपस्वी चरम चक्षु से देख रहा था और प्रभु तो अवधि के चक्षु से देख रहे थे। अत जैसे ही लक्कड का विभाग किया, अर्धजले नाग–नागिनी निकल पडे। तब प्रभु ने महामत्र "णमोकार' सुनाया। वे नाग–नागिनी मरकर ध रणेन्द्र–पद्मावती हुए। भो ज्ञानियो! ध्यान रखना, कोई भी जीव परेशान हो, मर रहा हो तो कम से कम पचपरमेष्ठी वाचक महामत्र तो सुना ही देना। यह मत सोचना कि इसकी कौन सी पर्याय है? ग्लानि नहीं करना, पर्याय को नही देखना बल्कि ज्ञानी पर्याय मे बैठे प्रभु को देखना, क्योकि पर्याय को देखते रहोगे, तो कभी भी तुम परमात्मा को नहीं देख पाओगे।

भो ज्ञानी! पारसनाथ वन की ओर चल दिये तथा वह तपस्वी आर्तध्यान से मर कर ज्योतिष्क जाति का देव होता है। वे प्रभु पारसनाथ अहिक्षेत्र मे ध्यान कर रहे थे। जैसे ही उन्हे कमठ के जीव ने देखा तो शत्रु की अग्नि भडक पडी, उसने खूखार रूप बनाकर गभीर गर्जना करते हुए मेघ आच्छादित कर दिये मूसलाधार वर्षा की, ओले भी गिराये। उस समय प्रभु पारसनाथ लिख रहे हैं कि ससार का परमाणु मात्र भी मेरा नही है, यह तन भी मेरा नहीं है। चैतन्य ध्यान मे लीन प्रभु पारसनाथ ने पूर्व मे जिनको 'णमोकार" सुनाया था, उसका आसन हिलने लगा। अहो! तीर्थेश्वर पर उपसर्ग आया है, तुरन्त पहुच गये। हे श्रावक, श्राविकाओ! धर्मात्माओ के उपसर्ग को दूर करने के लिए सभी को धरणेन्द्र–पद्मावती बनने की आवश्यकता है। क्योकि जब–जब तीर्थों अथवा मुनियो पर उपसर्ग आये हैं ये श्रावक शात बैठ गये, मुनियो ने ही उपसर्ग दूर किये है। देखो! जब रावण कैलाश को हिला रहा था तब एक भी श्रावक नही पहुँचा, मुनिराज को ही अपना अगूठा दबाना पडा। आज तुम सब शात बैठे हो। देखो, प्रथम तीर्थकर की निर्वाण–भूमि दिख नही रही है, कहीं ऐसा न हो कि बीस तीर्थकरो की निर्वाण–भूमि भी तुम्हारे हाथ से चली जाये? क्योकि बाईसवे तीर्थकर की निर्वाण भूमि मे तुम जा नही पा रहे हो, सब शात बैठे हो।

भो ज्ञानी! जब अकपनाचार्य पर उपसर्ग आया तो विष्णुकुमार मुनिराज को दीक्षा छोडनी पडी, लेकिन श्रावको ने कुछ नहीं सोचा। आज आवश्यकता है आपको भगवान पारसनाथ और उन तीर्थ भूमियॉ के उपसर्ग दूर करने के लिए और आप सब शात बैठे हो। वे विष्णु कुमार तो अकपनाचार्य के सघ के नहीं थे, यदि वे भी सोच लेते कि कौन हमारे सघ के साधु हैं, लेकिन यहॉ सघ नही दिगम्बर धर्म था। जहाँ श्रमण दिखते है वहॉ धर्म होता है, जहॉ सघ दिखते है वहा ध र्म होता ही नही है। भो ज्ञानी! आपको तीर्थ दिखेगे तो धर्म दिखेगा, अन्यथा आपको भेद की दीवार ही खडी दिखेगी। कमठ का उपसर्ग दूर हुआ और प्रभु को कैवल्य–ज्योति प्रगट हो गई। देखो ससार की दशा, जिसे तुम शत्रु कहते हो, उपसर्ग करने वाला कहते हो, उस कमठ को सम्यक्दर्शन प्राप्त हो गया। अहो! उपसर्ग करने वाले ने केवली बना दिया और स्वय को सम्यक्दृष्टि बना लिया।

ध्यान रखना, जिन–जिन ने उपसर्ग किये वे सब सम्यक्दृष्टि बन गये। वे प्रभु साधना करते हुए, विहार करते हुए सम्मेदाचल पर पहुँच और योगो का निरोध कर श्रावण शुक्ला सप्तमी को चरमोत्कर्ष फल निर्वाणश्री को प्राप्त किया।

भो ज्ञानी! वे पारसनाथ हमे शिक्षा देकर चले गये, कि हे साधको! तुम हमारी निर्वाण पर्याय को मत देखो, कैवल्य पर्याय को मत देखो, तुम हमारी उस पर्याय को देखो, जिसदिन उपसर्ग चल रहा था। तुम्हे उससे सबल मिलेगा। यह मोक्ष मार्ग है, ये घबराने का मार्ग नही है। भो चेतन! चितवन कर लेना पर धैर्य को मत छोड देना। पारसनाथ के निर्वाण दिवस महोत्सव पर इतना सीख जाना कि हे पारसनाथ! वह शक्ति मेरी आत्मा मे को प्रकट हो जिस शक्ति से आपने कमठ जैसे शत्रु के उपसर्ग को सहन कर निर्वाणश्री का वरण किया है। हे जिनदेव! आपके गुणो की सपत्ति मुझे भी प्राप्त हो जाए। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि ऐसे निर्वाणश्री की प्राप्ति तभी होगी जब अहिसा सखी तुम्हारे साथ होगी।

भो चेतन! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने कितना गहरा चितन किया है कि ससार मे कितने प्रकार के विचित्र लोग होते हैं कि सर्प को नागपचमी मे पूजने जाएँगे और घर मे निकल आये तो लाठी लेकर पहुँच जाते हैं। देश मे खोज करना कि वर्ष मे सर्प के काटे कितने मरे हैं और इन मनुष्यो ने कितने सर्पों को मारा है? विचार करो एक जीव को मार करके क्या बहुतो की रक्षा की जाएगी? सर्वज्ञ शासन मे यह जिनोपदेश है कि लोक मे सर्वत्र अपनी रक्षा की बात की जाती है परतु वीतराग वाणी कहती जिओ और जीने दो ' अपनी रक्षा करो पर किसी के प्राणो का हरण मत करो। क्योकि हिसक को मारना भी हिसा ही है, उसको भी कभी नही मारना। अहो! कोई तडप रहा है, शरीर मे कीडे पड गये हैं तो इजेक्शन लगा दो जल्दी जिससे इसकी मौत हो जाए। हे अज्ञानियो! ऐसा कर मत बैठना तुमने दया कहाँ की? यह मत कहना कि हमने कष्टो से दूर कर दिया। उसे तो तुमने समय से पहले मार दिया, तुमने उसकी पर्याय को नष्ट किया कि उसके कर्म को नष्ट किया। जितना कर्म सत्ता मे रखा है वो भोगना पडेगा। इसलिए किसी पीडित को जहर का इजेक्शन मत लगा देना ऐसी करूणा मत कर लेना। कोई तडपता हो तो णमोकार' मत्र सुना देना। जितनी बने उसकी सेवा कर देना। इसलिए ध्यान रखना कभी भूलकर भी साप निकल आए तो मारने नहीं देना। तुम उसे दूसरी जगह छुडवा देना, क्योकि हर प्राणी को अपने प्राण प्रिय होते हैं।

"दुःखी एवं सुखी जीवों का घात करना हिसा है"

बहुदु.खा सज्ञपिता प्रयाति त्वचिरेण दु.खविच्छिति ।
इति वासना कृपाणीमादाय न दुखिनोपि हतत्या ।। ८५ ।।

अन्वयार्थ – तु = और। बहुदु खा सज्ञापिता = बहुत दु ख से सताते हुए प्राणी। चिरैण=जल्दी। दु खविच्छिति = दु ख नाश को। प्रयाति = पा जाएगे। इति बासना कृपाणी = इस प्रकार विचार रूपी तलवार का। आदाय = लेकर। दुखिन अपि न हतत्या =दु खी जीव भी नही मारने चाहिए।

कृच्छेण सुखवाप्तिर्मवाति सुखिनो हता सुखिन एव।
इति तर्कमडलाग्र सुखिना घाताय नदिय ।। ८६ ।।

अन्वयार्थ –सुखावप्ति = सुख की प्राप्ति। कृच्छैण भवति =बडी कठिनता से होती है। सुखिन हता = सुखी ही होती है। सुखिन एव भवन्ति = सुखी ही होते हैं। इति = इस प्रकार। तर्कमडलाग्र = विचार रूप तलवार। सुखिना घाताय = सुखी पुरुषो के घात के लिये न आदेय =नही पकडना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || ५२||

मनीषियो! अन्तरग के भ्रमो को शमन करने की विद्या, मॉ जिनवाणी, अमृत का काम करती है। विपरीत श्रद्धान लोक रूढियॉ, अध विश्वास सभी का शमन करती जिनवाणी मॉ कह रही है प्रत्येक जीव अपने शुभ–अशुभ कर्मो के योग से उत्पन्न हुए और नष्ट हो रहे हैं। अत आप करुणा करो हिसा भी मत करो, और जो हिसा भी कर रहे उनकी हिसा भी मत करो और जो हिसा नही कर रहे उनकी भी हिसा मत करो।

भो ज्ञानी! गन्ना पेलने की मशीन मे ऊपर–नीचे दो बेलन लगे होते हैं। यदि उनमे अतर पड जाये तो रस अच्छे से नही निकाल पाओगे। ऐसे ही अन्तरग–बहिरग चरित्र के बीच मे अतर पड जाए तो भेद विज्ञान द्वारा शुद्धात्मानुभूति का वह समरसी भाव रूप रस निकलने वाला नहीं अत कठोरता मे ही रस निकलता है। याद करो अपने विद्यार्थी जीवन मे जिस गुरु से आपने अध्ययन किया या जो अनुशासन प्रिय गुरु थे विद्या का रस उनसे ही अधिक मिला और जो स्वय ढीले थे

उस समय तो अच्छा लगता था अध्यापक कुछ नही कहते, लेकिन उन्होने तुम्हारा जीवन बनाया नही बल्कि बिगाडा है। इसीलिए जिनवाणी कह रही है कि उस गुरु के चेले भी नहीं बनना जो स्वय शिथिलाचार मे डूब जाये और दूसरे को डुबा दे। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि धर्म की चर्चा मे मधुरता की कोई आवश्यकता नहीं। भो आत्माओ शिथिलाचार मे धर्म मानोगे, तो आपको अपने आप मे ही हीन भावना आ जाएगी कि मेरे पास धर्म है कहॉ, मै तो बाह्य लेप को किये हूँ? अहो! जीवन मे बाह्य लेप देर तक टिकता नही है, धर्म के क्षेत्र मे मायाचारी का धर्म, बहुत समय तक टिकता नही वास्तविकता नजर आ जायेगी। सोने के आभूषण चमकदार हो यह आवश्यक नही। सोना मिट्टी मे भी मिला होगा तो भी सोना है। वीतराग धर्म चमक दमक का धर्म नहीं है वस्तु स्वभाव का धर्म है। यहॉ ऊपरी चमक की कोई चर्चा नही है यहॉ अन्तरग परिणति की चर्चा है। जिसके अन्तरग मे तीव्र हिसा के भाव है, उसकी वाणी मे भी शिथिलाचार है। जिसका अन्तरग हिसा से शुष्क है वह कभी हिसा से समझौता नही कर पायेगा। ध्यान रखना तुमसे पालन जितना हो रहा सो ठीक है लेकिन वाणी मे कभी शिथिलाचार मत लाना। इस शरीर के सुख, यश और ख्याति के पीछे आत्म–ख्याति को मत भूल जाना। इस चर्म के शरीर मे विराज कर अहम् मे मत डूब जाना धर्म को अपने अनुसार चलाने का विचार मत करना जितना बने धर्म के अनुसार चलने का विचार रखना। शरीर की तो वह दशा होगी ही जो सबकी होना है। जब तक राग रहेगा तब तक राख ही होगी और जिस दिन राग चला जाएगा उस दिन तू वीतरागता को प्राप्त कर लेगा। तब राख नही होगी कपूर की भॉति उड जायेगा। निर्णय आपको करना है! केवली भगवान के शरीर को कोई जलाता नही है उनका परम औदारिक शरीर होता है मात्र नख–केश अवशेष बचते है सारा शरीर कपूर की भॉति उड जाता है परतु रागियो का नही। अहो! अपने शरीर के पीछे ही नही, पर शरीर के पीछे भी कितने पाप कर रहे हो। पर शरीरो की रक्षा के पीछे भी पर के शरीर का घात मत करो अनेक जीवो की रक्षा होगी इसीलिए एक को मार दो, ऐसा भी मत करो। जो खोपडी श्मशान घाट मे पडी है, उससे खडे होकर चर्चा करना शत्रु की खोपडी हो या मित्र की उससे भी चर्चा कर लेना समयसार दिख जायेगा। हे मित्र! मैंने आपके पीछे पता नही राग के वश होकर कितने दुराचार किये, आपके साथ बैठ करके, कितने व्यसनो का सेवन किया, परतु हुआ कुछ नही अन्त मे निर्णय कुछ नही निकला। चोरी गया धन मिल सकता है, परतु निकला समय मिलने वाला नही। सागर मे मोती मिल जायेगा परतु जो समय निकल चुका वह मिलने वाला नही है।

भो ज्ञानी! शरीर को स्वच्छ करना चाहते हो, तो अध्यात्म से आर्त्त होना पडेगा। बिना गहराई मे जाए भोगो से अरुचि हो ही नही सकती। सर्वज्ञदेव कहते है कि आपको शुद्धात्मा मे रुचि हो जायेगी ,धर्म मे भी रुचि हो जायेगी, यदि आपने भोगो से अरुचि उत्पन्न कर ली और योग मे रुचि लगी नही तो तेरी दशा क्या होगी? क्योकि भोगो से बलात् अरुचि उत्पन्न करके योग मे रुचि

लगती है। अहो! उपयोग तो तेरा बाह्य–बाह्य में घूमता है, यदि अन्तरग की रुचि हो जायेगी, तो बाहर अपने आप अरुचि हो जायेगी। वैराग्य राग नहीं है और वैराग्य मे भी राग नहीं है। वैराग्य जिस क्षण आता है उस क्षण राग के जितने क्षण होते हैं वे सब राख रूप झलकते हैं। रागी को राख मे भी राग होता है और वैरागी को (रागमयी) द्रव्य मे राख झलकती है, लेकिन राग शाश्वत नहीं। राग की परिणति नियम से बदलेगी और राग का द्रव्य भी बदलेगा, यह वास्तविकता है। जिसे आप अपना बेटा कह रहे थे, सुदर लगता था, वह जब युवावस्था से प्रौढवस्था मे प्रवृत होता है तो वही आपको फीका–फीका लगने लगता है।

भो ज्ञानी! अन्तरग मे अनादि से वासनाओ की जो लघार लगी हुई है, कषाय भाव बैठे हुये है वे कैसे समाप्त हो? यदि आप अपने आपको कुछ समय देना शुरू कर दोगे तो विश्वास रखना कि नियम से आपको अपने द्रव्य का भान होगा। अन्यथा जीवन भर धर्म स्थान मे बैठे– बैठे निकल जायेगा, लेकिन आप कभी भी धर्म का अनुभव नहीं कर पाओगे। जैसे तीर्थराज सम्मेदशिखर शाश्वत निर्वाणभूमि मे बैठे प्रबधक से पूछना कि वह सम्मेदशिखरजी की अनूभुति कितने क्षण करता है? अहो! उसने अपना दिमाग खाली छोडा ही नही, उसके पास समय ही नही है। जब आप धर्मात्मा बनकर जिनालय आते हो तब भगवान के दर्शन का आनद आता है। किसी को भगवान के दर्शन छुडवाना हो तो मदिर की समिति का मत्री बना दो। वह जब भी मदिर जायेगा, तो पहले भगवान को नही जमीन को देखगा कि झाडू लगी कि नही। ईंटो मे क्या हो रहा है? अब उसके वह भगवान चले गये। भो ज्ञानी! डाकू मुनि बन गया। सुदरियो का राग उन्हे डिगा नही पाया। जिसको आत्म–सुन्दरी नजर आती है उसको पुद्‌गल की सुदरिया दिखती ही नही है।

भो ज्ञानी! अमृतचद्र स्वामी कह रहे है–कभी भूलकर भी हिसा को धर्म नही कहना राग को धर्म नही कहना शिथिलाचार को भी धर्म नही कहना और असयम को धर्म नही कहना। धर्म असयम नहीं, धर्म सयम है और पॉलिश कभी सोना नहीं बनेगा, सोना ही सोना होगा। पॉलिश तो उतर जायेगी, इसीलिए ऊपरी चमक से प्रभावित होकर भीतर खोखले मत हो जाना। ऊपरी चमक वाली ससार की विभूतियाँ अन्दर का शुभत्व नहीं है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कि अन्दर जो कुछ है, उसका नाम परम अहिसा है। लोक मे जितने दर्शन है, सब अपनी बात कर रहे हैं। लोगो की कैसी कल्पना थी कि दूसरे के सिर फोड दो तो उसका मोक्ष हो गया। अब पचमकाल मे सिर तो नहीं फोडा जा रहा, पर श्रद्धा के सिर तोडे जा रहे है। आयतनो से हट गये हैं अनायतनो मे जाने लगे है। मगल–आयतन तो आगम मे चार ही कहे हैं। अरहत मगल सिद्ध मगल, साधु मगल और केवलीप्रणीत जिनशासन मगल है। इन चार मगलो के अलावा विश्व मे कोई मगल–आयतन नही है। जिस स्थान पर इनकी आराधना हो रही है वे तो मगल आयतन है और

जहॉ इनकी आराधना नही हो रही है, वे अमगल आयतन है।

भो चेतन! जहॉ अहिसा सत्य सयम है, वह धर्म मगल है। अन्यथा मगल नाम मोक्ष का कारण नहीं है। किसी का नाम आपने वर्धमान रख दिया तो क्या आप तीर्थंकर वर्धमान हो गये? तीर्थंकर वर्धमान तो वह ही थे जो सिद्धार्थ के बेटे थे। ध्यान रखना, लोक मे ऑंक का दूध भी होता है गाय का दूध भी होता है वृक्षो का भी क्षीर होता है। ऑखो मे जलन पडे तो दूध का फोहा (रुई को दूध मे भिगोकर) रख लो, पर ऑक के दूध से ऑख ठीक नही होती है, उससे ऑखे फूट जायेगी। इसी प्रकार से धर्म नाम से धर्म नही होता है धर्म के गुण जब तक नही है तब तक धर्म–धर्म नही है धर्म वही है जिसमे अहिसा हो।

भो ज्ञानी! जहॉ अहिसा विराजी है, जहॉ वात्सल्य विराजा है वहॉ देव शास्त्र, गुरु तीनो विराजे है वह ही मगल है और वही उत्तम है। सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह यह अहिसा के लिये ही बनाये गये है और यह सब अहिसा का ही कथन करने वाले है। अहिसा से बढकर न कोई सत्य है न कोई अचौर्य है न ब्रह्मचर्य है न अपरिग्रह है। सक्षेप मे इतना समझ लेना कि जैसे हिसा पाप है, ऐसे पॉचो ही पाप है और परिग्रह पॉचो पापो का सरदार है। जितने अनर्थ करा रहा है, हिसा करा रहा है परिग्रह ही करा रहा है। परन्तु लोग पॉचवे पाप को पाप ही नही समझ रहे। जबकि बहुआरभ परिग्रह का सचय करने से तथा उसमे राग की तीव्रता से नरक आयु का बध होता है। इसीलिये ध्यान रखना जिसके पास बाहर की विभूति है वही परिग्रह है, क्योकि मूर्च्छा परिग्रह है। कोई यह माने बाहर पुद्गल पर पुद्गल मूर्च्छा के अभाव मे है पर यह कैसे सभ्व है कि मूर्च्छा न हो और द्रव्य है। अरे! अदर मे तो कुछ नही कपडे तो ऊपर ही ऊपर ही पडे हैं सत्य तो यह है कि वसन तभी तक है, जब तक वासनाऍ है। यदि वासनाऍ उतर जाये तो वसन उतरने मे देर नही लगेगी। काललब्धि को तेरा पुरुषार्थ ही बुलायेगा तेरा पुरुषार्थ ही तेरी काललब्धि बनायेगा। भाग्य भी पुरुषार्थ से ही है, जिस समय जो कार्य हो, वह ही होनहार है। अत काललब्धि तभी आयेगी जब तुम वासना को उतारोगे, इसके पहले आने वाले नही है।

भो ज्ञानी! यदि कोई जीव अनेक दु खो से पीडित है आप सोचते हो कि भगवान इसे जल्दी उठा ले। ओहो! वह तो तभी उठेगा जब उसको आयुकर्म उठायेगा लेकिन आपने तो अपने भावो से एक जीव को उठा दिया पचेन्द्रिय का घात कर डाला। अत खोटे शब्द कभी मत बोलना। दु खी जीव दु खी जरूर है लेकिन वह तुम्हारे द्वारा जबरदस्ती मरना नही चाहता। इस तरह मरना कोई समाधि नही है यह तो आत्मघात है। शुद्धात्म चितन मे लीन होकर के आयु कर्म का क्षय होने पर परमेष्ठी का ध्यान करते हुये, प्राणो के वियोग होने का नाम समाधि है। यदि आप ऐसा कहते हो कि अच्छे चले गये क्योकि वे बहुत कष्ट मे थे। अरे! तुम ऐसा क्यो कह रहे हो, अब तो

चले ही गये। अब भी तुम हिसा कर रहे हो। आचार्य महाराजको यह इसलिए लिखना पडा कि लोगो के ऐसे भी विचार होते हैं। यह भी बहुत प्रबल रूढी है कि सुख बडे कष्टो से मिलता है इसीलिए जो सुख से मर जाये तो सुखी होता है, दु ख से मरेगा तो दु खी होगा, ऐसा आप कभी मत सोचना। क्योकि वर्तमान मे तुम सुखी हो यदि अशुभ कर्म किये तो दु खी होगे और वर्तमान मे तुम दु खी हो, यदि अच्छे काम किये तो सुखी हो जाओगे। लेकिन यदि ऐसा सोच करके कि यह अभी बडा सुखी है। यदि इसको अभी खत्म कर दो, तो वह हमेशा सुखी ही बना रहेगा--यह पुरानी बाते मिथ्यात्व मे की रगी हुई है। ऐसे कुतर्क रूपी खडग (तलवार) के द्वारा सुखी जीव का कभी घात नही करे। ऐसे भी सम्प्रदाय हुए हैं जो ऐसा मानते थे। गुरु समाधि मे बैठे है उसी समय मार दो, जिससे वे सिद्ध बन जाये। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने आपको जो हेतु दिये है इन हेतुओ पर विवेक से चिन्तन करना और कभी भी अशुभ-भावो का प्रयोग नही करना।

•

पालघाट-मदिर और सामनेपूर्ववर्ती मदिर का अधिष्ठान

"अंध विश्वास–खतरनाक"

उपलब्धि सुगति साधनसमाधिसारस्य भूयसोऽभ्यासात्।
स्वगुरो शिष्येण शिरो न कर्तनीय सुधर्ममभिलषिता।।८७।।

अन्वयार्थ –सुधर्मम् अभिलषिता = सत्य धर्म के अभिलाषी। शिष्येण = शिष्य के द्वारा। भूयस अभ्यासात् = अधिक अभ्यास से। उपलब्धिसुगतिसाधन समाधि = ज्ञान और सुगति करने मे कारण सारस्य भूत समाधि का सार प्राप्त करने वाले। स्वगुरो =अपने गुरु का। शिर = मस्तक न कर्तनीय= नहीं काटा जाना चाहिये।

धनलवपिपासिताना विनेयविश्वासनाय दर्शयताम्।
झटिति घटचटकमोक्ष श्रद्धेय नैव खारपटिकानाम्।।८८।।

अन्वयार्थ – धनलवपिपासिताना =थोडे से धन के प्यासे। विनेय विश्वासनाय दर्शयताम् = शिष्यो को विश्वास उत्पन्न करने के लिये दिखलाने वाले। खारपटिकानाम्=खाारपटिको के। झटितिघटचटकमोक्ष = शीघ्र ही घडे के फूटने से। चिडिया के मोक्ष के समान मोक्ष को। नैव श्रद्धेय = श्रद्धान मे नही लाना चाहिये।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ५३।।

मनीषियो! यह जीव अपने विचारो को अपने आप मे सोचना प्रारभ कर दे, तो सत्य निर्णय होगा पर जब हम दूसरो के उधार विचारो से विचार करते हैं तो कभी निज के सत्य का निर्णय नही होता, क्योकि पर के द्वारा दिखलाया गया मार्ग मार्गदर्शक तो हो सकता है पर मार्ग का पथिक नही हो सकता। पथिक बनकर तो स्वय ही चलना पडेगा और जिसने मार्गदर्शक को ही पथिक बना लिया तो भो ज्ञानी! तुम गतव्य (मार्ग) को प्राप्त नही कर सकोगे। मनीषियो! लोक चितवन अनत है, लेकिन ज्ञानी लोक चितवन मे नहीं जीता है। ज्ञानी हमेशा लोकोत्तर चितन मे जीता है, क्योकि लोक चितवन अपनी सीमा मे है। जिस देश मे, जिस परिवेश मे जो रहता है उसका वैसा चितन होता है, लेकिन मुमुक्षु देश–परिवेश से परे होकर के सोचता है इसीलिये उसका चिन्तन लोकोत्तर चितन होता है। एक पिता अपने बेटा को घर का मुखिया बना देता है अथवा आप उसे नगर का मुखिया बना देते हैं तो उसके चितवन मे वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार सम्राट की दृष्टि मे राज्य

व्यवस्थाएँ आयेंगी, जबकि सत के चितवन मे सपूर्ण विश्व पुत्र के समान दिखता है क्योकि उसके चितवन मे नगर, देश, राष्ट्र की सीमाये नही होती हैं, जननी, परिजन की सीमाये नही होती हैं, उसकी दृष्टि मे प्राणी मात्र की सीमाये होती हैं। इसीलिये निर्ग्रंथो की शैली मे और सग्रथो की शैली मे बहुत अतर होता है। निर्ग्रंथ निज की बात करते है।

भो ज्ञानी! भगवन् कुदकुद देव के समयसार ग्रथ मे, आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने आत्म–ख्याति टीका मे सैंतालीस शक्तियो की चर्चा की है। अनत शक्तियो को उद्भव कराने वाली वह शक्तिया प्रत्येक जीव के अदर हैं। उन सैंतालीस शक्तियो मे चवालीसवीं शक्ति सम्प्रदान शक्ति है। सम्प्रदान क्या कह रहा है? "किसके लिए"? आप कहते हो 'नम श्री समयसाराय", समयसार को नमस्कार। किसके लिये नमस्कार? स्वानुभूति मे प्रकाशित होता है ऐसे समयसार के लिये नमस्कार है। वह स्वभाव किसके लिये? स्वय के लिये, स्वयभू के लिये। स्वयभू सज्ञा किसके लिए है? भोग के लिये, योग के लिये? नही, उपयोग के लिए। मनीषियो! ध्यान रखना स्वयभू जब भी बनता है उपयोग ही बनता है। स्वयभू मे योग नहीं होता है। स्वयभू के तो मात्र उपयोग ही होता है, सयोगकेवली तक ही योग है, अयोग केवली को योग नहीं है।

भो ज्ञानी! अब आपको ४४वी शक्ति का एकान्त मे बैठकर चिन्तन करना है कि धन कमा रहे हो, सतान को जन्म दिया है किसके लिये? ये सबध स्थापित कर रहे हो, किसके लिए? तूने दूसरे को गाली दी किसके लिये? सम्मान करा रहे हो किसके लिये? सोचो तनिक जिसके लिए तुम कहना चाहते हो वह कुछ भी नहीं चाहता है। लेकिन लोक मे देखो कितना सम्प्रदान जोड के रखा है। आपने पुत्र के लिये भवन खडा किया उसको खोदते समय नींव मे चुहिया निकली थी। उसे आपने उठाकर बाहर रख दिया था। उसके बच्चे भी थे, उसका परिवार भी था। उसके परिवार को आपने बिगाडा है किसके लिये? आपने खेत मे हल चलाया किसके लिये? आचार्य अमितगति स्वामी लिख रहे है–अहो मनीषियो! (जैसी) गर्भनी मॉ के गर्भपात कराने मे जो हिसा लग रही है वैसी ही आषाढ श्रावण के महीने मे ये भूमि गर्भनी हो जाती है, अनत जीव अपने गर्भ मे रखती है और तुम हल को ले जाकर सबका गर्भपात करा देते हो। तुम्हे भी वैसी ही हिसा लगती है। यह किसके लिये? अहो किसानो! जब हल चलता है तो लाखो जीव एक–एक इच पर मरते हैं। अहो! ये किसके लिये? भो चेतन! अभी तो सम्प्रदान की ही चर्चा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त षट्कारक तथा छियालीस शक्ति और है। यह किसके लिये? जब तू भोग–दृष्टि को लेकर चला था उस प्रदेश पर नवकोटि सर्मूच्छनो का घात तूने किया, किसके लिये किया? जो सतान जन्म लेगी वो किसके लिये? इसीलिए सम्प्रदान कह रहा है, किसके लिये? तुम जो सब कुछ कर रहे हो उसका उत्तर तुम्हारे पास नही है। यह सब किसके लिये है? ये सब तेरे साथ नही चलेगे। इनके साथ आप भी जाओगे नही।

भो ज्ञानी! गुरु नही है। पच परमेष्ठी नही है, तो बाहर के द्रव्य तुम्हारे साथ हैं किसके लिये? सब यहीं के सबध हैं और सबध जो–जो होते हैं, वह सब झूठे होते है। ये सबध अभूतार्थ हैं, भूतार्थ नहीं हैं। संबध किसके लिये? जब आपने किसी से कहा–आइये साहब बैठिये। जिससे आइये कहा है वह पुद्गल की पर्याय है। जिसका आपने आव्हान किया है जो चर्म–चक्षु से दिख रहा था, वह पुद्गल था। इसीलिये पर्याय ने पर्याय को पर्याय से, पर्याय के लिये, पर्याय मे तुमने सत्कार किया है। अत पर्यायो का सत्कार करने वाला पर्याय मे ही भटकता है और जो पर्यायी का सत्कार करता वह परमात्मा बन जाता है। जिसने आज तक पर्याय का सम्मान किया है पर्याय का दुलार किया है, पर्याय को पुकारा है, पर्याय को पुचकारा है, वह पर्यायो मे पडा हुआ है।

भो ज्ञानी! षटकारक की व्यवस्था को समझ लो। बिना षटकारक के कोई भी वस्तु व्यवस्था नही बनती। कुभकार प्रथम कारक कर्ता और कर्ता कहता है कुभकार कर्म कारक मिट्टी को कर्म कारक कह रहा है। मिट्टी से सम्प्रदान कहता है। पानी भरने के लिये घट क्यो बनाया ? अपादान कह रहा है पानी को पीने के लिये बनाया। अधिकरण कहेगा अपने घर मे बैठकर बनाया। ये भेदकारक है। अब अर्थ कारक की चर्चा करो। अहो कुभकार! तू कर्त्तत्व भाव मे लीन है तूने घट बनाया तेरा चर्म घट मे है या तेरा धर्म घट मे है? तेरा अश–मात्र भी घट मे नही है? ऑखो से निहार लो देख लो कही लेश मात्र भी कुभकार नही है। तो घट को किसने बनाया? मिट्टी ने मिट्टी को मिटटी के द्वारा मिट्टी के लिए, मिटटी से घट निर्मित किया। यह अभेद षट्कारक है। सैतालीसवी शक्ति कहती है कि षट्कारक लगा दो। किसने बनाया? स्वय ने बनाया। किसको बनाया? स्वय को बनाया। किसके द्वारा बनाया? स्वय के द्वारा किसके लिये? स्वय के लिये। किससे? स्वय से किसमे रचना की तूने? स्वय मे बैठकर मैने स्वयभू की रचना की। वह मेरा स्वयभू है।

अज्ञानियो! वस्तुओ मे आत्मा भी वस्तु है। व्यक्ति तो पर्याय है वस्तु द्रव्य है। आचार्य कार्तिकेयस्वामी ने धर्म की परिभाषा मे वस्तु स्वभावो धम्मो' कहा। अरे चवालीसवी शक्ति मे भी कहा है। भो चेतन! तू स्वचतुष्टय मे है। अरे! एकान्त मे बैठ जाना फिर कहना यह सब किसके लिये? जब चवालीसवी शक्ति का चितन आप करे तो अपनी आयु कर्म को सामने रख लेना जैसे बालो की कघी के समय दर्पण को सामने रख लेते हो ऐसे ही आयु कर्म को सामने रख लेना फिर चर्चा प्रारभ करना। शिशु अवस्था निकल गई किसके लिये? अब प्रौढ हो गये, किसके लिये? जो कुछ हो रहा है किसके लिये? मिथ्यात्व, प्रमाद, कषाय, लोभ किसके लिये? व्रती तू बना किसके लिये? लगता है तुझे शक्तियो का भान नही है।

भो ज्ञानी! कर्म की विचित्रता मे राजवैद्य भी राजा की रक्षा नहीं कर पाते। इसीलिये आप

औषधि का भी विकल्प छोड दो। अब कहना, किसके लिये? आप पच परमेष्ठी की पूजा कर रहे हो, किसके लिये? अपने कर्मो का क्षय करने के लिये। आपने व्रत स्वीकार किये है, अपने कर्म क्षय के लिये। आप जो प्रतिमा लेकर आये हैं समाज के लिये नहीं तो किसके लिये? त्यागी–व्रती फर्श पर नही बैठते, वे आये और धीरे से पैर से फर्श उठाकर फेंक दिया, वहॉ आपको ध्यान रखना था कि अहो! मेरा सयम कितना निर्मल है? मै दूसरे के लिये असतुष्ट करने के लिये नही आया हूँ। आपने भोजन करने के लिये सोला के वस्त्र पहने और नाती ने धोती छू ली, अब बताओ वह सोला किसके लिये किया था? भोजन के लिये कि भावो के लिये? आपने धीरे से बच्चे के गाल पर चॉटा मार दिया किस लिये? क्या सोला बन जायेगा, इसीलिये? सोला तो करना ही चाहिए, लेकिन भावो के सोलो का भी ध्यान रखना। चलो अब तो छू ही लिया, धो ही सकते है, लेकिन दूसरो के परिणामो को कलुषित मत करो।

भो ज्ञानी! अभी तो आपने कर्म का धर्म सुना है। धर्म को धर्म मे कुछ भी नही करना पडता। जहॉ कुछ न करना पडे, उसी का नाम है धर्म। इसीलिये आप मुमुक्षु कहला रहे है, किसके लिये? विघटन करने के लिये? परस्पर के वात्सल्य को नष्ट करने के लिये? समाज मे बिखराव करने के लिये? अहो मनीषियो! मुमुक्षु स्वय के लिये बने है मोक्ष की इच्छा के लिये। इतने सारे प्रश्न जब आप एक साथ करोगे, तो कितने ही दिन क्या? पूरी पर्याय निकल जाए तो भी चितन समाप्त नही होगा। अब उसको समेट लो पर इतना ध्यान रखना ४४वी शक्ति सम्प्रदान कहती है कि एकान्त मे बैठकर के जब तुम जाओगे और वहॉ सोचना यह सब कुछ मैने बुना है, तो हे मकडी! बताओ ये जाल किसके लिये है? देखना, यह मकडी जितना खाती है उतना जाल फैला देती है, उसमे जीव आकर फस जाते हैं और सब मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, परतु अत मे देखो अहो मकडी। तूने ताना–बाना बुना है, किसके लिये? और अत मे उसी मे फसती है स्वय के लिए। अहो मनीषियो! ये भवन किसके लिये? प्रभु मेरी अर्थी यही से निकलेगी। क्या, इसीलिये? बुरा मत मानना क्योकि जिसे तुम मरघट कहते हो वो असत्य है। मरघट शब्द अपने आप मे कहता है जिस घट पर मरा जाये, उसका नाम मरघट है। पर उसे कभी मरघट नहीं कहते हो। उस जलाने के स्थान को जलघट कहना चाहिये। जो तुमने भवन खडे कर लिये, किसके लिये? अब प्राप्त करो उत्तर। जिस दिन सत्य को कहने लगोगे, तो तुम भगवान बन जाओगे। यदि हमने ४४वी शक्ति को समझ लिया तो हमे हमारा असत्य मिटाना पडेगा। इसीलिये आज घर मे बैठकर जरूर सोचना कि यह सब होता है किसके लिये? इतना ही सोचना है ज्यादा सोचना ही नही है अपने को। अत आचार्य भगवन कह रहे है यह हिसा के कर्म छोड दो। ये किसके लिए कर रहे हो?

मनीषियो! अज्ञानता के विश्वासो से दर्शन खडे हो जाते है, यानि समझते जाओ और हृदय

की ग्रथियो को सुलझाते जाना कि गुरुदेव ध्यान मे विराजे हैं। ध्यान रखना गुरु तो सबके हैं। गुरु समाधि में बैठे हैं, अब शुद्धोपयोग मे चले गये, परमेश्वर मे चले गये। अब एक काम करो। यदि ये जीते रहेगे तो फिर से ससार में आ जायेगे सो इनका सिर काट दो तो परमेश्वर के पास ही रह जायें। तो मनीषियो। ऐसे भी दर्शन थे इस भारत देश मे। जिन्होने अपने कितने ही गुरुओ को भगवान के पास भेज दिया लेकिन वह भी हिसा ही है। ऐसे कोई सिद्धालय मे नही जाता है अपनी परिणति से ही जाता, इसीलिये ऐसी हिसा नही करना।

भो ज्ञानियो! जिनवाणी कहती है कि जो सामने दिखे वह सत्य है। इसलिये ध्यान रखना पानी के प्यासे हिसक नही होते वह तो पानी पीकर शात हो जाते है लेकिन लोभ के वश होकर धन के प्यासे सबसे बडे हिसक और कसाई होते है। धन के प्यासे व्यक्ति शिष्यो को विश्वास दिला देते है देखो ऐसा करने से मोक्ष मिलता है। बडे–बडे धन के लोलुप व्यक्तियो ने अपने भक्त बना लिये। जो आगम विरुद्ध होते है वे बडे–बडे को ही पकडते हैं। अत अधविश्वास नही करना वह बडा खतरनाक होता है।

तेनिमलै, जैन मुनियो की आवास गुफा

"जिनमत रहस्य ज्ञाता हिसा में प्रदत्त नही होता"

दृष्टवापरं पुरस्तादशनाय क्षामकुक्षिमायान्तम् ।
निजमासदानरभसादालभनीयो न चात्माऽपि ।। ८९ ।।

अन्वयार्थ – च = और। अशनाय= भोजन के लिए। पुरस्नात् आयान्तम् = सन्मुख से आये हुए। अपर = अन्य। क्षाम कुक्षिम् = दुर्बल उदर वाले अर्थात भूखे पुरुष को। दृष्टवा = देख करके। निजमास दानरभसात् = अपने शरीर का मॉस देने की उत्सुकता से। आत्माऽपि = अपने को भी। न आलभनीय =नही घातना चाहिए।

को नाम विशति मोह नयभग विशारदानुपास्य गुरून्।
विदित जिनमत रहस्य श्रयन्न हिसा विशुद्धमति-।। ९०।।

अन्वयार्थ – नयभग विशारदान = नयभगो के जानने मे प्रवीण। गुरून उपास्य = गुरुओ की उपासना करके। विदित जिनमत रहस्य = जिनमत के रहस्यो को जानने वाला को नाम = ऐसा कौन सा विशुद्धमति = निर्मल बुद्धिधारी है जो अहिसा श्रयन् = अहिसा का आश्रय लेकर। मोह विशति = मूढता को प्राप्त होगा।

|| पुरुषार्थ देशना || ५४||

मनीषियो। भगवान वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने आपको सहज सूत्र प्रदान किया कि भगवान तीर्थेश की वाणी तभी समझ मे आती है जब स्वय का तीर्थ पवित्र होता है। जब तक तुम्हारा रत्नत्रय तीर्थ नही जागता है तब तक तीर्थ पर शीश भी नही झुकता है। जिसको श्रद्धा का तीर्थ उद्भव होता है उसका शीश तीर्थ भूमि को स्वयमेव झुक जाता है। अन्यथा तीर्थेश के पधारने पर भी वो तीर्थंकर नही मान पाता। भगवान आदिनाथ के तीर्थ मे कोई दूसरा नहीं उनका ही नाती था जिनकी आखो मे भगवान नही झलके। वर्द्धमान स्वामी के तीर्थ मे भी छह व्यक्ति थे जिन्होने अपने–आपको तीर्थंकर घोषित किया था लेकिन ध्यान रखना, तीर्थ कभी अपने आप को तीर्थ नही कहता। बडे बडाई न करे बडे न

बोले बोल, हीरा मुख से न कहे, लाख हमारे मोल।" जो मेरा सत है, जो मेरी सत्ता है वह कभी असत्ता नही होती है। सत्ता अलौकिक होती है और असत्ता तात्कालिक होती है। द्रव्य त्रैकालिक होता है, पर्याय तात्कालिक होती है।

अहो मुमुक्षु! किसी जीव की विकारी पर्याय को देखकर तुम उसे विकारी द्रव्य ही मत मान बैठना, किसी से ग्लानि मत करना, किसी को हीन मत मानना। जो निगोद मे विराजा है और जो सिद्धालय मे विराजा है, वे सब जीवत्व है। मॉ जिनवाणी कह रही है कि तुम किसी की जीवत्व शक्ति का विनाश नही करा सकते। रिश्ते पर्याय के होते है उपयोग पर्यायी का होता है। अहो! रिश्तो के मिलने–बिछुडने पर ज्ञानी खिन्न नही होता। जब हमारे इष्ट का वियोग होता है, तो अज्ञानी रोता है अनिष्ट का सयोग होता है तो अज्ञानी रोता है, पीडा होती है। ज्ञानी यह सब कुछ होने पर कहता है–यदि नही होगा तो हम ससारी कैसे कहलाएँगे। दुख भी होगा, सुख भी होगा सम्मान भी होगा अपमान भी होगा। जब हम सम्मान को सहन करने की शक्ति रखते है तो अपमान को भी सहन करने की शक्ति रखना चाहिए। चन्द्रमा ही बढता है, चन्द्रमा ही घटता है। मनीषियो तारे न कभी बढते है न कभी घटते है। महापुरुषो के ही सम्मान होते हैं और महापुरुषो पर ही उपसर्ग होते है। यह तो सब कुछ होता ही है। द्रव्य नाना रूपता को प्राप्त होता है क्योकि पर्याय नाना रूप मे नही रहेगी तो भवित्व भाव घटित नही होगा।

भो ज्ञानी! कभी पाप की कीचड गली मे होती है तो कभी पुण्य की धूल उडा करती है लेकिन यह सब कुछ होता है घबराना नही। जहॉ धूल उड रही थी उसी गली मे आज कीचड फैली है परतु चिता नही करो कुछ दिन ज्ञाता–दृष्टा बन जाओ, आपको वही धूल भी उडती मिलेगी। मनीषियो! जो आज धूल पर विराजे है वो कभी फूल पर विराजे थे जो फूल मे विराजे होते है वे धूल मे विराजे जाते है। पुण्य–पाप की परिणति से ही सब कुछ होता है। अहो ज्ञानियो! वही पुष्प कोई पुन ले के आता है। माला बनाई, गले मे पडी और पुन धूल मे मिल गयी। श्रद्धा का तीर्थ तेरे पास है तो तीर्थ दिखेगा अन्यथा, तीर्थों मे ढूढने पर भी भगवान नही दिखेगे। अत यह श्रद्धा बनाकर चलो कि जो मेरे साथ घटित हो रहा है वह कोई अनहोनी नही है, जो सम्बधियो पडोसियो के साथ घटित हो रहा है वह भी कोई अनहोनी नही है। यह तो सब कुछ होता था होता रहेगा और होता है। अनहोनी घटना उस दिन तेरे साथ घटेगी जिस दिन तू कर्मों से मुक्त हो जायेगा। हे भगवन्! वह दिन कब आए जब मै होनी से बचकर अनहोनी मे चला जाऊ। भो ज्ञानी !कोई अमल कहता है कोई अनुपम कहता है, कोई निर्मल कहता है, कोई कृत कृत्य कहता है। कोई परमेश्वर कहता है तो कोई परम ब्रम्ह कहता है मै सब उपमाओ से रहित चिद् चित् रूप हूँ। ये मेरी जीवत्व सत्ता है। लोगो ने पुद्गलो को देख–देखकर अपने परिणामो को बिगाड रखा है। पर जीवत्व सत्ता का भान आज तक नही किया। यही जिनेद्र देशना है यही धर्म है, यही वस्तु का स्वभाव है। परन्तु कोई

रग को देख रहा है, कोई ढग को देख रहा है और कोई राग--रग मे जा रहा है, पर चैतन्य के ढग को समझ ही नहीं पा रहा है। अहो जीव! तेरा वास्तविक स्वरुप तो अरस, अरूपी अगध और अवक्तव्य है। तू पुद्गल पर पुद्गल रगडकर अपने आप को कहता है–'मै ही चमकता हूँ।' मनीषियो! यदि एक बार भी शुद्धात्म तत्त्व की चर्चा कर लेते, तो फिर तू व्यर्थ की चर्चा नहीं करता। तुम 'नाम सज्ञाओ मे पडे हो। सज्ञाओ को छोडो। इसलिए ध्यान से समझना, चार सज्ञाओ की सीमा है। पर एक सज्ञा असीम है। चार सज्ञाए जीवत्व भाव से समन्वित हैं। जबकि 'नाम' वाली सज्ञा जीवत्व भाव से रहित है। आहार, भय, मैथुन परिग्रह यह तो जीव का विकारी भाव है। नाम' पुद्गल है इसमे जीवत्व भाव लेशमात्र भी नही है। आहार सज्ञा मे आसाता–वेदनीय कर्म की उदीरणा जब आती है तब भूख लगती है। अहो! देखना ससार की दशा अशुभ कर्म से भूख लगती है और शुभ कर्म से भोजन मिलता है। लाभ अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से लाभ होता है और साता के उदय से स्वाद आता है। साता नही है तो कितने ही पकवान रख देना, भोजन मे कडवाहट रहेगी, स्वाद ही नहीं आएगा और लाभ अन्तराय नही है तो दुनिया मे घूम लेना, तुम्हे खाने को नही मिलेगा। लाभ–अन्तराय का क्षयोपशम है तो एक रोकेगा दूसरा हाथ पकड लेगा। यह ससार की दशा है यह सब भी होता है।

भो ज्ञानी! जब आग लगे तो उसको बुझाओ मत, वह स्वय बुझ जाएगी। बुझाने का पुरुषार्थ ज्यादा करोगे, तो भडक जाएगी। ध्यान रखना लकडियॉ मत डालना बुझ जाएगी। आपने पानी फेका और अशुभ कर्म का उदय होगा, तो वह घी का काम करेगा। अहो! पत्नी कहने लगी– स्वामी! निर्ग्रंथ योगी के चरणो मे जाकर मैने रवि–व्रत स्वीकार किया है। छप्पन कोटी दीनार का स्वामी अहकार मे भरकर कहता है–'व्रत वे करें जो घास खोदकर सिर पर रखे।' व्रत–सयम वह करे जिनके घर मे खाने को नही है। अहकार मे आकर पत्नी को व्रत नही करने दिया। एक दिन स्वामी शयन कक्ष मे विश्राम कर रहा था, अग्नि लगी एक क्षण मे सब विलय को प्राप्त हो गया। देखते ही देखते करोडपति बेचारा सडक पति हो गया। सातो बेटे बिलख रहे है। अहो! ससार की दशा जिसको दूध के कटोरे भर–भर कर सामने रखे जाते थे, वह आज चुल्लू भर पानी को रो रहे है। जिनके यहॉ अनेक अनुचर काम करते थे, वह आज किकर बनने के लिए गलियो मे घूमने लगे। सात भाइयो को एक मित्र ने काम पर रख लिया लाखो रुपए दिये पर सब खाक हो गए। मनीषियो! कर्म के विपाक मे सयोग भी काम नहीं करता। सयोग भी वही सहयोग करता है, जहॉं स्वय को सुकृत का सयोग हो। एक बार मैंने आपको बताया था आचार्य महावीरकीर्ति महाराज सम्मेद शिखर पर ध्यान कर रहे थे। एक भील भाला ले कर मारने आया था। जैसे ही उसने मुनि की ध्यान मुद्रा को देखा और भाव बदल गया। भाला फिक गया और चरणो मे भाल टिक गया। जिसका पुण्य भला है उसके चरणो मे भाल गिरते हैं और जिसका पुण्य भला नहीं है उनके चरणो

मे भाले ही गिरते हैं। इसलिये भला करना चाहते हो तो पुण्य के भाव करो अशुभ से बचो। मित्र ने सातो भाइयो को सोने की दुकान पर बिठाया, कुछ नही हुआ। अन्त मे कहा, भाई! अब कुछ तो करना ही होगा। जाओ, यह हँसिया ले जाओ। देखो हीरे–मोती की दुकान पर बैठने वाले बेटो के हाथ मे जब मजदूरी के लिये हँसिया पकडाया गया होगा, तब उनके हृदय की वेदना क्या हुई होगी? परन्तु ज्ञानी कहता–यह भी सब कुछ होता है। भाभी ने कहा–लाला! आप को भोजन तभी दिया जाएगा, पहले सेठजी की घास लेकर आओ। चल दिया लघु भ्राता ने जब घास को खोद के गट्ठा बना लिया और देखा कि हँसिया गुम गया, सोचता है–कोई नही कहेगा हँसिया गुम गया–सब यही कहेगे कि हँसिया बेच के कुछ खाकर आ गये। दृष्टि डालता है, एक नाग–नागिन के ऊपर हँसिया रखा हुआ है। बोला–हे सर्पराज! या तो हँसिया दे दो या मुझे डस लो। आपके डसने से मुझे पीडा नही होगी लेकिन हँसिया विहीन घर मैं जाऊगा, तो जो पीडा होगी वो मेरा हृदय सहन नही कर पायेगा। वह सॉप नही धरणेद्र देव था। कहता है–भगवान पारस प्रभु! की पूजा करो। आपके पिताजी ने व्रत का अपमान किया था। मनीषियो! व्रत का अपमान करने मात्र से इतना घात हो गया जो व्रती का अपमान करेगा उसका कितना घात होगा ? इसलिए जीवन मे उस गली से नही चलना जिस गली मे फिसलकर गिर जाओ। कर्म पक तो कहता है मेरा काम तो गिराना है। जल से पक उत्पन्न होता है जल से ही पक धुलता है। चित्त से पाप होता है और चित्त से ही पाप धुलता है। व्रत की अवहेलना की थी पिताश्री ने और भीख मॉगनी पडी पुत्रो को। हे पुत्रो! तुम्हारा भी पाप का उदय था कि ऐसे पिता के घर तुम जनमे हो। जब पुन रवि व्रत किया और माता–पिता को समाचार भेज दिया कि आप भी रवि व्रत करो। जिसने अवहेलना की थी आज वह दो उपवास कर रहा है। मालूम चला कुछ ही दिन मे ऐसा पलडा पलटा कि धनी हुआ। ऐसा रवि–व्रत की कथा मे लिखा है।

भो ज्ञानी! यह सब कुछ भी होता है। ज्ञानी उसमे भी न खिलता है और न दु खित होता। ज्ञानी विपत्तियो मे कूलते नही और सम्पदाओ मे कभी फूलते नही। कौतुहली वे होते हैं जो अज्ञानी होते है। वैभव था ठीक है चला गया ठीक है द्रव्य अपने स्वभाव मे है। गया कहॉ? बोले–मर गए। कहॉ मर गए? सैतालीस शक्तियो मे पहली शक्ति जीवत्व शक्ति है। मनीषियो! जीवत्व सत्ता सर्वत्र है। सम्पूर्ण पदार्थो म सर्वव्यापी है। इसलिए ध्यान रखना कभी मत सोचना कौन है? किसका है? किसको कहूँ? क्या कहूँ? किस लिए कहूँ? कैसा कहूँ? किससे कहूँ? अरे! निज ने कहा निज को कहा, निज से कहा, निज के लिए कहा, निज मे कहा तो सत्ता है। अहो! शुद्धात्म तत्त्व की चर्चाये इतनी मधुर है कि कैसे कहे कि अध्यात्म मे आनन्द नही होता। जो चर्चाओ का आनन्द लूट रहा है, भो चेतन्य! एक दिन ब्रम्हचर्य का आनद भी लूटेगा। इसलिए अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं–अब तुम जीवत्व सत्ता को समझ कर यह भी नही कहना कि यह भूखा है, यह प्यासा है इसको अपना

तन दे दूँ इसको अपना रक्त दे दू। पर्याय नष्ट होगी पर सत्ता त्रैकालिक है। तू कभी नही मरेगा। भो चेतन! आहार दान होता है औषधि दान होता है, पर रक्तदान, दान नहीं है। भूखा आये तुम्हारे पास, एक रोटी है चार विभाग करके उसे खिला देना, लेकिन शरीर के मास को स्वय के मास को निकाल कर के भी नही खिलाना। जैन सिद्धात उसे धर्म नही कहेगा। वह हिसा ही है। अर्हन्त विहार कालोनी मे एक मकान के नीचे बहुत सारी रोटियों का ढेर लगा था और गाय खा रही थी, उन सबमे फफूँद लगी थी। अहो! यदि खिलाना ही था, शाम को खिला देते। लगता है खिलाने की दृष्टि ही नही थी वह तो हो गयी, इतना लोभ होता है। अरे! कोई गरीब है उसे खिलाना ही है तो अच्छा खिला दो। आत्म घात करके या शरीर को घात करके किसी को खिला देना धर्म नही है हिसा ही है और अभक्ष्य खिलाया है वह तो प्रत्यक्ष ही हिसा है। इसलिए भगवन् कह रहे हैं। जिसकी मति विशुद्ध नही है वह अहिसा को नही समझ पाएगा। जिस जिनेद्र की देशना मे राग–द्वेष को हँसी–मजाक करने को चुगली करने को, खरी–खोटी बाते करने को हिसा कहा हो उस जिनेद्र की देशना मे प्राणी के घात को कैसे अहिसा कहा जायगा?

भो ज्ञानी! जो भगवान जिनेद्र की वाणी के रहस्यो को जानने वाला है, वह विशुद्धमति, निर्मल बुद्धि वाला जीव नयो को जान लेता है। वह जीव लोक की पाखण्डता को लोक के प्रलोभन को जानकर मूढता को छोडकर तत्त्व मनीषा का प्रयोग करके, इतना ही ध्यान रखता है कि यह सब कुछ होता है। इसलिए रागद्वेष नही करता। भो मनीषियो! आज कोई मारे पीटे लूटे कुछ भी कहे फिर भी सोचना यह सब कुछ होता है।
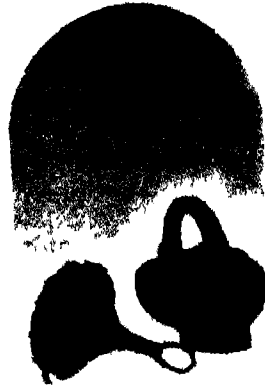
"मत करो, किसी से घृणा"

यदिद प्रमादयोगादसदभिधान विधीयते किमपि।
तदनृतमपि विज्ञेय तद्भेदा सति चत्वार ।।९१।।

अन्वयार्थ यत कि अपि = जो कुछ भी। प्रमादयोगात् = प्रमाद के योग से। इद असत् अभिधान = यह असत्य कथन। विधीयते = कहा जाता है। तत् अनृत = वह असत्य। विज्ञेय = जानना चाहिये। तद् भेदा अपि = उस असत्य के भेद भी। चत्वार सति = चार है।

स्वक्षेत्रकालभावै सदपि हि यस्मिन्निषिध्यते वस्तु।
तत्प्रथमसत्य स्यान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र।।९२।।

अन्वयार्थ स्वक्षेत्रकालभाव = अपने द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से। सदपि हि वस्तु = विद्यमान भी वस्तु। यस्मिन् = जिस वचन मे। निषिद्धयते = निषिद्ध की जाती है। तत् प्रथम असत्य = वह पहला असत्य है। यथा अत्र = जैसे यहाँ पर। देवदत्तोऽत्र नास्ति = देवदत्त नही है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ५५।।

भो मनीषियो! कुन्दकुन्द स्वामी के समयसार मे वर्णित ४७ शक्तियो मे दूसरी शक्ति है चिति–शक्ति । यह आत्मा जड नही चैतन्य है चिद्रूप है चैतन्य रूप है, अजडत्व स्वभावी है, जड स्वभावी नही है। जड याने विवेकहीनता, जड याने चैतन्य–शून्यता। अहो! प्रबल पुण्य के योग से जीव ने पचेन्द्रिय जाति मे मनुष्य जाति को प्राप्त किया है फिर भी तुम प्रपच मे पडे हो। विवेक तो लगाओ क्षेत्रीय भेदो मे आकर अपने स्वभाव को मत खो देना। चित्ति–शक्ति कह रही है कि यदि ये जीव विवेक से देखे तो भेद ही नहीं है, विवेकहीनता मे भेद है, विवेक शून्यता मे भेद है, विवेक मे कोई भेद नही है। पानी चाहे गिलास मे हो कटोरे मे हो, सकोरे मे हो, घडे मे हो चाहे स्वर्णकलश मे परतु बर्तनो के भेद से नीर मे भेद नही होता।

भो ज्ञानी! चिति शक्ति कहती है कि यह आत्मा चाहे निगोद पात्र मे हो चाहे नरक पात्र मे, चाहे तिर्यंच पात्र मे चाहे मनुष्य पात्र मे, बर्तनो को देखोगे तो भेद नजर आएगा और नीर को देखोगे तो अभेद नजर आएगा। आपने बर्तनो को देखा है, पानी को नही देखा। यदि हम अवगाहना

देखेगे तो आदिनाथ स्वामी पाँच सौ धनुष के दिखेगे, महावीर स्वामि सात हाथ के दिखेगे। यदि तुम वशो के देखोगे तो इच्छवाकु–वश दिखेगा, नाथ–वश दिखेगा, हरि–वश दिखेगा। जब आप नगर देखोगे तो अवधपुरी दिखेगी, सिहपुरी दिखेगी, बनारस दिखगा और सौरीपुर नजर आयेगा। पता नही क्या–क्या दिखेगा? लेकिन तीर्थंकर नजर नही आयेगे, क्योकि आपने नगरो को देखा, आपने भवनो को देखा। 'समयसार' की चिति–शक्ति आपसे कह रही है कि चैतन्य भगवान तीर्थंकर को देखो तो आपको भगवान नजर आयेगे, अवगाहना नजर नही आयेगी। जो चैतन्य शक्ति सवा पाँच सौ धनुष की अवगाहना मे है, वही साढे तीन हाथ की अवगाहना मे भी है।

अहो मानव! तू तो विवेकी है। एक बालक जब विवेकशील हो जाता है, वह प्रज्ञा का उपयोग करना प्रारभ कर देता है। यदि प्रज्ञा का समीचीन उपयोग कर लिया, तो परमात्मा बना देगी और असमीचीन उपयोग कर लिया तो प्रज्ञा ही तुझे नरक भेज देगी। नगर मे दिन के दस बजे मुनिराज पधारे, अब विवेक लगाओ कि पहले इन्हें आहार करायें, कि इनकी परीक्षा करे। अहो! विवेकशील परीक्षा के लिये समय नही खोजता, वह तो चर्या मे ही परीक्षा कर लेता है। भो ज्ञानी! वहाँ तो आप चर्या कराना। चित्ति–शक्ति कहती है–हमने आपको सूत्र दे दिया कि चिति का उपयोग करो। जिसने चिति की इति कर दी, वह कभी चैतन्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अत चिति की इति मत कर देना। आज विवेक से निर्णय करना मुझे किस मार्ग पर चलना है?

भो ज्ञानी! मान लो आपके परिणाम साग खरीदने के हो रहे हैं , वहाँ चित्ति शक्ति काम करायेगी। जब साग खरीद रहा था, उस समय चिति शक्ति कहती है–तुम हर समय मुझे लगाओ। मेरा स्वभाव ज्ञान है, वह किसी को मारने, गिराने के लिये नही प्राणी मात्र को मिथ्या मार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिये है। जब साग खरीदते हो, तो साग उठा कर सोचते हो कि बढिया–बढिया छाँट लूँ और विक्रेता सोच रहा है कि बीच मे कुछ खराब भी रख दूँ। अहो! कर्म सिद्धात कहता है कि केवली भगवान जान रहे हैं, परन्तु उसमे वे आप जैसी चिता नही कर रहे हैं। क्योकि उनका ज्ञान क्षयोपशम नही, क्षायिक है। देखो, भाजी खरीदते–खरीदते हमने मायाचारी कर ली कहाँ गई थी चित्ति–शक्ति? भगवान की पूजा करने आया भाग्य से एक थाली पर दो पुजारी फस गए। यह द्रव्य ज्यादा चढा रहे हैं हम भी ज्यादा चढा दे। भाग्य से थाली मे दो बादामे थी, पूजा भी दो थी, मैं चाहता हूँ कि दोनो पूजाओ मे फल पर बादाम ही चढाये। अत जब तक उन्होने भगवान को नमस्कार किया, इन्होने धीरे से अपनी द्रव्य मे एक बादाम छुपा डाली।

भो ज्ञानी! तीर्थंकर की वदना कर रहा है कि कर्म का बध कर रहा है। अहो! चर्मचक्षु से वदना चल रही है और केवल–चक्षु से बध दिख रहा है। बस इतना ही अतर होता है आपकी चित्ति–शक्ति मे और केवली की चित्ति–शक्ति मे। उनके ज्ञान मे तुम्हारा छल भी झलक रहा है।

यहॉं चित्ति–शक्ति को चैतन्य पहचान नहीं सका। अहो! निज के प्रभु को पहचान लेना, सभाल लेना और समझ लेना क्योकि इससे बडा विवेक और कोई नही होता। देखो, जैसे निर्ग्रंथ योगी को स्वानुभाव मे आनद आता है, ऐसे रागी को परिग्रह के अनुभव मे आनद आता है।

भो ज्ञानी! आपके स्वभाव मे ऋजुता है परिणामो मे कोमलता है, व्यक्ति को व्यक्ति मानते हो, किसी पर कटाक्ष नहीं करते हो, किसी को हीन नहीं मानते हो और अल्प आरम्भ–परिग्रह मे सतुष्ट हो। यदि ऐसे परिणाम हैं कि जितना आ रहा है, उतने मे सतुष्ट हैं। हाय–हाय नही करते तो ठीक है। यदि मृदु–परिणाम हैं तो सम्यक्दर्शन को कोई टालने वाला नही है। यदि आपने बध नहीं किया तो नियम से देव ही होगे और यदि मनुष्य–तिर्यच आदि आयु का बध कर लिया हो, तो पक्का है आप भोगभूमि मे जाओगे कोई नही टाल सकता। शीतल पानी मे ही चेहरा दिखता है, उबलते पानी मे कभी भी चेहरा नही दिखेगा।

भो ज्ञानी! इसलिये धवलाजी मे आचार्य वीरसेन स्वामी ने लिखा है कि अतिहर्षातिरेक मे सिद्धात–ग्रथो का अध्ययन नही करे दुख मे भी न करे पर्व आदि के दिनो मे भी नही करे। इन दिनो मे निषेध है। इन दिनो मे भक्ति करो, आराधना करो साधना करो लेकिन रहस्य, सिद्धात ग्रथो का स्वाध्याय नही करना, क्योकि समझ मे नही आयेगे। जब तेरी चारो कषाये शान्त हो जायेगी वह चिति–शक्ति, जिसकी तू चर्चा कर रहा है, वह शुद्ध चेतना–शक्ति के रूप मे प्रकट हो जायेगी। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि यदि चित्ति–शक्ति को समझ लिया है तो वही सत्य है। जिसने चैतन्य–शक्ति को नही समझा वही तो असत्य है। अत निज–विवेक ही सत्य है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा कहना यह विवेक–सत्य है अन्यथा उद्रेक है विवेक नही है। भो ज्ञानी! विवेक मे उद्रेक नही होता है। विवेक आपका काम कर रहा है कि कर्म का बध कैसे–कैसे होता है? कहॉं–कहॉं होता है? कैसी–कैसी परिणति पर होता है? कैसी–कैसी क्रिया पर होता है? यहॉं पर चित्ति–शक्ति लगाओ, एक ही निर्णय निकलेगा कि जो हम कर रहे है सब मिथ्या है। तो फिर सम्यक् करो और सम्यक् तो महाव्रत–अणुव्रत ही हो सकते हैं। अहो! अणुव्रत–महाव्रत के अभाव मे विवेक की बात करना, तो कहना भर है। अणुव्रती से कहा जा रहा है कि पानी छानकर पियो और वह बाजार मे जाकर मिठाई खाए तो कहॉं गई चित्ति–शक्ति? विवेक का तात्पर्य यह नही है कि मात्र हम बुद्धि के व्यायाम करते रहे। अरे! विवेक तो हमारी हर परिणति मे दिखना चाहिये झलकना चाहिये। जब तुम फर्श अथवा चटाई पर आकर बैठ गये तब तुम्हारे विवेक का पता चला गया कि कितना सत्य था? कितनी करूणा थी? क्योकि एक ज्ञानी पहले उठाकर देख लेगा और विवेकहीन आकर बैठ जायगा। बस लग गया पता विवेक का।

भो ज्ञानी! विवेक की कोई सीमा नही है, विवेक असीम है। अत जो भी काम करो, विवेक

से करो। यदि किसी से लडना भी हो, तो विवेक से लडना। क्योकि जब मैं लडूँगा तो कर्म का बध किसे होगा। ऐसा विवेक लगाना और जैसे ही आपने विवेक लगाया, वह चिति–शक्ति कह रही है कि कर्म का बध तो स्वय को होगा। अत छोडो, अपन धीरे से निकल चले। देखो विवेक ने इतना काम किया कि लडाई टल गई। चिति–शक्ति कह रही है तुम जड नहीं हो, चैतन्य हो। अत अपने ही धर्म को देखो तो विवाद नही हो पायेगा। अपना घर सिद्धालय है। इन बाहर के लोगो के बीच मे पड कर अपना घर मत उजाड देना ये स्वार्थी लोग हैं। अहो! भडकाने वाले लाखो होते हैं और विकारी भाव भी शाश्वत नही हैं। घर उजाडने के लिए वे एक मुहूर्त को आते हैं पर अपना साम्य–भाव सदा रहता है। यदि साम्यभाव नही रहेगा तो तुम गृहस्थ की कोई भी क्रिया नही कर सकते। सामने वाला तो तुम्हारी कषाय को फैलायेगा। जबकि सत अपनी कषाय को दबा लेता है, इसी का नाम उपशम–भाव है। अत बाहर की बातो मे मत डूब जाना कषाय को दबा लेना। यदि उपशम भाव से बैठोगे, तो सत्य नजर आयेगा अन्यथा सत्य दिख ही नही सकता।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने कथन किया कि वाणी तुम्हारी बाण न बने, वीणा बने। क्योकि वीणा की ध्वनि को सुन कर सर्प भी नाच उठता है। इसलिये बोलना ही है, तो अच्छा बोलो। चिति–शक्ति कह रही है कि जिससे परजीवो को पीडा उत्पन्न हो, वह सब असत्य है। यदि आप सत्य भी बोल रहे हो और आपकी नारद की वृत्ति है, तो जिस वाणी से दूसरे को क्लेश पहुँचे समझ लेना असत्य ही है। पता नही कितने जीवो के स्वभावो का तुम घात करा आये अत हिसा भी है। एक जीव निर्मल भावो से शान्त बैठा था और आप जाकर उल्टी–सीधी बोलकर आ गये। यदि उसके परिणाम खराब हो गये तो आपने उसके शुभ–भावो का घात कर दिया। इसीलिये मनीषियो! ऐसी प्रयोगशाला मत खोलना जिससे सबके परिणाम कलुषित हो जाये। अहो! अन्दर की वीतरागता अन्दर की सत्यता–असत्यता को आपकी ऑखे बता देती है। क्योकि व्यक्ति के अदर का प्रतिबिम्ब दिखाने वाली आखे हैं। तुम किसी व्यक्ति को जबरन पकडकर भगवान के पास बिठा देना सिर पकड कर चरणो मे टिका देना परतु उसकी ऑखे कहेगी कि हमारे अदर श्रद्धा ही नही है। क्योकि दृष्टि है तो दृष्टि है, दृष्टि नही तो दृष्टि नहीं। दृष्टि याने सम्यग्दर्शन, श्रद्धा और दृष्टि याने दर्शन। अदर की दृष्टि है, तो दृष्टि के भाव बनते है और दृष्टि नही है तो फिर भाव भी नही बनते।

"सत्य का विनाश नहीं होता"

असदपि हि वस्तुरूप यत्र परक्षेत्रकालभावैस्तै।
उद्भाव्यते द्वितीय तदनृतमस्मिन् यथास्ति घट ।।९३।।

अन्वयार्थ – हि यत्र = निश्चयकर (जिन वचन मे)। तै परक्षेत्रकालभावै = उन परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावो के। असत् अपि = अविद्यमान भी। वस्तु रूप = वस्तु का स्वरूप। उद्भाव्यते = प्रकट किया जाता है तत् द्वितीय = वह दूसरा। अनृतम् स्यात् = असत्य होता है। यथा अस्मिन् = जैसे यहॉ पर। घट अस्ति = घडा है।

वस्तु सदपि स्वरूपात् पररूपेणाभिधीयते यस्मिन्।
अनृतमिद च तृतीय विज्ञेय गौरिति यथाऽश्व ।।९४।।

अन्वयार्थ – च यस्मिन् = और जिस वचन मे। स्वरूपात् = अपने चतुष्टय से। सत् अपि = विद्यमान भी। वस्तु = पदार्थ। पररूपेण = अन्य के स्वरूप से। अभिधीयते = कहा जाता है। इद यह। तृतीय अनृतम् = तीसरा असत्य। विज्ञेय = जानना चाहिए। यथा = जैसे। गौ = बैल। अश्व = घोडा है। इति = ऐसा कहना।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ५६ ॥

भो मनीषियो! यहॉ आचार्य भगवन् ने सत्य की चर्चा की है कि दृष्टि विपर्याय है अर्थात् सोच विपरीत होता है तो समीचीन कहने वाले के प्रति भी असमीचीन विचार आते है क्योकि दृष्टि विकृत है। अत सत्य को समझने के लिए बाहर के दर्पण की आवश्यकता नही है, सत्य को समझने के लिए परिणामो की निर्मलता के आदर्शो की आवश्यकता है। वास्तविकता को समझ लेने पर हर पदार्थ मे आपको सत्यता महसूस होगी। मनीषियो! सत्य मे भ्रम होने पर आपको द्रव्य मे असत्यपना महसूस होने लगता है। ससार मे अनेक रोगो की औषधियॉ है लेकिन भ्रम के रोग को निवारण करनेवाली एकमात्र औषधि जिनवाणी ही है। विश्व मे सबसे बडे भ्रम के रोग के पीछे जीव कलुषित परिणाम रखता है। उस कलुषित परिणति से शरीर मे विकार उत्पन्न होते हैं, फिर तन मे रोग हो

जाता है। इसलिए सत्य–दृष्टि पवित्र है। पवित्रता की खोज अतरग में होती है। जिसका हृदय पवित्र है, उसकी वाणी मे निर्मलता निकलेगी। जिसके हृदय मे पवित्रता नहीं है, उसकी वाणी सत्य/समीचीन नहीं निकल सकती। ध्यान रखना, यदि हृदय की असत्यता से आप सत्य भी कहना चाहोगे तो वह वाणी तुम्हारी लडखडा जाएगी, शब्द नही मिलेगे। वाणी में तुम अयथार्थ कहना चाहते हो तो वहाँ तुम लडखडा जाओगे। अत शुद्ध–दृष्टि अतरग की पवित्रता पर निर्भर है। अत करण पवित्र है तो आचरण भी पवित्र होगा।

मनीषियो! शब्द मे पहले असत्य नही आता। पहले हृदय मे असत्यता आती है। पाप पहले इन्द्रियो मे नही आता किंतु पहले मन मे आता है। जब मन कहता है कि ऐसा कह दो तो वचन को बोलना पडता है। ससार के कानून तो शरीर और आँखो से दिखने पर पापी को दण्ड दे पाते है परन्तु कर्म– सिद्धात मन मे आने से पहले ही दण्ड की प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देता है। ससार मे जब बोल पाओगे तब असत्यवादी कहलाओगे, लेकिन माँ जिनवाणी कहती है बेटा! असत्य बोलने के परिणाम जबसे किये, तभी से तुम असत्यवादी हो चुके हो। इसीलिए आचार्य अमृतचद स्वामी कह रहे है कि द्रव्य सत्य है। द्रव्य घर मे है, अस्ति रूप है फिर भी उसे नास्ति कह रहा है। मै पुदगल रूप नही हूँ, मै जडरूप नही हूँ, पररूप नही हूँ, फिर भी तू पर को अपना मान रहा है। असत्य को भी सत्यरूप मे स्वीकार रहा है। भो ज्ञानी! यदि जन्म–मृत्यु भी प्रकृति का परिणमन सत्य है। तो हर्ष–विषाद किसके ऊपर? ज्ञानी दोनो मे मध्यस्थ होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जानकर रो रहे हो या बनावटी रो रहे हो, दिखाने के लिए रो रहे हो, रोना भी परम्परा है, रोएँगे नही, तो कोई क्या कहेगा।

भो ज्ञानी! सत्य का जीवन बहुत कम जी पाते हैं १०० वर्ष की उम्र मे दो वर्ष भी जी पाते हो, तो भी ज्यादा है। इसीलिए सत्य का जीवन शुद्ध–उपयोग, यथाख्यात–सयम है और सत्य की प्राप्ति सिद्ध–पर्याय है। अत दृशी–शक्ति कह रही है कि अभी सत्य को देखने के भाव भी तुम्हारे नहीं हैं। अहो व्यापारियो! चैतन्य का व्यापार बहुत दूर है। ५० रुपए की साडी है, ग्राहक से कहते हो कि हम ७० की तो खरीद के लाये हैं इसीलिए आपको ८० मे दे रहे हैं। अब नही मानते हो तो ७५ की ले जाओ। अहो! कितना झूठ बोले! क्या यह तुमको परमात्मा बनवा देगा? असत्य के पीछे पूरा जीवन नष्ट कर दिया। यदि असत्य का सहारा नही लिया होता तो आप सिद्धालय मे विराजे होते। हर दृष्टियो मे लगाना कि हमारे लिए नौकरी दो घटे की है पाच मिनिट काट लिये। क्या हुआ? असत्य हो गया, चोरी भी हो गई। प्रवचन सुनने के लिए घर से गये थे और रास्ते मे कोई व्यक्ति/मित्र मिल गया, चर्चा मे लग गये। घर से क्या बोल कर आये थे, वहाँ जाकर क्या कहोगे? व्यर्थ का झूठ बोलता है। कहाँ जा रहे हो? बोले–कही नहीं जा रहे, जबकि जा रहे हैं। महाराज!

व्यवहार है। इसीलिए व्यवहार को अभूतार्थ कहा है, वह जगह–जगह झूठ बुलवाता रहता है। अरे भाई! मीठी–मीठी कहकर सीधी कह दो या मौन ले लो, क्योकि सत्य का पालन मौन के बिना हो नही सकता।

मनीषियो! अस्ति को नास्ति कर दिया, नास्ति को अस्ति जैसे किसी ने पूछा अमुक पदार्थ और कह दिया अन्य पदार्थ। यह दूसरा असत्य है। पचम काल मे कोई ऋद्धियाँ नहीं होती, तीर्थकरो का जन्म नहीं होता तीर्थंकर प्रकृति का बध भी नहीं होता, क्षायिक सम्यक्त्व नही होता, मोक्ष भी नही होता और पचमकाल मे केवलज्ञान भी नही होता। अब अन्तरग से पूछो–जो परिणति तेरी नही है, जो अवस्था तेरी नहीं है, जो धर्म तेरा नही है, जो भूमिका तेरी नही है उस भूमिका मे तू जी रहा है। अत जिनवाणी कह रही है कि तू निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य शुभचद्र स्वामी ने स्पष्ट लिख दिया–

धर्म नाशे क्रिया ध्वसे ससिद्वात विप्लवे।
अप्रष्टेऽपि वक्तव्य, सत्सिद्धात प्रकाशने।। ज्ञाना ।।

हे मुनि! आपको मौन रहना चाहिए। लेकिन जहॉ धर्म का नाश हो रहा हो और तुम मौन बैठे हो, तो क्या आप धर्मात्मा हो? तुम्हारे देखते–देखते व्यक्ति व्यसनो मे जा रहा है और आप समझ रहे हो कि मैं समझा दूँगा, तो यह मान लेगा। हित की बात कहने मे यदि आपको बुरा भी बनना पडे तो भी कोई बात नहीं। पर उससे बोल देना, बाद मे क्षमा माँग लेना। जब धर्मात्मा ही नही बचेगे, सभी पापो मे लिप्त हो जायेगे तो धर्म का नाश तो अपने आप होगा। इसीलिए प्रत्येक धर्मात्मा के परिणामो को सभाल के रखना तुम्हारा कर्तव्य है। ऐसा नही है कि उनकी वह जाने–ये धर्मात्मा–भाव नही हैं, स्वार्थ–भाव है। इसीलिए वहॉ आप जरूर बोलना, जहॉ आगम–निहित क्रियाओ का ध्वन्स किया जा रहा हो।

भो ज्ञानी! जिनशासन मे सिद्धान्त शाश्वत है। जिनशासन तीर्थंकर–शासन नही होता है, जिन– शासन शाश्वत सस्कृति है और अनादि है। सस्कृति का सचालन करने के लिये तीर्थकर जन्म लेते हैं। यदि तीर्थंकरो से सिद्धात बनाओगे तो सादि हो जायेगा। तीर्थंकर सादि–सन्त होते हैं और सिद्धात अनादि–अनन्त होता है। भगवान आदिनाथ स्वामि ने वही कहा है, जो पूर्व मे तीर्थंकर कह चुके थे। भगवान महावीर स्वामी ने वही कहा है जिसे आदिनाथ आदि भगवान कह चुके थे। यदि अलग से कहते तो कहलाता कि तीर्थंकर ने कहा है। तीर्थंकर भगवान ने वही कहा है–जो है और जो होता है। जो होता है वह अनादि होता है। सत्य को दबाया जा सकता है, सत्य को ढाँका जा सकता है, सत्य को गौण किया जा सकता है और सत्य को पीटा जा सकता है लेकिन सत्य को तुम नष्ट नहीं कर सकते। सत्य तो सूर्य होता है कितने ही असत्य के बादल ढँक ले

लेकिन एक दिन के उन बादलो को हटना ही पड़ता है। हे मेघ! तुम कब तक ढँकोगे। पर ध्यान रखना एक बात को–जो सत्य को ढकता है उसका चेहरा काला ही होता है। मेघ जब सूर्य को ढँक लेते हैं तो स्वय काले होते हैं। कोई अपराध करके आता है तब उसका चेहरा देखना और जो सत्य हृदय होता है तो उसका काला चेहरा भी खिला होता है। असत्य की सफेदी मुरझाई होती है। अत सत्य सिद्धात का प्रकाश करने के लिए, बिना पूछे भी आपको बोलना चाहिए–ऐसा 'ज्ञानार्णव' मे आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने लिखा है। सम्यक्दृष्टि जीव अपने चितन को आगम नही बनाता। सम्यक्दृष्टि जीव आगम के अनुसार अपना चिन्तवन बनाता है। ध्यान रखना, चिन्तवन आगम के अनुसार बनाकर चलना और अपने चिन्तवन से आगम को तो उठाना, पर अपने चिन्तवन को उठाने के लिए आगम की बलि मत चढा देना। आजकल यह हो रहा है कि अपनी बात पुष्ट करने के लिए कही की गाथा छाँट ली और कह दिया–देखो, आगम तो ऐसा है। कही की भी एक गाथा उठाओगे तो आप भी वो सिद्ध करके बता सकते हो। लेकिन यह ध्यान रखो सूत्र सोपस्कार होते है यानि पूर्व के विषय को लेकर चलता है। अब देखना मोक्षशास्त्र (तत्वार्थसूत्र) मे 'नाणो' सूत्र क्या कह रहा है? इसको सस्कृत व्याकरण से देखो, इसका अर्थ क्या निकलता है? आप तो एक अर्थ निकालोगे–न+अणु। अर्थात् अणु नहीं होता है तो आपने पूरा सिद्धात समाप्त कर दिया। जबकि अर्थ क्या निकलता था कि इस सूत्र के पहले का सूत्र क्या कह रहा, उसको देखिए। 'नाणो' सूत्र कह रहा है–अणु बहुप्रदेशी नहीं होता। परतु आपने अर्थ निकाला कि अणु ही नही होता है। इसी प्रकार 'न देवो – जिसको देवो से ईर्ष्या हो, सो यह सूत्र निकालकर रख दिया कि तत्वार्थ सूत्र प्रमाण है। प्रमाण तो दे रहे हो, पर विवेक तो लगाओ। देव नही होते है क्या? अहो! अस्ति को नास्ति कर रहे हो। जबकि न देवो का अर्थ है कि देव नपुसक नही होते, देव नियम से स्त्री–पुरुष वेदी ही होते है। इसलिए ध्यान रखना, जब तक सूत्र को दस बार आगे पीछे नही देख लोगे तब तक आप सूत्र–ज्ञाता नही बन सकते। अहो! विद्वानो को पहले अन्य विद्वान सस्कार देते थे। आपने देखा होगा कि एक गाडी–चालक भी बगल मे बैठकर दूसरो को सिखाता है इसी प्रकार आचार्य भी अपने शिष्य को सीधा आचार्य नही बनाते, पहले बिना किसी विधि के बगल मे बिठाते है, फिर कहते हैं देखो, हम कैसे सघ का सचालन कर रहे हैं,? कैसे प्रायश्चित देते हैं? कैसे समझाते हैं? इसके उपरात बालाचार्य बनायेगे। जब देख लेगे यह ठीक–ठाक है तो फिर उनको आचार्य बना देगे। यदि बिना अभ्यास के और बिना सामर्थ्य के कोई डाक्टर बन जाये तो वह क्या करेगा? कितनों की असमय मे विदा कराएगा? आचार्य वैद्य हैं, जो ससार में जन्म, जरा, मृत्यु से पीडित रोगियो को रत्नत्रय–धर्म की औषधि देने वाले हैं। अत यदि आपके अदर योग्यता नहीं है, तो प्रार्थना कर लेना, प्रभु! सामर्थ्य नहीं है।

भो ज्ञानी! कटनी के पास तेवरी गाव मे सुधर्मचद जी नाम के अच्छे ज्ञानी व्यक्ति हैं।

कुशल वक्ता हैं। वहाँ पचकल्याणक हुआ, तो उन्होंने बाहर से विद्वान बुलाया। मैंने पडित जी से एकात मे पूछा—पडित जी! आप इतने बुजुर्ग हो, और इन लोगो से अच्छा बोल लेते हो, आप ही प्रतिष्ठा कर लेते तो क्या दिक्कत थी? बोले—महाराज जी! वक्तृत्व कला भिन्न है। मैने गुरुओ की कृपा और जिनवाणी के सतत् अध्ययन से वक्तृत्व कला को प्राप्त कर लिया, पर मैंने प्रतिष्ठा–ग्रथ मे पढा था—यदि विधि पूर्वक प्रतिष्ठा नहीं करवा पाये तो प्रतिष्ठाचार्य नरक जाता है। महाराज! जिस दिन से हमने पढ लिया तो हमे योग्यता महसूस नही हुई। मैं प्रतिष्ठाचार्य के साथ रह सकता हूँ, लेकिन मुख्य–प्रतिष्ठाचार्य नही बनूँगा। पडितजी की लघुता देखकर मेरा हृदय खिल गया। देखो, यदि वह चाहते तो प्रतिष्ठा करा सकते थे। अत जिस विषय मे अपनी सामर्थ्य नहीं है उसका अभ्यास तो करते रहना चाहिए, लेकिन उसके विशेषज्ञ नही बनना चाहिए। एक वैद्य ऊँट का उपचार करने पहुँचे, वह दो दिन से घास नही खा रहा था। वैद्य बहुत समझदार था। उसने शरीर को देखा और जब गले पर हाथ फेरा, तो उसने पूछा—भैया ये बताओ इसे तीन दिन पहले कहाँ चराने ले गये थे? बोले—कछवारी मे तरबूज थे उधर चर रहा था। बस वैद्य समझ गया। उसने कहा—ठीक है आप इसको बिठाल दो और एक मुगरिया लाओ। वैद्य ने ऊँट को लिटा दिया। उसके गले के नीचे जहाँ वह फूला था वैद्य जी ने मुगरिया मार दी। तरबूज जो अड गया था तो फूट गया। ऊँट झट मुँह चलाकर खडा हो गया। कम्पोडर—साहब ने सोचा इनकी नौकरी करते–करते जीवन चला जा रहा है। डाक्टरी कुछ नही है मुगरिया मारो, पैसा कमाओ। अत कम्पोडरी छोड दी। वैद्यखाना खोल दिया। भाग्य से एक बुढिया माँ के गले मे पीडा थी, सूजन आ गई। उनने कहा—ठीक है चलो पहले मुगरिया लाओ और एक काठ लाओ। बेचारी बुढिया को मार दिया। भो ज्ञानी आत्माओ! देखा–देखी और पुस्तको से वैद्य बन गये होते तो वैद्यो की और अध्यापको की, मेडीकल कॉलेजो की कोई आवश्यकता नही थी। ऐसे ही ग्रथो से ज्ञान हो जाता तो निर्ग्रंथो की कोई आवश्यकता नही थी। मनीषियो! ध्यान रखो, गुरु–चरणो के सानिध्य मे जाये बिना सम्यकज्ञान हासिल नही होता। जब तक आप गुरु नही चुनोगे तब तक स्वय भटकोगे और दूसरो को भटकाओगे। नास्ति को अस्ति मे लगाओगे और अस्ति को नास्ति मे। जब तक आलाप–पद्धति, बोलने की शैली का ज्ञान नहीं होगा, तब तक आप नय–चक्र को समझ नही पाओगे और नय–चक्र के अभाव मे सत्य निर्णय नही कर पाओगे। बैल को घोडा कह देना भी झूठा है। बैल को घोडा कहने पर घोडा घोडा ही रहेगा और बैल बैल ही रहेगा।

मनीषियो! हम असत्य का उपयोग कर समझते यही हैं कि हम सत्य बोल रहे हैं। इसीलिए अपने जीवन मे परम–सत्ता को प्राप्त करना हो तो परम–सत्य को प्राप्त कर लेना।

'मत करो चुगली किसी की'

गर्हितमवद्यसंयुतमप्रियमपि भवति वचनरूप यत्।
सामान्येन त्रेधा मतमिदमनृत तुरीय तु ।। ९५।।

अन्वयार्थ · तु इदम् तुरीय अनृत = और यह चौथा असत्य। सामान्येन गर्हितम् = सामान्य रूप से गर्हित। अवद्यसयुतम् अपि = सावद्य अर्थात् पाप सहित। अप्रियम्= अप्रिय। त्रेधा मतम् = तीन प्रकार माना गया है। यत्, वचनरूप भवति= जो कि वचनरूप होता है।

पैशुन्यहासगर्भ कर्कशमसमजस प्रलपित च।
अन्यदपि यदुत्सूत्र तत्सर्व गर्हित गदितम्।।९६।।

अन्वयार्थ पैशुन्यहासगर्भ = दुष्टता अथवा चुगली रूप हास्य युक्त। कर्कशम् असमजस = कठोर मिथ्याश्रद्धानपूर्ण। च प्रलपित = और प्रलाप रूप (बकवाद)। अन्यदपि यत् = और भी जो। उत्सूत्र = शास्त्र विरुद्ध वचन है। तत्सर्व गर्हित = उस सबको गर्हित। अर्थात निद्य वचन। गदितम् =कहा है।

छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि ।
तत्सावद्य यस्मात्प्राणिवधाध्या प्रवर्तन्ते ।। ९७।।

अन्वयार्थ यत् = जो छेदनभेदनमारणकर्षण = छेदने, भेदने, मारने, शोषण अथवा व्यापार, वाणिज्यचौर्यवचनादि चोरी आदि के वचन है। तत् सावद्य = वे सब पापयुक्त (वचन हैं)। यस्मात् = क्योकि ये। प्राणिवधाद्या प्रवर्तन्ते = प्राणीहिसा (आदि पापरूप) प्रवृत्त करते हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || ५७||

भो मनीषियो! लोक मे शाश्वत रहने वाला कोई द्रव्य है तो सत्य है पर जिसे नष्ट होना है, जिसको भस्म होना है उसके पीछे हम सत्य को खो रहे हैं। अरे! जिस देह का विनाश होना है उसके सरक्षण मे इतने तन्मय हो कि परमात्मा को भूल रहे हो। भूल तो भगवान ने भी की थी, पर तब भगवान नहीं थे, परतु जिसने भूल को सुधार लिया वह भगवान बन गया। इसलिए जितने

भगवान बने हैं सब भूल को सुधार कर ही बने है। रहस्य को समझना, शुभाशुभ अनादि की भूल नहीं सुधरी होती तो उन्हे भी मुक्ति नहीं मिलती। जिसका चिन्तवन निर्मल नहीं है, ज्ञान निर्मल नहीं है उसकी कोई भी क्रिया साकार हो ही नहीं सकती।

भो ज्ञानी! पदार्थों से ज्ञान की प्रमाणिकता नहीं की जाती है, क्योकि पदार्थ आज पीला दिख रहा है कल नीला दिखेगा, तो फिर ज्ञान कैसा होगा? जिनवाणी कहती है सम्यक्ज्ञान प्रमाण है और सम्यक्ज्ञान से जैसा पदार्थ है वैसा ही पदार्थ को जानना, पदार्थ का परिणमन जैसा हुआ वैसा पदार्थ समझना। यह ज्ञान की प्रमाणिकता पदार्थ को प्रमाणिक कह रही है। जिसका ज्ञान प्रमाणित नहीं होता है वह पदार्थ को सत्य नहीं कह सकता। इसीलिए ज्ञान से प्रत्याख्यान किया जाता है, परन्तु ज्ञान प्रत्याख्यान का तात्पर्य ज्ञान त्याग नहीं कर देना, जब भी प्रत्याख्यान होगा ज्ञान से ही होगा, परतु मिथ्या ज्ञान अथवा विपरीत ज्ञान त्यागने योग्य ही होता है। अहो! प्रभु से प्रार्थना कर लेना भगवन् मैं अज्ञानी बन जाऊॅ। जब तक अज्ञानी नहीं बनोगे, तब तक ज्ञानी भी नहीं बनोगे। इसीलिए सम्यक्ज्ञान प्रत्याख्यान नही है, ज्ञान प्रत्याख्यान है, जो हमने वेशो का ज्ञान, कषायो का ज्ञान करके रखा है उन सम्पूर्ण ज्ञानो से, भगवत्ता मे अज्ञानी हो जाऊँ। मुझे ऐसा ज्ञान नहीं चाहिए जो अहम् को जन्म दे। वह अज्ञानी श्रेष्ठ है जो परमेश्वर के चरणो मे झुके होते हैं तथा अन्दर भक्ति भी भरी होती है। वह ज्ञान किस काम का जो भक्ति से रिक्त कर देता है। इसीलिए अज्ञानी बनना पर अज्ञान मिथ्यात्व मे नहीं चले जाना। पॉचो मिथ्यात्व मे एक अज्ञान नाम का मिथ्यात्व होता है।

भो ज्ञानी! सम्यक्दृष्टि जीव अपनी चेतना से काम करता है, ज्ञानवैराग्य शक्ति सम्यक्दृष्टि जीव के नियम से होती। वह एक कदम भी चलता है तो ज्ञान से चलता है, एक कदम भी रखता है तो वैराग्य से रखता है। हेय को जान लेना ज्ञान है और हेय को छोड देना वैराग्य है। वैराग्य चारित्र का जनक होता है। वैराग्य शून्य ज्ञान–चारित्र खोखला होता है।

अहो सयमी! वैराग्य की डोर तेरे साथ है, तो चारित्र की वह पतग सिद्धालय की ओर है और यदि मन्जा टूट गया अर्थात् डोर टूट गई और पतग उडाने वाले गुरु के हाथ से डोर छूट गई तो वह पतग गड्ढे मे गिर जायेगी। मनीषियो! यह दशा चारित्र वैराग्य एव शिष्य के बीच की है। माणिकनन्दी स्वामी महान न्याय ग्रथ "परीक्षा मुख सूत्र" मे लिख रहे हैं कि – **हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाण ततो ज्ञानमेव तत्** ।।2।। जिससे हित की प्राप्ति हो, अहित का परिहार हो वही प्रमाण है वही सम्यक्ज्ञान है। यही तो न्याय है। 'भगवती आराधना' मे आचार्य शिवकोटी महाराज ने लिखा है, अहो चेतन! हाथ मे दीपक इसलिए है कि गड्ढे मे न गिरूँ, किसी सर्प पर पैर न पडे, मल पर पैर न पडे। दीपक लेकर मल पर फिसल गये तो दीपक ने तेरे लिए क्या किया? अहो चैतन्य आत्माओ! यह ज्ञान दीप इसलिये है कि भोगों के मल पर न गिर जाऊँ,

कषाय के गड्ढे पर न गिरूँ और वासनाओ के सर्प से न डस जाऊँ। यदि तीनो काम हो रहे है तो ज्ञानदीप नहीं है। अहो! अन्धे को दिखाने के लिए दीप नहीं होता, बहरो को सुनाने के लिए गीत नहीं होता। भो चेतन आत्माओ! ध्यान रखो, मूर्खों के लिए शास्त्र नहीं होते।

भो ज्ञानी! नीतिकार लिख रहे हैं कि बढिया पकवान थाल लगा कर लाओ और सूअर के सामने रख दो किन्तु उसको तो नाली मे ही जाना है। उसी प्रकार अज्ञानी को शास्त्रो के प्रसग सुनाओगे, तो वही होगा। वे स्वय सूखे में नहीं बैठ पाते हैं और दूसरे को भी सूखे मे नहीं बैठने देते। जैसे भैंसा तालाब मे पहले अच्छे से मचा लेता है और उसी में लघुशका कर लेता है, फिर पीता है, अहो! यही अज्ञानी की दशा है।

भो चेतन! विश्व मे अगर सगा सखा कोई है तो सम्यक्ज्ञान ही है। मित्रता ज्ञान से ही होती है और बाहर के मित्र भी ज्ञान से ही मिलते हैं। मित्र से मित्रता बनाकर रखना भी ज्ञान का ही काम है। गुरु भी मिलते हैं तो ज्ञान से मिलते हैं, और गुरु को बनाकर रखना यह भी सम्यक्ज्ञान का ही काम है। विपरीतता झलकने लग जाये तो गुरु मे गुरु नजर नहीं आते, प्रभु मे प्रभु नजर नही आते। अत विवेक सर्वत्र आवश्यक है और जहाँ विवेक शून्यता आ गई ध्यान रखो, वहीं आप नीचे गिर जाओगे। इसीलिए अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं-- सत्य को समझो, पर्याय सत्य नहीं है, ज्ञान सत्य है, दर्शन सत्य है। पर्याय त्रैकालिक साथ नहीं जाती, पर्याय क्रमवर्ती है, छूटने वाली है। जब तक उबाल नहीं आ जाता है तब तक हँडिया पर पारा रखा है और उबाल आया वह भग जाता है। जब तक यमराज नहीं आया तब तक पर्याय कहती है हम आपके, आप मेरे,! जैसे ही आयु कर्म आया वह भाग जाती है, लेकिन गुण त्रैकालिक होते हैं। ऐसे ही ज्ञानदर्शन शक्ति कहती है, चाहे निगोद चलना, चाहे नरक चलना हम तुम्हारे साथ होगे, क्योकि गुण त्रैकालिक सत्ता वाला है जो कभी छूटता नही है, पर्याय नियम से छूटेगी। हे भूपतियो! आपने अपने आपको पति जरूर कहा है कि मैं भू-पति हूँ पर उस कन्या से तो पूछ लो उसने आपको पति चुना कि नहीं चुना। वह तो अभी तक कुँवारी है। पति-पति कह कर पतन को प्राप्त हो गये, लेकिन वह भूमि जैसी है-वैसी है। तुम क्यो अहकार मे डूबे हो कि मैं भू-पति हूँ। शीतलनाथ स्वामी को तो आप देख ही रहे हैं, जब वे ही यहाँ नहीं बचे तो तुम क्या हो? आचार्य समन्तभद्र स्वामी जैसे सत इस विदिशा नगरी मे आ चुके, उनके चरणो से पवित्र हुई है यह नगरी विदिशा। यहाँ से बनारस मे जाकर समन्तभद्र स्वामी ने कहा था कि मैं भेलसा से होकर आया हूँ। काँजीपुरम मे मैंने शास्त्रार्थ किया है। कर्नाटक से, तामिल से आये थे और विदिशा से निकले थे, और बनारस मे जाकर शास्त्रार्थ किया था। यह वही भेलसा है जहाँ अनेक सम्राट होकर चले गये, परन्तु पता ही नहीं है। तुम अहकार की धरा पर धरे रह गये। ध्यान रखो, माटी के पुतलो माटी मे मिल जाओगे, यह धरा तुम्हारे

साथ नहीं जायेगी। इसीलिए आचार्य भगवन् ने कहा कि जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना। पुरुषार्थ सिद्धी सुन रहे हो, आज यह कारिका अच्छी तरह से समझकर जाना। क्योंकि दुनिया को सुनने मे कल्याण नहीं है, कल्याण तो जिनवाणी के सुनने मे है।

मनीषियों! आचार्य भगवन् कह रहे है। सत्य को समझने के लिए शान्त होना पडेगा। अत सत्य को वही समझ सकता है जो तटस्थ होता है, मध्यस्थ व्यक्ति ही सत्य को समझ पाता है। जो जीव किसी धारा मे बहता है लहरो मे बहता है वह कभी भी सत्य को नहीं समझ सकता। विपरीत कारण से विपरीत कार्य करेगा, तो मनीषियो! यह कारण कार्य विपर्यास है। आप लोगो के हाथ मे पेन है, यदि कोई व्यक्ति पेन से कान खुजला रहा है, तो वह जिनवाणी के उपकरण का अनादर कर रहा है। यह कारण–कार्य विपर्यास है। इसीलिए भगवन् कह रहे हैं कि पहले विपरीतता को समझ लो, फिर सभी बाते समझ मे आयेगी। अहो! सामने वाले को दोष देने के पहले अपनी समझ का दोष देख लेना। मनीषियो! विश्व मे कोई दोषी है ही नही, हम किसको समझाये। सब के अपने अपने कर्म है। इसलिए गर्हित वचन बोलना, सावद्य (हिसा सहित) वचन बोलना अप्रिय वचन बोलना यह तीन प्रकार का असत्य है। मनीषियो! आपने पहला असत्य समझा अस्ति को नास्ति कहना, दूसरा असत्य था नास्ति को अस्ति कहना, तीसरा असत्य है गर्हित वचन बोलना याने हिसाजन्य वचन बोलना और अप्रिय वचन बोलना। तीसरा असत्य जो गर्हित है उसको सुनो। देखो भइया! मैं सत्य कह रहा हूँ वह भैया आपके बारे मे ऐसा बोल रहे थे। अरे! भैया तुमने असत्य तो पहिले ही बोल लिया, चुगली करना ही असत्य है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि पैशुन्य कर्म, पैशुन्य याने चुगली करना असत्य है। भो ज्ञानी! अशुभ भाव होते हैं तो अशुभ बध होता है, क्यो ऐसे काम करते हो, दूसरो के घर का भाड फोड आते हो। कभी ऐसा काम नही करना। आज कल तो फोन घुमा दिया, मालूम चला कि यहाँ कुछ था ही नहीं फोन पर बडे बडे युद्ध हो चुके। झूठ लेख लिख दिये, इससे अशुभ आयु का बध होगा, दुर्गति मे जाना होगा। हँसी नहीं करना, हँसी का परिणाम देख लो, महाभारत हो गया था, हास्य भी असत्य है। मनीषियो! अहकार युक्त भाषण बोलना गर्वीली भाषा का उपयोग करना यह भी असत्य है। कर्कश ओहो! काटे चुभाओ तो इतनी पीडा नही होती, कुछ लोगो के ऐसे शब्द होते है कि काटे से ज्यादा कसते है तथा पत्थरो जैसे कर्कश लगते हैं। कुछ लोगो की ऐसी भाषा होती है मानो यह वचनो के बाण छोड रहे हैं। वह मिथ्या पूर्ण, सशय मे डालने वाली भाषा है। अरे! सुनो– सुनो, ऐसा हो गया और धीरे से भाग गये, पूरी बात ही नही बता रहे, पूरी बता देगे तो रहस्य खुल जायेगा। सोचते रहो, ऐसे बहुत सारे लोग होते हैं, आधी बताई और आधी छुपा गये, ध्यान रखो, इससे हिसा का दोष लगेगा, क्योंकि दूसरे को सक्लेषता मे डाल गये। इसीलिए स्पष्ट, मृदु , यथार्थ

बोलो, समय देख कर बोलो। सत्य ऐसा बोला कि युद्ध हो गया, वहाँ ऐसा सत्य नहीं बोलना विवेक पूर्वक बोलो। जो सूत्र के विपरीत उत्सूत्र यानि आगम के विपरीत कथन करना उत्सूत्र कहलाता है। कोई व्रत लेने जा रहा था और उसे ले गये होटल में, ऐसे उन्मार्ग में लगा देना यह भी असत्य है। यह सारे के सारे वचन गर्हित है यानि निन्दनीय हैं। ऐसे शब्दो का प्रयोग नहीं करना। घर मे क्लेश क्यों होता है? वाणी के पीछे, वाणी–सयम आ जाये तो प्राणी–सयम अपने आप पलने लग जाये। अहो द्रोपदी! आपकी जीभ नहीं हिलती तो तलवारें नहीं हिलती, "अधे की औलाद अधी होती है" इतना ही तो कहा था। इसलिए ऐसे शब्द उपयोग नही करना। अरे! इसको छेद दो, इसको भेद दो, तू मर जा, सुनो यह सावद्य हिसा के वचन हैं। तुम यहॉ से पशु खरीदना वहाँ जाकर बेच देना ऐसे हिसा के व्यापार आदि का उपदेश करना, वह भी असत्य है और हिसा है। आरभ की सलाह दूसरो को क्यो दे रहे हो, सलाह दो तो ऐसी दो कि भइया! तुम साधु बन जाना और साधना करना। इसीलिए ध्यान रखो सयम की बात तो करना पर असयम की बात कभी नही करना। भो ज्ञानी आत्माओ! विवेक से सोचो, चोरी न करो, झूठ न बोलो, सब सावद्य वचन है जिससे प्राणी का वध हो यह सब असत्य है, झूठ है। मनीषियो! अपने जीवन मे इनसे दूर रहना।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ कास्य प्रतिमा

राष्ट्रीय संग्रहालय

"प्रिय वचनों में क्या दरिद्रता"

अरतिकर भीतिकर खेदकरं वैरशोककलहकरम्।
यदपरमपि तापकर परस्य तत्सर्वमप्रिय ज्ञेयम्।। ९८।।

अन्वयार्थ यत् परस्य = जो (वचन) दूसरे (जीवों) को। अरतिकर = अप्रीति करने वाला। भीतिकर खेदकर = भयकारक खेदकारक। वैरशोककलहकरम् = वैर शोक तथा कलहकारक हो (और जो) अपरमपि = अन्य जो भी। तापकर = आतापो को करने वाला हो। तत् सर्व अप्रिय = वह सर्व ही अप्रिय। ज्ञेयम् = जानना चाहिए।

सर्वस्मिन्नप्यस्मिन्प्रमत्त योगैकहेतुकथन यत्।
अनृतवचनेऽपि तस्मान्नियत हिसा समवतरति।। ९९।।

अन्वयार्थ यत् अस्मिन् = चूकि इन। सर्वस्मिन्नपि = सभी वचनो मे। प्रमत्तयोगैकहेतु कथन= प्रमाद सहित योग ही एक हेतु कहने मे आया है। तस्मात् अनृतवचने = इसलिए असत्य वचन मे। अपि हिसा नियत = भी हिसा निश्चित रूप से। समवतरति = आती है।

हेतौ प्रमत्तयोगे निर्दिष्टे सकलवितथवचनानाम् ।
हेयानुष्ठानादेरनुवदन भवति नासत्यम्।। १००।।

अन्वयार्थ सकलवितथवचनानाम् = समस्त झूठे वचनो का। प्रमत्तयोगे = प्रमाद सहित। योगहेतौ = हेतु। निर्दिष्टे सति = निर्दिष्ट करने मे आया होने से। हेयानुष्ठानादे = हेय–उपादेय। अनुष्ठानो का। अनुवदन असत्य न भवति = कहना झूठ नही है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ५८।।

मनीषियो! भगवान तीर्थेश की पावन पीयूष वाणी, जन–जन की कल्याणी है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने सूत्र दिया कि सत्य को सत्य समझो। सत्य जो अवक्तव्य है और अपने आप मे अनुपम है।

वदिन्तु सव्वसिद्धे धुव, मचल मणोवम गइ पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो, सुदकेवली भणिय ।। १।।

आचार्य 'कुदकुद देव' ने 'समय पाहुड ग्रथ' के मगलाचरण मे ही कह दिया है कि जो सिद्ध परमेश्वर सत्ता है, वह अनुपम है। सत्य को समझने के लिए वाणी की आवश्यकता नहीं होती। सत्य मौन होता है। मनीषियो। यह दृष्टि समझना। जब धर्म का स्वरूप दिखता है, तब धर्मात्मा दिखते है, वहीं सुख दिखता है, परन्तु आनद नहीं। आँनद कहना है तो फिर परमानद कहना, खुशी नहीं कहना। खुशियाँ चेहरे की होती हैं, खुशियाँ पुद्गल पर झलकती हैं। सुख–सुख होता है, सुख मे गीलापन नहीं होता, क्योकि गीलेपन से फिसलन होती है, जीव फिसल जाते हैं। सुख निर्बन्ध–दशा है और खुशियाँ बध–दशा है। खुशियो के लिए दूसरों की खुशियॉ भी देखनी पडती हैं, खुशी के लिए स्वय के सुख को भी खोना पडता है। सुख अदर की दशा है। खुशी परावलबी है जबकि सुख स्वावलबी है। मनीषियो। सुख चितरूप होता, सुख आत्मा की सैंतालीस शक्तियो मे जीवत्व शक्ति, चिद् शक्ति, दर्शनशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा पॉचवी शक्ति का नाम है सुख शक्ति। सुख आत्मा का धर्म है। अज्ञानी सुख को खोज रहा है पुद्गलो मे। अहो। दुख मे सुख खोजना इससे बडी अल्पज्ञता क्या हो सकती है?

भो ज्ञानी आत्माओ। तीन लोक मे अनत जीव हैं। सभी सुख चाहते हैं तथा दुखो से भयभीत है, परतु सुख समझते नहीं, दुख को ही सुख मान लिया है। भोगो के गुड़ को सुख मान लिया है। बध को कराने वाला, विछिन्न होने वाला ऐसा इन्द्रियो से उत्पन्न होने वाला सुख तो दु ख ही है। सुख उसे कहते हैं जिसके भोगने से पश्चाताप नही होता है, सताप नही होता है। सुख उसे कहते है जो सबके सामने भोगा जाता हो। वह कैसा सुख जिसके पीछे काली रात्री की याद की जाती है स्वय का काला भाव उत्पम्न करता है। हमसे नही पूछना। अब प्रश्न करो–जिसके लिए काली रजनी की याद आती है, जलते दीपो को बुझाया जाता हो, अहो ज्ञानी। उस इन्द्रिय सुख के लिए तू क्या कर रहा है? तूने अपने पुण्य का एक दीप बुझा दिया, जैसे कि आप जन्मदिन की मोमबत्तिया बुझाते हो। कितना बडा अविवेक का काम चल रहा है? अपने हाथ से अपनी आयु को नष्ट होते देख खुशियॉ मना रहा। अरे। उस दिन तो रोना चाहिए फूट–फूटकर कि ओहो। मेरा एक वर्ष चला गया। मिठाईयॉ बाट रहा है। भो ज्ञानी। पर सिद्धात तो कहेगा यह मरणदिन है, क्योकि एक वर्ष मर चुका हैं।

भो ज्ञानी। जीवन को जी लेना कोई बडी बात नही, जीवन को सभल के जीना, यह ज्ञानियो की समझ होती है। जीवन तो तिर्यंच भी जीते हैं, नारकी भी जीते हैं परन्तु जो जीवन की कीमत समझ कर जी रहा है उसका नाम ही जीवन है। अत जब तक उतरोगे नहीं, तब तक तरोगे कैसे।

मनीषियो। वसन उतर जायेगे, वासनाये उतर जायेगी, तो फिर तुम भी अदर मे उतर जाओगे। जब अदर मे उतर जाओगे, तो ससार से तिर जाओगे। देखो। यह श्रमण–सस्कृति है,

प्रकृति की सस्कृति। सत्य मे कोई धोखा नहीं होता है। क्योंकि वस्त्रो मे विश्वास को दिखाया नहीं जा सकता है अविश्वास को छुपाया जाता है। भो ज्ञानी! स्वय की बात बताओ। पर से छिपाते–छिपाते, स्वय से छिपा रहे हो, स्वय को ही छिपा रहे हो। अहो! यह अध्यात्म विद्या है। इसीलिए सत्य नग्न ही होता है, निर्दोष होता है, शास्वत होता है। वही सुख शक्ति है। ध्यान रखो, नाटक मे दर्शको को राम दिखा सकते हो, पर स्वय मे तुम राम नही हो सकते। यहाँ सब लीलाओ के राम बैठे हैं, लीलाओ के नाटक चल रहे हैं। सत्य राम तो तेरा आतम–राम है। उसे जान नहीं पा रहे हो, कौन है आत्माराम? इसीलिए राग कर रहे हो, असत्य से द्वेष कर रहे हो। अहो! आप को हसी आ रही है, किसकी हँसी उडा रहे हो? भो ज्ञानी! जब तक धन और धरती मे राग–परिणति है, तब तक निराकुलता कहना सफेद असत्य है। पडित आशाधर जी ने सागर धर्मामृत मे लिखा है–श्रावक यानि गृहस्थ, जो चार सज्ञाओ से और परिग्रह से दूषित हो, उसी का नाम गृहस्थ है। जब तक गृहस्थ है, तब तक वह छूट नही सकता। इसीलिए पडित दौलतरामजी ने कह दिया **'आकुलता शिवमाँही", शिवालय मे नही है,** सिद्धशिला पर नहीं हैं, स्वरुप मे नही है आकुलता। इसीलिए शिवमार्ग पर चलना चाहिए।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि आप सत्य को समझते जाओ, लेकिन असत्य की भाषा को मत बोलना, असत्य के भाव नही बनाना। भाव–प्राणो का वियोग हो जाये, सक्लेषता की वृद्धि हो जाये और शुभ परिणामो का विघात हो जाये–ऐसे शब्दो का प्रयोग नही करना। आप बनिया हो। कैसे–कैसे तौल–तौलके देते हो काटे पर रख–रखकर देते हो वैसे ही वाणी को तौला करो। वाणी नही तौलते इसी का परिणाम है कि शाति भग हो जाती है। अरति को उत्पन्न करने वाला सत्य नही बोलना। जिससे परस्पर का प्रेम समाप्त हो उसका नाम अर्यत भाव है। रति यानि अनुराग, वात्सल्य और अरति यानि द्वेष। द्वेष को उत्पन्न करने वाले शब्दो को बोलना अप्रीति को बढाने वाले शब्दो को बोलना यह भी असत्य है। अरे! दूसरे को डरा देना, ध मकी दे देना मैने कहा है वह होना चाहिए, आपने इधर से उधर कुछ किया तो समझ लेना? अहो! हमने आपको तो समझ लिया कि आप नहीं बोल रहे हो। यह आपकी कषाय बोल रही है, आपका अहम् बोल रहा है आपका मिथ्यात्व बोल रहा है, अश्रद्धान बोल रहा है। आपके भयभीत करने से उसको इतनी घुटन पैदा हुई कि वह मूर्च्छा खाकर गिर पडा और मर भी गया। बोले–मैंने तो कुछ नही किया। तुमने सब कुछ तो कर डाला, अब बचा ही क्या ? ऐसा भय होता है कि लोग बीमार हो जाते हैं। बच्चा रो रहा है तो चुप करने के चक्कर मे कह दिया–वह 'हऊआ' आ गया। तुमने उसका जीवन बर्बाद कर दिया 'हऊआ कह करके हऊआ ही बना दिया। अरे भाई! उसको समझाओ। आचार्य कुन्दकुन्द देव की माता भी तो अपने बच्चे को खिलाती थीं, कहती थी– "शुद्धोसी

बुद्धोसी", आप बेटे को तत्वार्थ सूत्र पढाना, भक्तामर सिखा देना, अच्छी बाते सिखा देना। इसीलिए ध्यान रखना भयभीत नहीं करना, उसको पुचकारना, समझाना, लेकिन डराना मत। डराने के सस्कार डाल दोगे तो चिता मत करो, वह जवान होगा, आप वृद्ध होगे, वह धमकायेगा। इसीलिए दोष उनका नहीं, आपका है।

भो ज्ञानी! तुम्हारे द्वारे पर कोई भिखारी आया हो, प्रेम से बोल दो। आपके वचनो मे कौन–सी दरिद्रता है? प्रियवचन सुनने से सभी जीव सतुष्ट हो जाते हैं। प्रसन्नता का माहौल था और खडे हो गये, भाषण ऐसे कर दिये कि सभी की भावनाएँ खिन्न हो गयी। अरे! खिन्न करने के, बैर को बढाने वाले, शोक को उत्पन्न करने वाले शब्द नहीं बोलना। शाति की गगा बह रही थी, आपने पत्थर पटक दिया, कीचड कर दिया, कलह कर दिया। कई लोगो को कलह करने मे बडा आनद आता है, लेकिन ध्यान रखो, हिसा का द्रोष लगेगा। असत्य तो है, ही पर हिसा भी है। जैन–शासन वास्तव मे सुखमय जीवन जीने की कला बताता है यानि परिणामो से भी सुखी रहो शरीर से भी सुखी रहो। कलह करोगे तो भोजन नहीं पचेगा। आयुर्वेद में लिखा है कि गैस बनेगी, पेट के रोग होगे और फिर पूरे शरीर मे रोग हो जायेगे। ऐसा शब्द बोल देना कि हम जानते हैं तुम्हारे चरित्र को और चले गये कहकर, फिर दिखे भी नहीं और बाद मे पूछ रहे हो कि क्या हो गया? यानि किसी की बुद्धि को क्षीण करना हो, तो क्लेश मे डाल दो, उसका ज्ञान–ध्यान सब नष्ट। इसीलिए करुणा करना उन जीवो पर, क्लेश करके बुद्धि को नष्ट नही करना। ये सभी वचन अप्रिय हैं सभी मे प्रमाद का योग है, इसलिए झूठ वचनो मे नियम से हिसा होती है। अत जो झूठ बोलता है वो हिसक ही है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जहाँ प्रमाद है, वहा असत्य है। असत्य को छोडो, जीवन मे सत्य को स्वीकारो।

'मत हरो किसी का धन'

भोगोपभोगसाधनमात्र सावद्यमक्षमा मोक्तुम्।
ये तेऽपि शेषमनृत समस्तमपि नित्यमेव मुंचतु ।। १०१।।

अन्वयार्थ – ये = जो जीव। भोगोपभोगसाधनमात्र = भोगोपभोग के साधन मात्र। सावद्यम् =सावद्यवचन। मोक्तुम् = छोडने को। अक्षमा = असमर्थ हैं। तेअपि शेषम् = वे भी शेष समस्तमपि =समस्त ही। अनृत = असत्य भाषण को नित्यमेव। मुचंतु = निरन्तर ही छोडो।

अवितीर्णस्यग्रहण परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत्।
तत्प्रत्येय स्तेय सैव च हिसा वधस्य हेतुत्वात् ।। १०२।।

अन्वयार्थ – यत् = जो। प्रमत्तयोगाद्यत् = प्रमाद–(कषाय) के योग से। अवितीर्णस्य =बना दिये। परिग्रहस्य = (सुवर्ण, वस्त्रादि) परिग्रह का। ग्रहण = ग्रहण करना है। तत् स्तेय प्रत्येय = उसे चोरी जानना चाहिये। च सा एव = और वही। वधस्य हेतुत्वात् = वध के हेतु से। हिसा =हिसा है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ५९।।

भो मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने सहज सूत्र दिया है कि यदि दृष्टि सत्य है तो सृष्टि सत्य है। यदि दृष्टि सत्य नही है, तो सत्य भी सत्य नही है। असत्य कहने से सत्य असत्य होता भी नही है। क्योकि जो सत्य है वह सत्य ही होता है। सैंतालीस शक्तियो मे भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने आत्म– ख्याति टीका मे छठवीं वीर्य–शक्ति का कथन किया है। अपनी वीर्य–शक्ति को नही समझने के कारण ही इन पुद्गलो मे आप लिपटे बैठो हो। तेरा वीर्य अनन्त है। क्षयोपशम तेरा स्वभाव नही है। क्षायिक तेरा वीर्य है और क्षायिक वीर्य तभी सामने खडा होता है जब तेरे सामने क्षायिक ज्ञान होता है। अनत ज्ञान को वही स्वीकार कर सकता है जिसके पास अनत बल होता है।

मनीषियो! अल्प उपसर्ग को देखकर आप आँखो मे नीर भर लाते हो। उनसे पूछो जिन्होने

सात दिनो तक भोजन–पानी ही नहीं, अपने प्राणो से ममत्व भाव भी छोड दिया। प्राणों को छोडकर जो चलता है, वही साधना के जीवन को सार्थक कर पाता है। जहाँ प्राणों का राग है, वहाँ सयम के प्रति अनुराग सभव नहीं होता। धन्य हो उन सात सौ योगियो को वे निर्ग्रंथ योगी कह रहे थे कि शील की बाड़ी को कोई उखाड़ के फेक नहीं सकता। शील की बाडी के कारण ही अनन्त वीर्य–शक्ति काम कर रही थी।

अहो आत्मन्! इस शरीर की वेदना को देखकर तू व्यथित मत हो जाना। यह सत्य है कि तेरे अन्तरग मे अनन्त बल विराजा है, तू तो सिद्ध बनने वाला है, कर्म शत्रु को उखाड कर फेंकने वाला। यह सत्य रुकता नहीं है, सत्य बहता रहता है। जो प्रवाहमान होता है, पर बदलता न हो, उसी का नाम सत्य होता है। इसीलिये द्रव्य सत्य होता है, पर्याय असत्य होती है, क्योंकि द्रव्य बदलता नहीं है, पर्याय बदलती है और जो बदली है वह झूठीं होती है। इसलिये सत्य शरीर नहीं, सत्य तो आत्मा ही है, जो हर समय साथ रहती है, कभी बदलती भी नहीं है और कभी बदला भी नहीं लेती है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सत्य सत्ता को समझो और नव कोटि से झूठ को छोड दो। फिर भी यदि गृहस्थ अवस्था मे आप अपनी अजीविका नहीं चला पा रहे हो, तो ऐसा झूठ मत बोलना जिससे दूसरे के प्राणो का घात हो।

भो ज्ञानी! व्यर्थ में असत्य भी मत बोलना। कभी–कभी निष्प्रयोजन झूठ बोलते हो। इसे जिनवाणी अनर्थदण्ड कहती है। यह ध्यान रखना कि वाणी के द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व सामने खड़ा हो जाता है। एक नेत्रहीन व्यक्ति मार्ग मे बैठा है। वहाँ एक सिपाही उससे पूछता है–क्यो अधे! क्या यहॉ से सम्राट निकला? थोडी देर बाद सेनापति आते हैं। क्यो साधुजी! क्या यहॉ से महाराज निकले? मत्री आते हैं क्यो, आपको मालूम यहॉ से राजा निकले हैं? जब राजा स्वय आता है–सूरदासजी! आप यहाँ कब से विराजे हैं। क्या यहाँ से मत्रीजी, सेनापति आदि निकले हैं? अहो राजन्! अहो भाग्य कि आप पधारे हैं। कुछ क्षण पहले आपका सिपाही निकला था। इसके उपरान्त सेनापति निकला और कुछ ही क्षण पूर्व मत्रीजी निकल चुके हैं। अरे! आपको तो दिखता ही नही है फिर आपने जाना कैसे? राजन्! क्षमा करना। नेत्र फूट जाये तो कोई दिक्कत नही, लेकिन प्रज्ञा का नेत्र नही फूटना चाहिये। राजन! हमने आँखो से तो नहीं देखा, पर कानो से जरूर देख लिया। राजन! कोयल और कौए की पहचान वर्ण से नही, वाणी से होती है। हमने आपकी वाणी के माध्यम से आपको पहचान लिया। जब आप पधारे, तो आपको क्या मैं अधा नहीं दिखा? अन्धा तो था, फिर भी आपने कहा कि सूरदासजी! आप यहाँ कब से विराजे हैं? यह सम्राट की भाषा थी।

भो ज्ञानी! वाणी आपके भावो को प्रकट कर देती है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि आप बोलते तो रहना, परन्तु तौल–तौल के बोलना। हे मुनिराज! तुम चिन्ता मत करो। समिति

की तराजू पर तौल लेना और दस धर्म का काटा लगा देना, उसमे सत्य–धर्म है। जो सत्य को नहीं मानता है, जिनवाणी कहती है कि वह चोर है, डाकू हैं। अत कभी किसी के साथ छल नहीं करना, झूठ नहीं बोलना।

भो ज्ञानी! झूठ बोलने और छल से बचने के लिए सात स्थानो पर मौन का कथन हमारे आगम मे है। आप जो बोल रहे हो, वह शब्द–आगम है। आप गाली दे रहे हो, रोष मे बोल रहे हो, तो आप शब्द– आगम का दुरुपयोग कर रहे हो। जब आप भोजन कर रहे थे, उस समय मुख जूठा था, अशुद्ध था। अशुद्ध मुख से आपने कुछ बोला तो, आपने जिनवाणी का अवर्णवाद किया। मौन से भोजन करने लगे, तो बहुत सारी विडम्बना समाप्त हो जाये। जो भोजन करते–करते बोलता है उसको दीनता प्रकट होती है। मौन से खाते हो तो सन्तोष आता है, तुम्हारी हीनता प्रकट नही होती है। इसलिये जैन–योगी सर्वथा मौन से ही चर्या करते हैं, मागते भी नहीं और सकेत भी नही करते।

भो ज्ञानी! स्नान के समय यदि मुख से बोल रहे हो तो पानी मुख मे चला जायेगा। अत स्नान के समय श्रावक मौन रहता है। मल–विसर्जन के समय वह क्षेत्र कितना अशुद्ध होता है? दॉत और मुख बिलकुल बन्द रखना चाहिये, जिससे अशुद्ध वर्गणाये आपके मुख मे न जा सके। मनीषियो! वमन हो जाये तो मौन ले लो। मैथुन क्रिया के समय मौन रहना चाहिये, क्योकि इससे बडा पापाचार क्या होगा? जहॉ नवकोटी जीवो का घात हो रहा है और तुम प्रसन्न हो रहे हो। भगवान जिनेन्द्र की पूजन–भक्ति के समय भी मौन रहना चाहिये। जितनी जिन–भक्ति कर रहे हो उतना ही बोलना चाहिए।

भो चेतन! मौनी मूक नही है। मूक तो पशु होते है। साधक मूक नहीं, मौन होता है। देखो, सात सौ वीतरागी मुनि कैसे मौन हुये थे? जिस जीव की वाणी मनोहर होती है, वह निर्मल मौन–व्रत का पालन करता है। उसका सत्य भी अपने आप पलता है। जितना ज्यादा बोलोगे, उतना ही झूठ बोलने मे आयेगा। हमारे आगम मे, सत्य व्रत मे मौन को भी व्रत कहा है। बहुत अच्छा होता कि जब बिजली पर टैक्स चल रहा है, पानी पर टैक्स चल रहा है तब वाणी पर और टैक्स लग जाता। लेकिन आप लगाओ न लगाओ, हमारे जैन–शासन में तो लगा है। देखो, सत्यव्रत, सत्य–अणुव्रत, सत्य–महाव्रत, सत्य धर्म, वचन गुप्ति और भाषा समिति यह सभी व्रत वाणी पर ही क्यो लगाये गये हैं? क्योकि मालूम था आचार्य भगवन्तो को, तीर्थंकरो को, कि सबसे ज्यादा उपद्रव वाणी से ही होते हैं। लोक मे जितने विसवाद होते हैं वह सब वाणी से होते हैं। आचार्य सोमदेव सूरी ने लिखा है कि जैसे निर्ग्रंथ योगी का कमण्डल होता है वैसे ही राष्ट्र के समाज के, परिवार के मुखिया को खजान्ची होना चाहिये। देखो, जब कमण्डल मे पानी भरा जाता है, तो बडे मुख से भरा जाता है

और टोंटी से निकालते हैं। इसी प्रकार, आय तो बड़े मुख से करना चाहिये और व्यय सकरी टोटी से करना चाहिये, तब तुम समाज को चला सकते हो। जैसे पैसे में लोभ करते हो, वैसे वाणी मे लोभ करो, व्यर्थ मत बोलो।

भो ज्ञानी! दूसरे के द्रव्य को ग्रहण करना, रखी हुई या किसी की पडी हुई, भूली हुई वस्तु पर का द्रव्य है। आपने उठाकर रख लिया। सुनो! जिसकी गुमी सामग्री है, उससे पूछना कैसे तडफता है? जिसका कोई स्वामी नहीं होता है, उसका स्वामी शासन होता है। भूमि का द्रव्य आपका नही होता, शासन का होता है। घर में घडा निकला, क्या करोगे? जाओगे शासन को देने। नियम बडा कठिन है। क्या कहेंगे–पुण्य के योग से मिला है। लेकिन जिस दिन पकडे गये उस दिन पता चल जायेगा कि पुण्य कितना बडा था? गुणभद्र स्वामी ने आत्मानुशासन ग्रथ मे स्पष्ट लिखा है।

शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते सत्तामपि न सपद ।
न हि स्वच्छाम्बुभि पूर्णा कदाचिदपि सिन्धव. ।। ४५ ।। (आ शा)

समुद्र कभी शुद्ध जल से नही भरा, नालो से भरा है। ऐसे ही जितनी विभूतियॉ विशाल दिख रही है इधर–उधर के छल–कपट से ही भरी हैं। कोई गरीब रख गया धरोहर और सेठजी के मन मे आए 'अब वह कभी न आए । जितने वैद्य हैं सब निरोग कर रहे हैं। यदि परिणाम निर्मल हैं तो श्रेष्ठ, नही है तो कहो ठडी का मौसम आ गया। सीजन नही चल रहा। महाराज! बीमारी बढे तो हमारा सीजन चले। आचार्यों ने कितना सूक्ष्म लिखा है कि तुम न्याय करना, पर अन्याय की मत सोचना। रोगी बनाने के विकल्प नहीं लाना।

भो ज्ञानी! जैसे एक निर्ग्रंथ योगी अपने परिणाम सभाल के चलता है, ऐसे ही आप लोगो को उस समय परिणाम सभालने की आवश्यकता है। यह अणुव्रतो की चर्चा है, तो पहले सच्चा श्रावक बनता है वही सच्चा योगी बन सकता है। आचार्य महाराज! ने अचौर्य व्रत की चर्चा की है कि चोरी करना भी हिसा ही है। क्योकि व्यक्ति को प्राणो से भी प्रिय अपना धन होता है। अत दूसरे के धन का हरण करना उसके प्राणो को हरण करने के तुल्य है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी का यह पहला ग्रथ है जहॉ धन को प्राण लिखा है, क्योकि व्यक्ति को पैसा प्राणो से भी अधिक प्रिय होता है, इसलिये किसी की रखी हुई, पडी हुई, भूली हुई, गिरी हुई वस्तु उठा नहीं लेना। यदि आपको मालूम चल जाये कि अमुक व्यक्ति की है, तो उसको दे देना, लेकिन अपने घर मे रखने के लिये नहीं उठाना।

'मत हरो किसी का प्राण'

अर्था नाम य एते प्राणा एते बहिश्चरा पुसाम्।
हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान्।। १०३।।

अन्वयार्थ य जन यस्य = जो पुरुष जिस (जीव) के। अर्था हरति = पदार्थों को या धन को हरण करता है। स तस्य = वह पुरुष उस (जीव) के। प्राणान् हरति = प्राणो को हरण करता है (क्योकि जगत मे)। ये एते = जो ये। अर्थानाम = धनादिक पदार्थ (प्रसिद्ध है)। एते पुसा =वे सब ही पुरुषो के। बहिश्चरा प्राणा सन्ति = ब्राह्य प्राण हैं।

हिसाया स्तेयस्य चनाव्याप्ति सुघटमेव सा यस्मात्।
ग्रहणे प्रमत्तयोगो द्रव्यस्य स्वीकृतस्यान्यै ।।१०४।।

अन्वयार्थ हिसाया च स्तेयस्य = हिसा के और चोरी के। न अव्याप्ति = अव्याप्तिदोष नही है। यस्मात् अन्यै =क्योकि दूसरो के द्वारा। स्वीकृतस्य = स्वीकृत किये। द्रव्यस्य ग्रहणे प्रमत्तयोग = द्रव्य ग्रहण करने प्रमाद का योग। सुघटमेव = अच्छी तरह घटता है इसलिये।

नातिव्याप्तिश्च तयो प्रमत्तयोगैककारणविरोधात्।
अपि कर्मानुग्रहणे नीरागाणामविद्यमानत्वात्।। १०५।।

अन्वयार्थ च नीरागाणाम् = और वीतराग पुरुषो के प्रमत्तयोगैककारणविरोधात् = प्रमाद योग रूप एक कारण के विरोध से कर्मानुग्रहणे = द्रव्यकर्म, नोकर्म की कर्मवर्गणाओ के ग्रहण करने मे अपि स्तेयस्य = निश्रचयकर के चोरी के अविद्यमानत्वात् = उपस्थित न होने से तयो अतिव्याप्ति न = उन दोनो मे अर्थात् हिसा और चोरी मे अतिव्याप्ति भी नहीं है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ६० ॥

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावनपीयूष देशना हम सभी सुन

रहे हैं। आचार्य कुदकुद देव ने अहिसा सत्य की चर्चा करते हुए कहा है कि सत्यता तभी होगी, जब निश्छल वृत्ति, निकाक्षित दृष्टि और आस्तिक परिणति होगी। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि वृत्ति की सत्यता नहीं है तो वाणी की सत्यता कुछ नहीं कर सकती। यदि वृत्ति तुम्हारी सत्य है, तो वाणी की सत्यता मे थोडा दम है। एक व्यक्ति रोज चोरी करता हो और कहे कि मैं सत्य बोलता हूँ, उसकी वृत्ति बता रही है कि वह सत्य पर चल नहीं पा रहा है तो तुम बोलोगे क्या ? वास्तविकता यह है कि जिसकी वाणी मे सत्यता है, अत करण मे सत्यता है उसकी ही चर्या मे सत्यता है।

भो ज्ञानी! सैंतालीस शक्तियो के कथन मे सातवीं शक्ति का नाम है प्रभुत्व शक्ति। अहो ज्ञानी! जो स्वय प्रभु है तो धन–दौलत पर दृष्टि क्यो जा रही है, दिखाना चाहते हैं। अरे! भोजन करने के लिए धन का सग्रह नही हो रहा है, दिखाने के लिए धन का सग्रह हो रहा है। पेट भरने के लिए नही, पेटियाँ भरने के लिए कमाना पडता है। अब तो बैंक भरे जाते हैं, विदेश मे भेज देते हैं, अनेक गरीबो के तन के वस्त्रो को आपने पेटियो मे छिपा कर रखा है, अनेक गरीबो की भोजन की व्यवस्था को आपने गोदाम मे छुपाकर रखा है। अहो ज्ञानी आत्माओ! आवश्यकता से अधिक द्रव्य का जो सग्रह करके रखता है वह दूसरे के उपभोग मे अतराय डालता है। अहो! जिसने वैभव को जान लिया है, वह वैभव को तृण के समान छोडकर चला जाता है। जिसने वैभव को वैभव माना है, उसने वैभव को जाना ही नहीं है। यदि विभूतियों मे वैभव था तो चक्रवर्तियो ने क्यो छोडा ? धन मे सुख था तो तीर्थंकरो ने क्यो छोडा ? जन परिजन मे सुख था तो वे जगल मे क्यो चले गये। अहो पिताश्री! चाबियाँ खनक रही हैं, तिजोरियाँ भरी हैं और बेटा दूसरे की दुकान मे काम कर रहा है। परतु जब बेटे के मन मे ईर्ष्या की झनकार होती तब एक दिन डाका डालने के लिए पिताजी के घर मे प्रवेश करता है। इसलिये प्रेम से दे दो, तो चोरी तो न हो, ईर्ष्या तो न हो, शत्रुता तो न हो।

भो ज्ञानी! प्रभुत्व शक्ति आपसे कह रही है– ध्यान रखना, अखण्ड–अविनाशी, चिद्रूप–चेतन्य, टकोतकीर्ण , ज्ञायक स्वभावी, परमपारिणामिक चेतन सत्ता पर तेरा शासन चलता है। ऐसा तू विभू है, कहाँ पुद्गल के टुकडो का प्रभु बनने जा रहा है। अहो! आज से भूल जाना कि मैं गरीब हूँ , गरीब वह है जो धर्म से रिक्त है, दरिद्र वह है जो चारित्र से शून्य है, भिखारी वह है जो शील से समाप्त हो चुका है। विभुत्व शक्ति कह रही है कि आपके पास वह जिनगुण सपदा है, उसको भूलकर आप बाहर की सपत्ति मत मान बैठना। अहो चेतन् प्रभु ! मैंने तुम्हे सम्राट बनाया और काम, क्रोध, मान, माया और लोभ यह लुटेरे चारो ओर घूम रहे हैं। यदि गाव के साहूकार सहयोग नही करे तो चोर मे कोई ताकत नहीं कि चोरी कर सके। अहो आत्मा! यदि काम क्रोधादि तेरा सहयोग न करे, आत्मा मान का सहयोग न करे, आत्मा मायाचारी का सहयोग न करे, तो कषाय रूपी लुटेरो

की कोई ताकत नहीं है कि वह हमारे धन को लूट सके। ध्यान रखना पर्याय चोर नहीं है, यह पर्यायो का ही परिणमन है। अत पर्याय को दोष नहीं दो, इस पर्यायी को दोष दो। पर्याय तो कहती है कि आप मेरे जैसा उपयोग करना चाहो तो कर लो, क्योकि हम तो निश्चित समय तक बधे हैं। आयु बध कह रहा है कि जिसने सौ वर्ष की आयु का बध किया है, हम तब तक उसके साथ हैं। इस बीच जितना उपयोग करना चाहे कर सकता है। भो ज्ञानी! प्रति समय पर दृष्टि रखोगे, तो एक समय पर दृष्टि रखी रहेगी और प्रति समय पर–दृष्टि नहीं रख पाए तो एक समय पर–दृष्टि कभी भी नहीं जा सकती। इसलिये प्रभुत्व सत्ता आपसे कह रही है मै अखण्ड हूँ। मेरा शासन अखण्ड है अविचल है।

भो ज्ञानी! मेरी सत्ता बदलने वाली नही है। सत्ता को वास्तविक रूप मे समझना चाहते हो तो अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं– हे ज्ञानी! आप किसी के द्रव्य का हरण मत करो। कर्त्तव्य का पालन नही करना ही चोरी है। अहो! शासक की आज्ञा का पालन नही करना चोरी है, तो तीन लोक के शासक वर्द्धमान तीर्थंकर के शासन मे हम विराजते है और उनके शासन की अवहेलना करना यह तो महाचोरी है। रोज पूजा दान, स्वाध्याय, उपासना, तप, त्याग आदि करना कर्त्तव्य है। इनको प्रतिदिन ही नहीं क्षण–क्षण करना है। सामायिक के काल मे आपकी दृष्टि अन्यत्र चली जाती है, तो आपने सामायिक के समय की चोरी की है। आप प्रवचन सुन रहे थे बगल मे बैठे व्यक्ति से बातचीत करने लगे, आपने स्वय के साथ ही नही दूसरे के साथ भी धोखा किया। आपने उसकी दृष्टि चुरा ली। अत ज्ञानावर्णी कर्म का बध भी किया और चोरी भी की। वस्तु की कीमत सौ रुपए है और पचास मे मिल रही है इसका तात्पर्य ही है कि चोरी से ली गई है तभी तो दे रहा है। कभी किसी के धन–धरोहर को हडप लिया है तो वह भी डाका है। यह ध्यान रखना मिलेगा उतना ही जितना तुम्हारे भाग्य मे है यह मन की सतुष्टि है सो कर लो, कितनी करना है। चोखे मे खोटा भर दिया, दिखाया अच्छा और दिया बुरा। सोचो हमने क्या किया, केवल ऊपरी तत्त्व ज्ञान को समझा और भीतर से खोखले हो चुके हो। अरे! जब तक चरणानुयोग को नही समझोगे, विशुद्धि बनना त्रैकालिक असभव है। डाका डाले और जाप करे और कहे विशुद्ध हो रहा हूँ , केवली के ज्ञान मे सब झलक रहा कि तुम क्या हो रहे हो। डाकू भी चोरी करने को जाता तो माला फेर कर जाता है कि भगवन् अच्छा मिल जाये। अहो! धन भी तभी मिलता, जब तेरा पुण्य होता है। इसलिये चोरी नही करना, चोरी की अनुमोदना नहीं करना, चोरी का द्रव्य भी नही खरीदना। रविवार के दिन शासन की अनुमति नहीं है दुकान खोलने की, फिर भी आधी दुकान खुली रहती है। भो ज्ञानी !

ध्यान रखना, आप जैसा कमाते हो, वैसा ही खाते हो तो वैसे ही भाव बनते हैं। माँ ही बच्चो को चोरी करना सिखाती है। पतिदेव ऑफिस से घर मे आये, कपडा टागे और उन्होने धीरे

से सौ रुपए का नोट निकाल लिया। वह बच्चे देख लेते हैं कि जब माँ ऐसा कर सकती है, तो हमे करने मे क्या है ? यह मत सोचना कि दूसरे के घर मे चोरी करे तो चोरी है। अपने घर मे भी यह चोरी है। अहो ज्ञानियो! देखो, साधु दूसरे साधु के कमण्डल के पानी का उपयोग नहीं करते, कोई ग्रथ चाहिए तो पूछते हैं। अचानक कभी पानी की आवश्यकता भी पड जाये तो उनको कहेगे कि आपके कमण्डल का पानी ले रहे हैं, क्योकि उनका अचौर्य महाव्रत है। चरणानुयोग कह रहा है कि जब आचरण तुम्हारा निर्मल होगा तो करण तुम्हारा निर्मल होगा। यदि आचरण तुम्हारा निर्मल नहीं है तो करण भी तुम्हारा निर्मल नहीं होगा। करण यानि परिणाम, करण की पवित्रता के लिये ही आचरण होता है। यदि धोखे से अज्ञानता मे भूल हो भी गई हो तो उसे छोड देना और प्रायश्चित कर लेना।

आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं– चोरी करने वाला हिसक ही है, सभी पाप उसके पास हैं, वह झूठ भी बोलता है, परिग्रह सचय करता है, वह कुशील सेवी है, चोरी कर ही रहा है। भो ज्ञानी! उसके पास हिसा भी दौड रही है और पाचो पाप चोर के सामने खडे हुये हैं। जो दूसरे के धन का हरण करता है, वह दूसरे के प्राणो का हरण करता है। यदि आप अहिसक हो तो भीख मॉग कर खा लेना, पानी पीकर सो जाना और नहीं मिले तो णमोकार पढकर समाधि ले लेना, लेकिन दूसरे के द्रव्य का हरण नहीं करना। दूसरे के द्रव्य का हरण उसके प्राणो के हरण–तुल्य रहता है। यह तो तभी पता चलता है, जब स्वय का गुम जाए चैन नहीं पडता, भगवान का पूजन–भजन सब छूट जाता है। एक सज्जन पूजा कर रहे थे और धोती बदलते समय उन्होने सोने की चैन वाली घडी उतार कर रख दी, वह कोई उठा ले गया तो चिल्लाने लगे, बोले–हमे नहीं करनी पूजन। इसलिये ध्यान रखना दूसरे का धन अपने जैसा ही समझना। हा आपके मित्र की चैन गिर गयी थी तो आप उठा लेना और उसको जाकर दे देना, यह चोरी नहीं है। चोरी के परिणामो से अथवा अपने घर मे रखने की दृष्टि से जो भी उठाते हो वह चोरी है। अत दूसरे के द्रव्य को सग्रह करना चोरी है, बिना दिये किसी की वस्तु को स्वीकार करना, लेना, चोरी है।

भो ज्ञानी! ऐसे भी लोग मिलेगे जिनकी स्वय की दुकाने किराये पर हैं, परतु मदिर की दुकानो मे पचास रुपए, पच्चीस रुपए लग रहे हैं, उसमे अपना काम चला रहे हैं। अरे! जब कर्म का विपाक सामने आयेगा तब मालूम चलेगा, स्वय के घर हैं, बडी–बडी हवेलियाँ हैं, लेकिन दूसरे का मिल गया तो क्यो छोडो ? अहो! जमाना देखो कि किराये पर जिसने दिया वह उल्टे पैसा दे रहा है कि भैया खाली कर दो। भो ज्ञानी! ऐसे काम करना भी चोरी है। यदि मदिर के द्रव्य से पूजा करते हो तो आपको उतनी द्रव्य वहॉ रखनी चाहिये, क्योकि पर–द्रव्य से भगवान की पूजन नहीं होती है। इसलिए जितना सुना है उसको अपने जीवन मे ग्रहण करना।

"परधन–पाषाणवत्"

असमर्था ये कर्तुम् निपानतोयादिहरणविनिवृत्तिम।
तैरपि समस्तमपर नित्यमदत्त परित्याज्याम्।।१०६।।

अन्वयार्थ – ये = जो लोग। निपानतोयादिहरणविनिवृत्तिम = दूसरो के कुआ, बावडी आदि जलाशयो के जल आदि को ग्रहण करने का त्याग। कर्तुम् असमर्था = करने को असमर्थ हैं, तै अपि = उन्हे भी। अपर समस्तम् = अन्य सपूर्ण। अदत्त = बिना दी हुई वस्तुओ का नित्यम् परित्याज्याम् =हमेशा त्याग करना योग्य है।

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म।
अवतरति तत्र हिसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात्।।१०७।।

अन्वयार्थ – यत् = जो। वेदरागयोगात् = वेद के रागरूप योग से। मैथून अभिधीयते = स्त्री पुरुषो का सहवास कहा जाता है। तत् अब्रह्म = सो अब्रह्म है। तत्र = उस सहवास में। वधस्य = प्राणी वध का। सर्वत्र = सब जगह। सद्भावात् = सद्भाव होने से। हिसा अवतरति = हिसा होती है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ६१ ॥

भो मनीषियो! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने आत्मा के गुणो का कथन करते हुए सकेत दिया है कि ज्ञानी जीव पर सम्पत्ति को लोष्ठवत् मानता है लोष्ठ यानि पाषाण। अत परद्रव्य पाषाण के तुल्य होता है, पर द्रव्य का हरण अपने धर्म का विनाश है, शाति का नाश है, क्योकि द्रव्य का हरण ही नही होता अपितु निज की शाति का भी विनाश होता है। जब व्यक्ति छल से परद्रव्य को ग्रहण करके आता है तब विकल्प यह होता है कि कोई देख न ले, अत उसका शाति से उपभोग भी नहीं कर पाता।

भो ज्ञानी! लोग तीर्थो मे जाते हैं, मदिर के दर्शन करने आते हैं, परतु धिक्कार हो उनकी उस परिणति को वहाँ पर भी दूसरो की जेब को देख लेते हैं। सोचना, एक जीव कर्म का क्षय करने के लिए आया है, एक जीव कर्म बध कर रहा है। अहो! उसे पाप से भी डर नहीं लगता और

परमात्मा से भी डर नही लगता। ध्यान रखना, यदि आपका बेटा व्यापार कर रहा है तो आपका कर्त्तव्य बनता है कि उससे पूछ लेना, बेटा! तुम किसी के रक्त को निचोडकर के द्रव्य तो नही लाये हो। मुझे ऐसा दाना मत खिला देना, क्योकि मैंने अपने जीवन मे दूध ही दूध पिया है, किसी का खून नहीं पिया। बेटा! गरीबी की रोटी खा लेना, लेकिन पर-द्रव्य का हरण करके नीचे मत गिर जाना, क्योकि जितने छल-छिद्र-कपट हैं वह नियम से प्रकट होते हैं। माँ जिनवाणी तो मात्र आप पर करूणा कर रही है कि कम से कम हम पाप छोड पाये, नही छोड पाये, पर पाप का ज्ञान तो हो रहा है। अहो! जिनके आप उपासक हैं, वे साधु तीन-तीन बार शुद्धि बुलवाते हैं, पूछते हैं, विश्वास रखते हैं कि मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि और दान की शुद्धि है। आहार जल अशुद्ध है, पिण्ड अशुद्ध है, तो ध्यान रखना-ऐसे अशुभ दाने को किसी साधक के हाथ मे मत रख देना। आपको मालूम है कि राजपिड का निषेध है।यह जो राजकर से धन आता है उसका आहार कभी मुनिराज को नही दिया जाता है, क्योकि कर सबका है, जितने कतलखाने होगे, उसका भी कर" शासन मे आता है। घर मे आपको मालूम है कि अमुक सदस्य गलत काम कर रहा, आपने दृष्टि फेर ली और जानते भी हो कि हमारे घर मे ऐसा द्रव्य आया है। ध्यान रखो, घर के बुजुर्ग को भी उतना ही पाप होगा क्योकि तुम्हारे बैठे-बैठे तुम्हारी सतान ने ऐसा किया। जो सम्पत्ति सदाचार से समीचीन वुद्धि पूर्वक अर्जित की जाती है वह ग्रहस्थो की सम्पत्ति कहलाती है।

भो ज्ञानी! लाखो-करोड़ो जीवो के विघात से अर्जित धन कभी भी तुमको धन्य नही करायेगा अति वैभव-विलासता मे दया सूख जाती है। मनीषियो! अशुभ परिणति मे कभी सतुष्ट मत होना, भले तुमसे दोष हो रहे हो, लेकिन दोष को दोष ही मानना, कही यह स्वीकार कर लिया कि जीवन जीना है तो कुछ तो करना होगा। अहो! जीवन तो चिडिया भी जीती है, श्वान भी जीता है। भो ज्ञानी! वर्तमान के ही सुख को मत देखो, भविष्य को भी निहारो। देखो किसान भोग बाद मे करता है पहले बीज को बोने हेतु सुरक्षित रख देता है। ऐसे ही सम्यकदृष्टि ज्ञानी जीव पुण्य के भोग को बाद मे भोगता है, पहले पुण्य के द्रव्य को सचित करके रख लेता कि भविष्य मे भी तो देखना है। अत अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि पर द्रव्य को लोष्ठवत् छोड दो, ग्रहण मत करो, क्योकि धन ग्यारहवॉ प्राण है उसका हरण मत करो। मैं तो आपसे कहूँगा कि ऐसे स्थानो पर अपने द्रव्य को ब्याज पर भी मत देना, सहयोग भी मत देना जमा भी मत करना। ध्यान रखना, वह पैसा कहाँ जा रहा है--मुर्गीपालन, मछली पालन केन्द्र खुल रहे हैं, वही तो तुम्हारा धन जा रहा है। अरे! ऐसा क्यो नहीं सोचते कि किसी गरीब परिवार को सहयोग कर दे। आगम मे समदत्ती भी एक दान है, अर्थात् अपने साधर्मी को अपने समान बना लेना, परतु बगल मे एक मदिर ऐसा भी खडा हुआ है जिसमे दीवाल नीचे गिर रही है क्या कभी मन मे नहीं आता कि मैं इसको भी बनवा दूँ ? जब

तक ऐसी दृष्टि नही आयेगी तब तक तुम्हारी सम दृष्टि नहीं है।

भो ज्ञानी आत्माओ! तत्त्व को समझो, प्रपचो मे मत जाओ, द्रव्य दृष्टि को सोचो, यही वीतराग मार्ग है। अन्य सब व्यर्थ के मार्ग हैं। जिस मार्ग मे शान्ति हो, सुख हो वही यथार्थ मार्ग है। इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं, यदि आप धर्मात्माओ से विसवाद करते हो, परस्पर मे कलह करते हो तो वह भी चोरी है। अहो! हमारे महाराज, तुम्हारे महाराज लगता है कि तत्वार्थ सूत्र तक का अध्ययन नहीं है। मनीषियो। श्री जहाँ दिख गई वही किलकिल होती है जबकि धन मे धर्म होता ही नही, धन से धर्म के साधन तो उपार्जित किये जा सकते हैं, लेकिन धन से कोई धर्म माने, यह पूर्ण असत्य है। यदि आप धन से धर्म मानते है, तो आपके साधु तो पूरे अधर्मात्मा हो जायेगे क्योकि उनके पास तो धन होता ही नही है वे धर्म कैसे करे? इसीलिए ध्यान रखना, धर्म भावो का विषय है, भावो पर जीना, धन पर मत जीना, इसलिए परस्पर मे कभी विसवाद भी नहीं करना। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है जैसे गाय अपने बछडे पर प्रेम करती है, दुलार करती है। ऐसे आप परस्पर मे प्रेम से रहो। यदि आपने तीर्थंकर देव की आज्ञा का उल्लघन कर दिया तो वह चोरी है।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं इतना अनर्थ मत करना कि जिससे दूसरे के प्राण ही चले जाये। मनीषियो! आपका दान क्षायोपशमिक दान है। तीर्थंकर भगवान का क्षायिक दान होता है। उनकी वाणी का खिरना क्षायिक दान होता है। अहो! भगवान भी दान करते है। श्रावक दान देता है तो साधु चर्या करते हैं और उस चर्या से साधु दान करते हैं, तो आपको उपदेश देते है। यह "परस्परोपग्रहोजीवानाम् है, अर्थात् एक जीव दूसरे जीव का उपकार करता है। इसलिए आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि हे श्रावको! दूसरे के कुएँ बावडी, जलाशय आदि का आप पानी पी सकते हो शुद्धि के लिए मिट्टी ले सकते हो, लेकिन मुनिराज तिनके को भी जमीन से उठा कर दात को साफ नही कर सकते, क्योकि वह पर द्रव्य है, ऐसी मुनि की चर्या है। अहो! ऐसा मत कह बैठना कि अब कोई पालन ही नहीं कर सकता, अब तो पचमकाल मे ऐसा हो ही नहीं सकता। भो ज्ञानी! आचार्य कुदकुद महाराज कोई चतुर्थ काल के मुनिराज नहीं थे। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी भी अभी के है। इसलिए अपनी असमर्थता तो कहो, लेकिन अपनी असमर्थता को परमेष्ठी का अभाव मत कर देना। जिन शासन पर करुणा रखना, "मोक्षमार्ग प्रकाशक" की पक्तियाँ पढ लेना कि—"हस पक्षी तो होता है, लेकिन हर पक्षी हस तो नहीं होता है"। अब निर्ग्रंथ गुरु होते हैं, लेकिन सभी गुरु निर्ग्रंथ दिख नहीं रहे, अब गुरु कहाँ से लाये।

भो ज्ञानी! जिनवाणी का अपलाप मत करना। पचम काल की श्वासो तक देव, शास्त्र, गुरु रहेगे, उनके भक्त भी रहेगे और अभक्त भी रहेगे। हमारे अन्य विद्वानो ने भी कितनी सुदर बात

लिखी है "ते गुरु मेरे उर बसो", क्योंकि उस समय उनको मुनिराज नहीं दिख रहे थे, लेकिन तब उन्होंने यह नहीं लिखा था कि गुरु हैं नहीं। भवोदधि तारण हार अर्थात् भव के सागर से पार कराने वाले मुनियो का मध्यकाल में उत्तर भारत मे अभाव हो गया था, लेकिन दक्षिण भारत मे फिर भी मुनिराज थे। कैसे भी हो, लेकिन मुनि परम्परा का विच्छेद नहीं हो पाया। तीर्थंकर भगवन्तो की देशना है कि इक्कीस हजार वर्ष के पचमकाल मे जिन शासन चलेगा, अभी तो मात्र ढाई हजार वर्ष निकले हैं। साढे अठारह हजार वर्ष तक कोई विकल्प मत करना कि धर्म नहीं है, धर्मात्मा नहीं है। उतार–चढाव आते हैं, आते रहेगे, लेकिन धर्म का विनाश नहीं होगा। इसके बाद छठवा काल आयेगा तो इतना तो कर लो कि अपने को छठवे काल मे नहीं जाना। ग्रथराज 'त्रिलोय पण्णत्ति' की उस गाथा को पुन दोहरा लो कि जब तक सिकी–सिकाई रोटियाँ खाने को मिलती रहेगी, तब तक तुम भूलके मत कह देना कि अब धर्म–धर्मात्मा नही है। जिस दिन तुम्हे रोटी मिलना बद हो जाए, अग्नि का लोप हो जाए फिर तुम जरूर कह देना कि अब धर्म नहीं है। जब तक भरत क्षेत्र मे अग्नि है तब तक जिन शासन जयवत है।

कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर,
अम्मिनाभावी (कर्नाटक) जिला धारवार

"मत करो नवकोटि की हिसा'

हिस्यन्ते तिलनाल्या तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत् ।
बहवो जीवा योनौ हिस्यन्ते मैथुने तद्वत् ।। १०८।।

अन्वयार्थ यद्वत्तिलनाल्या = जिस प्रकार तिलो से भरी हुई नली मे। तप्तायसि विनिहिते = तप्त लोहे की शलाका के डालने से। तिला = तिल। हिस्यन्ते तद्वत् = नष्ट होते हैं, उसी प्रकार। मैथुने योनौ = मैथुन के समय योनि मे भी बहवो जीवा।हिस्यन्ते = बहुत से जीव मरते हैं।

यदपि क्रियते किचिन्मदनोद्रेकादनगरमणादि।
तत्रापि भवति हिसा रागाद्युत्पत्तितन्त्रत्वात् ।। १०९।।

अन्वयार्थ अपि = और (इसके अतिरिक्त)। मदनोद्रेकात् = काम की उत्कटता से। यत् किचित् = जो कुछ अनगरमणादि क्रियते = अनग–क्रीडा आदि की जाती है।तत्रापि = उसमे भी। रागाद्युत्पत्तितन्त्रत्वात् = रागादिको की उत्पत्ति के वश से। हिसा भवति = हिसा होती है।

ये निजकलत्रमात्र परिहर्तुम् शक्नुवन्ति न हि मोहात्।
नि शेषशेषयोषिन्निषेवण तैरपि न कार्यम्।। ११०।।

अन्वयार्थ ये मोहात = जो (जीव) मोह के कारण। निजकलत्रमात्र = अपनी विवाहिता स्त्री मात्र को। परिहर्तु हि = छोडने को निश्चय करके। न शक्नुवन्ति तै = समर्थ नही है उन्हे। नि शेषशेषयोषिन्निषेवण अपि = अवशेष अन्य स्त्रियो का सेवन तो अवश्य ही। न कार्यम् = नही करना चाहिए।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ६२।।

भो मनीषियो! भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना के आधार पर आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी सकेत दे रहे हैं कि हे मानव! जीवन मे तेरी कीमत शील से है। मानव–जीवन मे यदि तेज है तो उसका नाम ब्रह्म है। उस ब्रह्म को जिसने खो दिया है, ध्यान रखना वह चलता–फिरता मुर्दा है। लकेश तो विद्वान था अर्धचक्री भी था, लेकिन कुशील की भूल ने उसके जीवन को बर्बाद कर दिया। एक काम–बाण के पीछे जिसने कुशील–सेवन किया है उसके पास

न सत्य है, न अचौर्य है, न अहिसा है, बल्कि उसके चारों कषाय और पाँचो पाप विराजे हैं, क्योकि ससार मे जितना अनाचार है सब कुशील व्यक्ति के पास है।

भो ज्ञानी! वीतराग–शासन मे ज्ञान से यश तो कह दिया, पर ज्ञान से पूजा प्राप्त नहीं होती। श्रद्धान से देवत्व की प्राप्ति होती है, ज्ञान से कीर्ति फैलती है, सयम से चारित्र की वृद्धि होती है और जहाँ तीनो होते हैं वहाँ शिवत्व की प्राप्ति होती है। अहो ज्ञानी आत्माओ! तुम सयमी बन सको या नहीं बन सको, लेकिन सयम का अपमान कभी नहीं कर देना, क्योकि जब भी मुक्ति मिलेगी तो सयम से ही। जिस भूमि (विदिशा) पर आप विराजे हो वह आज चारित्र के माध्यम से पूजी जा रही है। ध्यान रखना, चारित्र तभी पुजता है जब तेरह प्रकार का चारित्र विराज जाता है। जैनदर्शन के महान सिद्धात–चक्रवर्ती आचार्य भगवन् नेमीचन्द्र स्वामी, जिन्होने गोमटेश बाहुबली स्वामी के श्रीकर्णों मे सूरिमंत्र दिया। ऐसे महान धुरधर दिगम्बर आचार्य, कितनी गहरी बात कह रहे है –

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज समोहो।
समोहेण ण जाणदि जीवो, हि गुण व दोष वा।। २७२।। गो जी का.।।

जब वेद–कर्म की उदीर्णा सताती है, परिणाम सम्मोहित होते हैं, तब स्वय के शरीर को देखकर व्यक्ति की वासनाये भडकती हैं। अपने ही शरीर के अवयवो को देखकर स्वय ही अपने आप मे मोहित हो रहा है। अहो चर्मकार! चमडी को देखकर रीझ रहा है। अरे! जब तुम्हारी भोग–भावना का उद्भव हो तो उसमे अशुचि भावना को विराजमान कर लिया करो। यह कृमिकुल से भरे मॉस के पिण्ड को देख। भोग–भावना मे जीने वाली आत्माओ! जब सयम धारण करने की बात आये तो भी कहना कि मैं भगवती आत्मा हूँ और जब नारी के यहॉ जाने के भाव आये, तब भी कहना कि मैं भी भगवान, तू भी भगवान। जिस समय अपने भगवान का नाश करने जा रहे हो और अनन्त भगवन्त नौ कोटि जीवो की हत्या करने के भाव जब बन रहे हो, तब भी कहना–हे समयसार, वीतराग वाणी! मेरे मस्तिष्क मे विराजमान हो जाओ। हे भोगी! उस समय सोचना कि भोग्या भी तो भगवती–आत्मा है, सिद्ध बनने वाली, मेरे से पहले भगवान बनके जा सकती है। याद करो सौधर्म इन्द्र शची के चरण छूकर कहता है कि–अहो ! धिक्कार हो मुझ पापी के लिए मै यही पडा रहूँगा और मेरे देखते–देखते यह पावन द्रव्य सिद्ध बनने जा रहा है उस सिद्ध–स्वरूपी द्रव्य को मेरा नमस्कार हो।

भो ज्ञानी! जो नारी मे मॉ को देखे, उसका नाम ही ब्रह्मचारी होता है। लोक मे ऐसा कौन जीव–द्रव्य है जो सिद्धत्व–शक्ति से रहित है। जिसका तूने उपभोग किया है, उसके सामने जाकर देखना कि तुम कैसे दृष्टि उठा पाते हो। हे प्रभु! मैंने अपने भोग का विषय आपको बनाया है। धिक्कार हो मेरी अशुभ वृत्ति को। अरे ! मुमुक्षु को तो निगोदिया में भी भगवान दिखता है और अज्ञानियो को सतो मे असत दिखते हैं। भगवत–दृष्टि कहती है कि प्रत्येक जीव को समान समझो,

वात्सल्य/प्रेम के साथ जिओ। यदि तुम यहाँ वात्सल्य से जी पाओगे तभी एक सिद्ध में अनेक सिद्ध बनकर विराज पाओगे। अभ्यास तो करना ही पडेगा एक साथ बैठने का। इसलिए जिन्हे तू अपने भोग का विषय बना रहा है वे भोग्य नहीं हैं, वे योगी हैं। आचार्य भगवन् कह रहे हैं–वेदकर्म उदय होने पर मोहित परिणाम हो जाते हैं। सम्मोहित व्यक्ति न दोष को देखता है, न गुण को, न जाति देखता है, न कुल, न धर्म, न समाज को न शासन को देखता है। जो समाज–शासन के डर से छुपे बैठे हैं, उसे समतभद्र स्वामी ने ब्रह्मचर्य नही कहा। जो स्वशासन से आत्मा पर अनुशासन रखता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य कहा है। इसलिए ब्रह्मचर्य के लिए ब्रह्म को समझने की आवश्यकता है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा। उस ब्रह्म मे जो आचरण करे उसका नाम ब्रह्मचर्य है। अहो! जड–द्रव्य की तो इतनी सुरक्षा और तेरे शरीर के भीतर जो अमूल्य धन निर्मित होता है, उसे तू भोगो की नाली मे फेक देता gS f/kDd kj gSrgsfy,A vHkh rkscã p,Zoz dhckr g$cã p;Z'धर्म की नहीं।

मनीषिया! सयम की सम्पत्ति किसी पर्याय मे अर्जित नही की जाती। आपको सयम–सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य–पर्याय मे भेजा गया है। अहो! तुमने इस पर्याय को मोह की मिट्टी मे मिला दिया। भो ज्ञानी! भूल हो गई है, तो अब भूल नही करना। जैसे सेठ विजय और सेठानी विजया ने किया। पति का ब्रह्मचर्य–नियम शुक्ल–पक्ष का था और पत्नि का कृष्ण–पक्ष का। माता–पिता को मालूम नही था। सुहाग की रात्रि आती है पत्नि हाथ जोड लेती है– स्वामी! क्षमा करना, रात अधेरी है मैंने निर्ग्रंथ योगी से ब्रह्मचर्य–नियम लिया है। शुक्ल पक्ष आयेगा, तब हम आपकी इच्छा की पूर्ति करेगे। अहो! ठीक है आपके व्रत को भग नहीं करूँगा। धन्य ऐसे महापुरुष को। शुक्ल पक्ष आता है पत्नि श्रृगार करके पहुँचती है, तो पति हाथ जोड कर कहता है–बहिन! आपका कृष्ण पक्ष का नियम था तो मैने भी निर्ग्रंथ योगी (धरती के देवता) से शुक्ल–पक्ष मे ब्रह्मचर्य का नियम लिया है। इसलिए आप पद्रह दिन को मेरी भगिनी हो और जैसे मैंने आपके व्रत का निर्वाह कराया था, ऐसे मेरे व्रत का निर्वाह आपको कराना है। पत्नि चरणो मे गिरकर कहती है प्रभु! एक नारी के तो अनेक पति नही होते पर आप तो दूसरी शादी कर सकते हैं कुल परपरा बनी रहेगी। पर धन्य हो उस वीर को और एक नारी की दृढता को, कि पति–पत्नि भाई–बहिन का जीवन जी रहे हैं। वह धन्य है।

अभुम्त्वापि परित्यागात् स्वोच्छिष्ट विश्वमासितम्।
येन चित्र नमस्तस्मै, कौमार ब्रह्मचारिणे ।। १०९ ।। आ शा ।।

भो ज्ञानी! आचार्य गुणभद्र स्वामी ने लिखा है–'उस अभोगी ने भोग छोड़ दिये। जिसने भोगो को जाना ही नही, उसने ही भोग छोड दिये थे। वह पूर्वभव का योगी था। उस कुमार–ब्रह्मचारी को मेरा नमस्कार है। परतु आचार्य योगेन्द्रदेव स्वामी कह रहे हैं कि मैं उस कुमार ब्रह्मचारी, ऐसे निर्ग्रंथ के चरणो का बलिहारी हूँ। अहो ! उत्तम पुरुष वह होते हैं जो स्वात्म की चिता करते हैं। मध्यम पुरुष वह होते हैं जो चमडी और दमडी की चिता मे रहते हैं, लेकिन निधम–

अधम वे होते हैं जो काम/भोगो की चिता मे जिया करते हैं। जो पर की चिता मे जिया करते हैं, वे अधमाधम हैं। अब समझ लो अपनी-अपनी गिनती कहाँ आ रही है। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी कितनी करुणा-दृष्टि से कह रहे हैं कि आप तो दया की मूर्ति हो, करुणाशील हो, सम्यक्दृष्टि हो, तो सुनो-जीवो का घात करने वाला नौ कोटि की चिता छोड नहीं पा रहा है। शुद्ध-उपयोग मे कैसे विराजेगा? कैसे अनुभूति करेगा? अहो! आगम में देखो बुरा नहीं मानना, जो लिखा है वही मैं बता रहा हूँ-अशुद्धि के चार दिनो मे नारी को शूद्र-चडालिनी की सज्ञा दी है। उस समय भी तू ब्रह्म का पालन नही कर पा रहा है? धिक्कार हो! तेरे जीवन के लिए।

भो ज्ञानी! दिन सयम के लिए होता है, दिन साधना के लिए होता है, दिन पुरुषार्थ करने के लिए होता है। कम से कम आज अपने मन मे एक कायोत्सर्ग करके यहाँ से जाना कि मैं कुशील का सेवन दिन मे तो नही करूँगा। इतनी तो प्रतिज्ञा कर ही लेना और इतनी भी नहीं कर पाओ तो आज आपने आप को अरिहत-चरणो का भक्त कहना समाप्त कर देना। हे शील आत्माओ! काम-पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं, धर्म-पुरुषार्थ ही सब कुछ है। अहो! तुम्हारी दृष्टि तो अर्थ और काम पर टिकी है इसके अलावा कुछ नहीं है। परतु ध्यान रखो-अर्थ भी पुण्य से मिलता है और काम भी पुण्य से मिलता है। यदि वह तुम्हारे पास नहीं, तो दोनो बेकाम हैं। रायपुर की घटना है। एक सज्जन आये बेचारे ऑखो से आँसू टपकाकर कहने लगे-मुनिश्री! मैं बहुत दुखी हूँ। मैंने कहा-क्या बात है? महाराजश्री! अर्थ-लक्ष्मी भी गई और गृह-लक्ष्मी भी गई। मैंने कहा-भैया! यह तो तुम्हारा परम सौभाग्य है आप तो परम पुण्यात्मा हो गये कि राग की दृष्टि समाप्त हो गई अब तो तुम चलो मुनि बन जाओ। अरे! ऐसे भी ससार मे जीव हैं जो मोह के भिखारी बने बैठे हैं। घर मे खाने को दाना नहीं है और प्रेम से कोई बोलता नहीं है, फिर भी बेचारे कामी पुरुष बनकर वासना मे पडे है। अरे! सोचो तो जैसे कोई व्यक्ति एक घडे मे तिल भर दे और लोह का गरम -गरम लाल सरिया उस तिल से भरे पिण्ड मे डाल देवे, तो उन तिलो की क्या हालत होती है? चट-पट, चट-पट सब झुलस जाते हैं। इसी प्रकार से जीव जब काम-सेवन करता है, तो योनी-स्थान मे करोडो पचेन्द्रिय सैनी जीव चटपट-चटपट नष्ट हो, मर जाते है। आप सोचो कि एक व्यक्ति के मरने पर तेरह दिन का सूतक है, तेरहवे दिन शुद्धी होती है, तो जिसने नौ कोटि को रोज मारा, उनकी कितने दिन मे शुद्धी होगी? भो चैतन्य! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि काम-सेवन वासना के राग की अति तीव्रता है, तभी तो ऐसा दुष्कर्म है। इसलिए हिसा ही है। अरे! आत्मरजन के लिए यह पर्याय मिली है, मनोरजन के लिए नहीं। आत्मा का भोग एकमात्र मनुष्य-पर्याय, निर्ग्रंथ-मुद्रा मे ही सभव है। आगम कह रहा है कि स्वदार-सतोष-व्रत धारण करके कम से कम अन्य स्त्रियो के सेवन से तो बच जाओ। मनीषियो! आज शातिनाथस्वामी के चरणो मे अपनी-अपनी इच्छा कर लेना-प्रभु! आज से मैं प्रतिज्ञा लेता हूँ कि स्वदार-सतोष-व्रत का पालन करूगा।

"पाचवा पाप–परिग्रह"

या मूर्च्छा नामेय विज्ञातव्य परिग्रहो म्हेष ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणाम ।। १११ ।।

अन्वयार्थ – इय = यह। या मूर्च्छानाम = जो मूर्च्छा है। एष परिग्रहो हि = इसको ही परिग्रह निश्चय करके विज्ञातव्य = जानना चाहिये तु मोहोदयात् = और मोह के उदय से उदीर्ण = उत्पन्न हुआ, ममत्व परिणाम = ममत्वरूप परिणाम ही, मूर्च्छा = मूर्च्छा है।

मूर्च्छालक्षणकरणात् सुघटा व्याप्ति परिग्रहत्वस्य।
सग्रन्थो मूर्च्छावान् विनापि किल शेषसगेभ्य ।। ११२ ।।

अन्वयार्थ – परिग्रहत्वस्य = परिग्रहपने का। मूर्च्छालक्षणकरणात् = मूर्च्छा लक्षण करने से। व्याप्ति = व्याप्ति। सुघटा = भले प्रकार घटित होती है। (क्योकि) शेष सगेभ्य = अन्य सम्पूर्ण परिग्रह के विना। अपि = विना भी। मूर्च्छावान = मूर्च्छा करने वाला पुरुष। किल = निश्चयकर। सग्रन्थ = बाह्य परिग्रह सयुक्त है।

|| पुरुषार्थ देशना || ६३ ||

भो मनीषियो! जब यह जीव निज ब्रह्म मे लीन होता है, तो पर–द्रव्य से दृष्टि सहज हट जाती है। निज ब्रह्म मे लवलीन हुई आत्मा बाह्य ब्रह्माड की ओर नही निहारती। जो बाह्य ब्रह्माड मे विचरण कर रहा है, वह निज ब्रह्म मे त्रैकालिक विराजमान नही हो सकता। अत आत्मब्रह्म मे गया जीव बाह्य मे विचरण नही कर सकता और बाह्य मे विचरण करने वाला जीव कभी निज–ब्रह्म मे लीन नही हो सकता क्योकि भोगसत्ता और योगसत्ता युगपत् नही रहती। अहो! वैराग्य मे राग और राग मे वैराग्य ये दोनो धाराएँ बहुत विपरीत हैं। अनुभव करके देखना कि वही ज्ञान, ज्ञान है, वही भेद–विज्ञान है जिससे निज आत्मा का कल्याण हो। भेद–विज्ञान यही कहता है कि निज द्रव्य को पर द्रव्य से भिन्न स्वीकार करके चलना ही भेद–विज्ञान है। नाना सत्ताओ मे समाविष्ट होने पर भी निज सत्ता का ध्यान नही खोना, अपनी सत्ता को नहीं भूलना, इसका नाम भेद–विज्ञान है। ऐसे ही विजातियो के बीच मे एक नही दो नहीं, एक सौ अडतालीस विजातियो के बीच मे मेरी जाति

विराजमान है। एक सौ अडतालीस तो मुख्य हैं, इनके भेद–प्रभेद असख्यात लोक प्रमाण हैं। उनके बीच मे रहकर भी मैं अपनी प्रभुत्व सत्ता को नहीं भूलता हूँ, यही मेरी सर्वज्ञ शक्ति है।

मनीषियो! नौवीं शक्ति, सर्वदर्शित्व–शक्ति कहती है कि त्रैकालिक द्रव्यो पर दृष्टि डालकर निज द्रव्य की दृष्टि को मत खो बैठना। इससे बडा कोई भेद–विज्ञान नहीं हैं। यह सयोग–सबध सुहावने मिलेगे, इनमें भूल मत जाना, क्योंकि ससार मे रुलाने वाला कोई है, तो पुण्य का फल है, पुण्य नहीं। चक्रवर्ती आदि की विभूति अभ्युदय–सुख है और सिद्धत्व की प्राप्ति, अरहत अवस्था की प्राप्ति, यह सब नि श्रेयस सुख है। सम्यक्दृष्टि जीव का पुण्य नि श्रेयसरूप फलित होता है और मिथ्यादृष्टि का पुण्य अभ्युदय रूप फलित होता है, लेकिन अभ्युदय की प्राप्ति होना गलत नही है वह तो नियम से होगी क्योकि पुरुषार्थ कम था, इसलिए अभ्युदय नियम से फलित होगा। आपकी कोई ताकत नही है कि तपस्या करो और विभूति न मिले। आप रोक नहीं सकते। जिसकी तपस्या तीव्र होती है परतु तीव्रता में जहाँ मदता होती है, वहाँ अभ्युदय फलित होता है और जिसकी तपस्या उत्कृष्ट मे उत्कृष्ट होती है वो नि श्रेयस फलरूप फलित होती है। लेकिन जो आस्रव हो रहा है उसे कोई टाल नहीं सकता। पुण्य की प्राप्ति का हो जाना यह पुण्य का वेग है। पुण्य के वेग को सँभाल के पचा जाना–यह ज्ञान का और विवेक का काम है क्योकि पुण्य के वेग मे अपने आपको परमात्मा समझकर पुण्य को पुण्य नही समझता। अहो! ध्यान रखो, परमात्मा तभी बनोगे, जब पुण्य–पाप दोनो विनश जायेगे। जब तक तीव्र पुण्य का उदय नही आयेगा, तब तक परमात्मा नही बनोगे। आचार्य कुदकुददेव ने प्रवचनसार'जी मे स्पष्ट लिखा है–'पुण्यफला अरिहता' यह औदायिक–भाव है और जब उस औदयिक भाव का अभाव होगा, तब ही निर्वाण की प्राप्ति होगी। सिद्धत्व की प्राप्ति भी तभी होगी जब भव्यत्व–भाव (पारणामिक भाव) का भी अभाव होगा। अहो ज्ञानियो! अरिहत परमेष्ठी को भी पुण्य का क्षय करना पडता है, तो फिर तुम्हारे पुण्य की क्या बात है ? तेरहवे–चौदहवे गुणस्थान मे पुण्य–प्रकृति का ही क्षय कराया जाता है। कर्मों की स्थिति को आयुकर्म के बराबर करने के लिए केवली–समुद्घात करते हैं।

भो ज्ञानी! जिसे जिनागम पुण्य कहता है उसे आपने समझा ही नहीं। पॉचवे पाप को पाप नही तुम पुण्य कहते हो, पाप से लिप्त जीव को पुण्यात्मा कहते हो, तो निर्ग्रंथो को पाप आत्मा कहो। परिग्रह की प्राप्ति और परिग्रह का सचय यह पुण्य नहीं है यह पुण्य का फल है और यह निर्ग्रंथ–दशा पाप नही है और पाप का फल भी नही। निर्ग्रंथ–दशा को प्राप्त करके भी पुण्य का फल ही निहारा, तो धिक्कार है, तूने कुछ नही जाना। निर्ग्रंथ–दशा को प्राप्त करके मोक्ष–मार्ग को देखो, निर्ग्रंथ–दशा को प्राप्त करके चक्रवर्ती की विभूति को देख डाला ? अहो ज्ञानी! निर्ग्रंथ–दशा की उस पावन चर्या को तूने पुण्य पर पटक दिया है, क्योकि वह निर्ग्रंथ–दशा तो पुण्य और पाप के नाश के लिए थी, आपने निदान कर लिया कि मैं भी ऐसा बनूँ। भो ज्ञानी! आगम को समझो।

देवसेन स्वामी ने 'भावसग्रह' ग्रथ मे लिखा है–

सम्मादिष्ठी पुण्ण, ण होई ससार कारण णियमा।
मोक्खस्य हेउ होउ जहवि णिदाण ण कुणइ।। (भा स.)

सम्यक्दृष्टि जीव का पुण्य नियम से ससार का नहीं मोक्ष का ही कारण होता है, यदि निदान नही करता तो पुण्य ससार नहीं कराता है, निदान ससार कराता है। पुण्य के फल की लिप्सा (मोह) बध का कारण है। देह का मिलना बध नहीं है, देह मे चिपक जाना बध है। अहो ! जिनेद्र की देशना को प्राप्त करके भोग–सामग्री जुटाये, उस जीव का क्या परिणाम होगा ? आकिचन्य धर्म की चर्चा करके कचन बनकर भीख माग रहे हो, इतना नहीं और कुछ होना चाहिए। अब सोचो, तूने आकिचन्य धर्म को किचन पर न्यौछावर कर दिया। जिनवाणी सुनोगे तो कुछ सोचना। अहो आकिचन स्वभावी आत्माओ! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं– द्रव्य, धन, धरती, कुटुम्ब, परिजन पुण्य नहीं, रत्नत्रय धर्म पुण्य है। आचार्य भगवन् पूज्यपादस्वामी कह रहे हैं–

पुनात्यात्मान पूयतेऽनेनेति व पुण्यम्।
तत्सद्वेघादि पाति रक्षति आत्मान शुभादिति पापम् ।।

जिससे आत्मा पवित्र होती है उसका नाम पुण्य है। आत्मा की रक्षा जिस पुण्य से होती है, उसका नाम पाप है। जो मोक्ष जाने से तेरी रक्षा करता है, मनीषिया! उसका नाम पाप है। भो भगवती आत्माओ! सोचो, पॉचवे पाप पर इतने मत रीझो कि सब कुछ नाश करके भी धन की प्राप्ति हो जाये। कुल का ध्यान नही, वश का ध्यान नहीं, परपरा का ध्यान नहीं आम्नाय का ध्यान नही। यह भी विवेक नही कि क्या करना? शूद्रो के काम करने को तैयार है, पर पैसा आना चाहिए। द्वार पर लिखा है "वर्धमान जिनेद्राय नम" और नीचे लिखा है 'ब्यूटी पार्लर' यह क्या हो गया ? धिक्कार है! उज्ज्वल कुल में जन्म लिया, अरे! जिन शासन जैसे उच्च कुल मे जन्म लेकर भी तू शूद्रो के काम कर रहा है। मैं तो इसलिए कहता हूँ कि तुम्हे बुरा लग जाए, इसलिए नही कहता कि आप लोग खुश हो जाओ। ज्ञानी आत्माओ! ध्यान रखना–जीवन मे निष्कलक जीना। कदम छूट सकते है, परतु कलक त्रैकालिक नही छूटता। कलकी जीवन, क्या जीवन? मनीषिया! काजल की कोठरी मे कितना भी सयाना जाए, दाग तो लगाकर ही आयेगा।

भो मनीषिया! आचार्य भगवन् कुदकुदस्वामी 'समयसार'जी मे कह रहे हैं–हे जीव! तू छूटना चाहता है तो वैराग्य की सम्पत्ति को प्राप्त कर लो। तुम सब भगवान तो बनना चाहते हो, पर वैरागी नही बनना चाहते। भगवान जिनेन्द्रदेव का उपदेश है कि कर्म मे राग मत करो, पाँचवे पाप को पाप ही मानो। यदि पाँचवे पाप को पाप ही मान लिया तो विश्वास रखना कि चार पाप अपने आप छूट जायेगे। अत पूरा नहीं, तो कम से कम परिग्रह का भी परिमाण आपने कर लिया तो आपके

देश से गरीबी दूर भाग जायेगी। अहो आत्मन! आपके घरो में ऐसी सामग्री रखी है जो कभी काम मे नहीं आ रही पर कोई माँगे तो भैया! फिर काम आयेगी। पर कभी काम नहीं आयी। मालूम चला कि देखते–देखते हम भी पूरे हो गये, पर वे वस्तुएँ काम मे नहीं आयीं। अहो! तू सोचता है कि भोग उसे कहते हैं जो भोगते–भोगते समाप्त हो जाए, लेकिन तूने भोगो को ऐसा भोगा कि तुमको भोगो ने भोगा ? किसने किसको भोगा ? अच्छा बताओ कि पूरा कौन हुआ ? भोगो ने तुमको भोग डाला लेकिन तुमने भोगों को नही भोगा। इसलिए सतोष को बुला लो, लक्ष्मी का दुख समाप्त हो जाएगा।

भो ज्ञानी! परिग्रह–सज्ञा मे सतोष लाओ, परिग्रह की सज्ञा को मिटा दो। अपने पिताजी से पूँछ लेना कि पिताजी आपको सतोष है की नहीं। बोले–बेटा! जब तुम नहीं थे तब भी असतोष था और जब से तुम आ गये तो दूना असतोष हो गया। अब क्या बोले मत पूछो, मुठ्ठी मे बद रहने दो हमारी बाते। मनीषिया! सुखीया वही है जो इच्छा को त्यागे जब तक इच्छा नही छूट रही, सुखिया नही बन पाओगे। इसलिए पुण्य तो आयेगा ही, लेकिन उसमे फूल नही जाना, नहीं तो फूलना पडेगा। अहो! सम्पत्ति मिल जाए बस महाराज! कुछ नहीं चाहिए। जितनी भी सभा दिख रही है कोई हाथ देखने वाला झूठ–मूठ इतना कह दे कि तुम यह पुडिया ले जाओ और सदूक मे रख देना तो देखो! आजकल कैसी पेटियाँ बिक रही हैं। हाँ इतना अतर रहेगा कि जो बिल्कुल अज्ञानी है वह तो खुलेआम ही आयेगे और जो कुछ ढँके हुये हैं वह दूसरे को भेजकर पुडिया मँगा लेगे। भो ज्ञानी! वह ठीक तो कह रहे हैं–तत्त्व की पुडिया ले जाओ, आत्म–सदूक मे रख लो, रत्नत्रय के मोती निकल आएँगे तुम कहाँ मोतियो की बातो मे पडे हो। यह मोह ममत्व के परिणाम मोहनीय–कर्म की उदीरणा से होते हैं। इसलिए जो–जो वस्त्रो मे लिपटे हैं, वे निर्ग्रंथ नही हैं। जो निर्ग्रंथ नही हैं, उनकी मुक्ति नही है। कुदकुद आचार्य 'अष्ट पाहुड ग्रथ'' मे स्पष्ट लिख रहे हैं कि–

ण वि सिज्झइ वत्थधरो, जिण सासणे जइ वि होइ तित्थयरे।
णग्गो वि मोक्ख मग्गो, सेसा उम्मग्गया सत्वे।। २३।। अ पा

जिनेन्द्र के शासन मे तीर्थंकर ही क्यो न हो, वस्त्र धारण करके मोक्ष नहीं जा सकते। अन्य उन्मार्ग हैं, मार्ग तो निर्ग्रंथ मार्ग है। निश्चय करके सग्रथ से मुक्त मोक्षवान् होता है। मनीषिया! अब सम्पूर्ण परिग्रह के बिना भी यदि मूर्च्छा है तो परिग्रह है, इस प्रकार जानना।

"ममत्व का हेतु परद्रव्य है"

यद्येव भवति तदा परिग्रहो न खलुकोऽपि बहिरग ।
भवति नितरा यतोऽसौ धत्ते मूर्च्छा निमित्तत्त्वम्।। ११३।।

अन्वयार्थ – यदि एव = यदि ऐसा भवति= होता (अर्थात् मूर्च्छा ही परिग्रह होता,) तदा खलु = तो निश्चय करके। बहिरग परिग्रह = बाह्य परिग्रह। क अपि भवति न = कोई भी न होता। (सो ऐसा नही है) यत असौ = क्योकि यह बाह्य परिग्रह। मूर्च्छा निमित्तत्त्वम् = मूर्च्छा के निमित्तपने को नितरा धत्ते = अतिशयता से धारण करता है।

एवमतिव्याप्ति स्यात्परिग्रहस्येति चेद्भवेन्नैवम्।
यस्मादकषायाणा कर्मग्रहणे न मूर्च्छास्ति।। ११४।।

अन्वयार्थ – एव परिग्रहस्य = इस प्रकार (बाह्य) परिग्रह की। अतिव्याप्ति स्यात = अति व्याप्ति होती है, इति चेत् = ऐसा कदाचित कहो। तो एव न भवेत् = ऐसा नही हो सकता यस्मात् = क्योकि अकषायाणा = कषाय–रहित (अर्थात् वीतराग पुरुषो के)। कर्म ग्रहणे = कार्मण–वर्गणा के ग्रहण मे। मूर्च्छा नास्ति = मूर्च्छा नही है।

|| पुरुषार्थ देशना || ६४||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। उनकी पावन पीयूष देशना जन–जन की कल्याणी है। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने आलौकिक सूत्र दिया है कि जहॉ मूर्च्छा है वहॉ परिग्रह है ' मूर्च्छा का नाम ही परिग्रह है। द्रव्य की प्राप्ति पुण्य से होती है, लेकिन पाप की प्राप्ति परिणति से होती है। अरे भाई! तू बाजार मे सामग्री लेने जाता है तो द्रव्य को देता है, तभी तो द्रव्य मिलता है। पुण्य का द्रव्य नहीं है, तो विश्व मे चले जाना तुम्हे कही भी कुछ भी नहीं मिलेगा। इसलिए इच्छाओ को कितना ही बढा लो इच्छा बढाकर, पाप का आस्रव तो कर सकते हो लेकिन द्रव्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। परतु यह मत सोचना कि जिसके पास कुछ नही है वो अपरिग्रही हो सकता है। जिसके पास सब कुछ है, वे कुछ

नहीं हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, वे सब कुछ हैं। अन्यथा जितने भिखारी हैं वे सब अपरिग्रही हो जायेंगे।

अहो! जिनवाणी माँ कह रही है कि जिसके पास एक मकान है, वह एक मकान का आस्रव कर रहा है और जिसके पास एक भी मकान नहीं है वह शहर मे जितने मकान हैं उन सबका पाप कमा रहा है, क्योंकि जब–जब निकलता है भवनो के नीचे से, तब–तब विचारता है कि ऐसा ही मेरा होता। इसलिए आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी की बात को स्वीकार कर लो, परिग्रह की वृत्ति को परिमित कर लो। परिग्रह पाँचवाँ पाप है। जिसे तू पुण्य का योग कह रहा है, उसे माँ जिनवाणी पाप का सयोग कह रही है। जितने पाप तुम कमा रहे हो तो परिग्रह के पीछे कमा रहे हो। धन मिल जाए, धरती मिल जाए और जब धन–धरती मिल जाती है, तो राग की वृत्ति तीव्र हो जाती है। फिर आप उपभोग की सीमा बढा लेते हो और जब उपभोग की सीमाएँ बढती हैं, तो रोग की सीमा भी असीम हो जाती है और कोई रोग है मनुष्य के अदर, तो लोभ का रोग है।घर मे बहुत सारी ऐसी सामग्री है जिसे आपने वर्षो से नही देखा। फिर भी यदि बाजार मे कम कीमत में मिल जाए तो–ले लो काम मे आयेगी। यही लोभ की वृत्ति है।

भो ज्ञानी आत्माओ! परिग्रह के सद्भाव मे भी तू निर्ग्रंथ बन सकता है। परिग्रही कभी निज शुद्धात्मा मे लीन नहीं होता है। हे मुनिराज! ममत्व बिना तुम्हारा आशीर्वाद का हाथ भी नही उठता। जो आशीर्वाद दिया जा रहा है वह भी अनुराग है। परन्तु दृष्टि यह है कि जीव धर्म से जुडा रहे, धर्म–वृद्धि हो। हे प्रभु! जब तुम निज मे होते हो, तो पर के धर्म का भी ध्यान नहीं होता है और जब तुम पर–धर्म को दृष्टि मे रखते हो, तब तुम्हारा शुद्ध–उपयोग का निज–धर्म नहीं होता। देखो योगी को, जब आशीर्वाद देने मे राग होता है, तो अहो भोगियो! घर को बसाने मे तुम्हे वीतराग कैसे होता है ? ऐसा कहकर तू अपनी वृत्ति को स्वच्छद बनाना चाहता है। जिस शासन ने राग को पुद्गल कह दिया हो, उस शासन मे पर–पदार्थ को आत्म–तत्त्व कैसे कहा जा सकता है ? राग जो पुद्गल है, वह कषाय–परिणति की अपेक्षा से कहा है, पर वास्तव मे राग पुद्गल का धर्म नहीं, राग जीव की विभाव–अवस्था, विभाव–परिणमन है। यह विभाव–परिणति पुद्गल–धर्म के सयोग के कारण हो रही है। इसलिए जैसे वस्त्र से मेरा ममत्व नहीं, ऐसे भोजन से मेरा ममत्व नहीं। वस्त्र भी पहन रहा है, भोजन भी कर रहा है और फिर भी ममत्व से रहित हो रहा है ?

भो ज्ञानी! इस जीव के सामने जैसा द्रव्य आता है, उस जीव के ज्ञान का परिणमन वैसा होता है, क्योकि रागियो, भोगियो को देखोगे, उनके पास बैठोगे तो नियम से तुम्हारी दशा वैसी ही होगी। हमारी जिनवाणी मे लिखा है कि जिस जीव ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली हो, उस जीव से कहा गया कि तुम युवको के पास मत बैठो। जब युवको के पास बैठने से मना किया है, तो युवतियो के

पास बैठने को कैसे कह देगे? अब सोचो, परिग्रह के साथ चौबीस घटे तुम रहो और उसी को तुम दिन भर देखो, तो बताओ कौन–सा ध्यान चलता है ? परिग्रह–नदी, रौद्र–ध्यान है। आश्चर्य मत करना, एक ऐसे राजवैद्य थे, जो कह रहे थे कि सेठ जी पहले पैसा दो फिर उठाने देगे पुत्र के शव को। ससुराल मे रहकर वह वैद्य भी नगर का सेठ बन गया। पूरे नगर मे खपरैल के मकान परतु वैद्य जी के तिमजिले बने हुये थे देहात मे। ससार की दशा देखो कि कुछ ही दिन बाद मालूम चला कि वैद्य जी के पुत्र और पत्नि की मृत्यु भी हो गई और लोगो को सहन नही हुआ, डाका डाल दिया। फिर भी बहुत कुछ बचा, लेकिन देखते ही देखते जो नाती था उसने इतने कर्म किए कि मालूम चला कि ऋण ही ऋण सिर पर खडा हो गया। इसके बाद वह दिन मेरी ऑखो मे दिख रहा है कि जिस दिन उस भवन को बेचकर जा रहे थे। यह है परिग्रह की दशा।

भो ज्ञानी! यह बात असत्य है कि मै कुछ नही कर रहा हूँ, यह सब पुद्गल का परिणमन है, लेकिन तुम्हारे ममत्व का परिणाम क्या चल रहा है ? आचार्य कुदकुद देव की गाथा पुन उच्चारित कर लो एक बार, कि "जिनेन्द्र के शासन मे वस्त्र धारी को सिद्धि होने वाली नही है, वह तीर्थंकर भी क्यो न हो? नग्नता ही मोक्ष–मार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग है। इसलिए उन्मार्गो मे मार्ग की खोज मत करने लगना। भो चैतन्य आत्माओ! आचार्य योगेन्द्रदेव स्वामी परमात्म प्रकाश ग्रथ मे कह रहे है कि जिसके हृदय मे मृगनयनी निवास कर रही है उसकी दृष्टि परम ब्रह्म मे हो, यह सभव नहीं है। एक म्यान मे दो तलवार नहीं होती। इसलिए, व्यर्थ की बाते समाप्त करके उस परम–ब्रह्म की खोज करना है, तो परिग्रह को छोडना पडेगा। देखो, जब वज्रनाभि चक्रवर्ती दीक्षा लेने लगा तो बेटे को बुलाकर कहता है, बेटा! इधर आओ मै आपको यह राज्य देता हूँ। पिताश्री ! आप क्यो छोड रहे हो ? बेटा! यह राज्य–समाज महापाप का कारण है। जिसका कोई बैरी न हो, उसके बैरी बन जाएँगे अपने आप। बेटा बोला–आप मेरे तात हो और बैर को बढाने वाले इस राज्य को मुझे दे रहे हो ? अरे! पिता तो वह होता है जो पुत्र को पतन से बचा ले और आप मुझे पतन मे डाल रहे हो ? प्रभो! जो तेरी समझ, वह समझ मेरी। मुझे नही चाहिए आपका राज्य। जब तक ऐसी दृष्टि नही आयेगी तब तक मूर्च्छा, परिग्रह हटने वाला नहीं।

मनीषियो! मूर्च्छा परिग्रह शब्द को न समझने के कारण ही सग्रथ होकर अपने आप को निर्ग्रंथ मानकर बैठ गए। चौदह उपकरण श्वेताम्बर आम्नाय मे मुनियो के माने गये हैं। लेकिन आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी को यह अभिप्राय स्वीकार नहीं था। श्वेताम्बर साहित्य मे प्रसिद्ध ग्रथ है कल्पसूत्र। जैसे आप पर्यूषण पर्व मे तत्त्वार्थ सूत्र का पाठ करते हो वे कल्पसूत्र का पाठ करते हैं। कल्पसूत्र मे जिन–कल्पी को दिगम्बर –साधु स्वीकारा है और स्थिर–कल्पी को श्वेताम्बर साधु स्वीकारा है। परतु जैन आचार्यों का ऐसा अभिप्राय नही है। वह कह रहे हैं कि जिन–कल्प यानि

जो साक्षात् जिनेन्द्र की चर्या होती है, वह जिन–कल्पी कहलाती है, जो पचम–काल में सभव नहीं है। पैर में काटा चुभ जाये तो जिन–कल्पी साधु कभी निकालेगा नहीं। यह चातुर्मास विदिशा के शातिनाथ जिनालय मे नहीं होना चाहिए था, यह चातुर्मास किसी पर्वत अथवा वृक्ष के नीचे होना चाहिए था। यह जिनकल्पी मुनिराज की साधना है। स्थिर–कल्पी मुनिराज पचम काल के मुनिराज होते हैं। यदि जीव आता है तो पिच्छी से हटा सकते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर–केवली जिन–कल्पी ही होते हैं।यदि वर्तमान के मुनि के पैर मे काटा चुभ जाए, तुम निकाल लेना, निकलवा लेना। क्यों ? तुम्हारा बज्र–वृषभ–नाराच सहनन नहीं है। तुम्हारा पैर सड जाएगा और पैर सडेगा तो साधना मे सडन आयेगी। इसलिए तुम सभल के चलना। उतना सहनन नहीं, तुमको नाना उपचार कराना पडेगा। उसमे ज्यादा विराधना होगी। इसलिए निकाल लो जिनवाणी की आज्ञा है। आज्ञा–भग दोष नही है। जिस काल मे जैसी साधना सभव हो वैसी करना, पर विराधना मत करना। 'मूर्च्छा ही परिग्रह है,' यदि आपने ऐसा मान लिया तो निश्चय ही बहिरग परिग्रह कुछ भी नही होता। ऐसा नहीं है।

भो ज्ञानी! जो मूर्च्छा का निमित्त होता है, वह बहिरग परिग्रह है। इसलिए निमित्त नहीं होगा, तो अतरग परिग्रह भी नही होगा। आचार्य भगवन् ने निमित्त होने के कारण को भी परिग्रह कहा है। परद्रव्य मूर्च्छा के हेतु हैं, ममत्व के कारण हैं, इसलिए कारण को भी परिग्रह कह दिया है। पर वास्तव मे परिग्रह तो ममत्व–परिणाम ही है। लेकिन उस परिणमन का जनक तो परद्रव्य ही है। इसलिए उनको भी छोडना चाहिए। अत मूर्च्छा परिग्रह जो कहा है, परद्रव्य का सद्भाव ही परिग्रह है। कभी यह मत कह बैठना कि मूर्च्छा छोडो। मूर्च्छा भी छोडो, परद्रव्य को भी छोडो। जो कषाय से रहित वीतरागी है उनके भी कार्मण–वर्गणाएँ आ रही हैं। भो ज्ञानी ! वे मूर्च्छा के अभाव मे ही आ रहीं हैं, मूर्च्छा के सद्भाव मे नही आ रही हैं क्योकि वीतरागियो के राग नही होता है। इसलिए परद्रव्य का होना मात्र ही परिग्रह नही है, साथ मे मूर्च्छा का होना भी परिग्रह है। यदि परद्रव्य को ही परिग्रह मान लोगे तो समवशरण मे विराजमान तीर्थंकरो से बडा परिग्रही कोई नही है और इतना बडा परिग्रही तो सिद्धालय मे नही जाएगा, वे नरक मे चले जाएगे। इसलिए वहाँ क्या कहना ? उनके कषाय नही हैं। इसलिए बाहरी द्रव्यो का होना, भिन्न द्रव्यो का होना यदि बध करा देगा तो अग्नि के देखने से आँखे जल जाएँगीं। इसलिए परिग्रह का होना, परिग्रह मे लिप्त होना, इन दोनो से ही कर्म–बध होता है, इसको समझना।

"भोग नहीं, योग निर्जरा का हेतु"

अतिसक्षेपाद् द्विविध स भवेदाभ्यन्तरश्च बाह्यश्च ।
प्रथमश्चतुर्दशविधो भवति द्विविधो द्वितीयस्तु ।। ११५ ।।

अन्वयार्थ – स = वह (परिग्रह)। अतिसक्षेपात् = अत्यन्त सक्षिप्तता से। आभ्यन्तर च बाह्य = अन्तरग और बहिरग। द्विविध भवेत् = दो प्रकार का होता है। = प्रथम = पहिला (अर्थात् अन्तरग परिग्रह)। चतुर्दशविध = चौदह प्रकार का। तु = तथा । द्वितीय =दूसरा अर्थात् बहिरग परिग्रह। द्विविध भवति = दो प्रकार का होता है ।

|| पुरुषार्थ देशना || ६५ ||

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अमूल्य सूत्र दिया है कि जहाँ ममत्व है, वहाँ बध है, क्योकि द्रव्य के सद्भाव मे भी बध होता है, द्रव्य के अभाव मे भी बध होता है। यह मोह की अग्नि बहुत उत्कृष्ट है, मोह की अग्नि की महिमा अनत है, जब द्रव्य होता है तो जलाती ही है, परतु द्रव्य नही होता तो भी जलाती है। जब द्रव्य होता है तो भोगो की लिप्सा झुलसाती है। जब द्रव्य नहीं होता, तो भोग् सामग्री की प्राप्ति की लिप्सा जलाती है। जब भोग को भोग चुकता है तो पश्चाताप की भट्टी मे झुलसता है। त्रैकालिक आत्मा के गुणो का दहन करे उसका नाम भोग–अग्नि है, मोह–अग्नि है।

अहो चेतन आत्मा! सयम–रूपी–चादर के प्रभाव से तू अशुभ की ठण्डी से बच रहा था, पर भोगो की निद्रा मे इतना लिप्त हुआ कि अपने पुण्य के चादर को ही फाड डाला। अरे ! जब पाप की ठण्डी लगने लगेगी तब मालूम चलेगा कि हाय! मैंने तो पुण्य का चादरा ही फाड डाला। मोह की विडम्बना तो देखो, जो विशाल काष्ठ मे छिद्र कर देता है, वृक्षो मे अपने घर बना लेता है, लेकिन वह भ्रमर कोमल कमल को नही छेद पाता है।

भो ज्ञानी! पर्याय को मिटाने का भाव मत रखो। अज्ञानी पर्याय मिटाने की चिता मे मिट रहे हैं, ज्ञानी अशुभ परिणामो को मिटाकर के अमिट हो रहे हैं। अज्ञानी, पर्याय निर्मल हो जाये, पर्याय सुधर जाये, ऐसा चिल्लाकर पर्यायो मे भटक रहे हैं और ज्ञानी परिणामो को सुधारकर परमेश्वर बन

रहे हैं। इसलिये परमेश्वर बनना है तो परिणामो को सुधारो, पर्याय को नहीं, पर्याय तुम्हारी स्वय सुधर जायेगी। भो ज्ञानी! षट् द्रव्य का परिणमन जहाँ होता है उसी का नाम ससार है, सिद्ध भगवान ससार मे ही हैं। अत ससार से उदास मत होना, ससरण से उदास हो जाना। ज्ञानी ससार से उदास नहीं होता ज्ञानी सतति/भ्रमण से उदास होता है। जो ससार से उदास होता है वह ससार भ्रमण के कारणो को पहले ही छोड़ देता है। यदि चार व्यक्तियो ने चार अच्छी बात कह दी तो ससार नजर आने लगता है, अन्यथा ससार असार है। घर मे कुछ हो गया हो तो द्वारे मे आकर बैठ गये। क्यो भैया! क्या हो गया ? कुछ नहीं, सब असार ही है, सब स्वार्थ के हैं। लेकिन कहीं बेटा आकर पॉव पड गया और दूध का भरा गिलास पकड़ा गया, तो तुम्हारी कोई ताकत नहीं है कि तुम उनसे कहलवा लो कि ससार असार है। यह ससार तभी तक असार होता है, जब तक स्वार्थ की सिद्धि नहीं होती और स्वार्थ की सिद्धि होने लग जाये, तो लगता है कि सार ही सार है। मनीषियो! जब तक सार–असार पर दृष्टि है, तब तक समयसार के पुजारी तो हो सकते हो, लेकिन समयसार नहीं हो सकते।

भो चेतन! देखो कषाय कम हो गयी तो दिख नही रहीं, वासनाये कम हो गयीं तो दिख नहीं रही। झूठ बोल रहे कि सत्य बोल रहे हो, दिख नही रहा ? चोरी कर रहे हैं पर समझ मे नहीं आ रहा है, लेकिन पॉचवा पाप परिग्रह सबको बता देता है कि क्या है। धिक्कार हो ऐसे परिग्रह को जो मेरे भगवान को ढके हुये है।

भो ज्ञानी! सम्यक्दृष्टि जीव तो भोग को भोगकर कर्मो की निर्जरा कर रहा है, भोगो से निर्जरा हो रही है। आचार्य भगवन् कुदकुद देव बडी सहज भाषा मे लिख रहे हैं कि जैसे मछली को खाने के लिये जल मे कोई दाना डाला। वह दाना मछली को ही पुष्ट करता है, शख–सीप पर प्रभाव नही डाल पाता, जबकि वह भी जल मे है। ऐसे ही ससार मे तुच्छ भोगो की क्या बात करो। जो भोग नश जाये उन भोगो की क्या बात करो ? ससार मे विश्व का सबसे बडा कोई भोगी है तो वह तीर्थंकर अरहत देव हैं, क्योंकि आप जो इद्रिय–भोग भोग रहे हो, वह क्षायोपशमिक है, नाश होने वाला है। पर तीर्थंकर के भोग क्षायिक हैं।

भो ज्ञानी! नौ लब्धियो मे क्षायिकभोग और क्षायिकउपयोग लब्धि है। जिनके भोगान्तराय–कर्म का क्षय हो चुका है। जो समवशरण मे पुष्प–वृष्टि होती है, वह तीर्थंकर देव का क्षायिक उपभोग कहलाता है। ऐसा भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने, अकलक स्वामी ने "सर्वार्थसिद्धि," "राजवर्तिक" ग्रथ मे लिखा है। तीर्थंकर जिनदेव क्षायिक–भोग भोगते हुए भी कर्मो की निर्जरा कर रहे हैं, क्योकि उनके मोह का अभाव है। आगम यह कह रहा है कि भोग भोगने से निर्जरा नहीं होती तथा भोग भोगते हुये कर्म की निर्जरा हो सकती है। ध्यान रखो, सविपाक निर्जरा तो हो ही रही। चाहे तुम

भोगो या न भोगो, लेकिन वो तो कर्म उदय में आकर खिर रहा है। अविपाक भोगो से निर्जरा नहीं होती, जो जीव क्षायिक सम्यक्त्व से युक्त होकर बैठा है, उपशम सम्यक्दृष्टि है, क्षयोपशम सम्यक्दृष्टि है। वह जीव किसी भी कार्य मे लिप्त हो, लेकिन सम्यकत्व की जो श्रद्धा गुण है, उसका विनाश नहीं है। सम्यक्दृष्टि श्रावक जब व्यापार कर रहा होता है उपयोग व्यापार मे लगा हुआ है, परतु सम्यक् श्रद्धान उसका विचलित नहीं है, तो वहाँ पर निर्जरा हो रही है। सम्यक्दृष्टि जीव सम्यक गुण से समन्वित होने से मिथ्यात्व सबधी जो आस्रव हो रहा है, उसका वह वहाँ पर सवर भी कर रहा है। लेकिन वहाँ भोगो से सवर निर्जरा नहीं है, सम्यक्दर्शन से ही सवरा निर्जरा कर रहा है। भोगो से निर्जरा नहीं है, वह श्रद्धा–गुण के कारण निर्जरा है पर असयम–सबधी आस्रव अभी भी जारी ही है।

भो चैतन्य! जितने अश मे श्रद्धा काम कर रही है उतने अश मे बध नही है पर जितने अश मे राग है उतने अश मे बध है। जितने अश मे सम्यक्ज्ञान है, उतने अश मे बध नही है, पर जितने अश मे राग है उतने अश मे बध है। जितने अश चारित्र है उतने अश मे बध नही है, पर जितने अश मे राग है उतने अश मे निश्चित बध है। इसलिये पुन समझना भगवन् कुदकुद देव का अभिप्राय कि भोग भोगते भी निर्जरा होती है। जैसे–व्यापारी को व्यापार मे रागी को राग मे जो आनद आता है, योगी को भी वीतराग–भाव मे वही आनद आता है। वह वीतरागी निज चेतन–रमणी का भोग भोगता है। रागी विषय–रमणी का भोग भोगते है, वह भोग भोगते बधता है और वीतरागी निज रमणी के भोग से निर्बंधता को प्राप्त हो जाता है। उसे भोग भोगने से निर्जरा कही है परतु ससार की रमणियो मे रमण करने से निर्जरा नही कही है। वीतराग सम्यक्दृष्टि जीव वहाँ निजानन्द का उपभोग करते–करते कर्मों की निर्जरा करता है। जब तक निजानन्द का भोग नही होगा, तब तक शुद्ध उपयोग की दशा नही बनेगी। जब तक शुद्ध उपयोग की दशा नही बनेगी, तब तक जैसी निर्जरा मोक्ष–मार्ग मे होना चाहिये, वैसी निर्जरा नही होगी।

भो ज्ञानी ! सम्यक्दर्शन कहता है कि पूर्णता तो तभी होगी, जब मैं चारित्र के शिखर पर बैठा दूँगा। क्योकि मात्र सम्यक्दर्शन मोक्षमार्ग नही है। सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।" जहाँ तीनो की एकता होती है, उसका नाम मोक्षमार्ग है। एक–एक मोक्षमार्ग नही है। इसलिये पडित टोडरमल जी ने भी 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' मे लिखा है– 'सम्यक्दृष्टि मोक्षमार्गी होसी अर्थात् सम्यक्दृष्टि मोक्षमार्गी नही है, होगा अभी उपचार से मोक्षमार्ग है।

भो चेतन ! सम्यक्दर्शन बीज है–यह नकार मत देना, पर यह बीज तभी फलित होगा जब चारित्र की भूमि में बोया जायेगा। सम्यक्दर्शन मोक्ष–फल देने वाला नही है। उसे आपको चारित्र की मिट्टी मे डालना ही पडेगा। आचार्य योगेन्द्रदेव स्वामी ने लिखा है–अहो ज्ञानी ! पिच्छी–कमन्डलो

के ढेर लग गये, लेकिन मोक्ष नहीं हुआ। हे योगी ! पिच्छी–कमडल लेने से मोक्ष नहीं मिलता, लेकिन ध्यान रखना–बिना पिच्छी–कमडल लिये भी मोक्ष नहीं मिलता। इसलिये सम्यक्दर्शन अभी प्राप्त कर लें, फिर पिच्छी–कमडल ले लेंगे–यह कथन दिगबर आम्नाय का नहीं है। ध्यान रखना, अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन काल के अदर–अंदर उसका मोक्ष होगा, लेकिन तभी होगा जब नियम से निर्ग्रंथ–योगी बनेगा।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं–परिग्रह के सद्भाव मे सम्यक्दर्शन कुछ नहीं कर पायेगा। परिग्रह जिसका उतर गया वहाँ सम्यक्त्व की चर्चा करने की आवश्यकता ही नहीं है, वहाँ तो नियम से सम्यक्दर्शन होगा ही, क्योकि पहला परिग्रह मिथ्यात्व है। इसलिये उभय परिग्रह का त्यागी ही सम्यक्दृष्टि है। वही सम्यकज्ञानी और सम्यकचारित्र वाला है। भो चेतन! जो दिखता है वह द्रव्यलिग है, पर जो होता है वह भावलिग है। इसलिये द्रव्यलिग होना जरूरी है। बिना द्रव्यलिग के भावलिग की पहचान नहीं होती। ऐसा आचार्य इद्रनदि स्वामी ने 'इद्रनदी–नीति सार ग्रथ' मे लिखा है जैसे, देश मे सिक्के, की कीमत मुद्रा (सील) से होती है, ऐसे ही दिगम्बर मुद्रा की कीमत पिच्छी–कमडल से ही होती है। अत जब भी मोक्ष मिलेगा, तो पिच्छी–कमडल से ही मिलेगा।

मदिर समूह, कुण्डलपुर

"उभय परिग्रह के अभाव में फलती है अहिंसा"

मिथ्यात्ववेदरागास्तथैव हास्यादयश्च षड्दोषा ।
चत्वारश्च कषायाश्चतुर्दशाभ्यन्तरा ग्रन्था ।।११६।।

अन्वयार्थ मिथ्यात्ववेदरागा = मिथ्यात्व, स्त्री, पुरुष और नपुसक वेद के राग। तथैव च = और इसी प्रकार। हास्यादय षड्दोषा च = हास्यादिक (अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक,भय, जुगुप्सा) ये छह दोष। चत्वार कषाया = चार कषाय भाव (अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ अथवा अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्याना वरणीय और सज्वलन) ये चार कषाय भाव, आभ्यन्तरा ग्रन्था चतुर्दश = अन्तरग परिग्रह के चौदह भेद हैं।

अथ निश्चित्तसचित्तौ बाह्यस्य परिग्रहस्य भेदौ द्वौ ।
नैष कदापि सङ्ग सर्वोऽप्यतिवर्तते हिसाम् ।।११७।।

अन्वयार्थ इसके (अनन्तर)। बाह्यस्य परिग्रहस्य = बहिरग परिग्रह के निश्चित्त। सचित्तौ = अचित्त और सचित्त ये। द्वौ भेदौ = दो भेद हैं। एष सर्व अपि = ये समस्त ही। सङ्ग = परिग्रह। कदापि हिसाम् न अतिवर्तते = किसी काल मे भी हिसा का उल्लघन नही करते (अर्थात् कोई भी परिग्रह किसी समय हिसा–रहित नहीं है।)

उभयपरिग्रहवर्जनमाचार्या सूचयन्त्यहिसेति।
द्विविधपरिग्रहवहन हिसेति जिन प्रवचनज्ञा ।।११८।।

अन्वयार्थ जिनप्रवचनज्ञा आचार्या = जैनसिद्धान्त के ज्ञाता आचार्य। उभयपरिग्रहवर्जनम् =दोनो प्रकार के परिग्रह के त्याग को। अहिसा इति = अहिंसा, ऐसे। द्विविध परिग्रहवहन = दोनो प्रकार के परिग्रह के धारण को हिसा। इति सूचयन्ति = हिसा, ऐसा सूचन करते हैं।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ६६ ॥

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है कि ममत्वदशा आत्मा की वीतराग

दशा की शत्रु है। जीव के स्वभाव की विराधना, अपने वीर्य को छुपाने की परमकला है। हे वर्द्धमान! आप वीर हो गये, क्योकि आपने अपने वीर्य की चोरी नहीं की। जिन्होंने अपने वीर्य की चोरी की है, वह महावीर नहीं, दरिद्री हो गये, ससार मे भटक गये। ममत्व दशा के पीछे उन्होने अपनी वीरत्व शक्ति का विनाश कर लिया। अहो! ममत्व की महिमा तो देखो। वह ममत्व अनेक रूपो मे बिखरकर आता है। कभी राग में बदलता है तो कभी--द्वेष में भी बदल जाता है। पहले ममता माँ बनकर आती है, जब ममता पूरी नहीं हो पाती है तो ममता अपनी समता को खोकर सियालनी के रूप मे बेटी को ही खा लेती है। इसलिए ममता से डरकर जीना, इतिहास साक्षी है कि ममता ने ही समता को खाया है।

भो ज्ञानी! एक सेठ आँखो मे आँसू भरकर बोला--भगवन्! मैं साधु जनों के दर्शन करने को तडप रहा हूँ। लोग तो विभूति को देखकर खुश होते हैं, पर मैं वैभव को देखकर दु खी हूँ, क्योकि लोगो को हमारा वैभव तो झलकता है, लेकिन खर्च नहीं झलकता। मैं जहाँ भी जाता हूँ। वहाँ लोग मुझे पहले ही पकड लेते हैं, इतना दान देते जाओ। मेरी हालत को नहीं समझते हैं, मैं क्या करूँ? प्रभु! आपके पास भी आया हूँ तो छिपकर आया हूँ। मेरी बडी विडम्बना है। इस ममता ने मेरी समता को समाप्त कर दिया है, क्योकि पहले लगता था कि जोड लो अब लगने लगा है कि छूट न जाये। हे अर्थ--लोलुपियो! तुम्हे धिक्कार है। जो सास लेने न दे, उस सपत्ति से क्या प्रयोजन? एक गरीब खेत मे मिट्टी के ढेलो मे चैन की नींद सो रहा था, दूसरा जीव गद्दे पर पडा हुआ है तथा सोने की चैन गले मे पडी है जो उसे चैन से सोने नहीं दे रही थी। यह ससार की दशा है।

अहो मनीषियो! सुख--चैन का जीवन जीना चाहते हो तो चैनो को उतारकर चैतन्य प्रभू को ही देखना पडेगा। जब तक चैतन्य आत्मा पर दृष्टि नहीं है, तब तक चैन की नीद आने वाली नही है। आचार्य अमृतचद स्वामी भी आपको छुडाने की बात नहीं कर रहे हैं, आपको चैन से सुलाने की बात कर रहे हैं। अहो! जिनवाणी को सुनने--सुनाने मे जो आनद है, लगता है इस पर्याय मे दूसरा कोई आनद नहीं है, क्योकि निज समरस से भरी वाणी वर्द्धमान की देशना से ध्वनित होती है। सम्राट श्रेणिक बार--बार विपुलाचल पर जिनेन्द्र की देशना सुनने जाता था। अहो! जिस जीव ने साठ हजार प्रश्न किये हो, उस जीव के पुण्य की कैसी प्रबलता होगी? अतरग विशुद्धि से भरा जीव था। राजा श्रेणिक की वही प्रवचन--दृष्टि तीर्थंकर प्रकृति का बध करा गयी। प्रवचन यानि जिनवाणी। जिसको तत्त्व पर श्रद्धा है, वही तो सम्यक्‌दृष्टि है, वही दर्शन--विशुद्धि है। तत्त्वो के अनुसार प्रवृत्ति है, वही तो आचार है तथा तत्त्वो मे गहन अध्ययन की प्रवृत्ति ही तो अभीक्ष्ण--ज्ञान का उपयोग है। तत्त्व को समझकर सम्यक्त्व को प्राप्त हो रहा है, वही तो सवेग भावना है। तत्त्व को समझकर त्याग कर रहा है, वही तो त्याग है। साधु--समाधि, वैय्यावृत्ति, अर्हंत--भक्ति, बहुश्रुत--भक्ति, आचार्य--भक्ति, प्रवचन--भक्ति आदि सोलह भावनाएँ सभी प्रवचन--भावना पर टिकी

हुई हैं। मनीषियों! विश्व मे सबसे बडा प्रवचन कर्ता कोई है तो तीर्थंकर अर्हंत देव हैं। प्रवचन भक्ति का यह प्रभाव कि वर्द्धमान जिनेन्द्र की दिव्यदेशना जब श्रेणिक सुनता है तो गद्‌गद् हो जाता है। मिथ्यात्व की वह कणिका जो मुनिराज यशोधर के चरणों मे गिर चुकी थी, वह सब भगवान महावीर के समोशरण मे धुल गयी। नरक आयु का वह बधक क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है और सातवे नरक की आयु को क्षीण करके प्रथम नरक की चौरासी हजार वर्ष आयु को प्राप्त कर लेता है।

भो ज्ञानी! जिनदेव की देशना को भूल मत जाना। जब भी आपको ममता की माँ पुकार रही हो तो उस समय समता की माँ (जिनवाणी माँ) आपको वहाँ से निकालकर समीचीन मार्ग पर रख देगी। ध्याद रखना, जो एक बार जिनवाणी माँ की गोद मे आ गया वह कभी माँ की गोद को छोडकर नहीं जायेगा। इसलिए जीवन मे परिग्रह किसी का न हुआ, न होगा। ममता बढने से विषमता आ जा जाती है। आप जितना ज्यादा कमाकर लाओगे उतने शत्रु बनाकर जाओगे। मनीषियो! द्रव्य तुम्हारे प्राण भी छिनवा सकता है। अहो! उस मृग से पूछो, जो कस्तूरी के पीछे अपने प्राणो को नष्ट कर देता है। उस हाथी से पूछो, गजमुक्ता के पीछे जिसके प्राण चले जाते हैं। तुम तो बहुआरभ परिग्रह से युक्त परिणति बनाकर बैठे हो, यदि आयु बध आ गया तो नियम से नरक–आयु का बध होगा फिर कोई रोकने वाला नही है। तीर्थंकर के समवशरण मे बैठे राजा श्रेणिक ने भले ही साठ हजार प्रश्न किये हो परतु वे भी नरक आयु को समाप्त नही कर पाए। उन्हे भी नरक जाना ही पडा।

भो ज्ञानी! मोक्षमार्ग पर पुरुषार्थ किया नही, ममता–परिग्रह तथा भोगो को छोडा नही और कहने लगे कि योग धारण की काललब्धि नही आयी। इसीलिए आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी कह रहे हैं कि आत्मकल्याण मे छल पूर्ण भाषा का उपयोग निज से छल है। मनीषियो! शक्ति तो आपके अदर त्रैकालिक है, पर आप अपने वीर्य को छिपा रहे हो। इस ताकत को मत छिपाओ। तेरे पास तो लोकालोक को प्रतिबिबित करने वाली शक्ति है। उसी का नाम तो सैंतालीस शक्तियो मे स्वच्छत्व की शक्ति है जो कि बिल्कुल निर्लिप्त है। अहो! स्फटिक–मणी के ऊपर कितनी ही धूल फेक दो, उसमे कोई मलिनता नही आयेगी। ऐसे ही यह कर्म कितने ही खुश हो जाये, वे तुमको एक सौ अडतालीस प्रकृतियो से अलग नहीं होने देगे। लेकिन स्वच्छत्व की शक्ति कहती है कि तुम कितनी ही कर्मों की धूल फेको, वह ऐसी है जैसे दर्पण पर चढी रज। वह उसके प्रतिबिम्बित धर्म को नष्ट नहीं करती।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज ने परिग्रह के दो भेद किये हैं–अतरग परिग्रह और बहिरग–परिग्रह। बहिरग परिग्रह के सचित्त, अचित्त, मिश्र–यह तीन भेद हैं। सचित्त–परिग्रह यानि स्त्री, पुत्र, गाय, भैंस आदि जो चेतना से युक्त है। धन– धान्य, सोना, चाँदी, घर, मकान–यह

अचित्त–परिग्रह हैं। वस्त्र आभूषण से सुसज्जित आपकी स्त्री, पुत्र आदि ये मिश्र–परिग्रह है।

अहमेद एदमह अहमेदस्सेव होमि मम एद।
अण्ण ज परदब्वं सच्चित्ताचित्तमिस्स वा।। २५।।
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि।
होहिदि पुणोवि मज्झ, अहमेद चावि होस्सामि।।२६।। (स सा)

'समयसार' में आचार्य कुदकुद देव कह रहे हैं–ऐसे तीन प्रकार के परिग्रह को अज्ञानी अपना त्रैकालिक मानता है। मैं इसका हूँ यह मेरा है, ये भविष्य मे मेरा होगा, ये भूत मे मेरा हुआ था, ये मेरे रहे, इनका मैं रहूँ , इनका मैं था या ये मेरे थे, इनका मैं हूँ, ये मेरे हैं। ऐसे त्रैकालिक राग किये बैठा है। यह ममता करा रही है अत बध का मूल–हेतु ममता है। ममता चाहे दर्शन मोहनीय हो, चाहे चारित्र मोहनीय हो लेकिन दोनो ही बध कराती है। इसलिये आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने स्पष्ट कह दिया है, जब तक ममता है, तब तक अहिसा नाम की वस्तु नहीं है।

भो चेतन! जहाँ शुभोपयोग की चर्चा चल रही हो, वहाँ ध्यान रखना, शुद्ध उपयोग और अशुभ उपयोग गौण है, परन्तु अभाव नहीं है। क्योकि जैनदर्शन किसी पदार्थ का अभाव नहीं करता। अभाव पदार्थ का नहीं होता है, अभाव पर्याय का होता है। एक द्रव्य मे दूसरे द्रव्य का अभाव ही है, परतु स्वद्रव्य मे स्वद्रव्य का अभाव नही होता, शुभ पर्याय में शुभ पर्याय का अभाव नहीं होता। लेकिन, परिग्रह पुण्य नही है। यदि परिग्रह पुण्य होता, तो पाँच पाप मे यह पाप का स्वामी क्यो कहा जाता ? और इसके साथ जो लोभ–कषाय चलने वाली है, उसे पाप का बाप कहा जाता है। परिग्रह–सज्ञा सबसे खोटी सज्ञा है। आहार–सज्ञा तो मात्र छटवे गुणस्थान तक चलती है किन्तु शेष सज्ञाएँ चलती है आठवे गुण स्थान तक। मैथुनसज्ञा नौवे गुणस्थान तक और परिग्रह'सज्ञा दसवे गुण स्थान तक चलती है।

भो ज्ञानी! परिग्रह के चौबीस भेद हैं। श्रावको! जब तक तुम परिमाण नहीं करोगे, तो मुनिराज बनोगे कैसे? आप लोगो मे से किसी को तीनलोक की सपदा आज तक नहीं मिली, लेकिन जब तक तुमने परिमाण नहीं किया, तब तक तीनलोक की सपदा का आस्रव जारी है। कम से कम आप लोग मध्यलोक की सपदा के परिग्रह का परिमाण कर लो और अधोलोक, ऊर्ध्वलोक के परिग्रह को छोड दो। मध्यलोक मे भी तुम ढाई द्वीप के बाहर तो जा नही सकते हो, तो ऐसा कर लो कि ढाई द्वीप मे जितने द्रव्य होगे, उनका भोग करेंगे। आप पूरे भारत का ही भोग नहीं कर पा रहे हो, यदि ढाई द्वीप मे परिमाण करने की भावना नहीं, तो पक्के मे नरक आयु का बध हो चुका है। मनीषियो! परिग्रह उतना ही मिलना उतना ही है जितना पुण्य है। राग कितना ही कर लो, आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि मिथ्यात्व, स्त्री–वेद, पुरुष–वेद, नपुसक–वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा चार कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ–ये चौदह अतरग परिग्रह है।

भो ज्ञानी! जब तक आप जिनवाणी पढोगे नहीं , सुनोगे नही, तो जिनेन्द्र देव की आज्ञा का मालमू कैसे होगा? अर्हत की आज्ञा क्या है और तुम्हारा सोच क्या है ? सोच मे शिथिलाचार आडबर है कितु जिनेन्द्र की आज्ञा नही है, जिनेन्द्र–आज्ञा तो शुद्ध है। जितनी आपकी सामर्थ हो, उतना पालन करो।

"भिन्न स्वरूपोऽहं"

हिसापर्यायत्वात् सिद्धा हिसान्तरग सगेषु।
बहिरगेषु तु नियत प्रयातु मूर्च्छैव हिंसात्वम् ।। ११९ ।।

अन्वयार्थ – हिसापर्यायत्वात = हिसा के पर्याय रुप होने से। अन्तरगेषु = अतरग (परिग्रह) मे। हिसा सिद्धा = हिसा स्वय सिद्ध है। तु बहिरगेषु = और बहिरग परिग्रहो मे। मूर्च्छा एव = ममत्व परिणाम ही। हिसात्वम् = हिसा भाव। कोनियतम् प्रयातु = निश्चय से प्राप्त होते हैं।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ६७॥

भो मनीषियो! भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने बडा अनुपम सूत्र प्रदान किया है कि अपने जीवन मे सत्य स्वरूप को पहचानना है तो असत्य छोडने की आवश्यकता है, क्योकि सत्य अपने आप मे सहज है सत्य की प्राप्ति के लिए कुछ नहीं करना पडता, असत्य जीवन जीने के लिए बहुत पुरुषार्थ करना पडता है। असत्य बनाना पडता है, असत्य छिपाना पडता है, छिपाने के पीछे न जाने कितने सत्य का बलिदान करना पडता है। यदि सत्य मे जीना सीख लिया तो आपको किसी से डरने की जरुरत नही। डर तभी तक होता है जब तक तेरा जीवन असत्य मे होता है।

भो चेतन! सत्य किसी को ओढ के नही चलता, किसी का सहारा नही लेता। असत्य'को सँभलने के लिए पर का आलबन लेकर चलना पडता है और सत्य अपने आप मे शुद्ध होता है, इसलिए किसी की अपेक्षा नही रखता। यदि नेत्र मे फुली है चश्मा चढा लो, लेकिन यह तो बताओ कि चश्मे से क्या फुली समाप्त हो जाएगी ? परन्तु आपने असत्य के काले कॉच को चढा लिया, दुनिया को अच्छा दिखाने के पीछे पर तुम अच्छे कब हुए हो ? भो ज्ञानी! जो अच्छा दिखाना चाहता है वह होता नही है, अन्यथा चश्मा लगा क्यो ? सत्य को छिपाने के लिए ध्यान रखो, जिस सत्य को आपने कॉच मे छिपा रखा है प्रथम तो वह सत्य तेरे से नही छिपा तथा उस चश्मे को लगा कर आपने धोखा देने का प्रयास तो किया, दोष को छिपाने के अनेक पर्दे डाल दिये हैं, लेकिन पीडा को छिपा कर बताओ, तब जाने। अहो! सत्य को केवली भगवान से छिपा कर बताओ तो जाने। आपने चश्मे से अपनी विकृति को तो छिपा लिया, लेकिन आँख के दर्द को नहीं छिपा पाए। भो ज्ञानी! ध्यान रखो तुम असत्य के पर्दे डाल कर आत्मा को कितना ही ढँक लो, पर ऐसा कोई समय नहीं कि तेरी आयु का कपूर न उड रहा हो, प्रतिक्षण उडता है।

भो ज्ञानी! परिग्रह का सचय भी तेरी आयु को बचाने वाला नहीं है। आप कितनी व्यवस्थाएँ कर लो, वज्र पटल बना लेना, जमीन के अदर घुस जाना पर आयु कर्म तो आएगा ही। अहो! परिग्रह का सचय आप कितने दिनो के लिए कर रहे हो ? बताओ, चार मजिल भवन में तुम कितने दिन सो पाये हो ? जब कि कर्मसिद्धात कह रहा है कि हमने आपको भवन दिया है, जब तक आयु है तब तक तुम इस मकान मे बैठकर, सुख–चैन से प्रभु का नाम लेना, परन्तु आपने यहाँ आकर इसका इतना दुरुपयोग किया और गदा कर डाला। ऐसे ही निर्मल पर्याय रूपी भवन तुझे प्राप्त हुआ है, परन्तु तुमने विषय–कषाय की कीचड से इस भवन को इतना मलिन कर दिया कि उस कर्म को भी सोचना पडता है कि इस निकृष्ट जीव को मैं मनुष्य का आयु कर्म कैसे दू ?

अहो ज्ञानी! जिससे सिद्ध बना जाता है उस सत्य स्वरुप को समझो, असत्य के पीछे सत्य का नाश मत करो। यदि इस पर्याय मे सभल गये, तो अनत पर्यायो से बच जाओगे। इसलिए परिग्रह मे धर्म मत मानो और परिग्रह की बात को भी धर्म मत मानो। मनीषियो! धर्म वीतराग है और जिनेद्र की वाणी वीतराग है। सम्यक्दृष्टि को अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल प्राप्त हुआ है, लेकिन उस जीव से कह देना कि उस अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल मे तुझे नियम से दिगम्बर होना पड़ेगा। हमारे आगम मे पॉच प्रकार के वस्त्रो की चर्चा की है, लेकिन नमोस्तु शासन कहता है कि भगवान ऋषभदेव ने छल–मल (छाल–माल) के वस्त्रो को तो छोड दिया था। अहो! दिगम्बर योगी! अब तुम छल का वस्त्र भी धारण मत करो, क्योकि माया, मिथ्या, निदान यह तीन शल्य हैं, यही आत्मा की छाल हैं, इसको भी धारण मत करो। यह मोक्ष मार्ग, छल का नही, चल का नहीं, दल का नहीं, यह तो सत्य स्वरूप का है। यहा तो आत्म–बल की आवश्यकता होती है, जो आत्मबली नही होता पर वैसा दिखाना चाहता है, वह छलिया होता है। छल का बल सिनेमाघरो मे आ सकता है परतु छल का बल भगवती आत्मा के सामने कार्यकारी नहीं होता।

भो ज्ञानी! एक पति–पत्नी योगी के चरणो मे दर्शन करने गये। मुनिराज ने कहा कि अब पर्याय बहुत निकल गयी, थोडा तो सयम के बारे मे सोच लो। बोले–महाराज! मेरा तो जोडा अमर है। इसे मैं कैसे छोड सकता हूँ। अहो! कोई जोडा नहीं है, कमा के ला रहे हो, इसलिए जोडा है। वाह महाराज! तुम्हे तो घर दिखता ही नहीं है, हमसे पूछो घर कैसे चलाना पडता है ? अहो! कोल्हू के बैल मे और हम मे अतर इतना है कि उसके पूँछ और सींग है। बाकी दोनो के राग और द्वेष की पट्टी लगी है और बिचारा दुनिया मे घूम आएगा, लेकिन सोएगा विदिशा मे। महाराज ने कहा–देखो! बात मान लो। नही महाराज, हम तो दर्शन करने आएँ हैं, आप हमे चिता मे मत डालो। ओहो! कर्तत्वबुद्धि को छोड़ दो यह कर्तत्वदृष्टि ही मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ध्यान रखो, सत्य यही है कि जब तक श्रावक त्याग नहीं करेगे, तो मुनिराज कैसे बनेगे ? अत सबसे

पहले दस प्रकार के परिग्रह का त्याग श्रावक करते हैं तभी मुनिराज बन पाते हैं और वे ही फिर अतरग परिग्रह को छोड पाते हैं। अहो! वास्तविकता समझो, यह खुशी ऊपर से है, पर अदर शाति नही है। पूर्व–केद्रीय मत्री एक दिन आए और कहने लगे– महाराज श्री एकात मे थोडी चर्चा करना है। सोचा, पता नही क्या बोलेगे ? ऑखो मे आँसू भर कर बोले– महाराज श्री! धन है, वैभव है, यश है, कीर्ति है पर शाति नहीं है, आप शाति का उपाय बता दो। मैंने कहा–कि शाति का उपाय तीर्थंकर महावीर स्वामी के पचशील मे अतिम शील अपरिग्रह है। अहो! यदि शाति चाहते हो तो परिग्रह का प्रमाण कर लो।

भो ज्ञानी! एक व्यक्ति कह रहा था महाराज श्री! सब कुछ सुना–समझा, परतु यह तो समझ में नही आया कि परिग्रह भी पाप हैं मात्र आत्मा को विशुद्ध बनाकर चलो, पर–द्रव्य से कुछ नहीं होता है, लेकिन अमृतचद्र स्वामी ने कहा–जब तक परिग्रह रहेगा, तब तक स्वद्रव्य की प्राप्ति नही होगी। भो ज्ञानियो! प्रज्ञा–वैभव–विभूति से यदि मोक्ष मिलता होता, तो सौधर्म इद्र जैसी वैभव–विभूति किसके पास है ? एक सौ सत्तर तीर्थंकर भगवतो के पचकल्याणक मनाता है, कितनी व्यवस्थाएँ करता है, इसका पुण्य कितना बडा होगा ? मुद्दे की बात करो, सर्वार्थ सिद्धि के देव पूरे तैंतीस सागर तक तत्त्व चर्चा करते हैं। इससे ध्वनित होता है कि तत्त्व चर्चा से परिणामो मे भद्रता आती है, विशुद्धि बढती है लेकिन निर्वाण की प्राप्ति नही होती। यदि तत्त्व चर्चा से मोक्ष हुआ होता तो सर्वार्थ सिद्धि के देव, कितना चलना था उनको ? सिद्धि शिला और सर्वार्थ सिद्धि मे एक बाल के बराबर अतर है फिर भी सिद्धो जैसा सुख उन्हे नही है। वे वहाँ बैठे–बैठे निहारते हैं और फिर से वहॉ से च्युत होकर सात राजू नीचे गिरना होता है। यहाँ से फिर निर्ग्रंथ वीतरागी जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर "अहिमिक्को खलु शुद्धो" का पाठ करता है, तब वह सिद्ध बन पाता है। इसलिए तत्त्व चर्चा सत्व की प्राप्ति के लिए है, पर शाश्वत सत्ता की प्राप्ति सयम से ही होती है, परिग्रह से त्रैकालिक सभव नही है। मनीषियो! दृष्टि खोलकर सुनना कि जब तक धागा मात्र भी रहेगा तब तक अहिसा का पालन नही होगा और हिसक कभी मोक्ष नही जा पाएगा। इसलिए स्वरूप की चर्चा का निषेध नही, आत्मा की चर्चा का निषेध नही, परन्तु जो जन्म दे रही है वह 'बाई' और जो जन्म दिला रही है वह 'दाई' मे इतना ही अतर होता है कि जो आत्मा को जान रहा है वह बाई और जो जनवा रहा है वह दाई है। समझ लो बदन किसका कैसा है ?

भो ज्ञानियो! शास्त्रो को समझ लेने का नाम तत्त्वानुभूति नहीं है। यह तत्त्वानुभूति तो सयम की परिणति है। ज्ञान, ज्ञान गुण की पर्याय है और श्रृद्धान, दर्शन गुण की पर्याय है, अनुभूति चारित्र गुण की पर्याय हैं। भो ज्ञानी! ज्ञान तो करना चाहिए क्योकि अमृतचद्र स्वामी ने क्रम से कथन किया है–कि ज्ञान मानव जीवन का सार है, जब तुम सामान्य ज्ञान कर लोगे तो श्रद्धान बढेगा और

जैसे ही सम्यक्त्व हो गया, तो जो पहले तूने सीखा था, पढ़ा था वह भी सम्यक् हो गया, लेकिन निर्वाण नहीं होगा। यदि ज्ञान से मोक्ष हो गया होता तो केवलज्ञान होते ही मोक्ष हो जाता, फिर दिव्य देशना कैसे खिरती ? इसलिए छोटे–मोटे संयम से निर्वाण नहीं होता, यथाख्यात चारित्र जब तक नहीं बनता तब तक निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। दर्शन–ज्ञान–सामायिक यह सब यथाख्यात के लिए है। अहो ज्ञानी! जिसने यथाख्यात को प्राप्त कर लिया उसका भेद विज्ञान जगता है। अमृतचद्र स्वामी ने कहा है कि आज तक जो भी सिद्ध हुए हैं भेद विज्ञान से हुए है, जितने हो रहे है भेद विज्ञान से हो रहे है। मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निरजन हूँ यह भेद विज्ञान नहीं है। भेद विज्ञान से तात्पर्य 'पृथक स्वरुपोऽह' मैं सबसे भिन्न हूँ, ऐसी श्रद्धा जम जाए और फिर कोई आपके घर मे आग लगा जाए। तब देखो भैया! घर जल गया दिख रहा है। सब नष्ट हो गया–दिख रहा है। कुछ भी नही बचा–समझ रहा हूँ। अहो! जिस दिन इतनी क्षमता आ जाएगी उसका नाम है भेद विज्ञान।

भो ज्ञानी! भेद विज्ञान के लिएआत्मा का अनत बल चाहिए। एक भेद विज्ञान चतुर्थ गुणस्थान मे सम्यक्त्व के सामने मिथ्यात्व मे करोगे और दूसरा भेदविज्ञान आप छटवे गुणस्थान मे करोगे। तब तुम सप्तम गुणस्थान मे प्रवेश करोगे। एक मिथ्यात्व को विगलित करने की भूमिका मे भेद विज्ञान होगा, एक श्रेणी के सन्मुख होगा यानि सातिशय अप्रमत्त दशा की प्राप्ति करेगा। वहाँ भी करण परिणाम होते हैं। यह करण परिणाम दो जगह होते हैं मिथ्यात्व का विगलन करते तथा श्रेणी मे चढते आठवे गुणस्थान मे चढते हैं तब करण परिणाम होता है। यहाँ मिथ्यात्व के दो टुकडे किये थे। वहाँ भेद विज्ञान चारित्र मोहनीय के टुकडे कर रहा, भेद विज्ञान यह नहीं कहता बच्चे को बुखार आ रहा है, उपचार तो करवाना, लेकिन बच्चे की मृत्यु हो रही है, तो रोना मत, यह भेदविज्ञान है। भेदविज्ञान निर्दयता नहीं सिखाता, भेद विज्ञान यह कहता है कि उपचार करिये, उसकी रक्षा करिये, लेकिन चला ही गया तो अब कहो 'पृथक स्वरुपोऽह'। तो शुद्धोह बुद्धोह' के पहले 'पृथक स्वरुपोऽह'सीख लेना। जब तक 'पृथक स्वरुपोऽह' पर दृष्टि नही जाएगी तो, भो ज्ञानी! भेद ज्ञान भी नहीं होगा।

"कारण कार्य विशेषता"

एव न विशेष स्यादुदुरुरिपुहरिणशावकादीना।
नैव भवति विशेषस्तेषा मूर्च्छा विशेषेण।।१२०।।

अन्वयार्थ . एव = यदि ऐसा ही है। उन्दुरुरिपुहरिणशावकादीनाम् = बिल्ली तथा हरिण के बच्चे आदिको मे। विशेष न स्यात् = कुछ विशेषता न होवे। एव न भवति = ऐसा नहीं होता। मूर्च्छा विशेषण = ममत्व परिणामो की विशेषता से। तेषा = उन (बिल्ली तथा हरिण के बच्चे की)। विशेष = विशेषता है।

हरिततृणाकुरचारिणि मन्दा मृगशावके भवति मूर्च्छा।
उन्दुरुनिकरोन्माथिनि मार्जारे सैव जायते तीव्रा।।१२१।।

अन्वयार्थ हरिततृणाकुरचारिणी = हरे घास के अकुर चरने वाले। मृगशावके = हरिण के बच्चे मे। मूर्च्छा मन्दा भवति = मूर्च्छा मन्द होती है। सा एव = वही हिसा। उन्दुरुनिकरोन्माथिनि = चूहे के समूह का उन्मथन करने वाली। मार्जारे तीव्रा जायते = बिल्ली मे तीव्र होती है।

निर्बाध ससिद्धयेत कार्यविशेषो हि कारण विशेषात्।
औधस्यखण्डयोरिह माधुर्यप्रीतिभेद इव।।१२२।।

अन्वयार्थ औधस्यखण्डयो = दूध और खाड मे। माधुर्यप्रीतिभेद इव = मधुरता के प्रीतिभेद के समान। इह हि = इस लोक मे निश्चय कर। कारणविशेषात् =कारण की विशेषता से। कार्यविशेष निर्बाध =कार्य का विशेष रूप बाधा रहित। ससिद्धयेत् = भले प्रकार सिद्ध होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ६८।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पियूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अनुपम सूत्र प्रदान किया है कि जीवन के सत्य को समझने के लिए

तटस्थ होने की आवश्यकता है अर्थात् जीवन के सत्य को वही समझ सकता है जो मध्यस्थ होकर जिया है। आचार्य श्री उमास्वामी महाराज ने ग्रथराज 'मोक्षशास्त्र' (तत्वार्थ सूत्र) और आचार्य श्री अमितगति स्वामी ने 'द्वात्रिंशतिका सामायिक पाठ' में प्राणी मात्र के प्रति मैत्री, करुणा, माध्यस्थ भाव एव प्रमाद भाव की चर्चा की है। दुखित प्राणी को देख कर उसके दु खो को दूर करने के भाव होना, मैत्री भाव है। मैत्री भाव के तात्पर्य, प्राणियो के गले लगना अथवा उनसे हाथ मिलाना नही है बल्कि उनके जीवन की रक्षा करना तथा उनके कष्टों से उन्हे मुक्त कराने का नाम मैत्री भाव है। परतु जैन दर्शन कहता है कि जब तक कल्याण की दृष्टि नहीं बनेगी तब तक पर–कल्याण भी तुम्हारे द्वारा नहीं हो सकता। मुझे तो पहले समाज और राष्ट्र की सेवा करना है, पर का कल्याण करना है। भो चैतन्य। भाषा बदल दो क्योकि मुमुक्षु की दृष्टि होती है कि मैं दूसरे का हित करूँगा तो मेरा स्वय का हित हो जायेगा। आपने किसी गरीब को दान दिया कि उसकी गरीबी दूर हो जाए। भो ज्ञानी। धन भी गया और निज कल्याण भी गया। परतु आपने उस जीव की तो गरीबी दूर करने और स्वय का लोभ दूर करने के हेतु से दान दिया तो आप ज्ञानी हैं, क्योकि जीव पर–कल्याण से भी निज कल्याण खोजता है और अज्ञानी निज कल्याण को भी पर कल्याण मे लगा देता है। इस प्रकार विवेक के साथ आपने दान दिया है, तो कल्याण निहित है। उमा स्वामी महाराज ने पर–कल्याण को 'दान' कहा ही नहीं है। उन्होने तो स्व–पर कल्याण के लिये जो सुद्रव्य का दान दिया जाता है, उसे दान कहा है। जब आप अपने द्रव्य का दान करते हो, परिग्रह को छोडते हो उस समय यह मात्र मत सोचना कि मैंने इनका कल्याण किया है। यह सोचना कि मैंने स्व–पर का कल्याण किया है, उसकी आवश्यकता की पूर्ति हो गयी और मेरी अनावश्यकता छूट गयी।

भो ज्ञानी। आप त्याग तो करना, दान तो देना, लेकिन पश्चात्ताप के लिये नहीं। मालूम चला, देने मे तो शुभ आस्रव इतना नही कर पाया जितना पश्चाताप मे अशुभ आस्रव कर लिया। घर मे द्रव्य कम बचा है, लेकिन सोच विशाल बन रहा है, जितना विकल्प करोगे आस्रव उतना ज्यादा होगा। व्यक्ति हजार रुपए कमाने का विचार करके बाजार मे निकलता है, पर नौ सौ ही कमा पाता है, तो उसे नौ सौ की अनुभूति नहीं होती, सौ रुपए कम मिल पाए, इस पर जरूर पछताता है। अरे। इस पर्याय मे आपको जितना पुण्य मिला, जितना सुख मिला है उसको तो अनुभव नहीं कर पा रहा है, भूत के दु खो को देख रहा है, भविष्य के सुखो को देख रहा है, इसलिये वर्तमान मे दुखी हो रहा है। भूत के दु खो का चितन कभी–कभी बहुत गहरा होता है। नगर सेठ बनने का उसे आनन्द नहीं मिल पाता क्योकि उसे भूत की याद सता रही है कि अमुक व्यक्ति ने मेरा अनादर किया था, वही ईर्ष्या आज काम कर रही है। अरे भाई। यदि वे परिणाम तुम याद करते रहोगे, तो तुम्हारी परिणति कभी निर्मल हो नहीं पाएगी। अरे। भूत के कुसस्कारो का स्मरण नहीं करना। भो ज्ञानी। सैंतालीस शक्तियो में 'प्रकाशत्व शक्ति' कहती है कि अपने अदर का प्रकाश करो। धन्य हो दीपक को, जो जड होकर भी जड़ और चैतन्य दोनों को प्रकाश देता है। यदि तेरा चैतन्य ज्ञान दीप तेरे अदर के भवन में प्रकाश नहीं कर पाए तो प्रकाशत्व शक्ति कैसी ? भो ज्ञानी आत्माओ। अब उस

दीप को अदर ले जाकर देखो कि मेरे अतरग मे कौन–कौन से द्रव्य रखे हुये हैं ? अनत ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख से सपन्न भगवती आत्मा! तुम पुद्गल के टुकडो को कहाँ खोज रहे हो ? कोई देने मे हर्षित हो रहा है, कोई लेने मे हर्षित हो रहा है, परतु 'प्रकाशत्व शक्ति' कहती है कि हम तो सबको दिखा रहे हैं। यहाँ का पेन आपकी जेब में पहुँच गया, उस पेन से पूछना तू कहाँ गया है ? वह कहता है स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, मेरा चतुष्टय मेरे मे है, मैं कही गया ही नही हूँ । पर देखो भोले भगवान! उस जड पेन को प्राप्त कर प्रसन्न हो रहे हैं। पेन कहेगा, धन्य हो मेरे सौभाग्य को, कि मेरे द्वारा यह भगवान आत्माये खुश हो रही है। पडित दौलतराम जी लिखते हैं–"पुण्य पाप फल माँहि, हरखो बिलखो मत भाई" यह पुद्गल पर्याय, उपज विनसे निज माँहि"। अहो, सुखी जीव भी दुखी है और दुखी जीव दुखी है ही, एक पकडे–पकडे दुखी है दूसरा छोडे–छोडे दुखी है, तीसरा न पकडे न छोडे मात्र देखते–देखते ही दुखी है। क्योकि उनके पास छोडने को कुछ नही है, पर बेचारे देखते–देखते ही दु खी हो रहे हैं।

भो चेतन्! सच्चिदानद चैतन्य की प्राप्ति तभी होगी जब हम अचेतनो से दूर होगे। धन, धान्य स्त्री, पुत्र आदि स्थूल बाते अब पुरानी हो गयी। राग तेरा भाव नहीं है, भाव का अर्थ होता–पदार्थ और भाव का अर्थ होता–परिणाम। राग मेरा भाव नही है, राग मेरा स्वभाव नही है, जो 'मेरा' नही वह सब पर होता है और जो पर है उसे चारो तरफ से मैं घेरे हुये हूँ। उसी का नाम परिग्रह है। ऐसे परभाव रागादिक विकारी भाव और एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतियाँ आदि सब मेरे स्वद्रव्य नही है। इसी कारण अरिहत परमेश्वर तेरहवे गुणस्थान मे विराज कर उस पर–द्रव्य को नष्ट करने मे लगे होते हैं। चौदहवे गुणस्थान मे फिर वे इस देह रूपी परिग्रह का भी परित्याग किये होते है उनका नाम है अयोगी केवली भगवान अर्थात उन्होने योगो का भी परित्याग कर दिया है और अब बचा मात्र आयु कर्म का परिग्रह। इसलिये वे भी परिग्रही है और जब आयु कर्म का परिग्रह नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण कर्मो का अभाव हो जाता है। इसलिये नियोगी, निष्परिग्रही, निष्फल निष्कलक, अशरीरी भगवती आत्मा सिद्ध परमेश्वर है। जिसकी प्राप्ति के लिये आपको योगी बनना पडेगा। योगी बने बिना विशुद्धात्मा बनना सभव नही।

भो ज्ञानी! भगवान अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि ममत्व परिणाम और पर–द्रव्य के सयोग की दृष्टि जितनी गहरी होती है उतनी ही सक्लेशता की गहराई होती है। जिसका व्यापार जितना गहरा होगा उसके छल छिद्र उतने गहरे होगे। जिसकी गहरी कमाई, उसकी गहरी कषाय। भो ज्ञानी! जिसकी सचय की दृष्टि आ जाती है वह व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह पायेगा, न वह अच्छा खा पायेगा, न खिला पायेगा क्योकि उसको एक दृष्टि रहती है–जोडना। पता यह चलता है कि सचित करके चल बसा और उपभोग किसी दूसरे ने किया। इसलिये जीवन मे जीना है तो जीने की शैली से जीवन जीना। भो चेतन! जैन दर्शन मे जीवन की शैली बाद में आती है, मरने की शैली पहले आती है क्योकि जैन शासन कहता है "जन्म महोत्सव दुनिया मनाए, मृत्यु महोत्सव जैन शासन मनाए।' जो वर्तमान मे समीचीन नहीं जी सके उनकी मृत्यु नियम से असमीचीन ही होगी।

बिलखते–चिल्लाते ही होगी, ज्यादा कुछ मत देखो, बस श्वान की मृत्यु को देख लिया करो, कितनी लालसा है, खुजली पड रही है परन्तु वासनाये नहीं छूट रही। इसे गभीरता से विचार करो।

भो चेतन! आचार्य भगवन निर्ममत्व और ममत्व का स्पष्टीकरण कर रहे हैं कि "मूर्च्छापरिग्रह" सूत्र का दुरुपयोग करके आपने कह दिया ममत्व परिणाम नहीं है और द्रव्य को जोड़कर रखा, गरीबो तक के पेट काटे हैं, द्वार पर किसान चिल्ला रहे हैं, सेठजी कह रहे हैं जाओ–अभी कुछ नहीं है। दूसरी ओर श्रावक की दृष्टि देखना, स्वय इतना अच्छा भोजन नहीं करेगा, बच्चो को भी पुचकार कर बिठा देगा लेकिन अपने आराध्य को अच्छी चर्या कराता है। उसकी भावना देखो, सुबह छह बजे से लगे होते हैं। आपके आवश्यक कर्त्तव्यो मे तप' नाम का कर्त्तव्य तो चल रहा है। फिर भी पात्र नहीं मिलते तो समता रखता है कि ठीक है तथा भावना भाता है कि आज नही तो कल पात्र अवश्य मिलेगे। कल करते–करते दिनो के दिन बीत जाते हैं फिर भी श्रावक की परिणति निर्मल चल रही है। एक घटना बताये आपको कि 'एक व्यक्ति बीमार थे। उन्होने अपनी पत्नी से कहा कि यह मेरा फण्ड है, इसे मदिर जी मे पाठशाला सचालन के लिये दे देना। पत्नी ने समाज को बुलाकर फड दे दिया। किन्तु वहाँ आवश्यकता धर्मशाला की थी। अत वह द्रव्य उसमे लगा दिया, उस धर्मशाला मे शादी होने लगी, किरायेदार रहने लगे। आँखो मे आँसू टपकाती महिला कहती है– "मैंने तो समाज को पाठशाला के लिए दिया था क्योकि मेरे पति ने यह कहा था कि जहाँ चैतन्य प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा होगी बच्चो मे जिनवाणी के सस्कार आये, वहाँ लगा देना। इसलिये आप जो भी काम करना, सँभल कर करना। जहाँ का जो हो, वैसा करना।"

भो ज्ञानी! इसलिये करुणा बुद्धि से मैं कह रहा हूँ कि सब व्यवस्थाएँ देखना, लेकिन निर्लिप्त रहना, अपने घर मे तो मदिर का द्रव्य रखना ही नही। ब्याज का भी तुम्हे लेना हो तो बाहर से ले लेना। क्योकि धर्म की कमाई है वास्तव मे कषाय भडकाती है। पहले लोग व्यवस्थाए एक–दूसरे पर छोडते थे, भैया! आप देखो। परतु आजकल बिचारे मदिर के पीछे लडते हैं, क्या बात है ? यह आयतन है इनकी तो रक्षा करना चाहिये। पर व्यवस्थाओ के पदो मे मान का लोभ आ गया कि प्रतिष्ठा मिलेगी, लेकिन ध्यान रखो, कर्म सिद्धात कहता है कि मैं तुमको कभी नहीं छोड़ूँगा।लोग समझते भी हैं कि मैं इतने दिनो से कष्ट मे आ चुका हूँ, मैं इतने दिनो से परेशानी मे हूँ। कही न कही तो गडबडी चल रही है, पर जोक की तरह चिपके हैं।

भो ज्ञानी! कहीं लोभ मे आकर ऐसी प्रतिष्ठादि भी मत करा लेना। आजकल तो प्रतिष्ठाचार्य महोदय भी कह देते हैं 'इतना दान कर दो तो प्रतिष्ठा होगी अन्यथा ले जाओ, प्रतिमा मे दोष है। यदि प्रतिष्ठा योग्य नहीं है तो दान देकर योग्य हो जायेगी और दान नहीं दिया तो अयोग्य है और प्रतिमा वही है। इसलिये कषाय की परिणति विचित्र होती है। उसके लिये आचार्य महाराज ने कहा है तुम बिलाव मत बनो। बिलाव एव हिरण के बच्चे मे मूर्च्छा की विशेषता है। हिरण तो हरे तृण खाता है, उसकी मूर्च्छा मद होती है। जबकि बिलाव चूहे को खाता है उसकी मूर्च्छा तीव्र होती है। यही कार्य–कारण विशेषता है।

"करो रक्षा, सम्यक्त्व रत्न की"

माधुर्यप्रीति किल दुग्धे मन्दैव मन्दमाधुर्ये।
सैवोत्कट माधुर्ये खडे व्यपदिश्यते तीव्रा ।। १२३।।

अन्वयार्थ .– किल = निश्चय कर। मदमाधुर्ये दुग्धे = अल्प मिठास वाले दूध में। माधुर्यप्रीति मदा एव = मिठास की रूचि थोडी ही। व्यपदिश्यते = कही जाती है। सा एव उत्कट माधुर्ये वही मिठास की रूचि अत्यत मिठास वाली। खण्डे = खाड अर्थात शक्कर मे। तीव्रा = अधिक कही जाती है।

तत्वार्थाश्रद्धाने निर्युक्त प्रथममेव मिथ्यात्वम्।
सम्यग्दर्शन्चौरा प्रथम–कषायाश्च चत्वार ।।१२४।।

अन्वयार्थ – प्रथमम् एव = पहले ही। तत्वार्थाश्रद्धाने =तत्त्व के अर्थ के अश्रद्धान मे जिसे। निर्युक्त = सयुक्त किया है। मिथ्यात्वम् च = मिथ्यात्व को तथा। सम्यगदर्शनचौरा = सम्यग्दर्शन के चोर। चत्वार = चार। प्रथम कषाया = पहले कषाय (अर्थात अनतानुबधी क्रोध, मान माया, लोभ)।

|| पुरुषार्थ देशना || ६९ ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद स्वामी ने आत्मा के अविनाशी स्वरूप की ओर सकेत दिया है कि जो आत्मा का स्वरूप है वह पूर्ण निर्लिप्त है, असग है, अर्थात् जिसमे कोई सग नही है वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप है, लेकिन राग की दशा के कारण इस जीव ने पर–द्रव्य को इतना स्वीकार कर लिया है कि मैं इससे भिन्न ही नहीं हूँ। अहो! विजाति धर्म मे सुजाति को मान बैठा, यही तत्त्व की सबसे बडी भूल है। जब तक यह भूल नहीं सुधरेगी, तब तक छोटी–छोटी बाते महत्वहीन होती जायेगी। यदि एक व्यक्ति अनशन–तप करता है और वह बहुत साधना भी करता है, लेकिन शील का पालन नहीं कर रहा है और वह करोडों का दान भी कर देता हो, लेकिन लोगो की दृष्टि मे वह सम्मान का पात्र नही हो सकता। धीरे से पत्नी पूछती है– स्वामी! आज यह प्रकोप किस बात पर है ? राजा कहता है– मेरे राज्य मे परनारी सेवी हो, यह कैसे सभव है ? मुस्कराकर रानी पूछती है–प्रभु! आप इसको कौन सा दड देना चाहते हो ? राजा उत्तर देते हैं–आज मैं उसको फासी की सजा सुना

रहा हूँ। रानी ने भी कह दिया–प्रभु! पहले आप दो फदे तैयार करवा लेना। क्योकि आप भी परनारी सेवी के इतने ही दोषी है, आपने मेरा हरण क्यो किया था ? आज मेरा पति पागल सा आपकी नगरी मे घूम रहा है। कुछ भी हो, आपके वैभव के कारण कोई कुछ कह नही पाए। इसका अर्थ यह नही है कि प्राणीमात्र असत्य को स्वीकार कर रहा है।

भो ज्ञानी! अधिकार क्षेत्र और धर्म क्षेत्र भिन्न–भिन्न हैं। अधिकार क्षेत्र के पीछे धर्म का बलिदान न कभी हुआ है और न कभी हो पाएगा। लकेश के पास भी अधिकार तो था, पर धन्य हो भाई विभीषण! वैभव छोडने के लिए तैयार हो गया, लेकिन कुशीलसेवी का सहयोग करना स्वीकार नहीं किया। मनीषियो! जिनशासन कहता है कि पर–पदार्थ पर दृष्टि का पहुँचना ही व्यभिचार है। रावण ने एक परनारी को घर मे रखा तो आपकी दृष्टि रावण पर पहुँच जाती है।

भो ज्ञानी! बडे आश्चर्य की बात है कुशील को हीन–दृष्टि से देखते है तथा पाँचवे पाप को हम प्रेम से गले लगाते हैं। जबकि हमारे आचार्य अकलकदेव स्वामी ने कथन किया कि कुशील तो परिग्रह मे ही शामिल है। इसलिए बहिरग परिग्रह मे द्विपाद अर्थात स्त्री– पुरुष आदि परिग्रह है। अत आचार्य कुदकुद देव की भाषा मे जितने अशुभ कर्म हैं, वे सब कुशील हैं।

यहाँ अमृतचद स्वामी कह रहे हैं कि 'श्री की आराधना मे मत लग जाना, निज–श्रेयस की आराधना की दृष्टि से आप लगना, क्योकि परिग्रह भी पाप है। परिग्रह से धर्म नही, परिणति से ध र्म है और धन को देखकर धर्म की जय–जयकार करने के जो तुम्हारे सस्कार पडे है कि मैं धन से सब कुछ कर लूँगा। ऐसे भाव यदि तुम्हारे है तो ध्यान रखना धन से तुम भवन खडे कर सकते हो लेकिन धन से। भगवान की आराधना नही कर सकते। गोमटेश बाहुबली की स्थापना तो हो गयी लेकिन मत्री चामुण्डराय राय को अहकार आ गया कि विश्व मे इतनी बडी विशालकाय प्रतिमा स्थापित करने वाला यदि कोई है, तो मैं हूँ, ऐसे भाव आ गये। और जैसे ही कलश लेकर भगवान के अभिषेक के लिए वह पहुँचता है वह प्रभु के चरणो का प्रक्षालन नही कर पाया, क्योकि चरणो मे अहकारी आता ही कब है ? अहकारी तो सिर पर ही बैठता है और श्रद्धा से ओत–प्रोत बुढिया जैसे– तैसे पहुँच गई। उसने जैसे ही नारियल की नरेटी से धार छोडी, तो प्रभु के चरण ही क्या पूरे के पूरे अग–प्रत्यग का अभिषेक हो गया। यह सब निर्मल परिणति थी। जहाँ घट के घट कलश के कलश प्रभु के चरण को नही धो पाए। नारियल की नरेटी का दुग्ध प्रभु के सर्वांग को छा गया। सिर पर मुकुट बाध देना सरल है, सिर पर सेहरा लगा देना सरल है, लेकिन चरणो को धो पाना बहुत ही कठिन है। चरण उसी को स्पर्श करने को मिलते हैं जिसका आचरण निर्मल होता है। जिसका आचरण निर्मल नही होता उसको प्रभु के चरणो को स्पर्श करने को नही मिलता। चामुण्डराय ने उस अपना वैभव तो दिखा दिया पर वैभव ही उसका नीचे आ गया।

जिस समय रावण सोने की लका का वैभव महासती सीता को बता रहा था। हे! जानकी, हे सीते! आप चिता नहीं करना। सपूर्ण स्वर्ण लका की आप सम्राज्ञी हो, आप मुझे स्वीकार करो। उसी समय सीता ने रावण से कहा– मैं एक नारी हूँ। जिनवाणी मे लिखा है– (पदम पुराण) शीलवान की दरिद्रता भी आभूषण है, कुशील का वैभव कोरा मल है, इस मल का लोभ मुझे मत दो। मेरे स्वामी आने वाले हैं, तुम्हारे मल और बल का पता नहीं चलेगा। जिसके शील की तान जुडी है उसी की आत्मा का सगीत निर्मल होता है। नीतिकारो ने लिखा है–छल–कपट से कमाया गया धन दस वर्ष तक चल सकता है। ग्यारह वे वर्ष मे मूल के साथ चला जाएगा। खजुराहो के मदिर निर्माता सेठ पाहिल ने प्रशस्ति मे लिखा है। मैंने इस जिनालय के लिए आठ बगीचे, आठ बावडियाँ एव भूमि दान मे लगायी है। पता नही, इससे इसकी पूजा की व्यवस्था होगी कि नहीं। आगे लिखा है कि जब मेरा वश भी नही बचेगा और मेरे द्वारा दिया गया दान भी नहीं बचेगा। तो मैं उस व्यक्ति के दास का दास हूँ जो इस जिनालय की रक्षा करेगा, क्योकि सेठ पाहिल को मालूम था जो वैभव मुझे मिला है या तो मैं उसके पहले चला जाऊँगा या फिर मेरे पहले यह वैभव चला जाएगा। इसका नाम है–पुण्यानुबधी पुण्य। पुण्यात्मा जीव का द्रव्य पुण्य–क्षेत्र मे ही लगता है और पापी–जीव का द्रव्य धर्म–क्षेत्र मे नहीं लग पाता और यदि लगेगा भी तो धर्मशाला मे सडास मे प्रशस्ती लिखी मिल जाएगी। कुछ का नाम पखे पर लिखा मिल जाएगा, क्योकि उनके पाप का द्रव्य था तो पखे मे लगा है। मनीषियो! जब नाम लिखाते हो तो पहले श्री लिखाते हो। यह वह श्री है जो तीर्थंकर के अभिषेक के समय भद्रपीठ पर लिखी जाती है। उस श्री पर तुम्हारे निमित्त से पैर रखा जा रहा है। अहो! एक–एक वर्ण मत्र है। जब कोई मत्र प्रारम्भ होता है तो श्री से होता है। ज्ञानी आत्माओ! मै निषेध नहीं कर रहा हूँ कि आप नाम न लिखवाएँ। यदि नाम लिखवाने का शौक ही है तो दीवार पर लिखवा दो, लेकिन फर्शों पर "श्री" नाम लिखा कर के नाम को बदनाम मत कराओ।

आचार्य अमृतचद स्वामी ने सूत्र दिया था कि जैसी राग की तीव्रता होगी, वैसी परिग्रह की लिप्सा होगी और जैसी परिग्रह की लिप्सा होगी वैसे ही कर्म का तीव्र बध होगा। दृष्टात दिया था कि एक ओर बिल्ली का बच्चा, एक ओर हिरण का बच्चा। सोचो, हिरण का बच्चा तृण को खा करके, पानी पीकर शात होकर विचरण करता है। जबकि बिल्ली का बच्चा चौबीस घटा विचरण करता है कि कही चूहा दिख जाए, बस ऐसी रागी की दशा होती है। मनीषियो दूसरे पर करूणा मत करो, लेकिन निज पर तो करूणा करो। वह माँ कैसी है जो अपने बेटे को ब्रेड खिला रही हो, जिसमे जैविक द्रव्य पडे हो और माँ कह रही बेटा! लो। बच्चे को अभक्ष्य द्रव्य दे रही हो, कैसी जननी हो ? इसलिए ध्यान रखना, जिसमे प्रीति ज्यादा होती है कीडे वहीं ज्यादा होते हैं। क्योकि अधिक मीठे मे कीडे ज्यादा होते हैं।

भो ज्ञानी! ससार में जिओ, लेकिन सबके साथ हिल–मिलकर रहना। सिद्धात कहता है–प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है और जिसे तुम अपना कह रहे हो, वह भी तो अत्यत भिन्न है। जीवन मे यदि आप किसी का दुलार, प्रेम देखना चाहते हो, तो जीवन मे मधुरता लाओ, सब आपके होगे। यदि स्वय के अदर माधुर्य नहीं है अथवा जिसके अतरग मे गुणो का माधुर्य है। उसके पास चीटियॉ रूपी जन–परिजन अपने आप चिपकेगे। यदि तुम्हारे अदर कर्कशता आ गयी, वही सब अपने आप छोड़ कर चले जाते हैं। इसीलिए जीवन मे किसी को अपना बनाना चाहते हो, तो मधुरता लाना सीखो। अहो! तेरी आत्मा का गुण तो मधुरता है, लेकिन तेरी भोगो की ज्वाला ने उस मधुरता को जला डाला। जब तेरी दृष्टि भोगो पर हो, उस समय कोई भजन की बात करे तो, हकीकत बताना कैसी कषाय भडकती है। अपने भी पराये नजर आते हैं।

भो ज्ञानी! एक बार मैंने छोटी सी कहानी पढ़ी थी। एक बालक अपनी प्रेमिका से मिलने जाता है। वह कहती है ऐसे नही मिला जाता पहले आप अपनी मॉ का हृदय लेकर आओ। वह जाता है और कहता है–माँ आज मुझे आपका हृदय चाहिये है। माँ बोली, क्यो? उसने पूरी बात बता दी। माँ कहती है–जैसा तुम उचित समझो। उस निर्दयी ने वासना के पीछे, जन्म देने वाली जननी के हृदय को निकाल लिया। दौड कर जाता है और रास्ते मे फिसल कर गिरता है, माँ के हृदय से आवाज आती है बेटा! कहीं चोट तो नही लगी। वह प्रेमी जब प्रेमिका के पास पहुँचता है और कहता है–लीजिए। वह प्रेमिका कहती है–तू भाग जा मेरे सामने से। एक प्रेमिका के पीछे तू जब अपनी मॉ के हृदय को चीर सकता है, कल यदि दूसरी प्रेमिका तुझे मिलेगी, तो मुझे भी चीर देगा। अहो! समझ मे तब आयी जब कि मॉ भी हाथ से निकल गई। ध्यान रखो, वीतराग जिनवाणी मॉ कह रही है– बेटा मेरी बात मान लो। इन परिग्रह के टुकडो मे मत फँसो, एक दिन ऐसा भी आएगा जब यह भोग भी तुझे छोड देगे और तू अकेला अग्नि पर झुलसेगा। फिर मॉ भी गई, प्रेमिका भी गई। माँ जिनवाणी कह रही है–सुन लो, समझ लो, लेकिन मेरे आचल को छोड के मत जाओ।

भो आत्मन्! तीव्र माधुर्य के स्वाद मे तू इतना तन्मय हो गया कि निज रस का भान ही नही रहा। अरे! निर्मल नीर स्वभाव आत्मा का धर्म है, वही माधुर्य है। क्रोध, मान, माया, लोभ यह तो सम्यकदर्शन के चोर हैं। आत्मा का पहला शत्रु मिथ्यात्व है, उस मिथ्यात्व के ये चारों चोर सयोगी हैं। अनतानुबधी क्रोध, माया मान, लोभ यह चारो कषाय सम्यक्दर्शन को चुरा रही है क्योकि सम्यक दर्शन से बडा विश्व में कोई रत्न नहीं है। "दसणमूलो धम्मो", वह दर्शन धर्म का मूल है।

भो ज्ञानी! यदि देव, धर्म, निर्ग्रंथ गुरु, वीतरागवाणी के प्रति अश्रद्धान हो गया तो, भगवान कुदकुद देव, दर्शन–पाहुड, (अष्ट पाहुड) मे लिख रहे हैं–जो दर्शन से भ्रष्ट है, वह भ्रष्टो मे भ्रष्ट है। अरे! जिसका सम्यक्त्व गया, उसका तो भट्टा ही बैठ गया। सम्यकत्व से भ्रष्ट का निर्वाण नही

होता। एक बार कोई चारित्र से भ्रष्ट हो जाए तो पुन चारित्र मे उपस्थित हो कर सिद्धि को प्राप्त कर लेता है लेकिन सम्यकत्व विहीन को सिद्धि नहीं होती। इसलिए एक सौ चौबीसवीं कारिका मे आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने कह दिया– इन चोरो से रक्षा करो, पहरा लगा दो, ज्ञान का दीप जला लो और शील की बाड लगा लेना, सयम के सरदार खडे कर दो जिससे यह मिथ्यात्व का चोर अदर प्रवेश कर ही न पाये। दर्शन–मोहनीय राजा बहुत चतुर है, वह कहता है कि इधर सयम का घात करो, उधर चारित्र का भी घात करो। दो मुँह वाले आदमी बडे खतरनाक होते है, दो–दो बात करते दोनो हाथो से लडडू खाना चाहते है, मालूम चला कि दोनो हाथो के लड्डू गिर गये। इसलिए ध्यान रखो, एक नाव पर सवारी करो। दो–दो नाव पर सवार होओगे तो डूब जाओगे। उधर मिथ्यात्व मे भी लगे हो, इधर महाराज! वीतराग धर्म भी सत्य है। मनीषियो! जो दोनो ओर घूमता है हमारी जिनवाणी मे उसे मिश्र गुणस्थान कहा जाता है।
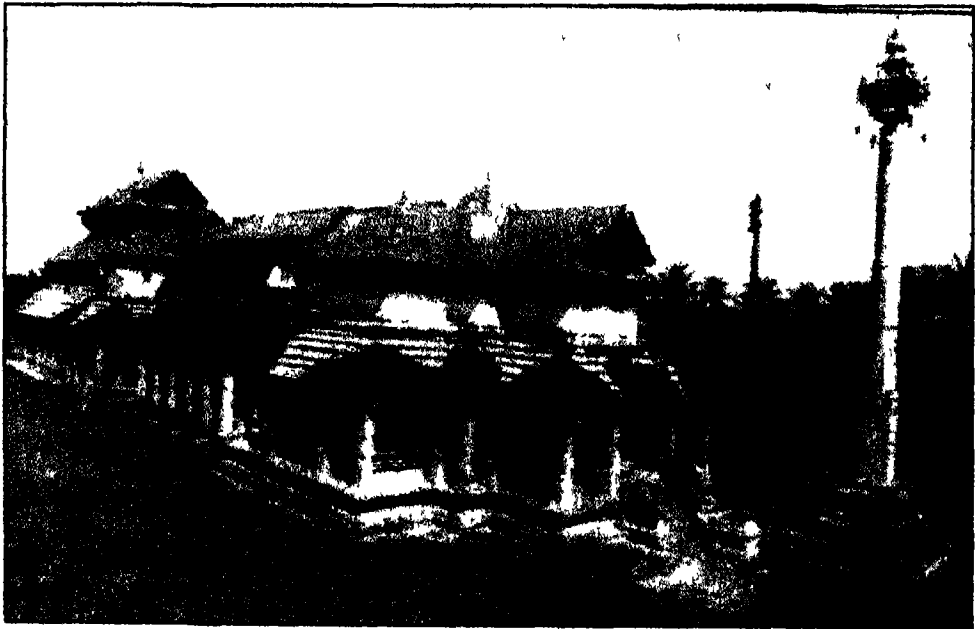
सहस्त्र स्तभों वाला चद्रनाथ मदिर, मूडबद्री (कर्नाटक)

"करो भावों की विशुद्धि मार्दव, शौच धर्म से"

प्रविहाय च द्वितीयान् देश चरित्रस्य सन्मुखायात.।
नियत ते हि कषाया देशचरित्रं निरुन्धन्ति।। १२५।।

अन्वयार्थ च = और। द्वितीयान् =(दूसरे कषाय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान,माया, लोभ को)। प्रविहाय =छोडकर। देशचरित्रस्य = एकदेशचरित्र के। सन्मुखायात = सन्मुख आता है। हि ते कषाया = क्योकि वे कषाय नियत = निश्चित रूप से। देशचरित्र = एकदेशचारित्र को। निरुन्धन्ति = रोकते हैं।

निजशक्त्या शेषाणा सर्वेषामन्तरग सगानाम्।
कर्तव्य परिहारो मार्दवशौचादिभावनया ।। १२६।।

अन्वयार्थ निजशक्त्या = अपनी शक्ति से। मार्दव शौचादि भावनया=मार्दव, शौच, सयमादि दशलाक्षणिक धर्मो के द्वारा। शेषाणा सर्वेषाम = अवशेष सम्पूर्ण। अन्तरगसगानाम् = अन्तरग परिग्रहो का। परिहार कर्तव्य = त्याग करना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || ७०||

मनीषियो! आत्मा की सत्य सत्ता को समझना है तो असत्य का विसर्जन करना अनिवार्य है। आचार्य कुदकुद देव ने 'प्रवचनसार जी मे लिखा है कि सपूर्ण आगम को आप अवधारण कर लेना, लेकिन जहाँ परमाणु मात्र भी राग दृष्टि है वहाँ मोक्ष नहीं है। इसलिए मुमुक्षु वही है जो अतरग और बहिरग से राग का त्यागी है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि अपने से पूछो ? रागदशा कितनी है, वैराग्य दशा कितनी है यदि वैराग्य दशा का भाव नहीं है, तो वीतराग दशा की अनुभूति कहाँ ? जिसे वीतराग शब्द का आनद है, जिनवाणी की भाषा मे वह भी परिग्रह है। वीतराग' शब्द का राग भी जब परिग्रह हो सकता है, तो विषयो' का राग, वीतराग भाव कैसे हो सकता है ? अरे! वीतराग भाव का जनक वैराग्य भाव है, बिना वैराग्य के चारित्र नहीं, बिना चारित्र के वीतराग भाव नही। यह अनवरत है, अत पहले वैराग्य भाव का जन्म होगा, पश्चात् सयम का उद्भव होगा और सयम की स्थिरता जहाँ होगी, वहाँ वीतराग भाव का जन्म होगा। पर सयम का नाम वीतराग भाव नहीं है। सयम की स्थिरता, स्वरूप की निश्चय दशा का नाम वीतराग भाव है।

भो ज्ञानी! आत्म-श्रृद्धा का नाम सम्यक्दर्शन है। जिसके पास सम्यक्त्व नही है, उससे चारित्र की बात करना व्यर्थ है। श्रृद्धा, चारित्र नहीं है, पर श्रृद्धा के बिना चारित्र नहीं होता, अन्यथा उमास्वामी महाराज को श्रृद्धा ही मोक्ष मार्ग लिखना चाहिये था, वहाँ तो सम्यक्त्व मोक्षमार्ग लिखा जाता है। किंतु सम्यक्दर्शन अकेला मोक्षमार्ग नहीं है। सम्यक्त्व अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप है उसका वैसा श्रृद्धान, पदार्थ के स्वरूप का यथार्थ बोध सम्यक्ज्ञान है और जैसा स्वरूप है उसमे लीन होना ये सम्यक् चारित्र है। 'भगवन् अमृतचद्र स्वामी' कह रहे कि श्रृद्धा के (सम्यक दर्शन) के चार चोर है- अनतानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चोरो की नियुक्ति करने वाला है, मिथ्यात्व। अहो! देखो तेरे सम्यक्त्व रत्न की चोरी हो रही है, बात को गहरे मे समझो, आज तक भेदी के बिना डाके नही पडते। भो चेतन! इस अनतानुबधी क्रोध को समाचार कौन देता है ? तेरा ही मिथ्याज्ञान-दर्शन है, क्योकि मिथ्यात्व कोई बाहर का द्रव्य नही, वह भी तेरा कुटिल भाव है और कषाय भी तेरा कुटिल भाव है, असयम भी तेरा कुटिल परिणाम है। अत जितना घातक मिथ्यात्व है उतना ही घातक असयम है, दोनो कर्म मोहनीय है। अब आप असयम का अथवा मिथ्यात्व का सेवन जान के करो या अज्ञानता मे करो, लेकिन कर्म सिद्धात कहता है मेरा काम तो आपको बाध ाना है। लोक का ऐसा कोई प्रदेश नही है जहॉ मेरे सैनिक न खडे हो। आत्मा के प्रदेशो पर बध य कर्म तो है ही अबध्य कर्म भी विराजे हैं, जैसे ही आपके राग-द्वेष परिणाम हुए, तुरत ही कर्म रूप परिणति हो गये।

भो ज्ञानी! कर्मसिद्धात कह रहा है यदि आपने हेय-उपादेय का विवेक रख लिया होता तो मुझसे बाधना-बधना ही नहीं होता। आप अब कह रहे हो, जब अविवेक पूर्वक काम करके आ गये। हे प्रभु! मैं तो सिद्ध स्वरूपी हूँ, यह अबध्य दशा सिद्ध स्वरूपी के लिए नही, परतु जिसने स्वय के भाव बिगाडे, उसको तो बध होगा। भो ज्ञानी! मत लो सयम, लेकिन असयम के भाव आ रहे हो तो आप तो बस इतना सुना देना तुम कहाँ जा रहे हो ? किसके पास जा रहे हो ? किसका बिगाडने जा रहे हो ? वह बिगडे न बिगडे, तेरा ब्रह्म-स्वरूप तो बिगड ही जाएगा। अहो! जो साधना का माधुर्य है, जीवन का सच्चा सुख है, उसे अब्रह्म ने नष्ट कर दिया। अरे! निज उपादान को नही सम्हाला, निमित्तो को दोष दे-दे करके हम पचमकाल मे आ गये, अब क्या विचार है ? कर्त्तत्व भाव को छोडेगे। अबुद्धि पूर्वक जो इष्ट-अनिष्ट होता है वह तेरा भाग्य और बुद्धिपूर्वक जो इष्ट अनिष्ट होता है, वह तेरा पुरुषार्थ है। बिना पुरुषार्थ के भाग्य नाम की कोई वस्तु नही होती। वर्तमान मे जो तेरा भाग्य झलक रहा है, वह पूर्व का पुरुषार्थ है। मनीषियो! पुरुषार्थ ही जब काललब्धि के रूप मे फलित होता है, तब वही प्रभु की कृपा बन जाती है, लेकिन वास्तव मे कर्म के अलावा कुछ भी नहीं है। सब निज का कर्म है और निज के कर्म सुधर जाएँ, इसी का नाम धर्म होता है। जब धर्म निर्मल

हो जाता है, तो वही परम–धर्म (वस्तु का स्वभाव) परमेश्वर बन जाता है। भो चैतन्य! अर्थ और काम पुरुषार्थ तो कर्त्तव्य रूप मे है, पर वस्तुत धर्म और मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। अर्थ एव काम दो पुरुषार्थ ससार के हैं, इसीलिए उनको पुरुषार्थ नहीं कहो। परम पुरुषार्थ वही है जो सिद्ध बना दे। ध्यान से समझना दर्शन–ज्ञान आत्मा का धर्म है और आवरण करना कर्मों का धर्म। क्षयोपशम शक्ति वीर्यांतराय कर्म का काम है, लेकिन क्षयोपशम आत्मा मे है।

भो ज्ञानी! इस वहम को दूर कर देना कि आपके चश्मे के लैंस से दिखता है। बाहर का लैंस तो मदता का प्रभाव कम करने मे निमित्तभूत काम करता है। अत चश्मा निमित्तरूप है। उपादान बिना निमित्त कुछ भी नहीं कर पायेगा। वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम आत्मा मे है। उस शक्ति को अभिव्यक्त कराने मे निमित्त। हेतु काच है। पर कर्मसिद्धात जहाँ आ जाता है, वहाँ द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, प्रथमानुयोग की कोई गणना नहीं होती है और जहाँ करणानुयोग ने जिसको 'हाँ' कह दिया बस, अब समझ लो कि कोई टालने वाला नही। भगवान भी बने, तो करणानुयोग से। गुणस्थान कैसे चढ रहे ? क्षपणा कैसे हो रही है ? उपशमन कैसे हो रहा है ? सब दशा का व्याख्यान करने वाला करणानुयोग है। परन्तु बध–निबध करणानुयोग से नहीं, करण से है नही तो यहाँ करणानुयोग कर्त्ता बन जाएगा तेरे बध–अबध का। बध–अबध तो तेरे 'करण' यानि तेरे परिणाम से है।

भो ज्ञानी! अतरग परिग्रह छूटने लग जाए तो बहिरग परिग्रह अपने आप भागने लग जाएगा, लेकिन कही छल ग्रहण नहीं कर लेना कि अतरग परिग्रह मेरा छूट गया, अत मैं बहिरग परिग्रह से भी छूट गया। बहिरग परिग्रह का होना यह बता रहा है कि अतरग परिग्रह भी है। जब पानी नीचे का सूखेगा, तब ही ऊपर की मिट्टी सूखती है। ऊपर की मिट्टी गीली हो और नीचे आप कहो कि बिलकुल सूखा है, ऐसा सभव नही। ध्यान रखना, धर्म जब अतरग मे प्रवेश कर जाता है तो शूल भी फूल से महसूस होते हैं और जिसके अतरग मे धर्म नहीं होता, उसको हित की बात भी करोगे तो शूल जैसी लगेगी। जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है, उसके सद्विचार भी विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। आप सम्यक् समझाएँगे, परतु उसको विपरीत लगेगा। अहो रागी प्राणियो! आपको राग मे अच्छा लग रहा है, क्योंकि आप वीतराग दृष्टि से तो दूर हो। आप सोचते हो कि वैराग्य दृष्टि से तो मेरी सिद्ध अवस्था हो जाएगी, तो दुकाने कौन चलाने आएगा ? अभी तो यह दृष्टि है, लेकिन इसका विकल्प नहीं करना कि मैं सिद्ध बन गया, तो ससार कौन चलाएगा ? इसीलिए तो तुम ससार में हो। अहो! तुझे घर चलाने की चिता है।

भो ज्ञानी! माँ जिनवाणी कहती है कि कण–कण स्वतत्र है, प्रत्येक द्रव्य का परिणमन

स्वतत्र है। अपने परिणमन से परिणामी बनकर प्रत्येक द्रव्य चलता है। उसमे राग करके कर्त्ता क्यो बन रहे हो ? यह भी बहुत बडा मिथ्यात्व है। तू पुण्य का करार देकर, औगुण हजार कर रहा है। यदि ऐसा ही हो जायेगा तो करणानुयोग नाम की कोई वस्तु नहीं होगी। अरे! व्यवहारिकता, राष्ट्र–व्यवस्था, विश्व–व्यवस्था सब कर्म सिद्धात पर टिकी हुई है। बात को समझना। आपने अपने बच्चे की शादी कर दी। आप कहेगे–महाराज जी! कही बच्चा व्यभिचार–जैसे गलत काम करने लगता, तो सामाजिकता बिगडती, इसीलिए हमने ऐसा किया। यहाँ करणानुयोग कहता है कि उत्कृष्ट तो यही था कि ब्रह्मस्वरूप मे लीन रहता परतु इसके पास सामर्थ्य की कमी थी। अत विश्व की अनेक स्त्रियो पर कुदृष्टि जाती, तो अनत का बध करता। अहो! पिता तूने श्रेष्ठ काम किया जो अपने बेटे को अनत स्त्रियो के भोग से बचाकर एक मे सयमित कर दिया। इस अपेक्षा से जिनवाणी से पूछोगे तो वह पुण्य कह देगी। परतु वही जिनवाणी तुझे पापी भी कहेगी, क्योकि तूने अपनी सतान को विषयो मे डालकर पाप मे डाल दिया। यदि वह स्वय सयम की ओर जा रहा हो, तब तो जिनवाणी ऐसा ही कहेगी और जब वह अनत असयम की ओर जा रहा हो, तो जिनवाणी कहेगी कि तुमने अपने बच्चे की शादी करके एकदेश सयम का पालन कराया है। यह जैन–सिद्धात है।

भो ज्ञानी! चर्चा परिग्रह की चल रही है और नारी भी सबसे बडा परिग्रह है, ससार को बढाने वाली लता (बेल) है। अब समझ जाओ ससार की लता (बेल) भी दूसरे पर चढकर ही बढती है। हमने उनको लक्ष्मी बनाया, उन्होने तुमको देव बना दिया। एक दूसरे को बढोत्तरी देकर दोनो की सासारिक बेल बढ गई। इसलिए भूल न जाना, फूल न जाना वरना कूलना पडेगा। मनीषियो! सम्यक्दर्शन के चोरो (अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ) का सरदार मिथ्यात्व है क्योकि जीव द्वितीय कषाय (अप्रत्याख्यानवरणी, क्रोध, मान, माया, लोभ) के कारण देशसयम को स्वीकार नही कर पाता। वह कषाय देशचारित्र का निरोध कर रही है, देशचारित्र को नहीं होने देती, व्रती बनने के परिणाम भी नही आते। ध्यान रखना, सम्यक्दर्शन को तो चारो गतियो का बधक भी प्राप्त कर सकता है, लेकिन चारित्र को देवायु का बधक अथवा अबधक मनुष्य या सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच ही प्राप्त कर सकता है। इसलिए स्वय का निर्णय कर लेना जिस जीव को नरक आयु का बध हो चुका है, वह देश सयम भी धारण नही कर सकता। मनुष्य अथवा तिर्यंच–आयु का जिसका बध हो चुका है उसके व्रत लेने के परिणाम भी नहीं होते। याद करो, राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर वर्धमान स्वामी के समवशरण मे प्रश्न किया था– प्रभु! मैं सयम स्वीकार क्यों नहीं कर पा रहा ? "राजन! आपको नरकायु का बध हो चुका, इसलिए सयम के भाव नहीं आ पा रहे हैं।" आप वृद्ध हो गये पर मुनि नही बन पा रहे हो, लेकिन घर मे बैठकर देशसयम का पालन तो कर सकते हो, किसने रोका ?

भो ज्ञानी! साधना से ज्यादा शक्ति भोगो में लगती है। साधना मे तो शक्ति क्रमश बढती है और भोगो मे शक्ति क्रमश घटती जाती है। पचेद्रिय भोग वही भोग सकता है जिसके शरीर मे ताकत है और वही पच महाव्रतो का पालन भी कर सकता है। कमी तेरे पुरुषार्थ की है। किसने मना किया ? अहो! जीवन भर भोगो की भट्टी मे झुलसे हो अब तो कुछ सोच लेना। बड़ा आश्चर्य है कि पाप करने के बाद पश्चाताप भी नही है। भो ज्ञानी आत्माओ! यह पर्याय अरहत की है, यह पर्याय सिद्ध की है और इस पर्याय को आपने भोगो मे लगा दिया। 'आचार्य भगवन्' कह रहे हैं कि–अपनी शक्ति के अनुसार सपूर्ण अतरग परिग्रह छोड देना। अहो! खाने के लिए कितना कमाना पडता है ? बहुत कम। एक दिन मैंने आपको बताया था कि जो मकान आपने बनाये हैं, उनमे कगूरे घरके ऊपर क्यो बना दिये ? व्यर्थ का व्यय किया ईंट, चूने मे। देखो, छिपाना नही हकीकत कुछ और है कि इतना सुदर भवन इसलिए बनाया है, अभी तो उसमे रह लेता है लेकिन जब रौद्र परिणामो से मरण करूँगा, कौआ बनकर राग के वश जब घर मे आऊँगा, तो बैठने को कोई स्थान देगा नही। मैं अपनी व्यवस्था पहले से कर रहा हूँ ।

भो ज्ञानी आत्माओ! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि-तुम महाव्रती नहीं बन सकते हो तो अणुव्रती तो बन ही जाना देशव्रती तो बन ही जाना, यदि वास्तव मे अपनी आत्मा का कल्याण चाहते हो तो।
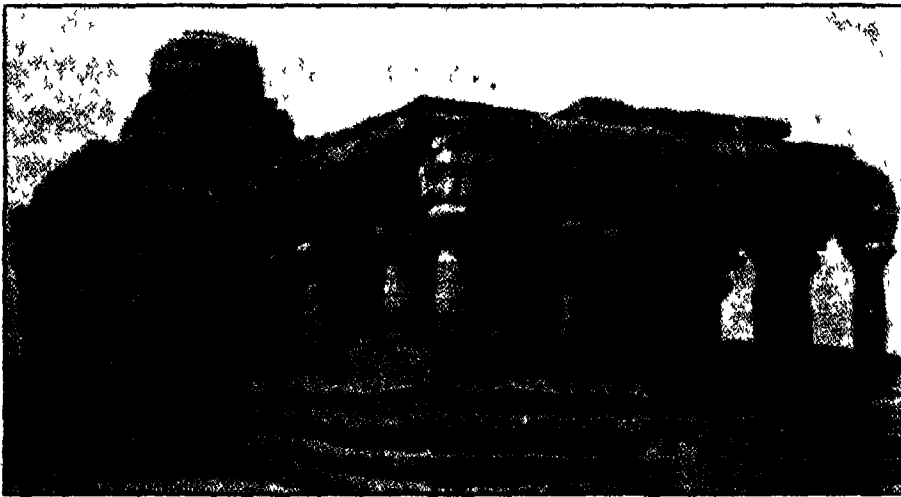
पटडकल, जैन मदिर

"वस्तु का स्वरूप–त्याग"

बहिरंगादपि सगात् यस्मात्प्रभवत्यसंयमोऽनुचित।
परिवर्जयेदशेष तमचित्त वा सचित्त वा ।। १२७।।

अन्वयार्थ वा तम् = तथा उस बाह्य परिग्रह को। चाहे वह अचित्त = अचित्त हो। वा = अथवा सचित्त = सचित्त हो। अशेष परिवर्जयेत् = सम्पूर्ण ही छोड देना चाहिए। यस्मात् =क्योकि। बहिरगात सगात् = बहिरग परिग्रह से। अपि अनुचित = भी अयोग्य अथवा निद्य। असयम प्रभवति = असयम होता है।

योऽपि न शक्यस्त्क्युक्तु धनधान्यमनुष्यवास्तुवित्तादि।
सोऽपि तनू करणीयो निवृत्तिरूप यतस्तत्त्वम् ।। १२८।।

अन्वयार्थ अपि = और। य = जो। धनधान्यमनुष्यवास्तुवित्तादि = धन धान्य मनुष्य गृह सम्पदादिक। त्यक्तु न शक्य = छोडने को समर्थ न हो । स अपि = वह परिग्रह भी। तनू करणीय = न्यून करना चाहिये। यत निवृत्तिरूप = क्योकि त्याग रूप ही। तत्त्वम् = वस्तु का स्वरूप है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ७१ ।।

।भो मनीषियो। जिनके अतरग मे निर्मलता है उन्हे किसी के दोष दिखते ही नहीं, क्योकि उस जीव को निज स्वभाव मे रमण के अलावा दोष देखने की फुरसत ही कहाँ। एक ज्ञानी योगी के अन्तरग मे जब भावो की निर्मलता होती है, तो उसकी दृष्टि मे यही लगता है कि विश्व के प्राणी मात्र भगवत्ता को प्राप्त करे। तीर्थंकर बनने वाली आत्मा यह नहीं देखती कि कौन–कैसा है, वह आत्मा तो यह देखती है कि सभी जीव ऐसे ही हो। कौन–कैसा है? यह शब्द तो कषाय से भरा है तथा सभी ऐसे हो' इसमे दया–करुणा है। प्रत्येक जीव सत्स्वरूप हो, जीव करुणा से भीगा हो जीव साम्यभाव से युक्त हो, प्रत्येक जीव वात्सल्य से युक्त हो ऐसी भावना जिसके अन्तरग मे होगी, उसका वात्सल्य पहले झलकेगा और जिस जीव की भाषा मे पत्थर से बरसते हो वहाँ वात्सल्य टूट जाता है। भगवन् अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि तुम्हारे जीवन मे जब तक परिग्रह

का विसर्जन नहीं है, तब तक वात्सल्य सभव नहीं, क्योकि परद्रव्य का सचय भाव ही तो दूसरे के प्रति रोष उत्पन्न कराता है। यह मेरा हो जाये, ये मेरे हो जाये--इसके पीछे तो आपको धर्म--धर्मात्मा नजर ही नहीं आते।

भो ज्ञानी! जैन सिद्धात को समझो जिसका जितना क्षयोपशम होगा, उसको उतना मिलेगा। अब चाहे तुम कितनी ही ईर्ष्या करो, दाह करो, स्थिरता लाओ, लेकिन ध्यान रखो जब अशुभ कर्म का बध होगा, तो जो तुम्हारे पुण्य का द्रव्य था वह भी ईर्ष्या करने से नष्ट हो गया। मनीषियो! निज भावों मे निर्मलता नहीं है तब तक तीर्थ की वन्दना भी तुझे पावन नही कर पायेगी और निज की परिणति निर्मल है तो तीर्थ की वदना भी निमित्त बन जायेगी। इसलिये ध्यान रखना द्रव्य की प्राप्ति, प्रभु की प्राप्ति, किसी की ईर्ष्या से नहीं बल्कि इसकी प्राप्ति जीव की तपस्या से होगी। कर्तृत्व भाव मे उलझ कर स्व--पर के परिणामो मे कलुषता उत्पन्न कर देना, यह बहुत बडी हिसा हैं। अत परिग्रह का सबसे बडा हेतु आर्त और रौद्र ध्यान है। मोक्ष हेतु तो धर्मध्यान--शुक्लध्यान है अब यथार्थ बताना कि जीवन के कितने क्षणो मे धर्मध्यान होता है?

भो मनीषियो! प्रश्न है कि एक साथ पुत्र रत्न चक्ररत्न और भगवान को कैवल्य की प्राप्ति ये तीनो तुम्हारे सामने आ रहे हैं। बताओ आप क्या करोगे ? काम पुरुषार्थ का फल भी सामने पडा हुआ है अर्थ पुरुषार्थ सामने खडा हुआ है और धर्म पुरुषार्थ प्रतिफलित हो रहा है। आप अतरग से प्रश्न करो कि मेरी विशुद्धता कितनी है मेरी निर्मलता कितनी है ? बेटे का उत्सव नहीं किया तो कोई क्या कहेगा? फिर चक्ररत्न को सॅभालो, परतु भरतेश चक्रवर्ती कहेगा यह सब तुच्छ है, मना लूॅगा बेटे के उत्सव को, क्योकि चक्ररत्न प्रकट हो चुका है तो जो पुण्य मेरी सत्ता मे है वह कही जाने वाला नही है, इसलिये मैं प्रथम परमेश्वर की आराधना करने जाऊँगा। नगर मे घोषणा कर दी भगवान, तीर्थेश आदिब्रह्म आदिश्वर स्वामी को कैवल्य की प्राप्ति हुई है और कैलाश पर्वत पर हम सभी वदना करने जायेगे। भगवान जिनेन्द्र की वदना करने के बाद कहता है कि, चलो अब चक्ररत्न और पुत्ररत्न का भी उत्सव मना ले। भो ज्ञानी! पर्यूषण पर्व कह रहे हैं सबसे बडे रत्न दस धर्म है, सबसे बडा धर्म रत्नत्रय धर्म है और उस रत्नत्रय धर्म की साधना के लिये सस्कार कैसे उत्पन्न हो, सोच लेना, अन्यथा सारा जीवन निकल चुका है आर्त और रौद्र ध्यान मे। अब रत्नत्रय की सिद्धि के लिये स्वय के जीवन मे दया लाओ, करुणा लाओ तो नियम से स्व--पद की प्राप्ति होगी।

भो ज्ञानी! जैनदर्शन मे सबसे उत्कृष्ट साधना ध्यान है ध्यान निर्वाण का साक्षात हेतु है, ध्यान के अभाव मे कोई निर्वाण चाहता है तो हमारे आचार्य भगवन्तो ने कहा है-- **ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम्** ।९। परमा स्तो। जैसे जन्माध को सूर्य के दर्शन नहीं होते

हैं, वैसे ध्यान के बिना निर्वाण की प्राप्ति नही होती। तुम पचम काल मे विराजे हो, आर्त और रौद्र ध्यान किया है तथा परिग्रह ही आर्त रौद्र ध्यान की मूल वस्तु है क्योकि नष्ट हो जाये तो चिता! नहीं आ रहा है तो चिता! चला जा रहा है तो चिता, दूसरे का दिख रहा है तो चिता। अहो! कितनी महिमा है पैसे मे ? निर्मोही बनने के लक्षण जिनके पास हैं वह भी उससे मोहित हो जाते हैं, ऐसी महिमा परिग्रह की है। इसलिये आचार्य महाराज ने इसे ग्यारहवा प्राण कह दिया है। जहॉ देखो वहॉ धन–परिग्रह की पूजा है, लेकिन उसकी पूजा करने से पूज्य नहीं बन पाओगे और पूजा करने से लक्ष्मी भी नही आती है। भो ज्ञानी! यह सिद्धात है कि जब तक परद्रव्य का समूह विराजा है तब तक धर्म ध्यान भी दूर है। इसीलिये चतुर्थ गुणस्थान मे उपचार से धर्म ध्यान कहा है। पचम गुणस्थान, छठवे गुण स्थान तक मे शुद्ध धर्म ध्यान नही है। शुद्ध धर्म ध्यान तो सप्तम गुणस्थान से है आचार्य देवसेन स्वामी ने ऐसा तत्त्वसार मे कहा है। शुद्ध धर्म ध्यान याने जहॉ आर्त रौद्र ध्यान का लेश नही है वह सप्तम गुणस्थान मे है। छटवे गुणस्थान मे रौद्र ध्यान तो नही होता, लेकिन आर्त ध्यान होता है। यह आर्त ध्यान तुम्हे प्रसन्न नही होने देगा तुम्हे विशुद्ध नही बनने देगा तुम्हे निर्मल नही बनने देगा क्योकि आर्त ध्यान को जन्म देने वाली सामग्रियॉ उपलब्ध है। सघ त्याग परिग्रह का त्याग कषायो का उपशमन इन्द्रियो का दमन और व्रतो का धारण करना–यह ध्यान को जन्म देने वाली सामग्री है। इसलिये जब अशुभ चितवन होता है तो मानसिकता भी बिगडती है विकार भी बढते है और अशुभ कर्म का द्रव्य भी बढता है। वही योगी जब धर्म ध्यान मे होता है तो जो शक्ति क्षीण हो रही थी वही शक्ति ओज बन जाती है। अत ज्ञान की एकाग्रता का नाम ही ध्यान है। भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने **सर्वार्थ–सिद्धि** ग्रथ' मे लिखा है कि चित्त की एकाग्रता का नाम ही ध्यान है। ज्ञान से ध्यान और ध्यान से निर्वाण'– ऐसा '**रयणसार** ग्रथ मे भी लिखा है। अहो! अपने आपसे चर्चा करने का अपनी सत्ता का भान होने का, यदि कोई स्थान है तो उसका नाम ध्यान है। भो ज्ञानी! जिस जीव को आत्म ध्यान करना है, जिसे निज स्वभाव का स्वाद चखना है, उसे परिग्रह का विसर्जन करना होगा त्याग करना होगा।

सेठजी एक दिन अपने पालतू तोते से कहते हैं कि मै मुनि महाराज के पास धर्म उपदेश सुनने जा रहा हूँ , आपको कुछ पूछना हो तो बताओ। तोता कहता है–महाराज! जो उपदेश देगे वही आप मुझे सुना देना। जैसे ही दूसरे दिन सेठजी वापस आते हैं, तोते ने पूछा–सेठजी! आपने क्या उपदेश सुना? सेठजी बोले–मुनिराज ने धर्म उपदेश मे कहा कि त्याग करने से आत्मा बधन मुक्त हो जाती है। तोता बड़ा भेद ज्ञानी था, समझ गया। उसे दोपहर को सेठजी ने भोजन रखा, उसने नही खाया और गिर गया। सेठजी बोले हाय! यह क्या हो गया मेरा तोता मर गया अब इसको पिजरे मे न रखे, जैसे ही सेठजी ने पिजरा खोलकर पक्षी तोते को निकाल कर बाहर रखा, वैसे ही तोता उडकर डाली पर बैठकर कहता है–सेठजी! गुरुदेव ने यही तो उपदेश दिया था। देखो

मैंने एक दिन का त्याग किया तो मैं आपके बधन (पिजरे) से मुक्त हो गया। हे ज्ञानी मुमुक्षु आत्माओ! तुम भी त्याग कर दोगे, तो इस पिजरे से मुक्त हो जाओगे। अहो! ज्ञान किया, पर ज्ञान से मुक्ति तो नहीं मिली। ज्ञान त्याग के लिये किया था और त्याग किया तो मुक्ति मिल गई। ऐसे ही ज्ञान से मुक्ति नही मिलेगी, मुक्ति तो त्याग से ही मिलेगी।

भो ज्ञानी! छठवे काल मे पछताने को भी नहीं मिलेगा। अभी तो कम से कम आप पश्चाताप कर लेते हो। ऐसा भी काल आयेगा जिसमें इतनी प्रज्ञा ही नही होगी कि हम पाप को पाप समझ पाये। यह तुम्हारे पुण्य का उदय है कि पाप को पाप समझ रहे हो। यह बात आपको अजीब सी लग रही होगी लेकिन यथार्थ समझना। पाप को पाप वही समझ पाता है जिसका पुण्य का उदय होता है, अन्यथा पाप को पाप नहीं समझ पाता है, समझाने वाले भले ही समझाते रहे। देखो जब रावण के पाप का उदय आया कितना बडा विद्वान था, इतने लोगो के समझाने पर भी क्या उसकी समझ मे आया ? जिसके ऊपर प्रबल पाप छाया होता है उसे जिन–देशना भी सुहाती नही है। **'सर्प डसे तो जानिये रुचि सो नीम चबाये और कर्म डसे तो जानिये जिनवाणी ना सुहाये।'** धर्मसभा मे नीद आ जाती है यह तीव्र अशुभ कर्म का उदय है। अहो! भोगो मे नीद नही आती, यह सब अशुभ कर्म का उदय है। इसलिये भगवन् अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि अब तुम परिग्रह का विसर्जन कर दो, निद्रा भग कर दो, बहुत सो लिया है। अब मोह की नीद से जाग जाओ, अन्यथा सध्या होने वाली है।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन एक बार पुन करुणा दृष्टि से समझा रहे है जो बहिरग परिग्रह है कि उसको भी पूर्ण रूप से छोड देना चाहिये क्योकि इस परिग्रह से अपरिमित असयम होता है। आपको मालूम है गोदाम मे धान्य रख दिया कीडे पड चुके है बाहर निकलते भी दिख रहे है, अब बताओ क्या करोगे ? ऐसे ही बेच रहे है अथवा जाकर के पिसवा रहे हैं, परिणाम का ध्यान रखना। अब सोचो, कि जैन दर्शन के अनुसार जीना चाहते हो तो विवेक रखो अन्यथा अपरिमित असयम होता है। अहो ! इतने महान सयम पर चलने वाला जैन शासन है। भगवन् अमृतचद्र स्वामी कह रहे है कम से कम इतना तो विवेक रख लेना कि साक्षात् जीवो को पीसकर तो मत खाना। जो सम्पूर्ण परिग्रह को छोडने मे समर्थ नही है उन्हे परिग्रह को कम कर लेना चाहिये, प्रमाण कर लेना चाहिये, क्योकि त्याग वस्तु का स्वरूप है, ग्रहण करना वस्तु का स्वरूप नही है।

"मत बनो निशाचर"

रात्रो भुजानाना यस्मादनिवारिता भवति हिसा।
हिंसाविरतैस्तस्मात् त्यक्तव्या रात्रिभुक्तिरपि।। १२९।।

अन्वयार्थ– यस्मात् रात्रो = क्योकि रात्रि मे। भुजानानाम् = भोजन करने वालो के। अनिवारिता हिसा =जिसका निवारण न हो सके ऐसी हिसा। भवति = होती है। तस्मात् = इसलिए। हिसाविरतै = हिसा से विरक्त होने वाले पुरुषो को। रात्रिभुक्ति अपि = रात्रि को भोजन करना भी। त्यक्तव्या = त्याग करना चाहिए।

रागाद्युदयपरत्वादनिवृत्तिर्नातिवर्तते हिसाम्।
रात्रि दिवमाहरत कथ हि हिसा न समवति।। १३०।।

अन्वयार्थ– अनिवृति = अत्याग (भोजन का त्याग नहीं करना)। भाव रागाद्युदयपरत्वात् = रागादिक भावो के उदय की उत्कृष्टता से। हिसाम् = हिसा को। न अतिवर्तते = उल्लघन करके नही वर्तते हैं। रात्रि दिवम् = रात्रि और दिन को। आहरत = आहार करने वालो के। हि हिसा =निश्चयकर हिसा। कय न सभवति = कैसे सभव नही होती ?

।। पुरुषार्थ देशना ।। ७२।।

अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते है। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र दिया कि राग का विनाश कराने वाली वस्तु वैराग्य भाव है, जो वीतराग भाव का दिग्दर्शन कराने वाला है। वैराग्य भाव राग के अभाव से हुआ है, तो पर–द्रव्य से ममत्व नियम से हटेगा अर्थात् पर–द्रव्य से ममत्व हटा है, तो वैराग्य निश्चित है। जिसके पास वैराग्य है उसके पास चारित्र आयेगा और जिसके पास चारित्र आयेगा उसके पास नियम से वीतरागता आयेगी। मनीषियो! आज सबसे प्रबल रोग कोई है, तो देह का है। जिस दिन डाक्टर कहता कि उपचार सभव नही है, तब कहते हैं डाक्टर साहब आप जितना चाहे धन ले–लो, लेकिन रक्षा कर लो।

भो मनीषियों! निज की ग्रंथि को खोलो, क्योंकि यहाँ तत्त्व की बात सुन रहे हो। समझना, निर्ग्रंथ वीतराग मुनिराज के चरणों मे जीवंधर ने प्रश्न किया। प्रभु! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था जिसके प्रभाव से मुझे अपनी माँ का वियोग सहन करना पड़ा और मेरे जन्म होने के पूर्व ही मेरे पिता का वियोग हुआ! पिता सत्यधर महाराज को उनके मत्री काष्ठागार ने मार डाला, माँ विजया को मयूर विमान ने श्मशान मे छोडा, जहाँ लोगो के अतिम सस्कार किये जाते हैं, वहाँ मेरा जन्म हुआ। वीतरागी मुनि कहने लगे जीवधर कुमार इसमें तेरे, जनक–जननी का ही दोष नहीं, तेरा भी दोष था। भो ज्ञानी! पडित आशाधरजी ने 'सागार धर्मामृत मे लिखा है–

प्राणतेऽपि न भंगतव्य, गुरु साक्षी सतु व्रत।
प्राणते तत्क्षणे दु खे, व्रत भगो भवे भवे।। (सा ध.)

प्राणो का अत भी क्यो न हो जाये, गुरु की साक्षी मे जो व्रत लिए हैं, भग मत कर देना, क्योकि जिसने व्रत को भग किया है वह भव–भव मे दुख को प्राप्त हुआ है!

भो ज्ञानी! जिसके निमत्रण कार्ड पर लिखा हो कि तुम्हारे आने तक की व्यवस्था है उसे जैन किसने कह दिया है ? ओहो! कम–से–कम तुम इतना नियम आज ले–लो कि आज से अपने कार्ड पर यह नही लिखवाए 'स्वरूचि–भोज शाम पॉच बजे से आपके आगमन तक।'' एक ओर 'मगलम् भगवान वीरो' छाप रहे हो और दूसरी तरफ आप रात्रि मे भोजन का निमत्रण दे रहे हो कि आपके आगमन तक की व्यवस्था है। भो चेतन आत्माओ! केवली के ज्ञान मे तुम्हारी करतूते सब झलक रही हैं और तुमको स्वय मालूम है हम क्या कर रहे हैं ? आश्चर्य है कि बैनर लगाने की, परिचय देने की आवश्यकता नहीं, विदेशो मे तुम्हारी पहचान है। रात्रि–भोजन के त्याग का तात्पर्य यह नही है कि झुरमुट सध्या हो रही है, खाते चले जा रहे हैं, बोले–अभी तो दिख रहा है। अरे! यह मायाचारी भी नहीं करना, रात्रि भोजन का त्याग यानि कि दो घड़ी सूर्यास्त के पहले भोजन हो जाना चाहिए। सध्या काल मे ही तो जीव की उत्पत्ति अधिक होती है। सोते जा रहे हैं और भोजन करते जा रहे हैं। सीधा का सीधा पेट मे रखा, पच नही पा रहा है तो किसी को गैस के रोग हो रहे हैं, तो किसी का शरीर स्थूल हो रहा है। भगवान महावीर स्वामी ने वीतराग विज्ञान मे पहले ही कह दिया है कि आप सोने के छह घटे पहले भोजन कर लो। सूर्यास्त के अडतालीस मिनट पहले भोजन कर ही लेना चाहिए। जैन आगम कहता है कि आप को चार प्रकार के आहार–पानी का, पाँचों पापो का त्याग करके रात्रि विश्राम करना चाहिए। कहीं धडकन बढ गई और अत हो गया तो कम से कम सल्लेखना के साथ तो मरोगे, त्याग के साथ तो जाओगे।

भो ज्ञानी! प्राचीन पद्धति क्या थी? सुबह की पूजा–पाठ करके साधुओ की आहारचर्या कराके, श्रावक जाता था अर्थोपार्जन के लिए और शाम को अपनी अन्थऊ की बेला मे घर आ जाता

था। फिर अपनी सामायिक करता, भगवान की वदना करता, वचनिका सुनता था। वर्तमान मे सुबह के पेपर मे सुबह की सामायिक हो गई और सध्या के पेपर में सध्या की सामायिक हो गई और टेलीविजन के सामने वचनिका चलती है। बताओ क्या जीवन है? भोली आत्माओ! ऐसी मायाचारी करके तुम कहाँ जा रहे हो? मनीषियो! देव–दर्शन, पानी छान के पीना और रात्रि भोजन नहीं करना यह जैनी के तीन चिन्ह आस्था के प्रतीक हैं। पुरातत्व एव साहित्य, सस्कृति के प्राण हैं, जो तुम्हारी पहचान हैं। भो प्रज्ञात्माओ! आचार्य भगवान कह रहे हैं कि रात्रि के भोजन करने से नियम से हिसा होती है। रात्रि मे बना और दिन मे खाता है। विवाह मे रात्रियों मे भट्टियाँ चढती हैं और दिन मे परोसा जाता है। अहो! रात्रि मे बना दिन मे खाया वह भी हिंसक है और दिन का बना रात्रि मे खाया, वह भी हिसक है। इसीलिए जिसकी हिसा मे वृत्ति है उसे छोड देना चाहिए।
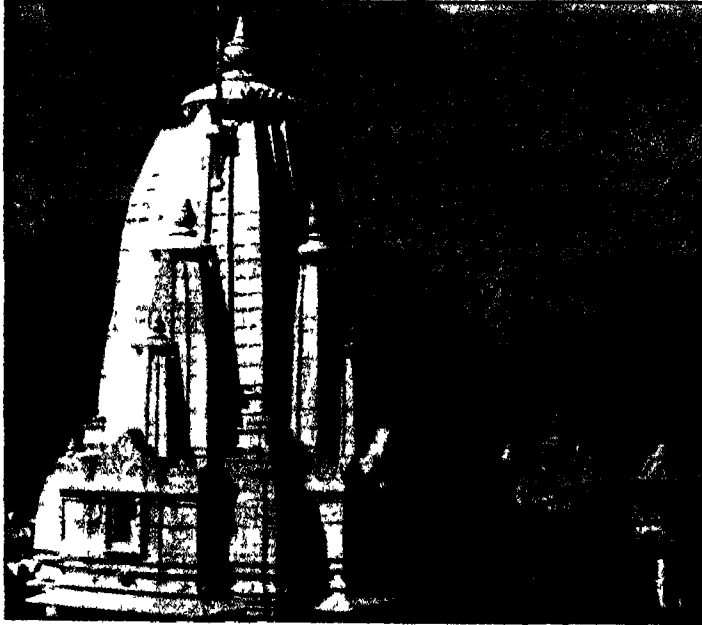
घानेराव - महावीर मदिर

'छोडो निशा भोज"

यद्येव तर्हि दिवा कर्त्तव्यो भोजनस्य परिहारः।
भोक्तव्यं तु निशाया नेत्थ नित्य भवति हिसा।। १३१।।
(शंकाकार की शका)

अन्वयार्थ दि एव = यदि ऐसा है (अर्थात् सदाकाल भोजन करने मे हिसा है)।तर्हि दिवा भोजनस्य = तो भी दिन के भोजन का। परिहार कर्त्तव्य = त्याग, करना चाहिये। तु निशाया = और रात्रि में भोक्तव्य = भोजन करना चाहिये। इत्थ हिसा = इस प्रकार से हिसा। नित्य न भवति = सदाकाल नहीं होगी।

नैव वासर भुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तेर्भुक्ताविव मासकवलस्य।। १३२।।
आचार्य इसका उत्तर दे रहे हैं।

अन्वयार्थ एव न = ऐसा नहीं है। क्योकि अन्नकवलस्य = अन्न के ग्रास के (कौर के)। भुक्ते = भोजन से। मासकवलस्य = ग्रास के। भुक्तौ इव = भोजन मे जैसे राग अधिक होता है, वैसे ही। वासरभुक्ते = दिन के भोजन से। रजनिभुक्तौ = रात्रि भोजन मे हि। रागोधिक भवति = निश्चय कर अधिक राग होता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ७३||

तीर्थेश महावीर स्वामी की पावन-पीयूष देशना आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी के माध्यम से सुन रहे हैं। अपने अन्तस्थ मे पहुँचकर आगम के गहनतम् सूत्रो को आचार्य महाराज ने हम सभी के लिए प्रदान किया है कि, ज्ञान का श्रद्धान और ज्ञान का आचरण दोनो महत्वशाली हैं। क्योकि श्रद्धा के अभाव मे ग्यारह अगो का भी यदि ज्ञान हो जाता है, लेकिन वह ज्ञान अत मे ससार की ही यात्रा कराता है। श्रद्धा के अभाव मे चारित्र भी ग्रैवेयक की वदना करा देता है, जबकि श्रद्धा के सद्भाव मे किया ज्ञान और आचरण सुव्रत को प्रदान कराता है। श्रद्धा यदि है, तो दया स्वत ही ग्राह्य होती है। श्रद्धा नहीं होती तो दया नहीं होती, वहाँ स्वार्थ हो सकता है। दया मे स्वार्थ नहीं होता दया निस्वार्थ होती है। करुणा में भी स्वार्थ नहीं होता। लेकिन ध्यान रखना, वही दया करुणा

मोक्षमार्ग मे कार्यकारी होती है जो अनुकम्पा से युक्त होती है। करुणा और अनुकम्पा मे अन्तस्थ की दृष्टि होती है और दया बाहर मे क्रियारूप होती है। दया दिखने मे आती है और करुणा अन्दर से उत्पन्न होती है तथा करुणा से युक्त दशा मोक्षमार्ग में कार्यकारी होती है। सक्रीय करुणा का नाम दया है। अहो! समझना, जिसको स्वय पर दया नहीं है, वह दूसरे पर कभी भी दया नहीं कर सकता। दिखावा कर सकता है ऐसे निर्दयी को बध नियम से है, जीव का बध हो, न हो।

भो ज्ञानी! इसी प्रकार, जीव की रक्षा हो या न हो, पर दयाशील से निर्जरा सुनिश्चित होती है। अमृतचन्द्र स्वामी की कितनी दया है कि वह कह रहे हैं कि अभी तुमको शरीर से जीव वध का त्याग कराया था अब तुम परिणति मे जीव का वध मत करो और इतना ही नहीं उन सूक्ष्मजीवो का भी वध मत करो, कर्म से भी मत बँधो। दृष्टि देखना, और दया उभयपक्षीय है। जीव का वध नही किया, उस पर तुमने दया की, अत कर्म ने आपको नही बाधा। इस प्रकार तेरे कर्मों ने स्वय पर दया की। मुमुक्षु जीव प्रतिफल–प्रतिक्षण स्वय पर दयादृष्टि रखता है। इसीलिए सम्यक्त्व प्रकट तभी होता है जब अनुकम्पा गुण पहले सामने होता है। जो जीवदया से शून्य है, उसके पास प्रशम, सम्वेग अनुकम्पा, आस्तिक्य कहा ? आस्तिक्य का अर्थ होता है आत्म–तत्त्व मे श्रद्धा। पच परमेष्ठी पर श्रद्धा है, प्राणी मात्र पर करुणा दृष्टि है, जिनदेव ने जो कहा वह सत्य है, इसका नाम आस्तिक्य है। भगवान जिनेन्द्र देव ने कहा है कि किसी जीव का भक्षण मत करना, रात्रि मे भोजन नहीं कराना भोजन नहीं करना और रात्रि मे भोजन की अनुमोदना नहीं करना। अब बताइये आप रिक्त हो, तो धर्मात्मा हो और युक्त हो, तो स्वय समझ लो। मैं एक गाव मे गया जिनालय मे पूरी वेदियो मे आलू प्याज की गध छाई हुई थी। मैंने श्रावको से पूछा– क्यो भाई! यह क्या हो रहा है ? बोले– महाराज श्री! आज यहॉ पर शादी है, तो धर्मशाला किराये पर है, पाच सौ रुपए आयेगे जो धर्मशाला–मदिर आदि की व्यवस्थाओ के काम आता हैं। मैंने पूछ ही लिया– क्यो कितनी समाज है ? कितने लोग कटोरा लेकर भीख मागते हैं, जो कि जिनेन्द्रदेव के चरणो मे आलू–प्याज बन रहा है और किसके लिए ? मदिर और धर्मशाला की व्यवस्था के लिए ? अहो! द्रव्य का इतना लोभ! आचार्य नेमीचद्र स्वामी कह रहे हैं–

एगणिगोद शरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणतगुणा, सव्वेण वितीद कालेण ।। गो.जी का । १९६ ।।

जितने अतीतकाल मे सिद्ध हो चुके हैं, उससे अनन्त गुणे जीव आलू के एक अश में होते हैं। वे सभी जीव सिद्धत्व–सत्ता से युक्त होते हैं। अहो भावी भगवंत आत्माओ! जब तुम प्राणी–मात्र मे भगवत्ता को निहारते हो, तो फिर सोचना कि किसमें हम छौंक–बघार लगवा रहे हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं– क्या अपने बेटे को आप मॉंस खाते देख सकते हो अथवा रात्रि मे

भोजन करते देख सकते हो ? भोजन से तात्पर्य खाद्य, स्वाद, लेह, पेय से है।

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुर्क्कोड़ा जम्हा।
मण्णब्भवा य सव्वे मणुसा भणिदा ।। १४९।। गो जी का

अहो मानवो! आचार्य नेमीचद्र स्वामी ने "गोमट्टसार" मे आपको मनुष्य कहा है। जो मननशील, चितनशील, विवेकशील प्राणी होता है, जो उत्कृष्ट परिणामो से युक्त होता है, जो मनु की सतान है, उसका नाम मनुष्य है। मनीषियों! खाद्य, स्वाद, लेह, पेय चारो प्रकार के भोजन के त्याग का नाम त्याग है। ऐसा नहीं है कि रात्रि मे दूध आदि चल जायेगे। भट्टियाँ जल रही हैं, रबडी बन रही है, क्योकि रात्रि-भोजन का त्याग है, अत हमारे लिए तैयार हो रही हैं। वीतराग-विज्ञान कहता है कि खाना छोडो और आज के डाक्टर कहने लगे कि दिनभर खाओ, थोडा-थोडा खाओ, चार बार खाओ। वे ठीक कह रहे हैं, तुम बार-बार खाओगे, दिनभर खाओगे, तभी तो हमारी दुकाने चलेगी। इससे लगता है कि आज के भगवान तो डाक्टर ही बन गये। भो मनीषीयों ! अरहत की वाणी नही मानता, डाक्टर की वाणी मान लेता है। अभी कुछ दिन पहले की घटना है, इक्कीस वर्ष के नवयुवक को कैंसर था। माता-पिता की गोद मे बैठा बेटा कहता है-पिताजी! अब तो सुनिश्चित है कि मुझे जाना है, पर आप बिलखना मत, आप तो "णमोकार" सुना दो। बता रहे थे उनके पिताजी-ऐसी निर्मलता उसके परिणामो मे थी। देखो, जिस जीव की भवितव्यता निर्मल होती है, उसी को ऐसे भाव आते हैं और जिसकी बिगड जाती है वह पचपरमेष्ठी के चरणो मे पहुच कर भी परिवार को देखता है। अब अपनी-अपनी भवितव्यता निहारना लेकिन चौका को चौका ही रहने देना। जिसमे द्रव्य शुद्धि हो, क्षेत्र शुद्धि हो, काल शुद्धि हो, भाव शुद्धि हो, वहाँ जो भोजन हो उसका नाम चौका है। जहाँ चार शुद्धियाँ हैं, वहाँ चौका है।

अहो ज्ञानी! जब तुम चौके मे बैठकर भोजन करते थे तभी तो अनन्तचतुष्टय की साधना होती थी। अब तो तुम्हारे भाव ही नहीं आते। उन घरो को श्रावक का घर नहीं कहना, जिस घर मे रात्रि-भोजन होता हो। बोले-महाराज जी! अब क्या करूँ बच्चे मानते ही नही हैं, वह तो रात्रि मे ही भोजन करते हैं। ओहो! तुम कैसे माता पिता ? वह कैसी सन्तान जिस पर तुम्हारा अधिकार न हो। यह नीति है कि सतान और शिष्यो को अति नजदीक नहीं रखना चाहिए। नारी को देहरी के बाहर नहीं जाने देना चाहिए, इन तीन की मर्यादा आपने भग की, समझलो तुम्हारा घर सत्यानाश हुआ। जैनदर्शन मे अहिसा-धर्म प्रधान है। कान्वेट भेजकर इग्लिश बोलना सिखा दिया, लेकिन "णमोकार मत्र" नहीं सिखा पाये, श्रमण-सस्कृति को आपने क्या दिया ? आज पाठशाला और ध र्म की पढाई की चर्चा करो तो महाराज श्री बच्चो को फुरसत नही है। चिता नहीं करो, अत मे आपको गालियाँ सुनने मिलेगी। इसीलिए ध्यान, रखना यह भी करुणा है कि स्वय की सतान को

सतान मत मानो, उन्हे भी जीव मान लो, क्योकि पुत्र मानकर कहोगे तो राग झलकता है। उसे भी तुम एक सत्य मानो उसे भी तुम जीव मानो। यह श्रमण–सस्कृति निवृत्ति, प्रवृत्ति उभय मार्गी है।

अहो! उस घर की क्या दशा होगी, जहाँ दादाजी टेलीविजन के सामने रात्रि मे पिक्चर देख रहे हो, वही बच्चो के साथ थाली मे भोजन कर रहे हो? अब वे दादाजी कहे–बेटा! अब पर्यूषण पर्व आने वाले हैं, रात्रि–भोजन नही करना। तुम्हारी कोई नहीं सुन रहा, क्योकि आप स्वय बताओ सिर पर सफेदी आ चुकी। अब तनिक तो सोचो, बहुत देख लिया, बहुत कुछ कर लिया। यदि अभी भी न समझो तो मैं समझता हूँ कि अब भगवान महावीर स्वामी तो समझाने आने वाले नहीं हैं। बालो को सफेद की जगह काले करा सकते हो, बत्तीसी लगवा सकते हो, पर जब आयुकर्म क्षीण हो जाये उसको और बढा लेना, क्योकि आज कल कोई बूढा होना ही नही चाहता। हमारे आगम मे एक प्रकार के वृद्ध की चर्चा नहीं है वरन् उम्र वृद्ध, ज्ञान वृद्ध, तपवृद्ध आदि की चर्चा है। 'ज्ञानार्णव ग्रथ' मे आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने अलग से वृद्ध–सेवा अधिकार लिखा है और साधुओ से कहा है कि वृद्धो की सेवा करना, क्योकि वृद्धो की सेवा करने से शास्त्र–ज्ञान नहीं अनुभव का ज्ञान मिलता है। अहो! वृद्ध सगति से ब्रह्मचर्य पलता है और वृद्धो के साथ रहने से सयम मे निर्दोषता रहती है, क्योकि वृद्ध के शरीर अब वासनाओ से शिथिल हो चुके हैं, इनके शरीर को देखकरके वासनाए नही सतायेगी। युवाओ के शरीर को देखोगे तो वासनाएँ–कामनाये सतायेगी। इसीलिए उन्होने कहा कि वृद्धो के साथ रहो। वृद्धसेवा गुणो की वृद्धि के लिए करना, लालसा–वृद्धि के लिए नही। ध्यान रखना दादाजी की बात मान लेना उनका काम धीरे से कर देना और कहना अब हम आपका काम करते हैं, लेकिन आप अपना काम करो–जाप करो, 'णमोकार मत्र' करो और कोई अन्य काम नहीं तुम्हारा। विश्वास रखना, तुम्हारे छोटे–छोटे नाती तुम्हे देखेगे, तो ऑखे बद करके माला करेगे। मैने ऑखो से देखा है, क्योकि जैसा दृश्य सामने होता है वैसा दृश्यमान सामने होता है।

भो ज्ञानी! जीवन मे ध्यान रखना–यदि सस्कार निर्मल हैं, तो सतान निर्मल होगी और यदि निर्मल होने पर भी ठीक नही है तो भी सक्लेषता नही करना क्योकि कर्म–सिद्धात है, फिर यह कहना कि हमारे पूर्वभव का शत्रु है, क्योकि हमने सब कुछ अच्छा किया। राजा श्रेणिक ने तो तीर्थंकर की देशना सुनी, पर बेटा ऐसा निकला कि पिताजी को ही बदीगृह मे डाल दिया, उसमे भी सक्लेषता नही करना, लेकिन सुधारने के विचार मत रखना। सुधार उसके उपादान से होगा और आपने समझाने को सुधार मे मान लिया तो सक्लेषता आपकी बढेगी। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने पूर्व सूत्र मे कहा था कि तीव्र राग के वश दिन रात भोजन करता है, इसमें हिसा तो होती है। यह तो जैन आगम है। वैदिक दर्शन के 'मार्कण्डेय पुराण' मे भी लिखा है–दिन का नाथ, सूर्य अस्त होते ही पानी रुधिर (रक्त) के तुल्य हो जाता है और अन्न मॉस का पिण्ड हो जाता है। आज आप त्याग

करो न करो पर एक नियम ले लो, कि जब भी भोजन करने रात्रि मे बैठेगे उस समय इतना सोच लेना कि मैं क्या खा रहा हूँ ? क्या पी रहा हूँ ? और पुरुषार्थ सिद्धि की एक सौ बत्तीस वीं कारिका का ध्यान कर लेना कि मेरे मुख मे क्या जा रहा है ? जिस व्यक्ति ने पद्रह दिन रात्रि–भोजन का त्याग कर दिया उसने सात दिन का उपवास कर लिया। जिसने एक महिने का रात्रि–भोजन त्याग कर दिया उसे पद्रह दिन का उपवास का पुण्य मिलता है। एक साल तक जिसने रात्रि–भोजन त्याग कर दिया तो छह महिने के उपवास का फल मिल रहा है। इतने बडे लाभ को तुम ऐसे ही छोड दोगे ? भैया! अतरग मे राग–दृष्टि रहेगी तब तक छूटने वाला नहीं है। चिन्तवन करना, सोचना और अपनी पर्याय को धिक्कार लेना कि हे भगवान! धिक्कार हो, ऐसी मानव पर्याय प्राप्त करके मैं तिर्यंचो जैसी प्रवृत्ति कर रहा हूँ। इसीलिए ध्यान रखो दिन के भोजन करने मे राग कम होता है, रात्रि के भोजन करने मे राग तीव्र होता है। अत जो भी रात मे अन्न के ग्रास को खाता है, वह मास के टुकडे को खा रहा है। अब स्वय सोचना, स्वय समझना कि हमारी दशा क्या है ? बस, मत बनो निशाचर।
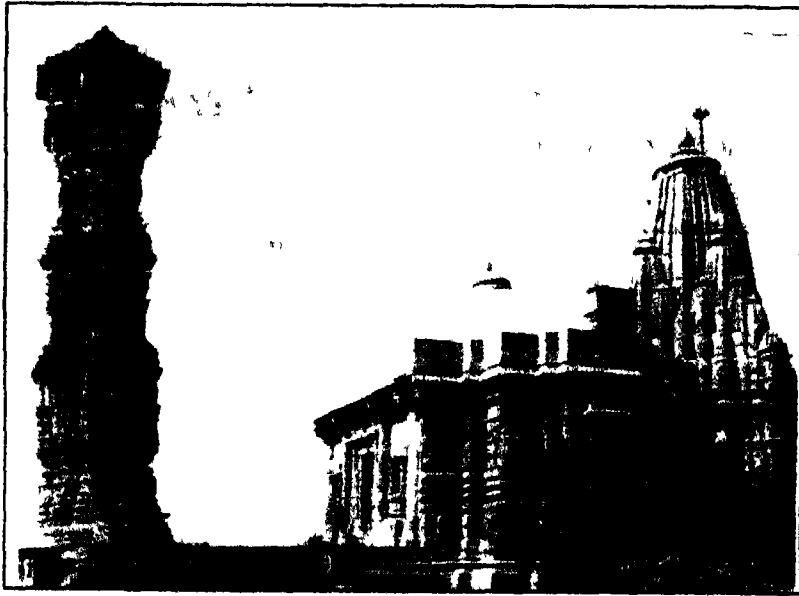
चितौडगढ, जैन मदिर और कीर्तिस्तम

"साधना से साध्य की सिद्धि"

अर्कालोकेन विना भुंजान परिहरेत् कथं हिसाम्।
अपि बोधित प्रदीपे भोज्यजुषा सूक्ष्मजीवानाम् ।। १३३।।

अन्वयार्थ अर्कालोकेन बिना = सूर्य के प्रकाश के बिना अर्थात् रात्रि मे। भुजान = भोजन करने वाला पुरुष। बोधित प्रदीपे अपि = जलाये हुए दीपक मे भी। भोज्यजुषा = भोजन में मिले हुए। सूक्ष्मजीवानाम् = सूक्ष्म जतुओ की हिसा। कथ परिहरेत् =हिसा को किस प्रकार दूर कर सकेगा?

कि वा बहुप्रलपितैरिति सिद्ध यो मनोवचनकायै ।
परिहरति रात्रि भुक्ति सततमहिसा स पालयति ।। १३४।।

अन्वयार्थ वा बहुप्रलपितै = अथवा बहुत प्रलाप से। कि य = क्या ? जो पुरुष। मनोवचनकायै = मन, वचन और काया से। रात्रिभुक्ति परिहरति = रात्रि–भोजन को त्याग देता है। स सतत अहिसा = वह निरतर अहिसा को। पालयति इति सिद्ध = पालन करता है, ऐसा सिद्ध हुआ।

इत्यत्र त्रितयात्मनि मार्गे मोक्षस्य ये स्वहितकामा ।
अनुपरत प्रयतन्ते प्रयान्ति ते मुक्तिमचिरेण।। १३५।।

अन्वयार्थ इति अत्र = इस प्रकार इस लोक मे। ये स्वहितकामा =जो अपने हित के। वाद्दक माक्षस्य = मोक्ष के। त्रितयात्मनि मार्गे =रत्नत्रयात्मक मार्ग मे। अनुपरत =सर्वदा अटके बिना। प्रयतन्ते ते = प्रयत्न करते हैं वे पुरुष। मुक्तिम् अचिरेण प्रयान्ति =मुक्ति को शीघ्र ही गमन करते है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ७४।।

भो मनीषियो। भगवान महावीर स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने आलौकिक सूत्र दिया कि जीवन मे जब अध्यात्म का सूत्रपात होता है,

तो बहिरात्मपने का विनाश सदैव के लिए हो जाता है। बहिरात्म–दशा का जब तक विनाश नहीं है, तब तक मनीषियो! अतर–दशा जाग्रत नहीं होती। जब शुद्धि के परिणाम जीव के अतरग मे उत्पन्न होते हैं, तब सयम अपने आप झलकने लगता है। जो जीव जीवन मे कभी एक दिन को अभक्ष्य नहीं छोड पाये, वे आज मुनि बनकर विचरण कर रहे हैं। आचार्य शातिसागर महाराज के सघ मे एक पायसागर मुनिराज हुए, जो सप्त–व्यसनी जीव थे, जिसके नाम पर लोग भयभीत होते थे, लेकिन भवितव्यता को किसी ने नही जाना कि परिणति किसी जीव की कितनी निर्मल हो सकती है। जब वे निर्ग्रंथ–दशा को प्राप्त हुए, तब उनने इतनी घोर तपस्या की, कि उनकी तपस्या के आगे सभी ने सिर टेक दिया। कहते थे कि पापो को मैंने किया है और कितनी तीव्रता मे किया है वह मैं ही जानता हूँ। जितना गरम बर्तन होगा, उसको ठण्डा करने के लिए उतनी ही शीतलता चाहिए। जितनी कषाय के वेग से आपने कर्मों का बध किया है, जितने उबाल आपके अतरग मे आये हैं, उस आत्म–पात्र को शीतल करने के लिए उतनी ही आपको साधना की आवश्यकता है। यदि साधना नही हो पाती, तो अतरग की निर्मलता कहाँ से होगी ?

भो ज्ञानी! जरा सँभल कर सुनना–भोगी की उम्र है, योगी के लिए कोई उम्र नहीं होती है। भोगो की सीमा है, योग असीम होता है। भोग एक आयु तक चलते हैं, अत मे आपको वैरागी बना देते हैं। पर वैराग्य कभी किसी को वैरागी नही बनाता है, वैराग्य अपने आप मे अपने आप को शासक बना देता है। भोग मृत्यु के पहले छूट जाते है, लेकिन योग अतिम सासो तक चलते हैं। योग परम–योग बनता है वही परम–नियोग को प्राप्त करता है। कषायो की सीमा है आक्रोश की सीमा है, एक क्षण की साधना असीम होती है। मूलाचार मे उल्लेख आया कि विनय–पूर्वक जिसने श्रुत का अभ्यास किया, कदाचित् प्रमादवश वह जीव जाने हुये ज्ञान को भूल जाये, लेकिन वही ज्ञान भविष्य मे केवलज्ञान का कारण बनता है। यदि कोई जीव जीवन मे साधना से सस्कारित हो जाता है, ध्यान रखना, जरा सा सयोग मिलने पर सत के रूप मे प्रकट हो जाता है। जिनवाणी कहती है कि जाति–स्मरण नरको मे भी हो जाता है। नारकी वहाँ देखते हैं कि मैने पूर्व–पर्याय मे सद्–गुरुओ की वाणी को सुना था, जिनेन्द्र की देशना को सुना था। मुझे विश्वास है आप नरक मे भी चले जाओगे, निगोद मे भी चले जाओगे, लेकिन आज के सस्कार किसी न किसी रूप मे नियम से उद्भूत होगे, फिर वहाँ आयेगा जाति स्मरण कि अहो! मैंने कही सुना था, लेकिन मैं नरक मे आ कैसे गया ? अहम् के, काम के, वासना के मद मे मैने उन सस्कारो को निवास नहीं दिया, इसलिए नरक मे वास करना पडा।

भो ज्ञानी! हमारे आचार्यो ने गभीर सूत्र लिखा है– दान देना, तो स्वय के द्रव्य से देना। क्योकि स्वय के द्रव्य को देने पर भाव उमडते हैं, भक्ति उमडती है और लगता है कि इस द्रव्य का कितना निर्मल उपयोग होना चाहिए। पिता के द्रव्य को जब हम देते हैं, तो पता नहीं होता है कि कमाया कैसे जाता है। ऐसे ही वर्तमान पर्याय मे किया गया पुण्य यदि वर्तमान पर्याय मे उदय

मे आ जाये, तो उसकी आप सम्हाल करते हो और भूत के पुण्य में तुम इठलाकर के भविष्य मे पाप का बध करते हो। भक्ष्य–अभक्ष्य सेवन किया, रात्रि में सेवन किया, यदि कोई जीव अदर चला गया डाक्टर ने कहा–एक लाख जमा करो, फिर महसूस होता है कि मेरी इतनी कीमत थी। अरे नर। तेरी इतनी कीमत है अभी तुझे मालूम नहीं। जिस समय भगवान आदिनाथ स्वामी जैनेश्वरी दीक्षा लेने जा रहे थे उस दिन मनुष्यो ने कहा कि जिनदेव की पालकी हम उठाएँगे, देवो ने कहा कि जिनदेव की पालकी हम उठाएँगे। निर्णय कौन करे ? तब आदीश्वर स्वामी कहने लगे मेरी पालकी उठाने का अधिकार उसे है जो मेरे साथ सयम स्वीकार करे। उस दिन देवो को भी पता चल गया था कि मनुष्य–पर्याय कितनी महान है। सौधर्म इन्द्र कहता है कि हे मानवो। मेरे सम्पूर्ण सुख की अनुभूति आप स्वीकार कर लो और एक क्षण के लिए मनुष्य–पर्याय मुझे दे दो, क्योकि मेरे पास सब कुछ है, पर सयम नाम की वस्तु मेरे पास नहीं है। मनीषियो। आत्मसुख निज मे ही सयम से प्रकट किया जाता है वही साधना है।

भो ज्ञानी। आचार्य अमितगति स्वामी ने कहा है कि अहो। श्रावको की साधना देखकर कितना आश्चर्य होता कि जितनी तपस्या योगी नहीं कर पाते उतनी लोग कर लेते हैं। परतु कहा भी नही जाता। अहो गज। तूने सरोवर मे डूब–डूबकर स्नान किया और बाहर निकल कर धूल डाल ली। दस दिन तक साधना की और ग्यारहवे दिन वही राग–द्वेष की धूल ऊपर डाल ली। अरे। स्नान करके ऐसा करो कि फिर धूल पडे ही नहीं। अत प्रत्येक समय की, प्रत्येक परिणाम की प्रत्येक पर्याय की, प्रत्येक भाव की आप गणना करना प्रारभ कर दो। विश्वास रखना विपरीत परिणति होना बद हो जायेगी। कितने शुभ परिणामो का आना हुआ है, कितने अशुभ परिणामो का जाना हुआ। जिस क्षण मे विषयो के प्रति लालसा और उन विषयो का भोग तुम कर चुके हो, उतना पुण्य का द्रव्य नष्ट हो चुका है। जितना द्रव्य तुम्हारे पलडे मे था पुण्य का वह सारा द्रव्य आपने लगा दिया इन्ही उपभोग मे और मालूम चला कि आगे के लिए पुण्य का सचय किया नही उसका परिणाम, अधोगति निश्चित है।

भो ज्ञानी। आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी करुणा–दृष्टि से समझा रहे हैं कि अब तो सँभल जाओ, अन्यथा तीर्थंकर नहीं सभाल पायेगे, जिनवाणी नही सभाल पाएगी। सॅभलना तो स्वय पडता है, किसने किनको सम्हाला ? मनीषियो। भव के भव बीत गये लेकिन सम्हल नहीं पाये, सभलने के भाव आते हैं तो फॅसानेवाले हजारो मिलते हैं। ध्यान रखना, सुई मे जब धागे को पिरोया जाता है तब कितना एकाग्र होना पडता है। आचार्य कुदकुददेव **"अष्ट पाहुड ग्रथ"** मे कह रहे हैं कि–आत्म–सुई मे सूत्रो को डालने के लिए कितना एकाग्र होना पडेगा ? जब तक एकाग्र नहीं होगे, तब तक यह सूत्र तेरी आत्म–सुई मे जाने वाले नहीं है। अनादिकाल से आत्मा के मिथ्यात्व की असयम भावरूप भिन्न प्रवृत्तियाँ–रूपी–छिद्र बन रहे हैं। फट रही है तेरी आत्मा। उनको तभी सिल पाओगे जब मन, वचन, काय, योग स्थिर होगे। पडित दौलतराम जी लिख रहे हैं–जब तक मन

स्थिर नहीं होगा, तब तक तत्त्व अदर प्रवेश नहीं करेगा। जिसके तीनो योग सम्हल जाते हैं, उसका नाम ही योगी होता है। उसी का नाम योग है, वही ध्यान है, वही साधना है और तीनो योग नही सम्हले तो ध्यान नहीं हो सकता है। **अरे! आँखो के बद करने से, मुख से "अहा" बोलने से भगवती आत्मा झलक गई होती तो ससार में पता नही कितने जीव ध्यान मे लीन हो गये होते।**

भो ज्ञानी! यह आँख के खोलने, आँख के बद करने अथवा मुख से बोलने का विषय नही है। मनीषियो! आत्मानुभूति अवक्तव्य है। जो अहा की आवाज आती है, यह जिनवाणी के प्रति बहुमान की आवाज हो सकती है, पर आत्मानद की आवाज नहीं हो सकती। जिनवाणी के प्रति बहुमान आता है तो आवाज सहसा निकलती है, यह तो ठीक है। लेकिन आत्मानद मे बैठा योगी आवाज करता नही आवाज सुनता है। जो आवाज शब्द, स्पर्श, गध, वर्ण से रहित होती है, वही आत्मानुभव है। ध्यान रखना, जब जीव निज के ध्यान मे हो तब उसे आप ज्ञान का भी ज्ञान मत कराओ क्योकि ज्ञान का उपदेश ज्ञान नही होता। ज्ञान का उपदेश ध्यान होता है और ज्ञान के विकल्प मे डालकर उसको ध्यान से वचित कर दिया, उसका ससार बढा दिया।

भो ज्ञानी! एक दिन आचार्य धर्मसागर के सघ का परिचय पढ रहा था। किसी विद्वान ने लिखा था कि मैं आचार्य धर्मसागर महाराज के दर्शन करने गया। वे कुछ कर ही नहीं रहे थे, न उनके पास पुस्तक थी, न माला थी। पिच्छी रखी थी कमण्डल रखा था, वह शात बैठे थे तो पडित जी का एकबार मन करता है कि देखो कैसे निठल्ले-से बैठे हैं, इनके पास कोई काम ही नही है। साधु को तो ज्ञान-ध्यान मे लीन रहना चाहिए। ना तो कोई पुस्तक रखे हैं, ना कोई कापी रखे हैं क्यो ना उनके पास जाकर ही पूँछ लूँ कि आप खाली क्यो बैठे हो? मुनिराज के पास पहुँचे और लोकाचार की दृष्टि से विद्वान ने उनको नमस्कार/नमोस्तु किया। उन्होने स्मित-भाव से ऊपर देखा और शात बैठे रहे। विद्वान का हृदय परिवर्तित हुआ कि चेहरे से लगता नही है कि यह निठल्ले बैठे हैं क्योकि आवश्यक नहीं कि जब शरीर ही कुछ करे तभी कुछ हो। यदि शरीर के करने से मोक्ष होता है, तो अयोगकेवली गुणस्थान तो कभी बनेगा ही नही। इससे पडितजी स्वय मुनिराज को पढ रहे थे और स्वय लिख रहे थे। साधु ने कुछ कहा नहीं, पर साधु के शरीर के रूप ने, निर्ग्रंथ दशा ने, उनकी पूरी भ्रम की ग्रथी को खोल दिया। फिर पूछते हैं-महाराजश्री! आप क्या कर रहे हैं? मुनिराज सहज बोले थे-कुछ नही। बोले-आपके पास तो शास्त्र भी नही हैं, महाराज! हमने सुना है कि साधु ज्ञान-ध्यान मे लीन होते हैं, फिर भी आप ग्रन्थ नही रखते। बोले-पडित जी ! मैंने ग्रन्थो के अभ्यास के बाद ऐसा महसूस किया कि जब तक निर्ग्रन्थ मे भी ग्रन्थ रहे, तब तक निर्ग्रन्थ का आनद नहीं आता। ओहो! मैंने बाहरी ग्रथी को तो बहुत दिन पहले छोड दिया। यहा बैठा मै अनुभव कर रहा हूँ कि ग्रन्थो का पठन कब छूटे और ग्रथो का ग्रथ छूट गया तो मैं सच्चा निर्ग्रंथ बन गया। विद्वान तुरत लिखता है कि सम्पूर्ण दृष्टियो की अनुभूति तो बहुत लेकर

आये थे, कोई समयसार का ज्ञाता था, जीवकाण्ड, धवला तक के ज्ञाता थे वहाँ, लेकिन सबसे बड़ा आनद का सवेदन उस विद्वान ने किया, उस सत के चरणो मे किया कि कुछ नही कर रहे हैं और कुछ नहीं हैं।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, भोगी का पुरुषार्थ यही चलना चाहिए कि भगवन्! वह दिन कब आ जाए जब मुझे कुछ भी नहीं करना पडे। उसी को कहते है कृत–कृत्य–अवस्था। जो कुछ करना था सब कुछ कर चुके, उस अवस्था का अभ्यास जो किया जाता है उसका नाम होता है ध्यान। लेकिन ध्यान लगेगा तभी, जब अहकार/अभिमान, अभक्ष्य छूट जायेगे। आज उपदेश दे रहा हूँ–अरे! पडोसी से ईर्ष्या होती है वैसी ईर्ष्या मुनियो से करनी चाहिए कि देखो हम इतने अच्छे कपडे पहने हैं फिर भी हम नीचे फर्श पर बैठे हैं और ये नग्न ऊपर बैठे हैं, चलो हम भी ऊपर बैठते हैं। लेकिन ध्यान रखना उतारकर ही बैठना। इससे ज्यादा ईर्ष्या भगवान से करो। पाषाण की प्रतिमाएँ ऐसे क्यो पुज रहीं? उनसे पूछ लेना कि तुमने ऐसा कौन–सा काम किया था जो आज तुम नही हो फिर भी तुम भगवान के रूप मे पुज रहे हो तो वे कह देगे कि हमने विषय, कषाय और अज्ञानता का नाश किया तो भगवान बन गये। तुम भी अज्ञान का नाश कर दो तो तुम भी भगवान बन जाओगे, तुम भी पुजना प्रारभ हो जाओगे। परतु सबसे पहले रात्रि–भोजन छोड दो। ओहो! महाराज, आपको जितनी सुनाना है उतनी सुनाते जाओ, हम सुनते जा रहे है परन्तु त्याग का नाम मत लेना। मालूम चल गया कि तुम कितने पानी मे हो। कितने ही कुतर्क रख लेना, सब निष्फल हैं। अत सूर्यप्रकाश के अभाव मे रात्रिभोजन छोड देना चाहिए। वहाँ हिसा कैसे नही होगी? कोई यो कहे कि हम तो दीपक जला लेगे, लोक मे रात्रि–भोजन करना है और डर लगा है उसको, कि भोजन रात्रि मे ना करना पडे, इसीलिए अपना दीपक ढक दिया चलनी से, और कहता है कि बस अब तो मैंने सूर्य के प्रकाश मे भोजन किया है। यह मायाचारी है, कोई आगम –प्रमाण नहीं। दीपक के प्रकाश मे, बिजली की रोशनी मे कितने सारे जीव आते हैं, रात्रिभोजन के साथ उन जीवो का भी विघात होता है। रात्रि मे विभिन्न प्रकार के (वर्ण के) जीव होते हैं, वे भोजन सामग्री मे मिल जाते हैं और सारे के सारे तुम्हारे उदर मे पहुँच जाते हैं। मुख मे मकडी चली जाये तो कुष्ठ रोग हो जाता है, जुवा भोजन मे आ जाए तो जलोदर रोग हो जाता है, मक्खी चली जाये तो वमन हो जाता है। इसीलिए दीपक आदि के प्रकाश मे भोजन नहीं करना चाहिए मात्र सूर्य के प्रकाश मे ही भोजन करना चाहिए, जो मन, वचन, काय से रात्रिभोजन का त्याग करता है वह रस, फल, दुग्ध, पानी ये जितने पदार्थ हो, औषधिया हो या फल–फूल हो, मेवा मिष्ठान हो, लौंग–इलायची हो, नहीं ले सकता। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी का हेतु है कि नव कोटि से चारो प्रकार के आहार का त्याग। जो किसी प्रकार की छूट नहीं रखता वही हमेशा अहिसा का पालन करता है। जो एक भी प्रकार की छूट रखता है उसका अहिसा का पालन नहीं होता है।

"अणुव्रत के रक्षक–सप्त शील"

परिधय इव नगराणि व्रतानि किल पालयन्ति शीलानि।
व्रतपालनाय तस्माच्छीलान्यपि पालनीयानि।। १३६।।

अन्वयार्थः– किल = निश्चय करके। परिधय इव = जिस तरह परिधियाँ। नगराणि = नगरो की रक्षा करती हैं, उसी तरह। शीलानि = तीन गुण व्रत और चार शिक्षा व्रत। सप्त शील व्रतानि = पाचो अणुव्रतो का। पालयन्ति = पालन करते अर्थात् रक्षा करते हैं। तस्मात् = अतएव। व्रतपालनाय = व्रतो का पालन करने के लिए। शीलानि = (सात) शीलव्रतो को पालन। अपि=भी। पालनीयानि = पालन करना चाहिए।

*

प्रविधाय सुप्रसिद्धैर्मर्यादा सर्वतोऽप्यभिज्ञानै।
प्राच्यादिभ्यो दिग्भ्य कर्त्तव्या विरतिरविचलिता।। १३७।।

अन्वयार्थ– सुप्रसिद्धै = अच्छे प्रसिद्ध अभिज्ञानै = (ग्राम, नदी, पर्वतादि) नाना चिन्हो से सर्वत = सब ओर मर्यादा = मर्यादा को प्रविधाय = करके प्राच्यादिभ्य = पूर्वादिक दिग्भ्य =दिशाओ से अविचलिता विरति = गमन न करने की प्रतिज्ञा कर्तव्या = करनी चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || ७५||

मनीषियों! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन देशना से आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र हमे दिये हैं कि खेत की रक्षा बाडी से होती है, आत्मा की रक्षा शील स्वभाव से होती है। अत सयम–चारित्र बाडी के तुल्य है। उपसर्ग, परीषह साधक के जीवन मे बहुत बडी बाडी है। परतु जब कठिनाईयाँ आती हैं, तो उन कठिनाईयो के काल मे कषायो को पहले पीना सीख लेना, अन्यथा क्षमा का आना बहुत दुर्लभ है।

अहो ज्ञानी! कषायो को छिपाने का प्रयास तो अनत बार किया है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि यदि तेरे अतरग मे जब तक निर्मल भावना नहीं है, कषाय का अभाव नहीं है, तब तक क्षमा नहीं है। अत कषाय को पीना सीख लेना। जो पीना सीख लेता है, वह बहुत बडा ज्ञानी हो जाता है। यदि कषायो की कलुषता नही जाती, तो तुम्हारा अहित सुनिश्चित है। आचार्य बट्टकेर स्वामी ने 'मूलाचार' मे लिखा है कि ऐसे काल मे यदि उद्वेग आता है तो, भो चेतन! उस

उद्वेग को तुम परिवर्तित कर दो, क्योकि तेरा तो अहित हो चुका है, लेकिन अब जो निर्मल नमोस्तु शासन है, उस पर आँच न आये।

जब हम शुरू–शुरू मे सघ मे आये, तो आचार्यश्री कहने लगे–ध्यान रखना, तुम धर्म की प्रभावना कर सको या नहीं कर सको, लेकिन एक जीव के प्रति भी तुम्हारे शरीर के द्वारा अनास्था भाव न आने पाए। यहाँ तक कहा कि इस वीतराग शासन के कारण तुमको कष्ट आ सकते हैं, उनको झेल लेना, लेकिन नमोस्तु शासन पर उपसर्ग नहीं आना चाहिए। देखना, माँ जिनवाणी का दुलार और गुरु का प्यार शिष्यो को भगवान बना देता है। एक दिन आचार्य महाराज बोल पडे–पुस्तक के कीडे कब तक बने रहोगे? कुछ बाहर का पढना भी सीखो। उस समय समझ मे नहीं आया कि पहले तो आचार्य महाराज कहते थे कि पढा करो, जब पढने लगे तो कहते हैं–बाहर का पढो और अदर जो विकृति आ रही है, उसे प्रकृति से दूर करो। इसीलिए अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि अब तुम्हे धर्म की रक्षा करना है तो बाडी लगा दो क्योकि अकुर उत्पन्न हो चुके हैं। जब आपने रात्रिभोजन आदि छोड दिये हैं और बहुत सारी चर्चा
धर्म की कर ली है, अब धर्म तुम्हारी आत्मा की ओर बढ रहा है बाडी लगा लो, कोई असुरक्षा न हो जाए। भो चेतन! इस आत्म–नगर मे कषायरूपी चोर प्रवेश न कर जाएँ। नगर विशाल है, रत्नो की खान है, दर्शन–ज्ञान–चारित्र यह तीनो रत्न रखे हैं। इसमे यदि मिथ्यात्व, प्रमाद असयम, योग कषायरूप चोरो ने प्रवेश कर लिया तो नगर उजड जायेगा, खोखला हो जायेगा।

मनीषियो! हमारी आकाक्षाएँ जब बहुत बढ जाती है और उनकी पूर्ति नही हो पाती है, तो वह क्रोध के रूप मे प्रकट होती हैं। **यदि आप सतोष को जन्म देना चाहते हो तो अपनी आकाक्षाओ को सीमित करते जाओ, आपको गुस्सा नही आयेगा।** यदि सतोष रख लिया तो चारो कषाय दब जायेगी और सतोष नही आया, तो ध्यान रखो चारो कषाय भडकेगी, जो एक साथ तुमको मिथ्यात्व की ओर ले जायेगी। ध्यान रखो, जीवन मे कषाय हुई तो सयम गया और अश्रद्धा हुई तो सम्यक्त्व गया। **'कार्तिकेय–अनुप्रेक्षा'** एव **'परमात्म प्रकाश'** ग्रथो मे आचार्य महाराज ने स्पष्ट लिखा है –

जीवो वि हवे पाव, अइ–तित्त कसाय–परिषदो णिच्च।
जीवो वि हवइ पुण्ण, उवसम–भावेण सजुन्तो ।। 190।।का अ ।।

जिस समय कषाय–परिणति है, उस समय पाप जीव है एव असयम–परिणति है। कषाय की मदता ही सयम है, परतु जिस गुणस्थान मे जैसी हो इसका ध्यान रखना। लेकिन तत्क्षण परिणामो की निर्मलता का विघात तो करा ही देती है। इसलिए भगवन् कह रहे हैं कि लोगो से ज्यादा अपेक्षाएँ मत रखो। निज की अपेक्षा बनाके चलो कि मेरे अदर वह शक्ति प्रार्दुभूत हो, जिस शक्ति के माध्यम से मैं दुनियाँ की कषायो को पीना सीख लूँ। कषाय को प्रकट करना तो वमन के तुल्य है।

मनीषियो! "आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी" कह रहे हैं कि जब जीवन मे विशुद्धता आती है, तब भावो मे भी अभिव्यक्ति होती है। आपने देखा होगा कि पुष्प कही पर भी खिला हो, दिख भी नहीं रहा है, तो भी सुगध के माध्यम से पता चल जाता है कि कनेर खिला हुआ है या गुलाब खिला है। ऐसे ही जीव के भावो की परिणति सुगध के रूप मे अभिव्यक्त हो जाती है।

भो ज्ञानी! कषाय आकाश में उडती है, क्षमा पृथ्वी मे होती है। कषाय वाला उड़ता ही दिखता है। इसलिए जब आप पृथ्वी के समान हो जाओगे, तो यदि कोई आप पर क्रोध करना चाहेगा भी तो वह भी शात होकर चला जायेगा। अत बाडी लगाना है सयम और शील की। इसलिए यह तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत पालन करने की आचार्य भगवन् आपको आज्ञा दे रहे हैं।

भो चेतन! क्षुल्लक चिदानद जी महाराज भाग्योदय तीर्थ सागर मे ठहरे हुये थे। उनका स्वास्थ्य बिगड गया। हम महाराज लोग सब वहाँ गये, चर्चा हुई। उनकी चर्चा से बहुत अच्छा लगा। वह वर्णी जी के सानिध्य मे रहे थे। हमने पूछा—क्षुल्लकजी! ठीक हो? बोले—महाराजश्री। खराब था ही कब? पूछा— अपने मे हो? बोले—अपने मे जब कहूँ, जब मैं बाहर मे रहूँ। मैं तो कहीं बाहर गया ही नहीं। मनीषियो! ऐसे ही अपने से बाहर जाने का मन मत करो। उल्लास का मद जब व्यक्ति को चढता है वह इतना होता है कि तीर्थंकर बना देता है। सभी जीवो का कल्याण हो, सभी जीव सुखी रहे इस ध्येय से इतना गद्‌गद् भाव रहता है कि उसी क्षण तीर्थंकर प्रकृति का बध होता है। उसे कोई शत्रु नजर ही नहीं आता। बस दृष्टि रखो भावो पर तथा ग्राम, नदी, पर्वत आदि सब ओर से मर्यादा करके पूर्व आदि दिशाओ मे तथा विदिशाओ मे गमन न करने की प्रतिज्ञा करना चाहिए। फिर तो ध्यान रखना, कि मैं कहाँ हूँ, किस रूप मे हूँ, क्या बनने जा रहा हूँ? तीन बात का ध्यान रख लिया तो त्रिलोकपति बन जाओगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव का ध्यान रख लिया तो चतुष्टय की प्राप्ति होगी। बस वेग आवेग नहीं, वेग मे वेग लग जाये। वेग यानि शीघ्र, आवेग यानि क्रोध जिनको आता है उनका विवेक चला जाता है। जो वेग विवेक को बुला लेते हैं उनका आवेग वेग चला जाता है।

भो ज्ञानी! हमारा आगम कहता है कि जिस स्थान पर ब्रह्मचारियो को बैठना है वहाँ यदि कोई विषम—लिगी बैठ गया हो, तो एक मुहुर्त तक उस स्थान को छोड दो। जैनदर्शन कितनी बडी बात कह रहा है कि जहाँ कोई स्त्री बैठ चुकी है, वहाँ तुम तुरत नहीं बैठना। जहाँ कोई पुरुष बैठ चुका है, वहाँ आर्यिका आदि को तुरत नहीं बैठना चाहिए। जो वर्गणाएँ वहाँ पडी हुई हैं, वे वर्गणाए निर्मल नहीं है। उनका आवेग अन्तर्मुहूर्त को छोड दो, तो तुम्हारी रक्षा हो जायेगी। अब उसे पर्यावरण कहने लगे हैं, पर जैनदर्शन कहेगा—आभा मण्डल, वर्गणाएँ, तरगे, ऊर्जा। जब तुम्हारे मन मे निर्मल तरगे उत्पन्न हो, उस समय आप सबसे मिल लेना और जिस समय तुम्हारे स्वय के परिणाम कलुषित हो रहे हो, तो कमरे मे बद हो जाना, क्योकि वर्गणाएँ आपकी कलुषित हैं। आजकल कैंसर का रोगी,

टीवी का रोगी अपना मुख व नाक बद करके चलता है। इसलिए कि दूसरे को भी कीटाणु न लग जायें, हम तो पीडित हैं ही, मेरा तो अत होने वाला है ही, दूसरे का भी न हो जाये। ऐसे ही, भो ज्ञानी! जब तुम्हारे अदर कषाय कलुषित भावो के रोग उत्पन्न हो रहे हो, उस समय तुम स्वय कमरे मे बद हो जाना अथवा पट्टी डाल लेना जिससे कम से कम दूसरे के ऊपर तो न फैल जायें। भो चेतन! मोक्ष का पुरुषार्थ साध्य है, असाध्य नहीं। असाध्य कहोगे तो कभी भगवान नहीं बन पाओगे। अहो ज्ञानी! वही वाणी क्षमा है, जिसके जीवन मे जिनवाणी घुल–मिल रही है, लेकिन अतरग मे किसी जीव के प्रति कलुषित भाव मत लाना। सामने वाला क्षमा करे न करे यह उसका विषय है, पर आप यह देखो कि कर्मबध किसका होगा? इसलिए हम उसके ऊपर दृष्टि न डाले। हम यह दृष्टिपात करे कि मेरे परिणामो का आनद समाप्त न हो। साधुजन तो दिन मे मनुष्य भर से नहीं, एक इन्द्रीय, दो इन्द्रीय आदि सभी जीवो से क्षमा मागते रहते हैं। आप तो वर्ष मे एक बार कहते हैं–"खम्मामि सव्व जीवाणा" वह तो दिन मे तीन–तीन बार जब–जब प्रतिक्रमण करेगे जब–जब सामायिक करेगे, तो सबसे पहले समता धारण करेगे। क्योकि क्षमा नहीं होगी तो उनकी सामायिक नहीं हो पायेगी। मनीषियो! साधु का सामायिक चारित्र होता है समता ही सामायिक होती है। सामायिक शिक्षा व्रत है और साधुजन के लिये सामायिक चारित्र है। भो ज्ञानी! 'खम्मामी सव्व जीवाणा" इस सूत्र को अपने जीवन मे उतारना।

उपाध्यायों सेवेष्टित आचार्य, देवगढ़ ११ वी शती

"छोड़ो निशा भोज"

इति नियमित दिग्भागे प्रवर्तते यस्ततो बहिस्तस्य।
सकलासयमविरहाद्भवत्यहिसाव्रत पूर्णम्।। १३८।।

अन्वयार्थ य इति = जो इस प्रकार। नियमितदिग्भागे = मर्यादाकृत दिशाओ के हिस्से मे। प्रवर्तते =बर्ताव करता है। तस्य = उस पुरुष के। तत. बहि· लन = उस क्षेत्र से बाहिर। सकलासयमविरहात् =समस्त ही असयम के त्याग के कारण। पूर्णम् अहिसाव्रत भवति =परिपूर्ण अहिसाव्रत होता है।

तत्रापि च परिमाण ग्रामापणभवनपाटकादीनाम्।
प्रविधाय नियतकाल करणीय विरमण देशात्।। १३९।।

अन्वयार्थ च तत्रापि = और उस दिग्व्रत मे भी। ग्रामापणभवनपाटकादीनाम् = ग्राम,बाजार, मदिर, मुहल्लादिको का। परिमाण प्रविधाय = परिणाम करके। देशात् = मर्यादाकृत क्षेत्र से बाहर। नियतकाल = किसी नियत समय पर्यन्त विरमण करणीय = त्याग करना चाहिए।

इति विरतो बहुदेशात् तदुत्थहिसा विशेष परिहारात्।
तत्काल विमलमति श्रयत्यहिसा विशेषेण।। १४०।।

अन्वयार्थ इति = इस प्रकार। बहुदेशात् विरत = बहुत क्षेत्र का त्यागी। विमलमति = निर्मल बुद्धि वाला श्रावक। तत्काल = उस नियमित काल मे। तदुत्थहिसा विशेष परिहारात् = मर्यादाकृत क्षेत्र से उत्पन्न हुई हिसा विशेष के त्याग से। विशेषेण अहिसा = विशेषता से अहिसा व्रत को श्रयति = अपने आश्रय करता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ७६ ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन-पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी बहुत सहज कथन कर रहे हैं, कि खेत की रक्षा बाडी से और सयम

की रक्षा शील से होती है, पर शील के अभाव मे सयम की सुरक्षा सभव नहीं है। अत तत्त्व को समझना और तत्त्व को समझाना दोनो अलग–अलग चीज हैं। तत्त्वज्ञान मे लीन जीव कभी तत्त्व का व्याख्यान नही करता और जब तत्त्व का व्याख्यान करता है तब वह तत्त्व मे लीन नहीं होता है। व्याख्यायी न तो चिद्रूप है, न कभी अपना व्याख्यान करता है। जो व्याख्यान करता है, वह व्याख्यायी हो भी सकता है और नही भी हो सकता, क्योकि व्याख्यान अनत का होता है और व्याख्याता एक का होता है। अहो! एक व्याख्याता के व्याख्यान मे अनन्त झलकता है और अनत व्याख्यान को समझकरके जो मात्र एक द्रव्य को जानता है वह तत्त्व– ज्ञाता होता है। केवली व्याख्याता है, उनके व्याख्यान मे अनत झलक रहे हैं पर अनत प्रयोजन–भूत नही होते। जिन जीवो की वृत्ति है कि अनतज्ञान जब तक नही होगा, तब तक निर्वाण नही होगा, तब तक तुम केवली भगवान भी नहीं बन सकते। अनत ज्ञाता के ज्ञान मे अनत झलकता है पर जिसे अनत को जानने का विकल्प नही होता उसका नाम केवली भगवान होता है। अनत को सुधारने के जब तक विकल्प हैं, तब तक एक को भी नही सुधार सकते।

अहो ज्ञानियो! जो तेरा शत्रु बनके आया है, वह भी तेरा ही कर्म है। नवीन शत्रु को जन्म नही देना है तो शत्रु की शत्रुता को सहन कर लो, व्यक्तियो पर दृष्टि डालने से कभी कल्याण सभव नहीं है। जिस दिन समत्व भाव आ जाता है वह दिन शत्रु से खाली हो जाता है और जिस दिन समत्व स्वभाव पलायन कर जाता है उस दिन मित्रो से खाली हो जाता है। द्रव्य का न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। शत्रु और मित्र दोनो मेरी आत्मा तक नही जा पाते। आत्मा तक तो स्वय मुझे ही जाना होगा पर बिना खोए कुछ बन नही पाओगे। दूध पानी को खोता है, तब मावा बन जाता है। यही दशा आत्मा की है। जो कषायो को खो देता है वह खोया(मावा)बन जाता उसको भोगो का स्वाद नही आता वरन् योग का स्वाद आता है। वही अर्हत अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

भो ज्ञानी! आप कहेगे कि हम तो सत स्वभावी हैं, किसी से शत्रुता नही रखते सबसे मैत्री भाव है। देखो–मैत्रीभाव तो है, कहीं राग–भाव तो नही है, मैत्री–भाव और राग–भाव मे बहुत अतर होता है। मैत्री–भाव मे राग नहीं होता, प्राणी–मात्रका हित होता है। राग भाव मे व्यक्ति विशेष हो सकता। मैत्री नही कहती कि मेरे दादा, मेरे पिता मेरे रिश्तेदार मैं मनुष्यो मे करूँगा कि तिर्यचो मे करूँगा। जबकि राग–भाव कहता है–मेरे दादा मेरे पिता सत्ता की बात करोगे, तो राग होगा। सत्वेषु मैत्रीम् शब्द कह रहा है कि सबके प्रति जो मित्रता का भाव है, उसका नाम मैत्री है और एक व्यक्ति विशेष के बारे मे जो भाव हैं, उसका नाम राग है। जब 'सत्वेषु मैत्री' तुम्हारे अदर निहित हो जायेगा अब बताओ शत्रु कहाँ है? जिसकी कामना मर जाती है, वासनाये मर जाती हैं, राग–द्वेष मर जाता है वहाँ से सत–भाव का उदय होता है। इतना हो जाएगा तो तुमको सत्व नजर आएगा।

अहो ज्ञानियो! सामायिक करना चाहते हो, तो उसके एक घटे पहले लोगो का सुनना बद कर दो, क्योकि हम बाहर के लोगो को ज्यादा सुनने लगे हैं। उसमे अपनी आवाजे टकराने लगी हैं, इसलिए साधना विफल हो रही है। चौबीसो घटे सबका प्रवेश चल रहा है तो ध्यान लगेगा कैसे?

साधक की परीक्षा साधना है। आप यदि साधको के मित्र बनो तो उनको यही कहना तुम्हारा काल सामायिक का है, तुम्हारा काल प्रतिक्रमण का है, स्वाध्याय का है। जब उसका परीक्षाफल आएगा तो केवलज्ञान के रूप मे चमकेगा और कही आपने बातो में लगा लिया, तो नरक–निगोद के शून्य आ जाएगे। यदि वर्तमान का पुण्य है, तो सम्राट बन सकता है, पर ख्याति का नाम तपस्या नहीं, तपस्या मे ख्याति हो सकती है।

भो ज्ञानी! तत्त्वज्ञान और तत्त्वदृष्टि मे इतना ही अतर है कि तत्त्व–दृष्टि मे मोक्ष झलकता है जबकि तत्त्व–ज्ञान मे ख्याति भी झलक सकती है। ज्ञानी को झुँझलाहट आ जाती है और तत्त्वज्ञ साम्य– सौम्य होता है। तत्त्व–दृष्टि यानि एकात मे जाकर बैठ जाना। तत्त्वज्ञान तो ऐसा रहस्यमय होता है कि जो भावनात्मक दृष्टि बना दे। अत साम्य शात होकर वस्तु की जानकारी लेना तत्त्वज्ञान है और वस्तु को जान लेना तत्त्व–दृष्टि है। सात तत्त्व का ज्ञान तत्त्व–ज्ञान है। तत्त्वो को जानने के बाद मध्यस्थ भाव करना तत्त्व–दृष्टि है। जिसकी तत्त्व–दृष्टि बन जाती है उसकी शत्रु–दृष्टि और मित्र–दृष्टि दोनो समाप्त हो जाती हैं। तत्त्व–दृष्टि वाले को मोडना बहुत कठिन है। जिसको मुक्तिवधू से शादी करना है उसको फिर मोड नहीं सकते। श्री कृष्ण, वासुदेव, बलभद्र, समुद्रविजय जैसे कुटुम्बी नेमीनाथ को मोड नहीं पाए, क्योकि तत्त्व–निर्णय–पूर्वक तत्त्व–दृष्टि बन चुकी थी।

अहो मनीषिया! तालाब मे शैवाल (काई) छाया हुआ है, एक बूँद पानी नहीं दिख रहा है पर विश्वास है कि सैवाल तभी हो सकती है जब उसमे पानी होगा। इसका नाम तो तत्त्व–ज्ञान है। किसान ने उसे दोनो हाथो से हटाया–यह भेद–विज्ञान हो गया और पी लेता है तो यह तत्त्व–दृष्टि मे निबद्ध हो गया तत्त्व दृष्टि ऐसी करनी पडती है। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे है कि तत्त्व–दृष्टि बनाकर अपने शील मे लीन हो जाओ।

मनीषिया! जब तक जिनवाणी सुनी जा रही है, तब तक जैन–शासन रहेगा और जिस दिन जिनवाणी सुनना बद हो जायेगी, उस दिन इस भरतक्षेत्र मे जिन–शासन समाप्त हो जाएगा। इसलिए लाख काम छोड देना, पर जिनवाणी सुनना बद मत करना। धर्म की वास्तविकता को समझो महाराजश्री! के प्रवचन सुनते समय मन मे कोई अच्छी बात गूज रही थी तभी फोन गूँज गया और उठके बाहर चले गये। इतने मे हार्टअटेक हो गया और मर गया, यानि मरते समय जिनवाणी सुनते–सुनते बाहर चला गया, जबकि गुरु के चरणो मे बैठा था। यहॉ निर्विकल्प रहने की कथा सिखा रहे हैं।

भो ज्ञानी! दिगव्रत जीवन–पर्यन्त के लिए होता है और दिगव्रत की सीमा मे जो सीमा की जाती उसका नाम देशव्रत है। आज इतने गाँव तक जाएँगे, उसके आगे नहीं जाएँगे। वृत्ति परिसख्यान की इतनी पक्ति मे कोई पड़गाहन करेगा तो आहार लेगे, अन्यथा आगे नही जाएँगे। तो उनकी यह सीमा हो गयी और हो गया देशव्रत। इस प्रकार जो व्रत होता है, वह देशव्रत कहलाता है। यहाँ गमन का त्याग करना। इसप्रकार से बहुदेश का त्याग जब हो जाता है तो जिस क्षेत्र मे कोई हिसक कृत्य हो रहा है उस क्षेत्र मे खडे भी मत होना।

'न करो अशुभ चिंतन, अशुभोपदेश'

पापर्द्धिजयपराजयसगरपरदारगमनचौर्याद्या ।
न कदाचनापि चिन्त्या पापफल केवल यस्मात्।। १४१।।

अन्वयार्थ – पापर्द्धि–जय–पराजय = शिकार, जय, पराजय,सगर। परदारगमन =युद्ध, परस्त्री–गमन। चौर्याद्या = चोरी आदिका। कदाचनापि = किसी समय मे भी। न चिन्त्या = चिन्तवन नहीं करना चाहिये,यस्मात् = क्योंकि इन अपध्यानो का। केवल पापफल = केवल पाप ही फल है।

विद्यावाणिज्यमषीकृषिसेवाशिल्पजीविना पुसाम्।
पापोपदेशदान कदाचिदपि नैव वक्तव्यम् ।। १४२।।

अन्वयार्थ – विद्या वाणिज्यम् मषी = विद्या, व्यापार, लेखनकलात्र। कृषि सेवा = खेती, नौकरी और। शिल्पजीविना = कारीगरी की जीविका करने वाले। पुसाम् = पुरुषो को। पापोपदेशदान = पाप का उपदेश मिले–ऐसा (वचन)। कदाचित् अपि = (वचन) किसी समय भी। नैव वक्तव्यम् = नही बोलना चाहिए।

।। *पुरुषार्थ देशना* ।। ७७।।

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। अमृतचद्रस्वामी ने सकेत दिया है कि मति विमल है तो श्रुति भी तेरी निर्मल है। मति निर्मल नही है तो श्रुति निर्मल नहीं हो सकती है क्योकि सम्यक्दृष्टि जीव की मति निर्मल होती है और श्रुति भी निर्मल होती है। कितना ही श्रुत–अध्ययन कर लिया हो जब तक दृष्टि निर्मल नहीं है, तब तक मति निर्मल नही और जिसकी मति निर्मल नहीं, उसकी श्रुति भी निर्मल नही। इसलिए आचार्य भगवन् ने कहा है कि अहिसा का आश्रय लो और सपूर्ण क्षेत्र के गमनागमन का त्याग कर दो। बहुत घूमा। जितना देह से नही घूमा उतना तू मन से घूमा है। अब इतना तो कम से कम कर लो। जब जाना हो तो चले जाना, पर दुनियाँ मे घूमने के लिए मत घूमो। क्योकि विमान की रफ्तार मद है, पर मन की रफ्तार तो विमान की रफ्तार से भी तेज है। जिस स्थान पर पहुँचने के लिए आपको लोक अपमानित होना पडता है, ऐसे जघन्य स्थान पर आप एक क्षण मे प्रवेश कर जाते हो। पानी के लिए छिद्र करना पडता है तब निकल पाता है, पर यह मति तो बिना छेद का छेद कर

देती है। मति कहती है कि तुम्हें अभी पता नही कि कहाँ–कहाँ पहुँच चुकी। श्रुति को पकडना सहज है। श्रुति को कैसेट में बद कर लिया जाता है। जो मति को बद कर लेता है, वह वदनीय हो जाता है। जब तक मति बंद नहीं हुई है, तब तक तुम वदनीय होने वाले नहीं हो, बदनाम जरूर हो जाओगे। मति यानि मन, बुद्धि। यह मति नहीं मानती है, इसलिए तुझे गतियाँ प्राप्त होती है। बारहवे गुणस्थान तक मति चलती है। तेरहवे गुणस्थान मे भाव–मन का कोई उपयोग नहीं होता। इसलिए मोक्ष दिलाती है तो मति, ससार में घुमाती है तो मति। मति को अपना बना लेना, मति के बनके नही चलना। मति को अपना बना लिया, तो मनीषिया! मोक्ष चले जाओगे। आप मति के बन गए तो ससार मे भटका देगी। मन नही होगा, बुद्धि नहीं होगी तो सयम की साधना कैसे करोगे ? ज्ञान की आराधना व निर्दोष चारित्र कैसे पालोगे ? यह मति का ही काम है। लेकिन मति को दुर्मति मत होने देना। दुर्मति हुई, वहीं तुम्हारी दुर्गति हुई।

अहो मनीषियो ! आत्मा का घात आत्मा से मत करो। शरीर से शरीर का घात होता है तो पता चलता है। प्राग–भाव, प्रध्वन्सा भाव, अन्यूनाभाव और अत्यताभाव इन चार अभाव की चर्चा आगम दर्शन–शास्त्र मे की गई है। इस जड देह का और मेरा अत्यताभाव है/अन्योन्या भाव मे हम अपना स्वभाव मान रहे हैं। ये ही जडमति है। यदि पश्चाताप है, तो सताप निश्चित नष्ट होगा और यदि नही है तो सताप नष्ट होने वाला नहीं। जिस जीव मे पश्चाताप नहीं आ पा रहा है, उस जीव की दुर्गति का बध हो चुका। भूल हो जाना सहज है। जो भूल को सुधार लेता है, वह भगवत्ता की ओर होता है। भूल को भूल ही स्वीकार नही कर पा रहा है, इससे बडा कोई अन्य अभगवान नही है। जो अपनी भूल को स्वय अपने मुख से कह रहा है, ससार मे उससे बडा कोई भगवान नही है। जो पश्चाताप से इतना भर जाता है तो वह जी नहीं सकता है, निश्चित गुरु–चरणो मे निवेदन करेगा।

अहो! दिग्व्रत देशव्रत की पालक आत्माओ को मात्र देह के गमनागमन का त्याग नहीं करा रहे, वह तो आप कर ही देना। बाहर के गमनागमन के त्याग के साथ बाहर जाते हुए मन को भी रोक लेना–इसका नाम होगा दिग्व्रत। फिर कलम चाहिए अमेरिका की, कपड़े चाहिए चीन के, नेपाल के, फिर तुम्हारा देशव्रत कैसा ? जिनवाणी कह रही है कि जिसने देशव्रत ले लिया है वह दूसरे देश जाएगा ही क्यो ? स्वय की भी शाति, दूसरो को भी शाति। अहो ज्ञानी! सयम की, शील की दीवारे खडी कर दो, कहीं पर भी झगडा नहीं होगा। यदि तुम्हारे परिग्रह का परिमाण नहीं, तो आस्रव हो रहा है। अहो! रावण के जीव ने बहुत दुराचार किया था, नरक मे पडा हुआ है, अच्छा हुआ, ऐसा ही कहना चाहिए। आप तो नहीं गए, पर आपने अपना मन नरक मे भेज दिया और रावण के जीव को मार दिया। अपनी मति से पूछो–दुर्मति हो गयी थी। पिटते हुए को तुमने

और पीटा, तो बध होगा। मनीषिया! बध–अपेक्षा चाहे स्वर्ग हो चाहे नरक हो, चाहे तिर्यंच हो, चाहे मनुष्य हो लेकिन चतुर्गति बध ही है। दिग्व्रत मे पूरे जीवन के लिए सीमा की जाती है और देशव्रत में सीमा नही की जाती है। विमल–मति वे ही बन पाएगे जिन्होने श्री व श्रीमती से अपनी मति हटा दी है। जब तक इन दो मे मति जाएगी, तब तक विमल–मति होना कठिन है।

भो ज्ञानी! सबके बीच मे रहकर भी स्वतत्रता का वेदन करना ही मुमुक्षु–दृष्टि है। परतत्रता मे रहकर भी स्वतत्रता का ध्यान रखना, यही मुमुक्षु की दृष्टि है और जो स्वतत्र–स्वभावी होकर भी परतत्रता मान के बैठ चुका है, यही बहिरात्म–दृष्टि है। स्वतत्रता के शब्द से स्वच्छदी मत बन जाना। यहॉ शरीर के सबधो का नाश नही कर रहे हैं। यहॉ शरीर मे स्वभाव–दृष्टि से हटा रहे है। शरीर स्वभाव नहीं है इतना विचार भी आ गया तो समझ लो कि जीवन मे कभी अशाति आ नही सकती। जब तक हम किसी से जुडे होगे या किसी को जोड कर रखेगे, तब तक हम निज से नहीं जुड पाऐगे। भगवान महावीर स्वामी के विकल्प ने गौतम स्वामी को केवली नहीं बनने दिया। जब प्रभु का राग भी प्रभुता को उत्पन्न नहीं होने दे रहा है, तो भोगो का राग तुम्हे भगवान कैसे बना देगा ? पहले भोगो का राग छोडो, भगवान मे राग लगाओ और जब भगवत्ता उत्पन्न होने लगेगी तो भगवान का राग भी छूट जाएगा। छोडना अच्छा नहीं लगता, तो ग्रहण कर लो। आप तो सयम, चारित्र को ग्रहण कर लो। जब चारित्र ग्रहण कर लोगे, तो अचारित्र अपने आप छूट जाएगा।

मनीषियो! आचार्य भगवन् ने अनर्थदण्ड के पॉच भेद कहे हैं अपध्यान, पापोपदेश प्रमाद–चर्या हिसा–दान व दु श्रुति, जिनके माध्यम से स्वहित तो किचित मात्र भी नही हैं। दूसरे के अहित के बारे मे सोचना ये अपध्यान है। कभी–कभी कितना विचित्र चितवन चलता है देखना ससार की दशा। प्रभु ने दे दिया वरदान, जो चाहो सब मिलेगा पर पडोसी को दुगुना मिलेगा। बस, प्रभु! यही तो सकट है। अपने दुख से दुख कहॉ ? हमे तो पडोसी के सुख से बहुत बडा दुख है। ठीक है, जो–जो मैं सोचूगा, वो दुगना होगा। प्रभु! मेरा एक मकान हो, तो पडोसी के दो हो गए। मेरी दो सतान हो, पडोसी के चार हो गयीं। जहाँ उसने पूरा माल खजाना भर लिया। अब देखना उसकी दुर्मति कहता है– भगवन् ! मेरे द्वार पर एक कुँआ खुद जाए। अहो! ईर्ष्या कितनी खतरनाक होती है ? भगवान ! मेरी एक ऑख फूट जाए तो पडोसी की दोनो आँख फूट गयीं। यानि पडोसी की दोनो आँखो को देख नही सकते, चाहे खुद काना बन जाय।

भो ज्ञानी! एक बालक कहने लगा–महाराज जी ! आज तो हमने अपने पिता जी को हरा दिया। भैया! तुम तो छोटे से हो, तुमने कैसे हरा दिया ? बोले–आपको पता नहीं है, हम ताश खेल रहे थे, तो पिता जी हार गए। अरे, अपनी हँसी अपने से न कराओ। शिकार, जय–पराजय, युद्ध

आदि का चितवन करना और परदारा, पर–स्त्री गमन, चोरी आदि करते तब तो सप्त व्यसन हो जाते। इनका चितवन भी नहीं करना। कर रहा है तो अपध्यान हो गया, क्योकि इनसे केवल पाप का ही फल होता है। बच्चे ने काम बिगाड दिया और आपने कहा–तू मर जा। ऐसा कहने से बच्चा नहीं मरेगा। कैसे–कैसे शब्दो का प्रयोग कर रहे हो ? विद्या वाणिज्य में स्वय तो कर ही रहे हो और दूसरे को उपदेश भी दे रहे हो। असि–मसि, कृषि, अस्त्र–शस्त्र, खेती, लेखन आदि के कार्य का उपदेश करना–यह सब हिसा है। विदिशा की मण्डी मे गल्ला खरीदो, गोदाम मे भर दो, कीडा पड जाए फिर बेच दो। ओहो! आप तो स्वय कर ही रहे थे और दूसरे को उपदेश भी दे दिया, तो दुगने पाप का बध हो गया। किसी को आजीविका, खेती–बाडी आदि का उपदेश भी नहीं देना। आदिनाथ स्वामी से पूछ लेना कि प्रभु। आपने एक ही दिन तो कहा था कि मूसिका लगा दो। एक दिन मूसिका लगवाया था, तो छह माह का मूसिका लग गया। जब तीर्थंकर जैसी आत्मा को कर्म ने नही छोडा, तो आप कैसे छूट पाओगे ? इसलिए कभी भी अपने जीवन मे अहिसा धर्म के लिए खोटा उपदेश, खोटा चितवन किसी को नहीं देना चाहिए। इसमे आत्मा का हित है बाकी सब अहित के मार्ग हैं।
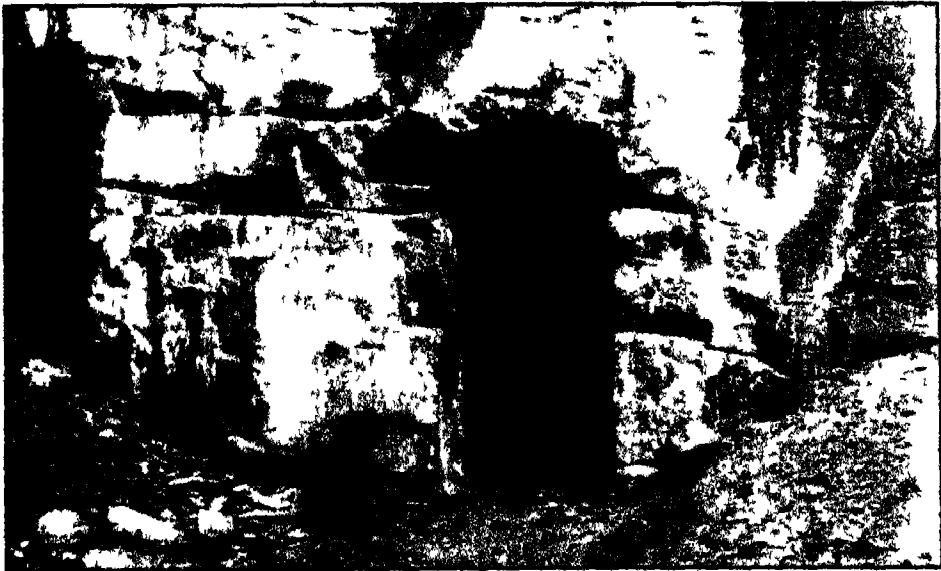
राजगिर - सोनभडार पश्चिमी गुफा, मुनियों की आवास स्थली

'आत्मा का आत्मा से घात मत करो'

भूखननवृक्षमोट्टनशाड्वलदलनाम्बुसेचनादीनि।
निष्कारण न कुर्याद्दलफलकुसुमोच्चयानपि च।। १४३।।

अन्वयार्थ भूखनन वृक्षमोट्टन = पृथ्वी खोदना, वृक्ष उखाडना। शाड्वलदलन = अतिशय घासवाली जगह रोदना। अम्बुसेचनदीनि च = पानी सीचना आदि। दलफलकुसुमोच्चयाम अपि = पत्र, फल, फूल तोडना भी निष्कारण न कुर्यात् = प्रयोजन के बिना न करे।

असिधेनुविषहुताशनलागलकर वालकार्मुकादीनाम्।
वितरणमुपकरणाना हिसाया परिहरेद्यत्नात्।। १४४।।

अन्वयार्थ असिधेनु विष हुताशन = छुरी, विष अग्नि। लागल करवाल = हल तलवार। कार्मुकादीनाम् = धनुष आदि। हिसाया उपकरणाना = हिसा के उपकरणो का। वितरणम् = वितरण अर्थात दूसरो को देना। यत्नात् परिहरेत् = यत्न से छोड दे।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ७८॥

मनीषियो! तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने सकेत दिया–कि बिना प्रयोजन व्यर्थ पाप के काम मत करो। वचन से भी व्यर्थ मत कहो। एक इद्रीय जीव से पूछ लेना कि वचन वर्गणाएँ कितनी भाग्यशाली होती हैं ? जब एक लकडहारा कुल्हाडी लेकर जाता है तो वृक्ष को तीव्र वेदना होती है, परन्तु वह अपनी वेदना को प्रकट नहीं कर पाता, यह है कर्मफल चेतना। मनीषियो! कभी कर्मफल चेतना भोगने के विचार मन मे मत लाना, भोगना ही है तो उस परम ज्ञानचेतना की ओर बढो। जिनवाणी माँ कहती है कि जो प्राणो से अतिक्रात शुद्धात्मा है वह परम ज्ञानचेतना का भोक्ता है। सारे स्थावर जीव कर्मफल–चेतना भोग रहे हैं। शुद्धज्ञान चेतना का भोक्ता तो एकमात्र सिद्ध परमेष्ठी हैं, जो द्रव्य प्राणो से अतिक्रात है और शुद्ध भाव प्राण से युक्त है, उनसे किसी के द्रव्य/भाव प्राण की हिसा नहीं होती।

भो ज्ञानी! सोचना, कि जब आप बोलने बैठते हो, तो क्या–क्या बोल देते हो, सोचने बैठते हो तो क्या–क्या सोच लेते हो। असज्ञी जीव से पूछना कि उसे सोचने की शक्ति मिली है कि नहीं

? व्यर्थ का सोचोगे, तो सोचने नहीं मिलेगा। मन रहित वे ही हुए जिनने निर्मल नहीं सोचा। मन रहित होना है तो मनीषियों! अर्हंत बनो। इसकी स्त्री पुत्रादि की मृत्यु हो जाए, उसका धन नष्ट हो जाए, पर आपके सोचने से इनका कुछ नहीं बिगडेगा, लेकिन आपका बिगडना सुनिश्चित है। मनीषियों! 'वराग–चरित्र' आचार्य जटासिह महाराज का एक पवित्र ग्रथ है। 'वराग चरित्र' मे सौतेली माँ, वराग को घर से निकलवा देती है। एक बार वह तालाब पर गया तो घडियाल ने पैर पकड लिया। अहो! घडियाल का पकडा पैर जल्दी छूट सकता है, पर जिसको कर्म घडियाल ने पकड लिया उससे छूटना कठिन है। मनीषियो! आचार्य जटासिह स्वामी लिखते हैं क्या सूर्य की रश्मियो को कोई मुट्टी मे बद कर सका है ? ऐसे ही किसी जीव के शुभ–अशुभ कर्म को तुम मुट्ठी मे बाँध नहीं सकते हो। शुभ कर्म है तो उसकी रश्मियाँ भी खिलेगी, अशुभ कर्म है, तो उसकी रजनियाँ भी आऐगी। 'इसका विनाश हो जाय'–यह अपध्यान चल रहा है और इससे पाप आस्रव होगा।

भो ज्ञानी! तूने "अप्पाण हाणदि अप्पेण" आत्मा के द्वारा आत्मा का घात कर दिया। चितन करके आया था, मैं दूसरे का विनाश करके आऊँगा। मत करो ऐसा अपध्यान, मत करो खोटा चितन, आर्द्र–रौद्र ध्यान बढेगा तो दुर्गति को जाना पडेगा। 'श्रेणिक चरित्र' मे सौतेली माँ कहती है–पुत्र मेरा है, पर जिसका पुत्र था वह कहती है–मेरा है। विवाद बढ गया, राजा श्रेणिक उसको दूर नहीं कर सका तो कहा–बेटा अभय! अब आप निपटाओ। पिताजी ! कोई बात नही, बेटे के दो टुकडे किए देते हैं, आधा–आधा पुत्र बाट देगे। लिटा दिया पुत्र को, चीख पडी माँ नहीं बेटा इसी का है, आप इसी को दे दो। उसने सोच लिया था, जिएगा, तो देखती तो रहूँगी और यदि दो टुकडे हो गए, तो न मेरा होगा, न इसका होगा। यह सौत नहीं बोल रही थी, माँ बोल रही थी। निर्णय हो गया, बेटा माँ के हाथ मे पहुँच गया।

भो मनीषियो! ईर्ष्या, सुत के दो टुकडे करा देती है। अहो! जो पचेन्द्री को कटवा के फिकवा रहा होगा, उसकी गोदी का क्या होगा ? स्वय सोचो, क्योकि विषय 'समयसार' मे जाने का है। यह कारण समयसार चल रहा है। आपका अपध्यान जैसा है वैसा हो गया होता, तो विश्वास रखो विश्व मे एक भी जीव जीवित नही मिलता, क्योकि हर एक व्यक्ति के पीछे एक न एक मारने वाला बैठा है। अहो ज्ञानियो! कोई तुम्हारे मारने से नहीं मरता, आयुकर्म के क्षय से मरता है, आयु कर्म तुम्हारे द्वारा दिया गया नहीं है। "मणि–मत्र–तत्र बहु होई मरते न बचावे कोई" दुनिया मे घूम आना, कर्म का जब विपाक आयेगा तो कोई बचाने वाला नहीं मिलेगा। जब पुण्य का सितारा चमकता है, तो शत्रु के घर में भी तुझे सिहासन मिलता है। जब चाण्डाल ने चतुर्दशी के दिन हिसा नहीं की, तो सम्राट ने उसको बोरे मे बाध कर नदी मे फिकवा दिया। अहो सम्राट! तुम बोरे को

बाध सकते हो, नदी मे फिकवा सकते हो, लेकिन ध्यान रखो, किसी को मार नही सकते। उस क्षेत्र के यक्ष ने सिहासन बना कर उस चाण्डाल को उस पर बैठा दिया। यह क्या हो गया ? अहिसा धर्म की जय हो! जिन शासन जयवत हो! इसलिये व्यर्थ मे कर्म का बध मत कर लेना। हम एक बार तुम्हारा राग मान लेगे पर द्वेष तो मत करो। ऐसा कहो मुझे ऐसा मिल जाए, पर ऐसा तो मत कहो कि इसका छूट जाए। अपने लाभ की बात करो, पर दूसरे के अलाभ की बात करना समझ मे नही आती। रावण के पास अठारह अक्षौहणी सेना थी और दशरथ के बेटे राम--लक्ष्मण मात्र दो ही गये थे। भो चैतन्य आत्माओ! दूज का चॉद ही पूर्णिमा का चॉद बन गया, इसलिये आज से ध्यान रखो, व्यर्थ का सोचना बद कर देना क्योकि आपके सोचने से कुछ नही होगा।

भो ज्ञानी! चार भैया एक साथ रहते थे। बडे की पत्नी कहती है तीन तो कुछ करते नहीं हैं, आप ज्येष्ठ हो, कब तक इनका पोषण करोगे, इनको छोड दो। वह भूल गई थी कि प्रत्येक जीव अपने भाग्य पर जीते हैं परन्तु आप कैसे पागल हो गये कि जिस ऑगन मे एक साथ खेलते थे, मॉ की गोद मे तुम क्रीडा करते थे, उस मॉ की गोद और भाइयो को छोडकर तुम अकेले चले गये। बलभद्र और नारायण एक साथ रहते हैं, नारायण की सोलह हजार रानियॉ और बलभद्र की आठ हजार रानियॉ। उनके कितने पुत्र होगे ? इसलिये यह भावना छोड दो कि परिवार बडा हो जाता है इसलिये अलग हो जाते है। यह कहो कि भगवन्! मेरी परिणति खराब हो जाती है इसलिए मैं अलग हो जाता हूँ। जहॉ परिणति खराब हो जाती है, वहॉ तुम इकलौती मॉ को भी अलग कमरा दे देते हो। यहॉ ऐसे भी बेटे होगे, जो वर्षों से मॉ से मुँह नही बोले होगे, लेकिन मॉ दुखी नही होना, क्योकि यह भी एक कर्म निर्जरा की साधना है। आपने पूर्व मे ऐसा ही किया होगा।

भो ज्ञानी! इतिहास कह रहा है कि वैभव ने मॉ--बेटो मे परिवारो मे सदैव विवाद खडा किया है। वैभव ही आपको अलग--अलग करा रहा है। अहो! मन के चितन के बाद आचार्य महाराज कह रहे है--हिसा के वचन भी मत बोलो, आरभ--समारभ के उपदेश भी मत करो, प्रमाद चर्या भी मत करो। प्रमाद चर्या से व्यर्थ ही कर्म का आस्रव होता है। भो ज्ञानी ! कुछ पाप तो ऐसे करते हो जिसे आप पाप ही नही मानते। चटाई पर आराम से बैठ गये, वह अनर्थदण्ड है। जिसने इसको समझ लिया उसे मुनि बनने मे, समितियो के पालन करने मे दिक्कत नही होगी, मात्र वस्त्र उतारना है, इसलिये इसका नाम शिक्षाव्रत है। जब तक आप श्रावक के निर्दोष व्रतो का पालन नही कर पा रहे हो, तब तक आप निर्मल साधना भी नही कर पाओगे। जरा सा गुस्सा आया, भडभडा पडे, पता नही किस को क्या बोल पडे ? यह अनर्थदण्ड हो रहा है। धर्म--धर्मात्मा पर चिल्लाए हो, विसवाद हो गया, यह चोरी हो गई, यह करणानुयोग है। भो ज्ञानी! परिणामो मे निर्मलता नहीं है, तो चर्या निर्मल कैसे होगी ? वृक्ष पर फल लगा हुआ है, पीला दिख रहा है अर्थात् फल पक चुका है। आप

कह रहे हैं–मधुर है, जबकि आपने रसना पर नहीं रखा, आँख से मधुर है सुवासित है, जबकि अभी तो ऊपर लगा है यह चरणानुयोग चर्या को देखकर कहता है कि तेरी निर्मल परिणति त्रैकालिक सभव नही है, क्योकि सप्त व्यसन का सेवन कर रहे हो, बाईस अभक्ष्यो को खा रहे हो और कहो मै तो शुद्ध स्वरूप मे लीन रहता हूँ , त्रैकालिक सभव नही है। अहो! असमय मे पके फल को तो खा भी मत लेना। जो असमय मे टपक जाता है, वह खतरनाक होता है। शोक के समय हास्य की बात करो शोभा नही देता, वैराग्य के समय राग की बात करो शोभा नही देता, क्योकि तुम असमय मे बात कर रहे हो।

भो ज्ञानी! मोक्षमार्ग घातक नही है, मोक्षमार्ग पर शिथिलाचार का जहर टपक जाये, तो वह घातक हो गया। शिथिलाचार की बूँदो से बचो। फल अभी नही है, यदि वृक्ष है, मौसम आयेगा, तो फल भी लग जायेगे। मोक्ष मार्ग तो है, मोक्ष नहीं है, मौसम आएगा तो मोक्ष भी हो जायेगा। इसलिये वृक्ष की सुरक्षा रखना, वृक्षो को काटकर फेक दोगे तो काललब्धि भी नही आयेगी। मौसम आ भी जायेगा, लेकिन द्रव्य नही होगा तो फल कैसे आएँगे। जब बाहर जाते हो तो स्टेशन पर गाडी के इतजार मे बैठना पडता है, ऐसे ही रत्नत्रय निर्ग्रंथ मुद्रा पचमकाल मे स्टेशन है जब चतुर्थकाल आयेगा तो गाडी आ जायेगी। धैर्य का फल मीठा होता है इसलिये धैर्य रखो। मनीषियो! आप गृहस्थ हो, बिना प्रयोजन के पृथ्वी को खोद रहे हो, कोई अस्त्र–शस्त्र मिल गया तो मिट्टी उखाड रहे है। अहो! एक गर्भवती के गर्भ गिराने मे हिसा का जो पाप लगता है मात्र एक अगुल भूमि के खोदने मे उतनी ही हिसा का पाप लगता है। ऐसा आचार्य अमितगति स्वामी ने **'सुभाषित सदोह'** ग्रथ मे कहा है–'गर्भवती माँ मात्र एक–दो सतान रखती होगी। यह पृथ्वी गर्भवती माँ है जो अपनी कोख मे अनन्त जीवो को रखती है केचुए–लट आदि कितने सारे जीव हैं।

भो चैतन्य! यह श्रावक की चर्या है, जब मुनिचर्या का कथन करेगे, तो कहेगे षटकाय जीव अनत है। अत आपको बिना प्रयोजन के कार्य नही करना चाहिये। प्रयोजन मे भी विवेक रखना जहाँ चुल्लू भर पानी का काम हो, वहाँ बाल्टी भर पानी मत फेकना। अहो ज्ञानियो! हाथ मे डडा मिल गया तो रास्ते मे पत्तो को मारते चले जा रहे हैं, उसके प्राण नही है क्या ? वह जीव नही है क्या ? यदि अज्ञानता मे ऐसा अपराध हो गया हो, तो प्रायश्चित कर लेना। दूबा पर चलो, नेत्रो की ज्योति बढ जायेगी। अहो सोचो! उस दूबा के नीचे कितने नेत्रो की ज्योति विहीन हो रही है ? घर, दुकान, गाडी–घोडा सब को नहला रहे हो और एक व्यक्ति तडप रहा प्यासा जिसको पानी पीने को नही मिल रहा है। कर लो मौंज, लेकिन ध्यान रखना "सिधु–नीर तैं प्यास न जाये, तो पण एक न बूँद लहाए।" वे दिन भी आयेगे। आज तुम अति कर रहे हो, नल की टोटी खोलकर बैठ गये। अहो! जैसे घृत–तेल का प्रयोग करते हो वैसे पानी का प्रयोग किया करो। विवेक से काम लो। दूसरे

की सोच से आप सोचोगे, तो दुखी हो जाओगे, ससार में शाति से नही जी पाओगे। बेटे की भावना है कि "मेरे पिताजी, माताजी, दादा–दादी की अतिम श्वासे धर्म–ध्यान से निकले।"उधर कोई व्यक्ति पहुँच गये, क्यों बेटा! "तुम माँ को मारना चाहते हो क्या? महाराज के पास रख दिया। अहो ज्ञानी ! उसके भाव कितने निर्मल हैं ? जो कि विचार कर रहा है कि जिसने मुझे जन्म दिया, मुझे इतना बडा किया हैं।मेरा भी कर्त्तव्य बनता है कि उनकी अतिम श्वासो मे उनको पच परमेष्ठी का उच्चारण कराके शुद्ध अवस्था की ओर ले जाउँ । दुनियाँ की सुनोगे तो कभी तुम धर्म भी नहीं कर पाओगे।

भो ज्ञानी! यदि मेहमान भी आये तो एक बाल्टी में पानी प्रासुक कर के दे देना कह देना–भैया इतने से ही तुम्हे काम चलाना है। यदि पानी पीने बैठे तो मटका भर के रख देना कि कितना ही पीलो, लेकिन बिना कारण फैलाने के लिए नही है हमारे घर मे। ध्यान रखना, किसी को चाकू, छुरी मत दे देना। उन्होने साग बना दी, कीडा अदर है उसके दो टुकडे हो गये। इसलिए समझना शुद्धि करने के लिये बहुत–कुछ नही चाहिए पडता शौक करने के लिये बहुत–कुछ करना पडता है।
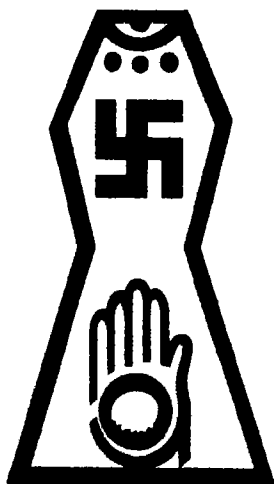
'त्यागो दुःश्रुति द्यूतक्रीडा'

रागादिवर्द्धनाना दुष्टकथानामबोध बहुलानाम्।
न कदाचन कुर्वीत श्रवणार्जनशिक्षणादीनि।। १४५।।

अन्वयार्थ रागादिवर्द्धनाना = रागद्वेष मोहादि को बढाने वाली (तथा) अबोध बहुलानाम् = बहुत करके अज्ञानता से भरी हुई। दुष्ट कथानाम् = दुष्ट कथाओ का श्रवणार्जन। शिक्षणादीनि = सुनना सुनाना पढना पढाना (आदि)। कदाचन = किसी भी समय। नकुर्वीत = न करे।

सर्वानर्थप्रथम मथन शौचस्य सद्म मायाया.।
दूरात्परिहरणीय चौर्यासत्यास्पद द्यूतम्।। १४६।।

अन्वयार्थ सर्वानर्थप्रथम = सप्तव्यसनो का प्रथम अथवा सम्पूर्ण अनर्थों का मुखिया। शौचस्य मथन = सतोष का नाश करने वाला। मायाया = मायाचार का। सद्म = घर और। चौर्यासत्यास्पद =चोरी तथा असत्य का स्थान। द्यूतम् = जुआँ का दूरात् = दूर से ही परिहरणीय = त्याग कर देना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || ७९||

मनीषियो! अन्तिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने बहुत ही अनुपम सूत्र दिया है–जिसका चित्त निर्मल नहीं होता, उसके प्रमाद के योग से प्रभुवाणी अन्तरग मे प्रवेश नहीं कर पाती। जिस जीव के अन्तरग मे कषाय–परिणति, अपध्यान चल रहा है, वह जीव क्रिया के करने पर भी क्रिया के फल को प्राप्त नहीं कर पाता है। यह जीव की दशा है।

भो ज्ञानियो! आँखे दो ही हैं, पर दृष्टियाँ अनेक हैं। देखो, दृष्टि नीचे देखने को है तो अपध्यान, ऊपर देखने को है तो धर्मध्यान। चकोर जमीन पर रहकर आकाश मे देखता है और चील आकाश मे उड़कर भी जमीन पर देखती है। ऐसी ही योगी और भोगी की दृष्टि है। एक जीव ससार मे बैठकर सिद्धत्व को निहार रहा है और एक जीव मनुष्य पर्याय प्राप्तकर सप्तव्यसनो को निहार रहा है। आँखे दो हैं, दृष्टियाँ अनेक हैं। आँख किसी को विकारी नहीं बनाती, भिखारी भी नहीं बनाती, परन्तु दृष्टि दोनों को विकारी–भिखारी बना देती है। अहो ज्ञानी! एक दरिद्री विकारी है, एक

दरिद्र होकर भी भगवान है, जिसे आप पचपरमेष्ठी भगवान मे लख रहे हो। भिखारी के पास तो कम से कम भीख माँगने का एक कटोरा होता है। मुनियो के पास तो एक कटोरा एव वस्त्र भी नहीं हैं। बताओ इनसे बडा दरिद्र कौन होगा ? क्योकि, विकारी की आँखे भिन्न होती है और भिखारी की ऑखे भिन्न होती है। देखो । दृष्टि मे बध है, दृष्टि मे सवर है और दृष्टि मे निर्जरा है। सृष्टि मे कुछ नही है। एक व्यक्ति को बेटी, एक व्यक्ति को भगिनी और एक व्यक्ति को पत्नी दिख रही है। अहो ज्ञानी । ऑखे वही हैं, यदि स्त्री भोग का हेतु है तो माँ भोग का कारण क्यो नहीं दिख रही है ? वेद से देखो तो स्त्री–वेद है। यदि प्रत्येक नारी को मॉ के रूप मे देखने लगे तो विकार है ही कहॉ ? भगिनी/सुता के रुप मे देखो तो विकार है कहॉ ? विकार दृष्टि मे है, देखने के तरीके मे है, स्वभाव मे नही है। इसलिए वस्तु से बध नहीं वस्तु से निर्बंध नही, दृष्टि से बध है, दृष्टि से निर्बंध है। इसे ही बदलना है।

भो ज्ञानी । कषाय चेहरे पर नही होती। वह पुद्गल का विकार नही आत्मा का विकार है आत्मा की विभाव–अवस्था है। कषाय–परिणति यानी आत्मा के विभावगुण की परिणति चल रही है; क्योकि, ज्ञान–दर्शन भी साथ मे चल रहा है। कषाय को अपना मानने के चक्कर मे जीव अपने ज्ञान को भी अपना मानना भूल जाता है। अरे! परिणति आत्मा की है, लेकिन विकार से मिश्रित है। अनादि की भूल के वश अनादि के कर्म–बध के कारण जीव के रागादिक परिणाम होते हैं और रागादिक परिणाम के कारण कर्म का बध होता है। अनादि अज्ञान, अविद्या अविरति और प्रमाद के वश जीव के अदर विभाव–भाव उत्पन्न होते हैं। कुन्दकुन्द स्वामी **'समयसार'** मे लिख रहे है–

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसील जण वियाणिन्ता।
वेज्जेदि तेण समय ससग्ग रायकरण च ।। १५५।।(स सा)

लोगो के साथ कुशील तब तक रहता है जब तक कुशील का भान नही होता है जीव जब समझ लेता है, अहो! इससे तो मेरा बहुत घात हो रहा है मेरा पूरा सयम धर्म नष्ट हो रहा है तो वह धीरे से प्रयास करके कुसत्ता से अलिप्त हो जाता है।

भो ज्ञानी! मुमुक्षु को विभाव के स्वभाव का परिचय जहॉ हो जाता है तो वह स्वभाव के परिचय की ओर चल देता है। पर जिसने श्रद्धा–पूर्वक विभाव को नही छोडा वह स्वभाव के स्थान पर पहुँचकर भी विभाव का ही वेदन करेगा। सयम के वेष मे तो रहेगा पर भावो को असयम के पास बिठाएगा। इसी का नाम परिणति का व्यभिचार है। मॉ जिनवाणी कह रही है– बेटा! जिसने शिक्षाव्रतो, शीलो मे अपने आप को पका लिया है तत्पश्चात् जो महाव्रतो मे प्रवेश करता है, वह खरा उतरता है। पर इतना ध्यान रखना कि नमोस्तु–शासन की प्रवज्या (दीक्षा) को, भीड की प्रवज्या न बनाया जाए। इसे भीड का रूप न दिया जाए। वैराग्य को ही महत्व दिया जाए। उस वैराग्य मे भीड आती है तो कोई दिक्कत नही। वीतराग–शासन को भीड के अभाव मे ढाई हजार वर्ष हो चुके फिर भी जाज्वल्यमान है। कभी भी मिथ्यात्व से समझौता इसने किया नहीं, भले ही दो तीन सौ वर्ष

ऐसे निकले जहाँ निर्ग्रंथता का अभाव रहा, लेकिन **वीतरागता को मानने वाले श्रावको ने किसी गृहस्थ को गुरु स्वीकार नहीं किया।** अहो पडित दौलतराम जी सरीखे विद्वानों के समय मे निर्ग्रंथ–दशा नहीं थी, पर निर्ग्रंथो पर ग्रन्थ फिर भी लिखते रहे।

भो ज्ञानी! आँखो से तो देखो, पर दृष्टि को ऑख पर मत लगा देना। तुम श्रद्धा के लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे। श्रद्धा यानि आत्मा। दृष्टि को एक करके देखना कि जो–जो द्रव्य है, वह अपने–अपने स्वभाव मे है। इतनी गहरी दृष्टि बन जायेगी जिस दिन, फिर नेत्रो से क्या, सर्वांग से देखोगे, सब कुछ चराचर दिखेगा। 'आचार्य कुदकुद स्वामी' **'समयसार'** मे लिख रहे हैं– कमल के पत्र पर पानी की बूद प्रथम तो टिकती ही नहीं और टिक भी जाये, तो मोती के रूप मे झलकती है। ऐसे ही बाह्य–दृष्टि तुम डालना नही, यदि चली जाये तो प्रत्येक बाह्य–आत्मा को भगवान–आत्मा देखना। भो ज्ञानी! मुझे भी एक योगी ने प्रभावित किया जब वह आचार्य महाराज के पास आकर कहते हैं कि महाराजश्री! नमक का त्याग था और मुख मे नमक आ गया अन्तराय करके आया हूँ। प्रयाश्चित दे दो। मै वहाँ बैठा था। मैंने सोचा– अहो! जीव की निर्मल दशा देखो। आचार्य महाराज भी देख रहे थे। किसी को पता नही था और वो जीव जाकर प्रयाश्चित ले रहा है। सोचा–बाकी के काम बाद मे करना, पहले इसको वदन करो। इसके शरीर की वदना नही उन भावो का वदन करूँ जिन भावो के कारण इसके हृदय मे सत्य, अहिसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह महाव्रत विराजमान है उन भावो की वदना कर लेना। उन भावो की वदना भाव–लिग की वदना है यही भाव–वदना है।

मनीषियो! दृष्टि को दृष्टि बनाकर रखना, दृष्टि को कुदृष्टि नही बनाना, अन्यथा ऑख विहीन रह जाओगे। परमार्थ का लक्ष्य जिनका नहीं बना वे सभी दृष्टि–विहीन हैं। जिसके हृदय मे श्रद्धा की आँख फूट गयी, विश्वास की आँख फूट गयी, आस्था विवेक की आँख फूट गयी, तो ध्यान रखो सब कुछ फूट गया। फिर चश्मे काम मे नहीं आते हैं।

भो चेतन! अखबार के समाचार तो अनन्त बार प्राप्त किये, अब निज के समाचार को देख। आस्रव तो होगा उसे कोई रोकने वाला नहीं है। जैसी तुम्हारी दृष्टि होगी वैसा ही होगा। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय की १४५वीं और १४६वी यह कारिका अमृतचन्द्रस्वामी ने बडी करुणा–दृष्टि से लिखी है कि जितनी राग और प्रमाद को बढाने वाली कथाएँ हैं, इन सबको दूर से ही छोड दो। क्योकि स्त्री कथा, चोर कथा, भोजन कथा और राष्ट्र कथा के अलावा समाचार पत्रो मे कौन सी कथा है ? क्वचित–कदाचित हमारी दृष्टि कही विकार मे न चली जाए, अत ज्ञानी पाच पापो से विरक्त रहता है। यदि द्वेष रखेगा तो समता छूट जाएगी, कर्म का बध होने लगेगा। क्योकि इनको देखकर हमारे परिणाम खराब होते हैं। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा है कि जिनागम का अध्ययन करो, उसी का चितवन करो। जब आप समाचार पत्र पढके बैठोगे, फिर सामायिक करोगे तो वहाँ सामायिक नहीं समाचार ही गूँजेगा। देखो, पचम काल है, विभावो से बचने का उपाय खोजो। हमारे आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है– निमित्तो से बचना चाहिये।

"आत्मतत्त्व का मूल—सामायिक"

एवं विधमपरमपि ज्ञात्वा मुचत्यनर्थदण्ड य।
तस्यानिशमनवद्य विजयमहिसाव्रत लभते ।। १४७।।

अन्वयार्थ य एव विधम् = जो पुरुष इस प्रकार के। अपरमपि अनर्थदण्ड = अन्य भी अनर्थदण्डो को। ज्ञात्वा मुचति = जान करके त्याग करता है। तस्य अनवद्य = उसके निर्दोष। अहिसाव्रत अनिशम् = अहिसाव्रत निरतर। विजयम् लभते = विजय प्राप्त करता है।

राग द्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य।
तत्त्वोपलब्धिमूल बहुश सामायिक कार्यम्।। १४८।।

अन्वयार्थ रागद्वेषत्यागात् = रागद्वेष के त्याग से। निखिलद्रव्येषु = समस्त इष्ट—अनिष्ट पदार्थों मे। साम्यम् = साम्य भाव को। अवलम्ब्य = अगीकार कर। तत्त्वोपलब्धिमूल = आत्मतत्त्व की प्राप्ति का मूल कारण। सामायिक = सामायिक। बहुश कार्यम् = अनेक बार करना चाहिए।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८० ।।

अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन—पीयूष देशना हम सभी सुन रहे है। आचार्य भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने सकेत दिया कि मनीषियो! जीवन मे अपयश का हेतु जुआ है। जिसके अतरग मे निर्मलता है, वह कभी दाव नही लगाता है। धन के माध्यम से जुआ खेलनेवालो ने मात्र जड द्रव्य को दाव पर लगाया है, पर तुमने वासनाओ के कारण अनत भवो को दाव पर लगा दिया है। मैं किसी से कम नही हूँ, मैं तुम्हारे सामने कैसे झुक सकता हूँ— इस भावना को लेकर न केवल पर्याय को दाव पर लगा दिया, बल्कि पूरे परिणामो को दाव पर लगाया है। अनत भवो की साधना एक मुहूर्त मे नष्ट हो चुकी है। आपने तो अपना जीवन ही दाव पर लगा दिया। भो ज्ञानी! अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि सपूर्ण व्यसनो मे पहला व्यसन है 'द्यूत क्रीडा'। सोचता है कि आज नहीं तो कल जीत जाऊँगा। मालूम चला कि धन गया, कोष गया, घुडशाला भी गयी, नारी के आभूषण जाने के बाद जब कुछ नहीं दिखा तो अत में नारी ही दाव पर लगा दी। अब समझना, सयम गया, तप गया। तेरी शील स्वभावी आत्मा नारी भी तूने दाँव पर लगा दी, तू कगाल हो गया। ऐसा जुआ खेल रहा है। युधिष्ठिर को बदनाम किए हो। लेकिन आप विचारो कि यह सब तुम्हारे साथ खेलने वाले जुआरी बैठे हुए हैं। तुम्हारा परिवार जुआरियों का अड्डा है, कहता है कि

अब तुम कमा के लाओ। भो ज्ञानी आत्माओ! अब जितना द्रव्य बचा है उस द्रव्य को दाँव पर मत लगा देना। जितना आयु–कर्म का द्रव्य बचा है, उतने द्रव्य को आप सम्हाल लो अन्यथा वह तो जुए मे जा रहा है। अभी मौका है। युधिष्ठिर सम्हल गए थे तो भगवान बन गए। मत लगाओ दाँव पर इस पर्याय को। जुआ है तो उसमें भी माया है। मैं जीत जाऊँ, इस हेतु से कहीं से भी छल–कपट कर लेता है।

भो ज्ञानी! गुणभद्र स्वामी लिख रहे हैं कि–सागर कभी स्वच्छ जल से नहीं भरा रहता। वह सभी नदी–नालो के गदे पानी से भरा हुआ है। अमृतचद्र स्वामी ने सामायिक का कथन करने के पहले सप्त व्यसन को रख दिया है कि पहले सप्त व्यसन का त्याग कर दो और इन व्यसनो का सम्राट जुआ है। जो शौच का नाश करने वाला, सत्ता का नाश करने वाला और माया का घर है। इसलिए जुए को तुम दूर से ही छोड दो।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि बिना प्रयोजन के खोटा चितवन मत करो, खोटे शास्त्र मत सुनो, पाप–उपदेश मत दो, हिसा–दान मत दो, प्रमादचर्या मत करो। यदि प्रमाद चल रहा है तो वहाँ अहिसा की बात तो चलती रहेगी, लेकिन अहिसा की वृत्ति नही होगी, क्योकि मोक्षमार्ग चर्चा बात का नहीं वृत्ति का है। अज्ञानी जीवो ने चर्चा करने मात्र को मोक्षमार्ग मान लिया है। पखा खोल के बैठ जाएँगे पानी के नल की टोटी खोल दी तो खुली है। ऐसे लोग भी आप को मिलेगे जो मदिर के द्वारे से दस बार निकलेगे, लेकिन एक बार भी भगवान को सिर नही टेक पाएँगे। क्योकि कर्म तो टिकने ही नही दे रहा है। राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर के समवशरण मे बैठकर प्रश्न भी कर लिया, सब कुछ कर लिया, लेकिन सम्मेद–शिखर की वदना नहीं कर सका। क्योकि नरक आयु का बध हो चुका था। इसलिए दृष्टि को बदल दो तो कर्म बदल जाएँगे और कर्म नही बदला तो दृष्टि बदलने वाली नहीं है। आयु–बध यदि निर्मल हो चुका है, तो मरण के काल मे वह नियम से शात–भाव होगा, जिसने जीवन भर तीर्थंकर की देशना सुनी। पुरुषार्थ तुम्हारा अशुभ था, इसलिए तो आपको अशुभ कर्म बध हुआ। भो ज्ञानी! आप किसके लिए कर रहो हो? धर्म–पुरुषार्थ कितना कर रहे हो और अर्थ, काम के लिए कितना समय निकाल रहे हो ? मोह कितना बडा है कि अतिम सासो तक चाहता कि मैं कुछ कर लूँ। इसलिए अपनी परिणति को दोष दो। सर्विस छोडने के बाद एक तीव्र रागी दुकान डालता है। दुर्ग मे एक सज्जन बहुत बडे आफिसर थे और छह महिना पहले वह रिटायर हो गए। तो वे अर्द्धविक्षिप्त से आकर बोले–महाराज जी! बहुत परेशानी है, धन तो इतना मिल चुका है कि पूरा जीवन ऐसे ही बैठे रहूँ , तो भी और अपने बेटे तक का जीवन निकल सकता हैं। पर महाराज जी! आदेश देना मेरी आदत बनी गई, लेकिन अब कोई मुझे पूछता ही नहीं है। मैं खाली–खाली महसूस कर रहा हूँ। (भैया! आदत मत डाल लेना आदेश देने की) उनसे कहा–तुम सोनागिर चले जाओ, सम्मेद शिखर चले जाओ, जिनवाणी का स्वाध्याय करो। कहने लगे–महाराज जी! कहीं मन नहीं लगता है। सोचो, जीव की दशा। भो ज्ञानी! आदेश तो करना, लेकिन जो स्वय

को आदेश देना प्रारभ कर देता है उसकी वहाँ से सामायिक प्रारभ हो जाती है। जहाँ 'पर' को आदेश दिया गया था, वहाँ परसामायिक थी।

भो ज्ञानी! जो पर सामायिक का सचालन कर रहा है वह निज सामायिक से हट चुका है। सम+इक = समय मे एक हो जाना, इसका नाम सामायिक है। समय यानि समता। समता मे लीन हो जाना इसका नाम सामायिक है। समय यानि आगम, आगम के सूत्रो मे लीन हो जाना उसका नाम सामायिक। समय यानी जिनशासन, जिनशासन मे श्रद्धान्वित हो जाना, इसका नाम सामायिक है। पच परम गुरु (परमेष्ठी) की आराधना मे लीन हो जाना, इसका नाम व्यवहार सामायिक है और निज स्वरूप मे लीन हो जाना निश्चय सामायिक है। द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक, भव सामायिक, भाव सामायिक, नाम सामायिक, स्थापना सामायिक यह सामायिक के प्रकार हैं।

(१) द्रव्य सामायिक–मुझे यह द्रव्य अच्छा नही लगता, आपकी सामायिक गई। क्योकि 'समता सर्व भूतेषु' जो सम्पूर्ण विश्व मे सम्पूर्ण जीव हैं, उन सब के प्रति समवृत्ति का होना सामायिक था। मार्ग मे मेढक मृत पडा था, दुर्गंध को जानकर तू नाक पकडने लगा। अहो चैतन्य! उस द्रव्य का अपना धर्म था। मृतक तिर्यंच ने अपनी दुर्गंध को नहीं छोडा, लेकिन तूने अपने निर्विचिकित्सा धर्म को छोडा है। अशुभ द्रव्य को देखकर के अशुभ परिणामो का होना यह द्रव्य–सामायिक का अभाव है। शुभ या अशुभ द्रव्य को देखकर भी शुभ या अशुभ परिणाम नही लाना, इसका नाम द्रव्य सामायिक है। भो ज्ञानी! सामायिक करना सीख लो तो आपको कहीं शत्रु नजर नही आएँगे। किसी द्रव्य को देखकर तुम्हारे परिणाम बिगड रहे है, उसका कुछ नही बिगडेगा, लेकिन तुम्हारी सामायिक बिगड गयी, क्योकि आप सत्ता देख रहे पुण्य–पर्याय की, और ज्ञानी सत्ता देखता है पुण्य द्रव्य की। जब वह पुण्य द्रव्य की सत्ता को निहारता है तो शात बैठ जाता है। भैया! सिहासन पर यह नही बैठा, इसका पुण्य बैठा है। सामायिक कह रही है कि आर्तरौद्र परिणाम जब तक नहीं छूटे, तब तक सामायिक नहीं। इसलिए निर्दोष–स्थान की चर्चा की गई है। यह द्रव्य–सामायिक है।

(२) क्षेत्र सामायिक– मुझे तो यही मदिर अच्छा लगता है। मुझे तो यही तीर्थ अच्छा लगता है। वह तो बहुत बेकार स्थान है। क्षेत्रगत इष्ट–अनिष्ट का होना यह क्षेत्र सामायिक का अभाव है। किसी भी क्षेत्र मे इष्ट–अनिष्ट का भाव नही लाना इसका नाम क्षेत्र सामायिक है। जहाँ भेद आ रहे हैं, वहाँ सामायिक नहीं। (३) काल सामायिक– मुझे तो शीत काल अच्छा लगता है। बरसात मे गलियो में कीचड हो जाता है, सो अच्छा नहीं लगता और एक व्यक्ति गर्मी मे तडप रहा है–भगवान! सर्दी का मौसम अच्छा रहता है, कम से कम प्यास तो नही सताती। दूसरा कहता–वो गर्मी अच्छी रहती है कहीं भी बैठ जाओ। भो ज्ञानी! मौसम ने अपना मौसम नहीं छोडा, पर तूने अपना मौसम छोड़ दिया। यह काल–सामायिक भग हो गयी। समय को देखकर के विकल्प लाना

कि ऐसा समय नहीं, ऐसा समय होना चाहिए, सामायिक करने वाले का तो हर समय एक–सा होता है। बरसात में पीतल के बर्तन काले पड जाते हैं यानि पुद्गल पर काल का प्रभाव पड़ा, पर मुमुक्षु के भाव पर काल का प्रभाव न पडे–इसका नाम काल सामायिक है। (४) भाव सामायिक – सबसे कठिन सामायिक, भाव–सामायिक है। यदि भाव–सामायिक हो जाये, तो शेष सामायिक अपने आप हो जाए। परिणामो की विकृति का अभाव हो जाना–यह भाव सामायिक है और कभी–कभी भव की भी सामायिक कर लेता है कि भगवान मैं नरक मे न जाऊँ। अरे! तेरे कहने से नहीं, लेकिन तूने जो किया है, उस परिणति से तू कैसे बच जाएगा। (५) नाम सामायिक – मेरा नाम अच्छा होना चाहिए। किसी के अच्छे नाम को बुरा कहना, दूसरे की अवहेलना करना। यह नाम सामायिक का अभाव है (६) स्थापना सामायिक – मिथ्यात्व की स्थापना करना, मिथ्यात्व देवी–देवताओं की आराधना करना–यह स्थापना सामायिक का अभाव है और सच्चे देव शास्त्र गुरु की स्थापना करना यह स्थापना–सामायिक है। आयतन की स्थापना करना, अनायतन की स्थापना नहीं करना–यह स्थापना सामायिक है। रागद्वेष को छोड के बैठना और साम्य भाव को लेकर बैठना। ध्यान रखना यदि कोई पडोसी आपको परेशान कर रहा हो तो भी आप समता के साथ रहा करो, कम से कम समता तो बनी रहेगी। यदि आपके यहाँ पुत्र वधु आपके मन की नही आयी, तो कुछ दिन आपको भी अभ्यास बनाना पडेगा साम्य–भाव का।

भो ज्ञानी! कुछ लोग ऐसा करते है कि यहाँ नहीं बनी, वहाँ चले गए वहाँ नही बनी, तो कही और चले गए। ठीक है, आप स्थान बदलो लेकिन जब तक भाव नही बदले कर्म नही बदले तब तक स्थान बदलने से कुछ नहीं होगा। आप आश्चर्य करेगे, एक सज्जन हैं सम्मेद शिखर मे, उनके परिवार के लोगो ने उनको छोड दिया है, करोडपति है। महिने मे आते हैं उनके भैया वगैरह और होटलो वगैरह का जितना खर्चा होता वह चुकाकर चले जाते। कहकर रखा है कि जिसकी दुकान पर भी जाएँ जो भी माँगे दे देना, मना मत करना। वह व्यक्ति सम्मेद शिखर जैसी शाश्वत भूमि मे वदना के लिए नही घूम रहा बल्कि घर के लोग परेशान थे इसलिए वहाँ छोड रखा है। एक नौकर भी साथ मे लगा है। पुण्य की महिमा तो देखो कि एक मैनेजर साथ मे लगा है। जहाँ भी, जो कुछ भी माँगता है, उसे हर व्यक्ति दे देता है। उसके पिताजी ने मरने के पहले उसके नाम पर बैंक मे रुपया जमा कर दिया है। बैंक का जो ब्याज आ रहा है वह उसके उपयोग मे जा रहा है। लेकिन पुण्य को तो देखो तीर्थभूमि मे पडा हुआ है, यह पहला पुण्य, दूसरा पुण्य कि नौकर सेवा कर रहे हैं। इस पुण्य के लिए घोर–घोर तपस्या की है और तीव्र मोह के आवेश मे आकर भक्तो, श्रावको से दूर रहकर, मदिरा पान कर रहा है। करोडपति आदमी है, लेकिन दशा देखो परिणामो की। इसीलिए ज्यादा कमाकर मत रखना, बर्बाद दूसरा करेगा और बदनाम आप होंगे कि उनकी सतान ऐसा कर रही है। सम्पूर्ण द्रव्यो मे समता का आलबन करके जो तत्त्व की उपलब्धि का मूल है उसका नाम 'सामायिक' है। इसलिए अनेक बार 'सामायिक' करना चाहिए।

"गुणों का स्थान–सामायिक"

रजनीदिनयोरन्ते तदवश्य भावनीयमविचलितम्।
इतरत्र पुन समये न कृत दोषाय तद्गुणाय कृतम्।। १४९।।

अन्वयार्थ – तत् = वह (सामायिक)। रजनीदिनयो = रात्रि और दिन के। अन्ते अविचलितम् = अन्त मे एकाग्रता–पूर्वक। अवश्य भावनीय = अवश्य हीकरना चाहिए। पुन इतरत्र समये = फिर यदि अन्य समय मे। कृत तत् कृत = किया जावे (तो वह सामायिक कार्य) दोषाय न गुणाय = दोष के हेतु नहीं किन्तु गुण के लिए ही होता है।

सामायिकाश्रिताना समस्तसावद्ययोगपरिहारात्।
भवति महाव्रतमेषामुदयेऽपि चरित्रमोहस्य।। १५०।।

अन्वयार्थ – एषाम् = इन। सामायिकाश्रिताना = सामायिक–दशा को प्राप्त हुए श्रावको के। चरित्रमोहस्य = चारित्र–मोह के। उदये अपि = उदय होते भी। समस्तसावद्ययोगपरिहारात् = समस्त पाप के योगो के त्याग से। महाव्रतम् भवति = महाव्रत होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८१ ।।

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य–भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने सूत्र दिया है कि जो वीतराग–सज्ञा को प्राप्त कर चुके हैं, जो सर्वज्ञता को प्राप्त कर चुके है, वह किसी को उपदेश देने नहीं आते, उनके तो सहज उपदेश होता है। उस सहज उपदेश की प्राप्ति के लिए यदि सामायिक है, तो ध्यान रखना, सब कुछ है। अर्थात् जीवन के बारे मे जो कुछ सोचने का एक समय निर्धारित होता है उसका नाम सामायिक है। अपने बारे मे विचार करने का जो समय होता उसका नाम सामायिक है, अपने से मिलने का जो समय होता उसका नाम सामायिक है। ध्यान से समझना, एक टोकनी मे मेढको को शाति से बिठा के रखना सुरक्षा से और कह देना कि शाति से बैठना। भो ज्ञानी! जब तू एक को सम्हालता है तब तक दूसरा भाग जाता है। अहो! यह तेरे सबधो की दशा है। इन सबधो को मत सम्हालो, निज सबधो को सम्हालो। निज की टोकनी में निज मन–मेढक को सम्हाल लो, उसमे कल्याण है। ये परिवार/कुटुम्ब सम्हलने वाला नहीं है, क्योंकि इसकी दशा ही विचित्र है। इसलिए विश्वास रखो,

सभाल किसी को नहीं सकते हो, किन्तु सभालने का प्रयास करना ही पुरुषार्थ करना है। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि सम्पूर्ण राग–द्वेष की निवृत्ति हेतु अपने परिणामो को सम्हाल लो, उसी का नाम सामायिक है।

भो ज्ञानी! मुमुक्षु जीव यह भी नहीं देखता कि कहाँ बैठना है। वह स्थान की खोज नहीं, समय की खोज करता है कि मेरा समय, एक क्षण भी न चला जाए। जीवन में आपको कितने मिनिट मिले हैं और उन मिनिटो समयों का उपयोग आपने कहाँ किया है? शिक्षाव्रत शिक्षा दे रहा है कि साम्य–भाव जिस परिणति से हो उसका नाम सामायिक है। इच्छाओ की पूर्ति को पूर्ण कर लेने का नाम साम्य–भाव नही है, इच्छाओ की पूर्ति का निरोध करने पर समता रखना इसका नाम साम्य–भाव है। प्यास लग रही थी, परिणाम खराब हो, इससे अच्छा है कि पानी पी लो, और बोले कि साम्य–भाव है। देखना, हम कितना विपरीत सोचते हैं ? जिनवाणी कहेगी कि जब तुमको प्यास लग रही हो और रात्रि का काल हो, तीव्र तृषा सता रही हो, उस समय साम्य–भाव कैसे करोगे? यदि पानी पीने का नाम साम्य–भाव है, तो मनीषियो! भोग भोगने को भी सामायिक कहना पडेगा। अरे! परिणाम कलुषित नहीं रखना है, लेकिन पानी भी नही पीना है।

भो ज्ञानी! आज तू स्वतत्र है। परतत्रता मे तूने सागरो पर्यंत पानी नहीं पिया। इतनी प्यास लगी थी कि सिधु नीर से प्यास न जाए, पर एक बूद पानी भी पीने को नहीं मिला, आपको तो सुबह मिल जाएगा। जल को पीते–पीते अनन्त पर्याय निकल गई। अब तू चैतन्य–नीर का पान कर। पानी पीना तेरा स्वभाव नही है, भोजन करना तेरा धर्म नहीं है। अहो प्रभु! आपके नाम की जाप करते–करते मेरे प्राण भी निकल जाऍं, वह भी मुझे स्वीकार है। इसका नाम साम्य–भाव है। चारित्र को खोकर भोगो मे लिप्त हो जाना, इसका नाम साम्य–भाव कह देना, यह जिनवाणी का अवर्णवाद है।

भो ज्ञानी! चौबीस घटे अपने साथ गुरु को बिठा के चलना। जो समय–समय पर तुझे तेरे त्याग को याद दिला दे, उसी का नाम गुरु है उसी का नाम श्रुत है और वही आगम का ज्ञान है। विषमता के काल मे हमे समता का ध्यान दिला दे, इसी का नाम श्रुत है, वहीं सम्यक है। साम्य–भाव के सस्कार डालो, पता नही कब उपसर्ग आ जाए, कब परिषह आ जाऍं? वे दिन अपने जीवन के श्रेष्ठ मान के चलना जिन दिनो तुम्हारे निकट–सबधी तुम्हे दुखित करे। क्योकि उनके राग मे हम वीतराग को भूल रहे थे। अहो सबधी! तूने अच्छा सबध स्थापित किया, कम से कम मुझे वीतरागता का भान तो करा दिया। मैं आपके राग मे बैठकर पता नहीं कितने कर्मो का बध कर रहा था ? इसलिए सामायिक–चारित्र कहता है कि साम्य–भाव का अर्थ भोग की लीनता नहीं है,। साम्य भाव का अर्थ स्वभाव–लीनता है। इसलिए ध्यान रखना, जीवन मे सयम की साधना वही कर सकता है

जिसको तीव्र चिता हो। जिसे सामायिक मे स्वभाव का विकल्प होता है, उसे नींद नहीं आती और जहॉ विकल्प खो गया और आप बैठ गये शात होकर, समझ लेना आपने साधना कर ली। जिस समय सीता का जीव प्रतीन्द्र हुआ, उसके मन मे एक विकल्प आ गया, अरे! बलभद्र राम उत्कृष्ट साधना कर लेगे तो वह निर्वाण को प्राप्त कर लेगे। मोह की दशा देखो, वह जीव प्रतीन्द्र सोच रहा है कि यदि मैं इनकी साधना को भग कर दूँगा तो यह ससार मे रहेगे, जिससे हमारे फिर से सबध स्थापित हो जाएँगे।देखना मोह की दशा, सीता का रूप धारण करके सामने खडा हो जाता है, स्वामी! आप क्षमा करो, मैने आपकी अवहेलना की अज्ञानतावश मैंने आपकी बात को स्वीकार नही किया। अब आप चलो महलो की ओर, मैं आपकी महादेवी सीता हूँ। ध्यान रखना जीवन मे, हिमालय हिल सकता है, परतु निर्ग्रंथ मन कभी सग्रन्थ नही होता। अग्नि शीतल हो जाए, लेकिन सत के हृदय मे वासना और कषायो की ज्वाला नही आती है, यही भाव–लिग है।

भो ज्ञानी! गृहस्थी मे रहकर साधु की याद आ जाए तो तू महान है। जीवन मे यदि कुछ पाना चाहते हो तो गृहस्थ बनकर साधु को याद करते रहना, और कही गृहस्थी मे तुम गृहस्थी को याद करते रहे, तो गृहीत–मिथ्यात्व से भी नही छूट पाओगे। देह से धर्मात्मा हो भी गये, तो भी कोई सार नही है। इसे आगम स्वीकार नही करता है। परिणति धर्मात्मा की हो और देह से उसके धर्म न झलके, यह सभव नही है। जिसमे निश्चय–धर्म है नियम से उसमे व्यवहार धर्म होगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि अतरग मे धर्म हो और बाहर धर्म न हो। भो ज्ञानी! प्रकृति भी आपसे कह रही है कि बिना द्रव्य–दृष्टि के पर्याय–दृष्टि नही और बिना पर्याय–दृष्टि के द्रव्य–दृष्टि नही। द्रव्य कहता है कि मै द्रव्य–पर्याय से हूँ तो गुण भी मेरे अदर विद्यमान है। पर्याय को पर्याय मानना मिथ्यात्व नही है। द्रव्य को द्रव्य मानना मिथ्यात्व नही है। द्रव्य को गुण पर्याय से युक्त मानना मिथ्यात्व नही है। पर्याय के भोगो मे लीन होकर अपने को प्रभु मानना यह मिथ्यात्व है। कुन्दकुन्द आचार्य भगवन् कह रहे हैं–**"पज्जय मूढा परसमया"** जो पर्याय को ही आत्मा का लक्षण मान रहा है, वह मिथ्यात्व मे जी रहा है। अमृतचन्द्र स्वामी कह चुके हैं **"द्रव्यगुणपर्यायसवेता"**। उमास्वामी महाराज से पूछ लो द्रव्य की परिभाषा–**'गुणपर्यायवत् द्रव्य'**। अत, जहॉ सामायिक का अभाव है, वहॉ मूढता है, क्योकि पूरी पर्याय अपने शरीर के लिए सौंप दी है। पूरी पर्याय के क्षण आपने भोगो मे लगा दिये हैं, उसी का नाम पर्याय–मूढता है।

भो ज्ञानी! राग को जानना बध नही है। राग को जानने से बध नही होता, द्वेष को जानने से बध नही होता, रागी–द्वेषी होना बध है। अहो ! भोगी के भोग बध नही हैं, लेकिन भोगो मे लीन हो जाना बध है। भोग तो सम्पूर्ण विश्व मे हैं। जो भाव जहॉ बैठे, वो भी भोग है। एक जीव यहाँ निर्भोग मे बैठा है और एक भोग मे बैठा है, क्योकि एक सामायिक कर रहा है यहॉ बैठकर और एक

यहाँ बैठकर अधिकार देख रहा है कि यह तो मेरा स्थान है। वह मदिर मे बैठकर के बध कर रहा है और एक यहीं बैठकर सामायिक कर रहा है। इसलिए ध्यान रखना, धर्म–स्थान धर्मात्मा के लिए होता है, रागी–द्वेषी के लिए नहीं। अन्यथा सम्मेद–शिखर तीर्थ से सभी लोग मोक्ष चले जाते। यदि आप यहाँ से गए, तो आप यात्री कहलाते हो, परतु जो शिवालय का यात्री है, उसने यात्रा का लक्ष्य बना लिया, इसलिए यात्री कहलाने लगा। ऐसे ही जो मोक्ष–मार्ग पर चलने लगता है, वह मोक्ष–मार्गी है, अन्यथा सभी ससार–मार्गी ही हैं।

मनीषियों! शास्त्र के ज्ञान और अनुभव के ज्ञान में इतना ही अतर होता है जितना कि प्रसूति कराने वाली धाय और जन्म देने वाली माँ मे। क्योकि जो अनुभव–ज्ञान है, वह क्रिया के साथ होता है, अनुभूति के साथ होता है और अध्यात्म की भाषा मे अनुभव–ज्ञान यानि कि आत्मा का ज्ञान और बाह्य–ज्ञान यानि कि शास्त्रो का ज्ञान। शास्त्र–ज्ञान मे कथन तो होता है लेकिन अनुभूति नही होती है और आत्म–ज्ञान मे कथन नही होता है, सवेदन होता है। सामायिक के शास्त्र तो जीवन मे कई पढ सकते हो और करोडो जीवन मे पढ सकते हो, लेकिन जीवन मे तुम सामायिक–चारित्र धारण नहीं कर सकते हो। सामायिक–चारित्र के बत्तीस भव है, इससे ज्यादा कोई जीव सामायिक–चारित्र धारण नही कर सकता। लेकिन सामायिक–शास्त्र पढने के लिए पता नही कितने भव लग जाएँ। अत, सामायिक–शास्त्र पढने का नही, सामायिक सयम–धारण करने का है।

भो ज्ञानी! हमारे यहाँ कितने ही गरीब श्रावक होते थे, बजी किया करते थे। पैसे से गरीब जरूर थे, पर धर्म से कभी गरीब नहीं हुए। ऐसा है कि बजी करते–करते रास्ते मे मार्ग भूल गया। जगल से निकल रहा था, अचानक उसके सामायिक का समय हो गया तो सामायिक करता है। इसके बाद जैसे ही खडा होता है कि रास्ते मे एक मुनिराज दिख गए। श्रावक के मन मे भाव आए, अहो! इन योगी की पारणा किसी भव्य श्रावक के यहाँ होगी मेरे तो पुण्य हैं ही नही, मैं कैसे इनको पारणा करा पाऊँगा ? मैंने तो दर्शन कर लिए, अब यहीं बैठकर सामायिक करूँगा। देखो, जैसी वर्गणाएँ होती हैं, वैसे भाव बनते हैं। सत के चरणो मे बैठकर भाव बदल गए और बजी का ध्यान भूल गया। वही विश्राम कर लेता है। सुबह बजी करने चला जाता है। अब तो रोज का नियम हो गया कि वही से निकले, मुनिराज के चरणो मे बैठकर सामायिक कर ली और देखना कि उस जीव ने इतना पुण्य सचित कर लिया कि पारणा का दिन जब आया वे मुनिराज ईर्यापथ शोधन करते हुए आ रहे थे। वह श्रावक भी कलश लिये खडा था और सोच यही रहा था कि हमारे यहाँ तो, कैसे सभव है ? मुनिराज की विधि भी यही थी कि कोई दुर्बल व्यक्ति हाथ में कलश लिए खडा होगा वहाँ मेरा आहार होगा। विधि का विधान देखो, पडगाहन कर लिया, तीन प्रतिक्षणा देते–देते और रोक नहीं सका अपने भावो को, आँखो के नीर से पाद प्रक्षालन कर लिए। आहार दिए और

आहार देने के उपरात एक क्षण को परिणाम में आ गया कि कहीं मेरी मा न आ जाए। उसकी मा दान देने से मना करती थी, एक क्षण के परिणाम प्रबल हो गए। उस दान के पुण्य—आस्रव से सेठ—पुत्र हुआ और उसका अकाल मे अपहरण हो गया। एक अटवी मे छोडा गया। उस अटवी से उसे उठाया गया। राजा की मृत्यु हो गयी, नगर मे उसको राजा बना दिया। मुनिराज विहार करते नगरी से निकल रहे थे। ये पुन दर्शन करने पहुँचा। प्रभु निर्ग्रंथ वीतरागी मुनि को देखकर नमन करता है। मुनिराज अवधिज्ञानी थे, भगवन्! मुझे समझ मे नहीं आ रहा है कि मैं आज सम्राट कैसे बन गया ? राजन! जिस समय आप मुनिराज के चरणो मे बैठकर सामायिक कर रहे थे और मुनि को आहार दान की भावना भा रहे थे, उस समय तुमने इतने पुण्य का सचय कर लिया। लेकिन आपने बीच मे पुण्य—परिणाम का अपहरण कर दिया था कि मेरी माता न आ जाए, यहॉ पर तुम्हारे अशुभ कर्म का बध हुआ। (यह कथा गुणभद्र स्वामी ने लिखी है जिनदत्त चरित्र मे) इसलिए ध्यान रखना, पुण्य क्रिया तो करना, पर शुभउपयोग की दृष्टि रखना, अशुभ उपयोग को स्थान मत देना।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी समझा रहे है कि प्रमादी मत बनो। दो समय के अलावा तीसरे समय मे सामायिक कर लोगे, उससे कोई दोष नहीं हो जायेगा। देखो, दो समय तो आपको निश्चित कर दिए, शेष काल मे आपको जब भी समय मिलता है आप सामायिक कर सकते हैं। वह सामायिक गुण वृद्धि ही कराएगी। इनके होते हुये जो सामायिक का आश्रय लेता है, वहॉ पर पूर्ण सावद्य योगो का परिहार हो जाता है। ध्यान रखना, ऐसी सामायिक नही करना है कि मौन ले लिया है और मौन लेकर सारे काम कर रहे हो, पेपर (अखबार) पढ रहे हो, जितने पुराने काम हैं, कर लो, इसलिए वह धर्माध्यान नही है सामायिक के काल मे श्रावक महाव्रती के तुल्य होता है, क्योकि तुमने सब कुछ त्याग ,दिया है। आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है—

सामायिके सारम्भा, परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्ट मुनिरिव, गृही व दायति यति भावम्।। १०२।।र क श्रा ।।

जैसे कोई मुनिराज ध्यान कर रहे हो, किसी व्यक्ति ने उन पर कपडा डाल दिया, पर वह मुनिराज ही कहलाएगे। उन्होने पहना नहीं है, उनके ऊपर डाल दिया है, उपसर्ग कर दिया है। इसी प्रकार से जब श्रावक सामायिक करने बैठता है तो ऐसे ही तुम मानना कि ये वस्त्र तो उपसर्ग के रूप मे पडे हैं, मैं तो निर्ग्रंथ—स्वरूप हूँ। लेकिन ध्यान रखना, जरा स्वरूप की झलक हो जाए तो कुरूप मे मत चले जाना।

'निज में वास–उपवास'

सामायिकसस्कार प्रतिदिनमारोपित स्थिरीकर्तुम्।
पक्षार्द्धयोर्द्वयोरपि कर्त्तव्योऽवश्यमुपवास ।। १५१।।

अन्वयार्थ – प्रतिदिनम् आरोपित = प्रतिदिन अगीकार किये हुए। सामायिक सस्कार = सामायिकरूप सस्कार को। स्थिरीकर्तुम्= स्थिर करने के लिये। द्वयो =दोनो। पक्षार्द्धयो = पक्षो के अर्द्धभाग मे अर्थात् अष्टमी और चतुर्दशी के दिन। उपवास = उपवास। अवश्यमपि कर्तव्य = अवश्य ही करना चाहिये।

मुक्तसमस्तारम्भ प्रोषधदिनपूर्ववासरस्यार्द्धे।
उपवासं ग्रह्णीयान्ममत्वमपहाय देहादौ।। १५२।।

अन्वयार्थ – मुक्तसमस्तारम्भ = समस्त आरभ से मुक्त होकर। देहादौ ममत्वम्= शरीरादिक मे आत्मबुद्धि को। अपहाय = त्याग कर। प्रोषधदिनपूर्ववासरस्यार्द्धे = उपवास के दिन के पूर्व दिन के आधे भाग मे उपवास। गृह्णीयात् = उपवास को अगीकार करे।

श्रित्वा विविक्तवसति समस्तसावद्ययोगमपनीय।
सर्वेन्द्रियार्थविरत कायमनोवचनगुप्तिमिस्तिष्ठेत्।। १५3 ।।

अन्वयार्थ – विवक्तवसति = निर्जन "पश्चात्" वसतिका को। श्रित्वा = प्राप्त होकर। समस्तसावद्ययोगम् = सम्पूर्ण सावद्ययोग का। अपनीय = त्याग कर और। सर्वेन्द्रियार्थविरत = सम्पूर्ण इद्रियो से विरक्त होता हुआ। कायमनोवचनगुप्तिभि = मनगुप्ति,वचनगुप्ति और कायगुप्ति सहित। तिष्ठेत् = स्थित होवे।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८२।।

मनीषियो। तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सब विराजते हैं। आचार्यभगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने सूत्र दिया 'आत्मा की पवित्रता आत्मा की निर्मलता, साधनो से नहीं साधना से

है। जो साधनो मे उलझा है वह कभी साधना को प्राप्त नही कर सकता। साधना के साधन तो जीवन मे अनन्त बार किये है, लेकिन साध्य की शुद्धि नहीं। किसी ने अच्छे मदिरो को देखा, किसी ने अच्छे गुरुओ को देखा, किसी ने पिच्छी–कमडल को देखा, किसी ने देह को देखा, किसी ने सुन्दर नारियो को देखा, लेकिन भो ज्ञानी! साध्य को भूल गया। अरे! साधनो की निर्मलता से साधना की निर्मलता नहीं है, साधना की निर्मलता से साध्य की निर्मलता है। साधन बेचारा क्या करे साधन की सीमा है। साधन कहता है कि आपकी उपयोग करनेकी शैली निर्मल है तो हम आपका साध्य निर्मल कर देगे, यदि उपयोग करने की शैली निर्मल नही है तो हम आपका कुछ नहीं कर पायेगे। अमृतचन्द्र स्वामी यही कह रहे हैं कि आपको निज समय को समझने के लिए दो अथवा तीन समय सामायिक करना आवश्यक है। ध्यान रखना यदि आपको प्रति समय सामायिक करने का समय मिल रहा है तो उसे दोष मत मान लेना, हर समय साम्यभाव रखे जा सकते हैं और सामायिक प्रति समय की जा सकती है। आचार्य भगवन् कह रहे है– वास्तव मे उपवास करना, एकासन करना, रस का त्याग–यह सारी की सारी बहिरग तपस्याएँ जो सामायिक हेतु समय निकालने के लिए की जाती हैं। मुमुक्षु की दृष्टि से देखना एक साधक का अपने उपयोग की निर्मलता पर लक्ष्य है भोजन को महत्त्व नहीं दे रहा है, वह सामायिक को महत्व दे रहा है और एक जीव ऐसा भी है जिसे सामायिक में देर हो जाए लेकिन भोजन मे देर न हो। दोनो की पहचान करना, मुमुक्षु कौन है? सामायिक करने के लिए भोजन का त्याग कर रहा है ज्ञानी और भोजन के लिए सामायिक का त्याग कर रहा है वह है अज्ञानी। ज्ञानी–अज्ञानी की यही पहचान है। अरे! सामायिक का समय हो रहा है तो भोजन छोड देना चाहिए। दिन के बारह बजे (सधिकाल) मे भोजन नही करना यह तीर्थंकर भगवान की दिव्य देशना का काल है। इस काल मे भगवान जिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि खिरती है और एक पापी उसमे भोजन करता है कितना अभागा हैं? भाग्य को निहार लेना कि हमारा कितना क्षीण पुण्य है।

भो ज्ञानी! तीर्थंकर के कल्याणक हुए हैं तो काल मगल हो गया है। उन्होने दिनो को नहीं देखा, दिनो ने उन्हे देखा है। वह काल सुमगलभूत हो गया जिस काल मे मगलोत्तम शरणभूत तीर्थंकरो की आत्मा का अवतरण हुआ। इसलिए काललब्धि नही आयेगी, पुरुषार्थ काललब्धि को खडा कर देगा।

भो ज्ञानी! ससार मे भटकने के लिए बहुत पुरूषार्थ करना पडता है, लेकिन मोक्ष जाने के लिए मात्र बैठना पडता है। बताओ, चौबीस तीर्थंकर हैं, सब हाथ पर हाथ रखे हुए बैठे हुए हैं। बस बैठ जाओ कुछ मत करो। यदि उस सादि अनत काल तक बैठने की भावना हो, तो दिन मे कम से कम दो घटे बैठने लगो, इसका नाम साधना है इसका नाम सामायिक है। श्रावक को दो समय सामायिक तो निश्चित करना ही चाहिए। सामायिक करने बैठो तो मात्र बैठ ही मत जाना, देह से

बैठना, भोगो से बैठना और उपयोग में दौडना। वह दौड तुम्हारी विपरीत नहीं हो। लेकिन जहाँ आज तक दौडे वहाँ मत दौडना। कीचड में दौडे हो, इसलिए तुम इस कर्म की दलदल मे फँसे हो। किसी निर्ग्रंथ योगी की वाणी रूपी लकडी 'गुरूवाणी' का आलबन ले लेना। फिर धीरे से भेद विज्ञान का चुल्लू भर नीर टपकाना। यह पाप जो है, वह कीचड है। इसके ऊपर तुम पुण्य का नीर डाल दो। भो ज्ञानी! भेद विज्ञान का चुल्लू भर पानी डाल दो तू कीचड मे नहीं फसेगा। इसलिए अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि आप सामायिक कर लो जब परिणाम कषायो से भरे हो। लडाई होती है, तो सामायिक कर लो। कहना--भाई! हमारा सामायिक का समय है, हम आपसे थोडी देर बाद चर्चा करेगे। जो तुम लडने के बारे मे सोच रहे थे तो सामायिक मे बैठकर आपने चितन मे बदल दिया। पुन आप लडने नही आओगे, क्षमा माँगने आओगे, भाई हमसे भूल हो गई है।

भो ज्ञानी! सामायिक मे सोचोगे कि अब क्या करूँगा? अरे! यह सोचना कि भूल मेरी है या कि सामने वाले की। अहो! भूल न तेरी है न मेरी। यह कर्मविपाक उदय मे आ गया तो मुझे गुस्सा आ गया मैं पराधीन हो गया और आज तक यह सोचा ही नहीं कि मैं भी कुछ कर सकता हूँ? आज तक यह नहीं जाना कि मैं जीव हूँ तो जीव--जीव पर क्या क्रोध कर सकता है? उसने गाली दी, गाली को हमने सम्मान से स्वीकार किया है। अहो! गाली को स्वीकार करके तू गल रहा है अतरग की जेब मे रखी हुई कषाय यदि निकल गई तो मित्र बन जायेगा। अपने आपको जैसा का जैसा समझ लेना--इसका नाम सामायिक है। ध्यान रखना दूसरे के दोषो को देखने मे समय मत गँवाना। अपने लिए जरा सा समय मिला है, उसे दूसरे को देखने मे क्यो लगाते हो? अहो ध ोबी! तूने दूसरो के वस्त्र बहुत धो डाले, पर निज चुनरिया को तो देख कि कब से इसमे काम, क्रोध ा मोह माया के मैल छुपे हुए हैं। यह धोबी की पर्याय मानकर चलना, क्योकि दूसरे के दोषो पर दृष्टि जा रही है। तुम दूसरो का अच्छा करना चाहते पर हम अच्छे कब बन पायेगे? सामायिक अपने परिणामो को धोने का, अपने अतरग मल को देखने का और साफ करने का साधन है और बहुत पुरुषार्थ करना पडेगा, फिर नहीं झलकेगा कि ससार मे कोई दोषी भी है, क्योकि इन सबसे बडा दोषी तो मैं ही हूँ।

भो ज्ञानी! मिथ्या धारणा चली जाये तो मिथ्यात्व अपने आप चला जायेगा। इसलिए सामायिक करना शुरू कर दो। यहाँ सामायिक प्रतिमा अलग है, सामायिक शिक्षा व्रत अलग है और सामायिक सयम अलग है। कोई व्यक्ति सामायिक कर रहा है तो आप मना कर देगे कि हल्ला नही करो यहाँ पर वह सामायिक कर रहा है। देखो, उसकी साम्यता से तुम्हारे मन मे भी साम्यता आ गई। जब एक घटे की सामायिक मे इतना आनद आ सकता है, तो जीवन भर की सामायिक मे कितना आनद होगा।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि यदि तुम मुक्ति–वधू से सबध करना चाहते हो तो भोजन छोड दो सामायिक करने के लिए। कुछ लोग इसलिए सामायिक नहीं करते, क्योंकि मन नही लगता। कोई व्यक्ति एक घटे पूजा कर रहा है और कहता है मेरा चित्त स्थिर हो गया है। अरे! तुम धोखे में बैठे हो कि हर्ष उल्लास मे बैठे हो, क्योंकि पूजन मे चित्त स्थिर नहीं होता, चित्त चलायमान होता है। भगवान के सामने चढाने, रखने, उठाने मे ध्यान की स्थिरता नहीं है। उन प्रकरणो मे तुम इतने तन्मय थे कि आप समझ रहे थे कि मेरा चित्त स्थिर हो गया, लेकिन चित्त स्थिर नहीं था। जब आप सामायिक करने बैठे तब आपको लगेगा कि हाय यह चित्त तो मेरे पास है ही नहीं! अब हम इसको कैसे स्थिर करे अभी तक आप मित्रो के साथ बैठे थे, क्योंकि तुम्हारे पास धन–वैभव था। जब सब कुछ नष्ट हो जाये इसके बाद मित्रो को बुलाना, बुलाने पर भी नही आयेगे। इसी प्रकार जब सामायिक करने बैठे और चित्त तुम्हारा भागने लगे, उसी समय आप सामायिक करना वही श्रेष्ठ काल है सामायिक करने का। चित्त चलायमान होने के कारणो के उपस्थित होने पर भी चित्त को वहाँ से रोककर रखना, इसका नाम है सामायिक इसका नाम है वीरता। यह ध्यान रखना, जब तुम्हारी कषायो मे तीव्रता चल रही हो उस समय मन्दता के भाव बनाओ और पुरुषार्थ करो। उस समय साम्यभाव रखकर पुरुषार्थ मत छोड देना अन्यथा भोगो और कषायो की नदी गहरी है। प्रतिकूलता के काल मे इतने सम्हल जाना कि ऊपर से कूट रहे हो, पिट रहे हो, फिर भी अतरग मे सम्हलकर रहना, कुम्भकार का घडा बन जाना। अतिम दृष्टि यही बनाकर चलना कि सबके बीच मे मैं अकेला ही हूँ और अकेला ही भोगना पडेगा। सब साथ होये फिर भी मैं सबके साथ नहीं रहूँगा। अब तो क्षमादिभाव से परिणत निज आत्मा ही शरण है। फिर वहाँ पर किसी को याद मत करना। कही मरण का काल आ गया और उस समय हम अपने आपको नही सम्हाल पाए, तो दुर्गति सुनिश्चित है। इसलिए मद भाव बनाने का पुरुषार्थ करते रहना, पुण्य–पाप की मध्यम अवस्था के वेग से मनुष्य आयु का बध होता है। कर्म–सिद्धात कहता है कि जब विकारो की, कषायो की तीव्रता होती है तो भी आयु कर्म का बध नही होता कर्म की तीव्रता मे व मन्दता मे भी आयु का बध नही होता, मध्यम अशो मे ही आयु कर्म का बध होता है। आयु बध का काल त्रिभाग मे आएगा, लेकिन उस त्रिभाग की तैयारियॉ आज से ही प्रारभ कर देना।

भो ज्ञानी! वासना के सस्कार अनादि से हैं, इसलिए यह नहीं कहना कि मन नही लगता। उन अनादि के सस्कारो को कम करने के लिए आप धीरे–धीरे सस्कार डालना प्रारभ करो, बैठना शुरू करो। आज आप यहाँ बैठे हो, वह पहले सस्कार पड चुके थे और आज जो सस्कार पड रहे हैं वह आगे आपके काम आएगे। उनको स्थिर करने के लिए आपके लिए सरल मार्ग बताते हैं। एक महीने मे दो पक्ष होते हैं, दो पक्षो मे चार पर्व आते हैं, दो अष्टमियाँ दो चतुर्दशियाँ, ये शास्वत पर्व हैं। यदि घर मे सब साधन हैं, तो उचित यही है कि तुम वास्तविकता मे चले जाओ। सामायिक

की वृद्धि के लिए अवश्य ही उपवास करना चाहिए। निज में वास करने का मतलब है उपवास। जो निज मे वास करेगा तो क्या वह भोजन में वास करेगा? ध्यान रखना, कभी व्रत, सयम, उपवास की अवहेलना मत करना। जैसे आज अष्टमी है तो कल सप्तमी को आपको एकासन करना चाहिए। एकासन करने के बाद तुरत भगवान के सामने या गुरु के सामने जाकर आपको उपवास ले लेना चाहिए। शाम को न मजन करना, न पानी लेना। यदि कुछ पानी ले लिया, तो यह उपवास नहीं है अनुपवास है। उपवास में चारों प्रकार के आहार पानी का त्याग होता है। कुछ लोग तो एकासन करते हैं और शाम को पानी लेते हैं, उनका तो एकासन भी नहीं होता है। भो मनीषियों! कम से कम उपवास के दिन आप साबुन--सोडे का उपयोग तो न करे क्योकि आपका शरीर--सस्कार का भी त्याग है।

भो ज्ञानी! शरीर आदि से ममत्व--बुद्धि को त्याग करके उपवास के पूर्व दिन तथा अगले दिन को एकासन करे। उपवास का अर्थ है--भोजन का त्याग। चौबीस घटे का नहीं बनता एक घटे का कर दो, लेकिन करो तो कुछ तो करो। उसके बाद सपूर्ण योगो को छोड करके हिसादि कार्यों को उपवास के दिन न करे वास्तविकता मे वास करे। मदिर मे आकर साधना करे सपूर्ण इन्द्रियो के विषयो से विरक्त होकर मन, वचन, काय गुप्ति का भी पालन करे। उस दिन तो आप बिल्कुल मुनि--तुल्य हो जाओ, धोती-- दुपट्टा मे रहे तो बहुत अच्छा है। इतना विवेक जरूर रखना है कि जिन वस्त्रो मे आप लघुशका करके आ चुके हो उन कपडो मे मदिर के दर्शन करने नही आना चाहिए। हम आपका मदिर नहीं छुडा रहे हैं मदिर आने की निर्मल विधि बता रहे हैं क्योकि आप गृहस्थ है। वास्तविकता तो यह है कि जिन वस्त्रो से भोजन किया हो, मल विसर्जन किया हो, ऐसे वस्त्रो को पहन कर देव गुरु शास्त्र का स्पर्श नहीं करना चाहिए। शाम को पूरे बाजार मे घूम--घाम कर आते हैं और गद्दी पर बैठे, वाचना शुरू कर दी। ठडी आने दो, ऊन के कपडे पहनोगे और बढिया चादर ओढ करके स्वाध्याय करोगे। यह अनुचित है।

अहो मनीषियो! दूसरो के बालो को ओढकर तुम जिनवाणी छू रहे हो? सूती कपडो का उपयोग तो कर ही लेना। जैसा रुचे वैसा करो, लेकिन मार्ग यह है। जिनकी असमर्थता है, उनको ग्रहण मत करना। तुम समर्थ हो, जिनेन्द्र की वाणी को पाश्चात्य सस्कृति मे मत बदलो। भो ज्ञानी! विवेक से समझना यह तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना, साक्षात जिनेन्द्र की वाणी है। अपने जीवन मे विनय सीखो, तभी सामायिक आएगी, तभी तुम्हारी साधना सफल होगी।

"पूजा करो–पूज्य बनो"

धर्मध्यानासक्तो वासरमतिबाह्य विहितसान्ध्यविधिम्।
शुचिसस्तरे त्रियामां गमयेत्स्वाध्यायजितनिद्र ।। १५४।।

अन्वयार्थ विहितसान्ध्यविधिम् = कर ली गई है प्रात काल और सध्याकालीन सामायिकादि क्रिया जिसमे ऐसे। वासरम् = दिन को। धर्मध्यानासक्त = धर्मध्यान मे लवलीन होता हुआ। अतिबाह्य =व्यतीत करके। स्वाध्यायजितनिद्र = पठन–पाठन से निद्रा को जीतता हुआ। शुचिसस्तरे =पवित्र साथरे पर त्रियामा गमयेत् = रात्रि को पूर्ण करे।

प्रात प्रोत्थाय तत कृत्वा तात्कालिक क्रियाकल्पम्।
निर्वर्तयेद्यथोक्त जिनपूजा प्रासुकैर्द्रव्यै ।। १५५।।

अन्वयार्थ तत प्रात प्रोत्थाय = तदुपरान्त प्रभात मे ही उठकर। तात्कालिक= उस समय की। क्रियाकल्पम् = क्रियाओ को। कृत्वा = करके। प्रासुकै = प्रासुक अर्थात् जीव–रहित। द्रव्यै = द्रव्यो से। यथोक्त = आर्ष–ग्रथो मे जिस प्रकार कही है। उस प्रकार से जिनपूजा = जिनेश्वर देव की पूजा को निर्वर्तयेत = करे।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८३।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं, आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने अनुपम सूत्र दिया है –जीवन मे समत्व भाव एक ऐसा अनुपम है जिसके माध्यम से सम्पूर्ण लोक की विषमता समाप्त हो जाती है क्योकि लोक मे समता को भग करने वाला यदि कोई पदार्थ है तो **'मैं'** और **'मेरा'** भाव है। यह 'मैं' **'मेरा'**, समत्व को प्राप्त नही होने दे रहा है। मै क्या हूँ? मै जो दिखता हूँ वह **'मैं'** नही हूँ अहो! जिसे आप **'मैं'** कह रहे हो, वह कभी मेरा है नही फिर **'मैं'** ही नही कहता **'मेरे'** भी कहता है। मेरा ज्ञान दर्शन है चारित्र है, सुख है, अनत चतुष्टय है, परतु मैं' के पीछे अपने स्वचतुष्टय पर दृष्टिपात नही किया, क्योकि समता प्राप्ति के उपाय के बीच मे कर्ता भाव' आ जाता है। अहो! विश्व अशाति का मूल सूत्र है यह कर्ता–भाव। जिसके आप कर्ता हो, उसको आप सब–कुछ मानते हो और जिसके आप कर्ता

नही हो उसे आप तुच्छ मानते हो, जबकि मुमुक्षु की दृष्टि मे सभी तुच्छ ही हैं। किसी भवन पर आपने एक ईंट रख दी तो उसमे भी अहम्-भाव आता है, हृदय ईंट का बन जाता है। जब तुम्हारी ईंट नहीं थी, तो विनयपूर्वक आप आते थे, उस तीर्थ की वदना करते थे, तब भावना कुछ ज्यादा निर्मल होती थी और सराहना करते थे कि धन्य हो उसको, जिसने इस भवन को निर्मित किया है, उसी के कारण यहाँ बैठकर मैं धर्म साधना तो कर रहा हूँ । वह भावना अब मर चुकी है, क्योकि ईंट मेरी रखी गई है। इसलिए तीर्थों मे गुप्तदान देना ही ज्यादा उचित लगता है, जिससे मालूम नही चलता कि ईंट किसकी लगी है। हम तीर्थ भूमि मे सामायिक करने गए थे लेकिन वहाँ भी सामायिक नही हो पाई, क्योकि हमने ईंट रख दी है। यदि किसी ने उस भवन मे किसी त्यागी को विराजमान कर दिया तो आपकी त्यागी के सामने (पास) पहुँचने की ताकत तो है नहीं, पर मैनेजर को जरूर डाँट देते हो कि जब आपको मालूम था कि मैं यहाँ ठहरूँगा तो आप महाराजश्री को कोई दूसरा कमरा खोल देते यानि परमेष्ठी के प्रति भी अनादर भाव आ गए क्योकि ईंट रखी थी। मनीषियो! ऐसी ईंट मत रखना जिससे कि ससार के नीव की ईंट बनना पडे।

भो ज्ञानी! ईंट रखने का भाव दूसरा था– कि यदि मैंने ईंट रखी है तो मेरी सतति भी यहाँ आकर धर्म से जुडी रहे। लोग भी कहे तुम्हारे दादा ने ईंट रखी है इसलिए आप भी धर्म से जुडे रहो। अत उद्देश्य यही होना चाहिए था कि हमारे बुजुर्गों ने इतना विशाल मदिर बनवाया है। हम कम से कम पूजा ही करते रहे, इस भावना के लिए ईंट रख देना, लेकिन हृदय को ईंट बनाने के लिए कभी ईंट रखने का विचार मन मे नही लाना। अहो! 'इदम्' कह रहा है ? मैं ऐसा हूँ, मेरा ऐसा है यही 'मै विनाशक है। यह दो दृष्टियाँ हैं, एक दृष्टि तो यह बने कि देखो, हमारे दादाजी ने तो क्षेत्र मे कमरा बनवाया मेरी सामर्थ्य तो धर्मशाला बनवाने की है ताकि यात्री ठहरे। दूसरी दृष्टि मे लगता है कि यहाँ मेरा नाम लिखा देना चाहिए ताकि मालूम चल जाए कि इनके बुजुर्गों ने ऐसा पुण्य का काम किया है। अहो! कहीं ऐसे भाव आ गए कि यह हमारे परिवार का जिनालय है हमारे परिवार की धर्मशाला है, इसमे आपको कोई अधिकार नहीं है यहाँ से चलो तो नाम कभी नहीं लिखाना। इसलिए हमारे बुजुर्गों ने मदिर बनवाकर समाज को सौंपने के पहले व्यवस्था हेतु एक बहुत बडी भूमि (जायदाद) भी लगा दी, क्योकि पता नही यह लोग पूजा भी करेगे कि नही। भो ज्ञानी! एक को तो आल्हाद आ रहा है–अहो! 'मेरा सौभाग्य, मै ऐसे कुल मे जन्मा जिस कुल मे ऐसे जिनालय निर्मित किए गए हो, मैं उस वश का बीज हूँ, जिस वश मे जिनेन्द्र के मदिर बनवाए गए थे। अब तुम जिनालय की रक्षा नही, जिनालय मे जरूर आ जाना क्योकि जब तक जिनालय मे रहोगे तब तक पाँच पापो से तेरी रक्षा होती रहेगी और जब तक तू यहाँ रहेगा तब तक जिनालय को नष्ट करने वाले भाव स्वय भाग जाएगे। मनीषियो! पवित्र भाव आना ही पुण्य भाव हैं, क्योकि पाप की तीव्रता मे पुण्य भाव आ नहीं पाते, कर्ता भाव आ जाता है। भो चैतन्य! ध्यान रखना कि

कभी–कभी साधना करते–करते भी कर्म बध हो जाता है और साधना न करते अथवा साधना की भावना करने मात्र से कर्म की हानि हो जाती है। एक जीव साधना मे भी कर्तत्व भाव लिए बैठा है और एक जीव साधना को करते हुए कह रहा है कि मैं क्या कर सकता हूँ। देखो कैसी निर्मल दशा है। इसलिए कह दिया कि मन–वचन–काय को गुप्त कर लो। यदि आप साधना करना चाहते हो तो सपूर्ण इद्रियो के विषयो को रोक लो और अपने आप को छुपा लो।

भोज्ञानी! एक मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिगी भी यदि उत्कृष्ट साधना करता है तो वह उत्कृष्ट भोग पाता है। नागसेन आचार्य ने "**तत्त्वानुशासन**" ग्रथ मे लिखा है–अहो मुमुक्षु! यह सयम–साधना, ध्यान–आराधना चरम शरीरी के लिए मुक्ति और अचरम शरीरी के लिए भुक्ति प्रदान करती है। परतु साधना विफल नही जाती। मोक्षमार्ग की आराधना चरम शरीरी करेगा तो नियम से उसको तो मोक्ष होना ही है, लेकिन अचरम शरीरी की आराधना भी विफल नही जाती है, उसको ससार के भुक्ति की प्राप्ति होती है, लेकिन भुक्ति की प्राप्ति के लिए साधना मत करना। यद्यपि तुम भोगो मे लिप्त हो तो भी तुम मोक्षमार्ग की साधना करते रहना, क्योकि जितना है उतना तो तुम्हारे हाथ मे रहेगा, अन्यथा मूल से भी चले जाओगे। कम से कम इतना सयम तो कर लेना कि पुन इसी पर्याय मे आ जाएँ अन्यथा बनिया के बेटे भी कहाँ बचे तुम। सयमी हो करके भी तुम्हारी स्वभाव दृष्टि नहीं बन पा रही है क्योकि राग तुम्हारे अदर है, परतु द्वेष तो मत करो। अहो! जब द्वेष छूट जाएगा तो निश्चित है कि राग मद पडेगा और जैसे ही राग मद पडेगा तो वीतराग भाव का ज्ञान हो जाएगा। वीतराग भाव का ज्ञान हुआ कि वीतराग मार्ग पर चलना प्रारभ हो जाएगा। इसलिए राग नही द्वेष छोडो। हमारे आगम मे राग के दो भेद किये हैं प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग, पर द्वेष के दो भेद नही किए।

भो ज्ञानी! द्वेष जब भी होगा अप्रशस्त ही होगा। राग तो प्रशस्त हो सकता है लेकिन द्वेष अप्रशस्त ही होगा, और जहाँ द्वेष है वहाँ नियम से अप्रशस्त राग है। मैंने स्वय अनुभव करके देखा है द्वेष तभी आता है जब हम कही किसी से जुड जाते है। एक परिवार मे दूसरे पुत्र ने जन्म लिया तो बडे भईया की विडम्बना प्रारभ हो गई। उसी दिन से माँ का दुलार भी बँट गया और पिता का दुलार भी बॅट गया लेकिन ध्यान रखना उन्हे तो दूसरा बेटा मिल गया पर बेटे को दूसरे माता–पिता नही मिले। माँ दूसरी दृष्टि से देखना प्रारभ कर देती है पर बेटा दूसरी दृष्टि से नही देखता है, वह उतना ही ज्यादा गोदी मे चिपकता है पर माँ उसको पटकना प्रारभ कर देती है यहाँ से द्वेष प्रारभ हो जाता है। व्यवहारिक दृष्टि से देखते हैं तो जब प्रथम पुत्र पैदा होता है तो आप उसको कुछ ज्यादा ही दुलार देते हो और जिसको एक बार ज्यादा दुलार मिल गया हो, कालातर मे उसे तुम बाँटोगे तो बेटे को फीका लगता है। अहो मनीषियो! पर्याय के परिणमन को लेकर परिणामो का

परिणमन विकृत मत कर लेना, क्योकि सबध शाश्वत नहीं हैं। किसी के जीते जी विच्छिन्न हो जाते हैं, तो किसी के मरने के बाद। यदि हमारे जीते जी विच्छिन्न हो गए तो हमारा तीव्र अशुभ कर्म का उदय मानना। विच्छिन्न तो होते ही हैं, इसको तो कोई टाल नहीं सकता लेकिन आज से जोडने का ही प्रयास करूँगा और नहीं जुडे तो फिर इतना ध्यान रखना निज से जुडना मत छोड देना, कर्त्तव्य कर लेना, लेकिन उसमे भी सक्लेशता मत लाना कि हाय! अब मैं क्या करूँगा। अरे भाई! तुम फिर चितवन करना–एक तिर्यंच का, माँ कहीं रहती है, बेटा कहीं बिक जाता है, लेकिन फिर भी जीवन चलता है। यह स्वतत्र रहने का सूत्र है।

भो ज्ञानी! दूर रहना मोक्षमार्ग मे बाधक नहीं है, पर दुर्भावना मोक्षमार्ग मे बाधक है। पास रहकर दुर्भावना रहेगी तो मोक्षमार्ग मे बाधक है। अहो! दूर रहना तो सूर्य बनकर, कि कितनी दूर है पर सबको प्रकाश दे रहा है, लेकिन पास मे रह कर भी अधेरा हो तो जीवन मे कोई सार नहीं है। इसलिए पास रहकर उपवास करना, लेकिन उपवास करके दूर मत हो जाना, क्योकि आप ममता माँ की बातो मे चले गए थे। यह जिनवाणी समता की माँ है। ममता की माँ ढकेल सकती है, दूर भगा सकती है पर भो चैतन्य!समता की माँ तुझे सयम के पालने मे ही थपकियाँ लगाएगी। इसलिए ममता की माँ छूटती है तो छूट जाए पर समता की माँ को नही छोडना।

अहो मनीषियो! ध्यान रखना माँ जिनवाणी की गोद मे खेलने का पात्र वही होता है, जो यथारूप होता है। तुम जब जन्मे थे तब निर्विकार थे, इसलिए हमारे जिनशासन मे निर्ग्रंथ मुनिराज को यथाजात कहा है। यथाजात को देखने मे किसी को विकार नहीं आते, कोई आँख नही सिकोडता, नाक नहीं सिकोडता। भो ज्ञानी! विश्वास करना आप यहाँ नगे खडे हो जाओ तो यह सब भाग जाएगे और बालक आ जाए तो आप उसे गोदी मे बिठा लेगे तथा मुनिराज जी आ जाए तो तुम सिर टेक दोगे। नग्न वेष तो सुन्दर ही होता है, क्योकि वह प्रकृति का रूप है। अहो! विश्व मे वस्त्रधारियो की सख्या तो अगुलियो पर गिनने लायक है, लेकिन प्रकृति नग्न है। अत सत्य पर कोई चिन्ह लगाने की आवश्यकता ही नहीं, देखो पूरी प्रकृति कैसी नजर आ रही है?

भो ज्ञानी! जिसकी भोजन शुद्धि, भजन शुद्धि, आहार शुद्धि, विहार शुद्धि और निहार शुद्धि है उसकी व्यवहार शुद्धि है। जिसकी व्यवहार शुद्धि है, उसकी परमार्थ शुद्धि है और जिसकी व्यवहार शुद्धि नही है उसकी परमार्थ शुद्धि भी नही हो सकती। जहाँ व्यवहार शुद्धि हो जाती है, मनीषियो! वही निश्चय दृष्टि हो जाती है। आप सक्षेप मे इतना ही समझना कि अभेद दृष्टि निश्चय है और भेद दृष्टि व्यवहार। अभेद स्वरूप की लीनता निश्चय है और भेद स्वरूप की दृष्टि व्यवहार है।

मनीषियो! आप क्रिया तो करते हो, लेकिन विधि के अभाव मे निर्जरा नहीं कर पाते हो

जैसे आप लोग उपवास भी कर लेते हो, इतनी क्रिया ओर कर लिया करो उपवास के दिन अनासक्त चित्त हो जाना। क्योंकि धर्मध्यान मे, ऐसा नही है भूख लग रही है या नींद भी नही आ रही है तो चलो टेलीवीजन खोलकर बैठे, कैसे समय निकाले ? जिन्हे नीद नहीं आती वे पुण्यात्मा हैं उस नींद का दुरुपयोग न करे। अत सामायिक करे, जाप करे, स्वाध्याय करे पर नींद की गोली मत खाना, पागल होना हो तो खा लेना। अहो! जब नीद नहीं आए तो ग्रथ ले कर बैठ गए, उस स्वाध्याय से दो उपयोग हो गए–तुम्हे नीद आ जाएगी अथवा तुम्हारा जो दुर्ध्यान हो रहा था, वह नहीं होगा। भो ज्ञानी! इस बात का ध्यान रखना कि उपवास किया है तो रोज के वस्त्रो मे नही सोना। चटाई पर सोना कुछ लोगो को जाप करने का शौक रहता है अत चारपाई जिन पर तुम लोग सोते हो, उन्ही पर माला फेरना प्रारभ कर देते हो यह तुम्हारी द्रव्य शुद्धि नहीं है, तनिक पलग के नीचे बैठ जाया करो, परतु करना उनी चादरो पर बैठकर गद्दी पलग पर बैठकर भगवान की माला नही फेरना। प्रात उठकर सामायिक आदि क्रिया के पश्चात स्नान आदि करके भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करो। प्रासुकै द्रव्यै ' ऐसा नही कि आप अप्रासुक द्रव्य से कर लो, कच्चे पानी से अभिषेक कर डालो। प्रासुक द्रव्य से ही भगवान का अभिषेक करके पूजन की जाती है। कोई आगम मे नही लिखा कि अभिषेक न करो, पर पूजन की विधि अभिषेक पूर्वक होती है। वह तुम्हारी भूल है कि धूल झडाने के लिए भगवान का अभिषेक किया जाता है। अहो! भगवान आप तो स्वय पवित्र हो हम आपको क्या पवित्र करेगे? लेकिन दिन मे एक बार प्रभु का अभिषेक कर लिया करो। समवशरण मे भी चैत्य प्रसाद भूमि होती है उसमे भी अभिषेक–पूजन सब होता है। नदीश्वर द्वीप मे तीन–तीन बार भगवान की आराधना होती है। इसलिए मनीषियो! ध्यान रखना पुण्य अवसर को पाप मे नही बदल देना। अपने जीवन मे जो व्यवस्था जैसी हो, लेकिन आगम की विधि को ध्यान रखना, शुद्धि का लोप नही कर देना द्रव्य की शुद्धि से ही परिणामो की शुद्धि बनती है। इसी कारण व्यवहार शुद्धि अतरग शुद्धि का हेतु है।

"सप्तशील"

उक्तेन ततो विधिना नीत्वा दिवस द्वितीयरात्रि च।
अतिवाहयेत्प्रयत्नादर्घ च तृतीयदिवस्य ।। १५६।।

अन्वयार्थ – तत = उसके बाद। उक्तेन विधिना = पूर्वोक्त विधि से। दिवस = उपवास का दिन। च द्वितीयरात्रि = और दूसरी रात को। नीत्वा च = प्राप्त होकर फिर। तृतीय दिवस्य =तीसरे दिन का। अर्ध = आधा भाग भी। प्रयत्नात् = अतिशय यत्नाचारपूर्वक। अतिवाहयेत् = व्यतीत करे।

इति य षोडशयामान् गमयति परिमुक्तसकलसावद्य।
तस्य तदानीं नियत पूर्णमहिसाव्रत भवति ।। १५७।।

अन्वयार्थ – य इति = जो जीव इस प्रकार। परिमुक्तसकलसावद्य = सम्पूर्ण पाप–क्रियाओ से रहित। होकर षोडशयामान् = सोलह प्रहर। गमयति = व्यतीत करता है। तस्य = उसे। तदानीं = उस समय। नियत = निश्चयपूर्वक। पूर्ण = सम्पूर्ण अहिसाव्रत भवति = अहिसाव्रत होता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ८४||

भो मनीषियो! आचार्य अमृतचद्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है कि हमारे भावो की निर्मलता, परिणामो की विशुद्धता कैसे प्रादुर्भूत हो? अहो ज्ञानियो! तुमने जीवन मे आज तक अनन्त पर्यायो मे परिणामो को ही कलुषित रखा है। अब इस कलिकाल मे भी अपने आप को नहीं सुधार पाये, तो आगे इससे भी काला काल आने वाला है, उसका नाम छठवाँ काल है। जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खायेगा, अग्नि नहीं होगी नियम से नरक जायेगा। छठवे काल का जीव नियम से दुर्गति का पात्र होगा। "आचार्य पद्मप्रभमलधारि देव" "नियमसार जी" मे कह रहे है यदि अपने परिणामो को नहीं सँभाल पाये, अपने आस्था का दीप नही जला पाये, तो भो चेतन आत्मा! अब बुझे दीप तेरे जलने वाले नहीं, यानि इन साढे अठारह हजार सालों मे इस भरत क्षेत्र मे तुम्हारे आस्था का दीप नही जल पाया, तो अब कहाँ जाओगे ? मनीषियो! निज चेतन पर करुणा करो, निज प्रभु पर करुणा करो। जहाँ आस्था तुम्हारी जन्म ले लेती है, वहाँ पाषाण में परमात्मा झलकना प्रारभ हो जाता है। उस भील को देखना, जिसे मिट्टी मे गुरु दिख गया, क्योकि उसकी

दृष्टि में गुरु उसकी श्रद्धा मे बैठा था। अरे! श्रद्धा मे गुरु नहीं है, तो तीर्थंकर आदिनाथ के समवशरण मे पहुँचकर भी महामुनि तीर्थंकर भगवान नजर नही आये, क्योकि उसकी दृष्टि मे मिथ्यात्व छाया था। अहो! वह कोई दूसरा नही था, नाती ही था। यह दृष्टि का खेल है। दृष्टि निर्मल है, तो मनीषियो! सर्वत्र आपको भगवान नजर आते हैं और दृष्टि निर्मल नहीं है, तो तीर्थों में भी घूम आयेगा लेकिन तीर्थ नजर नहीं आयेगा। आचार्य योगेन्द्रदेव ने 'योगसार' जी मे लिखा है कि दर्शन ज्ञान, चरित्र से युक्त आत्मा ही तीर्थ है।

रयणत्तय सजुन्त जिउ उत्रिमु तित्थु पविन्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण ततु ण मतु ।। ८३।।(यो सा)

भो चेतन! ध्यान रखना जो परिणति अतरग की हो, वही परिणति बाहर की रखना। मति–श्रुत ज्ञान के बल पर तूने विपरीत परिणमन कर लिया तो जिनदेव सामने नही हैं, जिनवाणी मूक है गुरु ही हैं जो बोल रहे हैं कि जिनवाणी मॉ कह रही है– मेरे लालो! तेरी मॉ ने तेरे पुद्‌गल को जन्म दिया है, पर मैंने तेरी प्रज्ञा को जन्म दिया है। तेरे माता–पिता ने तो तुझे यह रक्त पीव से भरे मल–लिप्त शरीर को जन्म दिया है पर मैंने तेरी भगवती आत्मा को दिखाने वाली प्रज्ञा को जन्म दिया है और उस प्रज्ञा को प्राप्त करके कही तूने मेरी छाती पर पैर रख दिया, तो मनीषियो! सबके अपमान सहन कर लेना, पर मॉ जिनवाणी का सम्मान मत मटना। ध्यान रखना, कही भी पचपरमेष्ठी भगवान नहीं मिलेगे एक–मात्र जैन– शासन ऐसा है जिसमे अरहत–सिद्ध, आचार्य–उपाध्याय और साधु को भगवान की सज्ञा दी है। मनीषियो! भाग्य सुधार लो, भाग्य मानो, सौभाग्य मानो कि ऐसे कलिकाल मे भी हमे भगवान का रूप दृष्टिगोचर हो रहा है।

भो ज्ञानी! पडित टोडरमल जी, दौलतराम जी, बनारसीदास जी जैसे विद्वान तो तडफते–तडफते चले गये, पर इन्हे गुरु के दर्शन नही हुये। इसलिए जीवन मे यदि वीतरागवाणी का सवेदन करना है, वीतराग वाणी के वास्तविक रूप को समझना है, तो भो ज्ञानी आत्माओ! पुन दृष्टि डालना। एक मुमुक्षु जीव को पाषाण मे परमेश्वर दिखता है अज्ञानी ऊपर–ऊपर उछलता है, जबकि तत्त्व–ज्ञानी द्रव्यदृष्टि से देखता है कि अहो! मुझे एक पत्ते मे भी वही सिद्ध भगवान नजर आते है। विश्वास रखना चाहे आप मुनिराज बन जाना श्रावक बन जाना, यदि दृष्टि मे साम्यता–निर्मलता नही लाओगे तो ये वेष भी तुम्हे मोक्ष नही दे पायेगे।

भो ज्ञानी! द्रव्य चढाने का मतलब लोभ कषाय का त्याग है। हमारे यहाँ तो भगवान खाते नही है, प्रसाद भी नही बॅटता। लेकिन लोभ को समाप्त करने के लिए उत्कृष्ट द्रव्य को चढाया जाता है और वह ही तुम बन्द करोगे क्या? दान देना पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है और यदि श्रावक नहीं करता है, तो भो ज्ञानी! तू श्रावक कहलाने का पात्र ही नहीं है। ध्यान करना, अध्ययन

करना मुनि का मुख्य धर्म है। यदि ध्यान–अध्ययन मुनि नहीं करते तो वे मुनि कहलाने के पात्र नहीं हैं–ऐसा कुदकुद आचार्य महाराज ने 'रयणसार जी ग्रथ'' मे कहा है। हमारे आचार्यो ने किसी को नही छोडा है, दोनो को समझाया है, लेकिन दिक्कत यह है कि हम दूसरो को तो समझाते हैं, खुद नही समझते।

भो ज्ञानी! मोक्ष जाने के लिए कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है, वह तो शुद्ध उपयोग की दशा है। सामान्य रूप से प्रत्येक सम्यक्‌दृष्टि मुमुक्षु हैं। जिस दिन सम्यकत्व होता है उसी दिन मोक्ष की दृष्टि होती है, पर सयम अपेक्षा 'मुमुक्षु'–सज्ञा निर्ग्रंथ योगी को ही है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी और आचार्य पद्‌मप्रभमलधारि देव कह रहे हैं– चैतन्य चमत्कार का उद्‌भव तभी होगा जब अन्तरग से विषय वासना की गाँठ हट जायेगी। यदि वह नहीं हट रही तो दुनियॉ के पुण्य–कर्म किसी रूप मे कर लेना, लेकिन होगे बध के हेतु ही, छुडा नही पायेगे। आचार्य अमतृचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि जो व्यक्ति दान नही देता, पूजा नही करता, उपवास नहीं करता, वह महाहिसक है। दान लोभ–कषाय के शमन के लिए दिया जा रहा है, पूजन की जा रही है मिथ्यात्व एव अशुभ भावो के शमन के लिए। भो ज्ञानी! पर–द्रव्य के प्राणो का घात करना द्रव्य–हिसा है। पर जो राग से युक्त है कषाय से युक्त हैं, अपनी आत्मा का अपनी आत्मा के द्वारा घात कर रहा है यह कषाय ही आत्म–घात है। अहो! निज भावो का घात कर रहा है इस कारण अमृतचन्द्र स्वामी ने लोभी को भी हिसक कहा है क्योकि तूने पर–द्रव्य का राग छोडा, सोलह प्रहर तक तूने भोजन–सम्बध ी जो आरभ–समारभ या उसका त्याग किया और जो तेरी गिद्धता थी उसका भी शमन किया यह सब तूने पापो का त्याग करके व्रत का पालन किया है, इसलिए उपवास करना अहिसा और उपवास नही करना हिसा है।

भो ज्ञानी! बिना राग के तुम भोजन कर कैसे रहे हो? यह मायाचारी मत कर देना कि पुद्‌गल ने पुद्‌गल को खाया। भो मुमुक्षु आत्माओ! मेरी राग दृष्टि ने पुद्‌गल को चबाया है यानि पाप भी कर रहा है और साथ मे मायाचारी भी कर रहा है। विधि से उपवास की विधी को समझो, एक दिन पहले के मध्यान्ह भोजन के बाद आपको उपवास धारण कर लेना चाहिए वह धारणा कहलाती है और इस आधा दिन पहले आपको पाँचो पापों का त्याग कर देना चाहिए। फिर जिस दिन उपवास करेगे, उस दिन धर्म ध्यान मे समय निकलेगे। यहाँ द्वितीय दिवस, द्वितीय रात्रि यानि जिस दिन उपवास कर रहे हैं उसकी बात कर रहे हैं कि प्रयत्न–पूर्वक किसी प्रकार का पाप न करे, यत्नाचारपूर्वक बैठे चलें किसी जीव का वध न हो। वास्तव मे हमे लगना चाहिए कि आज उपवास किया है और आप तीसरे दिन प्रात. काल की सामायिक करेगे। आप बहुत उपवास करते हो, लेकिन विधी के अभाव मे आप कर्म–निर्जरा नही कर पाते। अत प्रात काल सामायिक करेगे, दैनिक क्रिया के बाद भगवान की पूजा करेगे, फिर सामायिक के बाद आपका भोजन होगा, यह

विधि है पारणा की।

भो चेतन! पात्र को दान दिये बिना यदि उपवासधारी भोजन करता है, तो उसका उपवास अधूरा है। भले आपको मुनिराज नहीं मिले, पिच्छीधारी नहीं मिले, तो कोई श्रावक को लिवा ले जाओ। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी लिख रहे हैं अष्टपाहुड' और 'रयणसार' ग्रथ मे कि पचमकाल मे जिस व्यक्ति को सच्चा श्रावक और साधु नहीं दिखे, बस अब मिथ्यादृष्टि की खोज करने नहीं जाना, उसका हाथ पकड लेना कि मिथ्यादृष्टि तू ही है। 'तत्त्वसार' मे भी यह गाथा आई है। इन तीन ग्रथो को देख लेना। जो पचमकाल के वर्तमान मे सच्चे साधुओ और सच्चे श्रावको को नहीं मानता है उन्हे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि वह मिथ्यादृष्टि है। इसलिए तीसरे दिन यह नहीं होगा कि महाराजश्री। सिर दर्द कर रहा है। आश्चर्य है कि उपवास कर लिया, परतु चाय नहीं छोड पा रहा है, कम से कम तुम उकाली ले लेते। अत तीसरे दिवस भी एक समय ही भोजन करेगा। वह दिन भी धर्म–ध्यान मे निकालेगा। ऐसे ही साधना के सस्कार बनेगे सम्पूर्ण सावद्य को छोडकर। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि श्रावक के पूर्ण अहिसाव्रत का पालन कर लिया करो अष्टमी और चतुर्दशी को।
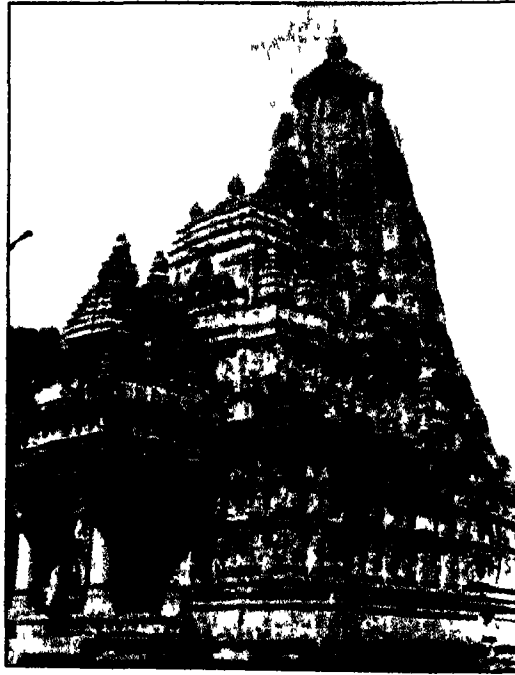
पार्श्वनाथ मदिर, खजुराहो

"महाव्रतो में वास उपवास है"

भोगोपभोगहेतो· स्थावरहिसा भवेत्किला मीषाम्।
भोगोपभोगविरहाद् भवति न लेशोऽपि हिंसाया।। १५८।।

अन्वयार्थ·– किल अमीषाम् = निश्चय करके इन देशव्रती श्रावको के। भोगोपभोगहेतो = भोगोपभोग के हेतु से। स्थावरहिसा = स्थावर जीवो की हिसा। भवेत = होती है, (किन्तु) भोगोपभोगविरहात् = भोगोपभोग के त्याग से। हिसाया लेशोऽपि = हिसा का लेश भी। न भवति = नहीं होता।

वाग्गुप्तेर्नास्त्यनृत न समस्तादानविरहित स्त्येम्।
नाब्रह्म मैथुनमुच सगो नागेप्यमूर्च्छस्य।। १५९।।

अन्वयार्थ –वाग्गुप्ते = (उपवासधारी पुरुष के) वचन गुप्ति के होने से। अनृत नास्ति =झूठ वचन नही है। समस्तादानविरहत = सम्पूर्ण अदत्तादान के त्याग से। स्तेयम् न = चोरी नहीं है। मैथुनमुच = मैथुन के। छोड देने वाले के अब्रह्मन अगे = अब्रह्म नही है और शरीर मे। अमूर्च्छस्य = निर्ममत्व के होने से सग अपि न = परिग्रह भी नही है।

इत्थमशेषितहिसा प्रयाति स महाव्रतित्वमुपचारात्।
उदयति चरित्रमोहे लभते तु न सयमस्थानम्।। १६०।।

अन्वयार्थ –इत्थम् = इस प्रकार। अशेषितहिसा = सम्पूर्ण हिसाओ से रहित। स = वह। प्रोषधोपवास करने वाला पुरुष उपचारात् = उपचार से या व्यवहार नय से। महाव्रतित्व प्रयाति = महाव्रतीपने को प्राप्त होता है। तु चरित्रमोहे = परन्तु चारित्र मोह के उदयरूप होने के कारण। सयमस्थानम् = सयम के स्थान को अर्थात् प्रमत्तादिगुणस्थान को। न लभते= नही पाता।

|| पुरुषार्थ देशना || ८५||

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अपूर्व सूत्र दिया है कि सम्पूर्ण विकारो का

जनक असन है। असन दृष्टि ही वासना दृष्टि है। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार शुद्धि ये चारो तेरे पास हैं, लेकिन जिसका व्यापार शुद्ध नही उसका व्यवहार कैसा? उसका भोजन कैसा? अरे। भोजन शुद्धि नही अर्थात असन शुद्ध नहीं तो वसन शुद्ध कैसा? जिसके घर मे बर्तन ही शुद्ध नहीं हैं उसकी भाव शुद्धि कैसी? जैनदर्शन मे ऊपरी शुद्धि की चर्चा नहीं की है अपितु बाह्य शुद्धि के साथ–साथ अन्तरग शुद्धि की भी चर्चा की है। शुद्ध सोने से कृत्रिम सोने मे चमक ज्यादा आ सकती है। अत आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि मोक्षमार्ग कृत्रिम मार्ग नही है, भूतार्थ मार्ग है, सोलह–ताव का शुद्ध सोना है। आचार्य योगीन्दु देव परमात्म–प्रकाश ग्रथ' मे लिख रहे है–भो चेतन। जो तेरा स्वभाव है वह तू कभी कह नही पायेगा। इस कषाय के कारण तू जीवन मे कसा जा रहा है और उसी परिणति मे आज तू सन्तुष्ट हो गया। यानि व्यवहार मे तू सन्तोष धारण कर रहा है। ज्ञान– दर्शन स्वभावी आत्मा को क्रोधी–आत्मा कहने मे तुझे पाप नही लग रहा है।

भो ज्ञानी। जिनवाणी मे कहा है देव का अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है। 'योगसार ग्रथ' कह रहा है कि इस देहदेवालय मे आत्मदेव विराजा है। इन कागजो के पृष्ठो को यदि कहीं हमने जमीन पर रख दिया तो वीतराग जिनेन्द्र की वाणी द्रव्यश्रुत का अवर्णवाद है।कोई जीव ध्यान मे लीन है, यदि उसकी तूने अवहेलना कर दी तो भावश्रुत का अवर्णवाद कर दिया। एक छोटा सा शिशु भी तोतली आवाज मे 'णमो अरिहताण' बोले तो तुम सिर झुका लेना। क्योकि उसके भाव अरहत की वन्दना के है उसकी वाणी अरहत की वन्दना कर रही है और उसकी काया अरहत की वन्दना कर रही है। जो अरहत की वन्दना कर रहा है वह स्वय वदनीय हो चुका है। जीवन मे ध्यान रखना कि पुण्यात्मा जीव के भावो मे अरहत वन्दना उत्पन्न होती है और पुण्यात्मा जीव का शरीर अरहत वन्दना करता है। यदि अशुभ कर्म के योग मे मिथ्यात्व की वदना होती है तो असयम की वन्दना होती है और जब अरिहत वन्दना के भाव आते है तो अन्दर की क्रन्दना दूर होती है, अर्थात् सक्लेषता की हानि होती है।

भो ज्ञानी। कभी–कभी पुण्य–द्रव्य इकट्ठा होकर पापरूप मे फलित होता है। परिणाम देखना, एक तिर्यंच स्वर्ग मे देव हो रहा है और एक तिर्यच नरक जा रहा है। तिर्यच ने सक्लेष भाव से मरण किया अत नरक गया। इसीलिए गतिबधक, गति दाता–प्रदाता कोई नहीं है। गतिमान–मन ही गतिदाता गतिमान–मन ही गतिप्रदाता है। गतिमान–मन ही नरक देता है, गतिमान–मन ही निगोद देता है। इसीलिए मन को मना ले तो तू भगवान बन जाये यदि खोटा मन मचल गया तो वही अधोगति मे ले जाता है। एकान्त मे बैठकर यदि आपके किसी के प्रति गलत विचार हो गये तो पता नही वो विचार कहाँ तक चले जाएँ और कहा तक नीचे ले जाये ? यदि

वे ही विचार उत्कृष्ट हो जायें तो सिद्ध भगवान दिखा देते हैं। अत खोटे मन को मित्र बना लेना कि तुम मेरा सहयोग करो, मुझे नीचे मत ले जाओ।

भो ज्ञानी! पूर्णमासी के चन्द्र की तरह शुद्ध–उपयोग की परमदशा है। जहा चारित्र मे इतनी निर्मलता आती है वही ज्ञानधन अखण्ड आत्मा उस चन्द्रमा से भी पवित्र है। अहो! चाँद तू चमकता अवश्य है, पर तेरे मध्य मे कलक का टीका है। किंतु चेतन–चद्र मे जीने वालो के चारित्र की चाँदनी मे कोई दोष नहीं हो सकता। यदि चारित्र की चाँदनी मे दोष है तो उसमे चैतन्य पिड आत्मा झलकता नही है। अल्पदोष भी सयम की निर्दोषता को समाप्त कर देते हैं और जहाँ सयम ही नही होता है वहा आत्मदर्शन कैसे हो सकता? अर्थात् दोषो (असयम) के पिड मे निर्दोष चैतन्य आत्मा नही झलकता।

भो चेतन! अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा ये तीनो चैतन्य–रस का ही परिणमन है, लेकिन तीनो के स्वाद मे अन्तर है। कभी एक दाढ के नीचे दबाना मिश्री, एक दाढ के नीचे दबाना गुड तथा जीभ पर रख लेना खाड–शक्कर, अब बताना स्वाद कैसा आ रहा है? देखो एक साथ तो आप बता नहीं पाओगे अलग–अलग जीभ फेरना पडेगी। भो ज्ञानी! समझ लो, जिसकी जीभ घूम रही है उसको भी घूमना है और जिनकी जीभ स्थिर हो गई उनका ससार अब स्थिर होने वाला है। इस जीभ ने ही तो सबके काम बिगाडे हैं। यदि यह जीभ वचन रूप से खिर जाये अर्थात कान का विषय बन जाये तो महाभारत करा देती है और यह जीभ भोजन पर फिर जाये तो सुन्दर पकवानो को मल बना देती है। जिसने बहिरात्मा का अनादि से स्वाद लिया हो उसे अन्तरात्म भाव झलकता ही नही है। जैसे गुड को अन्य रसायन डालकर शुद्ध किया तो पीले वर्ण की खॉड बन गया। उसी रस से और समझ मे आ रहा है कि स्वाद कुछ और भी है। जैसे ही वह पीला वर्ण गया कि शुद्ध मिश्री बन गई और डली के रूप मे आ गई, यह है परमात्म–दशा।

भो ज्ञानी! जिसने दो को नहीं जाना, वह तीसरे को प्रकट नही कर पायेगा और हम यही भूल कर रहे हैं कि पहली अवस्था मे वह तीसरी को देख रहे हैं। यद्यपि पहली अवस्था मे तीसरे की जानकारी रखना तो परम आवश्यक है, परतु पहली अवस्था को तीसरी अवस्था मान लेना ही परम भूल है। अहो! ध्यान की ज्वाला पर आत्मा जब तक नहीं रखी जाती, तब तक हिसात्मक–भाव नही मिटेगा, परतु धर्मध्यान होने पर मिट जायेगा। लेकिन अज्ञानता ये चल रही है कि परमात्म भाव और अन्तरात्म भाव का उदय हुआ नहीं फिर भी बहिरात्म भाव में ही हम अपने आपको भगवान को मानना प्रारम्भ कर देते हैं। भो ज्ञानी! जहाँ प्रक्रिया बिगडी, वहाँ सब किरकिरा हो गया। अत पहले ये देखो कि प्रशम, सवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और श्रद्धा का रस टपक रहा है कि नही टपक रहा है? यदि कही अश्रद्धा का कीट बैठ गया तो निगोद जाना पडेगा, अत मिथ्यात्व के कीट को हटा

देना। अहो! इस पुद्गल से तूने भोग भोग लिया तो रोना–ही–रोना है और इस पुद्गल को निर्ग्रंथ बना दिया तो आनन्द ही आनन्द है। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि तीनो अवस्थाओ को समझ लो, तो परमात्मा बन जाओगे। भो ज्ञानी! यदि मुनि बनोगे तो व्रत–परिसख्यान का नियम करना पडता है। अत उसका अभ्यास कर लो और भोगो का परिमाण कर लो। यह नही हो सके तो कम से कम जब रसोई घर मे जाओ, तब मौन ले लेना। जो पहली बार परोसा गया उतना ही लेना और बिल्कुल शान्त भाव से पानी पीकर चले आना। फिर देखना आज का दिन कैसा निकलता है? जब आज का दिन अच्छे से निकल जाये तो फिर तनिक और बढा देना। ऐसा नहीं सोचना कि कल कर लिया, वह बहुत हो गया। यह तुम्हारे भोगो पे भोगपरिमाण व्रत चल रहा है।

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्तवा पुनश्च भोक्तव्य ।
उपभोगोऽशनवसन प्रभृति पचेन्द्रियो विषय ।। ८३। र क श्रा ।।

जो एक बार भोगा जाये वह भोग कहलाता है और जो बार–बार भोगा जाये वह उपभोग कहलाता है– यह शिक्षाव्रत है। यदि जीव को साधु बनना है तो पहले शिक्षाव्रत का पालन करना अनिवार्य है। क्योकि यहॉ से तुम्हारी गृद्धता कम होगी। ऐसा नियम लेकर दूसरे के घर मे भोजन करने जाना।यदि ऐसे सज्जन फॅस जाये जो पूछ–पूछ कर दे अथवा दस आदमी सामने बैठ जाये तो शर्म के मारे तुम हाथ धोकर बैठ जाओगे। अब सोचना साधु का आहार करना ही तपस्या करना हो जाता है। भीड लगी हो और सब देख रहे हो, इसके बाद भी कोई कह रहा तो भी यह नही लेते। 'पराधीन मुनिवर की चर्या, पर घर जाये मॉगत कछु नाही।

भो चेतन! आज अभ्यास जरूर करना फिर देखना कि यदि आपने शाति से कर लिया तो घर के लोग तुम्हारे ऊपर दूनी श्रद्धा करेंगे। बस फिर आपको अनुभव हो जायेगा कि बाह्य–सयम की क्या महिमा है? लेकिन आप मौन रहना, कुछ मागना नही। मौन सब इन्द्रियो को वशीकरण करने का उपाय है यह गृद्धता को वशीकरण करने का उपाय है। अहो! रोटियो के टुकडे के पीछे दीनता प्रकट मत करना। श्रावक व्रतो का पालन करने वाले को आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी समतभद्र स्वामी ने महाव्रती सदृश्य कहा है। ध्यान रखना पाषाण के भगवान की आराधना भी उतना ही फल देती है जितना साक्षात परमात्मा कीआराधना फलती है–ऐसा आचार्य पदमनदी स्वामी ने **"पद्मनदी पचविशतिका"** मे कथन किया है। अहो! पचमकाल के मुनियो मे तुम चतुर्थ काल को निहारो, तुम्हे वही पुण्य मिलेगा जो चतुर्थकाल के मुनियो की वन्दना मे मिलता है। पर इतना ध्यान रखना कि अपने मन को खट्टा नही करना क्योकि खट्ठे मनो से कभी भगवान नही बन सकते। एक सॉप डाल रहा है और एक साप निकाल रहा है और ये कह रहे हैं अहो! यह भी भटकता भगवान है, कभी निर्दोष हो जायेगा। देखो यशोधर मुनिराज का उदाहरण। सत हृदय वही होता है जो शत्रु–मित्र

को समान आशीष देता है। जैन सत किसी को श्राप नहीं देते, वरदान नहीं देते मात्र आर्शीवाद देते हैं। यदि वरदान देगे तो राग, श्राप देगे तो द्वेष और आशीर्वाद देगे तो हितोपदेश।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं,कि जब तुमने भोगो का परिमाण कर लिया जैसे आज आपने नियम ले लिया कि मैं एक बार भोजन करूँगा तो एक बार भोजन मे तो हिसा होगी, पर दूसरे बार की हिसा बच जायेगी। देखो, आपके अन्दर कितनी करुणा रहती है? कम खाने से काम चल जाता तो कम ही खाया करो। भोगोपभोग परिमाण मे त्रस–हिसा का त्याग तो देशव्रती के होता ही है लेकिन जो स्थावर हिसा चल रही थी उसमे भी परिमाण कर लो। यदि उपवास किया तो पूरे पाप छूट गये और उपवास नहीं किया, मात्र परिमाण किया तो एक बार मे बनाने वाले भोजन की तज्जन्य हिसा बच गई। आप मर्मभेदी शब्द किसी से मत कहना क्योकि हिसा का दोष लगेगा। उस समय मौन ले लिया करो। कम से कम मदिर मे मौन रखा करो कि तत्त्व की चर्चा के अलावा अन्य कोई चर्चा नही करेगे अर्थात् राग–द्वेष की चर्चा नही करेगे। अत हिसा चली गई और असत्य भी गया। सम्पूर्ण पदार्थों को ग्रहण करने को उसने त्याग कर दिया है इसीलिए उसकी चोरी भी चली गई। जिसने उपवास किये है वह अब्रह्म का सेवन कैसे करेगा? उसका मैथुन का त्याग हो गया तो कुशील भी गया। अत आचार्य भगवन् कह रहे है जिसको शरीर से ममत्व नही होता, वही उपवास कर पाता है।

पार्श्वनाथ मदिर, खजुराहो

"न करो भक्षण अभक्ष्य का"

भोगोपभोगमूला विरताविरतस्य नान्यतो हिसा।
अधिगम्य वस्तुतत्त्व स्वशक्तिमपि तावपि त्याज्यौ।। १६१।।

अन्वयार्थ विरताविरतस्य = देशव्रती श्रावक के। योगापभोगमूला = भोग और उपभोगो के निमित्त। से होने वाली हिसा = हिसा होती है। अन्यत न = अन्य प्रकार से नहीं होती। (अतएव) तौ अपि = वे दोनो अर्थात् भोग और उपभोग भी। वस्तुतत्त्व अपि स्वशक्तिम्= वस्तुस्वरूप को भी अपनी शक्ति को। अधिगम्य = जानकर अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार। त्याज्यौ =छोडने योग्य है।

एकमपि प्रजिघासुनिस्तनहन्त्यनन्तान्यतस्ततोऽवश्यम्।
करणीयमशेषाणा परिहरणमनन्तकायानाम् ।। १६२।।

अन्वयार्थ तत = क्योकि। एकम् अपि = एक साधारण देह को अर्थात्। कन्दमूलादि को भी। प्रजिघासु= घातने की इच्छा करने वाला पुरुष। अनन्तानि निहन्ति या = अनन्त जीव मारता है।अत अशेषाणा = अतएव सम्पूर्ण ही। अनन्तकायानाम् = अनन्तकायो का। परिहरणम् अवश्य करणीयम् = परित्याग अवश्य ही करना चाहिए।

नवनीत च त्याज्य योनिस्थान प्रभूतजीवानाम्।
यद्वापि पिण्डशुद्धौ विरुद्धमभिधीयते किचित् ।। १६३।।

अन्वयार्थ च प्रभूतजीवानाम् योनिस्थान =या और बहुत जीवो का उत्पत्ति–स्थानरूप। नवनीत त्याज्य =मक्खन त्याग करने योग्य है। वा पिण्डशुद्धौ = अथवा आहार की शुद्धता मे। यत्किचित् = जो थोडा भी। विरुद्धम् अभिधीयते = विरुद्ध कहा जाता है। तत् अपि = वह भी त्याग करने योग्य है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ८६ ।।

भो मनीषियो! भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है कि जीवन मे

अमूर्तिक समरसी भाव का आनद लूटना है, तो मूर्तिक विषयो की अनुभूति का विसर्जन करना होगा। मनीषियो! पौद्गलिक पिण्डो मे आत्मानद कहाँ और आत्मानदी को पौद्गलिक पिण्डों की अनुभूति कहाँ? वह ग्रीष्म-- काल में शीत--काल और शीत--काल मे ग्रीष्म--काल की अनुभूति करना चाहता है। स्वात्मानुभव शीतल अनुभूति है। भोगो की ज्वाला ग्रीष्मकाल की तपती दोपहरी है।

भो ज्ञानी! मोक्ष आस्रव से नहीं, मोक्ष तो सवर से होगा और सवर तभी होगा, जब इच्छाओ का निरोध होगा। जिसकी इच्छाए असीम है, उनका ससार असीम हैं। जिनकी इच्छाओ की सीमाए हैं, उनके ससार की सीमाए भी हैं। बस, समझना अपने परिणामों से कि मेरी इच्छाएँ कितनी हो चुकी हैं। समझ लेना इच्छाएँ सूख गई हैं, तो ससार सूख जाएगा। भो चेतन! प्रभु शीतलनाथ स्वामी के चरणों मे बैठकर भी ऊपर चक्र चल रहा है और नीचे प्रवचन चल रहा है। एक ओर समयचक्र अर्थात् काल चक्र है तो दूसरी ओर कर्मचक्र है। भगवान के चरणों में पखा लगाकर ध्यान कर रहे हो, अब सोचना वायुकायिक की हिसा हो रही है या नहीं? अब कई जगह मन्दिर मे कूलर भी हो गये, जिनसे त्रसजीवो का घात किया जा रहा है और "मैं तो चिद्रूप हूँ" कह रहा है। तू चिद्रूप है पर अनत सिद्धो के रूप का भी तुम घात मत करो। वह पूजा--पाठ का साधन नहीं है। अहो सुखियो! विद्यार्थी को सुख नहीं मिलता और सुखार्थी को कभी विद्या नहीं मिलती। भगवान शीतलनाथ स्वामी के सुख तो निराबाध अव्याबाध हैं। इनके सुख बाधा से मुक्त हैं, निर्बाध हैं। इसलिए ऐसे सुख की बात करो, जिसके बाद दुख का लेश न हो। लेकिन मिलेगा तभी, जब वर्तमान के सुखों का स्वेच्छा से पलायन होगा। मालूम चला कि दाँत मे कीडा लग गया तो वैद्य ने कहा-- मीठा खाना छोड दो, नही तो दात निकालना पडेगा। चलो भैया, नहीं खाएँगे। अहो त्यागी! दात के लोभ मे छोडा है, इच्छा का निरोध नहीं किया है। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि उपवास के दिन तो आपने भोग--उपभोग छोड दिये थे, इसलिए अहिसा व्रत आपके साथ था और आप महाव्रती के तुल्य थे।

भो ज्ञानी! किसी व्यक्ति को रामलीला का राम बनाया जाए तो वह सोचता है कि देखो मे राम बना हूँ। जब नाटक के राम बनना इतना आनद लाता है कि मैं राम हूँ तो, भो चेतन आत्माओ! कौशल्या के राम को कितना आनन्द होगा? महाव्रती को कितना आनद होगा। पडित दौलतराम जी साहब से पूछ लो-- "यो चिन्त्य निज मे थिर भये, तिन अकथ आनद जो लहयो।" निज लीन मे योगी को 'आचार्य योगेन्द्रदेव सूरी" 'परमात्म प्रकाश' मे लिख रहे हैं कि करोडो देवागनाओ के उपभोग मे जो सुख देवो को नहीं है, वह सुख क्षणार्ध मे एक निर्ग्रंथ योगी को है। युक्ति मत समझना, अनुभव करके देखना। इतने सारे लोग, फिर भी शात बैठे हो। हकीकत बताऊँ--आप प्रवचन का आनद नहीं लेते, आप वास्तव में यहाँ शाति का आनद ले रहे हो। दिन मे एक क्षण भी शाति का अनुभव हो जाए, तो दिन मगलमय होता है। चौबीस घटे मे एक मिनिट भी ध्यान लग जाए

तो इतनी ऊर्जा मिलेगी कि तुम दिनभर फूल से महकोगे। आप एक घटा सामायिक करना जैसी होती है वैसी, फिर आप वेदन करोगे कि मुझे कुछ मिला है। जब मन सामायिक मे होगा, उस समय भोजन में नही होगा, व्यसन में भी नही होगा, बस्ती मे भी नही होगा, भो ज्ञानी! निज की बस्ती मे, निज की मस्ती मे जो लीन होगा, उसका नाम सामायिक होगा। परतु तुम पुद्गलो की मस्ती मे झूल रहे हो। भौतिकता मे जीने वाली आत्माओ! पुराने भवन नवीन बना लेते हो, पर तेरा पुराने चरम का खण्डहर बनने पर पुन यह युवा का भवन नहीं बनेगा। भो ज्ञानी ! यह पुण्य के फूल खिले हैं, मुरझा जायेगे, तब तुम्हे कोई दो कौडी को नहीं पूछेगा। एक घटना छतरपुर की है। तालाब के किनारे राजमहल, उस महल के आगे ' डेरा पहाडी" तीर्थ है। वहाँ से जब जा रहा था तब कुछ नवयुवक कहने लगे–महाराज श्री! देखो जिस भवन मे सम्राट राज्य करता था, वह आज कटोरा लिए एक भोजनालय की दुकान के नीचे खडा कह रहा है कि एक जलेबी डाल दो। ओहो! जिसने पूरे देश को जलेबी खिलायी हो, छतरपुर नरेश छत्रसाल के वशज उस व्यक्ति को आज कोई दो कौडी का नहीं पूछ रहा है। तब लगा, ओहो! ससार मे सबसे बडा धोखेबाज कोई है तो वह पुण्य है। इसलिए पुण्य तो करना लेकिन पुण्य के फल मे मस्त मत हो जाना। सातवे नरक मे वही जीव जाता है जो सिद्धालय जाने की शक्ति रखता है। पुण्य–प्रकृति का जो दुरुपयोग कर लेता है, वह नरक का अधि ाकारी बन जाता है। इसलिए दृष्टि तुम्हारे पास है, वस्तु तुम्हारे पास है। अब भी भूल को नही भूल पाये तो भगवान बनना बहुत दूर है इसान भी नही बन पाओगे। भूल सुधार लो अमृतचद्र स्वामी की बात को मान लो, मौका है। अभी, सॅम्हल जाओ। यह पुण्य का योग चल रहा है। ऐसे जो द्रव्य भले भक्ष्य हो, उनका भी आपको परिमाण कर लेना चाहिए। यदि एक दाल, एक शाक रोटी से काम चल रहा है तो जीने के लिए बहुत सारे पदार्थ खाने की कोई आवश्यकता नही। ध्यान से समझना–जीवन मे जीने के लिए बहुत कुछ नहीं खाना पडता। पर इन्द्रिय की लोलुपता के पीछे पता नही तुम कितना खाते हो? कम खाओगे, तो शुद्ध खाने को मिलेगा जितना ज्यादा खाओगे, उतना ही अशुद्ध मिलेगा। भो ज्ञानी! जीवन मे ध्यान रखना–आपने धर्म तो बहुत किए हैं, जाप–अनुष्ठान स्वाध्याय कर लिया, पर वास्तव मे तुम्हे भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक नही है, हेय–उपादेय का ज्ञान नहीं है। जिसे आपा–पर का भेद–विज्ञान हो जाये, वह दूसरे की लाशो को खायेगा क्यो? आप जीव नहीं खाते आप लाशे खाते हो, क्योकि रात मे दूध–पानी चल रहा है। जिन–जिन जीवो ने पच–परमेष्ठी की अवहेलना की भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक नही रखा, धर्म क्षेत्रो मे आकर मायाचारी की, वे ऐसी तिर्यंच पर्याय को प्राप्त हुए कि एक सॉंस मे अठारह बार मरना पडा। क्या जीवन है? देखो! वे ही जीव टपक रहे हैं बेचारे जिन्होने भोगो की रोशनी मे आत्मा के योग को नष्ट किया था, तो वे आज लाईट मे झुलस रहे हैं। एक वाहन चला जाये, तो लाखो चले गये, करोडो चले गये। उस पर्याय पर भी ध्यान रख लिया करो कि हे भगवन्! कहीं मेरी ये पर्याय न हो जाये। जिसने

दुर्गति का बध कर लिया उस जीव के लिए जैसा जनम–मरण होना है उसे जिनेन्द्रदेव भी नहीं बचा पायेगे।

भो ज्ञानी! एक दिन की घटना है, छिपकली जा रही थी। बल्ब जल रहा है और पतगा भी आ गया। छिपकली को भगाया जा रहा है और पतगा दौड–दौडकर छिपकली के मुह की ओर आ रहा है। एक बार दोनो को अलग कर दिया, लेकिन दशा देखो इस जीव की–पुन घूम–घाम कर आ ही गया और छिपकली ने उसको पकड ही लिया। अहो ज्ञानियो! दीपक नहीं, बल्ब जल रहा था और कीडे गिर रहे थे और आप समयसार पढ रहे थे और छिपकलियाँ खा रही थीं। भो ज्ञानी! तू शुद्धात्मा की बात कर रहा था कि हिसा कर रहा था? ऐसे काल में वह दीपक बद करके और ऑख बदकर तू ध्यान कर लेता, माला फेर लेता तो वह ज्यादा श्रेष्ठ होता। सोचो कि जिनवाणी पढना उत्तम है या हिसा? दोनों उत्तम नही है। जीव की रक्षा करना उत्तम है। यह किसी से मत कह देना कि कहाँ तुम यह सोले–मोले के ढोग मे हो इतनी देर शास्त्र पढ लेते, तो परिणाम अच्छे हो जाते। भो ज्ञानी! शास्त्र का फल है–शुद्ध आहार, शुद्ध विहार और गृहस्थो के लिए शुद्ध व्यापार क्या इतना नही सीख पाए? यहाँ आप जिनालय मे आकर स्वाध्याय करना और दुकान पर जाकर चालीस के चार सौ करना। थोडी ईमानदारी भी बरतो, परिणाम मे ऋजुता भी लाओ। अपनी शक्ति के अनुसार भोगोपभोग मे भी अब प्रमाण कर लेना। गाजर, मूली, कदमूल, अदरक खाने वाली भगवान आत्माओ! ध्यान से सुनना। वह मगरमच्छ छोटी–छोटी मछिलयो को दात मे फसाये रहता है ऐसे ही जिनके मुख मे बाजार की जलेबी रखी हो और कद रखे हो और फिर माइक्रोस्कोप से देखना। जैसे घडियाल के दातो पर एक–एक मछली फॅसी है, ऐसे इनके दातो पर एक–एक जीव फसे हैं चबा रहे हैं और कहते जा रहे है "मैं तो त्रैकालिक शुद्ध हूँ और सब त्रैकालिक की लाश को खा गये। सोचना फिर भी ग्लानी नहीं आ रही। रात्रि मे दूध, पेडा, मलाई खा रहे हैं झीगुर और चींटा इन सबकी टागे चबा रहे हैं, फिर भी धीरे से कह देते है कि हम तो श्रावक हैं। भो ज्ञानी! यदि इतना नही छोड़ पा रहा, तो वह श्रावक कहलाने के पात्र नहीं है। सामूहिक शादी–विवाह मे भोजन करने जा रहे हो भैया। उसकी भट्टियां रात्रि मे जलती हैं। दिन मे खिला भी दिया पर रात्रि में तो सब बनाया है। इसीलिए सामूहिक भोज करने वाले अपने आप को मत कह देना कि मैंने रात्रि मे भोजन छोड़ दिया है। मूलाचार मे सोठ, पीपल इनको औषधि कहा है। वह काष्ठ वनस्पति है सुखाने पर रेशे से निकलते हैं। वनस्पति के दो भेद किये–काष्ठ और कन्द। काष्ठ भक्ष्य है–कन्द अभक्ष्य है, ऐसा "मूलाचारजी" मे लिखा है। तो सूखी सोठ सूखी हल्दी भक्ष्य है, पर गीली सोठ और गीली हल्दी दोनों को आगम मे अभक्ष्य ही कहा है। कुछ वनस्पतिया मूल मे अभक्ष्य होती हैं, मध्य मे भक्ष्य हो जाती है और कुछ वनस्पतिया मध्य मे अभक्ष्य हो जाती हैं। इस प्रकरण को समझना

हो तो "गोम्मट्सार जीवकाण्ड ग्रथ" और "मूलाचार " मे इसका विशेष कथन किया है।

भो मनीषी! आजकल परम्परा प्रारभ हो गई है कि घी नहीं खायेगे पर मक्खन जरूर खायेंगे। लेकिन ध्यान रखो, मक्खन अभक्ष्य ही होता है और जिस व्यक्ति ने आठ दिन की मलाई रखकर, आठवे दिन उसको गरम करके घी निकाल लिया और कह रहे, महाराज! शुद्ध सोला का है। मर्यादा चौबीस घटे की थी और आपने मलाई आठ–आठ दिन की निकाली। सुनो! सूखा खा लेना सूखा खिला देना, लेकिन जीवो के निचोड को शुद्ध कहकरके किसी व्यक्ति को ठगना मत। बाहर से पीपे के पीपे आ रहे है और कह रहे हैं कि अशुद्ध घृत हो गया परतु आगम कहता है कि अठपहरा होना चाहिए। सुनो! शुद्ध तेल निकलवा कर खा लेना, परतु ऐसे घी का उपयोग नही करना। बताओ! तुम शुद्ध घी–दूध तो खा पी नही पा रहे शुद्ध आत्मा को कैसे निहारोगे?
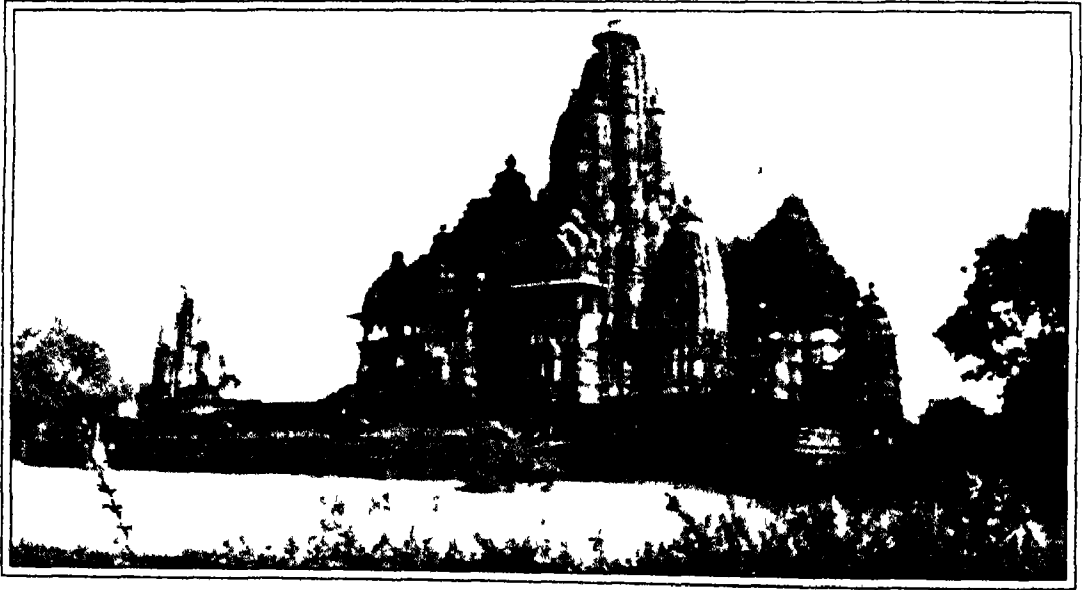
जैन मदिर समूह, खजुराहो

"करो सीमा मे सीमा"

अविरुद्धा अपि भोगा निजशक्तिमपेक्ष्य धीमता त्याज्या।
अत्याज्येष्वपि सीमा कार्यैकदिवानिशोपभोग्यतया ।। १६४।।

अन्वयार्थ धीमता निजशक्तिम् = बुद्धिमान पुरुष के लिये अपनी शक्ति को। अपेक्ष्य अविरुद्धा = देखकर। अविरुद्ध भोगा अपि = भोग भी। त्याज्या = त्याग देने योग्य हैं। और यदि अत्याज्येषु = उचित भोगोपभोगो का त्याग न हो सके तो उनमे। अपि एकदिवानिशोपभोग्यतया = भी एक दिन रात की उपभोग्यता से। सीमा कार्या = मर्यादा करनी चाहिये।

•

पुनरपि पूर्वकृताया समीक्ष्य तात्कालिकी निजा शक्तिम्।
सीमन्यन्तरसीमा प्रतिदिवस भवति कर्तव्या ।। १६५।।

अन्वयार्थ पूर्वकृताया सीमनि पुन अपि = प्रथम की हुई सीमा मे फिर भी। तात्कालिकी =उसी समय की अर्थात् विद्यमान समय की। निजा शक्तिम् समीक्ष्य = अपनी शक्ति को विचार करके। प्रतिदिवस = प्रतिदिन। अन्तरसीमा = अन्तरसीमा अर्थात् सीमा मे भी थोडी सीमा। कर्तव्या भवति = करने योग्य होती है।

इति य परिमितभोगै· सन्तुष्टस्त्यजति बहुतरान् भोगान्।
बहुतरहिसाविरहात्तस्याऽहिसा विशिष्टा स्यात् ।। १६६।।

अन्वयार्थ . य इति परिमितभोगै = जो गृहस्थ, इस प्रकार मर्यादारूप भोगो से। सन्तुष्ट बहुतरान् = सन्तुष्ट होकर अधिकतर। भोगान् त्यजति = भोगो को छोड देता है। तस्य बहुतरहिसाविरहात् = उसका बहुत हिसा के त्याग से। विशिष्टा अहिसा स्यात् = उत्तम अहिसा व्रत होता है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ८७॥

मनीषियो! भगवान बनना है तो भगवत्ता की प्राप्ति के उपाय को समझना होगा। जब तक

आपके अन्तरग मे वीतरागता के प्रति श्रद्धान नहीं है, वीतरागता का ज्ञान नही हैं और वीतरागता की प्राप्ति के उपाय का सयम नहीं है, तब तक भगवान बनना असम्भव है। राग के सद्भाव मे वीतरागता का उद्भव नही होता। जिस तरह ऊसर भूमि मे कभी बीज अकुरित नही होता, उसी तरह असयम भाव मे वीतरागता का उद्भव सम्भव नहीं। जहाँ भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक नही, ग्राह्य–अग्राह्य का विवेक नही हेय–उपादेय का विवेक नही। भोज्ञानी! वहॉ आपा–पर का भेद–विज्ञान सम्भव नही है। कुदकुद स्वामी 'चारित्रपाहुड' मे कह रहे हैं–जब तक तेरे जीवन मे सप्त व्यसन और अभक्ष्य का त्याग नही है तब तक सम्यकत्वाचरण–चारित्र नही है सयमाचरण नही है और स्वरूपाचरण भी नही है। जीव जिस पर्याय मे पहुँच जाता है वह उसी पर्याय मे रमण करने लगता है और सोचता है कि मेरा जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। इष्टोपदेश" ग्रथ मे पूज्यपाद स्वामी लिख रहे हैं– एक अखण्ड द्रव्य'शुद्ध आत्मदशा मे लवलीन योगी जब निजस्वरूप मे रमण करता है तो अन्यत्र जाने का उसका मन नही करता और एक भोगी जो भोग–पर्याय मे जब लीन हो जाता है तो भगवत्ता की पर्याय का उसे ज्ञान ही नहीं रहता है। भोगो की भी अतुल महिमा है। इन्द्रिय–सुखो ने अनन्त ससार मे तुझे निवास करने का मौका दिया है। उनके साथ तू जी रहा है, मर भी रहा है, फिर भी मर नही रहा है। तेरी वासनाओ का मरण हो गया होता तेरी कामनाओ का मरण हो गया होता, तो भी जन्म–मरण ससार मे नही होता। जिया तो है मरण तो किया है लेकिन ससार की पर्यायो मे नष्ट हो गया है। वही रति को प्राप्त हो जाता है। विष्टा का कीडा भी अन्दर ही प्रवेश कर रहा है लेकिन मरना पसद नही करता है। यह राग की दशा है। कितनी पारिवारिक यातनाओ मे आप जी रहे हो।

भो ज्ञानी! जीव को भान ही नही हो पा रहा कि मैं मनुष्य हूँ। मनुष्य का भान उसे है जो मानवता के साथ बैठा हो जो मृदु–भाव से बैठा हो। मक्खन खाने से मनुष्य नही बनोगे। मक्खन–जैसे मुलायम हो जाओगे तो मनुष्य बन जाओगे। इसीलिए ध्यान रखना जीवन मे तनिक से घृत की चर्चा की थी, तो मन मे विकल्प आ गये थे कि क्या भोजन फेकू? मुझको भी महसूस हो गया कि इतना भोजन कैसे फेकू? अरे! दृष्टि डालो कि मेरा राग कितना है। एक जीव वह है जो कोटि अठारह घोडे और विशाल सम्पत्ति को तिनके के समान छोडकर चला गया और हमसे एक दिन का भोजन नही छूट पाता। जब तक तुम परद्रव्य–निजद्रव्य पर दृष्टि नहीं डालोगे तब तक पता ही नहीं चलेगा कि मै भेद विज्ञानी हूँ या नही। महसूस करो कि हाथ मे दुग्ध का गिलास है मुख की ओर जा रहा था, उसी बीच जीव आकर गिर गया। यहॉ तुम्हारा भेद विज्ञान झलकेगा कि जीव को निकाल कर दुग्ध पीते हो या गिलास को अलग करते हो। एक भैया जी 'श्रेयान्सगिरी गये। भेदविज्ञान की दृष्टि को समझना। ब्रह्मचारी जी कह रहे थे– सामग्री बाहर से मगाने के बाद अपने हाथ से पिसे आटे की रोटी बनाई, (यहॉ तक तो सामान्य बाते थी) रोटी बनाने के उपरान्त थाली लगा ली, लेकिन ज्यो ही ग्रास तोडा तो उस ग्रास मे बाल आ गया। अब बताइये आप क्या

करोगे? कब से बन रहा था। पूजन करने के बाद गेहूँ पीसा, पीसने के बाद भोजन निर्मित किया, उसके बाद उसमे बाल निकल आया, यहाँ तेरा भेद–विज्ञान प्रबल होगा तो क्या कहेगा ? ओहो! भोजन बनाया जा सकता है, थाली परोसी जा सकती है, ग्रास तोड़ा जा सकता है पर भोज्ञानी! मुख में तभी प्रवेश होगा जब लाभ अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा। इसीलिए भूल जाना, इस बात को कि मैं सबका कर्त्ता हूँ , मैं सबको खिलाने वाला हूँ। तुम अजली पर रख सकते हो, किसी के पेट मे नहीं रख सकते। अब यहॉ पकड़ना भेद–विज्ञान की दृष्टि को, ऐसे काल मे पूरी की पूरी थाली छोड देना इसका नाम है भेद–विज्ञान। ऐसे काल मे और गहरी बात करो। एक बाल्टी घृत आपके घर मे आया, एक चीटी निकल आई। जबकि दो–इन्द्रिय से माँस सज्ञा शुरू हो जाती है। अहो मुमुक्षु आत्माओ! अब इस घृत का क्या करोगे ? घी कोई बहुत बडी बात नहीं है। लेकिन आज के युग मे आपके सयम की परीक्षा चल रही है। यहॉ मालूम चलेगा कि मेरा कितना राग कम हुआ है। अपने–अपने हृदय से पूछना कि क्या हालत हो रही है और फिर सोले का मगाया हो, बडे पुरुषार्थ से आया उसी समय कोई बाल निकल आया। अहो! ज्ञानी आत्मा! मल था कि नही ? और ऐसे द्रव्य का उपयोग आपने पात्र को देने मे किया तो पुण्य का आस्रव होगा कि पाप का आस्रव होगा? भो ज्ञानी! आप बोल रहे थे कि महाराजश्री! मन शुद्धि! वचन शुद्धि! काय शुद्धि! अहो! परिणामो मे जरा भी विकार आया कि भाव–शुद्धि गई। जितने अश मे भाव–शुद्धि थी उतने अश मे कर्म–निर्जरा हो रही थी, पुण्य–आस्रव हो रहा था, लेकिन एक क्षण–मात्र मे भाव–शुद्धि मे विकल्प आया कि तत्क्षण पाप–आस्रव जारी होगा। द्विदल खाने वाली आत्माओ! हम कैसे कहे कि तुमको विरक्ति–भाव है? देखो, किसी को निहारना मत, अपने आप को निहारना कि हम निज के साथ छल कर रहे कि नही? बाजार के द्रव्यो को खाने वाला जैनदर्शन के अनुसार श्रावक नही है। अहो ज्ञानी आत्माओ! दूध को अडतालीस मिनट के अन्दर तपना चाहिए था, आते–आते एक घण्टा बीत चुका तो वह दूध तुम्हारे पीने योग्य बचा कहाँ? छानना चाहिए वस्त्र से। वस्त्र ऐसा नही हो कि पिताजी की धोती फट गई थी तो उसका छन्ना बना लिया, मॉ की साडी तक का उपयोग तुम ऐसे काम मे कर लेते हो, जिसमे सम्मूर्छन मनुष्य जन्मे थे, मरे थे, पसीना जिसमे सूखा था। पानी छान के पीना था, तुरन्त रूमाल निकाला और पानी छान लिया। अरे! धिक्कार हो! उस पानी मे तो जीव थे ही पर उस रूमाल से तूने नाक पोछी, पसीना पोछा और पानी छान लिया। कहते हैं–महाराज! हम पानी छान के पीते हैं।

भो ज्ञानी! आचार्य महाराज कह रहे हैं 'अविरुद्धा अपि भोगा''। आप नहीं छोड पा रहे हो, आप इतना तो कर सकते हो, जो शास्त्र के विरुद्ध है, जो सयम के विरुद्ध है, धर्म के विरुद्ध है, ऐसे पदार्थों का सेवन तुम मत करो, उनका तो त्याग ही कर दो। जब आपको मालूम है कि इसको खाने से मेरा स्वास्थ्य बिगडता है, तो नही लेना। वैद्य ने कहा कि बीडी नहीं पीना लेकिन पलग

से उतर कर ढूठ धीरे से उठा ले जाते और पी लेते हो, यहॉ लगाना राग की तीव्रता। अहो ज्ञानी। हमारे जैनदर्शन मे चार प्रकार का आहार होता है खाद्य स्वाद्य, लेप और पेय। अब बताइये आप लोगों का पूरा पेट भर गया फिर भी लोग इलायची मुँह मे दबाकर आ जाते हैं, यानि पेट भर गया परन्तु रसना की रसना नहीं भरी, वासना नही भरी। यदि वासना भर गई होती तो कहते कि भैया मैंने कायोत्सर्ग पढ लिया, अब नहीं खायेगे। भो ज्ञानी। ध्यान रखना, छन्ना शुद्ध लट्ठे का इतना मोटा होना चाहिए जिसमे सूर्य की रोशनी प्रवेश न कर पाये। परन्तु थैली छन्ना नहीं है। नल की टोटी मे थैली लगा दी अब उसकी बिलछानी कब करेगे? जिस दिन वह सडकर टपक जायेगी अपने आप ही बिलछानी हो जायेगी और कहते हैं कि छान कर पानी पी रहे हैं। देखो, थैली लगी हुई है, जैनी का चिन्ह झलक रहा है। हॉ जैनी की रूढी झलक रही है, लेकिन जैनी की अहिसा नही झलक रही। अहो ज्ञानियो। जल गालन की कथा मे लिखा है कि जब एक मॉ ने पानी छाना तो एक बूद बिलछानी जमीन पर गिर गई, जिससे वह सात भव तक सूकरी बनी, सात भव कूकरी बनी, सात भव गधी बनी, सात भव सियारनी बनी। अहो ज्ञानी आत्माओ। उस मॉ से भूल हो गई, उसने एक बूद डाली थी, हम तो पूरा का पूरा फैला देते है। ओहो। सीधे नल के नीचे टोटी खोली, बैठ गये। क्या होगा बिलछानी का ? भो श्रावको। अब सोचो हम किस स्थान पर है ? आज से ध्यान रखना जिन वस्त्रो का उपयोग तुम पहनने मे कर चुके हो उन वस्त्रो का उपयोग भोजन सामग्री मे मत करना और पानी छानने के लिए भी नहीं करना। तौलिया का छना पानी और रुमाल का छना पानी बिना-छना ही है, क्योकि वो इतना पतला होता है कि उसमे जीव बचते नही है। छन्ना दोहरा होना चाहिए और ठोस होना चाहिए। जीवाणी की बिलछानी नीचे सतह तक भेजो, जीवो की रक्षा होगी। अब कहेगे कि पानी भरते-भरते दो घण्टे लग गये इतनी देर मे हम एक शास्त्र के दस पेज पढ लेते। ओहो। मैं कैसे चलूँ ? मैं कैसे खाऊँ मै कैसे बोलूँ, इन सबके लिए ही तो शास्त्र पढा जाता है। यदि पढ लिये और नही कर पाये, तो जिनवाणी कहेगी कि आपने कुछ नहीं किया, मेरा उपयोग नही किया। ज्ञान तो किया, लेकिन ध्यान नहीं किया। ध्यान रखना जहॉ अहिसा अर्थात् जीव-रक्षा होगी वहॉ शेष रक्षा स्वय हो जायेगी।

भो ज्ञानी। इसीलिए कम से कम जितना बन सके श्रावक की वृत्ति का तो पालन करो। कहीं आपके भाव मुनिराज बनने के बन गये, तो निर्मल मुनिवृत्ति का भी पालन कर सकोगे। दयाभाव के सस्कार तो यही से प्रारम्भ होगे। जो फर्श को देखकर ही नही बैठ पा रहा चटाई को भी देखकर नही बैठ पा रहा, उसके आगे परिणाम क्या होगे? बिछाने के बाद कोई चीटी प्रवेश कर गई हो, उसका क्या होगा? अब सोचना कि हम कितने प्रमादी है ? प्रमाद-योग से प्राणो का वियोग करना, इसका नाम हिसा है।

प्रमत्त योगात प्राण व्यपरोपण हिसा । त सू ।

मनीषियो! जब तक गलती का भान नहीं कराया जाये, तब तक जीव को सयम के प्रति बहुमान आ ही नहीं सकता, इसीलिए सयम की बात मत करो, असयम की बात करो कि हमारा असयम कितना चल रहा है। असयम छूट जाये, उसी का नाम तो सयम है। कथाकोष मे एक कथा आई है कि एक कन्या खेलते-खेलते मुनिराज के चरणो मे आ गई। मुनिराज ने उस कन्या को आशीष दिया और कहा कि बेटी, तू पाप नहीं, पुण्य करना। वह कन्या एक विद्वान की थी। विद्वान ने सुना कि मेरी पुत्री ने मुनि महाराज से पाच व्रत ले लिये हैं। पडितजी कहते हैं-बेटी! यह तो जैनियो के व्रत हैं, तूने क्यो धारण कर लिये ? चलो मैं चलता हूँ, छुडा के लाता हूँ। देखना, एक ऐसा भी जीव है जो व्रत छुडवाने जा रहा है, उसके पाप का उदय देखना और कुछ ऐसे भी जीव हैं जो व्रत दिलाने जाते, उनके पुण्य देखना। कन्या को लेकर चल दिया। रास्ते मे देखा कि एक आदमी को फॉसी पर चढाया जा रहा था। कन्या ने पूछा-पिताजी! इस आदमी को फॉसी पर क्यो लटकाया जा रहा है ? इस व्यक्ति ने एक व्यक्ति का घात कर दिया था इसीलिए राजदण्ड मे इसको फासी की सजा घोषित कर दी, तो पिताजी मैंने महाराजश्री से पहला व्रत तो यह ही लिया था कि जीवन मे किसी जीव का वध नही करना। पिताजी! यह व्रत छोडू कि नहीं ? बेटी! ये व्रत तो अच्छा है, इसको तो रख लो। चलो, बाकी चार व्रत छोड आओ। आगे देखा कि एक व्यक्ति की जिहवा का छेदन किया जा रहा था। पता चला कि उसने राज्य के विरुद्ध भाषण किया असत्य बोला इसीलिए इसकी जिहवा छेदी जा रही है। पिताजी! मैंने भी यह व्रत लिया था कि मै कभी झूठ नही बोलूँगी, किसी की चुगली नही करूँगी। बेटी! यह नियम तो बहुत अच्छा है। लेकिन तीन तो छोड दो। आगे देखते हैं कि एक व्यक्ति के हाथ काटे जा रहे थे, क्योकि इस व्यक्ति ने चोरी की थी। पिताजी! चोरी का तो मैंने भी त्याग किया था। हाँ, यह भी उचित है। आगे एक व्यक्ति को शूलो पर लिटाया जा रहा था। इस जीव ने परागनाओ का सेवन किया है, कुशील सेवन किया था, इसीलिए उसे दण्ड दिया गया है। पिताजी! मैंने यही तो नियम लिये हैं कि मैं जीवन मे कभी परपुरुष पर दृष्टि नहीं डालूँगी, कुशील का सेवन नही करूँगी। बेटी! यह नियम भी बहुत श्रेष्ठ हैं। अहो! आगे जाने पर एक व्यक्ति को हथकडी डालकर खींचा जा रहा था। मालूम हुआ कि इस व्यक्ति ने चोरी से व्यापार किये और सम्पत्ति रख ली राज्य के विरुद्ध धन इकट्ठा किया इसीलिये आज इसको जबरदस्ती न्यायालय मे ले जाया जा रहा है। पिताजी! मैंने यही तो नियम लिया था कि मैं परिग्रह का परिमाण कर रही हूँ। बेटी! यह नियम भी श्रेष्ठ है। अब बताओ पिताजी, मुनिराज के पास व्रत छुडाने ले जा रहे हो कि आशीर्वाद दिलाने चल रहे हो।

भो ज्ञानी! देखो, मुनिराज शत्रु से लग रहे थे जब तक इसे विवेक नहीं था, ज्ञान नहीं था।

पिता जो बेटी को नियम छुडाने ले गया था वह स्वय भी नियम लेकर आ गया। बस यही तो सतो की महिमा होती है कि छुडाने वाले छूट जाते हैं। छुडाने तो स्वय गौतम स्वामी गये थे भगवान महावीर स्वामी के समवशरण मे, मानस्तभ देखकर वे ही छूट गये और जो सिर मे बाल थे वे भी नही बचा पाये, केश लुन्चन हो गये।

अहो! प्रज्ञाशील! बुद्धि यदि है तो इसका उपयोग करो। जो छोडा नहीं है आपने, उनकी भी सीमा कर लो। कितने कपडे पहनते हो? पचास मान लो, सौ जोडी मान लो और पेटियो मे कितनी साडी रखी होगी? क्यो इतने द्रव्य का उपभोग कर दूसरे का अन्तराय डाल रहे हैं। अनाज कितना खाते है आप लोग तथा कितना घर मे रखा है? भले ही कीडे लग गये हो, पर किसी गरीब को नही दे सकोगे। गरीब तो छोडो पिता पुत्र को नही दे पाता पुत्र पिता को नहीं दे पाता। ससार की विचित्रता है। तो सीमा मे भी सीमा कर लेना, जीवन भर को नही छोड पा रहे तो, कम से कम एक दिन को छोड दो रात्रि को छोड दो, भोजन करने के बाद भोजन त्याग कर दो, सोते–सोते ही त्याग कर दो। सुकरात से पूछा कि जीवन मे कुशील का सेवन कितनी बार करना चाहिए ? सुकरात एक विचारक थे, मगर जैन नहीं थे, लेकिन उनका चिन्तवन था जीवन मे कभी अब्रम्ह का सेवन नही करना चाहिए । यदि सामर्थ्य नही है तो जीवन मे एक बार इतनी भी सामर्थ्य नही है तो वर्ष मे एक बार। अब पुन कहते हैं कि यदि व्यक्ति मे इतनी भी सामर्थ्य नही तो महीने मे एक बार, इतना भी न चले तो ऐसा करना कफन ओढकर श्मशान मे चले जाना। ओहो! इतना भी सयम नही पाल सकते हो? अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि कम से कम रात्रिभर को छोड दो, दिन भर को छोड दो, यदि फिर भी नही छोड पा रहे हो तो तुम्हारी दशा तुम जानो, अब नही समझा सकते। अत सीमा के अन्दर सीमा करना। "कार्तिकेयानुप्रेक्षा" मे सत्रह नियम का उल्लेख है। श्रावको को प्रतिदिन सत्रह नियम लेना चाहिए। मदिरो मे आजकल नियमो की पर्ची रखी होती है जो नियम निकल आये ले लो, पर उसे भी लोग घुमा फिरा के लेते हैं। कही कठिन निकल आया, तो फिर धीरे से दूसरी उठा लेते हैं। इस प्रकार से जो योगो को छोड देते हैं, उसके हिसा का अभाव हो जाता है ।

"पाप पंक घुलता है अतिथि–पूजा से"

विधिना दातृगुणवता द्रव्यविशेषस्य जातरूपाय।
स्वपरानुग्रहहेतो· कर्तव्योऽवश्यमतिथये भाग· ।। १६७ ।।

अन्वयार्थ दातृगुणवता = दाता के गुणयुक्त गृहस्थ द्वारा। जातरूपाय अतिथये = दिगम्बर अतिथि के लिए। स्वपरानुग्रहहेतो = आप स्वय के और दूसरे के अनुग्रह के हेतु। द्रव्यविशेषस्य = विशेष द्रव्य का अर्थात् देने योग्य वस्तु का। भाग विधिना = भाग विधिपूर्वक। अवश्यम् कर्तव्य = अवश्य ही करना चाहिये।

सग्रहमुच्चस्थान पादोदकमर्चन प्रणाम च।
वाक्कायमन शुद्धिरेषणशुद्धिश्च विधिमाहु ।। १६८ ।।

अन्वयार्थ च सग्रहम् = और प्रतिग्रहण।उच्चस्थान पादोदकम् = ऊँचा स्थान देना चरण धोना। अर्चन प्रणाम = पूजन करना। नमस्कार करना। वाक्कायमन शुद्धि =मन शुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि रखना। च एषणशुद्धि = और भोजन शुद्धि। विधिम् आहु = नवधा–भक्तिरूप विधि को कहते हैं।

ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम्।
अविषादित्वमुदित्वे निरहकारित्वमिति हि दातृगुणा ।। १६९ ।।

अन्वयार्थ ऐहिकफलानपेक्षा = इस लोकसबधी फल की अपेक्षा न रखना। क्षान्ति = क्षमा या सहनशीलता। निष्कपटता अनसूयत्वम् = निष्कपटता, ईर्ष्यारहित होना। अविषादित्वमुदित्वे = अखिन्नभाव, हर्षभाव और। निरहकारित्वम् = निरभिमानता। इति = इस प्रकार (ये सात)। हि दातृगुणा =निश्चय करके दाता के गुण हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || ८८||

मनीषियो! भगवन् अमृतचन्द स्वामी ने अपूर्व सूत्र प्रदान किया कि प्राप्त वही होगा जो तेरे पलडे मे होगा। आकाँक्षा बढ सकती है, लेकिन द्रव्य नहीं बढ सकते हैं। मेरा शरीर ऊँचा क्यो

नहीं हुआ–ऐसा विचार करके सकल्प–विकल्प अवश्य कर सकता है, लेकिन द्रव्य को नहीं बदल सकता, परन्तु यह अवश्य है कि नाना प्रकार के सकल्प–विकल्प करके नवीन सक्लेशता को जन्म अवश्य दे सकते हो। अत जीवन में सक्लेशता का अभाव करने के लिए आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि आप अपनी सीमा बाध लो, तो परिणति निर्मल हो जायेगी। पदार्थों की नही, परिणति की सीमा बाध कर चलना। यदि परिणति मे सीमा नही है और पदार्थों मे सीमा है, तो भो ज्ञानी! पदार्थ का उपभोग तो वहाँ नही कर पाएगा, लेकिन परिणति न जाने कितने का उपभोग कर लेगी, अत वहाँ बध निश्चित होगा।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना जीवन मे, जैसे मुनिराज के अट्टाईस मूलगुणो मे से यदि किसी भी मूलगुण का अभाव होता है तो मूलगुणो की पूर्णता नहीं कहलाती। उसी प्रकार श्रावको के बारह व्रत होते हैं और बारह व्रतो मे से अतिथि–सविभाग नाम का व्रत है, यदि आपने पात्र को दान नही दिया तो आपके बारह व्रतो का पालन नही हुआ। अतिथि सविभाग करना तुम्हारा धर्म है, पात्र का मिलना न मिलना यह तुम्हारा धर्म नही है। जीव को अतिथि सविभाग करना श्रावक का कर्तव्य है, श्रावक का धर्म है।

अहो ज्ञानी आत्माओ! चार श्रेष्ठ जीव थे–सिह, बदर नकुल और सुअर, जो सोच रहे थे कि काश! मेरी पर्याय भी मनुष्य की होती तो मैं दान दे देता, लेकिन आज मेरे पास शक्ति नही है सामर्थ्य नही है। परन्तु परिणाम था। वही 'सिह' का जीव जो अनुमोदना कर रहा था, भरतेश बने शेष वृषभ, बाहुबलि आदि महापुरुष बने। उन्होने एक पात्र की अनुमोदना की थी और दान देने वाला मनीषियो! प्रथम तीर्थेश आदिनाथ बना। दान दिलाने वाली वह मॉ (श्रीमती का जीव) वही महाराजा श्रेयाश बना था। अब दृष्टि समझना, हमने तो सोचा था कि आज मेरे यहॉ महाराज श्री आ जायेगे। अहो ज्ञानी! अतिथि हैं जब आयेगे तभी सत्कार कर लेना। चदना तो रोज चौक पूर रही थी वर्धमान जैसे पात्र भी प्राप्त हो गये थे। विधि ली थी कि जिसके नैनो मे नीर हो, हाथो मे हथकडियॉ हो, पैरो मे बेडियॉ हो, सिर मुडा हो। वीर चल पडे, चदना खडी–खडी देख रही थी। 'प्रभु सबने छोडा आप भी छोडकर चल पडे' तो यह सोच चदना रो पडी। वर्धमान खडे हो गये। मनीषियो! वह दाल के छिलके भात बन गये। यह पात्र और दाता के पुण्य का प्रताप था। दोनो की परिणति का परिणमन था। जिनकी कोई तिथि नही है, वे अतिथि है और आपने जो शुद्ध भोजन अपने लिये बनाया है उस भोजन से जो अतिथि को दिया है उसका नाम 'अतिथि सविभाग है। मैंने अपने लिये शुद्ध भोजन बनाया था, पात्र आ गये, तो मैंने उनके लिए भोजन करा दिया, इसका नाम है अतिथि–सविभाग।

भो ज्ञानी! जिसने अतिथि सविभाग नहीं किया, उसका भोजन राक्षसो का भोजन है। बिना

पात्र को दान दिये भोजन कैसे कर रहे हैं? 'छहढाला' में पडित दौलतराम जी ने लिखा है–'मुनि को भोजन देय फेर निज करहिं अहारैं'। हम दान तो दे लेते हैं, लेकिन पुण्य का सचय नहीं कर पाते, क्योंकि भावो में भावना रहती है ऐसा तो नहीं कि हम राज–भय के कारण दे रहे हों, समाज के भय के कारण दे रहे हों। ज्ञानी आत्माओ। ऐसा कभी मत करना कि सभी तो चौका लगा रहे हैं, यदि हम नही लगायेगे तो लोग क्या कहेगे। यह दान नहीं है, भय है। इसमे भी तुम्हारा सम्मान निहित लग रहा है। यदि आचार्य भगवन् मेरे घर पहले ही दिन आ जाते हैं तो मेरा और सन्मान बढ जाता है। अहो ज्ञानी। यह दान नहीं है, यह तूने पात्र से अपने सन्मान की भावना भाई है। दान वह था जो देने के बाद भूल गया। ध्यान रखना, सयम के योग्य और सयम–वृद्धि के लिये जो द्रव्य दिया जाता है उसका नाम दान है। भो ज्ञानी। आचार्य समतभद्र स्वामी ने अतिथि–सविभाग व्रत को वैयावृत्ति मे रखा है और अरहतदेव की पूजा को भी वैयावृत्ति मे रखा है।

भो ज्ञानी। यदि पात्रभक्ति है, तो व्यक्ति नजर नही आते हैं, निर्ग्रंथ–दशा नजर आती है। यदि पात्र–भक्ति नहीं है, तो आपको सागार नजर आते हैं, पात्र नजर नहीं आते। पात्र–भक्ति होती है, तो कद नहीं देखता उम्र नही देखता, निर्ग्रंथ रत्नत्रय धर्म देखता है और जिसमे पात्र भक्ति नही है उसमे स्वार्थ–वृति है। देखा कि मत्र–तत्र मिल जायेगे, इसलिए चौका लगा रहे है। तेरा लगाना न लगाना एक– सा है। ये बनिये की दुकान नहीं, पात्र का दान है। तूने अपनी मत्र–सिद्धि के लिए दान दिया, वह दान नहीं है। जैसी विधि आगम मे लिखी है उस उत्कृष्ट विधि से दान दोगे तो दान फलित होगा। उत्तम विधि से उत्तम पात्र को सम्यकदृष्टि दान देता है तो नियम से स्वर्ग मे देव ही होता है और मिथ्यादृष्टि दान देता है तो उत्तम भोग–भूमि को प्राप्त होता है।

भो ज्ञानी। आपके पास द्रव्य–लिग की परीक्षा करने की जानकारी नही है, परीक्षक वही होता है जिसने परीक्षा उत्तीर्ण की हो। जिसे यह पता नही कि पिच्छी कैसे पकडी जाती है? पिच्छी से मार्जन कैसे किया जाता है? ओहो भोगियो। तुम क्या परीक्षा करने जाओगे? हमारे आगम मे साधु की परीक्षा का कथन है। तीन दिन तक परीक्षा करना चाहिए, लेकिन वह परीक्षा आचार्य या मुनि करेगे। गृहस्थ के लिए किसी आगम मे नही लिखा कि तुम मुनि की परीक्षा करने जाना। भो ज्ञानी। वे नेत्र नहीं, कॉच के गोले हैं, जिनकी ऑखो से दिगम्बर साधु का रूप नहीं दिखता, जिनकी श्रद्धा और विवेक की ऑख फूट चुकी है, शुद्ध मे जा नहीं सकते, शुभ को करना नही चाहते, अशुभ को छोड नहीं पा रहे, तो फिर पाप को धोने के लिए कहाँ जाओगे? पूर्व का पुण्य कमाकर रखा है, खा लो, लेकिन ध्यान रखना, खोखले हो जाओगे। यह वीतराग–वाणी है, यह सर्वज्ञ की वाणी है।

भो ज्ञानी। कुदकुद स्वामी ने 'पचास्तिकाय ग्रथ' मे प्रश्न किया–हे नाथ। श्रावक का मोक्षमार्ग क्या है? भगवन् लिख रहे हैं–जिन्होने मोक्ष के मार्ग को प्राप्त कर लिया है ऐसे अरहत,

सिद्ध तथा जो मोक्ष मार्ग पर लगे हुए हैं वे आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पाँच की उपासना करना ही श्रावको का मोक्षमार्ग है। इन पाँच को छोड दिया तो ससार–मार्ग ही है। मनीषियो! कुछ बालक प्रवचन के समय ऊपर ऊधम कर रहे थे, मैं सोच रहा था कि इतने सारे लोग यहाँ बैठे हैं किन्तु किसी को करुणा नही आ रही। वे बालक अज्ञानता मे ज्ञानावरणीय कर्म का बध कर रहे हैं और सब देख रहे हैं, करुणा आना चाहिए। यदि तुम्हारे सामने कोई जीव पाप मे लिप्त हो रहा है, यथार्थ से दूर हट रहा है, ऐसा नही कि तुम उन्मार्ग का पोषण करो। तुम्हारा कर्तव्य यह बनता है, कहते–भैया! यह मार्ग उचित नहीं है, क्योकि जब हल्ला वे कर रहे थे तब उन्हे ज्ञानावरणीय कर्म का आस्रव हो रहा था। आप तो यह सोचकर रह जाते हो कि जिसकी जो होनहार होना हो वह होगी यह तो एकात विपरीत मिथ्यात्व है। जब कोई न सम्हले, फिर कहना भैया! ऐसी होनहार है। ऐसा पहले कहकर मत बैठ जाना अन्यथा मिथ्यादृष्टि भाग्यवादी, ईश्वरवादी और आपमे कोई अतर नही होगा।

भो मनीषी! कोई चदा मागने आ जाए तो तुरत जेब मे हाथ जाता है, क्योकि मिथ्यात्व को देने मे कोई पाप नही लगता है, उसमे हम अध्यक्ष बन जायेगे, सन्मान मिल जायेगा। महाराज! देना पडता है, नही देगे तो कैसे जियेगे। इससे मालूम चलता है कि भयभीत होकर तुम सब कुछ करने को तैयार हो। सामान्य जीव भी आ जाये, यदि वह अधिकारी है तो तुम मालाए ले–लेकर घूमोगे और एक निर्ग्रंथ वेष दिख जाये तो तुम्हे मिथ्यात्व झलके। अहो! तुम्हारी दृष्टि को धिक्कार है। ध्यान रखना, जिन मुनिराज की चर्या मे दोष होगा तो निगोद के पात्र वे होगे, लेकिन आप तो पात्र मानकर ही उनकी सेवा कर रहे हो।

भो चेतन आत्मा! मत्र–तत्र, प्रतिष्ठा आदि के उद्देश्य से पात्र को दान मत देना। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि स्व पर अनुग्रह हेतु जो आपने दान दिया, उससे आपका लोक मे उपकार हुआ और जिस पात्र को दिया उन्होने साधना की, सामायिक की स्वाध्याय किया है। उनका उपकार 'अतिथिसविभाग गुण दाता का ही है। श्रद्धा भक्ति एव आह्लादपूर्वक दान देना दूसरा गुण है। ध्यान रखना जीवन मे सतान का जन्म पात्र दान, जिनेन्द्र की पूजा, कभी नौकरो से नही कराई जाती है, स्वय के हाथो की जाती है। आगम मे स्पष्ट लिखा है कि उस क्षेत्र मे विहार कभी मत करो जिस क्षेत्र मे चर्या न चले। वहा बैठे और भाव बिगड गये, परिणाम क्या होगा? नगर मे रहकर स्वतत्र होकर चर्या करना श्रेष्ठ है। श्रद्धापूर्वक आहार आप नही दोगे तो गुण तुम्हारा नष्ट हो गया। तीसरा गुण है तुष्टि। कुछ लोगो के भाव खराब होते है। छुल्लक जी आये हैं, ब्रह्मचारी जी आये है, मुनिराज नही मिले, आचार्य महाराज जी नही मिले। दान भी दिया, द्रव्य भी दिया और पुण्य भी नही मिला क्योकि सतुष्टि नहीं थी। अरे! विवेक रहित काम कर दिया। सतुष्टि होना चाहिए। एक को दे लिया सतोष करो। विवेक कहता है कि कैसे देना है? कब देना है? रस चला

रहे थे मीठा चला दिया, दूसरे आए तो उस पर पानी चला दिया। हम क्यो दे रहे थे आहार? जिससे कि उनका शरीर स्वस्थ रहे। शरीर स्वस्थ रहेगा, तो सयम स्वस्थ रहेगा। यहाँ विवेक की चर्चा चली, बोले–हम तो महाराज को बादाम खिलायेगे। भो ज्ञानी! गरिष्ठ है। ठीक है लेकर आए, अच्छी बात है, आपने अच्छा किया, यह होना चाहिए, लेकिन इतना ध्यान रखना कि हमे कितना देना चाहिए, कितना नहीं? यह विवेक है। मौसम के अनुसार निर्दोष आहार ही तो दवाई है–यह विवेक नामक चौथा गुण हो गया।

भो ज्ञानी! पाँचवाँ गुण है 'क्षमा'। शाति से खडे रहो। गुस्सा आ रहा हो तो दान मत देना। भाईचारे का भाव रखो। आप–ही आप दिये जा रहे हो, मुझे देने ही नहीं दे रहे हो। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जैसे द्वीपायन बनकर आ गये हो, परसुराम बनकर आ गये हो। तुम्हारे घर मे महाराज के आहार क्या हो गये जैसे महाराज तुम्हारे ही हो। भैया! वह भी भक्तिपूर्वक आया है। कुछ लोग शोधन कम करते हैं शोरगुल ज्यादा करते हैं। तुम भगो, तुम भगो। भगाने की आवश्यकता नहीं, शोधन करने की आवश्यकता है। कितनी भी भीड आ जाए, शोधन सही होना चाहिए। भीड से अतराय नहीं होते हैं। जबरदस्ती दान देकर पुण्य कमाने की भावना मत रखना, कुभोग भूमि मे जाना पडता है। सत्य गुण कहता है कि भूमि देखकर चलो, भक्ति मे विवेक रखो, ईर्यापथ का ध्यान रखो, पवित्रता से युक्त होकर देना। भावो मे पवित्रता रखना गुण है और देकर के हर्षित होना पश्चाताप मत करना, प्रमुदित होना, यह दाता के सात गुण हैं। विधि पूरी यह है कि स्वय का चौका हो तब नवधा भक्ति बनेगी। भगवन्! कोई तो आ जाता। कितनी भावना बना ली? जितने छठवे गुणस्थान तक जीव होगे सबका पुण्य मिल गया। भाव खिन्न नहीं होना। कुछ लोग देने के बाद खिन्न होते हैं। शक्ति से अधिक देने वालो के पास नवधा–भक्ति होती ही नही है।

भो ज्ञानी! पहले पडगाहन करना चाहिए, उच्च स्थान देना चाहिए। कुछ सघो मे आगन मे पूजा हो जाती है। आगन मे पहले बैठ जाते हैं, फिर अदर जायेगे, फिर आहार शुरू होगे, लेकिन आप लोग जो प्रदक्षिणा लगाते हो यह विशेष भक्ति का प्रतीक है। इसलिए पहले तीन प्रदक्षिणा दी जाती है। प्रदक्षिणा नवधा–भक्ति मे नहीं, विशेष भक्ति मे होती है। ऐसा नही कि पडगाहन करके ले गये और शात हो गये। फिर उन्हे उच्च स्थान देना, फिर उनके पाद प्रक्षालन करना। मुनियो की, आचार्य भगवन्तो की, उपाध्यायो की पूजा–अर्चना होती है। नवधा–भक्ति मे नमस्कार भी एक भक्ति है। कुछ लोग नमोस्तु नहीं करते हैं, अत उनसे आहार नहीं ले सकते। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है और बस आहार देना शुरू। उनसे बिलकुल आहार नहीं लेना। प्रश्न आ सकता है कि मुनि महाराज को अहकारी कहना चाहिए, क्योकि प्रणाम नहीं किया तो आहार नही ले रहे। भो ज्ञानी! यह अहकार नहीं है, भक्ति पूरी होना चाहिए। आपका वात्सल्य/स्नेह दिख

रहा है, पर दूसरी ओर आगम भी है। नमस्कार करने के बाद पहले आप शुद्धि बोल लो, फिर प्रासुक जल से हाथ धो लो, फिर ग्रास दो। देनेवाले, दिलानेवाले को भी विवेक रखना चाहिए। भैया! पहले शुद्धि बोल लो, फिर ग्रास देना, नही तो मुख की गदगी, भाप और थूक भी उचकते हैं। थूक उचटता है तो मन मे पाठ करो, अभिषेक करो, अरहत के मुख पर थूक मत डाल देना।

भो ज्ञानी! अमृतचन्द्र स्वामी की अपेक्षा से दाता के गुणो मे एक फलानुपेक्षा है कि ऐसा सोचकर कभी दान मत देना कि महाराजश्री! तनिक आशीर्वाद दे जायेगे, दुकान–मकान अच्छे बन जायेगे, चलने लग जायेगे, पुत्र–पुत्रियॉ हो जायेगे। कोई लौकिक फल की अपेक्षा मत रखना। शाति–क्षमाभाव से युक्त और निष्कपटता होना चाहिए। ये ध्यान रखना, वहाँ भी कपट न हो जाए कि थोडा–सा दिखाया, मुट्ठी मे बद किया और पटक दिया। धर्म–सकट मे डाल दिया पात्र को। पथ्य के विरूद्ध लेता है, तो दोष और नीचे गिराता है, तो दोष। आपको तो भक्ति दिख रही है, पर यह नहीं मालूम कि महाराज का भी कोई गुण होता है। वह दोष महाराज को लगेगा और यदि ले लेते हैं तो बीमार हो जाते हैं। इसलिए भक्ति, श्रद्धा प्रकट करना, मगर छल–कपट के साथ नहीं। अरे! दुबारा दे देना, तीन बार प्रार्थना कर लो, परतु घुमा–फिरा कर मत करना, कपटपूर्वक दान मत देना। यह भक्ति नही है। ईर्ष्या रहित होकर देना। कभी–कभी बडी ईर्ष्या आती है। बोले–यह क्या उठाते हैं, वही हम उठायेगे। दोनो के झगडे मे बेचारे पात्र की हालत खराब होती जा रही है। बोले–हम तो यही देगे। इनके इधर तो चार दिन हुए नही और चारो महाराज के आहार हो गये और पहले ही दिन हो गये। अरे! आप तो एक नियम ले लो कि मुझे दस दिन शुद्ध भोजन करना है। कोई विकल्प नही है। छतरपुर मे एक भैया को उन्नीस दिन हो गये बेचारे की विधि मिल नही रही। अब उन्हीं की विधि लेकर चलो हमने तो सिर्फ विचार किया, उन्होने चौका ही बद कर दिया। इक्कीसवे दिन उनके मन मे आ गई, फिर चौका लगा लिया, सो फिर विचार किया तो वे सबेरे से कहने आ गये–महाराज आज भी हमने चौका लगाया है, गया काम से। भाग्य की बात है, विधि मिली एक महीने बाद और प्रथम ग्रास मे अतराय आ गया। कभी–कभी ऐसा हो जाता है। लेकिन ईर्ष्या भाव मत रखना। देखो आपके यहॉ आहार नहीं हो पाए, लेकिन आपने भावना कितनी बनाई कि कोई न कोई तो आ जाता। उनके यहॉ तो एक के ही आहार हुये, जिनने यह भावना भाई कि भगवन कोई तो आ जाता, कितनी उच्च भावना? जितने छठवे, चौथे पाँचवे गुणस्थान मे जीव होगे, सबका पुण्य मिल गया। जो शुद्ध भोजन आप करते हैं, वही देना। शक्ति से ज्यादा कर लेते हैं फिर खिन्नता आती है। पात्र को दान देकर प्रमुदित होना चाहिए, हर्षित होना चाहिए। अहो दान। अहो दाता–ऐसे भाव आते हैं। भो ज्ञानी! अहकार नही करना कि हमारे यहॉ तो पाच दिन मे पाचो ही मुनिराज निपट गये और तुम लोग खडे ही रह गये, ऐसे भाव मत लाना। जो दाता इन गुणो से युक्त होकर पात्र को दान देता है वह सम्यक्–दृष्टि जीव, नियम से मोक्षगामी ही होता है।

"रत्नत्रय धर्म का आधार–पात्र दान"

रागद्वेषासंयममदद्[illegible]खभयादिकं न यत्कुरुते ।
द्रव्य तदेव देयं सुतप स्वाध्यायवृद्धिकरम् ।। १७० ।।

अन्वयार्थ – यत् द्रव्य = जो द्रव्य। रागद्वेषासयममदद़ुखभयादिकं = राग, द्वेष, असयम, मद, दु ख, भय आदिक। न कुरुते = नहीं करता है। और सुतप स्वाध्यायवृद्धिकरम् = उत्तम तप तथा स्वाध्याय की वृद्धि करने वाला है। तत् एव देय = वह ही देने योग्य है।

पात्र त्रिभेदमुक्त सयोगो मोक्षकारणगुणानाम्।
अविरतसम्यग्दृष्टि विरताविरतश्च सकलविरतश्च।। १७१ ।।

अन्वयार्थ –मोक्षकारणगुणानाम् = मोक्ष के कारणरूप। गुणो का अर्थात् रत्नत्रय रूप गुणो का । सयोग पात्र = सयोग जिसमे हो, ऐसा पात्र। अविरतसम्यग्दृष्टि = व्रतरहित सम्यग्दृष्टि। च विरताविरत = तथा देशव्रती। च सकलविरत = और महाव्रती। त्रिभेदम् उक्त = इन तीन भेदरूप कहा है।

हिसाया पर्यायो लोभोऽत्र निरस्यते यतो दाने ।
तस्मादतिथिवितरण हिसाव्युपरमणमेवेष्टम् ।। १७२ ।।

अन्वयार्थ .– यत अत्र दाने = क्योकि यहाँ दान मे। हिसाया पर्याय लोभ = हिसा की पर्यायरूप लोभ का। निरस्यते = नाश किया जाता है। तस्मात्= अतएव। अतिथिवितरण = अतिथि दान को। हिसाव्युपरमणम् = हिसा का त्याग। एव इष्टम् = ही कहा है।

|| पुरुषार्थ देशना || ८९||

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान वर्द्धमान स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचद्रस्वामी ने जीव को राग से मुक्त होने का अपूर्व सूत्र दिया–'त्याग धर्म को स्वीकार कर लो। जो अनावश्यक द्रव्य हो, उनसे दृष्टि हटा लो। जो तेरी वस्तु नहीं है, उसे स्वीकार मत करो, और जो तेरी वस्तु है, उसे स्वीकार कर लो।' आचार्य भगवान कुदकुद देव जी समयसार जी की एक सौ सडसठवीं गाथा मे कह रहे हैं–

भावो रागादि जुदो जीवेण, कदो दु बधगो भणिदो।

रागादिविप्य मुक्को, अबधगो जाणगो णवरिं।।

अहो मुमुक्षु! भाव त्रैकालिक हैं। भाव यानि पदार्थ, भाव यानि पर्याय, भाव यानि द्रव्य। जब यह भाव रागादि से युक्त होते हैं, तब बध होता है और जब राग आदि से रहित होते हैं तब, अबध ा–दशा होती है। वह राग कैसे छूटे? अनादि की उस अविद्या की दशा को, अनादि के इस अभ्यास को, एकसाथ छोडने मे पीडा हो रही है। इसलिए आप छोडने का अभ्यास प्रारभ कर दो। यदि द्रव्य सुपात्र मे जाता है, तो मोती के रूप मे फलित होता है और कुपात्र मे जाता है, तो कीचड के रूप मे फलित होता है। अत दान तो देना लेकिन दाता को देख लेना। देनेयोग्य द्रव्य और देने वाला दाता और जिसको दिया जा रहा है वह पात्र। द्रव्य निर्मल, दाता निर्मल और पात्र निर्मल नहीं है तो परिणमन निर्मल नही होगा। पात्र निर्मल है पर देय निर्मल नहीं, दाता निर्मल नही, तो परिणमन निर्मल नही होगा। तीनो का निर्मल होना आवश्यक है। भो ज्ञानी! जैन आगम मे वीतरागी धर्म को मानने वाले, वीतरागी धर्म पर चलने वाले और सच्चे वीतराग धर्म मे लीन होने वाले यह तीन पात्र हैं। सच्चे वीतरागी धर्म को मानने वाले अविरत सम्यक्दृष्टि, देशव्रती और स्वभाव मे लीन होने वाले महाव्रती मात्र तीन ही पात्रो का कथन जैनदर्शन मे है।

आचार्य कुदकुद देव ने कहा है कि आप राग को छोडो, नहीं छूट रहा तो राग को छोडने का अभ्यास करो पर एक दृष्टि ध्यान मे रखो कि जो मिला है, छोडो न छोडो वह तो छूटेगा ही। पर बध कराके छूटे, इसके पहले छोड दो, तो निर्बंध हो जाओगे। आप नही छोड पाएँगे पर वह आपको छोड देगा। जीते जी नही छोड पाए, तो मृत्यु के बाद छूट जाएगा। पर जीते जी जो छोड लेता है, वह निर्बंधता को प्राप्त होता है और जो मरने के बाद छोडता है वो बधता को प्राप्त होता है। बस इतनी दृष्टि समझना है। जैनदर्शन मात्र दृष्टि का धर्म है। एक दृष्टि भीख दे रही है, एक दृष्टि दान' दे रही है, एक दृष्टि 'कर' दे रही है। एक मे विशुद्धि है, एक मे दया है, और एक मे द्वेष और राग है।

भो ज्ञानी! सम्यक्दृष्टि जीव दया–वृत्ति रखता है और जब पात्र को देता है तो प्रमुदित हो जाता है। गरीब है, दे दो जब कर (टैक्स) भरने जाते हो तब विशुद्धि नहीं थी, गद्गद–भाव नहीं था। उत्कृष्ट द्रव्य रखा है व्यक्ति के पास फिर भी क्या कहता और लो, महाराज ! और ले लो। वहा उसे लोभ नहीं आता। जब एक मा अपने बालक को खिलाती है तो कहती है बेटा! यह कल ले लेना। लेकिन जब पात्र को दान देती है तो यह कभी नही कहती कि कल ले लेना। वह तो कहती–महाराजश्री! इतने दिन मे मौका मिला है। यह भाव ही उसके असख्यात गुण श्रेणी निर्जरा करा देते हैं। देने–लेने मे कोई निर्जरा नहीं होती। यदि देने से विशुद्धि बनती होती तो कर

(टैक्स) भरने में भी विशुद्धि बनती। एक जीव पूजा कर रहा है, तो वहा विशुद्धि बनती है। एक से कहा जा रहा कि आपका नबर कल है, तो उसको थोडा भार–सा मालूम होता। अहो ! किसी व्यक्ति को धर्म के लिए उत्साहित तो करना पर उसको बाधना मत, उससे भार महसूस होता है। विशुद्धि के स्थान पर सक्लेशता का वेदन होता है। एक व्यक्ति दान देते–देते बध रहा है और एक जीव दान देते–देते छूट रहा है, क्योकि उसके भाव आ गये कि नगर मे मुझे ही देना पड़ता है। क्या करूँ ? नहीं दूगा तो व्यवस्था नहीं बनेगी। एक जीव जाँच रहा है और एक देख रहा है। परतु देखने वाला तो कर्म की निर्जरा कर रहा है, क्योकि बेचारा सोचता है कि प्रभु ! मेरी सामर्थ्य होती तो मैं भी दान करके अभिषेक कर लेता। पता नही मैंने कौन से अशुभ कर्म किये होगे जो कि मनुष्य पर्याय मिली, उच्च जैन कुल मिला भाव भी हैं पर मेरे पास द्रव्य नहीं है। जरूर मैंने पूर्व मे ऐसे कोई दुष्कर्म किये, जिससे मैं तडप रहा हूँ , निहार रहा हूँ।

भो चैतन्य! जब तक शरीर निर्मल है, तब तक सब कुछ कर लो क्या मालूम कब विवेकहीनता जन्म ले ले। क्या मालूम कब क्षयोपशम नष्ट हो जाए। मूलाचार जी मे लिखा है–

अति बाला अति बुड्ढा, घासत्ति गब्भिणीय अधलिया।
अतरिदा व णिसण्णा, अस्व णिच्चत्था ।। ४६९।। (मू.)

जो अति वृद्ध, रोगी अगहीन, अति मूढ हैं, उनसे आहार नहीं लेना। मै तो यही सोच रहा था कि प्रभु! उसकी बुद्धि को तो हरण किया ही लेकिन उसके द्वारा धर्म को भी खींच लिया। हाथ–पैर टूट गए अपाहिज है, नहीं कर सकता अभिषेक, नही दे सकता पात्र को दान। शरीर मे कोई दाग हो गया कोई कुष्ठ हो गया, खाँसी–जुखाम हो गया। नहीं कर पा रहा अभिषेक। मनीषियो! उसे मनुष्य मत कहना जिसके जीवन मे स्वदार सतोष व्रत नहीं है। अब देखो, कैसे–कैसे आपको राग से हटा रहे हैं। राग से जो तुम्हारा असीम राग था उसको सीमा मे कर दिया। परिग्रह बढाने की लिप्सा बढी, तो कह दिया कि शुभ पात्रो को दान करो। सम्यक्दृष्टि जीव का धन समीचीन क्षेत्रो मे जाता है और जिनके पास दुष्कर्म का धन होता है, वो असमीचीन क्षेत्रो मे जाता है। घर मे ऐसी सतान ने जन्म ले लिया कि जनम से उसका उपचार कराना प्रारभ करना पडा। ध्यान रखना यह उस सतान का ही पाप–उदय नही है, माता–पिता का भी पाप का उदय है।

भो ज्ञानी! एक सज्जन भिलाई मे नारियल बेचते थे। उनने कहा–महाराज जी! वह दिन मुझे याद है, जब मै इस धर्मशाला मे आया था। चार दिन बाद मुझे निकाल दिया गया था, तो नारियल बेचना प्रारभ किया, लेकिन मदिर जाता था। यहाँ कोई बाहर का सेठ आया, कहता है कि भैया देखो आपके यहाँ यदि एक आँख वाला नारियल मिल जाए तो हमे बताना, हम आपको मुँह माँगा पैसा देंगे। नारियल बेचने वाला बेचने से पहले आँखे देख लेता था। भाग्य का उदय उसे एक

दिन, एक आँख वाला नारियल मिल गया और उन सज्जन ने उनको पंद्रह हजार रुपये दे दिये। आज उस व्यक्ति की यह स्थिति है कि साल मे दो-चार लाख रुपये का दान न दे दे, तब तक उसे शाति नहीं मिलती। भो ज्ञानी! साता का असाता, असाता का साता में कर्म का सक्रमण वह श्रावको का भी हो जाता है। श्रीपाल श्रावक ही तो थे। कुष्ठ रोग हो गया। भगवान की आराधना की। असाता सातारूप सक्रमित हो गयी। कर्म का विपाक सतो या श्रावको को ही नहीं, तीर्थकरो को भी नहीं छोडेगा। आदिनाथ स्वामी से पूछो कि आपने ऐसा बध कर लिया कि तीर्थकर बनकर भी आपको भोगना पडा।

मनीषियो! आचार्य भगवन् ने बडा सहज कथन कर दिया। यह रूढी का धर्म नहीं, विवेक विज्ञान का धर्म है। द्रव्य ज्यादा है, तो कुएँ मे पटकने को नही है। कुपात्र को, अपात्र को दिया गया दान कुभोग-भूमि का ही हेतु है। भो ज्ञानी आत्मा ! धन का दान तो देना, परतु स्थान को देख लेना। यदि आप पात्र को दान दे रहे हो, तो ऐसा द्रव्य मत देना जिससे राग बढे। पिच्छी, कमडल और जिनवाणी ये तीन उपकरण माने जाते हैं निर्ग्रंथो के-ज्ञान-उपकरण, शौच-उपकरण और सयम-उपकरण। तो पात्र को वही वस्तु दान मे दे जिससे दुख, भय न हो असयम न हो, मादकता न बढे। उनकी तपस्या मे स्वाध्याय मे वृद्धि का कारण बने ऐसा ही द्रव्य देना। पात्र तीन प्रकार के कहे गए हैं जो मोक्ष के कारण भूत हैं। अविरति सम्यक्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती-ये तीन प्रकार के पात्र जिन आगम मे कहे हैं, चौथे प्रकार के पात्र की चर्चा नही है। आचार्य भगवन् कुदकुद देव ने ग्रथराज अष्टपाहुड मे' मात्र तीन लिगो की वदना का व्याख्यान किया। पहला निर्ग्रंथ-लिग दूसरा गृहीलिग यानि ऐलक क्षुल्लक और तीसरा आर्यिका-लिग, यह तीन ही हमारे आगम मे पूज्य है। दान देने से लोभ का अभाव हो जाता है दान देने से और लोभ हिसा की पर्याय है। इसलिए अतिथि-सत्कार मे दान अवश्य करना चाहिए। इसलिए दान देना भी अहिसा है और दान नही देना हिसा है। अपने जीवन मे अहिसा-धर्म की ओर बढो।

"आहार दान–अहिंसा स्वरूप"

गृहमागताय गुणिने मधुकरवृत्त्या परानपीडयते ।
वितरति यो नातिथये स कथं न हि लोभवान् भवति।। १७३।।

अन्वयार्थ :– य = जो गृहस्थ। गृहमागताय = घर पर आये हुए। गुणिने = सयमादि गुण युक्त को और। मधुकरवृत्त्या = भ्रमर के समान वृत्ति से। परान् = दूसरो को। अपीडयते =पीडा नही देता। अतिथये = अतिथि–(साधु) के लिए। न वितरति =भोजनादिक नहीं देता है।स लोभवान् =वह लोभी। कथं न हि भवति =कैसे नहीं है।

कृतमात्मार्थं मुनिये ददाति भक्तमिति भावितस्त्याग ।
अरतिविषादविमुक्त शिथिलितलोभो भवत्यहिसैव।। १७४।।

अन्वयार्थ – आत्मार्थं = अपने लिए। कृतम् = बनाये हुए। भक्तम् = भोजन को। मुनिये ददाति = मुनि के लिए देवे।इति भावित = इस प्रकार भाव–पूर्वक। अरतिविषादविमुक्त =अप्रेम और विषाद से रहित तथा। शिथिलितलोभ=लोभ को शिथिल करने वाला। त्याग= दान। अहिसा एव भवति = अहिसा–स्वरूप ही होता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ९० ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की दिव्य–देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने सहज–रूप से कथन करते हुए सकेत दिया है कि सहज–स्वरूप निर्ग्रंथो मे होता है अर्थात् निर्ग्रंथ सहज–स्वरूप मे चलते हैं। अहो मुमुक्षु! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी तो मुनिराज की बात कर रहे हैं। परतु तुम्हारे द्वारे पर श्वान भी आ जाये तो डडा मार के मत भगाना, वह भी भावी भगवान है, भटका भगवान है। मुमुक्षु को श्वान मे भी भगवान दिखते हैं। मिथ्यादृष्टि वह होता है, जिसे भगवान में भी भगवान नजर नहीं आता। अरे! द्रव्य–दृष्टि से देखते हो, तो भेद नहीं दिखते हैं। परतु तुम्हरी दृष्टि तो पर्याय पर टिकी है। पुत्र का सबध द्रव्य दृष्टि का नहीं है, पर्याय का है। द्रव्य से करोगे तो भो ज्ञानी! अज्ञानता है। द्रव्य तो चैतन्य है, द्रव्य तो जीव है, पर्याय पुत्र की है। पर्याय–दृष्टि को हटाने का उद्देश्य पर्याय का अभाव नहीं है। पर्याय–दृष्टि हटाने का

उद्देश्य है कि तुम्हे जीव–विशेष मे पुत्रपना झलक रहा है। कर्त्तव्य–भाव झलक रहा उसे हटा दो, वह कष्ट का हेतु है। पर्याय तो पर्याय है, पर्याय भगवान नहीं है। भगवान बनने वाला द्रव्य जरूर है, यदि भव्य है तो। अहो ज्ञानी! पजा मार रहा है, रक्त निकाल रहा है। फिर भी देखने वाले को भगवान दिख रहे हैं। अहो पचम काल की मुमुक्षु आत्माओ! मुनिराज किसी को पजा तो नहीं मार रहे हैं किसी के रक्त को तो नही निकाल रहे हैं। युगल मुनियो की दृष्टि तो देखो कि रक्त निकालने वाले को भी भावी भगवान कह रहे हैं। जब सिह की पर्याय मे पजा मार दिया तो वे युगल मुनिराज बोले–तुम विश्व मे अहिसा का नाद करोगे यह तुमने क्या कर डाला ? आँखो से आँसू टपक गये। वाणी तुम्हारी ऐसी निकले कि शेर के अदर भी वात्सल्य का झरना फूट पडे, टूटे–हृदय मिल जाएँ। श्रद्धा का दीप जल जाए वही वाणी वाणी है। गगा के नीर मे शीतलता की कमी आ सकती है, पर प्रेम के नीर मे कभी शीतलता की कमी नहीं आती। कुम्हार को मिट्टी मे सुदर घट नजर आता है, तभी तो घट निकाल पाता है। मूर्तिकार/शिल्पकार को पाषाण नजर आता ही नही है, उसे तो मूर्ति दिखती है। बस ध्यान रखना कि जिसे इस आत्मा मे भगवान नजर न आए, उनकी आँखे पत्थर की हैं और जिनको इस आत्मा मे भगवान नजर आ जाए, उनकी आँखे शुद्ध शिल्पकार की हैं।

भो ज्ञानी! तुम्हारी दृष्टि स्थूल है। पत्थर के भगवान के क्षेत्र मे तो तुम कहते हो कि पाप मत करो परतु इस चैतन्य भगवान से मिलकर तुम पाप करते हो। क्या स्त्री व पुरुष भगवान नही है ? किसी स्त्री को पुरुष मे रमने के भाव आ रहे हो, वह सिद्धो से विषय–भोग की भावना भा रही है। किसी पुरुष मे स्त्री से रमने के भाव आ रहे हैं, तो वह भी सिद्धो से रमण के भाव कर रहा है। अब जियो कहॉ जिओगे ? करो, क्या करोगे ? द्रव्य–दृष्टि कह–करके भोगो मे लिप्त होना तो अज्ञानी की श्रेणी है। अरे! द्रव्य–दृष्टि को समझकर साधु–सत बन जाना, वह मुमुक्षु की दृष्टि है। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि द्रव्य–दृष्टि की आँख से देखो, जो तुम्हारे द्वार पर अजुली लगाए खडा हो, वहॉ साधु नही देखना, वहॉ तुम चलते–फिरते सिद्ध को देख लेना। मनीषियो! यही निर्विकल्प–अवस्था है, यही आत्म–सुख है जब तुमने योगी का पडगाहन किया, उनकी अजुली पर ग्रास रखा गद्गद् भाव आया। जब सयमी के हाथ मे ग्रास देने मे इतना आनद है तो तपोपूत बनने मे कितना आनद होगा। जैसे आपने एक श्रमण की अजुली पर ग्रास रखा, आपको आह्लाद उत्पन्न हो रहा है, ऐसे ही जो स्वरूप मे लीन योगी होता है उसे परम आह्लाद उत्पन्न होता है। उसका नाम आत्मानुभूति है। भो ज्ञानी–आत्मा! जिस उत्तम श्रावक को घर मे तीर्थंकर जैसा महामुनि पात्र मिला हो नियम से वह जीव मोक्षगामी ही होता है। लेने वाला तो मोक्ष जा ही रहा है, देने वाला भी जायेगा। आज तक तुमने तीर्थंकर मुनि को आहार नहीं दिए, पर यह ध्यान रखना, नरकायु का बधक, सामान्य–मुनि को भी आहार नहीं दे सकता। सम्मेद–शिखर की वदना और निर्ग्रंथ मुनि के

हाथ पर दिया गया दान, यह तुम्हें द्योतित कर रहा है कि तुम्हारी नरक–आयु का बध नही हुआ।

जिस जीव को अशुभ–आयु का बध हो चुका है, वह त्यागी के हाथ पर ग्रास नहीं रख सकता, उसके भाव नहीं बनते, यह सिद्धात है। अब कोई कहे कि हमारी व्यवस्था नहीं बन पा रही, तो अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि क्यों नहीं बन पा रही ? विषमताओ के मध्य में तुमने पुत्र की शादी की, उसमें भोजन भी किया, तुम बेटे की वर्षगाठ और अपनी जन्मगाठ भी मना रहे हो यह कौन–सी सम्यक्त्व की क्रिया है? अब तो भोगो की वर्ष–गाठ भी मनाने लगे हैं, अर्थात् शादी की वर्ष–गाठ मनाते हैं, जो यहाँ मिथ्यात्व है। उधर श्मशान घाट तुम्हारी याद कर रहा है और इधर तुम भोगो की याद कर रहे हो। अरे! यह वीतराग–शासन है, इसमे मृत्यु–महोत्सव मनाया जाता है। जीने की शैलियॉ तो अनेको ने सिखायी हैं, एकमात्र नमोस्तु–शासन ही ऐसा है, जिसमे मरण की शैली सिखायी जाती है। यह वीतराग–विज्ञान मरण का विज्ञान भी है। तुम तीर्थों की वदना छोड देना, भगवान की पूजा छोड देना, लेकिन बनने वाले भगवान की पूजा मत छोड देना। तुम सामायिक का प्रायश्चित कर लोगे, प्रतिक्रमण का प्रायश्चित कर लोगे, लेकिन क्षपक की सल्लेखना नही छोडना, समाधि काल मे क्षपक की सेवा करना, सामायिक काल मे भी चले जाना, समाधि भग हो गयी तो उस जीव का तुमने क्या किया ?

भो ज्ञानी! मोक्ष, शरीर से नहीं होता, शरीर से साधना होती है। मोक्षमार्ग मन से होता है क्योकि मन से ध्यान किया जाता है। चित्त के निरोध का नाम ध्यान है। चित्त की निर्मलता का नाम चारित्र है। यदि तुम्हारा चित्त कलुषित है तो करते रहो सामायिक, वीतराग–वाणी कहेगी कि तेरे पास कुछ नही है। द्रव्य श्रुत से मोक्ष नहीं होता, मोक्ष तो भाव–श्रुत से होता है। 'बराबर' कहने से मोक्ष नही होगा जब परिणाम बराबर होगे तब मोक्ष होगा। ध्यान रखना, यदि आपने ईमानदारी से व्यापार किया है और कोई आपको बदनाम भी करे, तो घबराना नहीं। परतु यदि आप ईमानदारी से कार्य नहीं कर रहे, तो तुम्हे कितनी ही यश–कीर्ति मिल रही हो, वह पूर्व का पुण्य हो सकता है, लेकिन आगे तो ठोकरे खानी ही हैं। जिस दिन पकडा जाता, उस दिन सबको मालूम चल जाता है। कितना ही घोटाला कर लो। यह शब्दो का मार्ग नही है, साधना का मार्ग है। धन्य हो! जो ऐसे उज्ज्वल कुल मे आ गये। आपको ऐसा तो नहीं लगता, कि मैं ऐसे उज्ज्वल कुल मे क्यो आ गया, जिससे पाप करने का मौका नहीं मिलता ? लोक मे ऐसे भी लोग हैं जो जैन होकर भी कुकर्म के भाव लाते हैं। वे सोचते हैं कि मैं नीच–कुल मे होता तो खुलेआम कुकर्म करता, यहॉ समाज का प्रतिबध है। समझ लो, तुम्हे नीच–आयु का बध हो गया।

भो ज्ञानी! उस जीव से पूछना, जिसने योगी के मुख से णमोकार मत्र सुनते हुए आखरी सास ली हो। बड़े–बडे तपस्वी बिलख जाते हैं, पर अतिम समय मे कोई णमोकार मत्र सुनाने वाला नहीं

मिलता। एक वह तिर्यंच था जिसे राम ने पूर्व पर्याय मे णमोकार मत्र सुनाया। वह था सुग्रीव का जीव –बैल। जिसको मरते समय राम ने णमोकार मत्र सुनाया। इसलिए ध्यान रखना, कहीं तुम जा भी रहे हो, तो रुक जाना, उस व्यक्ति को णमोकार सुना देना। वह चूहा और चिडिया ही क्यो न हो। काम तो बाद मे भी हो सकते हैं, पर हस आत्मा निकल जाये तो वह हस मिलने वाला नहीं। मनीषियो ! लोभी कभी दान नहीं देता। नारी पूछे सूँम से, का तुमरो कछु गिर गयो। बोला–मेरा कुछ गिरा नही, मैंने किसी को कुछ दिया नहीं, पर मेरे तो दूसरे के लेते–देते देखकर ही प्राण खिसक रहे थे। अरे! ऐसा मत कर लेना कि कोई दान दे रहा है और तुम्हारे प्राण खिसक रहे हैं। मत करो दानान्तराय–कर्म का बध। यह लोभ कषाय उसे छोडने नहीं देती।

भो ज्ञानी! कभी भी मुनि के उद्देश्य से भोजन मत बनाना, क्योकि तुम शक्ति से ज्यादा बनाते हो। बेचारा शक्ति से ज्यादा कर लेता है और उसका नम्बर नहीं लगा, तो बेचारे को सक्लेषता होती है। जिनवाणी मे यह लिखा है कि श्रावको को शुद्ध भोजन करना चाहिए। तुम आलसी हो गये हो कि तुम शुद्ध भोजन नहीं करते। मूलाचार मे 'उद्दिष्ट' की परिभाषा यह है कि महाराज को यह मालूम हो कि आज तुम्हारे लिए अमुक व्यक्ति के यहाँ जाना है और व्यक्ति को मालूम हो कि आज महाराज को अपने यहाँ आना है। अरे! न पात्र को मालूम होना चाहिए न दाता को मालूम होना चाहिए इसका नाम अनुदिष्ट' है। बताओ, कौन से मुनिराज आपके निमत्रण पर आपके घर आते हैं ? यह महादोष है, ऐसा कर मत देना, विकल्पो मे मत डालना। पात्र नहीं मिले, कोई बात नही है। आपने तो जो भाव भाए थे, उससे लोभ शिथिल हो रहा है। दान क्यो दे रहे हैं आप ? ताकि महाराज भूखे न रहे ? अरे! तुम कभी मत देना। देखो जब क्षयोपशम कर्म का उदय होता है, तो चौबीस हजार मुनियो के आहार हुए हैं। कुछ लोग इसलिए मुनि नही बनते, कि सब ही मुनि बन गये तो आहार कौन देगा ? तुम्हे आहार की चिता है तो मुनि बनना भी मत, लेकिन ध्यान रखना तुम्हारे पुण्य का योग होगा तो जगल मे भी मिलेगा। तुम यह कभी मत सोचना, कि मैं चर्या करा रहा हूँ। जो आप सेवा कर रहे हैं, यह भी उनका भाग्य है। आप दान अपने लोभ को शिथिल करने के लिए देना, क्योकि दान देना अहिसा है और जो दान नहीं देता, वह हिसक है।

"समाधिमरण (मृत्यु–महोत्सव)"

इयमेकैव समर्था धर्मस्व मे मया सम नेतुम्।
सततमिति भावनीया पश्चिमसल्लेखना भक्त्या ।। १७५ ।।

अन्वयार्थ . इयम् = यह। एका = एक। पश्चिमसल्लेखना एव = मरण के अत मे होने वाली सल्लेखना ही। मे = मेरे। धर्मस्व = धर्मरूपी धन को। मया = मेरे। सम = साथ। नेतुम् = ले चलने को। समर्था = समर्थ है।इति = इस प्रकार की। भक्त्या= भक्ति। सततम् = निरन्तर। भावनीया = भाना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || ९१ ||

भो मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की यह पावन–पीयूष वाणी अतरग में परम विशुद्ध भावो को उत्पन्न करने वाली है। भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी उस अधिकार को प्रारभ करने जा रहे हैं जिस अधिकार के बाद सम्पूर्ण अधिकार समाप्त हो जाते हैं। जब तक अधिकारदृष्टि है, तब तक सल्लेखनादृष्टि नही। जब तक पूज्य–पूजक की दृष्टि है तब तक समाधि नही है। जहाँ समाधि है वहाँ पूजा सुनिश्चित है, पर पूजा की भावना वालो की समाधि किंचित भी नहीं है। सँभल के सुनना, साधना का शिखर, साधना का फल साधना का साम्राज्य उसका नाम सल्लेखना है। उस सल्लेखना की भावना सतलेखना से ही होगी। सल्लेखना अर्थात् समीचीन लेखन। शरीर और कषायों को सुखा डाला, शरीर को दुर्बल कर डाला पर कषाय दुर्बल नहीं हुई, तो भो ज्ञानी! शरीर चला जाएगा पर सल्लेखना नहीं हो पाएगी। भो ज्ञानी ! आज तक हमने जीवन में अनेक मरण किये हैं। जैनदर्शन मे बाल–बाल मरण, बाल मरण, बाल–पडित मरण, पडित मरण और पडित–पडित मरण इन पाच प्रकार के मरण की चर्चा की गई है। मिथ्यात्व के साथ जो मरण होता है, वह 'बाल–बाल मरण' है। अहो ! इस आत्मा ने बार–बार बाल–बाल मरण किये हैं। उस बार–बार मरण का ही प्रभाव है कि पचम काल मे आज सभी विराजे हैं। बार–बार मरण नहीं किया होता, तो आज तुम्हारी बार–बार वदना होती। जन्म को सुधारने की बाते अनत बार की हैं, लेकिन मरण को सुधारने की बात नही की। पूरा जीवन तूने जीने के लिए नष्ट कर दिया, परतु मरने के लिए कुछ भी नहीं किया। यह मृत्यु महोत्सव अतिम उत्सव है। जीवन मे सम्यक्त्व के साथ जो मरण किया है, वह 'बालमरण' है। अव्रतदशा मे, देशव्रति

अथवा प्रतिमाधारी का जो मरण है, वह 'बाल पडित मरण' है। महाव्रती का मरण 'पडित मरण' है। केवली भगवान का निर्वाण 'पडित–पडित मरण' है। लेकिन ध्यान रखना, जब तक पडित मरण नही करोगे, तब तक पडित–पडित मरण नहीं होगा। बिना निर्ग्रंथ मुद्रा धारण किये, पडित मरण नही होता। बिना पडित मरण किये, पडित–पडित मरण नही होता। यदि सल्लेखना रहित भी एक निर्ग्रंथ मुनि का मरण होता है, तो बत्तीस भव से ज्यादा कोई ससार मे भटक नहीं सकता है। सच्चा भावलिगी मुनि बत्तीस भव के अदर–अदर मोक्ष जाएगा और सल्लेखना सहित मरण कर लेगा तो ज्यादा से ज्यादा सात–आठ भव, और कम से कम दो –तीन भव मे मोक्ष हो जावेगा।

भो ज्ञानी! एक जीव जब साधना की कसौटी पर पहुँचकर जैसे ही श्रावक के बारह व्रतो को धारण करता है, वही से सल्लेखना का व्रत प्रारभ हो जाता है। जिन जीवो को सल्लेखना करना हो वे बडे विवेक के साथ समझे। रसना इद्रिय पर नियत्रण करना प्रारभ कर देना। अतिम समय मे वासनाएँ नही सताती रसना सताती है। खाया नही जाता पर खाने को माँगते हैं। जिस समय जिह्वा पर रखा, उसी समय हस निकल गया तो भो ज्ञानी ! पूरे जीवन की साधना व्यर्थ चली गई। सल्लेखना वाले प्राणी के लिए विश्व के प्राणीमात्र के प्रति समाधि भाव होता है। तभी मनीषियो! समाधि होती है। एक बात का ध्यान रखना, समाधि मे बहुत भीड आ सकती है लेकिन भीड मे कभी समाधि नही होगी। एकात मे होगी, समाधि निज मे होगी और समाधि कोई करा नही पाएगा समाधि स्वय मे होगी। जिनके सानिध्य मे सल्लेखना होती है, वे आचार्य निर्यापकाचार्य कहलाते हैं और जिनकी सल्लेखना होती है वे क्षपक कहलाते हैं। निर्यापकाचार्य की खोज बारह वर्ष से प्रारभ हो जाती है। भो ज्ञानी! पूरा प्रकरण अब ध्यान से सुनना–यमराज ने जिनके सकेत दे दिये, वह पुत्र से आज बोल दे, बेटा! मेरे आत्मज हो, मैंने तुम्हे जन्म दिया है। मैंने लालन–पालन किया, पर ध्यान रखना कि अतिम समय तुम मुझे सल्लेखना जरूर करा देना किसी हास्पिटल नही ले जाना। परतु उस वैद्य को जरूर दिखा देना, जो रत्नत्रय की औषधि देने वाला हो। शरीर की सुरक्षा तो मैने अनेक बार की है परतु आत्म धर्म की सुरक्षा मैंने आज तक नहीं की। साधक पूरा प्रयास करता है। ध्यान रखना जरा–सा सिर दर्द हो या कोई विषमता आ गई, तो कहने लगे–मैं तो समाधि लेता हूँ। यदि आप मरने की भावना भाते हो, तो सल्लेखना मे अतिचार है। समाधि ऐसे नहीं होती है कि घर मे कोई विषमता आ गई, हम तो समाधि लेते है। यह कोई सल्लेखना नहीं। सल्लेखना की भाषा को समझना–रत्नत्रय का पालन हो रहा है कि नही सल्लेखना कब करे ? जीवन मे ध्यान रखना, गुरु बनाकर चलना पर गुरु के गुरु बनने का प्रयास मत करना। जीवन मे गुरु रहेगा, तो हर समय तुम्हारी सुरक्षा होगी। मिट्टी के गुरु ने धनुर्विद्याधारी बना दिया, तो यह चैतन्य गुरु निर्वाण पर चलना क्यो नहीं सिखा पाऐगा। गुरु आचरण नही कराते, गुरु आचार्य होते हैं, गुरु आपके आचरण

पर सील लगाते हैं। आचरण तो आपको ही करना होगा। मुनि नहीं बना पाएगे, मुनि तो आपको ही बनकर रहना होगा। मनीषियों! ध्यान रखना, सल्लेखना बिना गुरु के सानिध्य मे ले के मत बैठ जाना, अन्यथा व्रत को भग करोगे, या कुमरण करोगे, दो बाते निश्चित हैं। क्योकि जब तक आपकी पूरी आयु की अवस्था को नहीं जान लेते, तब तक कोई गुरु किसी को सल्लेखना नही देते। बारह वर्ष की समाधि आपने ले ली और आयुकर्म अधिक था, तो क्या करोगे। शरीर स्वस्थ्य है यदि जबरदस्ती छोड दोगे, तो परिणाम कलुषित हो जाएगे। इसलिए समाधि ऐसे नहीं ली जाती है। खेल तमाशा मत कर लेना। आप अभ्यास करो, जैसे आप जिनालय मे एक घटे बैठे हो, एक घटे चारो प्रकार के आहार पानी का त्याग करके बैठ जाओ। पच परमेष्ठी का स्मरण करो यह सल्लेखना का अभ्यास चल रहा है।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजाया च नि प्रतिकारे।
धर्मायतनु –विमोचनामाहु सल्लेखनामार्या ।। १२२।। र क श्रा ।।

सल्लेखना के दो भेद–यम सल्लेखना और नियम सल्लेखना। जब योगी विहार करते हैं, तब नियम सल्लेखना ले के चलते हैं। जब जगल से पार हो रहे हैं, नदी अटवी से पार हो रहे हैं, उसमे सल्लेखना ले कर चलते हैं। क्या मालूम, कोई खूखार जानवर ने आक्रमण कर दिया। वह नियम सल्लेखना है। जब तक मैं इस जगल से पार नही हो जाऊँगा तब तक मौनव्रत ले लेते हैं, और सिद्धभक्ति आदि बोल करके योग धारण कर लेते हैं। पचपरमेष्ठी के स्मरण मे लीन हो जाते हैं। यदि घोर उपसर्ग आ जाए, जिसमे समझ मे आ जाए कि मैं अब जीने वाला नहीं हूँ। मनीषियो! पूछ लेना उस कन्या से जिसे अजगर ने निगल लिया। पिता पहुँच गए कुल्हाडी हाथ में उठा ली सल्लेखना की दृष्टि देखना–हे तात! इसको मत मारो, हिसा के भागीदार मत बनो, बेटी अब नहीं मिलेगी। हे जनक! यह अजगर मेरा परम मित्र है आज मैं प्रभु का स्मरण करते–करते और प्रसन्नता के साथ यम के गाल मे जा रही हूँ। पिता के देखते–देखते अजगर ने निगल लिया। अहो मुमुक्षुओ!

अहिमिक्को खलु सुद्धो, दसणणाणमइओ सदा रूवी।
णवि अत्थि मज्झ किचिवी, अण्ण परमाणु मित्तपि।। ४३।। (स.सा)।।

'अहिमिक्को खलु सुद्धो' का नाद गूज रहा है। अहो ! तू जिसे निगल रहा है, वह मैं नही हूँ, और जो मैं हूँ, उसे तू कभी निगल नही सकता है। चरम का मुख मेरे धर्म का चरवण नहीं कर सकता। हे मुमुक्षु आत्माओ! ध्यान रखना–कोई छील दे बसूले से तो भी उसमें शात हो जाना लेकिन अपने धर्म को मत छील लेना। समाधि सम्यक्दृष्टि की होती है। जब देख लिया कि जीवन बचने वाला नहीं है, उस समय सल्लेखना की जाती है। 'दुर्भिक्षे' घोर अकाल पड जाए, जहाँ श्रावको को खाने को ही ना हो, वहाँ सयमी को कैसे भोजन मिलेगा ? उस समय वह आत्मधर्म की रक्षा

के लिए सल्लेखना धारण कर लेते हैं। जरा यानि बुढापा। जब आँखो से दिखना बद हो गया, कानो से सुनना बद हो गया, समितियो का पालन होते नहीं दिखता, उस समय मनीषियों! सल्लेखना धारण कर लेना चाहिए। रोग हो जाए, जिसका प्रतिकार नही किया जा सकता। अज्ञानी रोएगा और ज्ञानी कहेगा, अहो! मेरा सौभाग्य है, मुझे पन्द्रह दिन पहले से मालूम चल गया, चलो मैं अपनी साधना करता हूँ। भो ज्ञानी! सल्लेखना पर पहला ग्रथ है शिवकोटि महाराज का 'भगवती आराधना'। ओहो! सल्लेखना शुरू नहीं की, स्थान बता रहे कि कहाँ सल्लेखना हो सकती है। 'समाधि तत्र' मे आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी लिख रहे हैं

गुरु मूले यति निचिते–चैत्य सिद्धात वर्धिसदघोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसनसमन्वित मरणम्।। (स त)

प्रभु! मेरा मरण हो तो कहाँ हो, गुरु मूले गुरुदेव के चरणो मे हो, जहाँ पर यतियो का समूह हो। एक निर्दोष सल्लेखना के लिए अडतालीस मुनि चाहिए। अहो श्रावको! रागी तो पानी पिला डालेगे। जिनवाणी नही पिलाएगे। गुरु तुम्हे पानी नही जिनवाणी पिलाएगे। आचार्य ब्रह्मदेव स्वामी ने अपनी 'परमात्म प्रकाश' टीका मे लिखा है कि अतिम समय मे निश्चित ऐसी मति हो जाएगी और जैसी मति है, निश्चित वैसी ही गति हो जाएगी। जैसी मति है, वैसी गति निश्चित है। इसलिए मति को अभी से सुधार लो। श्री और श्रीमती से हट जाओ अपनी मति को सुधार लो। एक बेटे को औषधि का पान कराना हो तो माँ नाक पकड लेती है। तुम्हारे मुख को दबा सकती है, लेकिन तुम्हे गुटका नही सकती। गुटकना तो तुम्हे ही पडेगा। इसलिए समतभद्र स्वामी कह रहे हैं। "धर्मायतन विमोचन"' धर्म के लिए शरीर छोडना। इसका नाम सल्लेखना है। वह सल्लेखना श्रावक भी करता है, साधु भी करते है। कहा भी है–

काल क्षेपो न कर्त्तव्या आयु क्षीणे दिने–दिने।
यमस्य करुणा नास्ति,धर्मस्य त्वरिता गति।।

भो ज्ञानी! मरण दो प्रकार का होता है–तद्भव मरण और नित्य मरण। आयु पूर्ण करके मरना यह तद्भव मरण है और प्रतिदिन मरना वह नित्य मरण चल रहा है। "यमस्य करुणा नास्ति" यमराज को कोई करुणा नहीं है। इसलिए "धर्मस्य त्वरितागति" धर्म मे तुरत गमन करो। भो ज्ञानियो! मरना तो होगा निश्चित है। कुदकुद स्वामी कह रहे हैं–

धीरेण वि मरिदव्व, णिधीरेण वि अवस्स मरिदव्व।
जदि दोहि विहि मरिदव्व, वर हि धीरत्तणेण मरिदव्व।। १००।।
सीलेण वि मरदिव्व, णिस्सीलेण वि अवस्य मरिदव्वं।
जदि दोहि विहि मरिदव्व, वर हि सीलत्तणेण मरिदव्व।। १०१।। मूलाचार।।

अहो मुमुक्षु! धीर को भी मरना पडता है, तो णिधीर को भी मरना पडता है और णिधीर

को भी मरना पडता है। जब दोनों को ही अवश्य मरना पडता है तो क्यो न हम धीरता के साथ मरण करे। यदि शील के साथ मरे, तो समाधि मरण हो गया, कहेगे। शव यात्रा नहीं, शिव यात्रा निकलेगी। क्योकि मुमुक्षु की शवयात्रा नहीं होती। पडित–पडित मरण करने वाले की कभी शवयात्रा नहीं होती है। कपूर की भाति शरीर उड जाता है। न डडे की आवश्यकता पडती है, न कण्डे की। घर से निकल चलो पिच्छी कमण्डल ले के, नहीं तो डडे कण्डे के साथ तुम्हारा बेटा निकालेगा। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं–परमार्थ की दृष्टि बनाकर चलना, लेकिन व्यावहारिकता से खोखले मत हो जाना।

मनीषियो! यह धन साथ नही जाएगा, यह धरती साथ नहीं जाएगी, यह कुटुम्बी भी नही जाएगे। नारी कहाँ तक जाएगी? जिसके पीछे तूने पूरी देह खोखली कर डाली, वह देहरी के पार नही जाती। बहिन कहाँ तक? मात्र शरीर तक। परिवार कहाँ तक? श्मशान घाट तक। इसके बाद क्या होगा? तेरी चिता जलेगी। अहो! जिनका चित्त निर्मल नही है। उनकी बार–बार चिता जलती है। जिनका चित्त निर्मल हो जाता है, वह चारित्र धारण कर लेते हैं। चारित्र धारण कर लेते है तो पडितमरण हो जाता है और पडित मरण हो जाता है, तो आगामी पडित–पडित मरण की भूमिका बनती है फिर ये चिताए नहीं जलतीं। हे मुमुक्षु! जब तक तुझे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक पचपरमेष्ठी भगवान के चरण छोड के मत बैठ जाना। वे ही चरण तुझे परम–चरण की शरण प्राप्त कराएगे।
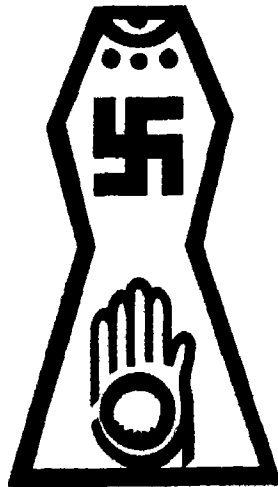
"जन्म नहीं, मरण सुधारो"

मरणान्तेऽवश्यमह विधिना सल्लेखना करिष्यामि।
इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिद शीलम्।।१७६।।

अन्वयार्थ – अह = मैं। मरणान्ते = मरणकाल मे। अवश्यम्= अवश्य ही। विधिना =(शास्त्रोक्त विधि से। सल्लेखना = समाधिमरण। करिष्यामि = करूँगा। इति = इस प्रकार। भावनापरिणत = भावनारूप परिणत करके। अनागतमपि = मरणकाल आने के पहिले ही। इद = यह। शीलम् = सल्लेखना व्रत पालयेत् = पालना चाहिए।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ९२।।

भव्य आत्माओ! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने अलौकिक दिव्य सूत्र प्रदान किया है कि निर्मल जीवन उसी का है जिसने जीवन मे मरण की कला को सीखा है। मनीषियो! चार गतियो के लिए तुमने अनत बार जिया है, कितने भेष बदले, कितने भाव बदल दिए, भव बदल दिए, परतु भवातीत नही हुये। अहो ज्ञानियो! पुण्य के सद्भाव मे व्यक्ति को पाप की काली रात्रियॉ नजर नहीं आती हैं। ध्यान रखना–न पुण्य काम मे आएगा न भगवान काम मे आएगे। तेरे भाव ही काम मे आएगे। भव तेरा भावो से बनेगा। जैन सिद्धात मे तीन प्रकार के मरणो की चर्चा है–इग्नी मरण, प्रायोग्य मरण, भक्त प्रत्याख्यान मरण। हम सभी इतने अशुभ कर्म से बधे हुए हैं कि आज का एक श्रेष्ठ मुनि आचार्य भी इग्नी मरण नही कर सकता प्रायोग्य मरण नहीं कर सकता, क्योकि पचम काल मे एकमात्र भक्त–प्रत्याख्यान मरण होता है। यह प्रकरण 'षट्खण्डागम' से प्रारभ हो रहा है।

भो ज्ञानी! मरण के तीन भेद किए हैं– च्युत–चावित त्यत् जो मरण आयु को पूर्ण करके हो रहा है वह व्युत मरण है। जो कदलीघात मरण होता है उसका नाम चावित मरण' है और जो सल्लेखना–पूर्वक मरण होता है वो 'त्यत् मरण' कहलाता है। 'कदलीघात मरण' को ही जिनवाणी मे अकालमरण कहा जाता है। कदलीघात मरण' का अर्थ होता है–जैसे केले के वृक्ष मे एक बार फल आ जाते हैं पुन उसमे फल नही आते। उस केले के वृक्ष को निकाल कर अलग कर दिया जाता है, परतु उसकी आयु पूरी नहीं होती है।

विसवेयण रक्तक्खय–भय सत्थगहण सकिलेसेहि।
आहारुस्सासाण णिरोहओ छिज्जए आऊ।। गो क का ।।५७।।

उसी प्रकार से विष वेदना से, रक्त के क्षय से, श्वास के निरोध से, आहारपानी के न मिलने से, अतिशीत बाधा से, अतिऊष्ण बाधा से, वज्रपात इत्यादि कारणो से जो मरण होता है, उसका नाम है अकाल मरण। सल्लेखना आत्मघात नहीं है। अहो ज्ञानियो! जब भी किसी जीव का अकाल मरण होता है, ध्यान रखना, आयु की पूर्णता की अपेक्षा से सुकाल ही होगा। जो आयुकर्म एक सौ वर्ष चलने वाला था, उसके निषेक अतरमुहूर्त मे क्षय हो जाते हैं, इस अपेक्षा से सुकाल है, लेकिन जो सौ वर्ष चलने वाले थे, इस अपेक्षा से अकाल मरण है। उदयावलि मे समय के पहले खिर जाना इसका नाम है 'उदीरणा'। तपस्या के द्वारा समय के पहले कर्मों का खिरा देना, इसका नाम है–अविपाक निर्जरा। भो ज्ञानी! चावित का नाम 'कदलीघात मरण' है। 'च्युत' आयु को पूर्ण करके मरण होता है। 'त्यत्' वह सल्लेखना–पूर्वक मरण होता है। यह पचम–काल दग्ध–काल है। सहनन हीन है, परिणाम अति विशुद्ध नहीं है। जीवो के उत्तम सहनन के अभाव मे मनीषियो! प्रायोग्य–मरण और इग्नी–मरण नही होता। क्योंकि इस समाधि की साधना मे क्षपक अपने शरीर की स्वय सेवा करता है, अपने शरीर की दूसरो से सेवा नही करवाता है। पात्र स्वय उठाएगे। क्योकि आपने मेरा कमण्डल ले लिया, विवेक की बात समझना –यदि मैं लेकर चलता और जब रखता तो मार्जन करके रखता, उपकरण मेरा है और आप कहीं भी रख देते हो। आदान–निक्षेपण समिति स्वय की होती है। वे महान योगी किसी को अपना कमण्डल भी नही देते हैं। किसी को शरीर से स्पर्श नही होने देते हैं, जब थकेगे तो स्वय के हाथ–पैर नहीं दबाएगे। शरीर का काम शरीर का है, मेरा काम मेरा है। इसको एक बार भोजन दिया है, एक बार पानी दिया है, उससे काम लेना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसे उत्तम सहनन् धारी, ऐसी साधना करने वाला योगी ही सर्वार्थसिद्धि और सिद्धालय मे जाता है। शेष योगी सिद्धालय नहीं जा पाएगे। सम्यक्दृष्टि जीव का उसी भव से यह बाल–पडित–मरण है। सामान्य अविरत सम्यक्दृष्टि जीव का बाल–मरण होता है। देशव्रती का बाल पडित मरण होता है।

भो ज्ञानी! प्रायोग्यमरण मे साधक न स्वय अपने शरीर की सेवा करते हैं, न दूसरे से सेवा करवाते हैं। इग्नी मरण मे–दूसरे से सेवा नही करवाते, स्वय की सेवा स्वय करते हैं। यदि आवश्यकता पड जाए तो अपना पैर भी दबा सकते हैं। आवश्यकता पड जाए तो तेल भी लगा सकते हैं। थोडा समझना–क्योकि लोगो के बीच मे जो भ्रम है वह आगम के विपरीत है। तेल आहार नही है। इस भ्रम को आगम के अनुसार निकाल देना। हमारे आगम भगवती आराधना, जो समाधि का सबसे महान ग्रथ है तथा गोमट्टसार जीवकाण्ड मे छह प्रकार के आहार की चर्चा है। पहला आहार मानसिक आहार, दूसरा कवलाहार, तीसरा ओजाहार, चौथा लेपआहार, पॉचवा कर्मआहार, छठवाँ नो कर्मआहार। इसमे मनुष्य और तिर्यचो का जो आहार होता है वह कवलाहार कहलाता है। जो ग्रास तोड–तोड कर लिया जाता है वह 'कवलाहार' है। देवो का जो आहार होता है अमृत

झर जाता है, 'मानसिक आहार' कहलाता है। अडो के अदर पक्षियो का जो आहार होता है, सेते हैं वह 'ओज आहार' कहलाता है। केवली भगवान का जो आहार होता है वह कर्म 'नो कर्म' आहार है।

भो ज्ञानी! आप तेल को लेप आहार कहते हैं, पूर्ण आगम के विरुद्ध भाषण करते हो एक–इद्रिय जीव का जो आहार होता हैं, उसका नाम लेप–आहार' है। वृक्षों को खाद पानी दिया जाता है वह 'लेप– आहार' है। यदि शरीर के श्रृगार के उद्देश्य से आप कर रहे हो, तो राग दृष्टि है, पर आहार नही है। सल्लेखना के काल मे मनीषियो! चार प्रकार के आहार का त्याग होता है। आगम मे खाद्य स्वाद्य, लेय और पेय ये चार प्रकार के आहार है। तो लेय आहार है, 'लेप आहार' नहीं है। लेय' यानि जिसको चाट–चाट कर खाया जाता है, जैसे चटनी, रबडी आदि। सल्लेखना के समय मे, यदि क्षपक को उचित निर्यापकाचार्य नही मिले और आगम–ज्ञान के अनभिज्ञ मिल गए तो असमाधि जरूर करा देगे। शरीर मे दाह हो रहा है–शीतल उपचार कर दो। परिणाम विकृत न होने पाए। ग्रीष्मकाल है तो उनके तलुवो मे आप घी लगा दो। इग्नी–मरण की साधना जब करता है साधक, तो मनीषियो! पूर्ण स्वावलबी होता है। अपने शरीर की सेवा स्वय करेगे। सभी श्रावको को वैयावृत्ति का अधिकार नही है। सल्लेखना के काल मे उसी साधु और श्रावक को अदर प्रवेश देना जिसका निर्विचिकित्सा अग, वात्सल्य अग उपगूहन अग स्थिरीकरण अग प्रचुर हो। वहाँ सयम के दोष नही देखे जाते। वहाँ परिणामो को सभाला जाता है। अज्ञानी जीव को तो यह लगेगा–अरे! इतने बडे साधु और भोजन माँग रहे थे? हाँ भोजन भी माग सकते है, लेकिन आपकी बुद्धि इतनी निर्मल होनी चाहिए कि भोजन भी न दे और सक्लेषता भी न होने दे।

भो ज्ञानी! मरण का तीसरा भेद भक्त प्रत्याख्यान मरण है। इसका उत्कृष्ट काल बारह वर्ष का होता है। जघन्य काल अतर–महुर्त का है और मध्यकाल के असख्यात भेद है। उसमे मुनिराज स्वय भी शरीर की सेवा कर सकते है और दूसरे से भी करवा सकते है। आप लोग परमेष्ठी जो जिस रूप मे है उसे वैसा मानिए, अरिहत–अरिहत हैं और साधु–साधु हैं। भूल तुम्हारी भावना की हो जाती है, आपने साधुओ को भगवान मान लिया है। वे अठारह दोषो से रहित भगवान होते हैं, साधु नही। वे अट्ठाईस मूलगुणो के पालक होते हैं। महाव्रतो का मुनिराज पालन करते हैं, लेकिन उन्हे तुम भगवान बनाकर चलोगे तो तुमको दोष नजर आएगे। उनको महाराज मान कर चलोगे तो निर्दोष नजर आएगे, जहाँ तुमने जैसे को वैसा नही समझा तो सम्यक्ज्ञान भी नहीं होगा। अन्यून न्यूनता से रहित हो और अधिकता से रहित हो, 'यथातत्वम् जो जैसा है उसको वैसा समझना, उसका नाम सम्यक्ज्ञान है। एक अविरत सम्यग्दृष्टि को हम महाव्रती का अवरोपण करके देखें तो उसका जीवन नहीं चल सकता। जो साधुचर्या का कथन करने का ग्रथ है उसे श्रावक अपने मे देख

लेगा तो श्रावक बनके नहीं जी पाएगा। पचम काल का साधु बारहवे गुणस्थान को लेकर चलेगा तो कभी साधु बनकर नहीं जी पाएगा, घबरा जाएगा।

भो ज्ञानी! 'नियमसार' की वाचना टीकमगढ मे चल रही थी, आँचार्यश्री क्लास ले रहे थे। जब निश्चय–गुप्ति का कथन आया तो मैं यह नहीं समझता था कि निश्चय–गुप्ति और व्यवहार–गुप्ति क्या होती है। वहाँ तो सीधा कथन चल रहा था, गुप्तियाँ ऐसे होना चाहिए। सिर हिल गया, शरीर मे रक्त का सचार चल रहा है आत्म प्रदेशो मे चचलता चल रही है, तो 'काय गुप्ति' गई। हम लोग कहने लगे– महाराज! तो फिर साधु कहाँ बचे। बोले–नही पहले पूरी बात सुनो! यह निश्चय–गुप्ति का कथन है, व्यवहार–गुप्ति से स्थिर रहना काय–गुप्ति है। कुचेष्टा नही करना। विहार करते समय–काय गुप्ति होगी, ईर्या समिति से जो चल रहे हैं। जब गुप्ति का पालन नहीं होता, तो समिति का पालन करते हैं, पर गुप्ति का अभाव नही है वहाँ समिति का सद्भाव है। सामायिक के काल मे एषणा समिति होगी अटठाईस मूलगुण रहेगे। लेकिन ध्यान रखना, क्रिया मे एक ही होगा। आपने एक गुप्ति का कथन समझ लिया और समिति को नही समझे। इसलिए गुप्तियाँ भी हैं और समितियॉ भी है, और दस धर्म भी हैं।

भो ज्ञानी! भक्तप्रत्याख्यान मरण की साधना के लिए जब साधक जाता है, तो बारह वर्ष की साधना एक–दो दिन मे नही होगी। दो व्यवस्थाए हैं। मुनिराज यदि समाधि ले तो स्वगुण मे भी कर सकते है, आचार्य समाधि ले तो राजमार्ग है। परगण मे समाधि ले। स्वगण यानि जिस मुनि सघ मे है वही। पर–गण यानि दूसरा मुनि सघ। प्रत्याख्यान–मरण की भावना से युक्त हो करके एक आचार्य परमेष्ठी जब देखते हैं कि मेरी आयु का काल नजदीक है, तो अपने निमित्त ज्ञान से ज्योतिष से। जैन सिद्धात मे ज्योतिष तत्र–मत्र को मोक्षमार्ग में उपादेय स्वीकार नही किया। जैन सिद्धात का खगोल जैन सिद्धात का ज्योतिष वृहद है और दसवॉ पूर्व इसी से भरा है। 'करलक्खण' यानि हस्तरेखा ग्रथ इसलिए लिखा है कि जब एक मुमुक्षु मोक्षमार्ग की इच्छा से आता है, तो मुझे उसे नख से शिख तक देख लेना चाहिए। यहाँ तक लिखा है भगवती आराधना मे कि यदि इस विषय का जानकार मिथ्यादृष्टि विद्वान भी है, तो उससे तद् विषयक जानकारी ले सकते हैं। मुहूर्त विषय किसी के शास्त्र का नही है। ज्योतिष विमानो का है, नक्षत्रो का है, तारो का है, इसमे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व नहीं होता। जब देख लेते हैं कि अब मेरा आयुकर्म नजदीक है, निषेक निकलने वाले हैं तो वे आचार्य परमेष्ठी देखते हैं कि अब यह आचार्य पद भी मेरी समाधि का साधन नही है। मैने बहुत दीक्षाएँ दे दी हैं। अब तो सन्यास काल है। अब गणपोषण काल नहीं है। योग्य शिष्य को बुलाएगे और पूरे सघ में मुनि परिषद लगेगी। फिर आचार्य चर्चा करेंगे– हे यतियो! वीतराग शासन जयवत रहे। ऐसी चर्या करना, ऐसा कोई कदम नहीं रखना कि कुल को कलक लगे। ऐसी भाषा

सुनते ही अचानक साधुगण पिच्छी उठा लेते हैं और पूछते हैं– प्रभु! ऐसा आज क्यो कह रहे हैं आप। तब आचार्य कहते हैं–मैं चाहता हूँ कि सघ का सचालन सुनिश्चित व व्यवस्थित रहे। इसलिए आप लोगो गमे से किसी को मैं बालाचार्य पद देना चाहता हूँ। अभी नहीं कहा कि मैं सल्लेखना लेने जा रहा हूँ, क्योकि अहिसा महाव्रत है। एकाएक कहेगे तो धक्का लग सकता है साधुओ को। योग्य साधु को, जिनके लिए सम्पूर्ण सघ ने स्वीकृति दे दी है। जो गुणो मे, ज्ञान मे और सयम मे वृद्ध हो, उनको बालाचार्य पद पर अधिष्ठित करते हैं। अब आचार्य महाराज के पास शिष्य आया कि प्रभु! अमुक दोष हो गया है तो कहेगे– जाओ! बालाचार्य महाराज से प्रायश्चित ले लो। अभी वह देखेगे कि यह किस प्रकार से प्रायश्चित देते हैं। इस प्रकार आचार्य ही आचार्य बनाते है। व्यवस्था को चलाने के लिए चतुर्विध सघ भी अपने आचार्य को स्वीकार कर लेता है। हमारे आगम मे व्यवस्था है कि प्रायश्चित ग्रथ उन बालाचार्य महाराज को आचार्य महाराज एकात मे पढाते है। आपको भी यह विचार करना है कि जब भी मेरा मरण होगा तो मैं समाधि सहित ही मरण करूगा। चिता नही करना समाधि ही सुधारना है जीवन तो बहुत सुधर गए मरण सुधारना है।

देवगढ मदिर स १८

"सल्लेखना आत्मघात नहीं

मरणेऽवश्य माविनि कषायसल्लेखनातनुकरणमात्रे।
रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति।। १७७।।

अन्वयार्थ · अवश्य = अवश्य ही। भाविनी = होनहार। मरणे 'सति'= मरण के होते हुए। कषायसल्लेखनातनुकरण मात्रे = कषाय सल्लेखना के कृश करने मात्र व्यापार मे। व्याप्रियमाणस्स = प्रवर्त्तमान पुरुष के। रागादिमन्तरेण = रागादिक भावो के बिना। आत्मघात = आत्मघात। नास्ति = नही है।

|| पुरुषार्थ देशना || ९३ ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्धमान स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक दशा का कथन किया है कि जीव ने अनत भवो से मरने की कला को नहीं सीखा है। अत सल्लेखना पूर्वक मरण ही व्यवस्थित मरण है, क्योकि मुमुक्षु जीव का जीवन ही व्यवस्थित नही होता, वरन् मरण भी व्यवस्थित होता है। 'भगवती आराधना" ग्रथ मे उल्लेख है कि सघ के आचार्य अपनी सल्लेखना प्रारभ करने के पूर्व सघस्थ ज्येष्ठ साधु को बालाचार्य के रूप मे प्रतिष्ठित करते हैं। आचार्य ने अभी उन्हे आचार्य पद नही सौंपा है। पूरे सघ को विराजमान कर लेते हैं और विराजमान करने के बाद सारे गण को शिक्षा प्रदान करते हैं। पद ही नही देते, आचार्य उनको आचार्यत्व का श्रद्धान् भी देते हैं। जो श्रद्धाए मेरे प्रति थी आपकी, वह सारी श्रद्धाए मेरे नवीन आचार्य के प्रति हो गई। योग्य नक्षत्र, योग्य मुहूर्त मे चतुर्विध सघ के सानिध्य मे मनीषियो! वे आचार्य परमेष्ठी अपने सिहासन से उतर कर जिनके लिए दीक्षा दी थी, शिक्षा दी थी आज वह दिन आने वाला है, उनके चरणो मे नमोस्तु करेगे। भो ज्ञानी! अहकार की समाधि हो जाये समाधि हो गई। मरण तो हो जाता है, पर जो अदर का गरूर, अहकार है, उसकी सल्लेखना पहले कर देना। आगम मे लिखा है, पहले कषायो को कृश करो फिर शरीर को कृश करो, इसका नाम सल्लेखना है। योग्य नक्षत्र मुहूर्त को देखकर नवीन बालाचार्य को आचार्य पद पर सस्कारित कर देते हैं। फिर कहते हैं–इस सिहासन पर विराजे आप। अब देखना–गुरु खडा है, शिष्य कैसे बैठे? नहीं–नही मैंने इतने दिन आप सबको दीक्षा दी है, शिक्षा दी है, आज गुरुदक्षिणा देना है। यदि इतने विशाल सघ का सचालन करने वाला नही होगा, तो साधुओ की चर्या नहीं चल सकेगी। अनुशासन बहुत अनिवार्य है। जब एक गुरु अपने शिष्य को 'आचार्य' शब्द से सबोधित कर

रहा होगा और स्वय नीचे बैठकर नमस्कार करते है –हे आचार्य भगवन्! आपको नमोस्तु! इसमें बहुत बडा रहस्य है। जब मै नमोस्तु कर रहा हूँ मेरे चेले तो अपने आप नमोस्तु करेगे। क्योकि आचार्य पद तो दिया और तुम समर्पण नहीं दिला पाए, तो आपको आचार्य पद देना, न देना समान था। आपको याद है जब राम जगल मे गये। न भी जाते तो काम चल सकता था। कारण यह था कि यदि मै यहॉ रहूँगा, तो ज्येष्ठ के सामने लघु को कोई स्वीकार नही करेगा। इसलिए राम अयोध्या छोडकर चले गये जिससे कि भरत को सब राजा स्वीकार करे। यह सत्य था कि राम वहॉ रहते गद्दी पर भले भरत बैठे रहते लेकिन लोगो की श्रद्धा तो राम पर थी। सम्मान सम्राट का नही होता सम्मान श्रद्धावान् का होता है।

भो प्रज्ञात्मा! आचार्य परमेष्ठी आचार्य–पद देने के बाद पुन सघ मे विराजते हैं। नवीन आचार्य के साथ बैठकर अब गण को सबोधित करते है और गण के पहले गणी (नवीन आचार्य) से कहते है–अभी तक आप गुरु की छाया मे रहे हो परन्तु अब आप गुरु छाया मे नही, गुरु पद पर आसीन हो। गुरु पद को गुरू बनाकर चलना। गुरु पद पर पहुँचकर लघु तो बन जाना, पर पद को लघु मत बना देना। नमोस्तु –शासन का रक्षण ऐसे करना जैसे तुम अपनी देह का रक्षण करते हो। तुम कष्ट सहन कर लेना पीडाए सहन कर लेना, लेकिन केशरिया ध्वज को कभी नीचे नही आने देना। आचार्य का पद मुनि के पद से बहुत कुछ भिन्न है। मुनि सुकल्याण मे ही तल्लीन रहता है। मुनि बडा निर्मल स्वभाव है। पर आचार्य को सघ की ही नही पूरे जैनशासन की चिता होती है। समाज की भी चिता आचार्य को होती है, समाज हमारी बिखर जायेगी समाज नही बचेगी तो अहो! मुनियो की चर्या कहॉ चलेगी। मुनियो से, आचार्यो के आठ विशेष गुण अलग से होते हैं। उनमे एक दूरदर्शी नाम का गुण भी होता है। अन्यथा मत समझना। बालक और समाज का एक आयतन है–देव शास्त्र गुरु और उनके भक्त कहलाते हैं आयतन। यदि आपने आयतन का अविनय किया है तो सम्यक्त्व की विराधना की है। देव, शास्त्र, गुरु से श्रद्धान हट जाए तो यह मिथ्यात्व मे चला जाए। शिष्य माला के मणि जैसे एक धागे मे पिरोये होते हैं, वे खिसक न जाए इसलिए तीन मणि ऊपर दिये जाते हैं, जैसे माला के मणि एक सूत्र मे हैं। भिन्न होकर के भी अभिन्न दिख रहे हैं, फिर भी भिन्न हैं। अहो! गणी तुम समाज को सम्हालना तो भिन्न–भिन्न को अभिन्न करके देखना, फिर भी तुम अपने स्वभाव मे भिन्न ही रहना, उसको मत खो देना। सघ के गुरु तो एक हैं, पर गुरु के सग मे तो अनेक हैं। सघ मे रहना समाधि का घातक नहीं है, पर सग बनाकर रहना समाधि का नियम से घातक है। सघ मे जहॉ 'ग' लग गया, वहॉ परिग्रह हो गया। जहा घ' है वह चतुर्विध सघ है। साधुओ की ओर दृष्टिपात कर कहते हैं–आप सभी इन आचार्य महाराज की आज्ञा मे चलेगे। आज से प्रायश्चित्त यही देगे, आलोचना यही सुनेगे। आदेश भी यही देगे और अब मैं सघ से प्रस्थान कर रहा हूँ। स्वामिन–स्वामिन ऐसा मत करो आपने मुझे जीवन दिया है, सयम दिया है,

ज्ञान दिया, मुझे सेवा का मौका तो दो।

आचार्य कहते है—भो भव्यात्मन्! हमने आपको मोक्ष मार्ग पर चलने की दीक्षा दी है, अपनी सेवा के लिए दीक्षा नही दी है। यह होती है निर्मल दृष्टि! शिष्य का सेवा करना धर्म है। पर आचार्य को सेवा नहीं चाहना ही धर्म है और शिष्य का विनय करना ही धर्म है। बारह वर्ष की यह भक्त प्रत्याख्यान विधि अभी प्रारभ नही कर रहे, सस्तर पर आरूढ नही हुए। अब जाकर विभिन्न सघो में विचरण करेगे और वहाँ जाकर यह देखेंगे कि यहाँ का समाचारी किस प्रकार का है। 'भगवती–आराधना' मे लिखा है—छोटे मुनिराज, छुल्लक ऐलक, ब्रह्मचारी आदि को राग बढेगा मेरे वियोग मे रोयेंगे। सबसे बडा विकल्प था कि हम जिसके लिए निर्देश देते थे, आज वे ही मुझे निर्देशन दे रहे हैं। यह अहम्–भाव यदि मन में आ गया, तो सल्लेखना बिगड जायेगी। जिनके प्रति विशेष अनुराग था, एकात मे शिकायत लेकर पहुँच जायेगा, तो उनके भाव बिगडेगे। मैं यदि ज्येष्ठ बनके रहूँगा तो वह नवीन शिष्य यह कहेगे कि मेरे पूर्व आचार्य ऐसा नही करेगे तो मैं ऐसा क्यो करूँ? ऐसा करके, समझा करके, कुछ भी हो सजल नेत्रो को छोडकर एक अथवा दो मुनिराज को साथ लेकर निर्यापकाचार्य की खोज मे सल्लेखना लेने जाते हैं। स्वात्मा की प्रभावना के लिए जाते हैं। सब साधु देखते रहते हैं। आगम मे परगण की चर्चा सामान्य मुनि के लिए नही है। आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणधर इन सबके लिए है। इन सबको गण छोडना पडेगा यह राजमार्ग है पद भी छोडना पडेगा। गणधर भाव भी छोडना पडेगा। गण छूटना तो सहज हो जाता है पर मनीषियो! गणधर भाव का छोडना बडा कठिन होता है। यहाँ मेरा निर्वाह होगा कि नही। अब निर्यापकाचार्य की खोज के साथ–साथ क्षेत्र की भी खोज करेगे। जिस क्षेत्र मे अति ऊष्णता हो उस क्षेत्र मे सल्लेखना धारण न करे। जिस क्षेत्र मे अति शीत का प्रकोप हो, उस क्षेत्र मे समाधि के लिए स्थापित न हो। समशीतोष्ण स्थान जहाँ पर हो, वहाँ सल्लेखना का स्थान निश्चित किया जाये। मुनिराज जब बिहार करते हैं सहज रूप मे उसमे दो तीन हेतु है। पहला हेतु समाजो का ज्ञान हो जाता है कि यहाँ की समाज कैसी है? और वहाँ अतिम समय का निर्णय करते रहते हैं कि किस समाज मे सल्लेखना होती है। यदि शासक विधर्मी है, तो उस नगर में सल्लेखना स्वीकार नहीं की जायेगी। ये भी निर्यापकाचार्य के सघ मे जब पहुचते है तो ध्यान रखो, श्रावक तो विधिपूर्वक उनकी चर्या करेगा, सघ मे जाऐगे, तीन दिन तक एक दूसरे की चर्या देखेगे। सल्लेखना के लिए स्वीकृति एकाएक नहीं दी जायेगी। जो निर्यापकाचार्य होगे वे भी उनकी चर्या को देखेगे। लघुशका से लेकर विश्राम तक सब चर्या देखी जायेगी। यदि समझ रहे हैं कि इनके अदर भावना निर्मल है, सल्लेखना चाहते है, तो चौथे दिन आचार्य महाराज उनको सघ मे रहने की स्वीकृति देगे, अन्यथा उनसे कह देगे कि आप बिहार कर सकते हो। तीन दिन तक यदि परीक्षा नहीं हो पाती

और सभावना दिखती है, तो ज्यादा लबे समय तक चल सकती है। वे आचार्य पूरे सघ की मीटींग करेगे। कौन? जिनके सघ मे प्रवेश किया, क्योकि अकेले आचार्य महाराज के दम पर समाधि नहीं होती है। सबसे पूछेंगे कि क्या इनको सघ मे स्थान दिया जाये? यदि सभी साधु इनको स्वीकृति दे देगे कि हम सभी सेवा करेगे, वैयावृत्ति करेगे। वैयावृत्ति के अभाव मे सल्लेखना सभव नहीं है। वैयावृत्ति बहुत बडा तप है, स्वय के सयम की साधना, रक्षा और दूसरे के सयम की साधना।

भो भव्यात्मा! चार वर्ष क्रम से अनाज का त्याग करते हैं। पूरा भोजन नहीं छोड देना, फिर रसो का त्याग करते हैं और जब आठ वर्ष बीत गये, अतिम चार वर्ष बचे। इसमे उपवास मे वृद्धि करते है। अतिम जो वर्ष होगा, उस वर्ष मे गहनतम अनशन तप करते हैं। ऐसे तपस्या को बढ़ाते हैं वे वीतरागी मुनिराज। अब क्षपक का अतिम जो वर्ष चल रहा है उस वर्ष मे साधना और बढायेगे, कभी अनशन कभी ऊनोदर। कुछ समय बाद घृत आदि रसो का त्याग, छाछ लिया। जब देखा कि अब छाछ भी लेने का सामर्थ्य नही है, तो ऊष्ण जल चल रहा है। यह सब क्रमिक है। एका–एक नहीं छूटता। वह एक अतिम दिन आता है जब शरीर शिथिल हो चुका है। उत्त्मात प्रतिक्रमण होता है, जीवन का अतिम प्रतिक्रमण है, सात प्रतिक्रमण मे अतिम प्रतिक्रमण। पूरे सघ के पास अब क्षमा मागने कैसे जाये? अतिम समय मे पिच्छी ला दी क्षपकराज की। भो ज्ञानी आत्माओ! एक मुनिराज की समाधि मे सहायक अडतालीस मुनिराज की चर्चा अपन करेगे। भो ज्ञानी! ध्यान रखना, एक मुनि के द्वारा कभी सल्लेखना नही होती, कम से कम दो मुनि चाहिए। एक–एक मुनि के पास उनकी पिच्छी रखी जायेगी और कहेगे–देखो! आपके जीवन मे कही हमारे क्षपकराज के द्वारा क्लेश पहुँचा हो, तो आज अपने हृदय से क्षमा कर देना। वे मुनिराज अपनी पिच्छी उठाकरके क्षमा करेगे और उनसे जाकर निवेदन–करेगे आप विकल्प नही करो, सपूर्ण सघ के 'साधुओ की आपके प्रति निर्मल भावना है। पचमकाल मे मनीषियो! चवालीस मुनियो की व्यवस्था का आगम मे उल्लेख है। "आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी" कह रहे हैं–यह समाधि समाधि है अकाल–मरण नही है। समाधि आत्मघात नही, समाधि सतीप्रथा नहीं है। मनीषियो! शरीर और कषाय को कृश करने का नाम समाधि है। आयुकर्म के पूर्ण होने पर बचेगा तो नहीं। इसलिए पचपरमेष्ठी की आराधना करते हुए निर्मल भाव से प्राणो का विसर्जन करना, हस आत्मा को परमहस बनाकर ले जाना, इसका नाम समाधि है। ध्यान रखना, शरीर को सुखा डाला और कषाय नहीं सूखी, तो समाधि नहीं होगी। रागवश, द्वेषवश विष आदि खा लेना, फाँसी लगा लेना, उसे कहते हैं–आत्मघात। इसमे फाँसी नहीं लगाई जाती, अग्नि मे नहीं कूदा जाता, निर्मल भाव से आयु पूर्ण की जाती है। अपने आत्म–परिणामो को निर्मल करने की प्रवृत्ति का नाम सल्लेखना है। इस प्रकार "दिन–रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ देहात के समय मे तुमको ना भूल जाऊँ।" मनीषियों! इस सूत्र को रटते रहना आज से ही।

"सिद्धि का हेतु–समाधि

यो हि कषायाविष्ट कुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रै.।
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यात्सत्यमात्मवध ।। १७८।।

अन्वयार्थ हि = निश्चय करके। कषायाविष्ट = क्रोधादि कषायों से घिरा हुआ। य = जो पुरुष कुम्भकजलधूमकेतु = श्वास निरोध, जल, अग्नि। विषशस्त्रै = विष, शस्त्रादिको से अपने। प्राणान् = प्राणो को। व्यपरोपयति = पृथक् कर देता है। तस्य = उसके आत्मवध = आत्मघात। सत्यम् = सचमुच। स्यात् = होता है।

|| पुरुषार्थ देशना || ९४||

मनीषियों! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् सल्लेखना या सत्‌लेखना का कथन कर रहे हैं कि समीचीन रूप से कषाय और शरीर को कृश करते हुए जो विवेक पूर्वक मरण होता है, उसका नाम समाधि–मरण है। जिसने वर्तमान मे धर्मध्यान, शुभध्यान, शुक्लध्यान किये हैं उसी का मरण समाधिमरण होता है। लोगो ने समाधिमरण का अर्थ समझ लिया है कि धर्मक्षेत्र मे किसी को रख देना अथवा उसे धर्मात्मा के पास बिठाल देना, इसका नाम समाधिमरण है। अरे, यह तो व्यवहार दृष्टि है। समाधिमरण यानि स्वय के साम्यरूप परिणामो से युक्त होकर जो मरण है उसका नाम समाधिमरण है और वह धर्म स्थान पर धर्मात्माओ के बीच मे होता है। किन्तु ध्यान रखना, जो समाधि में होगा वही समाधिमरण करा सकता है। एक सल्लेखना के लिये ४८ निर्ग्रंथो की आवश्यकता होती है। अहो ज्ञानियो! वृद्धत्व से बडा कोई सखा नहीं, जो मृत्यु के पास ले जाता है। अत वृद्ध–अवस्था आपसे कुछ कह रही है कि गर्दन झुक गई, कमर झुक गई, अब आप कषाय की कषाय को भी झुका दो तो समाधि हो जायेगी।

भो ज्ञानी! सम्राट पद युवराज को राजा स्वय देता है। इसी तरह आचार्य अपना आचार्य पद स्वय दें देते हैं। परतु आप अपनी चाबी क्यों नही छोड रहे हैं? क्या नरक के द्वार को खोलने के लिये चाबी रखे हुए हो? तुम क्यों इस परिग्रह मे बधे हो? अहो! रत्नत्रय का प्रतीक जनेऊ भी डाल लिया है और उसमें तुमने चाबी लटका दी है। यह चाबी का छल्ला नहीं था, यह रत्नत्रय धर्म की याद दिलाने का प्रतीक था। भो ज्ञानी! जैसे आचार्य अपने चतुर्विध सघ को बुलाते हैं, ऐसे ही आप गृह त्याग करें। अपने बेटो को बुलाओ और समाज को भी आमत्रित करो और कहो कि

आप के जीवन मे मेरे द्वारा आपके अत स को जरा भी ठेस लगी हो, तो आज मुझे क्षमा कर देना। मैं अब अतिम विदा की व्यवस्था कर रहा हूँ।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, यह ससार बडा स्वार्थी है, जब तक तुम घर मे हो तब तक पूरी सम्पत्ति उनके नाम भी मत कर देना। अपनी जीवन की सुरक्षा के लिए कुछ लेकर चलना, क्योकि पडौसी भीख डाल सकता है, लेकिन बेटे भीख भी नही देगे। पूरी व्यवस्था समझना, अन्यथा तुम समाधि नही कर पाओगे और सक्लेशता में जीओगे, कोई पानी देने को नहीं आयेगा, तुम पानी–पानी चिल्लाओगे। आज सब अपने–अपने दिखते है किंतु जब शरीर शिथिल होता है, मल फूटता है, तब कौन देखेगा? अहो पुत्रो! ध्यान रखना, जब तुम्हारे मल को इन माता–पिता ने उठा कर फेका था, आज तुमने माता–पिता के मल के लिए नौकर लगा दिया है। सोचो, तुम्हे जन्म इसलिए नही दिया था कि तुम माता–पिता को अस्पताल मे फेक आना। तुम्हे जन्म इसलिए दिया था कि तुम अतिम समय मे भी शरीर को सभाल लेना। पिता को भी चाहिए कि बेटे ही नही और भी कोई गरीब तुम्हारे वश का है, उसको भी बराबर अश दे देना। यही समदत्ती है। समाधि के पूर्व अपने जीते जी सब को दे देना चाहिए। दीन–दुखियो को करुणा दान, पात्रो–सुपात्रो को और तीर्थ क्षेत्रो मे भी दान देना चाहिए।

भो ज्ञानी! जब तक तुम्हारी ऑखे काम कर रही हैं तब तक जिनवाणी पढ लो, पच परमेष्ठी के दर्शन कर लो, अतिम समय मे पैर काम करे तो तुम तीर्थो कि वदना कर लो। क्योकि 'सर्वार्थसिद्धि ग्रथ मे स्पष्ट लिखा है कि जिनबिम्ब वदना सम्यकत्व उत्पत्ति का हेतु है। तीर्थ वदना, स्वाध्याय एव ज्ञान का फल है सयम और सयम का फल समाधि है। बेटो को सब सौंपने के बाद अब पिता समझाता है–पुत्रो! जैसे हमने समाज को भाया देश को चलाया, वश को चलाया है मेरे बेटो! तुम उसकी लाज रखना। निर्ग्रंथो को दान देते रहना, गरीबो पर करुणा रखना। सबधो को सबध मानकर चलना, परतु अपने स्वभाव को मत खो देना। पिता ने एक–एक को बुला–बुलाकर और यहा तक कि नाती तक के भी पैर पड लिये। क्योकि पिता कहता है कि मेरे सबध इस पर्याय के हैं, परतु द्रव्य तू भी अनादि है और मैं भी अनादि हूँ। मेरी पर्याय से तुम्हारे द्रव्य को जरा सा भी कष्ट पहुँचा हो, तो क्षमा कर देना। 'खम्मामि सव्व जीवाणा, सव्वे जीवा खमतु मे, मैत्री मे सर्व भूतेषू, बैर मज्ज ण केणवी'–सूत्र गूजता है। ऐसा सोच करके वह श्रावक सभी धन, धरती का विभाग करके, सपूर्ण द्रव्य का विर्सजन करके, योग्य मुनिसघ मे प्रवेश कर लेता है। यदि सामर्थ्य होती है और तीव्र भावना है उसको दिगबरी दीक्षा दे दी जाती है। यदि शरीर में कोई ऐसा दोष है और दीक्षा का पात्र नहीं है, तो अतिम समय मे तो एकात स्थान मे उनको दीक्षा दी जा सकती है। लज्जाशील हो नगर का सेठ हो, राज्य पुरुष हो, ऐसे लोगो को शीघ्र दीक्षा नहीं दी जाती। क्योकि जब तक

सर्व सम्मति नहीं होगी तो उनके कारण सघ पर उपसर्ग आ सकता है। यदि राज्य का कर्मचारी है तो जब तक शासन से पूर्ण निवृत होकर नहीं आता, उसे दीक्षा नहीं दी जाती है क्योकि शासन का उपसर्ग सघ पर हो सकता है।

हे यतीश्वर! कल जो श्रावक था, आज श्रमण के रूप में उनकी सेवा में सभी मुनिराज रत हो जाते हैं, क्योकि वैयावृत्ति परम–तप है। वैयावृत्ति के अभाव में समाधि नहीं हो पाएगी। उस क्षपक की अब ४८ मुनिराज सेवा करेगे। सल्लेखना का स्थान नगर से न अति–दूर हो, न अति–नजदीक। शीत–उष्णता तथा गाँव का कोलाहल क्षपक की सल्लेखना में बाधक न हो। वसतिका मे खिडकियाँ होना आवश्यक है, क्योकि भीड दर्शन के लिए आएगी। किसी को मना नहीं करना, परतु ध्यान रखना कि अदर असयमी का प्रवेश न हो। 'भगवती–आराधना मे' लिखा है कि जो उत्तमार्थ साधक की सल्लेखना के दर्शन नहीं करना चाहता, लगता है कि उसे उत्तमार्थ मरण से द्वेष है अथवा समाधि से प्रीति नहीं है। भो ज्ञानी! निर्यापकाचार्य सम्पूर्ण–गण की स्वीकृति लेने हेतु कहते हैं कि यह क्षपक अतिम–समाधि के उद्देश्य से आया है, इनकी सल्लेखना के समय सेवा आप करेगे कि नहीं। इनको स्वीकार करे या नहीं, क्योकि यह क्षपक सम्पूर्ण–सघ से आज स्वीकृति चाहता है। सभी मुनिराज–त्यागीजन कहते हैं कि हे प्रभु आचार्य भगवन्। यह तो हमारा अहो भाग्य है कि वैय्यावृत्ति करना पडेगी। सोलहकारण भावनाओ मे वैय्यावृत्ति एक भावना है जो वैय्यावृत्ति से शून्य है वह तो धर्म से शून्य है।

भो ज्ञानी! जिस सघ मे वैय्यावृत्ति की भावना नहीं है, उस सघ मे कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए। यह दृष्टि कोई सिखाने की नही अपितु अतरग का ऋजु परिणाम है, ऋजु भाव है, मार्दव भाव है और धर्म के प्रति ललक है तो अपने आप ऐसे भाव बनेगे कि अपन क्षपक की सेवा करेगे। अहो! श्रद्धा–विहीन कोई वैय्यावृत्ति नहीं होती है। वैय्यावृत्ति अतरग से होती। यह ध्यान रखा जाता है कि एक– साथ एक ही सल्लेखना कराई जाती है, दो की नहीं। क्योकि क्षपक को कहीं भाव आ गये कि निर्यापकाचार्य दूसरे पर विशेष ध्यान दे रहे हैं, मेरे पर नही दे रहे हैं, तो समाधि बिगड जायेगी।

भो ज्ञानी! सबसे कठिन कषाय सल्लेखना है। प्रतिकूलता दिखने पर क्रोध की ज्वाला नाक पर नाचने लगती है। अहो! कमण्डल–पिच्छी कल्याण नहीं करा पाएगे, कषाय–सल्लेखना ही काम कराएगी। अत ऋषिराज पूरे सघ को व्यवस्था सौंपते हैं और चार–चार के ग्रुप बना दिए जाते हैं। चार मुनिराज साधक की आहार चर्या मे सहयोग करेगे, चार मुनिराज जहाँ क्षपक विराजमान है उसके दरवाजे पर बैठेगे, चार मुनिराज उनके मल–मूत्र को उठाने की व्यवस्था करेगे। निर्विचिकित्सा अग जिसके पास नहीं हैं, वह ऐसी सेवा नहीं कर सकेगा। आचार्य वीरसागर

महाराज की जयपुर में सल्लेखना चल रही थी। आचार्य महावीरकीर्ति महाराज पहुचे तब क्षपक को कफ आ रहा था, तो उन्होने अजुली कर दी। अन्य मुनिजन बोले नहीं–नहीं, आप तो मेहमान हैं। बोले–नहीं महाराज! मेरी वैय्यावृत्ति सेवा को आप मत ठुकराओ,, मेरा कर्तव्य मुझे करने दो। अजुली मे कफ लेकर के बाहर प्रमार्जन करके छोड दिया। पेट शुष्क है, भोजन नहीं जा रहा तो 'भगवती–आराधना मे' स्पष्ट कथन है कि अरण्य का तेल मल–शोधन के लिए बहुत उपयोगी है, मल सूखने पर पीडा होती है। अत पेट पर लगाते हैं और आवश्यकता दिखे तो उनके आहार मे भी एकाध बूद चला सकते हैं। दुग्ध तो सल्लेखना वाले को देते नहीं पर छाछ पेट को स्वस्थ रखने वाली वस्तु है। इसलिए अतिम समय मे छाछ का उपयोग किया जाता है। लेकिन मायाचारी वाला छाछ नहीं क्योकि दही मे चम्मच घुमाकर तैयार की गई छाछ से तुम असमाधि करा दोगे, क्योकि पित्त, कफ और वात बढ जाएगा। अत तक्र यानी पानी की तरह छाछ हो। भो ज्ञानी! चार मुनिराज उनके पास बैठकर जिनवाणी सुनाते हैं। पर ऐसे नही सुनाई जाती जिस तरीके से आप लोग सुनाते हो। आप लोग एक–साथ हल्ला करना शुरू कर देते हो। छपक के सामने तुम पाठ और ढोलक–मजीरा शुरू कर देते हो, वह गलत है। अहो! सुनाते–सुनाते उसको थोडा विश्राम भी दे दो। आप स्वय चितन करो कि एक घटे से कुछ ज्यादा प्रवचन हो जाएगे तो आप ऊब जाते हो फिर वह क्षपक तो कितनी नाजुक अवस्था मे है ?

चार मुनिराज समाज मे क्या चर्चा है, यह पता लगाने का काम करते रहेगे। क्योकि लोगो के अतरग मे कही भ्रम जाल उत्पन्न न हो जाए, जिससे इस सल्लेखना के बारे मे उदासीनता बढे। चार मुनिराज व्यवस्था के लिए छोड दिए जाते हैं क्योकि अनेक प्रकार के लोग आते हैं। आचार्य सोमदेवसूरी ने लिखा है कि जो सयम से शून्य है, चारित्र पर श्रद्धान नहीं, ऐसे लोग असमय मे आकर ऐसी बाते करते हैं कि शास्त्रार्थ की आवश्यकता पड जाए। अत वाद–प्रतिवाद करने के लिए, चार मुनिराज धर्म–उपदेश करेगे, शास्त्रार्थ वाले भिन्न होगे, जो आगम कुशल होगे। धर्मोपदेश, सवेगनीय निर्वेदनीय भाषा मे ही होगा और समाधि परख ही होगा। चार मुनिराज उस सभा की व्यवस्था भी देखेगे। सभी व्यवस्थाएँ साधुओ के हाथ मे ही होगी। चार मुनियो से कहा जा रहा है कि क्षपक के लिए किसी भी प्रकार का क्लेश न हो, उनके इष्टजन, मित्र आदि आते हैं तो उनको बाहर से ही सतुष्ट करना। क्योकि कुछ लोग आते हैं, महाराज श्री नमोस्तु! पहचान लिया। अरे! तुम्हे पहचाने कि अपने को पहचाने। चार मुनिराज पुन निर्देशन कर रहे हैं कि कहीं एक न सम्भाल पाए, तो दूसरा तैयार है। चार मुनिराज रात्रि जागरण करेगे, पर रात्रि जागरण करने वाले वे युवा नही होगे। वे वृद्ध होगे, गभीर, धीर निद्राजयी होगे और एक समय भी क्षपक को खाली नही छोडेगे। आवश्यकता पडेगी तो रात में बोलेगे भी, क्योकि रात्रि मे मौन रहना मुनि का कोई मूलगुण नही है। मौन इसलिए है कि अहिसा व्रत के पालन के लिए अनावश्यक न बोले परतु सल्लेखना के

समय मे वे क्षपक को सबोधन जरूर देंगे।

भो ज्ञानियो! चार मुनिराजो असयमी लोग वसतिका में प्रवेश न कर पाए, इसलिए वहा खडा किया जायेगा। असयमी लोगों को क्षपक के पास नहीं भेजा जाएगा। इस प्रकार भरत–ऐरावत क्षेत्र में ४४ मुनियो की व्यवस्था है पर विदेह क्षेत्र मे ४८ मुनियों की व्यवस्था है। कम से कम दो मुनिराज तो होना ही चाहिए। एक मुनिराज सल्लेखना नहीं कराएगे, क्योंकि वे आहारचर्या को कब जाएगे। शौच क्रिया को कब जाएगे? जब जाएगे तब क्षपक अकेला हो जाएगा। एक समय भी क्षपक को अकेला नहीं छोड़ना है। भो ज्ञानी! यह ध्यान रखना जब भी वसतिका मे प्रवेश करे तो नि सही–नि सही का उपयोग किए बिना क्षपक की वसतिका मे प्रवेश न करे, क्योकि उसकी साधना से प्रभावित होकर बहुत सारे व्यतर देवी–देवता दर्शन को आते हैं। उनसे आप अनुमति लेकर पूर्ण शुद्धि से जाना। जैसे जिनालय मे प्रवेश करते समय ध्यान रखते हो, वैसा ही ध्यान रखना।

मनीषियों! अब अतिम दशा की चर्चा कर रहे हैं। योगीराज सल्लेखना मे रत हैं, निर्यापकाचार्य उन क्षपक के सामने विविध प्रकार का भोजन दिखाते हैं कि जो चाहिए है तो ले लो। उत्तर देते हैं स्वामिन! मैंने जीवन मे बहुत खाया है। अहो! वे श्रेष्ठ उत्तम साधक हैं, जिन्होने देखते ही निषेध कर दिया, पुन पकवान खिलायेगे नहीं, मात्र दिखायेगे। क्षपकराज बोले–नहीं स्वामिन! बहुत खाया है अब पुद्गल मे खाने की ताकत नहीं। कदाचित सल्लेखना मे हैं, नहीं रहा होश, रात्रि के १२ बजे भोजन मॉग लिया। अज्ञानी तो हल्ला कर डालेगे कि समाधि बिगड गई। रात्रि के १२ बजे भोजन मॉगा तो उन्हे समझाते हैं–महाराज! आप मुनिराज हैं अभी रात्रि के १२ बजे चर्या नहीं होती। अहो! 'तस्य मिच्छामि दुक्कड' चलो त्याग कर दो। इस प्रकार सभाल लिया, क्योकि उनको तो पता ही नही था। अब कहीं गृद्धता कषाय ने काम किया और असमय मे पुन भोजन मॉग लिया, तो इस अवसर पर स्वय आचार्य महाराज आएगे, सबोधन देगे। हे जीव! तूने कितना खाया है, नही मानोगे लाओ भैया सामने लाकर रख दिया, खिलाऊँ क्या? उनके हाथ पर रख दिया और हाथ पकड लिया, लो ले जाओ मुख की ओर, फिर हाथ पकड लिया। सुनो! तुमने जीवन भर साधना की है और आज पुद्गल के टुकडो के पीछे क्या तुम संयम को खो दोगे ? नहीं, छोड दिया खाना। स्वामिन! प्रायश्चित्त दो। आचार्य तुरत प्रायश्चित करा रहे हैं। ठीक है, स्थिर हो जाओ। कदाचित समय पर आहार की वेला पर मॉंग रहे थे, तो दे दिया, मुख में भी रखवा दिया, खा लो। अब खाने की ताकत तो थी नहीं, जीभ भी चल रही है। फिर भी बोले–नहीं–नही और खाना पडेगा, पर चेहरा हिला रहे हैं। अब तो नहीं चाहिये। ठीक है निकाल दो, मुख शुद्धि कर लो, अब प्रत्याख्यान कर लो। अब भोजन नहीं चाहिये तो चारो प्रकार के आहार पानी का त्याग कर दो। प्रभु! दर्द हो

रहा है, कोई बात नही। सहनशीलता लाओ। पुन कराहने पर आचार्य भगवन् कहते हैं–हे क्षपकराज! तुम मृत्यु से मत भागना, सुकुमाल महाराज, सुकौशल महाराज और गजकुमार महाराज को तो देखो। तुम्हारे जीवन मे कौन सा कष्ट है। अहो! इस पर्याय मे तुम उलझे हो, पर्याय दृष्टि को हटाओ।

मनीषियो! क्षपक 'समयसार' मे जी रहा है, जब तक समयसार मे जीना नही सिखोगे तब तक सल्लेखना सभव नही है। अतिम दशा और सावधानी के विषय मे समझो। शरीर की शक्तियाँ क्षीण हो गईं और हाथ का हिलना बद हो गया ऊपर दृष्टि हो गई। बस आचार्य समझ लेते है कि नेत्रो के पलक का उठना भी समाप्त हो गया। पूछते हैं, जाग्रत हो? अब छाछ चल रहा था, वह भी समाप्त हो गया। अब ऊष्ण जल भी छूट गया, अब तो जिनवाणी का "ॐ नम सिद्धेभ्य" चल रहा है और देखते–देखते हस परमहस–अवस्था को प्राप्त हो गया। इस अतिम दशा का स्वय बोध हो जाता है। अत आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी इस कारिका मे उल्लेख कर रहे है कि सल्लेखना आत्मघात नही आत्म–साधना है। जल मे कूद के मर जाना, विष खाना सती हो जाना यह आत्मघात है, जबरदस्ती किया जाता है, लेकिन सल्लेखना जबरदस्ती नही है। विष के द्वारा, शस्त्र–अस्त्र के द्वारा प्राणो का वियोग नियम से आत्मवध है लेकिन सल्लेखना आत्मवध नही है। साम्य–परिणामो से जो सयम के साथ अतिम विदा है, उसका नाम सल्लेखना है।
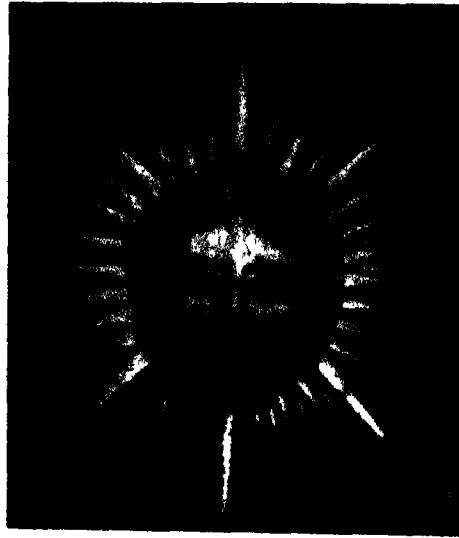
'अहिसा की सिद्धी' सल्लेखना मरण'

नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि तत प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम्।। १७९ ।।

अन्वयार्थ यत अत्र = क्योकि सन्यासमरण मे। हिसाया हेतव = हिसा के हेतुभूत। कषाया तनुताम् = कषाय क्षीणता को। नीयन्ते =प्राप्त होते हैं। तत = उस कारण से। सल्लेखनामपि =सन्यास को भी आचार्यगण। अहिसाप्रसिद्ध्यर्थम् = अहिसा की सिद्धि के लिये। प्राहु = कहते हैं।

इति यो व्रतरक्षार्थं सतत पालयति सकलशीलानि।
वरयति पतिवरेव स्वयमेव तमुत्सुका शिवपदश्री ।। १८० ।।

अन्वयार्थ य इति = जो इस प्रकार। व्रतरक्षार्थं = पचाणुव्रतों की रक्षा के लिये। सकल शीलानि = समस्त शीलो को। सतत पालयति = निरन्तर पालता है। तम् = उस पुरुष को। शिवपदश्री = मोक्षपद की लक्ष्मी। उत्सुका = अतिशय उत्कण्ठित। पतिवरा इव = स्वयवर की कन्या के समान। स्वयमेव = आप ही। वरयति = स्वीकार करती है अर्थात् प्राप्त होती है।

|| पुरुषार्थ देशना || ९५||

भव्य मनीषियो! अन्तिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं, आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने जीवन को प्रकाशित करने के लिए अलौकिक सूत्र दिया है कि अहो ज्ञानियो ! 'तुमने अनत बार मरण किये लेकिन मरण को नहीं जाना।' वैसे मृत्यु का ज्ञान सभी को होता है, परन्तु जन्म–समय याद नहीं रहता। जन्म उल्टा लेना या सीधा–यह प्रकृति पर निर्भर होता है। लेकिन मृत्यु सीधी या उल्टी हो–यह प्रकृति पर नहीं, परिणामो पर निर्भर है। जन्म तो किसी घर मे हो रहा है–यह पराधीनता है। जन्म भले ही भोगो की शैय्या पर हो पर मरण तो सन्यास की शैय्या पर कर सकता है? जन्म के लिए दूसरे को तलाशते हैं, लेकिन मृत्यु तो स्वय के ऊपर निर्भर है। जन्म कर्माधीन था, पर मृत्यु कर्माधीन नही है, पुरुषार्थाधीन है। चाण्डाल के घर मे जन्म हो या दरिद्री के घर मे, जन्म कर्माधीन होता है। चाण्डाल भी पुरुषार्थ करके सल्लेखना कर सकता है। "आचार्य समन्तभद्र स्वामी" ने सूत्र दिया है–"यह मत बोलना आप, कि मैंने जैन कुल मे जन्म लिया है, मैं ही सन्यास का पात्र हू।"

अहो मुमुक्षुओ। एक तिर्यच की भी समाधि होती है और हुई भी है। 'भगवान पार्श्वनाथ' और 'महावीर स्वामी के जीव से पूछ लेना। अहो ज्ञानी आत्माओ। पुद्गल के अहम् मे मत जीना, वर्तमान के वैभव मे न झुलस जाना। कुछ लोग उदय को देखकर नेत्रो मे आँसू को उदित कर लेते हैं। अरे भाई। यदि पाप उदय मे आ रहा है, तो पाप का खारापन तेरे उदय मे ही तो था। पुण्य–उदय मे आ रहा है, तो पुण्य का मीठापन तेरे परिणामो मे था। इसीलिए किसी को इगित मत करो, अपनी परिणति पर ध्यान रखो। परिणति खारी होगी, तो उदय खारा ही होगा। परिणति मीठी होगी, तो उदय भी मीठा होगा। मनीषियो। ध्यान रखना, चाण्डाल के अदर भी सम्यक्त्वरूपी अगारा धधक सकता है। एक बहुत बडे कुलीन के पास मिथ्यात्व की दुर्गन्ध भी छाई रह सकती है। उत्तम काल मे जन्म लेने का नाम श्रावक नहीं, उत्तम परिणति के होने का नाम श्रावक है। वह चाण्डाल भी श्रावक है, पर श्रावक–कुल मे जन्म लेकर भी आपके अन्तरग मे यदि अश्रद्धान भाव है, मित्थात्व भाव है तो आप भी चाण्डाल से कम नही हो। चाण्डाल की पर्याय मे मोक्षमार्ग दिख रहा था। जिनसूत्र है कि सम्यक्दृष्टि नरक मे रहकर भी मोक्षमार्गी है और मिथ्यादृष्टि स्वर्ग मे रह कर भी ससारमार्गी ही है।'

हे श्रावको। सल्लेखना के लिए यह मत सोचना कि उत्तम कुल उत्तम क्षेत्र चाहिए। सर्प ने सल्लेखना कर ली, सिह ने सल्लेखना कर ली। अहो ज्ञानियो। ध्यान रखना, एक स्वान ने सल्लेखना की, बैल ने सल्लेखना की। आप क्यो नहीं कर पाओगे? ध्यान रखना वहाँ पर्याय थी तिर्यचो की, परन्तु पुरुष जाग्रत था, इसलिए समाधि कर सका। मरते हुए स्वान को जीवधर कुमार ने णमोकार मत्र' सुनाया, वह देव हो गया। वह स्वान कितना श्रेष्ठ था उसका पुण्य कितना प्रबल था कि पर्याय स्वान की थी पर परिणति भगवान की थी। अहो। पर्याय पर अहम् मत करो गौरव करो तो परिणति पर करो। मोक्षमार्ग परिणामो का है। उस जीव के चरण छू लेना, अहो चेतन । तेरे परिणाम उज्ज्वल, तेरा सयम उज्ज्वल, अब मुझे भगवान नही देखना।

भो ज्ञानी। इस पर्याय मे तो पुण्य का उदय है, तुझे सम्हलने का अवसर है। कही ऐसी पर्याय मे चला गया, जिसमे तू नही सभल पाया, तो क्या करेगा? मुनिराज ध्यान मे लीन थे, चील आई और नेत्र खीच कर ले गयी। अब तो समाधि निश्चित है, ईर्यापथ का शोधन कैसे करेगे? एक कदम चल नही सकते। परतु वह कह रहे है–अहो चील। तू मेरी दो ऑखो के गोलो को तो खीच सकता है, लेकिन मेरे अदर ज्ञान–दर्शन के नेत्र को नही खीच सकता। चील दोनो आँखे निकाल ले गई, फिर भी चीत्कार नही निकली। निर्ग्रंथ की चीत्कार कहॉ और जहाँ चीत्कार है वहॉ निर्ग्रथ कहॉ? कितनी गभीर अवस्था होगी रक्त भी बहा होगा, पीडा भी हुई होगी जड तो नही थे। पीडा बध नहीं है, पीडित होना बन्ध है। अहो मुमुक्षुओ। निज स्वरूप मे लीन हो जाना, इसका नाम ही समाधि है। जो समाधि नहीं कर पाता वह आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी' की दृष्टि मे हिसक है, उसने अपने चेतनरूपी धर्म का घात किया है। यह स्वपर की हिसा है।

अहो मुमुक्षुओ। अब तुम्हे निज की ओर दृष्टिपात करना है। मरते समय मृत्यु बोध किसे होता है? सम्यक्दृष्टि विशुद्ध, परिणामी जीव को अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। जिसने जीवन को

जीते–जीते जीया है, वह मृत्यु का बोध कर लेता है और जिसने जीवन को मरते–मरते जीया है, वह मृत्यु के समय मर जाता है। इसलिए जो बारह वर्ष की सल्लेखना है वह जीवन की कला भी है। 'अमृतचन्द्र स्वामी' अपने सूत्र पर आ रहे हैं कि अहिंसक बनो। तुमने हिसक होकर जीवन भर असयम किया है, जिनवाणी को जीवन भर सुना है, धर्मआयतनों की सेवा की है, पर कषाय की है, सेवा नहीं। हमने आत्मा की सेवा की होती, तो समाधि हो जाती। किन्तु हमने पर्याय की पहचान विश्व मे कराई थी, इसलिए तो हमारी समाधि नहीं हो पाई। चार व्यक्ति एकसाथ पूजा कर रहे और इतनी जोर से बोल रहे हो कि दूसरे की आवाज दब रही है वह पाठ को भूल रहा है मनीषियो। यह असमाधि का कारण है। कोई त्यागी–व्रती आपके यहाँ है परन्तु आप उनकी अविनय कर रहे हो, मनीषियों। यह असमाधि का कारण है।

भो ज्ञानी। सूत्र ध्यान में रखना। हे नाथ। मैं दोष बोलने के लिये मौन हो जाऊँ, दोष सुनने के लिए बहरा हो जाऊँ, दोष देखने के लिए लगड़ा हो जाऊँ, इतना तुमने सीख लिया तो समाधि निश्चित है। धर्म सुनने के लिए बहरे हो गये,* पचपरमेष्ठी को देखने के लिए अन्धे हो गये और तीर्थ–वदना के लिए तुम लगडे हो गये, तो समझ लो तुम्हारी असमाधि सुनिश्चित है। बिना भावो की निर्मलता के झुकना होता ही नहीं, बिना झुके सल्लेखना होती नहीं है। जिन–जिन को समाधि करना है अब ज्यादा ग्रथ मत पढना। आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधितत्र मे लिख रहे हैं–

शरीर कचुकेनात्मा, सवृत ज्ञान निग्रह ।
नात्मान बुध्यते तस्माद्, भ्रमत्यतिचिर भवे ।। ६८ ।।

हे योगीन्द्र। केचुली हटाने से सर्प निर्विष नहीं हो जाता है। वस्त्र मात्र उतार देने से कहीं वीतरागी नहीं होता। जब तक अहकार ममकार रूप विष की थैली नहीं निकलेगी, तब तक काम नहीं चलेगा। मनीषियो। सल्लेखना कषायो को कृश करने से होती है। जिस जीव ने किसी जीव पर कषाय–भाव किया है वह दूसरे का घात कर सके न कर सके लेकिन स्वय का घात कर लिया है। इसलिए वह हिसक है, कसाई है। किन्तु जो समाधि के काल मे कषायो को कृश कर रहा है, वह अहिसक है।

भो ज्ञानी। जो जीव कषाय–भाव से युक्त है, चाहे द्वेष जन्य हो चाहे राग जन्य हो। हिसा दोनो मे है। देखो, मरण के समय चाहे किसी को क्रोध न आ रहा हो, लेकिन लोभ लगा है, राग लगा है कि मेरे बेटे को बुला दो, मेरे पुत्र को बुला दो, मेरी पत्नी को बुला दो। अरे ज्ञानी ! जिसने तेरी पूरी दुनिया का पतन कर दिया उस पत्नी को अभी भी नहीं छोड पा रहा है। सयोग थे, सबध थे, हो गये, लेकिन अब तो स्वभाव पर दृष्टि डालो, अब तो विवेक को जन्म दे दो। मत करो राग। जिसे तुम जोडा मानकर चल रहे हो वह शाश्वत नहीं है। एकमात्र ज्ञान–दर्शन का ही जोडा है, इसलिए निज से जुड जाओ। अब तो तुम्हारे पास सब निमित्त मौजूद हैं, अभी तो आप अच्छे हो, क्षुल्लक तो बन ही सकते हो। जिसका शील निर्मल है, जिसका चारित्र निर्मल है, जिसका सयम निर्मल है, उसकी समाधि निर्मल है। मनीषियो। उसके लिए मुक्ति–कन्या स्वयमेव वर लेती है।

"व्रतों में अतिचार न लगायें"

अतिचारा सम्यक्त्वे व्रतेषु शीलेषु पच पंचेति।
सप्ततिरमी यथोदितशुद्धिप्रतिबन्धिनो हेया ।। १८१।।

अन्वयार्थ सम्यक्त्वे = सम्यक्त्व मे, व्रतेषु शीलेषु = व्रतो मे और शीलो मे। पच पेचेति =पाँच–पाँच के क्रम से। अमी = ये। सप्तति = सत्तर। यथोदितशुद्धिप्रतिबन्धिन =यथार्थ शुद्धि को रोकने वाले। अतिचारा हेया = अतिचार त्याग करने योग्य हैं।

शका तथैव काक्षा विचिकित्सा सस्तवोऽन्यदृष्टीनाम्।
मनसा च तत्प्रशसा सम्यग्दृष्टेरतिचारा ।। १८२ ।।

अन्वयार्थ शका काक्षा = सन्देह वाछा। विचिकित्सा = ग्लानि। तथैव = वैसे ही। अन्यदृष्टीनाम् = मिथ्यादृष्टियो की। सस्तव च = स्तुति और। मनसा = मन से। तत्प्रशसा = उन अन्य–दृष्टियो की प्रशसा करना। सम्यग्दृष्टे = सम्यग्दृष्टि के। अतिचारा = ये पॉच अतिचार हैं।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ९६ ।।

मनीषियो! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने ग्रथराज पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' मे सल्लेखना का कथन करते हुआ लिखा कि प्रशस्त स्थान, निर्मल वातावरण, सिद्ध क्षेत्र क्षपक की साधना के लिए उत्कृष्ट स्थान हैं। जहॉ बाह्य वातावरण प्रवेश कर जाता है, वहॉ सल्लेखना समाप्त हो जाती है। इसीलिए ऋषियो ने, मुनियो ने आचार्य भगवन्तो ने तीथकरो ने ऐसे प्रशस्त स्थान को चुना है जहॉ प्रकृति का मिलन प्रकृति मे हो, जहॉ विकृति का लेशमात्र न हो और ऐसे प्रकृति के स्वरूप की प्राप्ति का जो शासन है उसका नाम जैन–शासन है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जो विकृति है वही अतिचार है। विकृति ही अनाचार है। विकृति मे जाने का जो परिणाम है वो अतिक्रम है। विकृति की प्राप्ति का परिणाम करने के बाद प्राप्त सामग्री को जोडना व्यतिक्रम है। प्रत्येक व्रत के पॉच–पाँच अतिचार होते हैं और ऐसे अतिचार सत्तर होते हैं।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी' यहॉ कह रहे हैं कि सयम को प्राप्त कर लेना बहुत प्रबल पुण्य योग से होता है, परन्तु सयम को प्राप्त करने के उपरात निर्दोष–भाव बनाकर चलना,

यह उससे भी कठिन होता है। ध्यान रखना, जीवन मे व्रत तो दस मिनट मे हो जाता है, पर व्रत का पालन जीवन– पर्यन्त के लिए किया जाता है। व्रत स्वीकार करके तुम्हारे भाव बिगड गये, तो आप कहीं के नहीं रहोगे। मन के अतिचार का प्रायश्चित कर लोगे, मन के दोषो का प्रायश्चित कर लोगे, लेकिन तन से पाप कर बैठे, तो वहाँ तो आपको पुन व्रत ही लेना पडेगा। 'आचार्य भगवन्' कह रहे हैं कि एकदेशव्रत का भग होना अतिचार कहलाता है और सर्वदेश व्रत का भग हो जाना अनाचार कहलाता है–

क्षति मन· शुद्धि विधेरतिक्रम, व्यतिक्रम शील व्रतेर्विलघनम् ।
प्रमोऽतिचार विषयेषु वर्तन, वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तम् ।। ९। सा पाठ।।

व्रत भग के अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार यह चार भेद किये। किसी व्यक्ति ने रात्रि–भोजन का त्याग किया है और रात्रि में क्षुधा सता रही है तो क्षुधा सताना दोष नहीं है, अतिक्रम है। भोज्य सामग्री की खोज करना अथवा व्रत का किंचित उल्लघन होना, व्यतिक्रम है। पीडा का होना कोई कर्म–बध का हेतु नहीं है, वेदना के विकार मे चले जाना, वेदना के नष्ट करने का उपाय सोचना इसमे बध है। क्षुधा की वेदना है और वह वेदनीय–कर्म की उदीरणा से आती है। एक व्यक्ति प्रसन्न होकर भोजन कर रहा है, लेकिन ऐसा कौन–सा रोगी होगा जो औषधी को प्रसन्न होकर खा रहा होगा। एक मुमुक्षु जीव भोजन करते–करते कर्म–निर्जरा कर रहा है। देखना कि साधक की प्रत्येक चर्या कर्म–निर्जरा का हेतु क्यो बन रही है? आहार को गये परन्तु, चिन्तवन क्या चल रहा है कि भगवन् एक घटा मेरा बर्बाद हो रहा है। एक घटा मेरा यहाँ पौद्गलिक टुकडो को खाने मे लगा है। हे नाथ! वह दिन कब आये जब क्षुधा वेदनीय कर्म का समापन हो जाये, मेरा यह एक घटा स्वतन्त्र हो जाये। एक क्षण के पीछे कितना विकल्प, कितनी सोच, कितना चिन्तवन, और कितनी स्वतन्त्र दशा होगी? सप्तम गुणस्थान मे शुद्ध–उपयोग इसलिए होता है, क्योकि वहाँ भोजन का विकल्प ही नहीं होता है और सबसे अशुद्ध विकल्प उत्पन्न कराने वाली आहार–सज्ञा है। रोगों की पीडा को दूर करने के लिए औषधी खाने मे खुश होना–ये तुम्हारी विज्ञता नहीं है, अज्ञता है। जीवन मे ध्यान रखना, ज्ञानी होगे, तो भोगो को मस्ती मे मत भोगना।

भो ज्ञानी! जो आत्मा के स्वरूप की, शुद्धि का घात करे उसका नाम अशुद्धि है और अशुद्धि का नाम अतिचार है। व्यक्ति सोचता है कि मैं निर्दोष सयम का पालन करूँ, परंतु अदर की कमजोरी आपको दोष लगाती है। आपने उदयगिरि की वन्दना का विचार किया, और विचार यह करके आये थे कि मैं पैदल चलूँगा, नगे पैर चलूँगा। यदि ये दृढता रखते तो आप पहुँच भी जाते। लेकिन बीच मे यह विचार आ गया कि अपन एक काम करते हैं कि कपडा बाध लेते हैं पैरो मे, अथवा खडाऊँ पहन लेते हैं। यह बीच का विचार आने से आपके मन मे जो कमी आ गई, उसमे लेकिन आपने रूढी निभाई, कि अहिसा निभाई? अगर उस खडाऊँ के नीचे चींटी आ गई, चीटी का

क्या होगा? चींटी तुम्हारे नगे पैर के नीचे आ जाये, तो वह चींटी बच जाती है, क्योंकि पैर का तलुआ मुलायम होता है। इसीलिए परिणाम मुलायम हैं, परिणाम निर्मल हैं तो प्रत्येक व्रत निर्मल पलेगा।

भो मनीषियों! सम्यक्दर्शन के पाँच अतिचार हैं। साक्षात् भगवान खडे हो, पर जिसका हृदय शका के रोग से ग्रसित है, जिसकी मानसिकता कलुषित है, वह जीव कहेगा– क्या मालूम यह भगवान साचे हैं, कि झूठे हैं? आजकल तो कोई सच्चा हो ही नही सकता, अब तो भगवान होते ही नही हैं। तत्त्व सात हैं पर उनके पास निर्णय नहीं है। निर्णय के अभाव मे आप गृहस्थ–जीवन भी अच्छी तरह से नहीं जी सकते ये शका चल रही है। जिनेन्द्रदेव के वचनो मे कभी शका नहीं करना, यह निशकित–भाव है और यदि शका है, तो ये सम्यक्दर्शन का पहला अतिचार है। आपको किसी ने थाली लगा के दे दी, अब वो सोचता है–क्या मालूम इसमे जहर तो नहीं मिला? अब आपका पेट नहीं भरेगा, क्योकि शका हो गई। एक सज्जन के यहाँ लीपा–पोती चल रही थी। पत्नि ने लाल मिट्टी लोटे मे घोलकर पतिदेव की चारपाई के नीचे रख दी। प्रात के पाँच बजे उनको शौच–क्रिया को जाना था उसने देखा कि लोटा तो नीचे रखा है। उठाकर देखा कि पानी भरा हुआ है। लोटा उठाया और चल दिये शौच–क्रिया को और जैसे ही शुद्धि करके हाथ देखा, तो पूरा रगा हुआ था। पहले तो मूर्च्छा खाकर वहीं गिर गये। थोडी देर बाद मूर्च्छा हटी, घर पहुँचे और चारपाई पर पडे तो बोले कि आज तो एक लौटा रक्त बह गया, पता नही कौन–सा रोग लग गया। वैद्य बोले–सब बढिया है। तभी अचानक पत्नि बोली–अरे, कोई यहॉ से लोटा ले गया। मैंने रात्रि मे मिट्टी को घोल के रखा था। उसमे मिट्टी थी, पति हसने लगा, बोला–रोग ठीक हो गया, क्योकि उसने लाल मिट्टी के पानी को खून मान लिया था इसीलिए उन्हे पीडा होना प्रारभ हो गई थी, क्योकि शका थी और शका का समाधान हो जाये तो सब पीडा समाप्त हो जाती। जीवन मे न तो स्वय शकालु बनना, न दूसरे को शका मे डालना, क्योकि ये सम्यक्त्व का अतिचार है। काक्षा दूसरा अतिचार है। भगवन्! मैं आपकी पूजा कर रहा हूँ , प्रभु! मेरी दुकान अच्छी चल जाये। भो ज्ञानी ! पुण्य का उदय होगा तो सब काम अच्छे से चलेगे। लेकिन पुण्य का योग नही है तो सभी काम बिगडेगे। आप जो कर रहे हैं उसके फल को आपने विफल कर दिया। ध्यान रखना, धर्म तो करना, लेकिन धर्म के फल मे आकाक्षा नहीं करना, क्योकि मिलना उतना ही है जितना तुम्हारे योग मे होगा, परन्तु इतना अवश्य है कि मिथ्यात्व मे जरूर चले जाओगे।

भो ज्ञानी! जब जीव का स्वार्थ निहित होता है, तो उसको धर्म के क्षेत्र में भी ग्लानि आने लगती है उसके भाव भी बिगडते हैं और उल्टा ही सोचता है। परिणाम होते हैं कि धर्म क्षेत्र से उठकर अन्यत्र चला जाये। धर्मात्मा के बीच मे एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता है, दुष्टो की गोष्ठी में बैठकर प्रसन्नचित्त हो रहा है। ध्यान रखना, कभी भी धर्म व धर्मात्मा के प्रति ग्लानि–भाव नहीं

लाना, ये सवेग भाव हैं, निर्विचिकित्सा भाव हैं। यदि ग्लानि–भाव आ रहे हैं, तो ध्यान रखना, सम्यक्त्व मे ही दोष है। मिथ्यात्व की बहुलता को देखकर मन मे सोचना वचनो से कहना कि भैया ! हम वहाँ पर गये थे, अमुक मदिर बहुत अच्छा था, अच्छी व्यवस्थायें थीं, वह देव भी सत्य है–ऐसे विचार मन मे लाना यह 'अन्यदृष्टि संस्तव' है। सम्यक्‌दर्शन के पाँच अतिचार हैं। समझना, चारित्र में दोष लग जाये, तो सभलने के बहुत अवसर हैं, परतु जिसके सम्यक्त्व मे ही दोष लग रहे हैं उसको सभलने का कोई स्थान नहीं हैं। तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है, तो आप महाव्रती या अणुव्रती नहीं बन पा रहे हो। इनमे आपको त्याग करना पडता है, परन्तु श्रद्धा करने मे तो कुछ भी नहीं करना पडता। कितना सुन्दर दर्शन है कि श्रद्धा करने में तुम्हे कुछ छोडना भी नहीं पड रहा है, घर भी नहीं छोडना पड रहा है, व्रत भी नहीं लेना पड रहा है बस श्रद्धा ही तो करना है। जीवन मे सब कुछ छोड देना, पर विश्वास को नहीं छोडना और विश्वास तुम्हारा चला गया तो समझ लेना कि तुम्हारे जीवन मे कुछ भी तो नहीं बचा। पचमकाल मे आप मुनि नहीं बन पा रहे हो, त्यागी बन नही पा रहे हो, महाव्रती बन नहीं पा रहे हो, पर अन्दर की श्रद्धा को खोखली मत कर देना। क्योकि ना तो तीर्थ काम मे आयेगे, ना तीर्थंकर काम मे आयेगे, श्रद्धा ही काम मे आयेगी, वह ही तीर्थ नजर आयेगे, वह ही तीर्थंकर नजर आयेगे। श्रद्धा है, तो तीर्थ अपने है, श्रद्धा है, तो तीर्थंकर अपने हैं। श्रद्धा नही है, तो पत्थर का आकार, पत्थर के, मिट्टी के, ईट के, चूने के भवन कितने ही खड़े कर लो, तेरा निज भवन मे प्रवेश होना सभव नहीं है।

भो ज्ञानी! बन्दर एक तिर्यंच है, जिसने एक साधक की चर्या को देखकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। मुनिराज एक पहाडी पर ध्यान कर रहे थे, जिनवाणी पढ रहे थे। एक हिरण आता है और जिनवाणी सुनता है और इतनी तीव्र श्रद्धा के साथ सुना कि वह बाली नाम के मुनिराज हुए। उन्होने श्रद्धापूर्वक माँ जिनवाणी को सुना था। यह बात ध्यान से समझना। जीवन मे इतना ध्यान रखना, कि मेरी भाषा से, मेरी वृत्ति से, मेरी चर्या से किसी जीव के भाव खराब न हो। दिनभर आप रोगियो के उपचार करना और शाम को जाकर उसको धमकी दे देना, कहना–सुनो, हमारे माध्यम से तुम्हारे सारे रोग दूर हुये हैं। वह कहेगा–शरीर का रोग जितना ठीक हुआ, वही तूने मेरे मन को कितना रोगी किया है? अरे! प्रेम से बोलो। गोली का धक्का तो सहन कर लेता है आदमी, लेकिन बोली का धक्का नहीं सहन होता है। इसलिए गुस्सा आ रही हो तो स्थान छोडकर चले जाना, लेकिन गुस्से मे किसी से कुछ कहना मत, अन्यथा तुम्हारा भी अहित होगा और सामनेवाले का भी अहित होगा। मनीषियों! अपने जीवन में अपने सम्यक् रत्नत्रय को सम्भालो। पाँच अतिचारो से रहित होकर शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करो, यही प्रशस्त मोक्षमार्ग होगा।

"अहिंसा और सत्यव्रत के अतिचार"

छेदनताडनबन्धा भारस्यारोपण समधिकस्य।
पानान्नयोश्च रोध पचाहिसाव्रतस्येति।। १८३।।

अन्वयार्थ अहिंसाव्रतस्य= अहिसा व्रत के। छेदनताडनबन्धा =छेदना, ताडन करना, बाधना। समधिकस्य = अतिशय अधिक। भारस्य = बोझे का। आरोपण = लादना। च = और। पानान्नयो =अन्नपानी का। रोध = रोकना अर्थात् न देना। इति पच = इस प्रकार पाँच अतिचार हैं।

मिथ्योपदेशदान रहसोऽभ्याख्यानकूटलेखकृती।
न्यासापहारवचन साकारमन्त्रभेदश्च ।। १८४ ।।

अन्वयार्थ मिथ्योपदेशदान = झूठा उपदेश देना। रहसोऽभ्याख्यान = एकात की गुप्त बातो का प्रकट करना। कूटलेखकृती = झूठा लिखना। न्यासापहारवचन = धरोहर के हरण करने का वचन कहना च = और। साकारमन्त्रभेद = काया की चेष्टाओ से जानकर दूसरे का अभिप्राय प्रकटकर देना। ये सत्याणुव्रत के पॉच अतिचार हैं।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ९७।।

मनीषियो! जिसने सयम स्वीकार नहीं किया उसे मात्र असयमी शब्द से सबोधित किया जाता है। पर सयम को स्वीकार करने के उपरान्त जो सयम को छोड देता है उसे तो असयमी भी नहीं कहा जाता। इस कारिका मे आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी अहिसा–व्रत और सत्य–व्रत के अतिचार गिना रहे हैं। यदि किसी जीव ने अणुव्रत धारण किया है कि किसी जीव का घात नहीं करेगे, परतु यदि किसी ने किसी भी जीव के कान छेद दिये, नाक छेद दिये, अग–विशेष का छेदन कर दिया अथवा आपने गाय, भैंस, बैल आदि के अगो को छेद दिया, तो यह 'छेदन' नाम का अहिसा–व्रत का दोष है। आपने अहिंसा धारण किया है, परतु जब वह छिदवाना नहीं चाहता था तो आपने उसको बचपन मे जबरदस्ती नाक–कान छेद दिये, उसको पीडा तो हुई है। जहाँ पीडा है, कष्ट है, वेदना है–वहाँ हिसा है। अगो को छेद देना अहिसा–अणुव्रत का दोष हैं। वध नहीं कर रहे हो, लेकिन मार दोगे तो भी हिसा हो जायेगी। अहिसा– अणुव्रती किसी को चाबुक नहीं मार सकता, खेल–खेल

मे तुमने बच्चे को रुला दिया, लेकिन कष्ट तो दिया है, पीडा तो दी है। पिजरे मे पक्षियो को बद कर लिया, घर मे कुत्ते पाले हो, आपको लगता जरूर है कि आप उसकी सुरक्षा कर रहे हैं, लेकिन उसकी स्वतत्रता का तो हरण किया है, अत हिसा हो रही है। ध्यान रखना, हिसक– जानवरो को पालना तो एक जैन सामान्य अव्रति भी नहीं करता। भो ज्ञानी! आठ वर्ष का बालक जब तक नही होता है। तब तक उसके पाप–पुण्य का फल माता–पिता को मिलता है। जिसके घर मे हिसक जानवर पले हैं उसकी हिसा आदि का सारा दोष उसके मालिक को जाता है। कबूतर–कबूतरी के बच्चे को अलग करने पर सीता के जीव को उसका परिणाम पति वियोग के रूप मे सहना पडा। इसी प्रकार जीवधर ने जब मुनिराज से पूछा कि प्रभु मेरे जन्म के ही पूर्व पिता की मृत्यु हो गई और मेरी माँ मुझे श्मशान घाट मे छोड कर चली गई, यह मेरे कौन से कर्मो का फल था। उस समय मुनिराज ने कहा था–जीवधर आपने अपने पूर्व पर्याय मे एक बगुले के बच्चे को उसके माता–पिता से अलग किया था। उसका परिणाम वह कर्म का बध आज तुम्हारी इस पर्याय मे उदय मे आया है। अत यह मत मान लेना कि आज का फल आज मिल जाये, आज भी आ सकता है और अनेक भव के बाद भी उदय मे आ सकता है। इसीलिए किसी की स्वतत्रता का हनन करना भी हिसा है।

भो ज्ञानी! कोई जीव स्वतत्रता से विचरण कर रहा है। उसकी स्वतत्रता का हनन कर देना बधन है। आपने रेल मे कुली किया और कहा पचास पैसे और ले लेना, इतना सामान और लाद लो। वह तो लोभवश लाद लेगा, लेकिन पीडा तो होगी। गजरथ चलते है इन धर्मात्माओ को करुणा नहीं आती, उनको तो यह दिखता है कि मैंने एक लाख रुपए दिये, अत परिवार और परिवार के रिश्तेदार चल रहे हैं। श्रीजी विराजमान हैं महावत हाथी के ऊपर अकुश चला रहा है, हाथी ऑखो मे आसू बहा रहा है रथ खिच नही रहा है, यह कैसी अहिसा है। अभी एक रहस्य और खुला–गजरथ मे ये हाथी वाले हाथी के साथ बडा दुर्व्यवहार करते हैं। गजरथ चलने के पहले एक बहुत बडा लकडी का पाटा कीले ठोककर पाटा एकात मे रख दिया जाता है और उसके ऊपर उस हाथी को जबरदस्ती चलवाया जाता है। उसके पैरो मे अन्दर कीले घुस जाये, जिससे कि ज्यादा दौडने न पाये, अन्यथा वह विचलित हो जायेगा। उसको इतनी पीडा उत्पन्न करा दी वह सभल–सभल के पैर रखेगा, इस प्रकार से चलाते हैं। यह आपको सोचना है कि गजरथ मे दूसरी फेरी मे बैठ जाते हैं, तीसरी फेरी मे बैठ जाते थे, परन्तु उसके प्राण तो नही लो। बडे–बडे त्यागी–वृत्ति भी बैठ रहे है।

भो ज्ञानी! आज के जमाने मे वैज्ञानिक–वाहन बहुत निर्मित हो चुके हैं। अत प्राणियो के वाहन पर बैठना तो बद कर दो। आप ताँगे पर बैठे हो, ऊपर से चाबुक लग रहा है, उसके मुख मे लगाम लगा हुआ है और बेचारा ढो रहा है, जुता हुआ है। जो धर्म क्षेत्र मे आकर के छल–कपट, मायाचारी करता है उनको ऐसे ही ताँगे मे जुतना पडता है। घर मे चूहे ज्यादा हो रहे हैं सो पिजरा लगा दिया और रोड पर छोड दिया, बेचारे वाहनो मे दब जाते हैं उसके छोटे–छोटे

बच्चे बिल में थे और दाना लेकर खिलाने आया था। अब बच्चे तडप रहे हैं और आपने माँ को पिजरे मे बद कर बाहर कर दिया, अब बताओ उन जीवो का क्या होगा वे तडपते–तडपते समाप्त हो जायेगे। ध्यान रखना, वे भी अपने भाग्य का खा रहे हैं। इसीलिए ध्यान रखो कि छेदन बधन, मारण अतिभार लाद लेना, घर मे भैंस–बैल को समय पर दाना–पानी न देना और आपने नौकर घर में रखकर एक काम और कर लो फिर भोजन कर लेना, पानी पी लेना हम मदिर से भगवान की पूजा करके आ रहे हैं इतना काम और कर लेना। फिर १२ बजे पानी पी लेना अब बताओ पानी भी नहीं पीने दे रहे हो। सोचो आपने तो अन्न–पान का निरोध कर दिया यह अहिसा व्रत के अतिचार हैं। जो जिनवाणी मे नही लिखा जिनागम मे नही कहा अथवा जो मोक्षमार्ग से विपरीत है ऐसी बातो का उपदेश कर देना–मिथ्या–उपदेश है। कभी भी कोई जिनवाणी के विरुद्ध विपरीत बोले तो आप तो हाथ जोडकर कह देना आगम की विधि ऐसी है हम तो ऐसा करेगे। हम जिनवाणी के साथ छल नहीं कर पायेगे। अप्रतिष्ठित प्रतिमा प्रतिष्ठित प्रतिमा घर मे ऐसे नहीं रखना। प्रतिष्ठित प्रतिमा को रखने के लिए आगम मे गृह चैत्यालय की व्यवस्था है आप गृह–चैत्यालय बनवाये फिर आप रख दे। ऐसा नहीं कि वही घर–गृहस्थी है उसी मे आप प्रतिमा रख ले। आप अलग से गृह–चैत्यालय बनवाये गृह–चैत्यालय मे आप प्रतिमा को विराजमान करे ऐसा आगम मे कथन है परन्तु ऐसा नही उसी मे आप सो रहे हो उसी मे आप भोजन कर रहे हो और एक अलमारी मे भगवान विराजमान करे। आगम की विधि का ध्यान रखना परन्तु मिथ्योपदेश नहीं देना और अप्रतिष्ठित प्रतिमा जब आपके पचकल्याणक तय हो जाये। एक–दो महीने मे हो जायेगे तो ही श्रीजी को लेकर आना। छह महीने से ज्यादा अप्रतिष्ठित प्रतिमा मदिर अथवा समाज मे कहीं भी रखी, उसका उल्टा परिणाम प्रारम्भ हो जाता है।

भो ज्ञानी! किसी का रहस्य आप समझ गये उसको कभी प्रकट नही कर देना। स्त्री–पुरुष आदि की गुप्त चेष्टा आपको मालूम है, परन्तु कभी किसी की बात को प्रकट नहीं करना। यदि करते हो तो सत्य व्रत मे दोष है। कूटलेख क्रिया–झूठे आलेख लिख देना, झूठी गवाही दे देना, झूठी बात कर देना। कोई आपके यहाँ धरोहर पचास हजार रखकर भूल गया। वह पच्चीस हजार मागता है आपने धीरे से निकालकर दे दिया। सोचा कि कौन हमने चोरी की? पर वह दोष ही है। गुप्त–चेष्टा को प्रकट कर देना, रहस्य प्रकट कर देना, धरोहरो को हडप लेना गुप्त क्रिया को प्रकट कर देना और ऐसी बाते करना जिससे लोग सशय मे पड जाये। ये सभी दोष हैं। एक बात का ध्यान रखना जो कहना हो आप स्पष्ट कहे। पर मर्यादित कहे, ऐसा स्पष्ट भी मत कहना कि चार व्यक्तियो मे परस्पर मे झगडा हो जाये किसी के प्राण चले जाये ऐसे स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। वहाँ आपको मौन रहना चाहिए। जिस स्पष्टीकरण से किसी मे विसवाद हो ऐसा स्पष्टीकरण भी असत्य ही है। ऐसा सत्य भी श्रावक को नही बोलना चाहिए जिससे किसी का वध हो। इस प्रकार ये पाँच अतिचार सत्य अणुव्रत के हैं।

"निर्माण से निर्वाण"

प्रतिरूपव्यवहार स्तेननियोगस्तदाहृतादानम्।
राजविरोधातिक्रम हीनाधिकमानकरणे च।। १८५।।

अन्वयार्थ प्रतिरूपव्यवहार = चोखी वस्तु में खोटी वस्तु मिलाकर बेचना, स्तेननियोग =चोरी मे सहायता देना, तदाहृतादानम् = चोरी की वस्तु को ग्रहण करना च= और राजविरोधातिक्रम = राजा के प्रचलित किये हुये नियमों का उल्लघन करना, हीनाधिकमानकरणे = नापने तौलने के मान हीनाधिक करना।

|| पुरुषार्थ देशना || ९८||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजे हैं। भगवान शीतलनाथ स्वामी की यह त्रयकल्याणक भूमि हमे सकेत दे रही है कि 'निर्वाण' की प्राप्ति 'निर्माण' पर ही होती है। जब तक निर्माण नहीं है तब तक निर्वाण नही। सूत्र को ध्यान रखना–अभाव के अभाव मे सद्भाव कभी नही होता और सद्भाव के अभाव मे अभाव भी नही होता है। अभाव ही सद्भाव का ज्ञान कराता है और सद्भाव अभाव का ज्ञान कराता है। भो ज्ञानी! असत्ता नहीं है तो सत्ता भी नही है जिसकी सत्ता है उसकी पर्याय–दृष्टि से असत्ता भी हो जाती है, जिसकी असत्ता है द्रव्य–दृष्टि से सत्ता भी होती है।

भो ज्ञानियो! आज भगवान शीतलनाथ स्वामी के निर्वाण–कल्याणक दिवस पर उस स्वरूप की सत्ता को समझने की आवश्यकता है। जिसको आचार्य भगवन् कुदकुद स्वामी ने समयसार जी ग्रथ मे लिखा है कि इस जीव ने कभी सत्ता को देखा, कभी असत्ता को देखा, लेकिन द्रव्य का स्वरूप सदा सत्य होता है, जो निर्वाण हुआ है वह आत्मा का नहीं हुआ, जो निर्माण हुआ है वह आत्मा का नही हुआ। मनीषियो! जिसे तुम निर्वाण कहते हो स्याद्वाद वाणी उसे निर्माण ही कहती हैं। आज आपको निर्वाण नहीं, पहले निर्माण ही करना है निर्माण और निर्वाण दोनो युगपत होते हैं। जहाँ कर्मों का निर्वाण होता है, वहाँ सिद्ध–पर्याय का निर्माण होता है। अहो! अशुद्ध पर्याय का निर्वाण होगा और सिद्ध पर्याय का निर्माण होगा। जब तक हमारे अशुद्ध भावो का निर्वाण नहीं होगा, तब तक शुभ भावो का निर्माण भी नहीं होगा तथा शुभ भावो के निर्माण के अभाव मे निर्वाण का मार्ग भी प्रारभ नही होगा।

मनीषियो! ध्यान रखना, मोक्षमार्ग मे मिथ्यात्व रूपी अधकार को भगाने के लिए लाठी की

आवश्यकता नहीं होती। मोक्षमार्ग यही कहता है कि आप ज्ञान के दीप को जला दो चारित्र और श्रद्धा के दीप को जला दो, मिथ्यात्व का अधकार आ ही नहीं पाएगा भगाने का प्रश्न ही नहीं होगा। समयसार तो यह कह रहा है कि न बुलाओ और न भगाओ, मात्र भुला दो–उसका नाम सम्यक्दर्शन है। बुलाने मे खर्च होगा भगाने मे खर्च होगा किन्तु भुलाने मे कोई खर्च नहीं होगा। मनीषियों! यहाँ से मोक्षमार्ग प्रारभ होता है। अत जिसे आज तक तुमने याद करके रखा है, आज तक तुम स्मृतियो मे लाए हो, उन मिथ्यात्व की स्मृतियो को भुला दो इसका नाम ही सम्यक्ज्ञान है। मिथ्यात्व/कुचारित्र के प्रति आपका गमन था, वहाँ जाना बद कर दो इसका नाम ही सम्यक्चारित्र है। जो आपके अतरग मे विपरीत श्रद्धा बैठी थी उसको समाप्त कर दो, इसका ही नाम सम्यक्दर्शन है। बस, मोक्षमार्ग बन चुका है।

मनीषियो! याद करना बहुत सरल है, पर भुला पाना बहुत कठिन है। दस वर्ष पहले किसी ने कुछ कह दिया था, वह तुम्हे याद है। यदि यादे भूल जाएँ, तो सारा विश्व तुम्हारे नाम की जाप करेगा। आज आप उदयगिरी मे शीतलनाथ स्वामी के निर्वाण–कल्याणक की याद कर रहे हो, क्योकि उन्होने विश्व को भुला दिया था, उन्होने ससार की सम्पूर्ण विषमताओ को भुला दिया था। जब तुम जाप करने बैठते हो तब याद आ जाती है कि दुकान पर ताला तो नही पडा है। जब आप जाप करने बैठते हो तो याद आ जाती है कि अब तो भूख लगी है। भूख–प्यास मिटती है, तो भोगो की याद आना प्रारभ हो जाती है। इसलिए तुम्हारी कोई याद नही करता। अहो! आज तक निर्वाण क्यो नही हो पा रहा है? क्योकि हमने चारित्र का निर्माण नहीं किया है, श्रद्धा की नीव नहीं भरी सयम की दीवार को खडा ही नहीं किया। पत्थर के भगवान को तुमने सस्कारित करने का विचार किया, तो आपने प्रतिष्ठाचार्यों की सलाह ले ली। यही आचार्य कुदकुद देव कह रहे है कि अपने आपमे सलाह ले लेना। यदि भूमि मे अस्थियॉ हैं, हड्डियॉ है, भूमि मे नमी है, ककर–पत्थर है सर्प–मेढक है–ऐसी भूमि पर कभी जिनालय स्थापना न करे। जिस भूमि पर श्मशान–घाट हो, उस भूमि पर कभी जिनबिम्ब की आराधना न करे। अहो! तेरी आत्म–भूमि मे मिथ्यात्व की वामी और कषायो के साँप जहॉ बैठे हो, मनीषियो! वहॉ चारित्र की स्थापना नहीं हो पाती। यदि छिलका हट गया है, तो चावल अकुरित नही होता। ऐसे ही जिस आत्मा से कर्मों के छिलके हट जाते हैं वह आत्मा भवाकुर को प्राप्त नहीं होती, इसका नाम निर्वाण है। अष्ट–कर्म का दलन जिन्होने किया है, वह आत्मा ससार मे वापस नहीं आएगी। जब सम्यक्दर्शन, ज्ञान चारित्र प्रकट हो जाता है तो भो ज्ञानी! आत्मा के बल्ब मे ज्योति उदित हो जाती है और ससार का अधकार समाप्त हो जाता है, इसका नाम निर्वाण–कल्याणक है। एक बुझे दीप को लेकर आप जले दीपक के नीचे पहुँचकर उसको स्पर्श करा देते हो और बुझे दीप को जला लेते हो। बस ध्यान रखना, जीवन भी आप से कह रहा है कि हमारे जीवन मे असयम का दीप न जले सयम का दीप जले। जो हम सयम से

बुझे हुए हैं चारित्र से बुझे हुए हैं, श्रद्धा से बुझे हुए हैं तो जलते दीपक के नीचे पहुँच जाना। लेकिन इतना ध्यान रखना, जलते दीपक के ऊपर बुझे हुए दीपक को मत ले जाना, अन्यथा परिणाम यह होगा कि जो बुझा था वो तो बुझा ही था, किन्तु जो जल रहा था उसको भी बुझा दिया। अत प्रकाश के लिए दीप जलाना, किसी को जलाने के लिए दीप नहीं जलाना। मुमुक्षु जीव जलाने के लिए नहीं प्रकाश करने के लिए दीप जलाता है। इसलिए अपने जीवन मे बुझे दीपो को जलाने, जले दीप के पास पहुँच जाना। मनीषियो! यदि निर्माण से निर्वाण प्राप्ति की आकाक्षा हो तो कभी भी जीवन मे न चोरी करना न चोरी की वस्तु खरीदना–बेचना, न राज्य के प्रचलित कानूनो का उल्लघन करना।
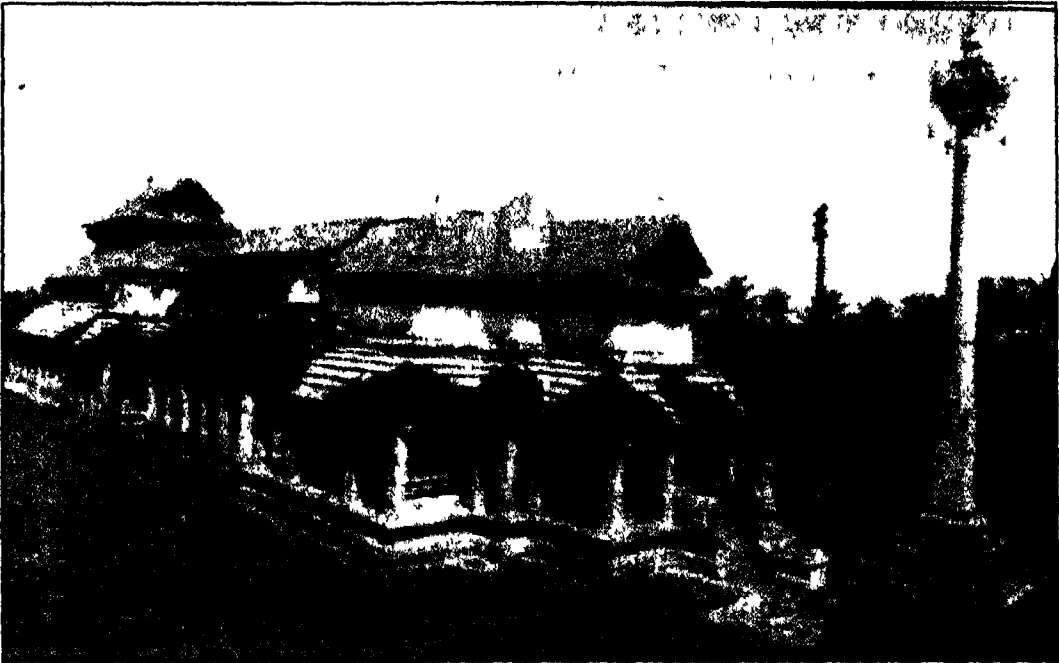
सहस्र स्तभों वाला चद्रनाथ मदिर, मूडबद्री (कर्नाटक)

"अतिचारो से बचो"

स्मरतीव्रभिनिवेशोऽनगक्रीडान्यपरिणयनकरणम्।
अपरिगृहीतेतरयोर्गमने चेत्वरिकयो पच।।१८६।।

अन्वयार्थ स्मरतीव्राभिनिवेश =कामसेवन की अतिशय लालसा रखना। अनगक्रीडा = योग्य अगो को छोडकर अन्य अगो से। कामक्रीडा करना। अन्यपरिणयनकरणम् = अन्य का विवाह करना। च = और। अपरिगृहीतेतरयो = अविवाहित तथा विवाहित। इत्वरिकयो = व्यभिचारिणी स्त्रियो के पास। गमने = गमन। पच = ये ब्रह्मचर्यव्रत के पाच अतिचार हैं।

वास्तुक्षेत्राष्टापदहिरण्यधनधान्यदासदासीनाम्।
कुप्यस्य भेदयोरपि परिमाणातिक्रिया पच।। १८७।।

अन्वयार्थ वास्तुक्षेत्राष्टापदहरिण्यधनधान्यदासदासीनाम् = घर, भूमि सोना, चादी धन धान्य दास–दासियो के। कुप्यस्य = स्वर्णादिक धातुओ के अतिरिक्त। वस्त्रादिको के भेदयो = दो–दो भेदो के। अपि = भी। परिमाणातिक्रिया = परिमाणो का उल्लघन करना। ये अपरिग्रह–व्रत के। पच = पाच अतिचार हैं।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ९९॥

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने कथन किया है कि जो श्रावक अतिचारो से रहित निर्दोष बारह व्रतो का पालन करता है, वह सोलहवे स्वर्ग की यात्रा करता है। अहो! परिणामो की विचित्रता कि एक सम्यक्‌दृष्टि श्रावक उत्कृष्ट निर्दोष बारह व्रतो का पालन कर सोलहवे स्वर्ग तक जा सकता है और एक मिथ्यादृष्टि अभव्य भी वीतराग–मुद्रा को धारणकर नौवे ग्रैवेयक तक की यात्रा कर लेता है। यह द्रव्य–सयम और शुक्ल–लेश्या का प्रभाव है कि ग्रैवेयक मे जो जीव जा रहा है वह अशुभ लेश्याओ से नही, शुभ लेश्याओ से जाता है। अनन्तानुबधी कषाय की मदता जब इतना पुण्य–आस्रव करा सकती है, तो भो ज्ञानी आत्माओ! सज्वलन की मदता कितना पुण्य–सचय करा सकती है?

जीव ने यदि अतिचारों पर विचार नहीं किया, तो अनाचार के प्रवेश होने में देर नहीं लगती। अत अतिचार को बहुत ही समझने की आवश्यकता है। जिनवाणी कह रही है कि यदि व्रतो का पालन विवेक से करोगे तो अतिचारों से बच जाओगे, अन्यथा विवेक खोने पर तो अतिचार क्या, अनाचार मे भी प्रवेश कर जाओगे।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना,–जीवन बनाने मे बहुत समय लगता है, लेकिन मिटाने मे कोई समय नहीं लगता। एक जीव पुरुषार्थ करके कलकल भूमि से निकलकर यहाँ तक आ गया, निगोद से निकलकर यहाँ तक आ गया, अब सभलने के अवसर यहीं पर हैं। इसलिए व्रत तो स्वीकार कर लिया है पर जो दोष लग रहे हैं, उन दोषो मे लिप्त मत हो जाना। अन्यथा दोषो का शमन बहुत कठिन होगा। यदि साधना निर्मल नहीं है तो भविष्य मे मोक्ष तो मिल ही नही सकता एव वर्तमान के उत्कृष्ट इद्रिय–सुख भी नही मिलेगे। आचार्य भगवन् नेमीचन्द्र स्वामी ने गोमट्टसार 'कर्मकाण्ड ग्रथ मे कहा है कि मोह की दशा शहद लिपटी तलवार है, यदि जिव्हा पर फेरे तो मीठी तो लगती है परतु जीभ के विभाग हो जाते हैं, टुकडे हो जाते हैं। ऐसे इद्रिय भोग भी भोगने पर जीव को मधुर महसूस तो होते हैं, लेकिन यह भोग बाद मे बडे कष्ट देनेवाले होते हैं। इसीलिए विवेकी कुछ करने से पहले ही सोच लेते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा? अहो! पाप करने से पूर्व पाप के विपाक ध्यान आ जाए तो पाप करने के परिणाम हो ही नहीं सकते। नरक मे पडे जीव को जो वेदना हो रही है वह वेदना नरक मे जाने से पहले हो गई होती, तो वह नरक में जा ही नहीं पाता।

भो ज्ञानी! हम लोग भोपाल चातुर्मास मे एक गली से निकले, वहाँ से कई लोग निकल रहे थे लेकिन कोई बचा नहीं पा रहा था। खुले स्थान पर बकरे उल्टे लटके हुए थे। देखते ही देखते उनके दो टुकडे कर दिये गये। हे प्रभु! यह सब क्या हो रहा है? कि साधु भी निकल रहे हैं, सज्जन भी निकल रहे हैं, लेकिन कोई उनको बचा नहीं पा रहा है। मनीषियो! इस वेदना का वेदन यदि आज आपको हो जाए तो विश्वास रखना कि ऐसी वेदना जीवन मे कभी नही आएगी। किसी भी कषाय के वेग मे किसी भी आवेश मे आप एक–मुहूर्त मात्र दे देना। सिद्धात कहता है कि अडतालीस–मिनिट के बाद नियम से परिणाम परिवर्तित हो जाते हैं। क्रोध मान मे, मान मायाचारी मे मायाचारी लोभ मे बदल सकती है, क्योंकि एक कषाय चौबीस घटे नहीं चलती। लेश्या व परिणाम अवश्य ही बदलते हैं। मान और लोभ बहुत देर बाद प्रकट होता है। माया कषाय रेगिस्तान की नदी जैसी होती है कि अदर प्रवेश करके फिर कभी विशाल रूप मे दिखती है। मान और क्रोध मे एक तो घास की आग की तरह है और दूसरी पत्थर पर पानी की एक बूद की तरह है, जो गिर जाए तो तुरन्त दिख जाती है। दोनो जीव के परिणाम का घात तो करती ही हैं, साथ ही व्रतो से भी दूर भगा देती हैं।

भो ज्ञानी! अतिचारो को आप सामान्य मत गिनना। कल आपसे कहा था कि दोष कितना ही छोटा क्यो न हो लेकिन वह सयम को टूक–टूक कर देता है। असयम भाव भी प्रेम–वात्सल्य को तोड देता है। इसलिए आचार्य महाराज व्रतो के अतिचार गिना रहे है कि जो वस्तु आपने बहुत सुदर–सुदर दिखलाई थी पर उसके अदर मिलावट मिली हुई है। दिखाया कुछ, दिया कुछ। हम शरीर से बहुत अच्छे उत्तम साधक के रूप मे दिखते है, परन्तु भावना मे साधना नही है, यह प्रतिरूपक–व्यवहार भी चोरी है। हम उच्च–धर्मात्मा के रूप मे लोगो के बीच मे आए हैं और परिणामो मे कलुषता भरी हुई है। लोगो ने आपको बहुत श्रेष्ठ धर्मात्मा समझा है, परतु परिणामो मे तुम्हारी कलुषता रही तो इसका नाम प्रतिरूपक– व्यवहार है। प्रतिरूपक व्यवहार कह रहा है–दिखाया कुछ, दिया कुछ। ऊपर–नीचे धो–पोछ कर अच्छे से रख दिये। बस ऐसी तुम्हारी ऊपर की साधना कुछ और होती है और अदर की साधना कुछ और होती है जिसके कारण महाव्रत या अणुव्रत का पालन नही होता।

भो ज्ञानी! यदि आपको मालूम है कि यह व्यक्ति कोई वस्तु चोरी से उठा कर लाया है, फिर भी आपने उपयोग कर ली तो चोरी की वस्तु का प्रयोग करना भी अचौर्य व्रत मे दोष है। अहो! मुनिराज तो एक–दूसरे के कमण्डल का भी उपयोग नही करते, पूँछ कर लेते हैं। आपको एक ग्रथ किसी ने अध्ययन करने के लिए दिया तो अध्ययन ही करना था आप अध्ययन कर लो, परन्तु यदि लबा समय लगता है तो आप एक बार उससे बोल दो कि भैया! आपका ग्रथ हमारे पास है अन्यथा उसके भाव बदल सकते हैं कि मैंने तो ग्रथ पढने दिया था वह तो रख के ही रह गये। यानि दूसरे के भावो का भी ध्यान रखना। क्योकि बाजार मे कोई वस्तु सौ रुपए मे आ रही है और सामने वाला वही वस्तु पचास रुपए मे दे रहा है। कौन नही जानता है कि यह वस्तु चोरी की होगी। लेकिन धीरे से आपने खरीद ली आपकी स्वय की परिणति ही चोर हो गई। यह आदान अतिचार है।

भो ज्ञानी! राज्य के विरुद्ध अतिक्रम करना अथवा शासन की अनुमति नही है ऐसे किसी कार्य को करना विलोप–अतिचार है। इन्कम–टैक्स, सेल–टैक्स और तो और घर मे जो विद्युत तार लगे हैं उनमे भी व्यक्ति ने मीटर मे तार लगा दिया। आजकल मिलावट के काम का तो कहना ही क्या? घी मे क्या–क्या नही मिलाते, काली मिर्ची मे पपीते के बीज मिला दिये, घर पर माता–पिता से कहकर आए थे कि वदना करने जिनालय जा रहा हूँ किन्तु यहाँ आकर अशुभ परिणाम कर लिए तो बताओ! शुभ परिणामो मे अशुभ परिणामो का मिश्रण किया कि नहीं? जैसे शासन ने आदेश किया कि आठ बजे दुकाने बद करो। इसी प्रकार साधना का समय है, सामायिक का समय है, पूजन का समय है, परन्तु आप मदिर जी मे थाली लिये खडे होकर मित्र से बातें कर रहे हो। भो ज्ञानी! अपने कर्तव्यो का निर्वहन नहीं करना–यह भी चोरी है। किसी के यहाँ से आटा लाने को कहा तो बर्तन

में दबा–दबाकर लाया और जब देने गया तो पोला करके चोटी बनाकर गया, तुरत उडेला और भाग गये। कितना देकर आए हैं आप? अहो! चोरी तो नहीं की, लेकिन मायाचारी तो जरूर कर रहा है। आपने व्रत मे दोष लगाया है। आपने भोजन की थाली पर बैठ कर मौन से भोजन किया था और वहाँ तुम्हारे मन मे कोई भाव आ गया, तो भो ज्ञानी! तू असत्य मे चला गया, यह अचौर्य व्रत का अतिचार है।

भो ज्ञानी! ब्रह्मचर्य व्रत के पाँच अतिचार हैं। कामसेवन तो नहीं कर रहा है, लेकिन कामसेवन की तीव्र भावना रख रहा है। काम के अगो को छोडकर अनुचित क्रिया भी करना अनगक्रीडा नाम का अतिचार है। अनगक्रीडा को अतिचार ही नहीं, अनाचार भी कहा है। 'राजवार्तिककार' ने स्पष्ट लिखा है कि यह जीव अनाचार मे क्यो जा रहा है? वह इस प्रकार की क्रियाएँ इसलिए कर रहा है कि उसके इतने तीव्र कषाय भाव हैं कि एक क्षण को भी अपने आपको सभाल नही पा रहा है, अनगक्रीडा मे लीन है। अत उनको अनाचार की सज्ञा दी है। अहो! स्वय का ब्रह्मचर्य–व्रत है और दूसरे की शादी करा रहा है। कुछ लोगो का जीवन इसी दलाली मे चल रहा है पता नही कितने युवको की कुडलियाँ रखी होगी। भो ज्ञानी! शादी के बाद वह नवकोटी जीवो की हिसा करेगे और आप करवाओ शादियाँ। अरे! एक–दूसरे के विवाह करवाना, अन्य विवाहकरण अतिचार है। जिसकी शादी नही हुई है उसके यहाँ आना–जाना, जिनका चरित्र ठीक नही है ऐसी स्त्रियो के यहाँ आना–जाना तथा उनसे हास्य–विलास की चर्चा करना, यह इत्वरिका–गमननाम का अतिचार है।

भो ज्ञानी! परिग्रह का परिमाण कर लिया था, लेकिन लोभ–कषाय ने पिड नही छोडा। एक मकान का नियम ले लिया था, पर लोभ कह रहा है कि यह मकान तो छोटा–सा महसूस होता है और दो मकान करना नहीं हैं। अत पडोसी के मकान को खरीदकर बीच की दीवार को तोड दिया। यानि व्रत भी नहीं पाल रहा और मायाचारी भी कर रहा है। मकान की सीमा को बढा देना क्षेत्र–खेत आदि की मेड को तोड, छोटे खेत को बडा बना देना ये परिग्रह–परिमाण व्रत का अतिचार है। एक व्यक्ति ने नियम लिया कि दस आभूषण रखूँगा और जो दस रखे थे वह दस तोले के थे। अब वह दस की गिनती तो बराबर रख रहा है, पर उसने दस को तोडकर एक बना लिया तथा नौ बजनदार आभूषण और बनवा लिये। अहा! लोगो को सोने मे बहुत राग होता है, जबकि उससे कोई पेट नही भरता और वह शाति से सोने भी नहीं देता है। यदि शाति से सोना चाहते हो तो सोना रखना छोड दो। धन–धान्य, गाय–भैंस, दास–दासी आदि इतने रखेगे, परतु बढा दी गिनती। यह ध्यान रखना कि यह भी दोष है। कुछ लोग तो नौकर को अपना परिग्रह मानते ही नही हैं। आपने बहुत सारे सेवक किसी कारण वश बुला लिये, लेकिन दोष तो लगेगा। चाहे शादी के निमित्त

से बुलाए, चाहे अन्य किसी के निमित्त से। वे चलकर आ रहे हैं और वे जो कुछ भी क्रिया कर रहे हैं, उनका जो भी असयम–भाव होगा, आपके निमित्त से ही होगा। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि इन सबके भागीदार आप होगे।

भो ज्ञानी! जो घर में चालीस–चालीस पेटियाँ कपडो से भरी हुई रखी है, उनमें से साथ मे कितनी ले जाओगे? ठडी के दिनों मे कितने गरीब आपको वस्त्रो के अभाव मे रोड पर ठिठुरते मिलते है? सोचा कभी आपने, कि हमारे घर वस्त्रों मे कीडे लग रहे है सड रहे है तो उन्हे सडक पर फेक देगे पर किसी के तन के ऊपर नहीं डाल सकेगे। अहो! उन पेटियो को कम कर दो। एक सज्जन जूते पहनकर मदिर आए थे और श्रीजी के दर्शन करते वक्त बाहर उतरे हुए पन्द्रह सौ रुपए के जूते पर बार–बार दृष्टि जा रही थी। कही चोरी न चले जावे बताओ, वदना किसकी हो रही थी? अगर वास्तव मे कोई उठाकर ले जाए, तो परिणाम कैसे होगे? इसीलिए माँ जिनवाणी कहती है–जिनेन्द्रदेव के मदिर मे निसग होकर आओ, परिग्रह का विसर्जन करके आओ।

खजुराहो- आदिनाथ मदिर

"अतिचारों से बचो"

ऊर्ध्वमधस्तात्तिर्यक् व्यतिक्रमाः क्षेत्रवृद्धिराधानम्।
स्मृत्यन्तरस्य गदिताः पंचेति प्रथमशीलस्य।। १८८।।

v Ub; ksFk% ऊर्ध्वमधस्तात्तिर्यक् = ऊपर, नीचे और समान भूमि के किये हुए प्रमाण का । व्यतिक्रम = व्यतिक्रम करना अर्थात् जितना प्रमाण लिया हो उससे बाहर चले जाना । क्षेत्रवृद्धि = परिमाण किये हुए क्षेत्र की लोभादिवश वृद्धि करना और। स्मृत्यन्तरस्य =स्मृति के अतिरिक्त क्षेत्र की मर्यादा का। आधानम् = धारण करना, अर्थात् मर्यादा को भूल जाना। इति पच= इस प्रकार पाच (अतिचार)। प्रथमशीलस्य = प्रथम शील के (अर्थात् दिग्व्रत के कहे गये हैं)।

•

प्रेषस्य सप्रयोजनमानयन शब्दरूपविनिपातौ।
क्षेपोऽपि पुद्‌गलाना द्वितीयशीलस्य पचेति।। १८९।।

अन्वयार्थ प्रेषस्य सप्रयोजनम् = प्रमाण किये हुये क्षेत्र के बाहर अन्य पुरुष को भेज देना। आनयन = वहाँ से किसी वस्तु का मँगाना। शब्दरूपविनिपातौ = शब्द सुनाना, रूप दिखाकर इशारा करना और। पुद्‌गलाना = ककड पत्थरादि पुद्‌गलो का। क्षेपोऽपि =फेकना भी। इति पच = इस प्रकार पॉच (अतिचार)। द्वितीयशीलस्य = दूसरे शील के (अर्थात् देशव्रत के कहे गये हैं)।

कन्दर्प कौत्कुच्य भोगानर्थक्यमपि च मौखर्यम्।
असमीक्षिताधिकरण तृतीयशीलस्य पचेति।। १९०।।

अन्वयार्थ कन्दर्प कौत्कुच्य = काम के वचन कहना, भाडरूप अयुक्त कायचेष्टा। भोगानर्थक्यम् = भोगोपभोग के पदार्थो का अनर्थक्य। मौखर्य च = मुखरता या वाचालता और असमीक्षिताधि ाकरण = बिना विचारे कार्य का करना। इति = इस प्रकार। तृतीयशीलस्य = तीसरे शील (अर्थात् अनर्थदडविरति व्रत के)। अपि पच = भी पाच (अतिचार) हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || १०० ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी जी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं।

आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अभूतपूर्व सूत्र दिये हैं कि चित्त की चचलता ही भगवती–अवस्था की विघातक है। चित्त की निर्मलता ही भगवत्ता की जनक है। चारित्र मे अतिचार नहीं आते हैं चित्त मे अतिचार आते हैं और चित्त के अतिचार चारित्र से दूर कर देते हैं। ससार का कोई भी प्राणी असयम को श्रेष्ठ नही मानता, क्योकि ससार को बढाने वाला असयम है। अतिचार इसलिए लगा, क्योकि सावधानी की कमी थी, सजगता नहीं थी। अहो ज्ञानियो! जिस जहाज मे जड–रत्न रखे हो उस जहाज का चालक कितनी सावधानी रखता है? अहो! रत्नत्रयधारी नाविक! तू श्रावको के बीच रत्नो को ले जा रहा है लेकिन फिर भी दृष्टि यह रखना कि कही मेरे अतरग मे तूफान तो नहीं आ रहा है, अन्यथा विभाव परिणति का तूफान रत्नत्रय नौका को नीचे पलट देगा। अहो! जब–जब जीव का विघात हुआ है, बस एक क्षण की असावधानी से हुआ है। इसमे ज्ञान का दोष तो नहीं था। ज्ञान जानकारी देता है कि श्रद्धान कैसा था? जहाँ विश्वास होता है वहीं गमन होता है। देखो, नमक के खुले बोरे पर चीटियॉ घूमते नही मिलती किन्तु शक्कर के बद डिब्बे के अदर चीटियॉ घूमती नजर आती है। क्योकि जहॉ राग था, जहॉ विश्वास था, वहॉ द्वार भी मिल जाता है। जब ज्ञानी को सयम के प्रति विश्वास हो जाता है तो चारित्र का द्वार खुल जाता है और अज्ञानी को सयम पर श्रद्धान नही होता है तो वह असयम रूप ही रहता है सयम उसे झलकता नही है। इसीलिए ज्ञान की सज्ञा दीपक है अर्थात् वह स्वपर प्रकाशक है।

भो ज्ञानी! जिनवाणी मॉ कहती है कि मुझे जानने से ज्ञान नही होगा। क्योकि ज्ञान जिनवाणी का धर्म नही है ज्ञान तो आत्मा का धर्म है। यदि शास्त्रो से ज्ञान होता तो सभी जीव ज्ञानी होते। अरे! ज्ञान बुद्धि का विषय है चारित्र सयम का विषय है और दर्शन श्रद्धा का विषय है। ज्ञानावरणी कर्मो का क्षयोपशम भिन्न तत्त्व है। सयम चारित्र मोहनीय–कर्मो के क्षयोपशम से होता है और श्रद्धान–दर्शन मोहनीयकर्म के क्षयोपशम से होता है और ज्ञान–ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से होता है। आज लोग विद्वानो पर अश्रद्धान करने लगे हैं और विद्वान चारित्रवानो पर अश्रद्धान करने लगे हैं लेकिन वास्तव मे दोनो एक–दूसरे को समझ नही पा रहे। अहो! एक–दूसरे को मत समझो आप मात्र जिनवाणी को समझ लो। जिससे आत्मा का उपकार हो, उसे उपकरण कहते हैं। हिसा होगी तो कर्म–बध होगा, अहिसा होगी तो कर्मनिर्जरा होगी। यह पिच्छी अहिसा का उपकरण है, इसलिए यह आपका उपकारी द्रव्य है। प्रत्येक तत्त्व मे जितने गहरे मे जाओगे उतना समझ मे आएगा। आपमे तो ज्ञान होने के बाद भी सयम के भाव नही आते और आ भी जाये तो सयम धारण नही कर पाते। यदि सयम धारण कर भी ले तो पालन नहीं कर पाते। पालन भी हो जाए लेकिन शुद्ध–भाव नहीं होते। इसलिए श्रावक की भी यह सब व्यवस्थाएँ छठवे गुणस्थान तक ही है, इसके बाद कोई राग नही है। राग तो चलता है १०वे गुणस्थान तक, लेकिन वह व्याख्यान का विषय नही वह सूक्ष्म है, वह अतरजल्प है, यह है आपकी ज्ञान की महिमा।

भो ज्ञानी! आप लोकोपचार को समझ नही पाए, अत जिनवाणी की धारा को समझना।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने "अध्यात्म अमृतकलश" मे कहा है कि स्वरूपाचरण को समझ नहीं पाया और सयमाचरण मे खो गया। अहो प्रमादी! तू क्या कर रहा है? सयमी–जीव सयम की साधना मे लीन है। सर्वार्थसिद्धि मे आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे है कि विशुद्धि से क्षयोपशम की वृद्धि होती है और बिना सयम के विशुद्धि नहीं बढती है। आल्हाद, प्रसाद विशुद्धि है। वस्तु का मिल जाना, पूजन कर लेना, पाठ कर लेना, इसका नाम विशुद्धि मत कह देना। यह विशुद्धि व्यवहार–दृष्टि से है। इन स्थानो पर आकर के जो आल्हाद तुम्हारे अदर उत्पन्न होता है उसका नाम यथार्थ विशुद्धि है। प्रतिभा के देखने के बाद प्रतिभावान पर जो तुम्हारी श्रद्धा उमडती है, उसका नाम विशुद्धि है। अहो! उपयोग के विषय को पदार्थों से नहीं नापना। यदि जिनवाणी को सुन रहे हो तो इससे शुभ काय–योग तो बन जाएगा, लेकिन यदि परिणामो मे निर्मलता नहीं आ रही है तो उपयोग शुभ बनने वाला नही है। विशुद्धि से क्षयोपशम बढता है। इसलिए घबराओ नही, साधना करते जाओ। याद हो या न हो, लेकिन आप पढते जाओ। ये सस्कार तुम्हारे बन जाएँगे। शास्त्र–ज्ञान की बात मत करो, आप तो शुद्ध ज्ञान की बात करो। ये शास्त्र ज्ञानी यहीं बैठे रहेगे, तुम केवली–भगवान बन जाओगे। शिवभूति महाराज का क्या हुआ था ? ' तुषमासि भिन्न" जपकर वे अतर्मूहूर्त मे कैवल्य को प्राप्त हो गए थे। ये श्रद्धा की महिमा थी, शास्त्र–ज्ञान की नही थी। उनको तो 'णमोकार मत्र" याद नही था। यह विशुद्धि की भावना है, इसलिए यदि सयमी के पास शास्त्र–ज्ञान नही है, तो शास्त्र–ज्ञान से सयम की पहचान नहीं करना क्योकि सयमहीन केवली बन जाएँ यह कभी सभव नही होगा।

भो ज्ञानी! अतिचार का उद्‌भव ज्ञान के निर्मल परिणमन के कारण नहीं है, क्योकि ध्यान पर दृष्टि नही जाने के कारण ज्ञान तो है, ध्यान नहीं है इसलिए सयम मे शिथिलाचार है। ज्ञान हो न हो यदि ध्यान तुम्हारे पास है तो सयम मे दोष नहीं लग सकता। पर ध्यान से चलना क्योकि ज्ञान सामान्य है, ध्यान विशेष है। परतु ज्ञान के अभाव मे ध्यान नहीं होता। यह ध्यान रखना, कि जिस वस्तु का ज्ञान होगा उसी का ध्यान किया जाएगा। लेकिन फिर भी ध्यान– ध्यान है, क्योकि ज्ञान मे असावधानी हो सकती है, पर ध्यान मे असावधानी नही होती है।

भो ज्ञानी! चित्त मे निर्मलता का प्रवेश कर जाना, चचलता रहित हो जाना उसका नाम ध्यान है। सुई मे धागे को पिरोते समय ध्यान नहीं होगा तो तुम कैसे सुई मे धागा डालोगे? ससार भी ध्यान से होता है और मोक्ष भी ध्यान से होता है। ध्यान दोनों के साथ रहता है। यदि आर्त रौद्र ध्यान हो गये तो ससार हो गया और धर्म, शुक्ल ध्यान हो गये तो मोक्ष हो गया। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि आपने व्रत ले लिये तो उसमें अतिचार लगाकर अपना अहित क्यों कर रहे हो ? थोडी सावधानी और बरत लो, निर्जरा ही निर्जरा है। अहो! सयम का नीर तुम्हारे पास है, लेकिन अतिचार को मत कर लेना, नहीं तो किच–किच हो जाएगी। वर्ष मे एक बार श्रावको को श्रावकाचार और साधको को मूलाचार का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए, जिससे प्रतिक्रमण–प्रत्याख्यान

का आगम अनुसार अभ्यास बना रहे, मन की सफाई होती रहे। यदि कहीं अवरूद्धता आ गई तो सयम में किच–किच (कीचड) हो जाएगी, फिर अतिचारों से भी नहीं बचेगे, अनाचार की ओर जाएगा। अत अध्ययन आपको बता देगा कि देखो तुम सुधार कर लो, यह दोष है। सयम की सावध ाानी सुरक्षा हेतु आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि आपने दिग्व्रत, देशव्रत, और अनर्थदड विरति व्रत आदि को स्वीकार किया। आपने नियम लिया था कि दस–दस किलोमीटर चारो दिशाओ मे गमन का नियम है, लेकिन तीन दिशाओ मे नही गये हैं, इसलिए चालीस किलो मीटर एक ही दिशा मे चले जाते हैं, ऐसा नही करना–यह व्यतिक्रम है अर्थात् क्षेत्र वृद्धि, क्षेत्र की सीमा बढा लेना।

भो ज्ञानी! कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो नियम तो बहुत सारे ले लेते हैं, लेकिन भूल भी जाते हैं। ध्यान रखना यह भी अतिचार हैं। सम्पूर्ण नियमो का उद्देश्य, इच्छाओ का निरोध करना और राग का अभाव करना था, लेकिन वह कुछ नहीं हुआ। कभी–कभी तो कहते हैं हमारा तो नियम है अत आप चले जाओ वहाँ। अहो! परिप्रमाण क्षेत्र के बाहर अन्य पुरुष को भेज देना और वहाँ से वस्तु को मँगा लेना, फोन कर देना भी अतिचार है। वह महापुरुष है, जो निमित्त के मिलने पर भी अपने उपादान को सँभाल के चलता है, उसका नाम सयमी है। नियम ले लिया बोलना नही है, पर कोई सामग्री चाहिए हूँ–हूँ कर भूत से घूम रहे हो अथवा रूप दिखा रहे हो। एकदम ऑखे बनाई, भौंह चढा ली। यह नहीं, यह लेकर आओ। ऐसा शरीर दिखा दिया, ये अतिचार है। इतना ही नही जब कोई नही समझ पाया, तो उठाया पत्थर और दे मारा सुनो, वह उठा लाओ। महाराज का महाव्रत है, उनको झाड़ू लगाने का त्याग है। तुम भी महाव्रती हो इतनी भाषा बोल दी बस हो गया काम लग गया दोष। क्योकि आपने उपदेश दिया। भैया! बडे सभल के बोलना चाहिए। पुद्गल का क्षेपण करना काम–चेष्टा के अश्लील वचन का बोलना अशुभ वचन बोलना। ध्यान से सुनना आज तुम्हारे पुण्य का योग है सो तुम भाग्य से मनुष्य बन गये तो कर्म भूल गये। सीमा के बाहर जो भी आप सोचेगे वह अतिचार के अतर्गत आयेगे। जितनी भोग–सामग्री तुम्हे चाहिए, उतनी रखना चाहिए, भोजन मे तुमको एक रोटी तक खाते नहीं बनती, लालसा है चार खाने की। अत चार रखकर बैठ गये। पदार्थों को अधिक नहीं रखना। इसी प्रकार कुछ लोगो की आदत होती अकेले भी बैठे होगे तो बडबडाते रहते हैं, कुछ लोग सोते–सोते बडबडाते हैं यानि व्यर्थ मे बाते करना यह भी अतिचार है। ध्यान रखना वचनो का भी सयम रखो, ज्यादा मत बोला करो और भोग–उपभोग की सामग्री को बिना प्रयोजन के अधिक जुटाकर रखना और बिना विचारे कोई काम करना भी अतिचार है। बिना विचारे कुछ लोग काम कर लेते हैं, बाद मे पछताते हैं, पहले विचार कर लेते इसी का नाम विवेक है इसलिए आपका नाम श्रावक है। आप श्रद्धावान विवेकवान, क्रियावान हो। अत अतिचारो से बचो।

"अतिचार से अनाचार"

वचनमन कायानां दु·प्रणिधानभत्वनादरश्चैव।
स्मृत्यनुपस्थानयुता· पचेति चतुर्थशीलस्य ।। १९१।।

अन्वयार्थ · स्मृत्यनुपस्थानयुता = सामायिक के समय आदि को भूल जाना। वचन मन कायाना = वचन, मन और काय की। दु प्रणिधान = खोटी प्रवृत्ति। तु अनादर श्चैव = और अनादर। इति =इस प्रकार। चतुर्थशीलस्य = चौथे शील अर्थात् सामायिक व्रत के। पच एव =पाच ही अतिचार है।

अनवेक्षिताप्रमार्जितमादान सस्तरस्तथोत्सर्ग·।
स्मृत्यनुपस्थानमनादरश्च पचोपवासस्य।। १९२।।

अन्वयार्थ अनवेक्षिताप्रमार्जितमादान = बिना देखे और बिना शोधे ग्रहण करना। सस्तर = बिछौना बिछाना। तथा उत्सर्ग = मलमूत्र त्याग करना। स्मृत्यनुपस्थानम् = उपवास की विधि भूल जाना। च अनादर = और अनादर। ये उपवासस्य = उपवास के पच = पाँच अतिचार हैं।

आहारो हि सचित्त सचित्तमिश्र सचित्तसम्बन्ध ।
दुष्पक्वोऽभिषवोपि च पचामी षष्ठशीलस्य ।। १९३।।

अन्वयार्थ हि = निश्चय करके। सचित्त आहार = सचित्ताहार। सचित्तमिश्र= सचित्त मिश्राहार। सचित्तसम्बन्ध = सचित्तसबधाहार। दुष्पक्व = दुष्पक्वाहार (घी दूध मिश्रित कामोत्पादक आहार)। च अपि अभिषव = और। अभिषवाहार अमी पच = ये पाच अतिचार षष्ठशीलस्य = छठे शील अर्थात् भोगोपभोग परिणामव्रत के हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || १०१||

भगवतो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने हमे सूत्र दिया—अतिचारो को जिसने समझ लिया, वह अनाचारो से बच गया। अल्पदोष को भी महादोष के रूप मे जो देखता है, वह जीव कभी भी महान दोष को प्राप्त

नहीं होता है और महान दोष मे जिसे अल्प दोष नजर आता है, वह कभी भी जीवन मे निर्दोष नहीं हो सकता। राई के बराबर ही क्यो न हो, दोषो को कभी छोटा न माने। दोष कभी छोटा नहीं होता। भो ज्ञानी! मन बहुत खोटा है। वह हर समय विश्राम की ओर ले जाता है और मन ने साथ दिया तो एक वृद्ध भी सम्मेदशिखर के पहाड पर चढ जाता है। भो ज्ञानी! जीवन मे उत्साह नहीं गिराना, न स्वय का उत्साह गिराना न दूसरे का। उस व्यक्ति का सयम युवा होता है जिसके पास उत्साह–शक्ति होती है और जिस दिन उत्साह–शक्ति का विराम हो जाता है उसी दिन सयम से वृद्ध हो जाता है। भगवान की वदना के लिए एक वृद्ध सीढियो पर चढ रहे थे। साथी बोले–दादा जी! नीचे से ही वदना कर लेते। दादाजी बोले–इस शरीर को तो नष्ट होना ही है, मैं चाहता हूँ जब तक काम दे रहा है उपयोग कर लूँ। एक व्यक्ति कह रहा है कि जैसे भगवान नीचे की वेदी मे है वैसे ही ऊपर भी हैं इसीलिए हमने तो नीचे से वदना कर ली। अरे! उत्साह–शक्ति को बढाओ। कभी शरीर को वृद्ध मत मान बैठना और जिस दिन से आपने मन को वृद्ध किया, शरीर का काम होना बद हो जायेगा फिर चारपाई से बाहर नहीं आ पाओगे। ध्यान रखना! वृद्ध–अवस्था साधना मे सबसे बडा विघ्न कराने वाली होती है। अहो ज्ञानियो! यह तो मनुष्य का शरीर था। सूर्य को भी शाम को ढलते देखा गया, उसका तेज फीका हो गया। सध्या आने के पहले कुछ करके चले जाओ। प्रभु से प्रार्थना कर लेना कि भगवन्! हाथ मे लाठी टिक जाए उसका विकल्प नहीं, चिता नही है, पर मन मे लाठी न टिके। वृद्ध अवस्था मे उत्साह बना रहे।

भो ज्ञानी! अतिम सल्लेखना के काल मे कानो को ढोल–धमाके मे मत ले जाना, सगीत मत सुनाना। अब तो मात्र अपने चैतन्य प्रभु का गीत सुनना, सभी अतिचार समाप्त हो जाएगे। ज्यादा मत देखो, ज्यादा मत सुनो स्पर्श भी मत करो, गध को भी ज्यादा मत सूघो। जब आपने सभी इद्रियो को व्यवस्थित कर लिया, अब अतिचार क्यो लगेगा? अतिचार लगने का कारण था इद्रियो का भागना। यदि इद्रियो का भागना बद हो गया तो आपने विषयो की प्रवृत्ति मद कर ली अब अतिचार नहीं लगेगा। इसलिए अतिम समय मे पराधीन होना बद कर दो। बिल्कुल स्वाधीन रहो। जिस जीव ने अपने आपको नही सभाला, तो सल्लेखना के काल मे उनको बड़ी परेशानी होती है। सभी रोग एकसाथ अपना योग बनाते हैं, सभी कर्म एक साथ घेरते हैं, क्योकि कर्म कह रहे हैं–यदि आयु–कर्म आ गया, तो मैं इसको फल कब दे पाऊँगा ? आपने अनेक बार देखा होगा कि एक वह जीव है जिसने साधना की है और साधना के अतिम समय मे भी उसका तीव्र यश फैल रहा है। उसकी स्वास मात्र में हस–आत्मा चली गई, न किसी से सेवा कराई, न किसी की सेवा की। वह भी एक जीव था, क्योकि इन्होने इद्रियो का दुरुपयोग नहीं किया।

भो ज्ञानी आत्माओ! जो कम उम्र के हो उन लोगो के साथ थोडी मित्रता बनाके चलना और कह देना–मेरे मित्र! जब तुमने हर घडी मेरे साथ सहयोग किया है, तो मृत्यु से पूर्व मेरे विषमता

के काल मे समता–सीख बताने अवश्य आना। अतिमकाल में जिसने सहयोग कर दिया अथवा जिनके साथ तुम्हारा बिगाड हो गया हो, आयु ढलते–ढलते सबसे क्षमा माँग लेना।

भो ज्ञानी! जैसे परिणाम होंगे, वैसा बध होगा। अमृतचन्द्रस्वामी बता रहे हैं–अहो ज्ञानी आत्माओ! तीन सध्या वेला हैं– सुबह, शाम, मध्यान्ह।। यह सामायिक का काल आत्मा की पढाई का सुदर काल है। इसमें अपने लिए ही सोचा जाता है। उस काल मे दूसरे बहीखाते नहीं खोलना, अपने जीवन के बारे मे सोचा करो। उस काल मे मन इधर–उधर नहीं ले जाना। आप पूजन दूसरे से करवा सकते हो, पाठ दूसरे से करा सकते हो, घर मे भक्तामर जी कराना है तो मडली बुला ली और स्वय सो गये। एक गाँव में पूजा हो रही थी, टेप लगा हुआ था, बस आप अर्घ चढाते जाओ। सब कुछ कर लोगे, लेकिन एक बात का ध्यान रखना कि सामायिक दूसरे से नही करा सकते हो, सामायिक तो स्वय ही करना पडेगी। सामायिक के लिए समय नहीं है, उसमे विकल्प हैं कि जब–जब माला फेरते हैं तब–तब जो कभी नहीं सोचा था वह विचार आते हैं। सुविचार नहीं आए और यदि उस बीच कही निद्रा देवी आ गई, तो उसने भी मुझे मार दिया। निद्रा मे सम्पूर्ण विवेक नष्ट हो जाता है। इसीलिए सामायिक कर लो। यदि एक दिन भी सामायिक कर ली, तो समझ लो, तुम्हारा कोई शत्रु नहीं मिलेगा। आज पूजा–पाठो की वृद्धि हुई है और सामायिक मे कमी आई है। सामायिक मे कमी आने का ही प्रभाव है कि परस्पर मे कलुषता बढ रही है क्योकि सैर–सपाटे मे हम जी रहे हैं ढोल–धमाके मे जी रहे हैं पर सोचने का समय दे ही नहीं रहे हैं। हे योगी! तू एकात मे बैठ जा अपने निज के परिणामो को ठीक कर ले। विश्वास करना, जिनको मानसिक रोगो से छुटकारा पाना हो, वे एक घटा सामायिक को देना प्रारभ कर दे। मानसिक रोग ठीक हो जाएँगे।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् सामायिक व्रत के अतिचार गिना रहे हैं कि सामायिक तो आप कर रहे हो लेकिन वचन–प्रवृत्ति अन्यथा चल रही है। हूँ–हाँ, हुँकार चल रही है। कभी नहीं लगता आपको कि हम अपने साथ कर क्या रहे हैं? सामायिक करने के लिये मैं आपको समय भी बता देता हूँ, बहुत समय है आपके पास। जा रहे हो, आ रहे हो, उस समय क्या करते हो? मौन ले लो, भगवान का नाम लो। जब आप सोने जाते हो, जब करवट बदलते हो, उतने काल मे तुम परिणामो की करवटे बदल दो। 'णमो अरिहताण'' समाधि के लिये यह एक महामत्र है। अन्यथा ध्यान रखना–करवट बदलते समय जो अशुभ विचार तुम्हे आऐगे, वे पता नहीं तुम्हे कहाँ ले जाएँगे। करवट बदलते समय ही कहीं आयु–कर्म की करवट बदल गई, तो भो ज्ञानी! गये। अत बहुत जागने की आवश्यकता है और जागने का स्थान ही सामायिक है। सामायिक के काल मे अन्यथा वचनो की प्रवृत्ति मत करना। अकेले में बैठे हो तो बैठ–बैठे भी गुनगुनाना है। आपको मालूम नहीं है। सामायिक एकात मे ही करना, चौराहे पर कभी मत बैठना। क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चौराहे पर बैठकर तुम सामायिक करोगे, तो कभी सामायिक नहीं होगी। उन चारो से भिन्न होने का नाम

सामायिक है। रागादिक भाण्व जो आ रहे हैं वे कर्मो के सहयोग के कारण हैं। 'वरधर्म' नाम के मुनिराज जब चौराहे पर ध्यान मे बैठे हुए थे कि अचानक पथिक मुखरित हो गये। अहो! वे सम्राट थे, लेकिन उनके बेटे शासन नही सभाल पाये। पडौसी राजा ने इन बेटो पर चढाई कर दी। अहो मनीषियो! सब व्यवस्थाएँ पहले से कर देना। दूर चले जाना साधना करने। अपरिचित होकर जीना। इसलिए आगम कहता है कि नाम बदलो, काम बदलो, गाँव बदलो, तब भाव बदल पाएँगे। देखना, अचानक शब्द कान मे पड गये। परिणाम यह हुआ कि भाव बदल गये। मैं होता तो ऐसे चक्रव्यूह की रचना करता। समोसरण मे ही धनुष–बाण की दृष्टि बन गई। भगवान महावीर की वाणी खिरी–हे राजा श्रेणिक! शीघ्र जाओ तुम अतर मुहूर्त मे नही सभाल पाए तो जीव की हालत बिगड जाएगी। राजा श्रेणिक पहुँचकर बोले भो–स्वामिन! नमोस्तु नमोस्तु–नमोस्तु जोर से चिल्लाता है। धनुष पर डोरी चढ रही थी पर भो ज्ञानी! पिच्छी पर डोरी चली गई। मैं तो मुनि हूँ। धिक्कार हो! यह क्या कर रहा हूँ? अहो! एक क्षण मे वह योगीराज कैवल्य को प्राप्त हो गये। यह थी भावो की महिमा। इसलिए अशुभ वचनो को न कहे।

भो ज्ञानी! सत बनने के लिए वर्षो लग जाते है, असत बनने मे क्षण नही लगता। मै सत–स्वभाव का विघात नही होने दूँगा, ऐसी भावना मुमुक्षु श्रावक के अदर गूँजती रहती है। ऐसे ही कही तुम्हे मालूम चल जाए कि अमुक जगह साधक के परिणामो मे विकल्पता आ रही है तो हजार काम छोडकर पहुँच जाना और जोर से बोलना–भो स्वामिन! नमोस्तु। अहो वीतरागी भगवन्! अरे, मैं कहाँ राग मे डूब रहा हूँ। बस तुम्हारी नमोस्तु ने ही समझा दिया। ऐसा मत कर देना कि शरीर मे पीडा हो रही हो तुमने उनके शरीर की भी सेवा कर दी, उनके भाव शात हो गये। वैयावृत्ति मे विवेक का होना अनिवार्य है। शरीर को दबाना सभी लोग कर सकते है पर भावो को दबाना यह ज्ञानियो का काम है। भावो की दवा जिनेन्द्र–वचन ही परम–औषधी है। सामायिक के काल मे अशुभ वचन नही बोलना, मन को यहाँ–वहाँ नही डोलने देना, शरीर को स्थिर रखना। सामायिक मे पाठ भी करो तो चुटकी नही बजाना। दाँतो का पीसना, नेत्रो का लाल होना सामायिक का चिह्न नही है। यह रौद्र–ध्यान का चिह्न है।

"अतिचारों से बचो"

परदातृव्यपदेश सचितनिक्षेपतत्पिधाने च।
कालस्यातिक्रमण मात्सयर्य चेत्यतिथिदाने।। १९४।।

अन्वयार्थ परदातृव्यपदेश = किसी दूसरे के हाथो आहार दिलवाना। सचितनिक्षेपतत्पिधाने च = सचित्त निक्षेप और सचित्तपिधान (आहार की वस्तुओ को हरे पत्तो मे रखना)। कालस्यातिक्रमण = काल का अतिक्रम, (भोजन काल का उल्लघन करना)। च मात्सर्य इति = और मात्सर्य, इस प्रकार, (आदरभाव न होना)। अतिथिदाने = अतिथि सविभाग व्रत के पाच अतिचार होते हैं।

जीवितमरणाशसे सुहृदनुराग सुखानुबन्धश्च ।
सनिदान पचैते भवन्ति सल्लेखनाकाले ।।१९५।।

अन्वयार्थ जीवितमरणाशसे = जीवितशसा मरणशसा, (जीवन मरण की आशसा) सुहृदनुराग सुखानुबन्ध = सुहृदानुराग, सुखानुबन्ध (अपनो के प्रति अनुराग) च सनिदान एते पच और निदान सहित ये पाँच अतिचार सल्लेखनाकाले भवन्ति = समाधिमरण के समय मे होते हैं।

इत्येतानतिचारानपरानपि सप्रतर्क्य परिवर्ज्य।
सम्यक्त्वव्रतशीलैरमलै पुरुषार्थसिद्धिमेत्यचिरात् ।। १९६।।

अन्वयार्थ इति एतान् = इस प्रकार गृहस्थ इन पूर्व मे कहे हुए अतिचारान् = अतिचारो को और अपरान् = दूसरो को अर्थात् अन्य दूषणो के लगाने वाले अतिक्रम व्यतिक्रमादिको की अपि सप्रतर्क्य परिवर्ज्य = भी विचारकरके, छोडकरके,अमलै सम्यक्त्वव्रतशीलै = निर्मल सम्यक्त्व, व्रत और शीलो द्वारा अचिरात् = थोडे ही समय मे पुरुषार्थ सिद्धिम् एति = आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि को प्राप्त होता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||१०२||

भो भव्यात्माओ! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किये हैं कि सयम की लीनता ही समरस के झरने का स्रोत है। जैसे–जैसे जीवन मे सयम घटित होता है वैसे–वैसे आनन्द का स्रोत स्फुटित होने लगता है। 'लघुतत्वस्फोट' ग्रथ मे चौबीस तीर्थंकर भगवन्

का स्तवन करते हुये अमृतचन्द्र स्वामी लिख रहे हैं–प्रभु! आप प्रकाशक हैं, प्रकाशमान हैं। अहो! विश्व ने जिसे प्रकाश माना है उसे आपने अप्रकाश माना है, जहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँची वहाँ आपकी किरण पहुँच चुकी है इसीलिए आप प्रकाशमान हैं। आप शून्य हो, आप अशून्य हो। प्रभु! आप शून्य इसलिए हो, क्योकि आप दोषो से शून्य हो अर्थात् आपके पास अब दोष नहीं बचे। हे नाथ! आप बुद्धिहीन हो, क्योकि बुद्धि होती है मन वाले की, परन्तु आप मनसे रहित हो, इसीलिए आप निर्बुद्धि हो।

भो ज्ञानी! जहाँ मन है वहाँ विकल्प है एव विषयो मे प्रवृत्ति जा रही है। मन ही विवेक को शून्य कर रहा है, मन ही तुझे नय से भटका रहा है। प्रभु! आप राग–द्वेष से शून्य हो, पर चराचर को जानते हो, इसीलिए आप अशून्य हो। आचार्य भगवन समझा रहे हैं कि शून्य का ध्यान करो, लेकिन शून्य–स्वभाव से तात्पर्य जडत्व–दृष्टि नही, निज मे स्थिरता है। शून्य से तात्पर्य मूर्खता नहीं, परम् विज्ञस्वरूप की लीनता है। अतिचार वहाँ होते हैं, जहाँ चित्त है और चित्त की प्रवृत्ति के साथ मोह बैठा होने से जहाँ राग–द्वेष की धारा चल रही है वहाँ अतिचार सुनिश्चित है। जिसने अतिचार को मृदु बना दिया उनके पास अनाचार सुनिश्चित बैठा हुआ है। देशजिन सम्यकदृष्टि श्रावक ने मिथ्यात्व को जीत लिया है, जिनत्व का बीज बो दिया है। उस देश जिन से कहा जा रहा है कि सफल जिनत्व तब प्रकट होगा जब चारित्र निर्मल होगा, निर्दोष होगा। निर्दोष चारित्र तब ही होगा जब अतिचार को पर्वत के रूप मे मानना स्वीकार कर दे। उत्कृष्ट तो यही है कि आप अतिक्रम व्यतिक्रम मे ही सँभल जाओ। अहो! मन की अशुद्धि अतिक्रम है और विषयो की प्रवृत्ति व्यतिक्रम है। व्रत का एक देश भग होना अतिचार है और अतिचार मे लीन हो जाना अनाचार है। जरा–सा दोष भी सयम के माधुर्य को खट्टा कर देता है और सारा–का–सारा माधुर्य खटाई के रूप मे चेहरे पर आता है, प्रवृत्ति मे आता है वाणी मे आता है, मन मे तो आ ही चुका था। अत दोषो मे मग्न मत हो जाना, जिस व्यक्ति ने दोष छिपाने की आदत डाल ली उसके तो अनन्त भव तैयार है। अहो! जब तक किसी ने नही देखा तब तक लोक की दृष्टि मे निर्दोष हो, परन्तु निजलोक की दृष्टि मे निर्दोष कहाँ हो? जब भावलोक निर्दोष नही रहेगा तो भावलोक निर्दोष नही बनेगा क्योकि भावलोक जिसका निर्मल है उसका भवलोक निर्दोष है और भवलोक जिसका सुधर गया तो उसके पास लोक बचा ही कहाँ? वह तो लोक से परे शुद्ध लोक मे चला गया।

भो ज्ञानी! विश्व के प्राणी भवलोक सुधारने की बात तो करते रहते है, परन्तु भावलोक सुधारने की बात नहीं करते। मात्र वीतराग–वाणी ही ऐसी है जो भवलोक सुधारने के पहले भावलोक सुधारने की बात करती है। मनीषियो! एक क्षण का कषाय–परिणाम शाश्वत–द्रव्य की सत्ता को विकृत करा देता है। जितना असयम–भाव ससार मे रुलाता है, उतनी ही हीन–भावना ससार मे रुलाती है।

भो ज्ञानी! यह बात ध्यान रखना कि किसी से दोष हो रहा तो उसे सम्बोधन देना, पर उसके दोष को उछालना मत, उस पर दया कर लेना। यहाँ अतिचार का कथन करने में बड़ा रहस्य

चल रहा है, क्योंकि ग्रथों मे तात्कालिक बातें नही लिखी होती, ग्रथ त्रैकालिक बातें करते हैं। ये अतिचार भी मात्र पचम काल के नहीं, सर्वकाल के हैं। अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत भी सर्वकाल के हैं। उन व्रतो मे जो दोष लगते हैं उन दोषो को छोडना अनिवार्य है, क्योंकि शक्ति की हीनता और परिणामो की चचलता मे जीव को दोष लगते हैं। इसी तरह कुसगति के सयोग से भी श्रेष्ठ–पुरुष हीन हो जाता है। इसीलिए 'प्रवचनसार' मे आचार्य कुदकुद स्वामी ने लिखा है–

तह्मा सम गुणादो समणो समणं गुणेहि वा आहिय।
अधिवरुदु तम्हि णिच्च इच्छदि जदि दुक्ख परिमोक्ख।। २७०।।

हे यति! यदि दु खो से मुक्त होना चाहते हो तो श्रेष्ठ यही है कि अधिक गुण वालो के साथ रहना चाहिए। यदि अधिक गुणी प्राप्त नहीं हो पा रहे तो समान गुण वालो के साथ रहो, पर हीनाचरण के साथ मत रहना। अन्यथा ध्यान रखो कि सगति का बडा असर पडता है। एक ब्राह्मण माँ ने दो पुत्रो को जन्म दिया। एक पुत्र का चाण्डाल के यहाँ पालन–पोषण किया गया। दूसरे पुत्र का ब्राह्मण कुल मे ही पालन कराया गया। दोनो सुत एक माँ के थे, परन्तु एक मदिरा मे स्नान कर पाप कमा रहा है, दूसरा मदिरा को स्पर्श करने मे पाप मान रहा है। मनीषियो! ध्यान रखना–ब्रह्म स्वरूप भगवती आत्मा के दो पुत्र है। एक का नाम शुभ–उपयोग है एव दूसरे का नाम अशुभ–उपयोग है। शुभ–उपयोग कहता है कि पॉच पाप का स्पर्श करना ही महा–अधमकारी है। अशुभ–उपयोग कहता है कि पॉच पापो की लीनता ही परमात्म भाव है। पर यह अज्ञानता ही समझो। समयसार' कहेगा कि दोनो बेटे अशुभ हैं। शुद्ध तो एकमात्र शुद्ध–स्वभाव है अथवा शुद्ध तो केवल एक ही केवलज्ञान है। अत उज्ज्वल चारित्रवान के साथ रहोगे तो अतरग मे कमजोरी नही होगी। आप जब भी कमी महसूस करोगे तो दृष्टि सामने वाले की वृत्ति या उसके श्रेष्ठ चारित्र के पास जाती है, तब तुमको फीका महसूस होगा तो आपके भाव भी श्रेष्ठ बनेगे कि अपन भी ऐसा करे। इसीलिए भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि हीनाचरण के पास निवास मत करो। पुष्प के सामने बैठोगे, तो सुवास ही प्राप्त होगी।

आचार्य श्री सल्लेखना के पाँच अतिचार का कथन कर रहे है। आशसा का अर्थ चाहना है। जीने की चाह करना जीविताशसा है और मरने की चाह करना मरनाशसा है। पहले मित्रो के साथ पासु क्रीडन आदि नाना प्रकार की क्रीडाएँ की रही उनका स्मरण करना मित्रानुराग है। अनुभव मे आये हुये विविध सुखो का पुन दु स्मरण करना सुखानुबन्ध है। भोगाकाक्षा से जिसमे या जिसके कारण चित्तनियम से दिया जाता है वह निदान है। ये सब सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं।

भो ज्ञानी आत्माओ! अमृतचन्द्र स्वामी यहाँ पर सकेत कर रहे हैं कि व्यक्तित्व को निखारने के लिए आपको व्यक्तित्व के पास पहुँचना पडेगा। यदि परम् लक्ष्य की प्राप्ति करना है, तो अतिचारो मे सतुष्ट नहीं होना। कुछ लोग इतने सन्तुष्ट हो जाते हैं कि अतिचार ही तो लगा, अनाचार तो नहीं हुआ। हम सामायिक पर बारह बजे की जगह साढे बारह बजे बैठे हैं, अतिचार ही तो लगा है। अहो! चिता नहीं करो, कुछ दिन बाद तुम इतने मस्त हो जाओगे कि आप एक भी बजाओगे।

मालूम चला कि काम बहुत जरूरी था, इस कारण एक बज गया, चलो मौन बैठ जाओ, वह काम और निपटा लो। अब बताओ कि पहले दिन पॉच मिनिट लेट हुये थे, दूसरे दिन दस मिनिट। इस प्रकार पहले हम दूसरे काम निपटाने लगे, फिर सामायिक करने लगे।

भो ज्ञानी! ये कार्य मोक्ष–मार्ग नही हैं सामायिक मोक्षमार्ग है। ध्यान रखना–पाठ का नियम है और भाव लग नही रहे। अब इतनी उथल–पुथल है कि इधर सामायिक का समय हो रहा है, उधर पाठ भी करना है, क्योकि नियम लिया है कि भोजन के पहले करना है। अब क्या करोगे ? अहो! मार्ग यह था कि पाठ रोज समय पर होना था, पर आज क्यो नहीं हुआ, क्योकि हमने अपने समय मे कटौती की है। कोई दूसरे काम उस समय पर किए हैं, अत अब परिणाम अधमरूप हो रहे हैं। मनीषियो! मॉ जिनवाणी कह रही है कि ज्ञानियो के पास जाकर बैठ जाओ तत्त्व–चर्चा करने लगो जिससे वह काल चला जाये, वह काल समाप्त हो जाये और तुम्हारे परिणाम फिर सहज हो जाये। ध्यान रखना, आपने अध्ययन किताबो मे किया है, उसमे विवेक लगाकर काम करना। एक शिष्य बहुत सरल था। उसे गुरु ने पढाया– बेटा! कोई सामग्री नही उठाया करो। जी, गुरुदेव! नही उठायेगे। एक बार दोनो एक घोडे पर माणिक मोती लेकर जा रहे थे। रास्ते मे उनकी थैली फट गई। गुरुदेव आगे बैठे हुए थे, शिष्य ने देख भी लिया परन्तु उसने मोती नहीं उठाये। जब मुकाम पर पहुँचे तो खाली थैली देखकर गुरु बोले–बेटे! यह क्या हुआ? गुरुदेव! मैंने तो देख लिया था पर आपने हमसे कहा था कि किसी सामग्री को मत उठाना, इसीलिए मैंने नही उठाया। गुरुदेव बोले–भैया! अपनी वस्तु तो उठा लिया करो, जी आगे से ऐसा ही करेगे। जैसे ही आगे बढे तभी घोडे ने लीद किया और शिष्य ने तुरन्त अपनी थैली फैला दी। यह देख गुरुजी बोले–बेटा! यह क्या कर रहे हो? गुरुजी आपने ही तो कहा था कि अपनी सामग्री उठा लिया करो घोडा तो अपना है ना। भैया! ऐसी डायरियो मे नोट करने की शिक्षा से तुम्हारा जीवन चलने वाला नही है। विवेक की डायरी पर भी कुछ सोचना। यहॉ यह अनुभव करना है कि हमारे दृष्टि मे लाभ कहॉ है? ससार का लाभ नही परिणामो का लाभ, क्योकि एक समय मे कितने बध हो रहे हैं? भो ज्ञानी! एक पलक के झपकने मे असख्यात समय हो जाते है इतना सूक्ष्म एक समय है। अत यह मत देखना कि वैभव कहॉ है? लाभ के लिए वैभव तो छोडना पडेगा। वैभव नही छोड रहे हो, तो लाभ भी नही मिल रहा है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि आपने लोभ किया तो लाभ गया। व्यक्ति समय पर लोभ नही करता असमय मे लोभ करता है। वहॉ लाभ भी गया, धन भी गया और धर्म भी गया। अब ध्यान से समझना अतिथि–सविभाग के अतिचार चल रहे हैं। देखो आप द्रव्य भी देते हो, समय भी देते हो, परन्तु लाभ नहीं ले पाते हो। एक क्षण मे परिणाम इधर से उधर हुए मालूम चला कि जितना पुण्य का सचय किया था वह सब असावधानी के कारण सक्रमित कर दिया। सावधानी बहुत अनिवार्य है। जैसे भवन को बनाने मे सावधानी रखी जाती है, वैसे ही आत्म–स्थित भवन को स्थिर करने के लिए अनन्त गुनी सावधानी रखना पडती है। अत मात्र एक

तीर्थंकर भगवान का चारित्र पढ लीजिए, यानि उनके जीवन में घटित घटनाये, क्योकि उनका चरित्र भी निर्मल है और चारित्र भी निर्मल है। भगवान महावीर स्वामी से मिल लेना कि जब तुम अकउआ की पर्याय मे थे, हम आपसे तो अच्छे हैं। कम से कम प्रवचन–सभा मे तो बैठे हैं। सोचो, वे ही भगवान महावीर थे, इसीलिए पता नहीं यहाँ कौन भविष्य के भगवान बैठे हैं, उनका अविनय न हो जाये। हम रोष मे–तोष मे घास पर फर्श बिछाकर बैठ गये। अहो! आप भगवान के ऊपर बैठ गये। यदि द्रव्य–दृष्टि है, तो फिर आपको सब परमेश्वर दिखेगे। इसीलिए महापुरुषो के चरित्र तो पढते ही रहना चाहिए जब तक हम महापुरुष न बन जाये।

भो ज्ञानी! हमारे आचार्यो ने कहा है कि यदि दोष हो गया हो तो अब तुम आलोचना कर लो, गर्हा कर लो, प्रतिक्रमण कर लो। अभी प्रायश्चित नही देगे, पहले प्रत्याख्यान तो करो। परदातृव्यपदेश ये पहला अतिचार है कि हम बाहर जा रहे हैं, आप हमारे यहाँ चौका लगा लेना और जितना खर्च हो चिता नही करना पर हम तो आहार नही दे पायेगे। अथवा दूसरे के द्रव्य को स्वय दे देना। जैसे–कोई व्यक्ति आपके यहाँ दान के लिए फल रख जाये लेकिन महाराज का त्याग था इसलिये उन्होने नही लिया अथवा उस दिन पडगाहन नहीं हुआ और आपको चौका बद करना था तो बताओ क्या करोगे? स्वय निर्माल्य खाओगे कि दूसरे को खिलाओगे? यदि दूसरे को खिलाओगे तो क्या दूसरे को निर्माल्य खिलाने मे तुमको पुण्य मिलेगा? इसीलिए मै आपको विधि बता रहा हूँ। बिल्कुल नहीं घबराओ। उससे पहले ही सब विधियाँ उससे पूछ लेना–भैया! आवश्यक नही कि महाराज यह लेगे, इसके बाद इसका क्या होगा? तो वह स्वय कह देगा, कि भैया! हम तो देकर जा रहे है आप इनका उपयोग कर लेना। इस प्रकार उसमे दोष नही है।

भो ज्ञानी! सचित्त पदार्थ पर रखकर देना या कच्चे पानी आदि से बर्तन धो लिया, और उस पर कोई भोजन सामग्री रख ली और दे दी अथवा स्वय कच्चे पानी से हाथ धोकर आ गये और सामग्री तुरन्त उठा ली ऐसा करना दोष है। इसी प्रकार तुरन्त ही आपने कच्चे पानी से बर्तन को धोया और बटलोई पर रख दिया, तुम्हारी पूरी सामग्री अशुद्ध हो चुकी है। कालस्यातिक्रमण भी बहुत बडा दोष है कि बिठा लो महाराज को, अपन दूध थोडा ठडा कर ले। अहो! एक कायोत्सर्ग–प्रमाण साधु खडा रह सकता है इसके बाद भी यदि उनकी अजुली पर तुमने कुछ नही रखा, तो वह सहज–भाव से अजुली छोड देगे। वहाँ तुम्हारे सामने जो शुद्ध वस्तु है उसे दे दो, लेकिन ऐसा नही है कि रुक जाओ हमे शुद्धि कर लेने दो, फिर हम आपको देगे। चौके मे भी खाली रूप से एक कायोत्सर्ग–प्रमाण ही बैठ सकते है। प्राचीन काल मे जगलो से आते थे तो चाण्डाल के यहाँ भी प्रवेश हो जाता था तो अन्तराय आता था क्योकि आपके ऑगन तक तो महाराज बिना पडगाहे भी जा सकते हैं। आगम की विधि है, जहाँ तक जन–सामान्य जा सकते हैं वहाँ तक साधु जा सकते है। प्रश्नचिन्ह नही लगाना? नौका मे भी बैठ सकते हैं। ऐणिक नाम के मुनिराज को नौका मे बैठे–बैठे केवलज्ञान हुआ। यदि घुटनो के नीचे तक पानी है तो मुनिराज पानी मे भी जा सकते हैं। लेकिन वहाँ से जाकर सिद्ध–भक्ति आदि करके उसका प्रायश्चित करते हैं।

"तपो विधान"

चारित्रान्तर्भावात् तपोपि मोक्षागमागमे गदितम्।
अनिगूहितनिजवीर्यैस्तदपि निषेव्य समाहितस्वान्तै ।। १९७।।

अन्वयार्थ – आगमे = जैन आगम मे। चारित्रान्तर्भावात् = चारित्र के अतर्वर्ती होने से। तप अपि = तप भी। मोक्षागम् = मोक्ष का अग। गदितम् = कहा गया है। इसलिये अनिगूहितनिजवीर्यै = अपने पराक्रम को नहीं छिपाने वाले तथा। समाहितस्वान्तै = सावधान चित्तवाले पुरुषो के द्वारा। तदपि निषेव्य = वह तप भी सेवन करने योग्य है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। १०३।।

मनीषियो! अन्तिम तीर्थेश वर्धमान स्वामी की पावन–पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। भगवन् अमृतचद्र स्वामी ने अनुपम–अलौकिक सूत्र प्रदान करके इस ससार मे आत्मार्थियो का परम कल्याण किया है। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं कि जीवन मे वैभव का मिल जाना तन का मिल जाना तो सहज है परन्तु तन और धन के मिलने के उपरान्त मन का परिणमन सयमित होना बहुत दुर्लभ है। विभूति का मिलना तो मिथ्या दृष्टि को भी होता है, सुन्दर शरीर तो बहुत सारे जीवो का है पर पूछ लेना मखमली इन्द्रगोप कीडे से कि तूने ऐसे कौन से कर्म का आस्रव किया जिससे इतना सुन्दर शरीर तुझको मिला। वह कह देगा–मैं वही भोगी–रागी हूँ जो वस्त्रो से बाहर नहीं उतरा और वस्त्रो से उतरा तो वासना मे लिपट कर इतना तन्मय हो गया कि वैभव को ही सर्वस्य मान लिया आत्मानद को भूल गया, परमानद को भूल गया। 'चारित्र खलु धम्मो' सूत्र को तो शून्य कर दिया चारित्र पर मेरी दृष्टि ही नही पडी। उस समय मैंने स्पर्शन इन्द्रिय को ढकने के पीछे, शरीर को ढकने के पीछे पता नही कितने कोशो के कोशिकाओ का घात कर दिया उसका परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है।

भो ज्ञानी! यह जैन दर्शन है, जो पाप नहीं कर रहा वह तो पूजा का पात्र है। ध्यान रखना, दुनिया के सतो की आरती उतर रही होगी, उन्हे मालाएँ चढाई जा रही होगी लेकिन अष्ट द्रव्य से पूजा केवल दिगम्बर आम्नाय मे ही की जाती है, क्योकि पचपरमेष्ठी को भगवान के स्थान पर रखा है इसलिए दया का पात्र भगवान नहीं पापी होता है, भगवान तो पूजा का पात्र होता है। पूज्यपाद

स्वामी कह रहे हैं जिससे आत्मा पवित्र हो वही पुण्य है। आत्मा की पवित्रता रत्नत्रय धर्म से है। अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं सुनो, अणु–अणु की बातें तो हो रही हैं अब महा की चर्चा करो, सकल सयम महाव्रत कहा जाता है। जिन व्रतो को महापुरुष धारण करते हैं उन व्रतो का नाम महाव्रत है। जिसको महत धारण करे उसका नाम महाव्रत है अथवा जिन व्रतो को धारण करने से आत्मा महान बन जाती है उसका नाम महाव्रत होता है। जिनके स्वीकार करने से सकल क्लेश मिट जाये, उस व्रत का नाम सकलव्रत होता है। सकल यानि टुकडे और सकल यानि सम्पूर्ण। आपके व्रत टुकडे थे अणु–अणु हो गये। जो ससार के टुकडे पुद्गलों के टुकड़े से पृथक करा दे और अखण्ड द्रव्य आत्मा के सर्वांग मे प्रवेश करा दे उसका नाम सकलव्रत होता है। इसलिये पडित दौलतराम को लिखना पडा–"मुनि सकलव्रति बडभागी" यदि विश्व मे कोई बडभागी है तो सकलव्रती है। पडित टोडरमलजी, दौलतराम जी, बनारसीदास जी इनकी अपेक्षा आप लोग भाग्यवान हो, उनको तो निर्ग्रंथो के दर्शन ही नहीं हुये, वह तो मात्र ग्रथो को निहारते रहे। परतु आज के श्रावक ग्रथ और निर्ग्रंथ दोनो के दर्शन से निहाल हो रहे हैं। जिस षट्खण्डागम ग्रथराज के दर्शन मूलबद्री मे टिकिट से होते थे आज जिनालय की अलमारी शोभायमान हो रही हैं।

भो ज्ञानी! चेहरा बाहरी आवरण है, मगर तू पुद्गल मे आनन्द मना रहा है। ध्यान रखो मोह से आपकी आँखे तो अधी हो गई और आपके राग से आपका विवेक बद हो गया, लेकिन उस सर्वज्ञ के ज्ञान मे सब कुछ नजर आ रहा है। छिपा लो, पर छिपाकर जा नही पाओगे। जाओगे कहाँ? दर्पण मे सुन्दर दिखने से चेहरा सुन्दर नहीं होता, दर्पण सुन्दर नही बनाता दर्पण असुन्दर भी नही बनाता जैसा होता है वैसा ही दिखता है, ऐसा ही केवली के ज्ञान मे झलकता है। अभी तुम कषाय से भी काले हो, शरीर से भी काले हो। इसलिये तुमसे तो कौआ श्रेष्ठ है क्योकि अन्दर–बाहर एक सा है पर मधुर भाषी कोयल अच्छी नहीं है, क्योंकि वह अपनी सतान को भी कौआ से पलवाती है, घोसले मे रख देती है। समझ जाओ, अपने जीवन के पाप परिणामो को दूसरो पर थोप देती है। आचार्य अमृतचद्र स्वामी कह रहे हैं– सकल महाव्रत काँच का शीश महल है। उस महल मे जिसका प्रवेश हो जाये, वही चमकता है। इसी प्रकार साधु स्वय चमकता है और उसके पास जो पहुँच जाता है, वह भी आनन्दित हो उठता है तथा एक काँच गिर जाये तो फीका लगने लगता है इसी तरह एक व्रत मे दोष लग जाये, तो साधु चर्या फीकी लगने लगती है। भो आत्मन्! आचार्य भगवन् कुदकुद स्वामी 'समयसार जी ग्रथ' मे कह रहे हैं कि–

वदणियमाणि धटता सीलण्णि, तहा तव च कुत्वत।
परमट्ठ बाहिरा जेण तेण, ते होंति अण्णाणी।। १६०।। (स सा)

तप को क्रिया–काण्ड कह कर निज आत्मा के शत्रु मत बन जाना। जो सयम–चारित्र

की अवहेलना कर रहा है, ज्ञान की अवहेलना कर रहा है, वह अपनी आत्मा का आत्मा से घात कर रहा है। ध्यान रखना, कभी भी ऐसा मत कह देना कि तप क्रियाकाण्ड है। हाँ, यदि वह तप परमार्थ शून्य है, तो क्रियाकाण्ड है, क्योकि जो व्रत शील–सयम को धारण करके भी परमार्थ से शून्य होते हैं, वे निर्वाण को प्राप्त नही कर पाते हैं। परमार्थ से शून्य होकर जो कुछ भी करोगे सब ससार का हेतु बनेगा। इसलिये जो तप को मोक्षमार्ग नहीं मानता वह जैन आगम से बाह्य यानि मिथ्यादृष्टी है। जो अपनी शक्ति को छिपा रहा है, तप नही कर रहा वह तो डाकू है। अहो! चारित्र से विशुद्धी बढती है और सयम–तप से चारित्र बढता है। सयम पालन के भाव बनाओ, ज्ञान कहीं नही प्राप्त करना पडेगा इसलिये ज्ञान का पुरुषार्थ मत करो, तुम सयम का पुरुषार्थ करो। सयम से विशुद्धी बनेगी क्षयोपशम–उपशम अपने आप स्वय बनता है सहज बनता है। मनीषियो! ग्रथो से निर्ग्रंथ के बारे मे जान तो सकते हो, पर ग्रथ निर्ग्रंथ नहीं बना पायेगे, निर्ग्रंथो के पास निर्ग्रंथ बन पाओगे। ध्यान रखना ज्ञान की किताब लिखना सरल है, **चारित्र पर पुस्तक लिखना सरल है, परन्तु चारित्र की पुस्तक बनकर जीना बहुत कठिन है।** चारित्र पर पडित आशाधर जी ने तो 'अनगारधर्मामृत' लिख दिया लेकिन अनगार नही बन पाये।

भो ज्ञानी! आज से ध्यान रखना कि सयोग मिले हैं–मिलेगे, पर इनको स्वभाव मान कर निज स्वभाव का घात मत करना। बिना निर्ग्रंथता प्राप्त किये वीतरागभाव का उदय नही होगा। यह पूर्णत सत्य है अत उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ आज से ही चालू कर देना। भगवन् आत्माओ! समय कम है, समय को समझो।
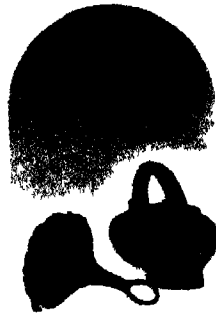
"तप के भेद"

अनशनमवमौदर्य विविक्तशय्यासन रसत्याग ।
कायक्लेशो वृत्ते. सख्या च निषेव्यमिति तपो बाह्यम्।। १९८।।

अन्वयार्थ अनशनम् = अनशन। अवमौदर्य = ऊनोदर। विविक्तशय्यासन = विविक्त शय्यासन। रसत्याग = रसपरित्याग। कायक्लेश = कायक्लेश। च = और। वृत्ते सख्या =वृत्ति की सख्या। इति =इस प्रकार बाह्य तप. =बाह्य तप निषेव्यम = सेवन करने योग्य है।

|| पुरुषार्थ देशना || १०४||

भो मनीषियो! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है कि जिन–शासन की प्रभावना के लिए और आत्मत्व की प्रभावना के लिए। निज वीर्य को न छिपा करके निज, स्वभाव को निर्मल करने के लिए तपाया जाता है, उसे तप कहा है। मुनियो के उत्तर गुणो मे और आचार्यो के मूलगुणो मे ये बारह प्रकार के तप होते हैं। जैसे मुनियो को अठ्ठाईस मूलगुण अनिवार्य हैं, वैसे ही आचार्य परमेष्ठी को बारह तप अनिवार्य हैं। पहले आचार नही बने, पहले विचार बनते हैं। जिसके विचार होते हैं, वह आचरण को स्वीकार करता है। विचारो की निर्मलता ही आचरण को जन्म देती है। आचरण ही आचार्यत्व को जन्म देता है। अत आचार्य महान नही वे विचार महान थे। निर्मल आचरण ने आचार्यत्व को प्रदान किया है। मुमुक्षु अपनी साधना मे तप को अग बना लेता है। यह मत सोचना कि कोई भी आचार्य इसलिए महान हैं क्योकि उन्होने बहुत सारी दीक्षा दी है। बहुत अच्छे ग्रथो का सृजन किया है, इसलिए महान हैं। दिगम्बर सतो को कभी शास्त्रो से नापना भी नही, प्रवचन की शैली से भी नापना नही, अन्यथा उन्हे बहुत ओछे कर देगे। बहुत सारी भीड लगाये हैं इससे भी वे महान नही। जैन दर्शन मे महान उन्हे कहा जाता है जिसने इच्छाओ का निरोध कर लिया है। जिसने दीक्षा दी, उसको लोग नही जानते, पर जिसने दीक्षा ली है वह इतना पहचानवान हो गया। मनीषियो! कालीदास के बाद सस्कृत की प्रौढ़ भाषा लिखी सिर्फ ज्ञानसागर मुनिराज ने, फिर भी वह ग्रथ से इतने महान नहीं बन पाए, लोग उनको नही पहचान पाए और जिसने ग्रथ नहीं लिखे 'एक युवा अवस्था मे' ग्रथी को छोड दिया, वह इतने महान बन गये–आचार्य विद्यासागर।

भो ज्ञानी! आचार्य को सूर्य की ही उपमा देना, चन्द्रमा की उपमा भूलकर भी मत देना। आचार्य को सूर्य ही कहना, क्योंकि जो ताप देता हो और स्वय शीतल रहता हो, उसका नाम सूर्य है। सूर्य शीतल है, परन्तु सूर्य की किरणे उष्ण हैं, चद्रमा की किरणे शीतल हैं। सूर्य एक विमान है। यदि यह विमान ऊष्ण होता, तो देव झुलस जाते। क्योकि इस विमान मे देव बैठा हुआ है। जैसे कि आपके हाथ मे टार्च होती है, आप हेलोजन भी ले लो लेकिन आपका हाथ गर्म नहीं होता है, परन्तु उसकी किरणे जो अनुभव कर रहा है, उसे गर्म लग रहा है। जब सूर्य चमकता है तो सारे अधोलोक से ऊपर के ब्रह्माण्ड मे (सारे विश्व मे) प्रकाश देता है मूल मे शीतल है। ऐसे ही आचार्य–परमेष्ठी शीतल होते हैं, पर शिष्य सम्पदा को कैसे सम्भालते हैं, इसलिए आपको उष्ण नजर आते हैं। अत उनको सूर्य कहा है। यदि अण्डे के ऊपर पक्षी ना बैठे तो क्या होगा वह जीव वृद्धि को प्राप्त नही होगा। वे आचार्य शिष्य के ऊपर न बैठे, तो भो ज्ञानी! शिष्य का शिष्यरूपी पक्षी उत्पन्न ही नही हो सकता। इस पक्षी को तो सिद्ध शिला पर उडना है। जिसने अपने सघ मे अनुशासन की ओज को खो दिया वह सघ चद्रमा की तरह चमकने वाला नही है। अनुशासन –हीनता के कारण सब खत्म हो जाता है । आचार्य परमेष्ठी के मूलगुणो मे तप भी है, बारह तपो पर दृष्टिपात करे। अमृतचन्द्र स्वामी के प्राचीन ग्रथो मे नाम देखना उन्हे अमृतचन्द्र सूरि लिखा होगा। सूरि यानी आचार्य। आचार्य को तप निश्चित कर दिया। क्यों निश्चित कर दिया है? कुछ करने को गर्माहट चाहिए । जिस दिन आपके शरीर की गर्मी चली जायेगी उस दिन आप शरीर मे नही रहोगे। सूर्य का तेज सूर्य का ज्ञान करा देता है इसी प्रकार शरीर की गर्मी इस देह मे चैतन्य का ज्ञान करा देती है । आचार्य का तेज भी तपस्या का ज्ञान करा देता है। ध्यान रखना, ललाट पर तिलक लगाना बन्द मत करना। जब तक तिलक लगाते सूखता रहेगा तब तक मुझे मालूम होगा कि मेरी जीवन - यात्रा चल रही है। जिस दिन तिलक सूखना बन्द हो जायेगा, उस दिन तुम समाधि लेकर बैठ जाना खडे मत होना। यदि ललाट का तिलक नही सूखा, तो समझना बस आज ही १-२ घण्टे मे तुम्हारी मृत्यु होने वाली है।

भो ज्ञानी! अब अनशन–स्वभाव पर दृष्टिपात करे। अनशन यानि चारो प्रकार के आहार–पानी का त्याग करना, फिर निजात्म तत्त्व का स्वाद लेना और जिनेन्द्र की वाणी का पान करना। बस आचार्य परमेष्ठी यही तो करते हैं कि महीने–महीने उपवास कर लिये घनघोर तप कर लिया, फिर भी आवश्यको मे शिथिलता नहीं बरत रहे। वे शक्ति के लिए आत्म तेज के विकास के लिए, निर्मल स्वास्थ्य के लिए और राग की परिणति के विनाश के लिए अनशन नाम का तप किया करते हैं। जहाँ स्त्री, पुरुष, नपुसक, पशु आदि का गमनागमन न हो, ऐसे शून्य स्थान पर ब्रह्मचर्य की रक्षा के हेतु, वह निर्ग्रंथ योगी एक करवट से अल्प विश्राम करते हैं। रसपरित्याग नाम का तप कह रहा है कि वे षटरस का भोजन नही करते हैं। इन्द्रियो की चचलता के निरोध के लिए

जितना शरीर में आवश्यकता है उतना रस लेना। भो ज्ञानी! तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हें सबकुछ क्यो लेना पडता है? क्योंकि तुम अपने जीवन का 'सबकुछ' रोज खो देते हो। उनके पास 'कुछ' है उसका क्या होगा? उस 'कुछ' की रक्षा के लिए तुम्हारा सबकुछ नहीं लेते हैं। उनको जितना चाहिए उतना ले लेते हैं, अन्यथा ब्रह्म की रक्षा नहीं होगी। इसीलिए षट्रस के त्याग मे कोई न कोई रस का त्याग करके चर्या करते हैं। कायक्लेश यानि शरीर को कष्ट देना, क्योकि सल्लेखना के काल मे कोई तुम्हारी रक्षा करने वाला नहीं मिलेगा, उसमे परिणाम कलुषित होगे। इसीलिए आचार्य भगवन्तो ने कह दिया कि तुम शरीर को कष्टसहिष्णु बना दो, दुखो से भावित करो और दुखो से भावित करके चलोगे, तो दुख आने पर तुम दुखित नही होगे। जिसने अपने शरीर को सुखिया बना लिया और जरा–सा दुख आयेगा तो उनको वे यादे आयेगी। भो ज्ञानी! अपने जीवन को पहले से दुखो से भावित करके चलो। "वृत्ति परिसख्यान' यानि नियम लेकर निकलना। आखडी जो मन मे आकर खडी हो गई वो आखडी। राग–द्वेष की निवृत्ति के लिए भाग्य की परीक्षा के लिए और भोजन से निर्ममत्व–भाव रखने के लिए मुनि–महाराज वृत–परिसख्यान नियम लेकर निकलते हैं कि अमुक गली अमुक मोहल्ला, यहॉ तक भी नियम हो सकता है कि अमुक दाता आहार देगा तो आहार लेगे। मालूम चला कि वह दाता विदिशा के बाहर था, तो उपवास कर लिया। इस प्रकार से छ प्रकार का तप नित्य ही सेवन करने योग्य है। यह भी नियम होता है कि एक गृह प्रवेश करेगे और उस घर मे प्रवेश करने के बाद कोई विघ्न आ गया तो उपवास। माना कि उस घर से किसी कारणवश निकलना पडा तो ठीक है नियम है कि आज तो मैं एक घर मे ही प्रवेश करूँगा दूसरे गृह मे नही जाऊँगा। ठीक है, लाभान्तराय हो गया, अलाभ हो गया। इस प्रकार छ प्रकार के बहिरग तप है। आचार्य परमेष्ठी ऐसे तपो को तपते हैं अपनी आत्मा को जाज्वल्यमान करते हैं।

मनीषियो! ध्यान रखना कुछ लोगो के मन मे प्रश्न आ रहे होगे कि जन्मजयती तो ठीक है पर सयम दिवस भी मनाना चाहिए। जन्मदिन तो रागात्मक है और पचम काल मे जन्म लेने वाले जीव सभी जन्म से मिथ्यात्व के साथ आते है। इसीलिए मुनियो को, आचार्यो को तो जन्मजयती कदापि नही मनाना चाहिए। परन्तु आप उनकी इस जन्मजयती का उद्देश्य उनके उपकारो का उद्देश्य समझो कि उस आत्मा ने अपने दीक्षा दिवस पर एक योगी के रूप मे जन्म लिया है और उन्होने अपने जीवन को सस्कारो से सस्कारित किया है। इसीलिए हम उसे सयम के रूप मे ही निहारें और उनके गुणों पर ही दृष्टिपात करे, क्योकि यदि उस योगी का जन्म ही नही होता, तो आज सयम को धारण करने वाला कौन होता? आज के दिन इतना विशेष ध्यान रखना।'

"चमकना है तो तपो"

विनयो वैयावृत्त्य प्रायश्चित्त तथैव चोत्सर्ग·।
स्वाध्यायोऽथ ध्यान भवति निषेव्य तपोऽन्तरगमिति।। १९९।।

अन्वयार्थ विनय = विनय,वैयावृत्य = वैयावृत्य। प्रायश्चित = प्रायश्चित। तथैव च = और वैसे ही। उत्सर्ग = उत्सर्ग शरीर मे ममत्व का त्याग करना। स्वाध्याय= स्वाध्याय। अथ ध्यान = पश्चात् ध्यान। एकाग्र चित्त होकर आत्मा का ध्यान करना। इति = इस प्रकार। अन्तरगम् तप =अन्तरग तप निषेव्य = सेवन करने योग्य। भवति =होते हैं।

जिनपुगवप्रवचने मुनीश्वराणा यदुक्तमाचरणम्।
सुनिरूप्य निजा पदवी शक्ति च निषेव्यमेतदपि।। २००।।

अन्वयार्थ जिनपुगव प्रवचने = जिनेश्वर के सिद्धात मे। मुनीश्वराणा = मुनीश्वर अर्थात सकलव्रतियो का। यत् = जो। आचरणम् = आचरण। उक्तम् = कहा है, सो। एतत् = यह। अपि भी गृहस्थो को। निजा = अपनी। पदवीं = पदवी। च = और। शक्ति = शक्ति को। सुनिरूप्य = भले प्रकार विचार करके। निषेव्यम् = सेवन करने योग्य कहा है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ १०५॥

भो भव्यात्माओ! जो दूसरे की वस्तु को उठा रहा है उसे तो सब चोर कहते हैं, लेकिन जो निजात्मा की शक्ति को छुपा रहा है उसे जैनशासन मे चोर कहा जाता है। करने की सामर्थ्य रखता है, फिर भी सयम से विमुख है–ऐसे व्यक्ति के लिए भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं निज शक्ति को छिपा करके बैठा हुआ है। अहो! जबकि तृतीय नरक मे जाने की सामर्थ्य रखता है, तो आठवे स्वर्ग मे भी जाने की सामर्थ्य रखता है। पचमकाल मे लौकान्तिक देव भी तो बना जा सकता है। 'आचार्य कुदकुद स्वामी" ने (मोक्ष पाहुड) 'अष्टपाहुड" मे स्पष्ट लिखा है।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाए वि लहइ इदत्त।
लोयतियदेवत्त तत्थ चुआ णिव्वदि जति।। ७७।। (मो पा.)

अर्थात् आज भी जीव रत्नत्रय से शुद्ध होकर निर्मल धर्मध्यान को आराधित करके लोकान्तिक देव हो सकता है तथा फिर वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त करता है।

भो ज्ञानी! भगवान बनने की विद्या तो आज भी है। प्रथा जरूर बद हो गई है, लेकिन भगवान बनने की विद्या दूर नही हुई इसीलिए आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं की तप करो लेकिन अपनी निज की शक्ति को छिपाकर नही बैठ जाना। शक्ति को विराधना मे न लगाकर उसको साधना मे लगा दो, विराधना में लगाओगे, तो लोक निदा भी होगी, अपयश भी फैलेगा। जिसका वर्तमान मे ही जिस क्रिया से लोक–अपवाद हो रहा है उसके भविष्य का परिणाम क्या होगा जबकि साधना साध्य की सिद्धि है। क्योकि मुमुक्षु जीव विषयो के जजाल से अपने आप की रक्षा करना चाहता है। उसमे झुलसना नहीं चाहता है। अज्ञानी पतगे की भाति दीपक के सामने जा करके झुलस रहा है। वह तो असज्ञी है, चार इद्रिय है, पर आप तो सज्ञी पचेन्द्रिय हो, ज्ञानी हो। तुम विषयो के दीपक पर अपनी आयु को पूर्ण मत करो अन्यथा तुम्हारे युवा अवस्था के पख झुलस जाऐगे। फिर–वृद्ध अवस्था मे तुम उसी कीडे की भाति तडपोगे। बस यही वृद्ध–दशा है। जब तुम्हारे सारी कामनाओ, आशाओ का प्राण तो जीवित रहता है। परन्तु बल पौरुष के पख क्षीण हो जाते हैं। नौकर बात नही माने, सेवक बात नहीं माने, तो स्वामी को उतना कष्ट नहीं होता है। उससे कई गुनी वेदना पिता को पुत्र के व्यवहार से होती है। नौकर को तुमने वेतन दिया, पर सतान को जन्म देने के लिए तुमने तन दिया और तन ही नहीं, धर्म भी दे डाला। आज हालत यह हो रही है कि वृद्धो के आश्रम बन रहे हैं। अरे! अपने घर का ऐसा माहौल बना डालो कि घर ही आश्रम बन जाए। और नही तो किसी मुनि–सघ के सानिध्य में बैठकर अपनी सल्लेखना की दृष्टि बना लेना। भो ज्ञानी! आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि ग्रथ" मे आश्रम की चर्चा की है। उन्होने यति–सघ को ही आश्रम कहा है और निश्यचनय से निज स्वरूप मे लीन हो जाना ही निश्चय आश्रम है। पर ध्यान रखना आप भूल नही करना स्वतत्र बनके रहना लेकिन दर–दर पहुँचकर पडा मत बन जाना। किसी स्थान पर राग हो गया और सल्लेखना के काल मे विचार आ गये कि मेरी समाधि के बाद वहाँ की व्यवस्था कौन देखेगा या फिर कभी तूने शुभ आस्रव कर लिया और उस शुभास्रव के काल मे आर्त्तध्यान हो गया, तो वहीं का व्यतर बनना पडेगा। जिनवाणी मे लिखा है – धर्मस्थानो पर आराधना करो, साधना करो, पर उनका भी राग मत करो, क्योंकि स्थान मोक्षमार्ग नही है। स्थानो से मोक्ष नहीं बनता स्थानो के बढाने से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो गुणस्थानो की वृद्धि से होता है।

भो ज्ञानी! जैसे वृद्ध के लिए लाठी का सहारा है, वैसे ही आज की तपस्या तुम्हारे लिए मोक्ष का सहारा बन जाएगी। इसलिए मत सोचना कि मेरी आयु निकल गई। अभी भी तुम्हारे पास बहुत उपाय हैं। ससार मे चलने के लिए जीव नये–नये उपाय खोज लेता है। बाजार के दूध की राशन की डायरी है परतु जीवन की डायरी नहीं है। ओहो! सोचो ? जीवन की डायरी बना लो।

इतना तो कर दो कि अब इतनी उम्र तक कमाएगे उसके बाद कुछ नहीं करेगे।

भो ज्ञानी! अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि हमने आपको बहिरंग तपो का व्याख्यान कर दिया है। अब अतरग तपो की चर्चा सुनो। कैसे करेगे आप अतरग तप ? अदर मे बैठकर। और बहिरग क्यो करे? अतरग की सिद्धि के लिए। जैसे, बटलोई को तपाते हो, पर बटलोई के तपाने मात्र पर दृष्टि नहीं है। दृष्टि दूध पर है। उसी प्रकार मुमुक्षु जीव बहिरग तप करता जरूर है, लेकिन दृष्टि अतरग आत्म–दुग्ध को शुद्ध करने की होती है। यदि अतरग पर दृष्टि नहीं है, तो बहिरग तप कार्यकारी नही होगा। बटलोई के तपे बिना दुग्ध तपता भी तो नही, जब तक बहिरग शुद्धि नही होगी तब तक आत्मशुद्धि सभव नही है।

बाह्य तप परम–दुश्चरमाचरत्व माध्यात्मिकस्य तपस परिवृहणार्थम्।
ध्यान निरस्य कलुष्य–द्वय मुत्तरस्मिन् ध्यान–द्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने।। ८३। स्व स्तोत्र।।

यह सुनिश्चित है बहिरग तपस्या से मुनिराज तो बनते है, परतु गुणस्थान तभी बनता है जब बहिरग मे निर्ग्रंथ–भेष होता है तथा अतरग मे तप होता है। भो ज्ञानी! तप गृहस्थ के गौणरूप से और यतियो के प्रधान रूप से है। आपका तप अभ्यासरूप है तो यति का तप तपस्यारूप है। श्रावक कितनी ही तपस्या करे, लेकिन तपस्वी नही कहलाता। परन्तु साधु जब दीक्षा ले लेता है, उसी दिन से तपस्वी कहलाने लगता है। दीक्षा का नाम ही तप है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि विनय पहला तप है। जब तक कषाय–भाव समाप्त नहीं होगे, विनय–भाव नही होता है। इसलिए अतरग तप है विनय। सेवा के परिणाम तभी आते है जब अतरग मे भक्ति भाव होता है। इसलिए–निरपेक्ष भाव से सेवा करना वह वैयावृत्ति अतरग तप मे रखा है क्योकि अहकारी किसी की सेवा नही कर सकता है। चित्त की शुद्धि के लिए तो स्वय ही गुरु चरणो मे दड लेने के लिए जाया जाता है। प्रभु मुझे शुद्ध करो। जिसके आत्मा मे विशुद्धता नही है उसके प्रायश्चित लेने के परिणाम त्रैकालिक नही होते है। निज चित्त की शुद्धि जिससे हो, उसका नाम प्रायश्चित है। कायोत्सर्ग का अर्थ है–शरीर से ममत्व छोड देना। जैसे भगवान बाहुबली स्वामी पर सॉप चढ गये बेले लग गई बामि बन गई, घोसले कान मे बन गये लेकिन प्रभु निज स्वभाव से नही डिगे। व्यत्सर्ग लोक मे जितनी पद्वियॉ है वे सभी पद्वियॉ मोक्षमार्ग मे बाधक हैं। अत मे ये सब पद छोडना पडेगे तभी सुपद की प्राप्ति होगी। व्युत्सर्ग तप कहलाता है निज आत्मस्वभाव की लीनता। स्वय के अध याय का अध्ययन जिसमे हो उसका नाम स्वाध्याय है। सयम के निर्विकार पालन के लिए और स्व मे लीन होने के लिए सुसमय का अध्ययन करना चाहिए। यानि जिन–आगम का ही अध्ययन होना चाहिए। श्रृद्धाए डिगते देर नही लगती, इसलिए प्रारभ मे जिन–आगम का ही अध्ययन होना चाहिए। चित्त के विच्छेद का त्याग हो जाना–इसका नाम ध्यान है। चित्त की विकल्पता अभाव जहाँ है, उसका नाम ध्यान है। मनीषियो! आचार्य भगवन् कह रहे हैं अतरग तपो में ध्यान ही तो सब कुछ है और ध्यान नही है तो आप लोग यहाँ आ नहीं सकते थे। ध्यान से आना, ध्यान से जाना। पर ध्यान मे आना और ध्यान मे रहना और ध्यान रखना। आज ध्यान की चर्चा की है तीर्थंकर देव ने कहा है – अपना पद और अपनी शक्ति को देखकर ध्यान कर लेना चाहिए। भो ज्ञानी ! तुम दो कदम तो बढ जाना।

"षट् आवश्यक व तीन गुप्तियों का स्वरूप"

इदमावश्यकषट्क समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमण।
प्रत्याख्यान वपुषो व्युत्सर्गश्चेति कर्त्तव्यम्।। २०१ ।।

अन्वयार्थ · समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमण = समता, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण। प्रत्याख्यान = प्रत्याख्यान (आगामी आस्त्रवों का विरोध)। च = और। वपुषो व्युत्सर्ग = कायोत्सर्ग (शरीर का ममत्व छोडकर ध्यान करना)। इति इदम्= इस प्रकार ये आवश्यकषट्क = छह आवश्यक। कर्त्तव्यम् = करना चाहिये।

सम्यग्दण्डो वपुष सम्यग्दण्डस्तथा च वचनस्य।
मनस सम्यग्दण्डो गुप्तीना त्रितयमवगम्यम्।। २०२ ।।

अन्वयार्थ वपुष = शरीर को। सम्यग्दण्ड = भले प्रकार अर्थात् शास्त्रोक्त विधि से वश करना। तथा वचनस्य = तथा वचन का। सम्यग्दण्ड च = भले प्रकार अवरोधन करना और। मनस =मन का। सम्यग्दण्ड = सम्यक्तया निरोधन करना, इस प्रकार। गुप्तीना त्रितयम = तीन गुप्तियो को। अवगम्यम् = जानना चाहिये।

|| पुरुषार्थ देशना || १०६ ||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने बहुत ही सहज कथन किया है कि जीवन मे आत्मा को उज्ज्वल बनाना है तो अतरग–बहिरग तपो को तपो। भो ज्ञानी! यदि तूने निज–पर विवेक नही रखा, आत्म बोध नही हुआ, तो एक क्षण के कषायभाव पूरी साधना की फसल को नष्ट कर देगे। शुभ परिणाम करोगे तो स्वर्ग आदि जाओगे और अशुभ परिणाम करोगे तो नरक आदि जाओगे। शुभ–अशुभ परिणामो से रहित अवस्था जब तुम्हारी बनेगी तब कहीं तुम सिद्ध बनोगे। अत मुमुक्षु जीव तपस्या करने के लिए भी तपस्या नहीं करता। भगवान महावीर स्वामी ने बारह वर्ष तप किया, लेकिन उन्होने तपस्वी बनने के लिए तप नहीं किया अपितु परमात्मा बनने के लिए किया था, क्योकि तपस्या किये बिना परमात्मा बन नहीं सकते थे।

भो ज्ञानी आत्माओ! आचार्य कुदकुंद स्वामी ने 'समयसार जी' मे बडा सुदर उदाहरण दिया है–

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं बज्झदे पुणो विटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि।। १७५।। (स सा)

वृक्ष से पका फल जब जमीन पर गिरता है तो पुन वृक्ष पर नहीं लगता है। तुम्हारा यह आयु–कर्म पक गया है, अत पुन यह आयु तुम्हें मिलने वाली नहीं है। वह कर्म तो पक कर झर गया, वे कर्म–वर्गणाएँ पुन आत्मा मे लगने वाली नहीं हैं। ऐसे ही तपस्या के द्वारा जब तपस्वी कर्मों को पका डालता है, खिरा देता है, तो फिर वे परमेश्वर ही बन जाते हैं। इसलिए तपस्या करो। परतु ध्यान रखना, दुकान पर रात्रि हो गयी, तो एक बार ही खा पाये, वह तपस्या नहीं कहलायेगी। तपस्या तब कहलायेगी, जब आप मन मे विचार कर लेगे कि आज तपस्या करना है कि एक ही बार भोजन करेगे तो तपस्या है, क्योकि हमारे आगम मे आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है कि जो बुद्धि पूर्वक स्वीकार किया जाता है, उसका नाम ही व्रत है तपस्या है। सकल्प के अभाव मे तपस्या नही कहलाती है। नहीं मिला तो सतोष है, लेकिन सकल्प की पूर्वक गयी ही तपस्या मानी गई है।

भो भव्यात्माओ! नियम और व्रत मे बहुत अतर है। जो भी व्रत होगा नियम से होगा पर व्रत होना नियम नहीं है। अष्टमी थी और अचानक कोई ऐसी व्यवस्था फँस गई कि दिनभर भोजन नही किया। हमने यह सोच लिया कि आज अष्टमी है, आज नही मिलेगा तो काम चलेगा। तुम्हारे सतोष के लिए धन्यवाद लेकिन उपवास नही कहलाता, तपस्या नहीं कहलायेगी। जब देख लिया था कि तो आज भोजन प्राप्ति की सभावना नहीं है, तो कायोत्सर्ग कर लेना था। क्योकि कायोत्सर्ग के अभाव मे व्रत नहीं बनते।

भो ज्ञानी! बहुत सारे दिन ऐसे निकल जाते हैं कि भोजन नही मिलता और आपका तपस्या मे भी नाम नही आता है। ऐसे समय मे कायोत्सर्ग करने से लाभ यह होगा कि रात्रि–भोजन का चक्र बद हो जायेगा। कई लोग बहिरग तपो मे ध्यान न देकर, शाम को एक बार स्वाध्याय कर लेते हैं। वे सोचते हैं कि तपस्या हो गई। भो ज्ञानी! स्वाध्याय का अर्थ मात्र ग्रथ का वाचन नही है। जिस दिन स्वाध्याय हो जायेगा उस दिन आप निर्ग्रंथ ही हो जाओगे। क्योकि निज का अध्याय, निज का वाचन, निज की पृच्छना, निज का उपदेश, निज की आम्नाय का नाम स्वाध्याय है। वास्तव मे स्वाध्याय जिस दिन हो जायेगी, नियमसार–समयसार की भाषा मे उस दिन तो शुद्ध–उपयोग ही होगा, यही निश्चय–स्वाध्याय है।

भो ज्ञानी! व्रत और तप मे भी भेद है और कथंचित अभेद है। जब व्रत को स्वीकार करता है, तभी तप हो जाता है तथा व्रतो को धारण करने के बाद भी तप करता है, इसलिए अतर आ जाता है। जब दीक्षा ली, तप स्वीकार कर लिया, तो तप–कल्याणक हो गया। अहो! जो व्रत लिया जाता है, उसमे कुछ किया नहीं जाता। व्रत लिया नही जाता, वह तो तप करने कि प्रतिज्ञा है। जो किया जाता है, उसका नाम तप होता है। व्रत जो लेने जा रहे हो, वह तप लेने गये थे। आप जो व्रत पालन कर रहे हो, वह आप तपस्या कर रहे हो। मोक्षमार्ग मे सम्यक्दृष्टि जीव के तप को ही तप कहा है। मिथ्यादृष्टि जीव की तपस्या को तपस्या स्वीकार नहीं किया है। वह बाल–तप है। उसे बाल–तप ही कहना, कुतप नही कहना। क्योकि कुलिग मे तप धारण करे तो कुतप है और मिथ्यात्व के साथ सम्यक्–तप करे तो बालतप है अन्यथा ग्रैवयक नही जा पायेगा।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवन कह रहे हैं–यतियो के षट्–आवश्यक कर्त्तव्य होते हैं। (१) समता–समता सामायिक साम्यभाव यही श्रमण का प्रतीक है। श्रमण की पहचान नग्न भेष से नही, समता भाव से है। यदि नग्न भेष से श्रमण की पहचान करते, तो लोक मे जितने तिर्यंच हैं वे सभी श्रमण हो जाते। (२) स्तव –चौबीस तीर्थंकर भगवतो का एक साथ वदन करना 'स्तव' कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति पढा–लिखा नही हो तो कैसे मूल–गुणो का पालन करेगा, कैसे आवश्यको का पालन करेगा? अरे! तिर्यंच भी बारह व्रतो का पालन करता है, जबकि वह मनुष्य नही है। अरे भाई! घबराना मत, तुमसे हाथ जोडते तो बनता है। (३) वदना–भगवान महावीर स्वामी की जय हो, हे प्रभु! मेरे कर्म का क्षय हो दुखो का क्षय हो। बोधि की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो। हे प्रभु जिनेन्द्र! आपके गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। यह वदना है। जैसे चौबीस भगवतो ने चतुष्टय को प्राप्त किया है वैसे चतुष्टय की प्राप्ति मुझे हो। आप चौबीसो भगवान को मेरा त्रिकाल नमोस्तु, यह 'स्तवन' हो गया। (४) प्रतिक्रमण–मेरे दोष मिथ्या हो, इसका नाम 'प्रतिक्रमण' है। हे नाथ! धिक्कार हो मुझ पापी को, कि ऐसे निर्मल भेष को भी प्राप्त करके मेरे भाव बिगड गये। हे भगवन्! मेरे दुष्ट कर्म मिथ्या हो जाएँ। प्रतिक्रमण मे दोषो को कहने से वे मिथ्या नही हुए, पर कहने के भाव जो तेरे मन मे उत्पन्न हुए हैं, उन परिणामो की विशुद्धि से मिथ्या हुए हैं। परतु जिसके मन मे कहने के भाव नही आ रहे है, तो उसका तो प्रतिक्रमण होता ही नही, वह भाव प्रतिक्रमण नही है। अत द्रव्य प्रतिक्रमण तो करते ही रहना। कम–से–कम अशुभ से तो बचे रहोगे लेकिन वास्तविक प्रतिक्रमण, भाव –प्रतिक्रमण ही है। भाव–वदना ही वदना है। भाव–स्तवन ही, स्तवन है। 'तस्य मिच्छामि मे दुक्खड' बोल दिया। (५) प्रत्याख्यान– अब मैं ऐसा अपराध नहीं करूँगा। पापो का त्याग कर देना 'प्रत्याख्यान' है। (६) कायोत्सर्ग या व्युत्सर्ग–शरीर से ममत्व का त्याग कर देना, उपाधियो–व्याधियो से बचकर रहना, 'व्युत्सर्ग' है। यह दो प्रकार का है, अतरग और बहिरग। बाहर मे उपलब्धियाँ और अतरग मे कषाय

भाव को जब तक नहीं छोड रहे हो, तब तक घोर तपस्या कर लेना, हजारो माला फेर लेना परतु यदि परिणामो मे कलुषता है तो माला काम मे नहीं आती। यदि परिणाम निर्मल हैं, तो एक माला ही तुमको मालामाल कर देगी। परतु माला छोड मत देना, यह सब आवश्यक है। भो ज्ञानी! यहाँ स्वाध्याय नाम कहीं नहीं आया। पडित दौलतराम जी ने 'छहढाला' मे आवश्यको मे स्वाध्याय को रखा है। आचार्यकार्तिकेय स्वामी, आचार्यअमृतचन्द्र स्वामी ने स्वाध्याय को आवश्यक मे नहीं रखा। परतु आचार्यअमृतचन्द्र स्वामी ने 'प्रत्याख्यान रखा है, क्योकि स्वाध्याय का फल प्रत्याख्यान है। समीचीन रूप से शरीर को दडित करो, यानि स्थिर करो वचन को और मन को और मन को समीचीन रूप से वश करना—यह तीन गुप्तिया हैं। आचार्य कुदकुद स्वामी ने ' रयणसार ग्रथ'' मे एक बात गजब की लिखी है—

हथ पाए मुडाओ, मण—वचन—काए मुडाओ।
पच्छा सिर मुडाओ, शिव गई पहाणो होदी।। (र सा)

अहो मुमुक्षु आत्माओ! पहले हाथ—पैर का मुडन करो फिर मन वचन काय का मुडन करो इसके बाद तुम सिर का मुडन करना तो शिव गति के पथिक हो जाओगे। हाथ—पैर का मुडन कराने से तात्पर्य शरीर की इद्रियो की चचलता को समाप्त करो और मन वचन, काय के मुडन का तात्पर्य मन के, वचन के शरीर के विकारी भावो का मुडन करो, त्याग करो, फिर तुम सिर का मुडन करोगे तो शिव—गति के स्वामी बन जाओगे। यदि सिर का मुडन कर लिया कितु हाथ—पैर अर्थात् मन—कषाय का मुडन हुआ नहीं, तो भो ज्ञानी! ससार के पथिक बन जाओगे। इसलिए भगवान कह रहे हैं कि जब भी तुम मुनिराज बनना तो ऐसी ही वृत्ति करना।

"पाँच समितियाँ"

सम्यग्गमनागमन सम्यग्भाषा तथैषणा सम्यक्।
सम्यग्ग्रहनिक्षेपौ व्युत्सर्ग. सम्यगिति समिति ।।२०३।।

अन्वयार्थ . सम्यग्गमनागमन = सावधान होकर भले प्रकार गमन और आगमन। सम्यग्भाषा =उत्तम हितमितरूप वचन। सम्यक् एषणा = योग्य आहार का ग्रहण। सम्यग्ग्रहनिक्षेपौ = पदार्थ का यत्नपूर्वक ग्रहण और यत्नपूर्वक क्षेपण। तथा = और। सम्यग्व्युत्सर्ग = प्रासुक भूमि देखकर मलमूत्रादिक त्यागना। इति = इस प्रकार ये पॉच। समिति = समितियॉ हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || १०७ ||

हे भव्यात्माओ! भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है कि विश्व मे यदि कोई महिमा है, तो सस्कारो की है। एक पाषाण की प्रतिमा को परमात्मा बनाने की यदि कोई विधि है तो उसका नाम सस्कार है। एक पत्थर की प्रतिमा भगवान के रूप मे पुजना प्रारभ हो जाती है और एक सामान्य मनुष्य गुरु के रूप मे दिखना प्रारभ हो जाता है। यह सस्कारो की ही महिमा है। पत्थर की प्रतिमा मे तो सिर्फ सूरि मत्र देने से उसकी पूजा प्रारभ हो जाती है, लेकिन परमेष्ठी बनने के लिए सस्कार देने के साथ साधना भी की जाती है। साधना न की हो, मात्र सस्कार दिये हो उसे साधु नही कहा जाता। ध्यान रखना, अरहत के बिम्ब मे अरहत के गुणो का आरोपण तो किया ही जाता है, लेकिन उसके पूर्व उसमे निर्ग्रंथ के गुणो का आरोपण दीक्षा कल्याणक के दिन होता है। अरहत के गुणो का आरोपण तो मात्र केवल्यज्ञान कल्याणक के दिन होता है।

भो ज्ञानी! जब तक निर्ग्रंथ के गुणो का आरोपण नहीं है तब तक निर्गन्थ बनेगे कैसे? जब तक बालो के प्रति भाव नही गये, तब तक बाल उखाडने से कुछ भी होने वाला नहीं। बाल उखड चुके और परिणाम नहीं उतरे तो निर्ग्रंथ नहीं।

पुव्व जो पंचिंदिय तणुमणवचि हत्थ· पाय–मुंडाओ।
पच्छा सिर मुडाओ सिवगदिपहणायगो होदि।। ७६।। (स सा)

पहले मन का मुण्डन करो। जिसने मन का मुण्डन कर दिया, वही सिर मुडवाने का पात्र है। इसीलिए भगवती आराधना के मूलाचरण प्रकरण मे दस प्रकार के मुडन का कथन किया है।

मुण्ड यानि वशीकरण। मन का मुण्डन यानि मन को वश मे करो, वचन को वश मे करो, शरीर को वश मे करो, इद्रियों को वश मे करो और हाथ–पैर के मुण्डन का तात्पर्य चचलता का त्याग करो। इस प्रकार से तीन गुप्तियो का कथन किया है। पर जब तक ये गुप्तियाँ तुम्हारे पास नहीं हैं, तब तक मोक्ष मार्ग मे तुम्हारा प्रवेश भी सभव नहीं है। अहो! यहाँ सस्कारो की चर्चा कर रहे हैं, अनुभव करके देखना एक क्षण का कुसस्कार अथवा एक समय का कुसस्कार लोगो की दृष्टि मे आये न आये, लेकिन तुम्हारे परिणामो को उथल–पुथल करके चला जाता है।

भो ज्ञानी! तुम्हे पाप से डर नहीं लग रहा। मगर पापी कहलाने से डर लग रहा है। बहुत सारे लोग यहाँ भी ऐसे बैठे होगे जो वास्तव मे पापी तो हैं पर पापी कहलाने से डरते हैं और पाप करने से नही डरते। जो पाप से डरते हैं वे तो मुमुक्षु हैं, जो मात्र पापी कहलाने से डरते हैं, उनका अनन्त ससार बध चुका है। क्योकि एक ओर पाप भी चल रहा है और दूसरी ओर मायाचारी भी चल रही है।

भो मनीषियो! पुण्य के योग मे कुछ भी कर डालो, लेकिन ध्यान–रखो पाप का योग नियम से सामने आयेगा और तुम्हारी परिणति ही तुमको दण्डित कर देगी। चाहे तुम कही भी चले जाना चाहे समवशरण मे बैठ कर आप अपने भव को तथा वर्तमान की भावनाओ को देख लेना। जिस क्षेत्र मे प्राणी मात्र के लिए समान आश्रय मिलता हो, प्राणी मात्र के दुखो का विलोप होता हो उस सभा का नाम समवशरण सभा है। जहॉ तिर्यच, देव, और मनुष्य तीन गति के जीव एक साथ बैठते हैं पर नारकी नहीं आ सकता क्योकि उसका ऐसा तीव्र कर्म है। अहो! तीन गति के जीव तो समवशरण मे आ जाते हैं, चौथी गति का नही आ पाता, क्योकि जो समवशरण मे साम्य भाव से नही बैठ पाये, समझ लेना वह चौथी गति का बध कर चुका है। देखो, तीर्थ–भूमि और सिद्ध भूमि मे पहुच करके भी कोई पाप का सचय करले परतु पाप धोने का एक मात्र स्थान मान–स्तभ है। जिसने मानस्तभ के पास भी पाप का बध कर लिया उसको धोने के लिए कोई स्थान नहीं। उसको तो मात्र निगोद जाना है। चौबीस तीर्थकर के समवशरण मे कोई समवशरण ऐसा नही जो मानस्तभ से शून्य हो। जितने पापी, अहकारी हो वे मानस्तभ के सामने निहारे और देख ले हम कितने ऊचे हैं, तुमसे ऊचे वे जिनेन्द्र देव विराजे हैं। जिसने मानस्तभ के सामने मान कर लिया हो, उसके मान–गलन का स्थान कोई बचा ही नही। इद्रभूति गौतम जैसे अहकारी का मान मानस्तभ के नीचे गल गया था।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि यदि सयम की ओर बढना चाहते हो तो निर्मल सस्कार कर लेना और मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति को छोड देना। जो सरल स्वभावी होते हैं वे आगम, पुराण नहीं पढते, किन्तु उनके ऊपर आगम, पुराण लिखे जाते हैं। तीर्थंकर किसी भी विद्यालय मे पढने, नही जाते, किसी अध्यापक को अपना गुरु नहीं बनाते। वे स्वय से स्वय पढे

होते हैं, इसलिए वे स्वय–भू हो जाते हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं यदि गुप्तियो का पालन करने में असमर्थता हो तो कम से कम समितियो का पालन तो करते जाना और साधु बनने के पूर्व जो श्रावक चर्या का कथन किया है उसका विशेष ध्यान रखना।

भो ज्ञानी! जो चारित्र की प्रवृत्ति मे सावध रूप हो, उसका नाम साधु है। आहार नही लेना राजमार्ग है, आहार लेना अपवाद है। उस अपवाद मार्ग को जो समीचीन रूप से पालन कर रहा हो उसका नाम साधु है। मल–मूत्र का क्षेपण अपवाद मार्ग है, उसे समीचीन रूप से जो कर रहा हो उसका नाम साधु है। जितना–जितना यत्नाचार है, उतना–उतना साधु–भाव है। जहॉ–जहाँ अयत्नाचार है वहॉ– वहॉ असाधु–भाव है। चार हाथ भूमि को निहार कर चलना, कहीं किसी जीव पर पग न पड जाये ऐसा साधु–भाव है। नमोस्तु शासन कहता है कि घास–फूल को तो तुम छुओ भी मत, क्योकि हिसा हो जायेगी। जब गमन करे तो वनस्पति से कम–से–कम एक बालिश्त दूर रहे, क्योकि उसमे नाजुक जीव हैं, तुम्हारे शरीर की ऊष्ण वर्गणाओ से, उनको पीडा होगी। उन पर पैर रखा तो महापाप हो जायेगा। अत वह दूर से चलते हैं–यह ईर्या–समिति है। ऐसे स्थान पर गमन नही करते जहा पर फिसलने की सभावना हो अथवा अप्रासुक भूमि हो। सूर्य के प्रकाश मे जहॉ से वाहन आदि निकल चुके हो, लोगो का सचार हो चुका हो, ऐसे मार्ग मे ही यति गमन करते है। मुनिराज प्रासुक भूमि मे ही गमन करेगे, अप्रासुक भूमि मे गमन नही करेगे। गमनागमन सम्यक् समीचीन हो। देव वदना, गुरु वदना तीर्थ वदना, स्वाध्याय हेतु अथवा कोई आवश्यक कर्त्तव्य के लिए वे गमन करते हैं। व्यर्थ का गमनागमन का उन्हे निषेध है।

भो ज्ञानी! घूमो लेकिन निज भाव मे घूमना बाहर घूमने की आवश्यकता नही है। हमारी वाणी मे मृदुता हो सयमित हो सीमित हो हित–मित हो और लाघवभाव से युक्त हो। जिनके 'वचन मुख चन्दतै अमृत झरे' । वाणी सयम मे, प्राणी सयम भी झलकना जरूरी है। कोई कितना ही प्राणी–सयम का पालक हो पर वाणी मे पत्थर से पटकता हो तो तुम प्राणी की रक्षा क्या करोगे? तुमने हमारे ह्रदय को ही विदीर्ण कर दिया। ध्यान रखना, प्रत्येक आत्मा मे भगवान आत्मा को निहारो। हे भगवन! मेरे द्वारा किसी का अन्त करण विदीर्ण न हो। मर्म–भेदी शब्दो का उपयोग मत करो, यह भाषा–समिति है। छयालीस दोषो को टालकर निर्दोष वृत्ति करना–योगी की एषणा समिति होती है। सम्यक्–रूप से ग्रहण करना और रखना–यतियो की आदान–निक्षेपण समिति है अर्थात् पिच्छी से मार्जन करके ही स्वीकार करना, पिच्छी से मार्जन करके रखना। पहले पिच्छी चलाने का तरीका सीख लेना, फिर पिच्छी उठाने का प्रयास करना। मलमूत्र आदि का क्षेपण निर्जन्तुक एकान्त स्थान मे करना व्युत्सर्ग समिति है। इस प्रकार से यतियो की पॉच समितिया होती है।

"सरल बनो, सहज बनो"

धर्म सेव्य क्षान्तिर्मृदुत्वमृजुताच शौचमथ सत्यम् ।।
आकिचन्य ब्रह्म त्यागश्च तपश्च सयमश्चेति ।।२०४ ।।

अन्वयार्थ क्षान्ति मृदुत्वम् = क्षमा, मृदुपना अर्थात् मार्दव। ऋजुता शौचम् =सरलपना अर्थात् आर्जव, शौच। अथ सत्यम् च आकिचन्य = पश्चात् सत्य तथा आकिचन। ब्रह्म = ब्रह्मचर्य। च त्याग = और त्याग। च तप = और तप। च = और। सयम = सयम। इति धर्म = इस प्रकार दश प्रकार का धर्म। सेव्य = सेवन करने के योग्य है।

अध्रुवमशरणमेकत्वमन्यताऽशौचमास्रवो जन्म ।
लोकवृषबोधिसवरनिर्जरा सततमनुप्रेक्ष्या ।। २०५ ।।

अन्वयार्थ अध्रुवम् = अध्रुव, अनित्य। अशरणम = अशरण (कोई किसी का शरण नही)। एकत्वम् = एकत्व (अकेलापण)। अन्यता = अन्यत्व, (अलग अलग)। अशौचम् = अशुचि मल मूत्र रूपी अशुध्दी। आस्रव = आस्रव कर्मो का आना। जन्म = ससार। लोकवृषबोधिसवरनिर्जरा = लोक धर्म बोधिदुर्लभ सवर और निर्जरा। (एता द्वादशभावना) = (ये बारह भावनाये) सततम् अनुप्रेक्ष्या = निरन्तर (बार–बार) चितवन तथा मनन करनी चाहिए।

।। पुरुषार्थ देशना ।। १०८।।

भो भव्यात्माओ! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है। आत्मा को परमात्मा बनाने का माध्यम सयम–सस्कार है। किसी जीव का वध कर देना इन्द्रिय विषयो को भोग लेना तो महान असयम है ही, जीव–वध के भाव को लाना, इन्द्रिय विषयो के सेवन के परिणामो का होना भी असयम है। अहो! चचल होकर चित्त की निवृत्ति को सुमेरू के समान स्थिर कर देने का नाम सयम है। जिसने अपने मन को डडे के समान स्थिर कर दिया, उसका नाम मनोदण्ड है। वचनो को जिसने रोक लिया वह वचन–दण्ड है और शरीर की चचलता को जिसने रोक लिया, उसका नाम काय–दण्ड है। इन तीन दण्डो से युक्त जो होता है उसीका नाम त्रिगुप्ति धारक होता है। ऐसी त्रिगुप्ति को जब तक प्राप्त नही किया तब तक आप जितनी भी

क्रियाएँ कर रहे हो, ठीक है, अशुभ से बचे हो। लेकिन यथार्थ मोक्षमार्ग तभी प्राप्त होगा जब तीनो गुप्तिया तुम्हारे पास विराजमान हो जायेगी, अन्यथा तीन लोक के स्वामी नहीं बन पाओगे।

भो ज्ञानी। पाँच समितियो के अभाव मे सवर भी नही होता और जहा सवर नही है वहा निर्जरा भी मोक्षमार्ग मे प्रयोजनभूत नहीं है। पाँच समितियो के बाद आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने दस धर्मों की चर्चा की है। समयसार मे आचार्य कुदकुद महाराज कह रहे हैं–

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि काममोगबधकहा।
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।।४।। (स सा)

बात ऐसी है कि तुमने गड्ढा किया है अनादि से और आज तनिक सी मिट्टी से भरना चाहते हो। अरे। उसको भरने के लिए उतना काल तो लगेगा, वस्तु तो लगेगी। आज तक हमने काम–क्रोध– बध की कथा को सुना है अनुभव किया है और काम–भोग–बध को देखा है। इसीलिए मन तुरत वही जाता है, जहाँ से परिचित होता है तो अनादि से आप विषयो से परिचित थे। अत आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी विषयो से अपरिचित नही करा रहे, लेकिन कुछ दूसरे लोगो से भी परिचय कर लो, क्योकि जब दूसरे से परिचय करने जाओगे तो उस समय पूर्व का ध्यान तो निश्चित भूलोगे। यदि आपका मन वश मे नही होता, तो नही होने दो, लेकिन स्थान छोड दो व्यक्ति को बदल दो नियम से तुम्हारे भाव बदलेगे। अन्यथा भाव बदलना कठिन है।

भो ज्ञानी। आप समितियो का पालन कर रहे हो, गुप्ति का पालन कर रहे हो, समिति–गुप्ति के बाद दस धर्म आ रहे है। दसो धर्म आपसे कह रहे है कि तुम व्यवहारिक जीवन और पारमार्थिक जीवन को एक साथ कैसे जी सकते हो? यदि पारमार्थिक जीवन जीना प्रारभ हो जाये, तो व्यवहारिक जीवन तो अपने आप निर्मल होगा ही। लोग जीवन भर व्यवहारिकता को निर्मल करने के लिए पडे रहते है, परतु ध्यान रखना व्यवहार कभी निर्मल नही हो पायेगा। परमार्थ मे प्रवेश कर जाओ, तो व्यवहार स्वयमेव निर्मल हो जायेगा। किसी व्यक्ति को गाली छुडवाओ तो उसे बुरा लगता है। पर उससे कह देना कि तुम मौन ले लो मत छोडो गाली। जब वह मौन ले लेगा तब गाली कैसे देगा?

भो ज्ञानी। इन दो कारिकाओ मे आचार्य भगवन् ने दस धर्मों तथा बारह भावनाओ का कथन किया। अत पहले धर्म का सेवन करो। परतु जो असेवनीय है उसको तुम सेवन कर रहे और सेवनीय को तुम असेवनीय मानकर बैठे हो। मनीषियो। जिसे आज तक नही भाया, उसे तो तुम भाओ और जिसे आज तक तुमने भाया है, उसे मत भाओ। हमने ससार के बढाने के कारणो को भाया है, उसमें हमने अपने चिन्तवन को भी लगाया है। यदि इतना गहरा चिन्तवन कही तत्त्व के

बारे मे कर लिया होता, तो आज आप साधु के रूप मे उभर आते। आप मे शक्ति तो थी, लेकिन बताओ कितने सफल हुये? हालत यह हुई है कि जितना क्षयोपशम मिला था, वह नमक–मिर्च की चिन्ता मे खत्म कर दिया। भो ज्ञानी! अपना विकास करना है तो दूसरे की बातो पर ध्यान देना बद कर देना। अपना कदम आगे बढाते जाओ। अन्यथा विकास का ह्रास हो जायेगा, क्योकि जहाँ अशुद्धि प्रारभ हुई, वहाँ सब विकास बद हो जाता है। व्यक्ति जब अपनी वृत्ति को भूल जाता है तो विकास का ह्रास प्रारभ हो जाता है। आपके भी तनाव का अर्थ यही है कि मै अपनी वृत्ति मे नहीं हूँ। आपमे क्षमा का विकास क्यो नही हो रहा है? क्योकि आप या तो अपनी सीमा से ऊपर देखते हो या अपनी सीमा से ज्यादा नीचे चले जाते हो तो गुस्सा आने लगता है, हीन भावना आ जाती है। यह हीन भावना या फिर अभिमान की भावना से आपका क्षमा गुण समाप्त हो जाता है। अरे! अतरग मे कलुषता आने ही नही देना कलुषता नाम की वस्तु का उद्‌भव ही न होने देना, इसका नाम क्षमा है। वह क्षमा किसी व्यक्ति से मागी नही जायेगी। क्षमा मागना यानि मैं यह प्रकट कर रहा हूँ कि आप मुझे क्षमा कर दो।

भो ज्ञानी! वास्तव मे जो क्षमाशील होता है वह कभी भी न किसी को क्षमा करने जाता है न किसी से क्षमा माँगने जाता है उसका नाम उत्तम क्षमा है। निश्चयनय से आत्मा क्षमास्वभावी है, क्रोध–स्वभावी नही है, क्षमा आत्मा मागने और मागे जाने की भी बात करने वाली नही है, उसका नाम उत्तमक्षमा है। आप बैठे थे आपके ऊपर किसी ने वार कर दिया, फिर भी बैठे थे, क्यो बैठे थे? यह उत्तम क्षमा है, जो कि शाति मृदुत्व, ऋजुता से सहित तथा अहकार की वृत्ति से रहित, मद से रहित अभिमान से रहित होती है। ध्यान रखना यदि कषायिक भावो को रोकना चाहते हो तो मै और मेरा का भाव छोड देना। अरे! पद के अहकार ने ही तो स्वपद खो डाला है। पद के मीठे जहर ने आत्मा की शाति को भग कर दिया। रोज मदिर आते हो, लेकिन उसी मदिर मे कोई ध ार्मिक अनुष्ठान हो, तो फिर नही आओगे क्योकि हमे किसने बुलाया है। इससे लगता है कि जीव का अहकार कितने–कितने स्थानो तक पहुँचता है? भगवान महावीर स्वामी का समवशरण लगा था। वहाँ पर भी ऐसे जीव नहीं पहुच पाये, क्योकि हमे बुलाया नहीं है', ऐसे भी जीव हैं। अनन्तानुबध ी मान के साथ यदि कोई जीव जी रहा होगा वह समवशरण मे भी नही पहुँचा उसके भाव ही नही आते है क्योकि उसे ये लगता है कि मैं जाऊगा तो वे पूज्य और पूज्य हो जायेगे। ऐसी मान–कषाय रहती है। एक छोटा सा बालक भी अपने पिता से सम्मान चाहता है। उससे कह देना कि लो तुम यह लड्डू खा लो, तो वह मुँह बना लेगा। पहले गोदी मे बिठा लो फिर उसको खिलाओ, तब खायेगा।

भो ज्ञानी आत्माओ! यह धर्म है। सयम स्वीकार करने के बाद यह भाव नही आना चाहिए

कि मेरा सन्मान नहीं हो रहा। क्या आपने विचार किया कि यह सयम हमने समाज द्वारा सन्मान के लिए स्वीकार किया कि आत्मा के सन्मान के लिए। कभी–कभी बहुत आश्चर्य लगता है। किसी ने दो प्रतिमाये ले लीं और उनको चटाई नहीं डाली कर्त्तव्य था कि उन्हे चटाई डालना चाहिए, लेकिन नहीं डाली। अब प्रतिमाधारी का कर्त्तव्य है कि चटाई के लिए हमने प्रतिमा नहीं ली थी। उचित स्थान पर बैठ जाएँ, क्योकि हम धर्मात्मा हैं। पर उन्होंने बाहर आकर हल्ला किया। बोले–कैसे लोग हैं, व्यवस्था नहीं की। अहो! आपने अभी धर्म के मर्म मे प्रवेश नहीं किया। जबकि सभा धर्म की थी, वहाँ तो आपको विचार करना था कि मैं धर्मात्मा हूँ। एक पडित जी साहब का बम्बई मे एक श्रावक के यहाँ भोजन हुआ। उस दिन पडित जी का नमक का त्याग था और सेठजी के यहाँ ऐसी कोई चीज नहीं बनी, जिसमे नमक न पडा हो। यहाँ तक कि दूध की खीर मे भी नमक पडा था। उन्होने कहा–आज मेरा तो नमक का त्याग है। अरे! सारे के सारे लोग घबरा गये, पर विद्वान प्रसन्नचित्त होकर दूध–पानी लेकर आ गये। जितनी खुशी उस श्रावक को भोजन कराने मे नही थी, अब उतना दु ख था। पडित जी को छोडने गये। कहने लगे–पडित जी! हमारे यहाँ अभी भोजन नहीं हुआ। कल आपका निमन्त्रण पुन है। इसीलिए ध्यान रखना, यदि कदाचित आपके सम्मान मे कुछ भूल भी हो जाय तो उसकी भूल को भूलरूप मे स्वीकार मत करो। उसकी भूल का भी तुम सम्मान कर दो, तो तुम्हारा स्वाभिमान बढ जायेगा। यही समय होता है हमारी सहजता के प्रमाण का। अत क्षमा, मार्दव, आर्जव धर्म कह रहा है कि सरल बन जाओ, सहज बन जाओ, वक्रता को छोड दो। टेढे मन के कारण अनेक भव तुम्हारे बिगड गये, अब तो सीधे हो जाओ। सर्प कितना ही टेढा चलता हो, लेकिन वॉमी मे प्रवेश करते समय वह भी सीधा हो जाता है। मनीषियो! सिद्धशिला मे प्रवेश भी ऋजु गति से ही होता है। यहाँ तक कि सर्वार्थसिद्धि मे जो देव बनता है वह भी इस गति से ही जाता है। वक्र परिणाम अर्थात् जिसके परिणाम तिरछे होते हैं, वह तिर्यंक लोक मे, नरको के बिलो मे प्रवेश करता है। इसीलिए आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सरल बन जाओ। शुचिता लाने के लिए सयम–धर्म सरल है। सयम मे सम्मान के भाव नहीं आना चाहिए, इसीलिए ज्ञानी जीव धर्म को पालता नही है धर्म मे जीता है।

सत्य, वाणी का विषय नहीं , जीवन शैली सत्यमय हो। साधु को सत्यधर्म वस्तुको धृव सत्ता का निर्लोभता ही शौच धर्म है। वाणी एव इद्रियो के प्रति अशुभ प्रवृत्ति का निरोध सयम धर्म है। कर्म क्षय के लिये जो साधना की जाती है, वह तप धर्म है। अशुभभावो का त्याग करना तथा बाहर से शुध्द निर्लोभ भाव से सयमीयो के योग्य द्रव्य का देना त्याग धर्म है। ससार एक स्वप्नवत है। पर्याय दृष्टी से सभी द्रव्य विनाश को प्राप्त होनेवाले हैं। लेश मात्र भी पर पदार्थ मेरे नहीं है। ऐसा विचार कर निजत्व भाव को प्राप्त करना आकिचन्य धर्म है। ब्रह्मआत्मा आत्मस्वदेश मे लीन रहना ही ब्रह्मचर्य धर्म है।

'मुनियो के बावीस परीषह''

क्षुत्तृष्णा हिममुष्ण नग्नत्व याचनारतिरलाभः।
दशो मशकादीनामाक्रोशो व्याधिदु खमगमलम्।। २०६।।

स्पर्शश्व तृणादीनामज्ञानमदर्शन तथा प्रज्ञा।
सत्कारपुरस्कार शय्या चर्या वधो निषद्या स्त्री।। २०७।।

द्वाविशतिरप्येते परिषोढव्या परिषहा सततम्।
सक्लेशमुक्तमनसा सक्लेशनिमित्तमीतेन ।। २०८।।

अन्वयार्थ – सक्लेशमुक्तमनसा = सक्लेश–रहित–चित्त वाले और। सक्लेशनिमित्तभीतेन = *सक्लेश निमित्त से (अर्थात् ससार से) भयभीत (साधु के द्वारा)। सततम् = निरतर ही।* क्षुत् तृष्णा = क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास)। हिमम् उष्ण = शीत् (ठड), उष्ण (गर्मी)। नग्नत्व याचना = नग्नता प्रार्थना। अरति अलाभ = अरति, अलाभ। समता भाव धारण करना। मशकादीना दश = मच्छरादिको का काटना।आक्रोश = क्रोधित होना। व्याधिदु खम् अगमलम् = रोग का दु ख शरीर का मल।तृणादीना स्पर्श = तृणादिक का स्पर्श,। अज्ञानम अदर्शन = अज्ञान, अदर्शन (तत्वो के प्रति अश्रृद्व होना)। तथा प्रज्ञा सत्कार पुरस्कार = इसी प्रकार प्रज्ञा,सत्कार पुरस्कार शय्या चर्या वध निषद्या = शयन, गमन वध, बैठना। च स्त्री = और स्त्री। एते द्वाविशति परीषहा = ये बावीस परीषह। अपि परिषोढव्या = भी सहन करने योग्य हैं।

|| पुरुषार्थ देशना || १०९ ||

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ग्रथ मे श्रावको का कथन करने के उपरान्त यति–धर्म की चर्चा की है। जो पूर्व मे पचपरमेष्ठी की शरण मे गये हैं, आज उनके समोशरण है और जो पूर्व मे किसी की शरण मे नही गये, वे आज दर–दर की ठोकरे खा रहे है। गृहस्थो के जीवन मे कितने कष्ट हैं, कितनी यातना है, कितनी वेदना है, यति तो मात्र ये बाइस परीषह ही सहन करता है। एक जीव सयम के साथ कष्ट को सहन कर रहा है, कर्मों की निर्जरा कर रहा है। यति जो बाईस परीषह सहन कर रहे हैं यह हठ–योग की साधना नहीं अपितु आत्म–योग की साधना है। कष्टो के आने पर भी कष्टो को कष्ट स्वीकार नहीं करना, बाधाओ के

आने पर भी बाध्य नहीं होना, वेदनाओ के आने पर भी विचलित नहीं होना—यह मुमुक्षु की प्रवृत्ति है। एक—एक परिषह वे यति साम्य भाव से सहन करते हैं। **यद्यपि करुणाशील तो होते हैं पर किसी की करुणा के पात्र नही होते। वे दयनीय स्थिति मे नहीं है।** निर्ग्रंथ तो हैं, एक धागा भी नही है, फिर भी गरीब नहीं। आश्चर्य है कि जिनके पास तन पर वस्त्र हैं, समृद्ध हैं, उसे गरीब कहा जाता है। जिसके पास कोई वस्त्र नहीं है वह अमीरो का अमीर है, जिसके आगे सारे लोक के सम्राट भी शीश झुकाते हैं। इससे ध्वनित होता है कि बाह्य—वैभव से अमीरी—गरीबी को मापना अज्ञानियो का काम है। अहो ! अन्तरग के पुण्य—पाप से ही गरीबी और अमीरी का मापदण्ड है। जिसने पूरा वैभव छोडा, उसका समवशरण लग गया और जो वैभव को जोड रहा है, वह तृण—तृण को तरस रहा है। इसीलिए अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि ऐसा काम करो, जिससे सिलना भी न पडे, उलझना भी न पडे और मागना भी न पडे और मागने की दृष्टि भी न पडे। मै समझता हूँ कि जीवन मे सबसे सुखमय जीवन किसी का है तो एक साधु, एक यति का है। आपको कम से कम भोजन की चिताए तो होगी पर यति को तो भोजन की भी चिता का विकल्प नहीं है।

भो ज्ञानी! उपसर्ग अचानक आते हैं और परीषह बुद्धिपूर्वक स्वय सहन किये जाते हैं। किसी देव ने उठाकर सागर मे पटक दिया, किसी तिर्यंच ने उपसर्ग कर दिया, किसी मनुष्य ने उपसर्ग कर दिया, अथवा कोई पर्वत आदि की चोटी से पाषाण गिर गया—यह अचेतनकृत उपसर्ग है। वे अचानक आते हैं, फिर भी धीर—योगी उनको सहन करते हुए खिन्न नही होते हैं। वह परीषह जयी होते हैं। वे स्वय कष्टो को निमत्रण करके स्वय सहन करते हैं। अन्तर समझना दोनो मे। उपसर्ग परीषह इसीलिए सहन करना चाहिए कि यदि कोई कदाचित उपसर्ग आ गया तो आप सयम से च्युत नही होगे। जिसने परीषह को सहन नही किया वह विषमता के आने पर सयम को छोड देगा। इसीलिए परीषह—जयी को ही उपसर्ग—विजेता कहा जाता है। प्रत्येक तीर्थंकर के शासन—काल मे दस—दस मुनियो पर घोर उपसर्ग आता है। उस घोर उपसर्ग को सहन करके वे निर्ग्रंथ योगी, सिद्धालय या सर्वार्थ—सिद्धि विमान को प्राप्त होते हैं। इन तीन कारिकाओ मे आचार्य भगवन् ने एक साथ परीषहो का कथन किया है।

मनीषियो! वह निर्ग्रंथ योगी किस प्रकार से बावीस परीषह को सहन करते हैं। तीव्र क्षुधा सता रही है, फिर भी किसी के सामने यति मन को मलीन करके यह नहीं कहते हैं कि आप मेरे लिए भोजन की व्यवस्था कर दो। 'पर घर जाए मागत कछु नाहीं" दूसरे के घर मे भी जायेगे तो ऐसे, जैसे आकाश मे विद्युत चमकती है, किसी भी गृह—द्वारे से निकल जाते हैं, लेकिन किसी को सकेत नहीं करते हैं कि मुझे भूख लगी है, आप भोजन दो। महिनों के महिने निकल जाये, फिर भी किसी श्रावक से समझौता इस विषय मे नहीं करते। ग्रीष्मकाल की तीव्र तपन मे भी पैदल विहार

कर रहे हैं। विहार करते–करते दिन–के–दिन बीत गये, कठ सूख रहा है, फिर भी वे निर्ग्रंथ तपोध्‍ान किसी की ओर मलीन मुख करके यह सकेत नहीं करते कि मुझे प्यास लगी है। हमने किसी के आहार का निरोध किया होगा इसलिए आज मुझे नहीं मिल रहा है, लेकिन वह किसी को दोष नहीं देगे। यह तृषा नाम का परिषह है।

भो मनीषियो! अति तीव्र शीत इतनी है कि वृक्ष भी झुलस गये चलने मे मुश्किल है, फिर भी कभी किसी को सकेत नही करते है कि आप मुझे कम्बल वस्त्र आदि दे दो, क्योकि यह निर्ग्रंथ मुद्रा है। ग्रीष्मकाल मे उष्ण वायु या शीत लहर चल रही है, वायु के थपेडे लग रहे हैं, बाहर की उष्णता है पर अदर मे शुद्धात्म तत्त्व की शीतल समीर बह रही है। तब शीत परिषह ध्यान रखना परिषह तभी होगा जब खिन्नता के भाव भी नहीं आयेगे। फिर भी भो ज्ञानी आत्माओ! वे निर्ग्रंथ अचल ध्यान मे बैठे हैं। नग्नत्व परीषह कह रहा है कि रेशम, ऊन, सूत आदि प्रकार के लोक मे वस्त्र बनते हैं, सम्पूर्ण वस्त्रो का उन्होने नव कोटि से त्याग किया है, कृत कारित अनुमोदना से त्याग किया है। शरीर मे कहीं फोडा भी हो जाये, पीडा भी हो जाये, मलहम पट्टी के लिए पट्टी का उपयोग नहीं करते। अर्थात रोग परिषह को सहते है। ऐसी निर्ग्रंथो की दशा है। जिसे छोड दिया है, उसपर दृष्टि ही क्यो? यह नग्नत्व परीषह है। यह नग्न परिषह कह रहा है कि तुम्हारी प्रत्येक प्रवृत्ति, प्रत्येक चर्या प्रकट है, कोई छिपाके नही जा सकते हैं। इसीलिए ध्यान रखना, यह दिगम्बर वेष विश्वास का वेष है। कभी किसी से कुछ मॉगते नहीं, यह अयाचक वृत्ति योगियो की होती है। माँगना मरण समान है यही सद्‌गुरु की सीख है। जैन मुनि कभी किसी व्यक्ति के सामने हाथ नहीं जोडते कि आप मुझे दे दो, वे याचक कदापी नही हैं।

भो ज्ञानी! ध्यान रखना, वे यति किसी के द्वारे पर कुछ मागते नही और न मागने के भाव लाते है। अपने स्वार्थों के पीछे उनको आप रागी–द्वेषी भूमिका मे मत खडा कर देना। किसी प्रकार से विकृत्त पदार्थों के मिलने पर भी द्वेष–भाव नहीं लाना, यह अरति परीषह है। अलाभ यानी चर्या को निकले, विधि ही नहीं मिली फिर भी मन मे खिन्नता नही है। ठीक है, नरको मे तो हमको सागरो तक खाने नही मिला यहॉ एक–दिन दो दिन ही तो हुए यह अलाभ परीषह है। दशमशक, मच्छर काट रहे हैं, बिच्छू काट रहे हैं। भो ज्ञानी आत्माओ! वे विचार करते हैं कि बध किया था श्रावक–पर्याय मे और उदय मे आया यति की पर्याय मे, लेकिन यह उदय मे श्रावक–पर्याय मे आता तो सक्लेश्ता तीव्र कर लेता। यति–पर्याय मे उदय मे आया, तो समता से सहन कर लिया है। ये दशमशक परीषह कह रहा है मच्छर काट रहे हैं सर्प भी रेग रहे हैं फिर भी किसी प्रकार से मन मे विकार नहीं लाना। 'आक्रोश' यानी रास्ते मे जा रहे थे किसी ने खोटे शब्दो का प्रयोग कर दिया। 'नग्न' ही तो कह रहा है, नगा ही तो कह रहा है, नगे तो हैं ही अत किसी प्रकार आक्रोश उत्पन्न

नहीं करना। 'व्याधि' यानी शरीर मे रोग हो गया, पीड़ा हो गई, ठीक है,आत्मा तो निरोग है। यह पुदगल का परिणमन है, इसको मैं सँभाल के रखूगा भी कितना ? यह तो अपने स्वभाव मे है। गलन–सडन, यह तो पुदगल का धर्म है। ठीक है, इसके माध्यम से रत्नत्रय धर्म की आराधना कर रहा हूँ। मैं इसको खिला भी तो रहा हूँ। जितना सयोग बनता, कर रहा हूँ ,फिर भी नहीं मानता है। तो फिर वे चैतन्य–योगी स्वस्थ्य–शरीर को ही निहारते हैं। व्याधि/दु ख मे किसी प्रकार का दु ख नहीं करते। मल परीषह'–स्नान नही करते अस्नान नाम का मूलगुण है। राग की वृद्धि न हो और पानी से जीव हिसा होगी। जहाँ बहकर जायेगा वहाँ के जीव मरेगे। वे निर्ग्रंथ योगी अपने शरीर मे दुर्गंध आने पर नाक नहीं सिकोडते। काटे चुभ गये फिर भी खिन्नता नहीं है। यह चर्या नाम का परीषह है।

भो ज्ञानी! सबसे बडा परीषह अज्ञान परीषह है। अहो! गुरुदेव ने अध्ययन कराया, रोज पढाया फिर भी याद नही हो रहा। मुनि–सघ में यतियो के बीच बैठे हैं, किसी ने कह दिया– अरे! तू तो निरा अज्ञानी है। ठीक तो है, ज्ञानी तो केवली–भगवान हैं, मैं तो अज्ञानी ही हूँ। फिर भी कहना मैं अपने पुरुषार्थ को नही छोडूँगा, परतु खिन्नता भी नही लाऊँगा क्योंकि यही तो तपस्या है। मृदु भाव चल रहा। अहो! शास्त्रो मे लिखा है कि तपस्या करने से बडे–बडे तत्रो–मत्रो की प्राप्ति हो जाती है मुझे तो पद्रह–पद्रह वर्ष हो गये, कुछ सिद्ध नहीं हुआ। अरे! ऐसे भाव नहीं लाना, यह अदर्शन नाम का परीषह है और यदि ऐसे भाव आ गये कि अरे! हमसे अच्छा तो ये मिथ्यादृष्टि है इतना सब कुछ इनके पास है तो तुम्हारे सम्यक्त्व मे दोष आ गया। प्रज्ञा भी परीषह होता है। विषय का ज्ञान है और आपसे कोई न पूछे तो आप शात बैठ जाओ यह बहुत बडा परीषह है। मैं इतना बडा ज्ञानी, अनेक विद्वानो को शास्त्र आदि मे परास्त कर देता हूँ , फिर भी इन लोगो ने नही पूछा। अरे! अभी यह मेरी कीमत समझे नही है, मैं बहुत बडा ज्ञानी हूँ, ऐसा विचार मन मे लाना यह प्रज्ञा नाम का परीषह नहीं। ज्ञान के होने पर भी अह भाव मन मे नही लाना यह प्रज्ञा नाम का परिषह है। सत्कारपुरस्कार– मैं सघ का ज्येष्ठ साधु हूँ , फिर भी इन्होने मुझे आगे क्यो नहीं किया। सत्कार कह रहा है, पुरस्कार कह रहा है कि मेरा सम्मान क्यो नही रखा? मुझे आचार्य बनाना चाहिए न मुझे गणधर बनाना चाहिए था न, इत्यादि पदो की अभिलाषा रखना। परतु भो ज्ञानी! यह पद मोक्ष के साधन नहीं हैं।

भो ज्ञानी! सभी कालो मे सभी परीषह होते हैं परन्तु एक साथ एक समय में मात्र उन्नीस परीषह होते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के काल मे यह परीषह होते हैं। तीर्थंकर जैसे महान योगी भी इन परीषहो को सहन करते हैं। ककडी–भूमि में जहाँ स्त्री, पुरुष, नपुसक पशु आदि का गमनागमन ना हो, एक करवट से सोना करवट नहीं बदल रहे और बदलेगे तो पिच्छी से मार्जन करेगे, यह

शय्यापरीषह है। रास्ते मे किसी ने कुछ कह दिया, बोल दिया, काँटे ककड चुभ रहे हैं, फिर भी खिन्नता नहीं आई। निषद्या एक–आसन पर बैठे हुये हैं। जगल मे विचरण कर रहे हैं, तब हाव भाव से युक्त, विकारो से भरी नारियाँ निकल पडी, सुन्दर स्वरुप से युक्त, आँखें विलास से भरी, उनके सामने खडी हुई हैं, अहो ज्ञानी! फिर भी वो ब्रह्म की ढाल को लिये बैठे हुए हैं, लेश–मात्र भी विकार–दृष्टि नहीं की जा रही। स्त्री परीषह के सहन करने वाले महायोगी है। बावीस परीषह सहन करना चाहिये, अब आपकी जैसी सामर्ध्य हो वैसा करे। क्रम से गुणस्थान बढेगा तो परीषह अपने आप समाप्त हो जाते हैं। अहो! मूलगुणो का पालन करिये। मुनियो के परीषह सहन करना उत्तर–गुण है। आचार्यों का परीषह सहना मूलगुण है। मुनि परीषह सहन नही कर पा रहे हैं तो उनके सयम मे कोई दोष नही है। माना कि ठडी सता रही थी, कमरे मे जाकर बैठ गये, परीषह तो गया। ध्यान रखना कि जितनी तुम्हारी सामर्ध्यहो उतना करो, लेकिन मार्ग यही है। परिषह तो बाईस ही है। इतनी साधना तो सहज ही कम दिख रही है, परतु उपदेश राज–मार्ग का ही होना चाहिए, अपवाद का व्याख्यान करने की कोई आवश्यकता नही है। अपवाद लोग खोज लेते है। पानी इतना पतला होता है, कही न कहीं से रिस ही जाता है। शिथिलाचार तो पतला पानी है, उसका कथन करने की कोई आवश्यकता नही। इसलिए आचार्य भगवान कह रहे हैं कि ससार क्लेश से भयभीत होकर, सक्लेशता से रहित होकर वे निर्ग्रंथ–योगी बाईस परीषहो को सहन करते हैं।

जैन मदिर खजुराहो

"रत्नत्रय का पालन–श्रावक को एकदेश व मुनि को परिपूर्ण"

इति रत्नत्रयमेतत्प्रतिसमय विकलमपि गृहस्थेन।
परिपालनीयमनिश निरत्ययां मुक्तिममिलषिता।।२०९।।

अन्वयार्थ · इति एतत् =इस प्रकार पूर्वोक्त। रत्नत्रयम् = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय। विकलम् अपि = एकदेश भी। निरत्यया मुक्तिम् = अविनाशी मुक्ति को। अभिलषिता =चाहने वाले। गृहस्थेन = गृहस्थ के द्वारा। अनिश = निरन्तर। प्रतिसमय = समय–समय पर। परिपालनीयम् = परिपालन करने योग्य है।

बद्धोद्यमेन नित्य लब्ध्वा समय च बोधिलाभस्य।
पदमवलम्ब्य मुनीना कर्त्तव्य सपदि परिपूर्णम्।।२१०।।

अन्वयार्थ च = और (यह विकलरत्नत्रय)। नित्य = निरन्तर।बद्धोद्यमेन = उद्यम करने मे तत्पर ऐसे मोक्षाभिलाषी गृहस्थ द्वारा। बोधिलाभस्य = रत्नत्रय के लाभ के समय। लब्ध्वा = समय को प्राप्त करके। तथा। मुनीना पदम् = मुनियो के चरण। अवलम्ब्य = अवलम्बन करके सपदि। =शीघ्र ही।
परिपूर्णम = परिपूर्ण। कर्त्तव्य = करने योग्य है।

|| पुरुषार्थ देशना || ११०||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने यतिधर्म का कथन करते हुये कहा है कि जीव इस ससार के सकटो को शारीरिक विषमता को अथवा किसी भी बाहरी विषमता को, विषमता मान सक्लेशता को स्वीकार कर लेता है। वह कर्मो के ककड को नही निकाल पाता है। ससार मे सुख की कल्पना करना तो वास्तव मे अपनी बुद्धि का ओछापन है। ससार मे शाति की कल्पना ससार को बदनाम करना है क्योकि जिसका जो स्वभाव है उस स्वभाव को आप विभाव कैसे बनाएगे? ससार का कार्य है अशाति, सासारिक होने का आशय है अशाति। अहो! आत्मा का सुख निराकुल है और ससार मे आकुलता है। निराकुलता जहाँ है वहा आकुलता नही है। इसीलिए शिवमार्ग पर लग जाना चाहिए।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि ससार मे तुम्हे जितनी शाति

महसूस हो, जितना सुख महसूस हो, उसे शाति से स्वीकार करो। परतु यह ध्यान रखना कि शत्रु के घर मे प्रवेश करके सन्मान की कल्पना का मन मत बना लेना, क्योकि ससार का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक परिणति, प्रत्येक अवस्था अशाति है। इस कारिका मे आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी गृहस्थ–धर्म का कथन करने के उपरात यति–धर्म का कथन इसलिए कर रहे हैं कि इसमे निराकुलता की हल्की–सी तस्वीर दिख रही है। एक साधक को सामायिक के काल मे जो समता परिणाम आते हैं उससे लगता है कि अनन्त सुख नाम की भी कोई वस्तु है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति ही सबसे बडा अशात है जबकि उद्यमशील पुरुष परम–शाति की खोज मे है। अत उद्यम का मार्ग ही मार्ग है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष यह चार पुरुषार्थ है। पुरु यानि श्रेष्ठ जो श्रेष्ठता से युक्त है उसका नाम पुरुषार्थ है। अत पुरुष के अर्थ की सिद्धि होगी तो पुरुषार्थ से ही होगी और जो भी तुम्हारा भाग्य बन कर आ रहा है वह भी पुरुषार्थ है। वर्तमान का पुरुषार्थ ही भविष्य के भाग्य के उदय मे आता है। जिसे आप कर्मउदय कहते हो वह भी कर्म से आता है।

भो ज्ञानी! जीव जिसे कर्मउदय कहकर उसके उदय मे बिलखता है लेकिन वास्तव मे कर्मउदय कोई वस्तु नहीं है। क्योकि कर्म न किया होता, तो कर्म बध न होता और कर्म बध न होता तो कर्म उदय मे न आता इसीलिए रोने और बिलखने का तो कोई प्रश्न ही नही है। श्रमण सस्कृति बडा सहज दर्शन है, अत उद्यम करो। उद्यम किया तो आप लोग यहॉ आ गये और नर्क भी जाओगे तो उद्यम करके ही जाओगे, स्वर्ग भी जाओगे तो उद्यम करके जाओगे और सिद्ध बनोगे तो उद्यम करके बनोगे। अहो! ऊधम करने से कुछ नही बनोगे। व्यर्थ के ऊधम छोड दो कि काललब्धि आ जाएगी तो मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। उद्यम करोगे काललब्धि निश्चित आएगी। काललब्धि कभी यह नही कहती कि काम मुझ पर छोड दो। काललब्धि यह कह रही है कि आप उद्यम करो। मैं आपको समय पर फल दे दूँगी। पर काललब्धि का उल्टा अर्थ लगा दिया। काललब्धि पुरुषार्थ नही बना रही है। उद्यम तो आपको करना ही पडेगा।

भो ज्ञानी! भगवन् कह रहे हैं कि यदि मुक्ति की अभिलाषा है तो एक बात ध्यान रखना समयसार मे लिखा है कि निरबध हो जाओ। पर माला फेरने से निरबध होनेवाले नही हो। मुक्ति मिल जाए मुक्ति मिल जाए ऐसे जप करने से मुक्ति तीन काल मे मिलने वाली नही है। मैं बधा हूँ–मैं बधा हूँ ऐसा कहने से भी निरबध नही। उसके अभिलाषा मात्र करने से निरबध नही हो सकते। प्रात सुनते हो मध्यान्ह मे विपरीत करते है मध्यान्ह मे सुना सध्या को विपरीत किया। यदि मार्ग विपरीत हो चर्चा समीचीन हो तो आत्मा चर्चा से कभी निर्बधता नहीं होती है। निर्बधता की प्राप्ति तो बधनो को छोडने से होती है। अर्थात् भावो मे कितनी निर्मलता बढ रही है, कषाय भाव कितने मद हुए, कितने मध्यम हुए है, कितने जघन्य अश हुए हैं। ध्यान रखना एक देश रत्नत्रय परपरा मोक्ष का हेतु तो है, लेकिन मोक्ष का साक्षात् हेतु नहीं है अविरत दशा मे कोई जीव अपने आपको साक्षात मोक्षमार्गी मान लेता है, वह जीव वास्तव मे स्वय की वचना कर रहा है। कभी–कभी लगता तो है कि भगवन् मैं दूसरों को ठगू न ठगू , लेकिन स्वयं वचना तो चल रही है। अहो किसका क्या होगा ? यह विषय मेरा नहीं, लेकिन मेरा क्या होगा ? यह विषय तो मेरा है।

अहो मुमुक्षुओ! अब तो धर्म ही शरण है। देखो, समोशरण मे सपूर्ण प्राणियो को समान

शरण है। इस लोक मे सर्वत्र रागद्वेष होता है, लेकिन अरहत चरणो मे कोई रागद्वेष नही होगा। यदि समवशरण में बैठकर अरिहत के चरणो मे भी मेरे अदर का अरि नहीं हटा तो भो ज्ञानी! अब अरि भागने वाला नहीं इसलिए पूज्य बनाने वाला कोई है तो रत्नत्रय धर्म का पुरुषार्थ है। यद्यपि आपने कम पुरुषार्थ नहीं किया, निगोद से पुरुषार्थ करते-करते आज आप यहाँ तक आ गये, यहाँ आने के बाद ऊपर जाने की दृष्टि रखना, नीचे जाने की दृष्टि मत रखना। अत मोक्ष की अभिलाषा से युक्त होकर के नित्य ही उद्यमशील होना चाहिए। जिसने समय को प्राप्त करके, समय यानि आत्मा समय यानि रत्नत्रय धर्म, समय यानि आगम समय यानि समय। यदि समय पर उद्यम कर लिया तो समयसार हो गया। बीज वही है, भूमि वही है, पर मौसम के निकलने के बाद बोना व्यर्थ अर्थात रत्नत्रय धर्म तो है मनुष्य पर्याय भी है। लेकिन आपने समय निकाल दिया। अत समय को समझने का नाम ही ज्ञान है, समय को स्वीकार लेना ही ज्ञान है, जिसने समय को नही स्वीकारा वह महा अज्ञानी है। इस जीव ने ज्ञान तो अनन्त बार प्राप्त किया है, परतु रत्नत्रय को अनन्त बार प्राप्त नही किया। यदि आपने बोधि को प्राप्त कर लिया होता, तो तुम्हे पचम काल मे नही आना पडता। बोधि के वेश को प्राप्त किया पर बोधि को प्राप्त नही किया। इसीलिए मुनियो के पद का आलम्बन करके परिपूर्ण कर्त्तव्य करने योग्य मुनियो ध्यान रखना। यहाँ तो आचार्यअमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि शीघ्र स्वीकार कर लो क्योकि यह वह मौका कब आएगा ? यदि किसी को यह ज्ञान हो जाए कि मैं तो दो-तीन दिन मे समाप्त हो जाऊगा तो इतने बडे महल नही बनाता। अहो! अभी तो मैं मकान बना रहा हूँ फिर मैं इस मकान मे रहूगा, मेरे भी रहेगे और पुराने मकान भी मैं रहा हूँ, मेरे रहे थे इसीलिए नही छोड रहा है। यह तो मेरे दादा-परदादा का मकान है कैसे छोडू। अहो! आज जिसे तू दादा कह रहा है एक दिन वह पडोसी था लड कर दोनो खत्म हो गये। देखो ससार की दशा आज कह रहा है मेरे दादाओ की भूमि है यशस्तिलकचपु महाकाव्य मे उल्लेख आया है कि एक बकरा बार-बार घर की ओर दौड रहा है और घर का मालिक डडा लेकर भगा रहा है फिर भी घर मे घुस गया। जब अवधिज्ञानी यति से पूछा प्रभु! यह बकरा मुझे क्यो परेशान कर रहा है ? मुनिराज मुस्करा कर बोले वह तुम्हारा पिता है जिसने अगुली पकड कर तुमको चलना सिखाया था। आर्तध्यान से मरकर घर मे ही बकरी का पुत्र हो गया। अब वह राग बार-बार उमड रहा है इसलिए वह बार-बार आता है और तुम बार-बार मार कर भगा देते हो। अहो पिताओ! ऐसा राग मत रखना कि तुम्हारे बेटो को तुम्हारे सामने घास और सानी रखना पडे, यह राग की महिमा है।

भो ज्ञानी! क्यो ऐसा हुआ क्योकि उद्यम हमारा अप्रशस्त पुरुषार्थ हमारा अप्रशस्त हो गया। वह रत्नत्रय की ओर जाना चाहिए था लेकिन वह मिथ्यात्व अव्रति प्रमाद कषाय रूप हो गया। अत अब काल लब्धि पर नही बैठना कार्य लब्धि पर बैठना क्षपणा सार लब्धिसार' ग्रथ कहता है कि अहो ज्ञानी! अब तुम यह मत कहो कि काल लब्धि आएगी तुम ऐसा कहो कि कर्मों का क्षय करने का प्रयत्न मैं करूँगा और उद्यम भी तीर्थंकर केवली नहीं कराएगे। निज का उद्यम निज को ही रत्नत्रय पूर्वक करना है और अब समवशरण मे नही जाना अब तो समवशरण मे आना है। आप समवशरण मे कई बार गये हो। विदिशा मे तो शीतलनाथ भगवान का समवशरण तो नियम से लगा हुआ है। कल्पना करो इस भूमि की महिमा तो है कि जिस भूमि पर बार-बार समवशरण लग रहे हो। सब कुछ कर लेना पर रत्नत्रय धर्म को मत छोडना।

"जिनेन्द्र की आराधना : मोक्ष महल की कुंजी"

आसमग्र भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धो य ।
स विपक्षकृतोऽवश्य मोक्षोपायो न बन्धनोपाय ।।२११।।

अन्वयार्थ आसमग्र = सम्पूर्ण। रत्नत्रयम् = रत्नत्रय को। भावयत = भावन करने वाले पुरुष के य = जो। कर्मबन्ध = शुभकर्म का बध। अस्ति = है। स = सो बध विपक्षकृत = विपक्ष–कृत या बधरागकृत होने से अवश्य = अवश्य ही। मोक्षोपाय =मोक्ष का उपाय है।बन्धनोपाय न =बध का उपाय नही है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। १११।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की पीयूष वाणी जन–जन की कल्याणी है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने इस सूत्र मे सकेत दिया कि सम्यक्–पुरुषार्थ सम्यक्–सिद्धि को प्रदान कराता है। जहाँ पुरुषार्थ है वहाँ पुरुष है और पुरुष का अर्थ ही पुरुषार्थ से बना है। अत जो श्रेष्ठ कार्य करता हो, वही पुरुष है। अश्रेष्ठ असमीचीन कार्यों मे प्रवृत्ति जा रही हो तो समझ लेना मेरा पुरुष नष्ट हो गया। मनीषियो! जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है उसके विचार भी विनशने लगते हैं। अच्छी बात भी उसे विपरीत नजर आती है असयम की बात मे उसे आनद आता है और सयम की बात उसे शूल सी चुभती है। ज्ञानियो की बात को ध्यान से सुनने का विचार भी पुण्य से ही मिलता है।

भो ज्ञानी! पुरुषार्थ–सिद्धयुपाय ग्रथ मे आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं–रत्नत्रय को भजा तो नियम से रत्नत्रय प्राप्त हो जायेगा। भजो यानि भावना करो उस रत्नत्रय का फल बोधि होगा और बोधि के फल से समाधि होगी उस समाधि का फल परमेश्वर पद होगा। परम–पारिणामिक भाव का जो ईश्वर होता है उसी का नाम परमेश्वर है। हमारे आगम मे ईश्वर की वदना नही, परमेश्वर की वदना है। ईश तो आप भी हो। जिस सस्था का जो स्वामी हो वह उसका ईश हो गया। घर का मुखिया घर का ईश लोक का मुखिया लोकाईश स्वर्ग मे लोकपाल होते हैं। आपके प्रदेश मे राज्यपाल होते हैं। ध्यान रखना इन सबसे परे कोई होता है तो परम–पारणामिक भाव होता है। उस परम–पारिणामिक भाव का जो स्वामी होता है वह सिद्ध परमश्वर होता है क्योकि पूर्णता तो पूर्ण रूप से सिद्धो मे ही है, अरिहतो मे अभी चार कर्म अवशेष

हैं। अरिहंत–देव जिनकी आप पूजा कर रहे हो, वे परमेश्वर तो हैं लेकिन परम–परमेश्वर नही हैं। भो मुमुक्षु आत्माओ! एक सौ अडतालीस दुष्कर्मों की सगति मे तुम तल्लीन हो, फिर भी तुम भूल को भूल नहीं मान रहे हो, यही सबसे बडी भूल है। यदि भूल को भूल मान लेता तो कम से कम भगवान के नजदीक तो आ जाता। भूल मे ही फूल रहा है। हे प्रभु ! आपके समवशरण मे मै आया हूँ, इसीलिए आज मुझ सपत्ति की प्राप्ति हो जाए। अहो मुमुक्षु! तूने पूर्व मे भूल की थी सो पचम काल तक भटक रहा है और आज भी परमेश्वर के चरणो मे ससार मॉगने आ गया तो और बडी भूल कर गया।

भो ज्ञानी आत्माओ! एक दिन मैं देख रहा था अरिहत विहार कालोनी मे। एक कौए के बच्चे की चोच मे उसकी मॉ अपनी चोच फसाकर चुगा दे देती है। अपनी मॉ के मुख के भोजन को कौए का बच्चा कब तक खाता है? जब तक उससे चुगते नही बनता। अहो मुमुक्षु आत्माओ! इन काले कर्मों का चुनाव तुम कब तक करोगे? पक्षी के बच्चे से चुगते नही बनता, इसीलिए मॉ के मुख का वमन खाता है। अब तुम तो बच्चे नही बचे अब तो तुम्हारे पास भेद विज्ञान और ज्ञान ने जन्म ले लिया है। अब तो तुम स्वय चुनना सीख गये हो। अत तुम वही चुनो जो चुनने लायक होता है। अब वह नही चुनो जो आज तक चुना है। जिन कर्मों को तुमने अनादि से चुना, उन कर्मों ने तुझे बार–बार सताया और अब भी तुम उन्ही कर्मो को चुनने मे लगे हो। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे है–अब रतनत्रय को चुन लो।

भो ज्ञानी! एक सज्जन ने घर मे से मरा चूहा उठा कर फैंक दिया। उनके मन ने कहा कि आज अभिषेक नही करना। दूसरे सज्जन बोले– क्या हुआ यह तो सामान्य बात होती है। देखना जिन्होने अभिषेक नही किया उन्होने श्रेष्ठ किया। घर मे पचेन्द्रिय जीव पडा था उसे अपने हाथ से उठा कर फेक दिया। इसलिए अभिषेक नही किया ठीक किया क्योकि परिणाम कलुषित थे। अरे! एक कोई व्यक्ति मृतक को छूकर इस फर्श को छू ले और फिर आप उस पर बैठकर अभिषेक कर लोगे? टेन्ट हाऊस से जितने कपडे आ रहे हैं, फर्श आ रहे हैं, इन पर झाडू कौन लगाता है? अब विवेक से सोचना। पचम काल मे मदिर और प्रतिष्ठाऍ पूजाएँ बढी हैं। पहले एक स्तोत्र से कुष्ठ निकल गया परतु अब आपकी फुसिया ठीक नही हो पा रही हैं। क्या बात है? स्तोत्र वही है, लेकिन भावना वैसी नही है। तीर्थंकर देव के पुण्य का प्रताप आज भी है, आज भी जहाँ भगवान की आराधना प्रारभ हो जाती है भक्त अपने आप पहुँच जाते हैं। अत स्पष्ट समझना की पचम काल मे भी आज धर्ममय भावना है और आगे भी रहेगी। किसी एक जीव ने कह दिया था कि मुनिराज तो कुष्ठ से ग्रसित है। लेकिन अपने भगवान के बारे मे कोई कुछ सुन नही सकता है। अत एक सेठ सम्राट के सामने बोल पडा–राजन्! मेरे मुनिराज की तो कचन जैसी स्वर्णमयी काया

चमक रही है। उनको कौन कहता कुष्ठ है? सुबह दर्शन कर लेना। भक्ति की भावना तो देखो उसको मालूम ही नही था कि मुनिराज नगर मे है और उनके शरीर मे कुष्ठ हो गया है। परन्तु धर्म पत्नी के मुख से यह सुनने पर वह विह्वल हो गया। वह दौडकर पहुँचता है विनती करता है–हे प्रभु! मुझे मालूम है आप इस देह के ममत्व से परे हो, निर्मुक्त्व हो असयुक्त हो, लेकिन मुझे विश्वास है आप तीव्र ममत्वशाली हो। यह शब्द सुनते ही आचार्य वादिराज स्वामी सोचने लगे–यह क्या कह रहे हैं ? वह पुन बोला–प्रभु! आपको ससार के भोगो के प्रति से निर्ममत्व भाव हैं, लेकिन वीतराग शासन की प्रभावना मे तीव्र ममत्व भाव है।

भो ज्ञानी! जिसको वीतराग जिनेन्द्र के शासन मे ममत्व नही उसे सम्यक्दृष्टि भूल से भी मत कह देना। शरीर की श्वासे निकल जाएँ लेकिन हे प्रभु! आपके प्रति मेरी श्रृद्धा की श्वासे बाहर न निकले, इसका नाम सम्यकदृष्टि है। भक्त कहने लगा–भगवन। राज्य–सभा मे मैने कह दिया कि मेरे मुनिराज तो कचन सी स्वर्णमयी काया से चमकते हैं। प्रभु! इस लोक मे मेरा कोई है, तो एक आप ही हैं। हे नाथ! जब आप गर्भ मे आये थे तो सारी वसुधा स्वर्णमयी हो गई थी। आपका जन्म हुआ तो नरक के नारकी को भी शाति की सास मिली। जब यह भूमि स्वर्णमयी हो सकती है तो हे प्रभु ! यह देह स्वर्णमयी कैसे नही हो सकती है ? अकाटय विश्वास था। मुनिराज बोले–आप भी विश्वास रखो तो सम्पूर्ण रोग यहॉ से पलायन हो जाएँगे। अहो! देखते–देखते कुष्ठ ऐसे चला गया जैसे गर्म तवे पर पानी की बूँद। प्रात काल दर्शन–वदना के लिए सम्राट स्वय पहुँच गये और जैसे ही रत्नत्रय से मडित वीतरागी सत का शरीर राजा ने देखा तो राजा की ऑखे श्रद्धा स भर गई। राजा कहने लगा–जिनको ससार मे सत्तर कोडा–कोडी सागर भटकने कि फुरसत हो वह धर्म और धर्मात्मा की खुलकर अवहेलना करे अन्यथा सिर झुकाकर नमोस्तु कर ले।

भोज्ञानी! जो निकाक्षित भाव से भगवान जिनेन्द्र का स्तवन करता है उसके सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते है। आप विश्वास रखना, श्रद्धा को खोखली मत कर देना दुनियाँ मे नही भटकना। परमेष्ठी की शरण मे चले जाओ। यह तो छोटा सा रोग था जन्म जरा, मृत्यु जैसे त्रिरोग भी जिनेन्द्र देव की आराधना से नष्ट हो जाते है। उसके लिये आपको तीन गोलियो की चर्चा आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कर रहे है कि–भगवत आत्माओ! अपनी श्रृद्धा की पहली गोली को पूर्ण सुरक्षित रखना, यह आस्था की पहली औषधि है। दूसरी सम्यक्ज्ञान और तीसरी सम्यकचारित्र की गोली से तीनो रोग देखते ही देखते पलायन कर जाएँगे।

भो ज्ञानी! आचार्य वादिराज स्वामी ने एकीभाव स्तोत्र मे स्पष्ट लिखा है कि घनघोर तपस्या कर लो, घनघोर साधना कर लो, लेकिन ध्यान रखो ताला तभी खुलेगा जब चाबी हाथ मे

आयेगी। मोक्ष भवन मे मोह का ताला पडा हुआ है, प्रभु भक्ति रूपी सुदर कुजी को जब घुमाया जाता है तो मोक्ष महल का ताला खुल जाता है और यह आत्मा सिद्धालय मे जाकर विराजमान हो जाती है। इसीलिए भक्ति की कुँजी को खो मत देना। अन्यथा द्वार पर भी पहुँच जाओगे तो भी प्रवेश नही मिलेगा। अनेक जीव सिद्धो के द्वार के पास पहुँच गये, लेकिन सिद्ध नही बन सके क्योकि उनके पास चाबी नही थी। अहो! निगोदिया बनकर कितनी बार सिद्धशिला पर पहुँच चुके हो? इसीलिए भक्ति तुम्हारे पास नही होगी तो शिवकन्या तुम्हे वरण करने वाली नहीं है। यहाँ आचार्य भगवन कह रहे हैं–अहो श्रावको! महाव्रती नही तो अणुव्रती ही बन जाना, असयमी पर्याय श्रेष्ठ नही। अत घर मे रह कर श्रावक के बारह व्रतो को पालन अवश्य करो। इतने भाव नही आये तो सिद्धात कह रहा है कि समझ लो आपकी दशा कोई दूसरी हो चुकी है क्योकि नरक तिर्यंच और मनुष्य आयु का बधक देशव्रती भी नही बन सकता।

भो ज्ञानी! सम्यक्‌दृष्टि जीव कह रहा है कि आराधना कर्मबध का हेतु तो है लेकिन वह शुभ–कर्मबध का हेतु है, अशुभ–कर्मबध का हेतु नही है। पर यह बध बध नही है नियम से निर्बध का हेतु है। जो कहते है कि शुभ मत करो पूजा पाठ छोड दो, यह शुभ की क्रिया है। अहो ज्ञानियो! पहले अशुभ की क्रिया तो छोडो। वह शुभ क्रियाएँ तो परपरा से मोक्ष का हेतु हैं पर अशुभ क्रियाएँ नियम से ससार का ही हेतु हैं। यह कारिका कह रही है कि एकदेश रत्नत्रय भी मोक्ष का ही उपाय है। अहो ज्ञानियो! तुम ससार मे अशुभ मे पडे–पडे रो लोगे तो कम से कम शुभ मे लग जाओ। यह शुभ क्रिया चल रही है। आश्चर्य तो यह होता है कि करते तो तुम शुभ हो, पर तुम उसे कहते अशुभ हो यानि कि शुभ करके भी तुम अशुभ कर्म–बध कर रहे हो। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी लिख रहे हैं–उन जीवो पर और करुणा कर लेना जो शुभ करते–करते पाप मे लिप्त हो रहे है। अहो! रत्नत्रय की साधना धर्म की आराधना, मुमुक्षु जीव मोक्ष के लिए ही करता है ससार के लिये नही। अशुभ–क्रिया नरक का हेतु है पर सम्यकदृष्टि जीव की शुभ क्रिया परपरा से मोक्ष का ही हेतु है। इस प्रकार से समझना।

"जितने अश मे राग, उतने अंश में बध"

येनाशेन सुदृष्टिस्तेनाशेनास्य बन्धन नास्ति।
येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य बन्धन भवति।।२१२।।

अन्वयार्थ अस्य येनाशेन सुदृष्टि = इस आत्मा के जितने अश मे सम्यग्दर्शन है। तेन अशेन = उतने अश मे। बन्धन नास्ति = बन्ध नहीं है। तु येन अशेन = तथा जितने अश मे। अस्य राग = इसके राग हैं। तेन अशेन = उस अश मे बधन। भवति = बन्ध होता है।

येनाशेन ज्ञान तेनाशेनास्य बन्धन नास्ति।
येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य बन्धन भवति ।।२१३।।

अन्वयार्थ येन अशेन अस्य ज्ञान = जितने अश मे इसके ज्ञान है। तेन अशेन बन्धन नास्ति = उस अश से बन्ध नही।तु येन अशेन राग = और जितने अश से राग है। तेन अशेन = उस अश से। अस्य बन्धन भवति = इसके बन्ध होता है।

येनाशेन चरित्र तेनाशेनास्य बन्धन नास्ति।
येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य बन्धन भवति।। २१४।।

अन्वयार्थ येन अशेन अस्य चरित्र = जितने अश मे इसके चारित्र है। तेन अशेन बन्धन नास्ति = उस अश से बन्ध नही है। तु येन अशेन राग = तथा जितने अश से राग है। तेन अशेन = उस अश से। अस्य बन्धन भवति = इसके बन्ध होता है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ११२।।

भव्य बधुओ! अतिम तीर्थेश भगवान महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना जन–जन की कल्याणी है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने अलौकिक सूत्र दिया है कि सम्यकज्ञान सम्यकदर्शन और सम्यकचारित्र से निर्बंधता की प्राप्ति होती है। ससार मे आत्मा को परमात्मा बनाने वाले जीव बिरले

हैं, लेकिन आत्मा को ससार मे रुलाने वाले हेतु अनत हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी बहुत सहज कथन कर रहे हैं कि निज पर दृष्टिपात करो, निज पर करुणादृष्टि डालो। आज तक आपने अपने आप को बिगाडा है। एक कुभकार भी घट सभल–सभल कर बनाता है। मनीषियो! ससार की रचना भी जड से है, भोगो की सामग्री भी जड है और शरीर जड का पुतला ही है। इन तीन से बचने का उपाय तीन ही है–सम्यक्‌दर्शन ज्ञान, चारित्र। ससार के अखाडे मे आप कूदे हो और राग–द्वेष की लिप्तता आपके शरीर मे है। यदि आप उस पर चलोगे तो कर्म की मिट्‌टी तो चिपकेगी ही। आवश्यकता है कि धूल मे कूदने के पहले शरीर के तेल को पोछ लो। समयसार जी मे बडा सुन्दर कथन है कि कितना ही खेल खेले, पर जिसके शरीर मे तेल नही होता है वह कभी मिट्‌टी से लिप्त नही होता।'नियमसार' जी मे भी कथन है कि जहाँ इच्छा है वहाँ बध है जहाँ आकाक्षा है वहाँ बध है। केवलीभगवान देशना भी दे रहे है विहार भी कर रहे है, फिर भी बध नही है क्योकि आकाक्षा उनकी समाप्त हो चुकी है।अत यदि निर्बंध होना चाहते हो तो आज से आकाक्षा छोड दो।

भो ज्ञानी! ऐसा भी होता है कि जिनवाणी सुनने वाला भी मोक्षमार्गी नही हो सकता और जिनवाणी न सुनने वाला भी मोक्षमार्गी हो सकता है। एक जीव मात्र ज्ञान के लिए अथवा प्रज्ञा के लिए सुन रहा है। प्रज्ञा सम्यकज्ञान नही है क्षयोपशम सम्यकज्ञान नहीं है, वस्तु के यथार्थ श्रद्धान के साथ जो ज्ञान है–उसका नाम सम्यकज्ञान है समीचीन ज्ञान है। ध्यान रखना सस्कार कभी खाली नही जाते। आपका शरीर भले ही साधना नही कर रहा हो पर आप साधना और साधको को देखते रहो तो विश्वास करना अगला भव तुम्हारा सच्चे–साधु के रूप मे प्रशस्त होगा। अहो! पति ने सामायिक की प्रतिज्ञा की कि जब तक दीप जलेगा तब तक सामायिक चलेगी। पर पत्नी ने सोचा कि दीप बुझ गया तो पतिदेव को अधेरे मे बैठना पडेगा। इधर उसकी भावना भी प्रशस्त थी उधर व्यथा सताती है। यहाँ दीपक बुझ नही रहा है, परतु आयुकर्म का दीप बुझ गया। भले ही वह तृषा की पीडा से जल मे मेढक हो गया परतु सिद्धात कह रहा है कि सस्कार छूटते नही हैं। अशुभ सस्कार भी नही छूटते, शुभ सस्कार भी नही छूटते निश्चित काम मे आते है।

भो ज्ञानी! राजा श्रेणिक के द्वारा कराई गई भेरी की आवाज सुनकर वह मेढक सोचने लगा कि मै भी प्रभु की आराधना करूँ। आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी लिखते है–हे नाथ! जैसे मेघ की गर्जना सुनकर मयूर नाच उठते है, वैसे आपकी भक्ति की आवाज को सुनकर मेरा मनमयूर नाच उठा है। प्रभु! जैसे विषधर भले ही चदन के वृक्ष से लिपटे हुए हो अथवा जटिल बधन से बधे हो लेकिन मयूर की आवाज सुनकर वे साप बधन तोडकर भाग जाते हैं। हे देवाधिदेव! हे अर्हन्त देव! आपकी भक्ति की आवाज को सुनकर कर्मरूपी भुजग इस आत्मारूपी चदन को छोड कर भाग जाते है। इसलिए ध्यान रखना, भक्ति से कभी अधूरे मत रहना। जब तक भगवान नही बन रहे हो, तब तक भक्ति

तुम्हारे हाथ मे है। ध्यान रखना सच्ची भक्ति ही सम्यक्दर्शन है पर सच्ची भक्ति तभी होती है जब श्रद्धा होती है और श्रद्धा तभी होती है जब हमारा श्रद्धेय परम्–आराध्य होता है। परम्–आराध्य पर श्रद्धा उसी की होती है जिसकी कषाय और कर्म की प्रकृतियो का उपशमन होता है। बिना सप्त प्रकृतियो के क्षय और क्षयोपशम के सम्यक्त्व नही होता।

अहो ज्ञानी! श्रद्धा तब होती है जब श्रद्धेय तनिक दिख जाएँ। जिनवाणी माँ कह रही है कि तुम्हारे आत्म–कूप मे श्रद्धा का नीर है कि नही। उसमे भगवत्–भक्ति के ककड को डालकर देख लो तो आवाज आ जाएगी कि पानी है कि नही। यदि पानी नही है, तो आवाज नही आएगी। जिसकी जिनवाणी, जिनेन्द्र निर्ग्रंथ गुरुओ के चरणो मे श्रद्धा होती है उसके मुख से नियम से आवाज आएगी ही—नमोस्तु! नमोस्तु! जैसे सूखे कुएँ मे कितने ही पत्थर डालो पता नही चलता है। ऐसे ही श्रद्धा से अधे श्रद्धा से विहीन जीवो के सामने साक्षात तीर्थंकरदेव भी विराजमान हो जाएँ तो उनके हृदय मे कभी श्रद्धा झलकेगी नही।

भो ज्ञानी! भक्ति प्रकट कर रही है सम्यक्त्व को और सम्यक्दर्शन प्रकट कर रहा है रत्नत्रय धर्म को। बेचारे मेढक की तिर्यंच–पर्याय थी इसलिए कमल की पखुडी को मुख मे दबाकर चल दिया। परतु पहुँच भी नही पाया कि गजराज के पग तले मृत्यु हो गयी। लेकिन राजा श्रेणिक के पहले ही वह मेढक देव बनकर समवशरण मे पहुँच गया। राजा श्रेणिक ने पूछा—हे अर्हन्तदेव! आज तक मैने देवो के मुकुट मे मेढक का चिह्न अकित नही देखा। बैल स्वस्तिक और मयूर के चिह्न तो देखे मगर इन देव क मुकुट मे मेढक का चिह्न अकित क्यो है? भगवान की वाणी खिरी— हे श्रेणिक! इसे तुम देव मत कहो। आप जब समवशरण की ओर आ रहे थे और नगर मे सूचना की थी तो एक मेढक भी आ रहा था। अतरग मे तीव्र भक्ति की भावना थी लेकिन पर्याय का दोष कि तुम्हारे गजराज के पग तले उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन शुभ परिणामो से मरण के कारण वह देव हो गया और अन्तरमुहूर्त मे ही समवशरण मे आकर खडा हो गया। अहो! राजा श्रेणिक को यहाँ तीव्र अर्हन्त भक्ति प्रकट हो गयी। यह सत्य है कि दूसरे की वाणी के माध्यम से अपने भाव भी निर्मल होते है।

भो ज्ञानी! मृत्यु से नही डरना यही साधक की साधना है और मृत्यु का बोध हो जाए इसी का नाम है सल्लेखना तथा रत्नत्रय मे लीन हो जाना इसी का नाम है समाधि। जन्म माँ के साथ हो सकता है लेकिन आवश्यक नही कि मृत्यु के समय माँ बैठी हो। जन्म देने वाली माँ जन्म के समय तेरे ऊपर हाथ फेर देगी लेकिन ध्यान रखो मृत्यु क समय एकमात्र जिनवाणी माँ ही हाथ फेरेगी। मनीषियो! ध्यान रखो आचार्यजिनसेन स्वामी ने 'महापुराण' मे त्रेपन क्रियाओ का उल्लेख किया है उसमे त्रेपनवी क्रिया निर्वाण की है। अत सम्यकदर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यकचारित्र मोक्ष के

हेतु है इनसे बध नही होता है, बध तो राग से होता है।

मनीषियो! आचार्य भगवन कह रहे हैं कि किसी पर करुणा करो या न करो पर निज पर तो करुणा कर लेना। यदि कही विपरीत श्रद्धान हो गया तो तीर्थंकर महावीर स्वामी से पूछ लेना कि प्रभु! तीर्थंकर होने के पूर्व आपको भी कितने भव भटकना पडा? एक क्षण के विपरीत श्रद्धान से भी कभी सयम ज्ञान चारित्र को जड की क्रिया कहकर झूठा मत कह देना। अहो! जितने अश मे सम्यक्त्व है, उतने अश मे किंचित मात्र भी बध नही है। क्योकि श्रद्धा बध का हेतु नही है। श्रद्धा मे जो शुभ–उपयोग है वह आपके पुण्य–आस्रव बध का हेतु है। जितने अश मे राग है उतने अश मे बध होता है। समयसार जी' मे आचार्य कुदकुद स्वामी कह रहे है कि राग ही कर्म का बध करा रहा है। हे जीव ! छूटना चाहता है तो विरागता की सपत्ति को स्वीकार करो ऐसा भगवान जिनेन्द्रदेव का उपदेश है। अत जितने अश मे ज्ञान है, उतने अश मे बध नही है परतु जितने अश मे राग है उतने अश मे नियम से बध है। चारित्र को बध का हेतु किसी भी जिनआगम मे नही लिखा। चरित्र और चारित्र इन दोनो शब्दो का अर्थ अलग होता है। चरित्र यानि किसी व्यक्ति का जीवन परिचय और चारित्र यानि सयम। जिसका चारित्र निर्मल है जितने अश मे सयम है उतने अश मे बध नही है। इसलिए सम्यक्दर्शन ज्ञान, चारित्र की ओर बढो। राग छोडो वीतरागता को अपनाओ।

अंबिका-सिंगनीकुप्पम्

दक्षिण आरकाट जिला

"बध के हेतु–कषाय और योग"

योगात्प्रदेशबन्ध स्थितिबन्धो भवति तु कषायात्।
दर्शनबोधचरित्र न योगरूप कषायरूप च।।२१५।।

अन्वयार्थ प्रदेशबन्ध = प्रदेशबन्ध (योग से होनेवाले बन्ध का प्रकार)। योगात् तु =मन वचन काय के व्यापार स तथा। स्थितिबन्ध = स्थिति बन्ध कषायो से होनेवाला बन्ध। कषायात् = क्रोधादिक कषायो से। भवति =होता है, दर्शनबोधचरित्र = सम्यग्दर्शन, सम्यकज्ञान सम्यकचारित्ररूप रत्नत्रय। न योग =न तो योगरूप है। च कषायरूप = और न कषायरूप ही है।

।। पुरुषार्थ देशना ।। ११३।।

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते है। आचार्य भगवन अमृतचन्द्र स्वामी ने ग्रथराज पुरुषार्थ सिद्धयुपाय" मे अलौकिक सूत्र प्रदान किये हैं। यह जीव एक बार मनुष्य के भाव को प्राप्त कर लेता है तो अनत बार मनुष्य के वेश को प्राप्त नही करता। जो मानवता से भरा है, चारित्र से भरा है, श्रद्धा से भरा है ज्ञान से भरा है उसका नाम मुनष्य है। एकात से दर्शन मोक्ष नही, एकात से ज्ञान मोक्ष नही एकात से चारित्र मोक्ष नही तीनो की एकता का नाम मोक्षमार्ग है। बहुत निर्मल दृष्टि करके समझना है। जिस दिन अनेकात समझ मे आ गया उस दिन रत्नत्रय शब्द भी नही कहना पडेगा। एकात की श्रद्धा का नाम मिथ्यादर्शन है एकात का ज्ञान मिथ्याज्ञान है एकात का चारित्र मिथ्याचारित्र है। जहाँ श्रद्धा थी वहाँ विश्वास था जहाँ श्रद्धा समाप्त हो जाती है वहाँ विश्वास पलायन कर जाता है। वर्द्धमान महावीर स्वामी से पूछ लेना–आपको विश्व पर विश्वास हो–न–हो लेकिन विश्व को आप पर विश्वास है, क्योकि आपने विश्व–विजय नही की आपने तो निज की आत्मा पर विजय प्राप्त की है। अहो! विश्वास का पात्र विश्व–विजयी नही बन पाता विश्वास का पात्र आत्मजयी ही बनता है।

भो ज्ञानी! राम ने बटवारा नही मॉगा उन्होने तो बडे हिसाब से काम किया। यदि हिस्सा मॉग लेते तो राम मात्र अवधपुरी के किसी कोने के राजा होते क्योकि बटवारे मे तो कोना ही मिलता है। एक कोना लक्ष्मण के हाथ मे होता तो दूसरा कोना भरत के हाथ मे तीसरा कोना शत्रुघ्न के हाथ मे और चौथा कोना राम के हाथ मे होता। पिताजी भी तो कुछ हिस्सा माग लेते तो विश्व के राज्यो मे राम का राज्य नहीं होता, एक कोने मे नाम होता। राम ने राज्य नही मॉगा तो

आज विश्व के कोने–कोने मे राम का राज्य है, क्योकि उन्होने कह दिया था–हे जनक! हे जननी! प्राण श्रेष्ठ नही, प्रण श्रेष्ठ है। यदि राम प्रण छोड देते, तो दशरथ के राम तो बने रहते, पर मर्यादा पुरुषोत्तम नही कहलाते। राम यदि यह सोचते कि माँ कैकई मेरे राज्य को छीन रही है तो आप ही बताओ क्या भाव आते? राम ने अनेकात से सोचा कि माँ कैकई मेरे राज्य को कहाँ छीन रही है? अहो! मेरे छोटे भैया को राजा बनाना चाह रही है, यह तो बहुत अच्छा होगा। यदि मै अयोध्या मे रहूँगा तो बडे होने के कारण लोग मेरी ओर देखेगे, मेरे भैया को राजा नही मान पाएँगे। अत वह स्वत जगल चले गए। अनेकात की दृष्टि को देखना, परिणाम खराब नही हुए। यहाँ भरत की दृष्टि को देखना। यदि आप होते तो मुस्करा जाते कि मेरी माँ ने बहुत अच्छा किया कि मेरे लिए राज्य माँग लिया। भरत कह रहे हैं– मै अपने भैया को बुलाने जा रहा हूँ। अहो माँ! तुमने राज्य माँग लिया। भरत को राज्य भी मिल गया, लेकिन ध्यान रखो, राम का प्रबल पुण्य का योग था कि जगल मे भी वह राजा बनकर ही रहे। इसीलिए जीवन मे यह ध्यान रखना मेरे पुण्य का साम्राज्य खाली न होने पाए, उसके लिए एक कटोरा आपको लेकर ही चलना पडेगा।

भो ज्ञानी! आज लोक मे घर मे परिवार मे जो विवाद होते हैं, मात्र अनेकात दृष्टि के अभाव मे ही होते हैं। जिस दिन अनेकात दृष्टि आ जायेगी उस दिन आप किसी को कभी अँगुली नही दिखाओगे। जब तुम को अहकार आने लग जाये कि मैं बहुत–बहुत श्रेष्ठ हूँ उस समय भगवान को देखना और जब तुमको यह लगे कि मै बहुत हीन हूँ, हीन भावना मे चले जाओ तो सुबह से उस कुत्ता को देख लेना, जिसके कान से रक्त बह रहा है। जब तुम यह समझने लग जाओ कि मैं बहुत ज्ञानी हूँ तो अपने से ऊँचे विद्वानो को देखना और जब तुम यह समझने लग जाओ कि मैं बहुत अज्ञानी हूँ तो एक जड जीव को देख लेना। बताओ तुम्हारी दृष्टि कहाँ जाएगी। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं–शत्रु से भयभीत मत होना, मित्र मे भयभीत मत होना, भो ज्ञानी! उन परिणामो से भयभीत हो जाओ जिन परिणामो से मित्र तुम्हारा शत्रु बन गया। इसी का नाम सम्यक्‌दर्शन है, जो किसी जीव को शत्रु न बनने दे, किसी जीव को दोषी न बनने दे। पर यह ध्यान रखना, परिणाम तुम्हारे ऋजु रहेगे तो कोई आपको शत्रु की दृष्टि से नहीं देखेगा। इसीलिए तीर्थभूमि मे पुण्य भूमि मे आकर इतना ही कह देना–प्रभु! मुझे कुछ नही चाहिए आपके दोनो चरण कमल चाहिए। हे जिनदेव! आपके दोनो चरणकमल मेरे ह्रदय मे विराजे और मेरा ह्रदय आपके चरणो मे विराजे। बस योग और उपयोग को सँभाल लेना, यही मोक्षमार्ग है।

मनीषियो! दो सौ पद्रहवीं कारिका मे पूरे जैन दर्शन के सिद्धात को भर दिया है कि श्रद्धा से कर्मबध नहीं होता, ज्ञान से कर्मबध नहीं होता है, आचरण से कर्मबध नहीं होता। योगो से तो प्रदेशबध होता है। अत मन वचन काय की कुटिल प्रवृत्ति जहाँ होगी, वहीं पाप है। चाहे आप

पाप करो न करो पर कुटिल परिणति जहाँ बनी, वहाँ निश्चित बध है और जहाँ कषाय परिणाम हुए, क्रोध–मान,–माया–लोभ परिणति जहाँ बनी वहाँ, स्थितिबंध हो गया। इसीलिए ध्यान रखना, रत्नत्रय से बध नही है। बध हमेशा योग और कषाय से होता है। भो ज्ञानी! आज से अपने मन–वचन–काय की कुटिलता को बचाकर चलना और कषायो को भद्र कर लो। यदि छोड नही पा रहे हो तो कम से कम कषाय को तो मद रखना प्रारभ कर दो। अहो! अपराधी स्वय अपराध ा स्वीकार कर लेता तो सजा कम हो जाती है। यदि तुमसे पाप हो भी गया और प्रायश्चित भी कर लिया तो भो ज्ञानी! पाप मे ऋजुता आ जाती है। हे भगवान आत्माओ! भगवत्ता का भान कर लेना दोषो को दोष मानकर चलना। ध्यान रखना पुण्य के उदय मे सब पाप ढँक जात हैं। पुण्य की काति का खण्डन करनेवाला पापकर्वी होता है और जिस दिन वह उदय मे आ जाएगा उस दिन पुण्य तुम्हारा सभलेगा नही। ध्यान रखो तीर्थंकर व चक्रवर्ती जैसे जीवो का भी पाप प्रकट हुआ तो उनकी प्रकृति उस पाप को छिपा नही पाई। अहो! गर्भधान एकात मे हो सकता है, पर माँ उदर को छिपाकर कहाँ ले जाएँगी? ऐसे ही पापकर्म तुम एकात मे कर सकते हो, लेकिन ध्यान रखना पाप के परिणाम को तुम्हे सबके सामने ही भोगना पडेगा।

"परमात्म स्वरूप रत्नत्रय"

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोध ।
स्थितिरात्मनि चारित्र कुत एतेभ्यो भवति बन्ध ।।२१६।।

अन्वयार्थ आत्मविनिश्चति = अपने आत्मा का। विनिश्चय दर्शनम् = सम्यग्दर्शन। आत्मपरिज्ञानम = आत्मा का विशेष ज्ञान। बोध = सम्यग्ज्ञान। और आत्मनि स्थिति= आत्मा मे स्थिरता चारित्र = सम्यक्चारित्र। इष्यते = कहा गया है तो फिर। एतेभ्य त्रिभ्य' = इन तीनो से। कुत बन्ध भवति = कैसे बध होता है ?

|| पुरुषार्थ देशना || ११४||

मनीषियो! अतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते है। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने बडा ही सरल सूत्र दिया है कि बध से भयभीत होने के साथ–साथ बधा के हेतुओ से भयभीत हो जाओ। सम्यक्त्व बध नही ज्ञान बध नही चारित्र बध नही। अज्ञान ही बध है असयम ही बध है अश्रद्धान ही बध है। आगम मे प्रकृति–बध प्रदेश–बध, स्थिति–बध और अनुभाग–बध की चर्चा है। जिस कर्म का जो स्वभाव है वह अपने अनुरूप उदय मे आता है बिना स्वभाव के उदय मे नही आता। कुछ ऐसे भी कर्म है जिनकी मूल प्रकृतियाँ अपने स्वरूप को नही बदलती उत्तर प्रकृतियो मे सक्रमण हो जाता है। एक क्षण के परिणाम मिथ्यात्व रूप थे, पर सम्यक निमित्त को देखा तो वह मिथ्यात्व सम्यक् रूप परिवर्तित हो गया। साता असाता रूप सक्रमित हो जाते है और असाता साता रूप सक्रमित हो जाते है। जो कर्म अशुभफल दे रहा था, वही कर्म शुभ–फल देना प्रारभ कर देता है। इसको आश्चर्य मत मानना। शाम को खिलाई गयी घास सुबह दुग्ध मे वृद्धि कर देती है। ऐसे ही एक अतर्मुहूर्त के परिणाम द्वितीय अतर्मुहूर्त मे आपको पुण्य के रूप मे फलित हो जाते है और एक मुहूर्त पूर्व किया गया अशुभ–कर्म द्वितीय मुहूर्त मे पाप के रूप मे भी फलित होते देखा जाता है।

भो ज्ञानी! नवयुवती के दर्पण देखते समय योगी की छाया दर्पण पर पड गई, विकार आ गए कि अहो! यह नग्न भेष कहाँ से दिख गया मेरे श्रगार मे दूषण आ गया? मुनिराज जगल नही पहुँच पाए परतु उस युवती के शरीर मे कुष्ठ हो गया। यह परिणामो की परिणति थी।

चित्र को देखकर चित्र भी नही दिखा, रूप को देखकर रूप को नही देख पाये, रूप को देखकर स्वरूप को भूल गये। एक अतर–मुहूर्त मे ही सारा शरीर गलित–कुष्ठ से युक्त हो गया। अहो! देखना लक्ष्मीमति को देखना श्रीपाल को। यह परिणामो की दशा है कि जहाँ तुमने जैसा परिणाम किया वैसा उदय मे आया। इस आत्म–भूमि मे जैसा बोओगे, जो दाना डालोगे, वही ऊगता है। जैसा परिणाम करोगे, उसी कर्म की फसल सामने आएगी। सत्य यह है कि जीव अपने भाव करके बध सुनिश्चित कर लेता है। द्रव्य सामने आए न आए, पर चितवन करने से द्रव्य का स्वाद तो समझ मे आता है। अहो ज्ञानियो! तुम समवोशरण मे पहुँचो न पहुँचो लेकिन यदि समवोशरण की आराधना कर रहे हो तो समवशरण का भाव तो आ रहा है नै ?

भो ज्ञानी! तीर्थंकर जिनेन्द्र का शासन है, यह सर्वज्ञ की वाणी है, जिनको अवगाहन करना हो तो कर लीजिए, अन्यथा अभागे जीव को शीतल जल की सुवास आती कहाँ है? जिसका पुण्य क्षीण हो चुका है, वह चद्रमा पर धूल देखता है और जिसका पुण्य निर्मल होता है? वह पृथ्वी को चॉद और सितारो जैसा देखता है। कर्म की बहुत विचित्र प्रकृति है कि एक तो जीव का सुकृत्य समाप्त हो रहा है दुष्कृत्य की वृद्धि हो रही है और एक जीव का सुकृत्य बढ रहा है दुष्कृत्य की हानि हो रही है। षटगुण हानि वृद्धि" यह जैनदर्शन का गहनतम सिद्धात है। दस योगी एक साथ ध्यान कर रहे है और दस मे से पॉच सिद्ध बनकर चले गए क्योकि अपूर्व–अपूर्वकरण परिणाम चल रहे थे और कर्म की प्रकृति अपने आप मे शुष्क और क्षीण होती चली जा रही थी। शत्रु की पराजय कब होती है? आपके वीर्य की वृद्धि हो और शत्रु के वीर्य की हानि हो, बस विजयश्री तुम्हारे साथ है। इस प्रकार कर्म की क्षीणता और आत्म–विशुद्धि की उत्कृष्टता हो तो मोक्ष तेरी मुट्ठी मे है। कर्म की तीव्रता से जीव नरक जाता है। पुण्य पाप की मध्य अवस्था मनुष्यआयु का आस्रव कराने वाली है। पाप की तीव्रता से तिर्यंच और नरकगति होती है और कर्मों की पूर्ण क्षीणता से सिद्धत्व की प्राप्ति होती है। यह अरिहत अवस्था है क्षीणाक्षीण मे ही समवशरण लगता है। पूर्ण क्षीण का कोई समवशरण नही होता। परतु ध्यान रखना क्षीणाक्षीण से रहित वही हो सकेगा जो ससार के पापो से छेडा–छाड को छोड देता है। जब तक तुम पापो मे तल्लीन रहोगे तब तक क्षीण नही हो सकते। उसके लिए चाहिए है दर्शन बोध चारित्र। ये जब तक तुम्हारे पास नही आ रहे है तब तक कुछ मिलने वाला नही।

भो ज्ञानी! जब तक पूर्ण शुष्कता नहीं आती, तब तक दीवार पर चिपकी बालू भी झडती नहीं है। विषयो से शुष्क, भोगो से शुष्क और जन से शुष्क, परिजन से शुष्क, अत मे जिसमे तुम विराजे हो उस देह से भी उदासीन हो। जब तक ऐसी श्रद्धा नही बनाओगे, तब तक सम्यक्त्व नहीं, सम्यक्ज्ञान नहीं, सम्यक्चारित्र नहीं। अहो मुमुक्षु आत्मन्! मोक्ष का पुरूषार्थ नही तो मुमुक्षु भाव

कैसा? 'राजवार्तिक' ग्रथ मे लिखा है इद्रियो को जो दोष देता है वह महापापी है, वह अज्ञानी है। इद्रियाँ कभी नहीं कहती हैं कि तुम भोगो मे लगाओ। ध्यान रखना, कहने वाला कोई दूसरा ही है। भोग इद्रियॉ नहीं भोगती हैं भोगने वाला कोई दूसरा है। यदि इद्रियो से ससार होता तो पाँच इद्रियो के बिना मोक्ष भी नहीं होता। चक्षुइद्रिय आपको जिनवाणी पढने को, जिनेन्द्र की वदना करने को मिली है। कर्ण-इद्रिय आपको जिनवाणी सुनने को मिली है स्पर्शन आप को जीवो की जानकारी के लिए और पैर आपको तीर्थ वदना के लिये मिले है। प्रत्येक इद्रिय आप से कह रही है कि मेरा उपयोग कर लो, लेकिन उपयोग आपने नही किया। जब उत्कृष्ट पद को निहारते हो तो उत्कृष्ट भाव नजर आते है, पर उत्कृष्ट कार्य नजर क्यो नही आते?

मनीषियो! ध्यान रखना यह कारिका परमात्मा के स्वरूप की चर्चा करने वाली है। यहाँ निश्चय रत्नत्रय की चर्चा चल रही है कि आत्मा का निश्चल श्रद्धान ही सम्यक्त्व है आत्मा को जानना ही निश्चय सम्यक् ज्ञान है। निज आत्मा मे स्थिर हो जाना ही परम निश्चय चारित्र है। गृहीलिग मुनिवेष यह साधन है। अहो! अब आप भेष मे भी राग मत कर बैठना कि मै मुनि हूँ, कि मै श्रावक हूँ। ये लाछन हैं, यानी चिह्न है, वस्तु-धर्म नही है। वस्तु-धर्म की प्राप्ति के हेतु चिह्न है। परतु ध्यान रखना बिना चिह्न (लाछन) के लक्ष्य होता भी नही है। लाछन दोष मत समझ बैठना। दौलतराम जी कह रहे है यो चित्य निज मे थिर भये, तिन अकथ जो आनद लह्यो। सो इद्र, नाग नरेन्द्र व अहमिद्र कै नाही कह्यो।' यह है परम रूप स्थिर भाव समयसार यही है पुरुषार्थ सिद्धि उपाय। अहो मुमुक्षु! तुम इसे कैसे बध मानते हो? जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बध मानता है उससे अभागा इस विश्व मे दूसरा कोई नही है। जिनमुद्रा को जो बध का हेतु कहे, उसे नियम से नरक का बध हो चुका है। एक सज्जन आए बोले-कोई सम्यकदृष्टि नजर नहीं आते भैया! सम्यकदृष्टि मिले न मिले पर पहला मिथ्यादृष्टि तो मुझे मिल चुका है।

अत्तागमतच्चाण सद्दहणादो हवेइ सम्मत्त।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।।

भो ज्ञानी आचार्य कुदकुदस्वामी से पूछ लेना उन्होने नियमसार जी की गाथा न पाच मे भी यह कहा है सात तत्त्व पर जो श्रद्धान है, आप्त, आगम तपोधन इन पर जो श्रद्धान है, वह वीतराग व्यवहार सम्यक्दर्शन है।

मदिसुदणाणबलेण दु सच्छंद बोल्लदे जिणदिट्ठ।
जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिणमग्गलग्गरवो।। (स सा)

जो ज्ञान के बल पर स्वच्छद होकर बोलता है, उसको आचार्य कुदकुद देव ने रयणसारजी ग्रथ गाथा न तीन मे मिथ्यादृष्टि कुदृष्टि लिखा है। इसलिए समझ मे नही आये तो वीतरागवाणी

को हाथ जोड लेना। कह देना प्रभु! क्षयोपशम मेरा भी बढे, लेकिन मेरी जीभ गलत कहने को कभी नहीं हिले, मेरे कान गलत सुनने को कभी न खुले और मेरी आँखे असत्य देखने को कभी न खुले।

अहो! कुदकुद आचार्य भगवन् न होते तो यह पुण्यवाणी कहाँ सुनने को मिलती। जो जिनवाणी मे आनद है, जो ज्ञान मे आनद है, वह ससार मे कहीं नहीं है। अज्ञानता ही दु ख का हेतु है। पर ऐसा ज्ञान देने वाले वे आचार्य भगवन् , जिन्हौंने मुझे परमज्ञान ही नहीं दिया, बल्कि मुझे तो तीनो दिये हैं अमृत ने अमृत परोस दिया है और उनकी वाणी को बताने वाले वे आचार्य भगवन् विराग सागर जी महाराज जिन्होने यह रूप न दिया होता तो स्वरूप का भान होता कैसे? रूप के अभाव मे स्वरूप की प्राप्ति सभव भी तो नही होती है। इसलिए मनीषियो! भावना भाना कि प्रभु! वही रूप मुझे प्राप्त हो, जो धरती के देवता कहलाते है। उस परमहस अवस्था की प्राप्ति सयम के माध्यम से होती है और उस सयम के विधाता आचार्य भगवन हैं, उनके गुणो का हम सभी स्तवन करे।

चितौडगढ, जैन मदिर और कीर्तिस्तम

"तीर्थंकर प्रकृति व आहार प्रकृति के हेतु"

सम्यक्त्वचारित्राभ्या तीर्थंकराहारकर्मणो बन्ध ।
योऽप्युपदिष्ट समये न नयविदा सोऽपि दोषाय।। २१७।।

अन्वयार्थ अपि = और। तीर्थंकराहारकर्मण = तीर्थंकर–प्रकृति और आहारक–प्रकृति का। य बन्ध = जो बन्ध। सम्यक्त्वचारित्राभ्या = सम्यक्त्व और चारित्र से। समये उपदिष्ट = आगम मे कहा है। स अपि = वह भी। नयविदा = नय के ज्ञाताओ को।दोषाय न = दोष के लिये नही है।

सति सम्यक्त्वचरित्रे तीर्थंकराहारबन्धकौ भवत ।
योगकषायौ नासति तत्पुनरस्मिन्नुदासीनम्।। २१८।।

अन्वयार्थ यस्मिन् = जिसमे। सम्यक्त्वचरित्रे सति = सम्यक्त्व और चारित्र के होते हुए ।तीर्थंकराहारबन्धकौ = तीर्थंकर और आहारकप्रकृति के बन्ध करने वाले। योगकषायौ भवत =योग और कषाय होते हैं, पुन = और।असति, न = नही होने पर नही होते है अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र के बिना बन्ध के कर्त्ता योग और कषाय नही होते। तत् = वह। सम्यकत्व और चारित्र। अस्मिन् उदासीनम् = इस बन्ध मे उदासीन है।

॥ पुरुषार्थ देशना ॥ ११५॥

मनीषियो! वर्द्धमान स्वामी के शासन मे हम सभी विराजते हैं। आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने सूत्र दिया है कि जीवन मे रत्नत्रय कभी भी बध का हेतु नही। वह निर्बंध का ही हेतु है। जो बध हो रहा है वह राग से है, प्रमाद से है, मिथ्यात्व से कषाय से है परतु रत्नत्रय धर्म से कभी बध नहीं होता, लेकिन इस विषय को भी अनेकात से लगाना। आचार्य उमास्वामी महाराज का 'सम्यक्तव च," सूत्र कह रहा है कि सम्यक्त्व के माध्यम से भी देव आयु का आस्रव होता है तो क्या मिथ्यादृष्टि देव बनता है ? तो प्रथम सूत्र मे कह दिया था कि बालतप से भी देव बनता है, परतु देव, देव मे अतर है। बालतप करनेवाला भवनत्रय मे जायेगा अथवा बारह स्वर्ग से आगे नही जा सकता जबकि सम्यक्दृष्टि जीव तप करके सर्वार्थसिद्धि तक जायेगा। देशव्रती भी यदि उत्कृष्ट रूप से स्वर्ग मे जाएगा तो सोलह स्वर्ग के आगे नहीं जाता। अहो! सयम की महिमा, एक अभव्य

मिथ्यादृष्टि जीव महाव्रतो का निर्दोष पालन करके नौवे ग्रैवेयक तक जाता है। यह मात्र द्रव्य–सयम की महिमा है, द्रव्य–भेष की नही। द्रव्य–भेषी ग्रैवेयक तक भी नहीं जा सकता मात्र नरक ही जा सकता है लेकिन द्रव्य–सयमी कभी नरक नहीं जाएगा। मुनि लिग को धारण करने वाला एक मिथ्यादृष्टि जीव नरक नही जा सकता क्योकि हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इनका उसने त्याग किया है। वह अनतानुबधी के साथ बैठा हुआ है और कषाय की मदता है, अनाचार नहीं कर रहा है, इसीलिए वह नरक नही जा रहा है। देखना! लकडी को जलाकर, जिसमे नाग–नागनी जल रहे थे ऐसी खोटी तपस्या करके भी वह ज्योतिष्क देव हुआ क्योकि उसके जलाने के भाव नही थे। अज्ञानता मे उससे जल रहे थे। यानि सिद्धात समझे बिना हम कुछ भी कह लेते हैं।

भो ज्ञानी! जिस जीव ने निर्दोष सयम का पालन किया हो और मिथ्यात्व का सेवन नही करता हो। (विशेष रूप से द्रव्य–मिथ्यात्व का सेवन नही करता) क्या वह नौवे ग्रैवेयक मे नही जायेगा? जो जा रहा हो वह भाव से मिथ्यादृष्टि ही होता है। जितने ग्रैवेयक जा रहे है वे सभी मिथ्यादृष्टि जा रहे है–ऐसा भी मत कह देना बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि जीव की जाने की सीमा ग्रैवेयक तक है। भो मनीषियो! सम्यक्दर्शन, सम्यकज्ञान सम्यक्चारित्र वास्तव मे बध का हेतु नही है। इसके साथ मे जो प्रशस्त राग है उससे देवआयु का आस्रव होता है। उज्जवल उत्कृष्ट चारित्र नही था, इसीलिए उस जीव को स्वर्ग मे जाना पडा और उज्वल निर्मल चारित्र होता तो नियम से मोक्ष ही जाता। जितनी जिसकी साधना होगी उतना ऊँचा स्वर्ग। जो सर्वार्थसिद्धि जा रहा है उसके मोक्ष होने की कुछ ही न्यूनता थी पर जो भवनत्रय मे चला गया उसका चारित्र सम्यक्त्व से हीन था।

भो ज्ञानी! मोक्षमार्ग पर आने के बाद आपको जितना र्निदोष चारित्र होने का ध्यान रखना होता है उतना ही निर्दोष सम्यक्दर्शन का भी ध्यान रखना चाहिए। अहो! अब तो मेरे पास पिच्छी–कमण्डल निर्ग्रंथ भेष आ चुका है अब तो मोक्ष सुनिश्चित है। अहो ज्ञानी! यह सिद्धात नही है सिद्धि–प्रसिद्धि दोनो ही मोक्ष की सिद्धि नही करा पायेगी। मोक्षमार्ग तो निरास्रव है सास्रव नही है। अरे! जितने समय आपने ऐसा चितवन किया कि हम तो अमुक को सुधार कर रहेगे उतने क्षण आप अपने आपसे हटे हो। सुनिश्चित है कि आपके परिणाम कलुषित होगे। अरे! रत्नत्रयधारी तो निर्विकार होता है, पर रत्नत्रय–धर्म मे उदास कभी नहीं हो जाना। बाह्य द्रव्यो से उदास होना प्रपचो से उदास होना, देह के सस्कार से उदास हो जाना, समाज के प्रपचो से उदास होना है। 'तत्त्वसार' ग्रथ मे आचार्यदेवसेन स्वामी कह रहे हैं– पचपरमेष्ठी भी मोक्ष प्राप्ति मे बाधक हैं अर्थात् परमेष्ठी तत्त्व से भी आप राग–दृष्टि मत रखो, भक्ति–दृष्टि रखो। दोनो में अतर है। पच परमेष्ठी की भक्ति तो सम्यक्दृष्टि को होती है, जबकि पचपरमेष्ठी का राग मिथ्यादृष्टि को ही होता है

क्योकि वह उन्हे कुलदेवता मान कर पूजता है। मिथ्यादृष्टि देव अरिहत–भगवान की पूजा कुलदेवता मानकर करता है और सम्यक्दृष्टि जीव भगवान को भगवान मानकर चलता है।

भो ज्ञानी! एक समय के परिणामो मे विकल्पता का आना तेरे पतित चारित्र गुण का द्योतक है क्योकि काषायिक–भाव चारित्र और सम्यक्त्व दोनो का घात करता है। ध्यान रखना, जिस जिनालय मे आप रोज वदना करने जाते थे और वहाँ आपके मन की इच्छा पूरी नहीं हुई, तो आप कहने लगे कि अब इस मदिर मे पूजा करने नहीं आना। अहो! तेरी आकाक्षा की पूर्ति नही हुई तो दोष ही दोष हैं। अहो ज्ञानी! जिस प्रकार अष्ट द्रव्य की थाली लगाकर जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे पहुँचता है ऐसे अष्टाग सम्यकत्व के द्रव्य की थाली लगाकर जाया करो। परतु जिसके आठ अगो कि थाली सूख गई भो ज्ञानी! उसे अष्टम–वसुधा प्राप्त होने वाली नहीं है। अष्ट–द्रव्य की थाली योही मत लगा कर बैठ जाया करो। अरे! अष्ट द्रव्य की थैाली अष्ट कर्मो के नाश के लिये लगाना। पर आप तो भगवान को पानी पिलाने आए थे, अक्षत खिलाने आए थे या अपनी भावना प्रकट करने आये थे? बात को समझना क्योकि जिनवाणी कहती है कि प्रतिक्षण बध होता है। जिस समय मै अक्षत बोल रहा था, उस समय अधूरा मत्र पढ रहा था, उधर पडित जी ने आधा मत्र बोल दिया और आपने जोर से बोल दिया अक्षत। अहो! एक बार छद भूल जाए, लेकिन मत्र नही भूलना मत्र से नही भटकना। कभी–कभी मन इतना भटक जाता है कि ध्यान पाठ पर नही होता। अत समय तो लगा ही रहे हो द्रव्य भी लगा रहे हो परिणाम और लगा दो। यदि परिणाम जग गए, तो कल्याण हो गया। क्योकि भाव से शून्य क्रिया प्रतिफलित नही होती। आप अनन्त बार पूजा कर चुके हो पर पूज्य नही बने। आप चाहो कि मैं एक बार पूज्य बन जाऊँ तो अनन्त बार पुजारी तो बनना ही पडेगा।

भो ज्ञानी! प्रभु के चरणो मे ही तू फटाका फोड रहा है, जबकि यह अहिसा–स्थली है, यह तीर्थ–भूमि है। यहाँ ऐसा मत सोच लेना कि भगवान हमे बचा लेगे। जैनदर्शन स्पष्ट कहता है कि चाहे प्रभु के चरणो मे रहना, चाहे स्वय के चरणो में रहना जैसा कर्म करोगे, बध वैसा निश्चित होगा। हॉ, रत्नत्रय के सद्भाव मे बध होता है लेकिन रत्नत्रय से बध नही होता क्योकि रत्नत्रय के सद्भाव मे प्रशस्त राग है वह बध का हेतु है इसीलिए यह जीव स्वर्ग जाता है। दसवे गुणस्थान तक राग चलता है, जो ससार मे भटका देता है। तो मनीषियो! चौथे गुणस्थान का लोभ कहाँ ले जाएगा? सिद्धात ग्रथो मे लिखा है कि छठवे गुणस्थान मे तीव्र लोभ कषाय सताती है कि सब दीक्षा ले ले, सबका कल्याण हो जाए सबको मै व्रती बना दूँ। यह लोभ है। देखना! तीर्थंकर–प्रकृति जिससे बध रही है, वह भी लोभ है। विश्व के प्राणीमात्र का कल्याण हो जाए लेकिन वह लोभ ऐसा लोभ नही है कि नरक ले जाए। वह लोभ तीव्र पुण्य–बध का हेतु रखता है। जिसे सिद्धात की भाषा

मे लोभ कहा जा रहा है, वही आप सहज भाषा मे कहोगे कि यह प्रशस्त राग है, यह करुणा भाव है सक्लेशतम् दया है। उस दया के प्रभाव से तीर्थंकर–प्रकृति का बध होता है।

भो ज्ञानी! तीर्थंकर–प्रकृति और आहारक शरीर, यह दोनो प्रबल पुण्य– प्रकृतियॉ हैं। यह सामान्य जीवो के बध को प्राप्त नही होती है, प्रबल पुण्य चाहिए। जिस जीव ने विशुद्ध भाव से सोलहकारण भावना को भाया है वही तीर्थंकर–प्रकृति का बधक होता है। अहो! दर्शनविशुद्धि भावना के अभाव मे पद्रह–भावनाए शून्य है क्योकि सम्यक्त्व अक है, शेष सब शून्य है। यदि अक न हो तो उस शून्य की कोई कीमत नही है।

भो मनीषियो! जहॉ–जहॉ अश्रद्धा होती है वहॉ–वहॉ सक्लेशता बढती है। जैसा–जैसा श्रद्धागुण प्रकट होता है वैसा–वैसा आनद प्रकट होता है। सिद्धात है कि जैसे ही तुम्हारा दर्शन प्रकट होगा, कषाय तत्क्षण मद होगी और अश्रद्धान जैसे ही प्रकट होगा, कषाय भी तत्क्षण प्रकट होगी। मिथ्यात्व के नष्ट होने पर पुन मिथ्यात्व मे आने मे देर नही लगती पर श्रद्धा के जाने पर श्रद्धा को बुलाने मे बहुत समय लगेगा। श्रद्धा एक बार चली गई उसको आप पुन बना नही पाओगे आप जीवन भर दुखी रहोगे तडफोगे तरसोगे कि हे प्रभु! श्रद्धा के वे दिन कहॉ गये और जैसे ही श्रद्धा प्रकट होती है, आनद ही आनद प्रकट होता है। इसीलिए अपूर्वकरण–परिणाम होता है कि मिथ्यात्व मे भी जो अनुभूतियाँ नही हुई वे सम्यक्त्व प्रकट होते ही अनुभूतियॉ होती है, इसी का नाम तो अपूर्वकरण है। इसीलिए जीवन मे मिथ्यात्व और अश्रद्धा को प्रकट कराने वाली सामग्रियो से दूर रहे। परन्तु ध्यान से सुनना, देव शास्त्र, गुरु, वीतराग धर्म से तो तुमको जुडकर चलना ही पडेगा अन्यथा पूरी पर्याय खोखली निकल जाएगी।

भो ज्ञानी! दर्शनविशुद्धि भावना कह रही है कि पच्चीस दोष हमने आपको गिना दिये है लेकिन पच्चीस दोष तो सख्या के है परिणामो के नही है। जितने प्रकार के तुम्हारे परिणाम है उतने प्रकार के दोष है। जिन–आगम मे विशालता की गणना अको मे नही की जाती प्रदेशो पर की जाती है, जो असख्यात–लोक–प्रमाण है।

भो मनीषियो! आचार्य भगवन् कह रहे है कि तीर्थंकर प्रकृति–और आहारक प्रकृति, इन दोनो के बध का हेतु सम्यक्चारित्र है। क्योकि मलीनता चारित्र मे आती है, ज्ञान मे नही आती। ज्ञान तो ज्ञान होता है, ज्ञान सम्यक् या ज्ञान मिथ्या नही होता। सम्यक्त्व के कारण सम्यक्त्वपना और मिथ्यात्व के कारण मिथ्यात्वपना कहा जाता है। इसीलिए यहॉ सम्यक्त्व और चारित्र की चर्चा की है। लेकिन ज्ञान को बिल्कुल निर्दोष छोड दिया है। देखो किसी को किसी भी शास्त्र का ज्ञान नही है, पर वह तीर्थंकर–प्रकृति का बध कर सकता है, परतु यदि सम्यक्त्व के एक अग मे भी दोष

है तो तीर्थंकर–प्रकृति का बध नही कर सकता। किसी को एक श्लोक का भी ज्ञान नही है, वह आहारक शरीर का बध कर सकता है। लेकिन सम्यक्त्व मे जरा भी कमी है तो आहारक शरीर प्रकृ ति का कभी बध हो ही नहीं सकता। दर्शनविशुद्धि भावना की कथा पढ़ लो, इसका नाम दर्शनविशुद्धि भावना नहीं है। आठ अगो से युक्त, षट अनायतनो तीन मूढता, आठ मदो से रहित, शुद्ध सम्यक्त्व मे लीनता जा रही है और उससे युक्त विशुद्ध परिणाम बन रहे हैं तो उसका नाम दर्शन–विशुद्धि भावना है।

भो ज्ञानी! बारह भावना पढना और बारह भावना भाना, इनमे महान अतर है। भानेवाला तो एक मे एक घटा लगा देगा और पढने वाला दो मिनिट मे बारह पढ लेगा। एक व्यक्ति नौ बार णमोकार मत्र' पढता है, उसको समय लगता है। कभी–कभी पढने वाला यही खडा रह गया, पूरी सभा चली गई। अत जितनी तल्लीनता से भावना करोगे समय तो लगेगा, क्योकि भावनाए शाब्दिक नही हैं वे मानसिक हैं। पाठ शाब्दिक हैं भावनाएँ आत्मिक है जो अत करण से होती हैं। जाप शब्दो मे चलता है इसीलिए जाप और ध्यान मे अतर है। जाप मे जपा जाता है, ध्यान मे ध्याया जाता है। जाप मे जितनी निर्जरा होती है, उससे असख्यात गुनी निर्जरा ध्यान से होती है। पाठ मे जितनी निर्जरा होती है, भावनाओ मे उससे असख्यात गुनी निर्जरा होती है। इसीलिए तीर्थंकर–प्रकृति बध ा का हेतु सोलहकरण भावना का पाठ करना नही, सोलह करण भावना को भाना है। परतु जिसे आज तक भाया है उसे नही भाना जिसे आज तक नही भाया उसे भाने का नाम भावना है। आज तक हमने मिथ्यात्व को भाया है, उसे अब मत भाओ। सम्यक्त्व को नहीं भाया, उसे भाओ। सोलहकारण–भावना प्रत्येक जीव के इसलिए घटित नही हो रही, क्योकि ऐसे भाव नहीं होते। सोलहकारण भावनाओ को भानेवाला प्रबल पुण्य का बध करता है। सोलहकारण भावना वही भा पाता है जिसको पुण्य का उदय होता है। पाप के उदय मे विचार ही नहीं आते। पर्यूषण पर्व निकल जाते है परन्तु पता नही चलता कि पर्व चल रहे हैं कि दीपावली का दिन।

भो ज्ञानी! बहुत सारे कार्य हमारी निर्जरा के हेतु बन सकते है लेकिन विवेक के अभाव मे बध का कारण बन जाते हैं। ध्यान रखना जो नय की अपेक्षा से, एकात से लेकर बैठ जाता है उसे मिथ्यात्व अवस्था मे तीर्थंकर प्रकृति का बध नही होता। मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बत्तीस उपवास कर लेने से तो सोलहकारण भावना नही हुई। सोलहकारण भावनाओ को सम्यक्दृष्टि ही भाता है। आहारक–शरीर भी सामान्य मुनियो के नही निकलता। जो मुनिराज विशेष तपस्वी, वर्द्धमान चारित्रवान होते हैं उन्हे चतुर्थ काल मे ही निकलता है। जब उनके मन मे तीव्र विशुद्धि उत्पन्न होती है कि मै जिस क्षेत्र मे जा रहा हूँ उस क्षेत्र मे कोई असयम के हेतु तो नही हैं, कषाय के हेतु तो नहीं हैं, जब समझ मे नहीं आता है, तो पुतला निकल कर उस स्थान को देख कर आ जाता है।

यह सयम के प्रति तीव्र अनुराग है। अथवा कहीं पचकल्याणक हो रहे हैं और मुनिराज जहाँ विराजे हैं, तीव्र अनुराग उत्पन्न हुआ भगवान के कल्याणक कैसे होते हैं, तो उस समय पुतला निकलेगा। विशेषकर के दीक्षाकल्याणक के दिन निकलता है। लौकातिक देव भी चार कल्याणकों मे नही आते। एक मात्र दीक्षाकल्याणक मे वैराग्य को देखने आते हैं। यहाँ तक कि कोई कृत्रिम–अकृत्रिम विशाल जिनमदिर के दर्शन करने की भावना उत्पन्न हुई उस समय आहारक शरीर निकलता है।

भो ज्ञानी! अभी तक आप लोग मात्र एक बात को समझते रहे कि कोई शका हो तो पुतला निकलता है। इस सबध मे गोमटसार जीवकाण्ड ग्रथ मे आचार्य नेमीचद्रस्वामी ने लिखा है कि जिनेन्द्रदेव के जिनमदिरो की वदना के लिये और किसी प्रकार का प्रश्न उपस्थित होने अथवा सयम की रक्षा के लिए आहारक पुतला निकलता है। यह विशेष बात समझना कि इस प्रकृति का बध सातवे गुणस्थान मे ही होता है, चौथे मे नही होता और छठवे गुणस्थान मे उदय आता है। सप्तम–गुणस्थान जिज्ञासा का नही ध्यान का है। ध्यान मे कोई प्रश्न नहीं होते हैं प्रश्न ध्यान करने के लिए हो सकते है। इसीलिए यह नय–विवक्षा है कोई दोष नही है। इस प्रकार से सम्यक्दर्शन और चारित्र के होने पर तीर्थंकर व आहारक प्रकृति का बध होता है। आहारक शरीर सफेद वर्ण का होता है स्फटिक के तुल्य है परतु किसी का घात नही करता और किसी से बाधित भी नही होता। वह तो वज्रकपाट से भी निकल जाता है। तीर्थंकर–प्रकृति का बध तो मात्र सम्यक्दर्शन के सद्भाव मे हो जाएगा, लेकिन आहारक प्रकृति का बध सम्यक्त्व के होने मात्र से नही होगा, बल्कि चारित्र के साथ ही होगा। तीर्थंकर प्रकृति मे विभूति समोशरण आदि बाहरी वैभव है लेकिन आहारक शरीर चारित्र की रक्षा के लिऐ और चारित्र के उदय से ही होता है। आहारक शरीर का बध नही होगा छठवे गुणस्थान के अभाव मे उदय भी नही होगा लेकिन तीर्थंकर–प्रकृति का बध करने वाला जीव चौथे गुणस्थान से लेकर के आठवे गुणस्थान तक बध कर सकता है।

"निर्वाण का हेतु–रत्नत्रय धर्म"

शंका

ननु कथमेवं सिद्ध्यति देवायु प्रभृतिसत्प्रकृतिबन्ध ।
सकलजनसुप्रसिद्धो रत्नत्रयधारिणा मुनिवराणाम्।। २१९।।

अन्वयार्थ · ननु = कोई पुरुष शका करता है कि रत्नत्रयधारिणा = रत्नत्रयधारी मुनिवराणाम् = श्रेष्ठ मुनियो के सकलजनसुप्रसिद्ध = समस्त जनसमूह मे भलीभाति प्रसिद्ध देवायु प्रभृतिसत्यप्रकृतिबन्ध = देवायु आदिक उत्तम प्रकृतियो का बन्ध एव = पूर्वोक्त प्रकार से कथम् सिद्ध्यति = कैसे सिद्ध होगा?

समाधान

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तु पुण्य शुभोपयोगोऽयमपराध ।।२२०।।

अन्वयार्थ इह = इस लोक मे रत्नत्रयम = रत्नत्रयरूप धर्म। निर्वाणस्य एव = निर्वाण का ही हेतु। भवति = होता है, अन्यस्य न = अन्य गति का नहीं, तु यत् = और जो रत्नत्रय मे पुण्य आस्रवति = पुण्य का आस्रव होता है, सो, अयम् अपराध= यह अपराध, शुभोपयोग, = शुभोपयोग का है।

|| पुरुषार्थ देशना || ११६||

मनीषियो! भगवान वर्द्धमान स्वामी का यह पावन शासन जयवत हो, वह दशा जयवत हो जब के पावापुर की ओर चल दिये। आज वह निर्मल दिन है, जिस दिन वीतराग प्रभु ने बहिरग–लक्ष्मी का पूर्ण विसर्जन कर दिया था। धन्य हो गई वह त्रयोदशी, जिस दिन तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी ने गमनागमन का भी त्याग कर दिया। समवशरण की सम्पूर्ण विभूति बिखर चुकी है, पूरा वैभव समाप्त हो गया। अब मात्र अतरगश्री शेष है, बहिरग–लक्ष्मी समाप्त हो गई। अब पाप–प्रकृति का क्षय नहीं कर रहे, अब पुण्य–प्रकृति के क्षय मे लग गये। पाप–प्रकृतियाँ तो क्षय

हो चुकीं। अभी साता–वेदनीय शुभ–आयु, शुभ–नाम, शुभ–गोत्र पुण्य–प्रकृतियाँ विराजमान हैं। उनका क्षय करने के लिए आज से पुरुषार्थ प्रारभ हो गया। आज के दिन तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी ने योगो का निरोध किया था। अब भगवान जिनेन्द्र की साक्षात् देशना आज से नही मिलेगी, क्योकि वे मात्र निज के शोधन मे ही तल्लीन हैं। अब देह मे नहीं, विदेह मे निवास करना है। विदेह का ध्यान ही नही, विदेह मे प्रवेश करना है।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने कल सकेत दिया कि इस जीव ने बध तो किया है, परतु रत्नत्रय से बध नही होता, बध विषय–कषायो से होता है। मोक्ष निज आत्मप्रदेश से होता है, किसी क्षेत्र प्रदेश से नहीं। यदि ससार के क्षेत्र मोक्ष दिलाते होते तो मैंने निगोद से लेकर आज तक इस क्षेत्र मे भ्रमण किया है, लेकिन एक भी क्षेत्र ने मुझे मोक्ष नहीं दिया। यह तीर्थ–भूमियाँ भी मोक्ष नही देती। सत–भेष से भी मोक्ष नही होता। अहो ज्ञानी! पता नही तूने कितनी बार सत–भेष धारण कर लिए। कोटि जन्म तूने तप किये, लेकिन लेशमात्र कर्म–निर्जरा नहीं की। जबकि एक पर्याय की तपस्या कोटि–भव के कर्मो का क्षय एक श्वास मात्र मे करा देती है अर्थात् आत्म–ज्ञान से युक्त एक क्षण की तपस्या अनत भवो के कर्मो का क्षय कर देती है।

भो ज्ञानी! जब युवा अवस्था थी तब आप अपने मद मे फूले थे। अत जब अपने को देखने का समय था तब तुमने सपने–जैसा खो डाला। तुमने रागादिक भाव किये, अशुभ कर्म का बध किया किंतु जब–जब आख खुली कर्मो को ही दोष दिया। जब पौरुष था तब तुमने पुरुष को नहीं देखा और जब पुरुष देखने का मौका आया तो पौरुष चला गया। अहो! पुरुषार्थ–सिद्धयुपाय ग्रथ जिसका दूसरा नाम है जिनप्रवचन रहस्य' अर्थात् भगवान जिनेन्द्र के प्रवचनो को कहने वाला यह ग्रथ कह रहा है कि रत्नत्रय से बध नही होता फिर भी आहारक शरीर का बध रत्नत्रयधारी को ही होता है। देह को प्राप्त किया विषयो को प्राप्त किया फिर भी इन सब के वश मे जो नही हुआ, उसका नाम सत है। प्राप्त होना यह नियति है, पर प्राप्ति का उपयोग करना या नही करना यह पुरुषार्थ है। विकृति को आने ही नहीं देना और आ भी जाये तो भी विकृति मे जाना ही नही है–यह पुरुषार्थ है।

भो ज्ञानी! राग और विषयो की श्लेषमा (कफ) पर जीव अनादि से चिपका है और अपने आप को छुडा नही पा रहा, पर कोई विवेकी जीव वहाँ पर चुल्लू भर पानी डाल दे तो छूट सकता है। अहो लिप्त आत्माओ! यदि वीतरागी जिनेन्द्र की वाणी का जरा–सा (चुल्लू भर) पानी गिर जाये, तो मोह का श्लेषमा छूट सकता है। जो आज निर्वाण की तैयारी कर रहे हैं उन्होने वह पानी ही तो डाला है। इसलिए आज का नाम धन्यतेरस है, वह त्रयोदशी धन्य हो गई जिस दिन भगवान

वर्द्धमान स्वामी ने योगो का निरोध किया। अहो! यह धन जुटाने की त्रयोदशी नहीं है, रत्नत्रय–धर्म को दृढ़ करने की त्रयोदशी है, रत्नत्रय धन है, उसको स्वीकार करो। पर जीवो ने पुद्गल के टुकडे जोडना शुरू कर दिया। हे वर्द्धमान! आज आपने सब कुछ छोडा है और हम आज शाम तक बाजार के लोहे को खरीदकर घर मे रख लेगे। अहो! क्या किया आपने? उत्कृष्ट यह होता कि दस बर्तन घर मे थे तो एकाध आज आप छोड़ देते। भगवन्! आपने जिसे छोडा, दुनिया उसे जोड रही है। आपमे और दुनियाँ मे इतना ही तो अतर है कि दुनियाँ जिसे छोडती है, उसे आप जोडते हो और जिसे आप जोड रहे हो, उसे विश्व छोड बैठा है।

भो ज्ञानी! आज ही योग का निरोध हुआ है, परम निरोध हुआ है। उस अनुभव को समझो, बिल्कुल शात हो जाओ। अब शरीर चलाने की भी सामर्थ्य नही बची, शरीर हिलाने की भी सामर्थ्य नही है। अब तो वह शक्ति चाहिए कि अब मैं शरीर भी न हिलाऊँ और अपने स्वशरीर मे चला जाऊँ। अब मैं बोलना भी पसद नहीं करता मैं किसी को देखना भी पसद नही करता। मन–वचन–काय की क्रिया पूर्ण समाप्त हो जाने से आत्म प्रदेशो मे परिस्पदन पूर्ण रूप से समाप्त हो चुका है उसका नाम योग का निरोध है। शुद्धात्म–तत्व प्राप्ति का यह अतिम पुरुषार्थ चल रहा है यह सहज दशा है। जिनका चलना बद हो गया जिनका सोचना बद हो गया जिनका कहना बद हो गया। मनीषियो! उसी परम–योगी को निर्वाण की प्राप्ति होती है। भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे है कि वीतराग–धर्म स्वीकार कर लो। प्रभु! अतिम लक्ष्य मेरा भी यही हो कि मेरी दृष्टि कही कुदृष्टि न हो।

भो ज्ञानी! कुरल–काव्य' मे ऐलाचार्य महाराज ने लिखा है–सकल्प वह शक्ति होती है जो इस जीव को एक समय मे सात राजू गमन करा देती है। जितने सिद्ध हुए हैं वे सब सकल्प से ही सिद्ध हुए है और जितने असिद्ध हैं, वे सब सकल्प–शक्ति के अभाव मे है। यहाँ सकल्प से तात्पर्य अपने मन की दृढता अथवा व्रत की दृढता से है। ध्यान रखना, हाथो को हथकडियो से बॉधा जा सकता है पैरो मे बेडियाँ डाली जा सकती हैं, परतु किसी भी शासन ने मन को बॉधने की रस्सी नहीं बनाई। एकमात्र वीतराग–शासन ने कहा है कि तुम्हारे मन को बॉधने के लिए हाथ–पैर को बॉधने की कोई आवश्यकता नही है। अज्ञानी लोग हाथ–पैर बॉधकर अगो को बॉध कर सयम के पालन की बात करते हैं। वही ज्ञानी अपनी ज्ञान वैराग्य रस्सी से इद्रिय मन को वश मे करते है। एक सज्जन रायपुर मे बोले–महाराज! एक वस्त्र तो रखा जा सकता है लगोट तो लगाई जा सकती है। हमने कहा–क्यो? बोले– आज के युग मे कुछ अच्छा सा नहीं लगता। मैंने उनसे एक ही बात कही–ऑखो से देखने वालो को अच्छा नही लगता। क्योकि आपकी दृष्टि खोटी है। इतनी बडी लगोटी की अपेक्षा से आँख की पट्टी बहुत छोटी होती है। इसलिए आपको लगोटी नजर आती

है। जिसकी दृष्टि खोटी नहीं होती, उसे लगोटी की कोई आवश्यकता नहीं। बोले—क्या आज वर्द्धमान महावीर स्वामी होते तो ऐसे ही होते? मैंने कहा—हाँ, सच्चे वीतरागी भगवान ऐसे ही होते है।

भो ज्ञानी! 'निर्वाण' बताने का विषय नहीं, निर्वाण तो प्राप्ति का विषय है। आचार्य जयसेन स्वामी ने कहा—ध्यान करो, तुम भगवानरूप हो जाओगे। पर ध्यान रखो, बिना सयम के ध्यान लेश मात्र नही होता। यह सयम शुभास्रव नहीं कराता, सयम मे शुभास्रव होता है और जब तक तुम अरिहत बनोगे तब तक होगा अर्थात् १४वे गुणस्थान तक होगा। आप तो यही मन बनाकर चलो कि हे भगवन्! यह आस्रव भी समाप्त हो जाये। लेकिन ध्यान रखना, इस शब्द से भी आस्रव मत कर बैठना। कुछ अज्ञानी व्यर्थ मे आस्रव करते रहते हैं। आस्रव किन—किन क्रियाओ से हो रहा है? उन क्रियाओ को मत करो, आस्रव समाप्त हो जायेगा। पाप—क्रिया न हो इसलिए यह स्पष्ट कर रहे हैं क्योकि रत्नत्रय तो निर्वाण का ही हेतु है।

भो ज्ञानी! जो आपने मुनिव्रत का पालन किया रत्नत्रय का पालन किया उसमे आपने भगवान को भी नमस्कार किया वदना भी तो की थी प्रतिक्रमण—स्वाध्याय आदि भी तो किया था। उस शुभ—क्रिया के करने से शुभ परिणाम हुए, उन शुभ—परिणामो से जो आस्रव हुआ है वह देव—आयु को दिला रहा है। जितने अश मे तुमने रत्नत्रय का पालन किया वह देव—आयु का बध ा नही कराता, अपितु वह तो निर्वाण का ही हेतु होता है। जैसे घन से (हथोडा से) जब कोई व्यक्ति पत्थर को तोडता है तब यदि एक घन से वह नहीं टूटता तो बहुत घन लगाने पडते है उसी—उसी स्थान पर लगाने पडते हैं, परतु जब भी टूटेगा तो एक घन से ही टूटेगा। ऐसे ही, मुमुक्षु आत्माओ! एक बार मुनि बनने से मोक्ष नहीं होता, लेकिन जब भी होगा मुनि बन कर ही होगा। अत तुम ध यान की भट्टी मे इस मन—रूपी लोहे को रख दोगे, उसके ऊपर से चारित्र के घन पटकोगे तब शुद्ध आभूषण बन पायेगा। परतु ध्यान रखना, धातु जैसी होगी वैसा आभूषण बनेगा। यह शुद्ध आभूषण की दुकान है, यहाँ लाखभरने वाला काम नही हैं। बीच मे जो अशुभ—शुभ उपयोग है वह लाख हैं तभी तो शुद्ध नहीं बन पाया, यही तो अपराध हो गया। इसलिए इस बात का ध्यान रखे कि रत्नत्रय बध का हेतु नही है जो शुभ—आस्रव होता है, उससे देव—आयु का बध होता है। लेकिन जब तक तुम सिद्ध नही बने हो तब तक नरक की अपेक्षा से देव—आयु श्रेष्ठ है। धूप में तपने की अपेक्षा छाया मे रहना अच्छा है। इसलिए शुभ—उपयोग को छोड मत देना पर दृष्टि यही रखना कि हमे शुद्ध—उपयोग की प्राप्ति हो और परम—निर्वाण की प्राप्ति हो।

"रत्नत्रय ही मोक्ष का हेतु"

एकस्मिन् समवायादत्यन्तविरुद्धकार्ययोरपि हि।
इह दहति घृतमिति यथा व्यवहारस्तादृशोऽपि रूढिमित ।। २२१।।

अन्वयार्थ . हि एकस्मिन् = निश्चयकर एक वस्तु मे । अत्यन्तविरुद्वकार्ययो =अत्यन्त विरोधी दो कार्यों के। अपि समवायात् = भी मेल से। तादृश अपि व्यवहार । = वैसा ही व्यवहार। रूढिम इत = रूढि को प्राप्त है। यथा इह = जैसे इस लोक मे। घृतम् दहति = घी जलाता है। इति = इस प्रकार की कहावत है।

सम्यक्त्वबोधचारित्रलक्षणो मोक्षमार्ग इत्येष ।
मुख्योपचाररूप प्रापयति पर पद पुरुषम्।। २२२।।

अन्वयार्थ इति एष = इस प्रकार यह पूर्वकथित। मुख्योपचाररूप= निश्चय और व्यवहाररूप। सम्यक्त्वबोधचारित्रलक्षणो = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र लक्षणवाला। मोक्षमार्ग= मोक्ष का मार्ग। पुरुषम् पर पद =आत्मा को परमात्मा का पद प्रापयति, = प्राप्त कराता है।

नित्यमपि निरुपलेप स्वरुपसमवस्थितो निरुपघात ।
गगनमिव परमपुरुष परमपदे स्फुरति विशदतम ।। २२३।।

अन्वयार्थ नित्यमपि =सदा ही । निरुपलेप = कर्मरूपी रज के लेप से रहित। स्वरुपमवस्थित = अपने अनन्तदर्शन ज्ञानस्वरूप मे भले प्रकार ठहरा हुआ। निरुपघात =उपघातरहित और विशदतम परमपुरुष = अत्यत निर्मल परमात्मा। गगनमिव = आकाश की तरह। परमपदे = लोकशिखर स्थित मोक्ष स्थान मे। स्फुरति= प्रकाशमान होता है।

|| पुरुषार्थ देशना ||११७||

मनीषियो! आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ने अनुपम सूत्र दिया है कि बध का हेतु मिथ्यात्व, असयम, अविरित, प्रमाद, कषाय और योग है। रत्नत्रयधारी को बध नही होता है।

भो ज्ञानी! जो पर्याय रत्नत्रय से मडित आत्मा को स्वीकार कर चुकी है वह पर्याय भी वदनीय हो जाती है। लेकिन वदना की दृष्टि पर्याय की नही है, रत्नत्रय धर्म की है। **'वदे तद् गुण लब्धये'** जो रत्नत्रय धर्म था उसकी वंदना थी। आज हम धर्म की हँसी क्यो करा देते हैं? क्योकि हम वदना मे फूल जाते हैं, पर हम वदना की वदना का ध्यान नहीं रख पाते। वदना की वदना का ध्यान रखा जाए तो कभी तुम अवदनीय शब्द से नहीं कहे जा सकते हो। एक ब्राह्मण विद्वान के हाथ मे पुस्तक दी गई, तो उसने पुस्तक सिर पर रखी एव स्वय धूल मे बैठ गये। तभी एक छात्र ने अपने बस्ते को जमीन पर रखा और शर्ट–पेन्ट खराब न हो जाए इसलिए अपने बस्ते पर जाकर बैठ गया। क्षयोपशम से वह विद्वान भी बन गया, लेकिन उनकी विद्वत्ता की कोई कीमत नही है। जब उस प्रथम विद्वान से पूछा कि आपने इन पुस्तको को सिर के ऊपर क्यो रखा और स्वय धूल मे बैठ गये तो वे बोले–मै तो जब जन्मा था तब धूल पर ही गिरा था, जब मेरी मृत्यु होगी तो धूल पर ही छोडा जाएगा। मेरी कीमत न तब थी, न अब है और न आगे होगी। मेरी कीमत जिससे हुई है उसे मै सिर पर विराजमान किये हूँ। मनीषियो! माँ जिनवाणी कह रही है कि मेरे पुत्रो! यदि माँ की रक्षा आपने की है तो सत्य की रक्षा है। यदि माँ का अस्तित्व नही, तो तुम बेटे किसके? आपकी कीमत शास्त्रो से है, शास्त्रो की आप जितनी वदना करोगे, श्रद्धावान उतनी तुम्हारी वदना करेगे।

भो ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं कि जितनी विनय असयमी आपका करते है, उससे कई गुना विनय सयमी को निज के सयम पर रखने की आवश्यकता है। निज के सयम का विनय आपने नही रखा तो आपकी अविनय तो होगी ही, लेकिन आपके माध्यम से सयम की अविनय न हो जाए यह भी ध्यान रखना। मनीषियो! अनेक श्रमणो की समाधियाँ होती है पर श्रमण–सस्कृति की कभी समाधि नही होती। श्रमण सस्कृति की समाधि जिस दिन हो जाएगी, उस दिन धर्म नही बच सकता। इसीलिए ध्यान रखना रत्नत्रयधर्म देव नही बनाता है रत्नत्रय धर्म की साधना मे देव बनते हैं। पर कुछ–कुछ आशिक शुभ–उपयोग सयम मे अपराध है। किसी ने आचार्य योगेन्द्रस्वामी से पूछा–प्रभु! शुभ–उपयोग के बारे मे आपका क्या विचार है ? वे कहने लगे–

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सव्वु इ को वि मुणेइ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ।।७१।। यो सा ।।

अहो ज्ञानी! पाप को पाप कहनेवाले पडित ससार मे अनत हैं लेकिन पुण्य को पाप कहनेवाले पडित ससार मे अँगुलियो पर गिनने लायक हैं। अहो! आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी तो पुण्य को अपराध कह रहे हैं और आचार्य योगेन्द्र स्वामी पाप का कह रहे हैं। अब आचार्य कुदकुदस्वामी को देखे। प्रभु! पुण्य के बारे मे आपके क्या विचार है। 'समयसार के पुण्य–पाप अधिकार मे आचार्य कुदकुद स्वामी ने कहा है–अहो ज्ञानियो! विश्व के प्राणी अशुभ–कर्म को तो कुशील कहते हैं,

लेकिन शुभ-कर्म को सुशील कैसे कहूँ? यह तो ससार मे भटका रहा है।

कम्ममसुह कुसीलं सुहकमी चावि जाणह सुसील।
किह त होदि सुसील ज ससार पावेसेदि।। १५२।। (स सा)

अब आपको यह चिता लग गई कि महाराजश्री! पुण्य परपरा से मोक्ष का कारण है कि नही? पुण्य के दो भेद कर दिए एक सम्यक्दृष्टि का पुण्य, दूसरा मिथ्यादृष्टि का पुण्य अर्थात् एक प्रशस्त पुण्य, दूसरा अप्रशस्त पुण्य। अपराध शब्द को लोग वास्तव मे अपराध मान कर न बैठ जाए। अब देखो, मोक्ष का कारण पुण्य तो नहीं है, पर एक कार्य की सिद्धि एक ही कारण से नही होती कारण कार्य का हेतु बन भी सकता है और नहीं भी बन सकता है। लेकिन कारण तो जो होगा वह नियम से कार्य को ही कराएगा।

भो ज्ञानी। यहॉ तो पुण्य को कहीं पाप कहा कही अपराध कहा और कहीं कुशील कहा। लेकिन मद कषाय मे यदि धर्म की साधना की, तो आपको स्वर्ग भेज दिया और कषाय की तीव्रता मे अशुभ-व्रत किये थे तो आपको नरक भेज दिया। परतु दोनो ससारी ही हो। आचार्य कुदकुद स्वामी ने, पुण्य को कुशील इसीलिए कहा कि शील का अर्थ होता है-स्वभाव। जो वस्तु का स्वभाव है वही शील है। यहाँ शील से स्वभाव ग्रहण करना। आत्मा का स्वभाव चिद्रूप चैतन्य भगवत अवस्था है। उस भगवत अवस्था से जो भटका दे उसका नाम कुशील है। इसी प्रकार शुभ-कर्म देव-पर्याय को दिला रहा है, इसीलिए कुशील है जो आत्मा का पतन कराए उसका नाम पाप है। पुण्य के योग से देवपर्याय को प्राप्त कर लिया, पर जब आयु कर्म क्षीण हुआ तो माला मुरझाने लगी। अत छह महीने पहले से रो-रोकर एक इदिय पर्याय को प्राप्त हुआ। अहो! इस पुण्य की महिमा तो देखो इसने तो यह पतन करा दिया कि पुन नीचे पटक दिया। इसीलिए जो पतन कराए वह पाप है और जो पवित्र कराए उसका नाम पुण्य है। अत रत्नत्रय-धर्म पुण्य है। यह पुण्य मोक्ष तो नही दे पाएगा, क्योकि पुण्य भी एक कर्म है और जहाँ कर्म है वहाँ मोक्ष नही है। सपूर्ण कर्मो के अभाव हो जाने का नाम मोक्ष है।

भो ज्ञानी! श्रावकधर्म परपरा से मोक्षमार्ग है, मुनि-धर्म साक्षात् मोक्षमार्ग है लेकिन दोनो मे पुण्यास्रव चल रहा है। बिना पुण्य के मनुष्य-पर्याय नहीं मिलती और बिना पुण्य के चारित्र धारण नहीं होते। ध्यान रखना, तुम्हारे पल्ले मे निर्मल पुण्य नही हैं तो पिच्छी लेने के बाद पिच्छी नहीं रख पाओगे क्योकि सयम छूटने का मुख्य हेतु कषाय है। चिढचिढे स्वभाव से अथवा अपनी बात को मनवाने की दृष्टि जिसके मन मे आ गई वह निर्मल चारित्र का पालन नही कर पायेगा। जिनवाणी कह रही है कि उबलते पानी मे व्यक्ति का चेहरा कभी नहीं दिखा, पर शीतल पानी मे चेहरा दिख जाएगा। कषायी जीव का सयम व्यवहार से सयम तो कहलायेगा, लेकिन सयम-स्वभाव नहीं झलकेगा। आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं-कषाय की मदता से पुण्य आता

है। जो जैन सिद्धात को नहीं समझता, वह कहता है कि पूजा करने से पुण्य आ रहा है, उपवास करने से पुण्य आता है, पर वास्तविकता कुछ और ही है। यह सब क्रियाएँ कषाय को मद करने के लिए हैं। पूजन करना यह निमित्त है, हेतु है, परतु कषाय की मदता से पुण्य का आस्रव होता है। पुण्य के योग मे पुण्य करोगे तो तुमको वह मुनि बना देगा और पापानुबधी–पुण्य कर लिया, तो तुम को दोषी नही, रोगी बना देगा। इसीलिए आप लोगो का जो पुण्य इस समय चल रहा है, इस पुण्य को व्यर्थ ही बर्बाद मत कर देना। 'पुण्य फला अरिहता'। पुण्य के योग से जीव मनुष्य बना, शुद्ध–रत्नत्रय का पालन किया और गुणस्थान बढ रहे हैं। देखना, पाप को क्षय करने के लिए, पुण्य को क्षय करने के लिए गुणस्थान बढ रहे हैं, परतु पुण्य से ही बढ रहे हैं। क्या गजब की बात है? पुण्य से मतलब, पुण्य–प्रकृति अब पडी हुई है, उससे अब कोई प्रयोजन नही बचा। अब तेरा अदर का पुरुषार्थ चल रहा है। अदर के पुरुषार्थ के लिए पुण्य–द्रव्य चाहिए। पुण्य–द्रव्य एकत्रित होकर सत्ता मे रखा हुआ है और अपना काम कर रहा है। अब इसको भगवन् के रूप मे फलित कराना है तो वह भी फलित हो जाएगा और निगोद भिजवाना है तो वह भी फलित हो जाएगा। फिर भी ध्यान रखना पुण्य ने मोक्ष नही दिया मोक्ष रत्नत्रय–धर्म ने दिया है। उस रत्नत्रय–धर्म के पालन के लिए तुम्हे पुण्य चाहिए। अहो! पुण्य–क्रिया अलग विषय है और पुण्य भिन्न विषय है। पुण्य–क्रिया यानि पूजा करना। पुण्य भाव यानि कषाय की निर्मलता मद–कषाय, विशुद्ध–परिणाम और पुण्य–द्रव्य यानि पुण्य–कर्म का बध। आप यहाँ बैठे हो यह चल रही पुण्य–कर्म की क्रिया और जो आस्रव हो रहा है वह पुण्य–कर्म का आस्रव जो बध हो रहा है वह पुण्य–कर्म का बध, जो आप मनुष्य बनकर भोग रहे हो वह पुण्य–कर्म का फल भोग रहे हो।

भो ज्ञानी! कषाय की मदता पुण्य का हेतु है, फिर भी पुण्य मोक्ष का हेतु नहीं है। साक्षात हेतु शुद्ध–उपयोग है। शुद्ध–उपयोग का हेतु है शुभ–उपयोग और शुभ–उपयोग से पुण्य आस्रव होता है। इसलिए पुण्य आस्रव परपरा से मोक्ष का हेतु है। पर मोक्ष का साक्षात् हेतु न पुण्य है, न पाप। आत्मा की शुद्ध–दशा ही आत्मा की शुद्धि का हेतु है। शुभउपयोग वास्तव मे शुद्ध–दशा नहीं है, शुद्ध–उपयोग ही वस्तु–स्वरूप है लेकिन जिसने अभी तक प्रवेश नहीं किया, उसे तुरत पचाना कठिन होता है। इसलिए उसको व्यवहार से समझना पडता है। निश्चय तो शुद्ध–पथ है। देखो, अग्नि के सयोग से घी भी जलने लगता है। भो ज्ञानी आत्माओ! पुण्य कभी तुम्हे ससार मे नहीं भटकाता है, पर पुण्य के साथ जो पाप–परिणति होती है, वह तुम्हे जला देती है। दूसरी दृष्टि से रत्नत्रय ससार का हेतु नहीं है पर रत्नत्रय मे जो शुभास्रव के मिश्रण की अवस्था हो गई है, इससे तू देव आदि पर्याय को प्राप्त हो रहा है। पुण्य मे राग होना जैसे सम्मेदशिखर अपना क्षेत्र है। यहाँ तुमने राग तो किया है, लेकिन पर वस्तु मे किया है। इसीलिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष मार्ग है, अन्य कोई मोक्षमार्ग नही है तथा वह निश्चय और व्यवहार रूप है।

"ग्रंथकर्ता की महानता"

कृतकृत्य परमपदे परमात्मा सकलविषयविषयात्मा।
परमानन्दनिमग्नो ज्ञानमयो नन्दति सदैव ।। २२४।।

अन्वयार्थ . कृतकृत्य =कृतकृत्य कर्तव्य से परिपूर्ण। सकलविषयविषयात्मा =समस्त पदार्थ हैं विषयभूत जिनके अर्थात् सब पदार्थों के ज्ञाता। परमानन्दनिमग्न = विषयानद से रहित ज्ञानानद मे अतिशय मग्न । ज्ञानमय परमात्मा = ज्ञानमय ज्योतिरूप मुक्तात्मा, परमपदे = सबसे ऊपर मोक्षपद मे, सदैव नन्दति = निरन्तर ही स्थित है।

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी।। २२५।।

अन्वयार्थ मन्थाननेत्रम् = मथानी की रस्सी को बिलोवने वाली गोपी। इव =ग्वालिनी की तरह। जैनी नीति = जिनेन्द्रदेव की स्याद्वादनीति या निश्चय– व्यवहाररूप नीति। वस्तुतत्त्वम् = वस्तु के स्वरूप को एकेनआकर्षन्ती = एक (सम्यग्दर्शन) से अपनी ओर खीचती है। इतरेण = दूसरे अर्थात् सम्यग्ज्ञान से, श्लथयन्ती = शिथिल करती है और। अन्तेन = अन्तिम अर्थात सम्यक्चारित्र से सिद्धरूप कार्य के उत्पन्न करने मे। जयति = सबके ऊपर वर्तती है।

वर्णै कृतानि चित्रै पदानि तु पदै कृतानि वाक्यानि।
वाक्यै- कृत पवित्र शास्त्रमिद न पुनरस्माभि ।।२२६।।

अन्वयार्थ चित्रै वर्णै कृतानि = नाना प्रकार के अक्षरो से किये हुए पद है।पदानि दै कृतानि वाक्या = पदो से बनाये गये वाक्य हैं। तु वाक्यै = और उन वाक्यो से। पुन इद पवित्र = पश्चात् यह पवित्र पूज्य। शास्त्रम् कृत = शास्त्र बनाया गया है, अस्माभि न (किमपि कृत) = हमने कुछ भी नही किया।

|| पुरुषार्थ देशना || ११८||

मनीषियो! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने 'ग्रन्थराज पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे अपूर्व–अपूर्व

अमृत–बिदुओ का रसास्वादन कराया है। जिसमे सम्यक्त्व से निर्वाण तक की प्रक्रिया का कथन कर दिया। अत मे लघुता और अकृतत्व भाव दर्शाते हुए इन कारिकाओ मे समझा रहे हैं कि नय की एकात–दृष्टि ही मिथ्यात्व है, अनेकात दृष्टि ही सम्यकत्व है। नय कभी वस्तु का पूर्ण कथन नहीं कर पाता, वह एक अश का ही कथन करता है। इसलिए एक नय के द्वारा कभी भी लोकव्यवहार नही चलता तथा परमार्थ की सिद्धि भी नहीं होती। अनेक नयो के माध्यम से ही परमार्थ को जाना जाता है।

भो ज्ञानी! प्रमाण अपने आप मे मौन है जबकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है। उन धर्मों को एक साथ कहने की सामर्थ्य छद्मस्थ मे नही, केवली मे है। पर छद्मस्थ उसको सुनने की सामर्थ्य भी नही रखता। देखो क्षयोपशम की महिमा, तत्त्वार्थ सूत्र का पाठ करने मे आपको ४८ मिनिट या एक घण्टा लगता होगा जबकि द्वादशाग का पाठ गणधर–परमेष्ठी एक अतर्मुहूर्त मे कर लेते हैं। इस क्षयोपशम को उन्होने बहुत निर्मल साधना के द्वारा प्राप्त किया है। जब तक वैसे नही बनोगे, तब तक इतना क्षयोपशम नही मिलेगा, क्योकि उन्होने अपने शब्दो का दुरुपयोग नही किया अपने चितन को विपरीत–धारा मे नही ले गये, अपने ज्ञान का प्रभाव धर्म की विराधना मे नही किया, उन्होने अपने ज्ञान का निर्मल साधना मे लगाया।

भो पुरुषार्थी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी इस अतिम कारिका मे समझा रहे हैं कि क्षयोपशम मिल जाना बहुत बडी बात नही, क्षयोपशम का उपयोग करना बहुत बडी बात है। वैभव का मिलना भी पूर्व सुकृत का परिणाम है पर वैभव का उपयोग कितना किया जाता है, यह वर्तमान का पुरुषार्थ है। मारीचि ने भी क्षयोपशम प्राप्त किया था लेकिन उसने क्षयोपशम का निर्मल उपयोग नही किया। तीन सौ त्रैसठ मिथ्यामत चल गये तथा वर्द्धमान की पर्याय मे जब उसी जीव ने क्षयोपशम का निर्मल उपयोग किया तो आज हम निर्वाण कल्याणक मना रहे है। दोष किसे दे ? जो जीव एक पर्याय मे वीतराग शासन का परम–विरोधी था वही जीव अतिम पर्याय मे वीतराग शासन को चलाने वाला हुआ। इसलिए शत्रुता द्रव्य से नही पर्याय से थी। पर्याय की शत्रुता मे जो चला जाता है, वह अपने परिणामो को विकृत कर लेता है। जो द्रव्य के स्वभाव मे चला जाता है, वह दिव्य–दृष्टि से भगवत्ता को निहार लेता है। यदि एक पर्याय की भूल से एकात दृष्टि मे चले गये, तो कितनी पर्याय का विनाश हो जाएगा। इसलिए यदि जिनवाणी समझ मे नही आ रही है तो मौन हो जाना, लेकिन बोलना मत। आप मौन हो जाओगे तो लोग आपको अज्ञानी कहेगे, परतु अति–समझ दिखाकर अनत को नाशमय मत बना देना।

भो चेतन! पचशील–सिद्धात चरणानुयोग की प्रवृत्ति है। स्याद्वाद–अनेकात यह सर्वज्ञ के दर्शन की दृष्टि है यह दो सौ पच्चीस वी कारिका प्रत्येक मदिर मे उत्कीर्ण होना चाहिए। हमारे आगम

को समझने की दो पद्धतियाँ हैं–एक अक्षरो को पढो और दूसरी कथा को पढो। यह कारिका बीना के मदिर के मुख्य द्वार के पाषाण मे उत्कीर्ण है। एक गोपिका मथानी को भाँज रही है, रस्सी को खींच रही है। बस, पढने वाले पढ ले। यह है स्याद्वादमयी भाषा। द्रोणगिरि पर्वत के ऊपर गुफा के बगल मे एक छोटा सा कमरा है। वहा जितनी कथाएँ लिखी हैं, बडी गभीर कथाएँ हैं। कथा से आवाज निकलती है। उनके चित्र भी ससार से भयभीत करने के लिए चित्रित हैं कि अहो! इस शरीर की यह दशा है, इसमे तुम राग कर रहे हो। तपस्वी का शरीर तो हड्डी–पसली का पिण्ड ही दिखता है। जिससे स्वय के शरीर से स्वय मे राग न बढे। उनके शरीर को देखकर दूसरो को भी राग न बढे। वही पर भगवान गुरुदत्त स्वामी के चरण–चिन्ह से अकित गुफा है। जिसमे सामायिक कर रहे आचार्य शातिसागर महाराज के सामने शेर आकर खडा हो गया था, परतु शेर के सामने शेर भी सिर टेककर चला गया। यह चतुर्थकाल की घटना नही, पचमकाल की घटना है। साधक की वह मुद्रा ही स्याद्वाद– अनेकात की वाणी को बिखेर रही थी। यदि मैं सिह से बच जाता हूँ तो श्रेष्ठ–साधक के रूप मे निखर के आऊँगा और श्रेष्ठ–साधना करूँगा। यदि सिह मुझे खा लेता है, तो भी एक श्रेष्ठ–साधना मेरे सामने आयेगी कि सयम से च्युत नही हुआ। यदि वह मेरे शरीर का भक्षण भी करेगा, तो भी मेरे आत्मा के धर्म का भक्षण कहाँ कर सकता है? यदि उसने शरीर का भक्षण कर भी लिया, तो सामायिक करते–करते ही तो जा रहा हूँ। सयम इसलिए तो धारण किया था। कही बच गया तो भी श्रेष्ठ होगा क्योकि आगे साधना करुँगा। अहो! स्याद्वाद अनेकात भाषण की शैली नही है साधना की निर्मल शैली है।

भो ज्ञानी! जैनशासन तो अनादि से कह रहा है कि अग्नि मे भी जीव होते है। इसलिए ध्यान रखना राजगृही मे जो गर्म पानी के स्थान है वह श्रावक के लिए पीने के लिए शुद्ध नही क्योकि वहाँ उस प्रकृति के जीव आयेगे। उस पानी का प्रयोग मुनिमहाराज तो कर सकते हैं पर श्रावक नही। क्योकि मुनिराज का तो आरभी हिसा का त्याग होता है, श्रावक को आरभी हिसा का त्याग नही होता है। यदि कमडल सूख जाता है और शौच आदि की बहुत बडी पीडा है, तो ऐसे स्थान से पानी ले सकते हैं, परतु बाद मे जितना बचेगा वही छोडेगे, प्रायश्चित भी करेगे, पर श्रावक तो ऐसे पानी का प्रयोग छानकर ही करेगा। कुएँ, बावडी के जल मे यदि सूर्य की किरण पड रही है, तो ऐसे पानी का प्रयोग मुनि महाराज कर सकते हैं, लेकिन सहज नही करेगे। यह उस समय का अपवाद–मार्ग है। राजमार्ग तो यह है कि श्रावक ही कमन्डल मे पानी भरता है। यह बाते मै आपको इसलिए बता रहा हूँ कि कदाचित् आपके दिखने मे ऐसा आ जाये तो यह मत कहना कि महाराज ने ऐसा क्यो कर लिया? ऐसी आगम की व्यवस्था है। श्रावको को तो यह भी निर्देश है कि आपने पानी उबाल कर रख लिया और चौबीस घटे के बाद पानी बचता है तो वह उपयोग का पानी

नही है, अभक्ष्य है। उसी पानी को पुन उबालकर प्रयोग नहीं कर सकते।

अहो मुमुक्षु! जब तुझे आत्म–तत्त्व पर दृष्टिपात हो उस समय देह को गौण करना अन्यथा तुम भावुकता के साधु तो बन जाओगे, पर साधना के साधु नही रह पाओगे। भो ज्ञानी! यह मोक्षमार्ग भावुकता का मार्ग नही है। यदि आप साधना के मार्ग पर जाओ तो शरीर का ख्याल रखना, क्योकि आगे उसी से साधना करना है समितियों का पालन करना है और चर्या का पालन करना है। जब तक आयु–कर्म क्षीण नहीं हुआ तब तक सलेखना नही होगी। आप करोगे क्या? अत इसमे अनेकात लगा लो। साधना मे जाओ और शरीर को गौण कर दो।

भो मनीषियो! निश्चय और व्यवहार–पक्ष नमोस्तु शासन की नीति है। जिसने निश्चय–पक्ष को छोड दिया उसने शुद्ध उपयोग के लक्ष्य का घात कर दिया और जिसने व्यवहार को छोड दिया उसने व्यवहार–तीर्थ का नाश कर दिया। व्यवहार–तीर्थ निश्चय–तीर्थ की प्राप्ति का हेतु है। व्यवहार तीर्थ नही होगा तो निश्चय–तीर्थ की प्राप्ति के लिए तुम बैठोगे कहॉ? इसलिए जिनवाणी कह रही है–जो निश्चय व्यवहार मे से एक का नाश कर रहा हो, वह उभय तीर्थ का घातक है। निश्चय और व्यवहार दोनो को लेकर चले तो विश्व मे कोई विवाद नही। निश्चय और व्यवहारनय मे कोई विसवाद नहीं है। यह व्यक्तियो के राग–अहकार के विसवाद है। आचार्य भगवान कुदकुद देव ने नियमसार जी मे लिखा है कि ईर्ष्या के भाव से पूर्ण होकर कोई वीतराग–शासन मे दोष लगाने लग जाये तो भो ज्ञानी! उसकी ईर्ष्या मे दोष समझना, वीतराग–शासन पर अश्रद्धा करना शुरू मत कर देना क्योकि ईर्ष्यालुओ ने तीर्थंकर महावीर स्वामी तक को नही छोडा।

भो ज्ञानी! दो–सौ–पच्चीसवी कारिका को पढ लो–जो मात्र निश्चयवाला है तो वह मिथ्यादृष्टि और व्यवहार मात्र है वह भी मिथ्यादृष्टि है। आगम मे तो पॉच प्रकार के मिथ्यात्व मे एक अज्ञान नाम का भी मिथ्यात्व है। इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे है कि निश्चय और व्यवहार से युक्त अवस्था ही सम्यकत्व है। देखो जब गोपी मक्खन निकालती है तो वह रस्सी के एक छोर को खीचती है और दूसरे छोर को शिथिल कर देती है। तभी मक्खन निकलता है। भो ज्ञानी! यही वस्तु तत्त्व के कथन करने की शैली है। ऐसे ही निश्चय नय का कथन हो, तो व्यवहार को शिथिल कर दिया जाता है और जब व्यवहार का कथन होता है तो निश्चय को शिथिल कर दिया जाता है लेकिन अभाव दोनो का नही होता है। जिसने एक का भी अभाव कर दिया तो वीतराग शुद्धात्म स्वरूप के मक्खन को नही निकाल पायेगा। अहो भगवन्! ऐसा निर्द्वन्द अकृ तत्व–भाव प्राणीमात्र के अदर आ जाये, तो ससार मे विवाद ही न हो। सविधान तोडा, तो विघ्न होना ही है। नमोस्तु–शासन मे भी दो सविधान हैं।एक श्रावको के लिए श्रावकाचार सविधान बनाया गया है, दूसरा मुनियो के मूलाचार का सविधान लिखा है। बस, जितना लिखा, उसको लिख लेना, तो

कार्य बन गया। कर्तृत्व–भाव यानी सब करने करने की भावना ही उसे विकल्प करा रही है। भो ज्ञानी! नाना प्रकार के अक्षरो द्वारा पद बने हैं, पदो के द्वारा वाक्य बने हुए हैं, वाक्यो के द्वारा यह पवित्र शास्त्र बना है, मेरे द्वारा कुछ भी नही किया गया है। इतना बडा महान ग्रथ लिखने के बाद भी आचार्य भगवन् कह रहे है कि मैंने कुछ नही किया। सर्वज्ञ की वाणी को गणधर परमेष्ठी ने प्राप्त किया, गणधर परमेष्ठी की वाणी को आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने अमृतचन्द्र स्वामी की वाणी आचार्य विराग सागर महाराज ने प्राप्त किया अब जितनी जिसकी सामर्थ्य थी बर्तन जितना था उसी मे से एक चुटकी मै लेकर आया। इसमे मेरे (मुनि विशुद्ध सागर) द्वारा अक्षरो की हानि हुई हो पदो की या वाक्यो की हानि हुई हो तो हे श्रुत देवता! आप मुझे क्षमा कर देना। माँ भारती के चरणो मे बैठ आज सम्यक वाचना की समाप्ति है। जिनवाणी वाचना की स्थापना मगलवार को और समाप्ति शनिवार को हो, तो अति प्रशस्त होती है। शनिवार को लोग अच्छा नही मानते, परतु शनि से धन नही मिलता, वीतरागता मिलती है। आज माँ भारती के चरणो मे वदना कर लेना कि हे देवी! आपकी वदना मै इसलिए नही कर रहा हूँ कि प्रज्ञाशील बनकर मैं दूसरे के साथ अपनी प्रज्ञा का चमत्कार दिखाऊँ बल्कि आपके द्वारा प्रदत्त प्रज्ञा को प्राप्त करके चैतन्य चमत्कार को प्राप्त हो जाऊँ। इसलिए हमने माँ जिनवाणी का पान किया। आपने जितना सुना है उसको आचरित करते जाना, दोहराते जाना तभी कल्याण होगा।

परिशिष्ट

पुरुषार्थ सिध्दियुपाय इस ग्रथ के विवेचन में मुनिश्री ने अनेक ग्रथों का आलम्बन लिया है जिन्हें पुरुषार्थ देशना में सम्मिलित किया गया हैं। ऐसी कारिकाओं के समक्ष यथा सभव उन ग्रथो का नाम लघु शब्द सकेतो में दिया गया है। जो कि निम्नानुसार है।

ग्रथ का नाम	लघु सकेत	ग्रथकर्ता का नाम
१) कार्तिकेयानुप्रेक्षा	(का अ)	कार्तिकेय स्वामी
२) आत्मानुशासन	(आ शा)	आचार्य गुणभद्र स्वामी
३) समयसार टीका, आत्मख्याती	(स सा टीका)	अमृतचद्राचार्य
४) बारह भावना	(बा भा)	भूधरदास
५) समाधि शतक	(स श)	आचार्य पूज्यपाद स्वामी
६) मूलाचार	(मू)	आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी
७) गोमट्टसार जीवकाड	(गो जी का)	आचार्य नेमीचद्र
८) गोमट्टसार कर्मकाड	(गो क का)	आचार्य नेमीचद्र
९) भाव पाहुड	(भा पा)	कुन्दकुन्द आचार्य
१०) वीर भक्ति	(वी भ)	
११) ईष्टोपदेश	(ईष्टो)	आ पूज्यपाद स्वामी
१२) द्वात्रिशतिका सा पा	(द्वा सा पा)	अमितगति आचार्य
१३) क्षत्रचूडामणि	(क्ष चू)	वादिभसिह
१४) सुभाषित रत्नावलि	(सु र)	सकलकीर्ति आचार्य
१५) स्वयभू स्तोत्र	(स्व स्तो)	समतभद्राचार्य
१६) वृहद द्रव्य सग्रह	(वृ द्र स)	नेमीचद्राचार्य
१७) कातत्र व्याकरण	(का व्या)	
१८) अध्यात्म अमृत कलश	(अ अ क)	आचार्य अमृतचद्रस्वामी
१९) ज्ञानार्णव	(ज्ञाना)	आ शुभचद्रस्वामी
२०) रत्नकरड श्रावकाचार	(र क श्रा)	समतभद्राचार्य
२१) नियमसार	(नि सा)	कुदकुदाचार्य
२२) सवार्थसिध्दि	(स सि)	पूज्यपाद आचार्य
२३) आत्ममीमासा	(आ मी)	समतभद्राचार्य
२४) समयसार	(स सा)	कुन्दकुन्दाचार्य
२५) रयणसार	(र सा)	कुन्दकुन्दाचार्य
२६) अनगार धर्मामृत	(अ ध)	प आशाधरजी
२७) योगसार	(यो सा)	योगिन्दुदेव आचार्य
२८) प्रवचनसार	(प्र सा)	कुदकुदाचार्य
२९) अष्टपाहूड	(अ पा)	कुदकुदाचार्य
३०) मोक्षपाहूड	(मो पा)	कुदकुदाचार्य
३१) समय पाहूड	(स पा)	अमृतचद्राचार्य
३२) भाव सग्रह	(भा स)	देवसेन स्वामी
३३) सागार धर्मामृत	(सा ध)	पडित आशाधरजी
३४) तत्वार्थसूत्र	(त सू.)	कुदकुदाचार्य
३५) समाधिभावना	(स भा)	
३६) समाधितत्र	(स त)	पूज्यपादस्वामी

आचार्य अमितगति प्रणीता

मरणकण्डिका

(हिन्दी टीका तथा प्रश्नोत्तर सहित)

卐

❋ मङ्गलभावना ❋

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री वर्धमानसागरजी महाराज

❋

❋ टीकाकर्त्री ❋

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

❋

❋ सम्पादक ❋

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

卐

❋ प्रकाशक ❋

श्रुतोदय ट्रस्ट

श्री क्षेत्र सिद्धान्त तीर्थ सस्थान, नन्दनवन

धरियावद-३१३ ६०५, जिला-उदयपुर (राजस्थान)